ज्ञानवर्द्धक पुस्तक भण्डार के प्रकाशन

गुरुदेव का दिव्य जीवन सजिल्द	ले. पं० मुनिश्रीहस्तीमल जी म. सा.	१–५०
तपस्वी श्रीरोडीदासजीम. का जीवन सचित्र	,,	१–५०
आगम के अनमोल रत्न		८–०
यशोधर चरित्र	रचयिता पं० मुनिश्री चौथमलजीम. सा.	३७ नये पैसे
विद्या विलास चरित्र	,, ,,	२५ नये पैसे
हंसवच्छ चरित्र	,, ,,	२५ ,,
अमर चरित्र, ऋषिदत्ता चरित्र	,,	३७ ,,
विक्रम-हरिश्चन्द्र	,, ,,	२५ ,,
भीमसेन हरीसेन	,, ,,	३१ ,,
प्रद्युम्न चरित्र	,, ,,	४४ ,,
विपाक सूत्र रास	,, ,,	५० ,,
चन्द्रसेन लीला	,, ,,	३१ ,,
चन्दनबाला चरित्र	,, ,,	१५ ,,
नवरत्न किरणावली	,, ,,	५० ,,
लीलापत झणकारा	,, ,,	२५ ,,
तेतली पोट्टिला	,, ,,	
कमल कुसुम कर्णिका	,, ,,	३७ ,,
महेश्वरदत्त चरित्र	,, ,,	३७ ,,

डाक खर्च अलग

पुस्तके व सूची पत्र मंगाने का पता—

श्रीज्ञानवर्द्धक पुस्तकभण्डार—व्यवस्थापक कन्हैयालालजी सिंघवी

मु० पो० महलों की पीपली वाया—कांकरोली (राजस्थान)

आगम
के
अनमोल रत्न

संपादकः

मुनि हस्तीमल 'मेवाड़ी'

सम्पादक —
पं० मुनिश्री हस्तीमलजी महाराज 'मेवाड़ी'

प्रकाशक —
धनराज घासीराम कोठारी
लक्ष्मी पुस्तक भण्डार
गान्धी मार्ग, अहमदाबाद-१

प्रथम संस्करण —१९६८

ગુ. સા. પ્ર. વિ. મંડળના ઠરાવ
કિંમત રૂ. ૨૦-૦૦
અનુસાર સુધારેલી કિંમત

प्राप्ति स्थान—
कन्हैयालाल जी सिंघवी
श्री ज्ञानवर्द्धक पुस्तक भंडार
मु. पो. महलों की पिपली
वाया—काकरोली
(राजस्थान)

मुद्रक —
स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री
श्री रामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस,
कांकरिया रोड,
अहमदाबाद-२२

प्राक्कथन

Lives of great men, all remind us.
We can make our, lives sublime.

महापुरुषों के महान् जीवन हमें याद दिलाते हैं कि हम भी उनके पद-चिह्नों पर चलकर अपने जीवन को ज्योतिर्मय बना सकते हैं। यह एक प्रसिद्ध कवितांश है। इसका तात्पर्य-'महाजनो येन गतः सः पन्थः' से भिन्न नहीं है। ये ही नहीं इन से भी कहीं अधिक प्रेरक सूक्तियां शास्त्रों, ग्रन्थों और लोकोक्तियों में उपलब्ध हैं, जो हमें विगत महामानवों के जीवन से प्रेरणाएँ लेने का संदेश देती हैं।

सूक्तियों के इस सम्प्रेरक विधान अथवा निर्देश को हृदयगम करने के साथ ही मन में एक प्रश्न उभरता है कि जो व्यतीत हो चुका है उसका स्मरण क्यों ? अतीत भूत है, हम वर्तमान हैं, हमारी गति भविष्य के लिये अपेक्षित और आशान्वित है। विगत को याद कर हम पीछे क्यों जायें ? क्यों प्रकृति के भूले बिसरे चित्रों को उभार उभार कर सन्तोष माने ?

इस प्रश्न का समाधान आवश्यक है, अतः लगे हाथ इस पर थोड़ा विचार करलें।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो आज है वह कल भूत होगा और जो उपस्थित नहीं है वह भविष्य कल वर्तमान होगा। ऐसी स्थिति में जीवन भूत, वर्तमान और भविष्य से अनुबद्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जो सत्य है।

भविष्य को वर्तमान के रूप में पाकर भी हम विगत को भूल नहीं सकते। हम देखते हैं कि पशु भी पूर्व परिचित स्थान की ओर स्मृतिके सहारे दौड़ जाते हैं। हम तो मानव हैं, मनन-धर्मी मन की गति को केवल वर्तमान में कैद नहीं कर सकते।

स्मृतियों का विशाल खजाना जो बुद्धि में सुरक्षित है उसे कहीं दफना नहीं सकते, क्योंकि स्मृति ही हमारी बुद्धि का प्राणवान् तत्त्व है जो इसकी महत्त्वपूर्ण उपयोगिता को सिद्ध करता है।

स्मृति और अनुभव की उपयोगिता सिद्ध होने पर यह भी मानना होगा कि ये किसी एक जीवन से ही अनुबन्धित नहीं हैं।

विराट् विश्व के प्रागण में अनन्त जीवन अठखेलियाँ कर रहे हैं। संस्कार और पुरुषार्थ के आधार से अनन्त प्रवृत्तियाँ संचालित हो रही हैं। उनमें हम यह भी देख रहे हैं कि कुछ जीवन प्रकृष्ट तेजस्विता प्रकट कर विश्व को प्रकाशमय बना रहे हैं तो कुछ अन्धकार की काली घटाएं उमड़ाकर कालुष्य का निर्माण कर रहे हैं।

किसी उर्दू शायर ने ठीक ही कहा है :—

कुछ गुल तो दिखला के वहार अपनी हैं जाते
कुछ सूखके काँटों की तरह हैं नज़र आते,
कुछ गुल हैं कि फूले नहीं जामे में समाते,
कुछ गुल ऐसे हैं जो खिलने भी नहीं पाते॥

यदि एक बार और प्रकारान्तर से सोचे तो संसृति के अविरल क्रम से गुजरनेवाले व्यक्तियों को सामान्यतया तीन उपमाओं से विभाजित कर सकते हैं। हम देखते है गगनगामी ग्रहों के तीन प्रकार हैं।

(१) चन्द्र और सूर्य जो स्वयं देदीप्यमान हैं, साथ ही अन्य को भी प्रकाशित करने की क्षमता रखते हैं। (२) सितारे, जो स्वयं दमकते अवश्य हैं, किन्तु निशाजनित विकराल अन्धकार को छिन्न-भिन्न करने की क्षमता उनमें नहीं होती। न वे अन्य पदार्थों को प्रकाशित ही कर पाते हैं। (३) राहु, केतु स्वयं तो अन्धकार-पूर्ण हैं हीं। यदि ये चन्द्र सूर्य से किसी तरह सम्बन्धित भी हो जाये तो उनकी प्रभा को भी अवरूद्ध कर देंगे।

जगतीतल पर भी वे नर श्रेष्ठ हैं जो स्वयं सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप ज्योतिर्मयी आभा से अलंकृत हैं और अपने प्रकाशपूर्ण व्यक्तित्व के द्वारा कोटि कोटि जनगण का मार्ग प्रदर्शन करते हैं। वे चन्द्र सूर्य से कई गुने अधिक महान् हैं। किन्तु ऐसे नरोत्तम तो बहुत कम पाये जाते हैं अधिकतर तो राहु-केतु के साथी ही मिलेंगे जो स्वयं बुराइयों एवं विकृतियोंसे तमसावृत हैं तथा औरोंको भी ऐसे ही बनाने में लगे हुए हैं। हां, कहीं कहीं ऐसे सरल व्यक्तित्व भी मिल सकते हैं जो सितारों के समान स्वयं कर्तव्यरत, श्रद्धा और ज्ञान के आलोक से आलोकित हैं किन्तु वे अपने आगे पीछे बहुत दूर दूर तक फैले अज्ञान अन्धकार को नहीं मिटा पाते।

निस्सन्देह प्रथम श्रेणी के महामानव नितान्त उपास्य हैं, क्योंकि वे उत्तम हैं। वे युग-प्रवर्तक महान् व्यक्तित्व दैहिक दृष्ट्या विलीन हो भी जाये, तदपि उनके महान आदर्श और उत्तम चरित्र युग युग तक श्रोतव्य, मन्तव्य और अनुकरणीय होते हैं।

राहु केतु के तुल्य नर-पिशाचों के चरित्र तो हैं ही। हाँ, सितारों के तुल्य सामान्यतया अच्छे जीवन समादरणीय अवश्य हैं।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि हम अतीत को नितांत विस्मृत नहीं कर सकते। क्योंकि उससे प्रेरणा लेकर ही भविष्य की उज्ज्वल कल्पनाओं को वर्तमान में देख सकते हैं। इस तरह जब हम अपनी स्मृति और अनुभव को इतना महत्व देते हैं तो क्य नहीं हम उन प्राचीन अनुभवों से भी लाभ उठाएं जो हमारे अपने अनुभवों से कई गुने अधिक स्वच्छ और पूर्ण हो सकते हैं।

वैसे भी आज का जन-जीवन अधिकाधिक उलझन-पूर्ण और अशांत होता जा रहा है। नयी नयी समस्याओं के नागपाश बनकर जीवन को जकड़ रहे हैं। आणविक महा विनाश की काली छाया प्रतिदिन गहरी होती जा रही है। ऐसी कठिनतम परिस्थिति

में जब कि जीवन का प्रत्येक अंग विरोधाभास से कुण्ठित है, जीवन-निर्माण की मौलिक प्रक्रिया की गवेषणा करनी होगी। ढूँढ़ने होंगे वे मार्ग और समस्याओं के वे समाधान जो जीवन को निश्चित और विश्वास-पूर्ण दिशा प्रदान कर सकें। कहते हैं 'चोर की दिशा एक किन्तु खोजी की अनेक' ऐसे ही समस्या एक होती है किन्तु उसके समाधान अनेक हो सकते हैं। उनमें कुछ उचित तो कुछ अनुचित होंगे कुछ पूर्ण तो कुछ अपूर्ण।

यों हम अपने निर्णय को पूर्ण सत्य कह भी नहीं सकते, क्योंकि वह तो पूर्ण निर्मल ज्योतिर्मयी बुद्धि द्वारा ही संभव है। वैसी स्थिति हमारी कहाँ? अतः अपने निर्णय की प्रामाणिकता को जानने के लिए भी हमें उसे महापुरुषों के अनुभवों की कसौटी पर कसना होगा।

जो जज अपने न्याय को अधिक से अधिक प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध कर प्रस्तुत करता है वह उतना ही अधिक ठीक समझा जाता है। ठीक ऐसा ही सिद्धांत जीवन में प्रश्न-चिह्नित प्रवृत्तियों के लिए होना आवश्यक है। इस तरह हम सोचते हैं तो ज्ञात होता है कि विगत आदर्श व्यक्तियों के जीवन-चित्र हमारे लिए कई तरह से उपयोगी और आवश्यक हैं।

यह सौभाग्य का विषय है कि हमारा अतीत बहुत दूर तक गौरवमय रहा है। उसे गौरवान्वित करने का श्रेय अनेकानेक नर-रत्नों और आदर्श नारियों को है जो भिन्न देश, काल और परिस्थितियों में होकर भी हमारी गौरवशाली परंपरा में अनुस्यूत हो गये हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ को जो कि आपके हाथ में है, उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचना के सन्दर्भ में रख कर पढ़े और समझे तो आपको इसका महत्त्व और उपयोगिता अनायास ही समझ में आजायगी।

अनमोल महापुरुषों के जीवन-वृत्त का विशाल खजाना जो-यत्र तत्र विश्रृङ्खलित, असंग्रहित था उसे एक साथ क्रमशः कलात्मक

ढङ्ग से गुंफित-कर मुनिजी ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है। यह एक ऐसी कमी की पूर्ति है जो तीव्रता से अनुभव की जा रही थी। उन की लेखन-शैली संक्षिप्त और सार-पूर्ण है

बाल पण्डित सर्वगम्य सामान्य शुद्ध भाषा में इतना सब कुछ लिखा जाना यह एक मुनीजी की विशेषता है। वाक्य छोटे छोटे और प्रवाह-पूर्ण हैं। सब मिलाकर विषय का प्रतिपादन और निर्वाह अच्छा हुआ है।

ऐसी सर्वोपयोगी अच्छी कृति के लिए मैं लेखक मुनिजी को साधुवाद तो देता ही हूँ। साथ ही पाठकों से भी यह आशा करता हूँ कि वे आगम के अनमोल रत्नों की सात्विक मंगलमयी आभा से अपन जीवन को ज्योतिर्मय बनाते हुए भवचक्र के विकराल अन्धकार आवर्तो को समाप्त करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते जाएँ और यह क्रम तब तक चलता रहे जब तक कि ज्योति ही जीवन न बन जाए।

प्रवर्तक—

मुनि अम्बालाल

शांति भवन (भूपाल गंज)

कार्तिकी पूर्णिमा

सम्पादकीय

श्रमणसंस्कृति का अतीत अत्यन्त उज्ज्वल और प्रेरणाप्रद रहा है। मानव-पवित्रता की रक्षा के लिये इस आध्यात्ममूलक संस्कृति ने कितना भारी संघर्ष किया है, कितनी यातनाएँ सहीं, यह तो इसका इतिहास ही बतायेगा। निवृत्ति-मूलक प्रवृत्ति द्वारा इस परंपरा ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता के मौलिक स्वरूप को सङ्कटकाल में भी अपने आप को होमकर, सुरक्षित रखा। भारतीय नैतिकता और परंपरा की रक्षा श्रमण एवं तदनुयायी वर्ग ने भली भाँति की। उसमें सामयिक परिवर्तन एव परिवर्धन कर जागतिक सुखशांतिको स्थिर रखा, मानव द्वारा मानव-शोषण की भयङ्कर रीतिका घोर विरोध कर समत्व की मौलिक भावना को अपने जीवन में मूर्तरूप देकर जन-जीवन में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा की। अनुभव-मूलक ज्ञान-दान से राष्ट्र के प्रति जनता को जागृत किया। आध्यात्मिक विकास के साथ साथ समाज और राष्ट्र को भी उपेक्षित न रखा। ज्ञानमूलक आचारों को अपने जीवन में साकार कर जनता के सामने चरित्रनिर्माण विषयक नूतन आदर्श उपस्थित किया, और आध्यात्मिक साधना में प्राणी मात्र को समान अधिकार दिया। मानवकृत उच्चत्व नीचत्व की दीवारों को समूल नष्ट कर अखण्ड मानव-संस्कृति का समर्थन किया। इन्हीं कारणों से श्रमण संस्कृति की धारा आज भी अखण्ड रूप से वह रही है। सामाजिक शांति के बाद उनका अन्तिम ध्येय था मुक्ति।

इस अध्यात्ममूलक श्रमण संस्कृति के प्रतिनिधि महापुरुषों का क्रमबद्ध इतिहास आज हमारे सामने उपलब्ध नहीं है। किन्तु इस विषय के साधनों की कमी नहीं है। भगवान महावीरके सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले आगम ग्रन्थों, चूर्णियों टीकाओं एवं भाष्योंमें श्रमण संस्कृति के प्रकाशस्तंभ सम हजारों महापुरुषों के त्याग, वैराग्य, संयम, क्षमा, तप और अहिंसा का भव्य दिव्य एवं हृदय स्पर्शी वर्णन मिलता है।

ये महापुरुष वे महापुरुष हैं जिन्होंने सोने, चाँदी और रत्नों से भरे हुए महलों, सुन्दरियों, सुखद भोगों, परिजनों एवं परिवारों का परित्याग कर उग्र तप किया, योग की साधना की और कर्म-मल को धोकर आत्मा को परम ज्योतिर्मय बनाया। ये महापुरुष त्याग और तपस्या की जीति जागती मशाले थीं, ये मशाले जिधर भी निकलीं, अपना दिव्य प्रकाश बिखेरती चली गईं। इन्होंने जो प्रकाश प्राप्त किया था वह बाहर से नहीं किन्तु अपने ही अन्दर से। अहिंसा, संयम त्याग व कठोर तप से ही इन्हें दिव्य प्रकाश मिला है। इनके दिव्य जीवन से निकलने वाला प्रकाश-पुंज कभी बुझता नहीं और न कभी मिटता है। ऐसे महापुरुषों के स्मरण से, उनके पद चिह्नों पर चलने से आत्मा निश्चयतः परमात्मा बन जाती है।

संसार का प्रत्येक समाज, राष्ट्र और धर्म अपने गौरवपूर्ण इतिहास और पूर्वजों के पद चिह्नों पर और उनकी स्मृतियों के प्रकाश में अपने पथ को आलोकित करता हुआ उस पर आगे बढ़ता रहता है।

जब तक हम अपने पूर्वजों को नहीं भूलेंगे, अतीत की गौरव-गाथाओं को याद करते रहेंगे तब तक निश्चय ही दुःख, दैन्य, दारिद्र एवं विपत्तियाँ हम से दूर भागेंगे।

ग्रन्थ लेखन की प्रेरणा

वि० सं० २०१२ के साल में मेरे पूज्य गुरुदेव श्री मांगीलालजी महाराज साहब का मेरा व मेरे साथी श्री पुष्कर मुनि का मलाड (बम्बई) में चातुर्मास था। पूज्य गुरुदेव के प्रभावशाली प्रवचनों से स्थानीय संघ में अपूर्व धार्मिक चेतना जागृत हो रही थी। इस चातुर्मास काल में आस पास के क्षेत्र के लोग बड़ी संख्या में पूज्य गुरु देव के मार्मिक प्रवचनों का लाभ लेने के लिये आते थे। और विविध धार्मिक चर्चाओं के साथ साथ लोग अपने प्रश्नों का उचित समाधान प्राप्त कर हर्ष प्रकट करते थे।

एक दिन एक विचारशील युवक गुरुदेव के पास आयाऔर नम्र भाव से बोला–गुरुदेव ! "आज पाश्चात्य जनता और पाश्चात्य ढङ्ग की शिक्षा के प्रभाव में आकर भारतीय लोग अपने आदर्शों को भूल रहे हैं और जीवन की सुखशान्ति के लिए अभिषापरूप विदेशी आदर्शों को अपना रहे हैं । ऐसे समय में नूतन ढङ्ग से पुरातन आदर्शों को कथाओं के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाय तो पश्चिमी आपातरम्य कुसंस्कृति के चक्कर में पडे हुए लोग भारतीय आदर्शों के अनुरूप ही अपने जीवन का निर्माण कर सकेंगे । और यह कार्य हमारे प्रकाशस्तम्भ समान पुराण पुरुषों के जीवन–चरित्रों को सरल और सुगम लोकभाषा में , प्रकाशित करने से ही हो सकता है ।" गुरुदेव के मन में यह बात घर कर गई । उन्होंने उसी समय निश्चय किया कि हमारे आगमों में अनेक महापुरुषों के चरित्र हैं, उनका संकलन किया जाय तो महान् लाभ की सभावना है । तीर्थङ्करों के शासन में अनेक भव्य जीवों ने संयम की कठोर साधना कर मुक्ति प्राप्त की है । और अपने को धन्य बनाया है । इन महापुरुषोंके जीवन–चरित्र पढ़कर अनेक मुमुक्षुजन उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चल कर परम शान्ति प्राप्त कर सकते हैं ।

गुरुदेव ने इस भावना को साकार रूप देने के लिये अपना प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया । उन्होंने उसकी एक रूपरेखा भी अपने मनमें तैयार कर ली । बात बात में चातुर्मास काल पूरा हो गया । इस अवसर पर अपने अपने क्षेत्र में पधारने की बम्बई क्षेत्र के अनेक स्थानों की विनतियाँ लेकर संघ आने लगे । उस समय राजकीय तंग वातावरण को एवं अपनी शारीरिक अवस्थाता को ध्यान में रखकर गुरुदेव ने बम्बई में अधिक समय न रुकने का फैसला कर लिया । चातुर्मास समाप्त होते ही आपने गुजरात की राजधानी अहमदाबाद की ओर विहार कर दिया । अहमदाबाद पधार गये । यहाँ के संघ ने आपकी बडी भक्ति की और आगामी चातुर्मास अहमदाबाद में

ही व्यतीत करने की भावभीनी प्रार्थना की । किन्तु आपका विचार मेवाड़ की तरफ पधारने का था । अतः आपने वहाँ से विहार कर दिया । अरावली की पहाड़ियों से होते हुए आप उदयपुर पधार गये । सतत विहार के कारण और ग्रन्थ-संकलन की उपयोगी सामग्री के अभाव में आपका यह कार्य आगे नहीं बढ़ सका । किन्तु उनकी इस कार्य को पूरा करने की सतत इच्छा रहती थी । बम्बई में ऐक्सिडेंट से आपका शरीर दुर्बल हो गया था, शरीर की दुर्बलता प्रतिदिन बढ़ती जाती थी । लेकिन आप में वज्रसी हिम्मत थी । शरीर अस्वस्थ होते हुए भी आप सतत स्वाध्याय, मनन व चिन्तन तथा तपस्या में लगे ही रहते थे । इसी अवस्था में सात वर्ष निकल गये । निर्मल संयम की आराधना करते हुए वि. सं० २०२० की जेठ सुदि चतुर्दशी के दिन समाधिपूर्वक आप का स्वर्गवास हो गया । गुरुदेव के स्वर्गवास से दिल पर बड़ा आघात लगा, किन्तु काल कराल के सामने किसका जोर चलता है ! गुरुदेव द्वारा स्वीकृत गांव राजकरेड़ा में अपने साथी मुनियों के साथ वर्षावास पूरा किया । कुछ समय तक राजस्थान में ही विचरण करता रहा । गुरुदेव की स्नेहमयी मूर्ति जब आँखों के सामने आती तो उनकी याद में चित्त खिन्न हो जाता था । इधर अहमदाबाद से विनती पत्र आने लगे । श्रावकोंके अत्याग्रह को ध्यान में रखकर हमने अहमदाबाद की ओर विहार कर दिया । अरावली की पहाड़ियों से होते हुए हम तीनों मुनिराज अहमदाबाद पहुँच गये और पूज्य घासीलालजी महाराज साहब की सेवामें अध्ययनार्थ सरसपुर रह गये । लगभग एक वर्ष तक पूज्यश्री की स्नेहमयी छाया में रहने का अवसर मिला । चातुर्मास की समाप्ति के कुछ काल बाद सरसपुर से विहार कर दौलतखाना आये । यहाँ पर तपस्वी, त्यागी, पावनमूर्ति श्री कान्तिऋषिजी म० से व अन्य सन्तों से स्नेह-मिलन हुआ । उस अवसर पर सानन्द (गुजरात) का संघ भी

चातुर्मास की विनती को लेकर आया । उनके अत्याग्रह पर सानन्द में चातुर्मास व्यतीत करने की स्वीकृति दे दी । समय पर चातुर्मासार्थ सानन्द पहुँच गये । इस चातुर्मास काल में सानन्द संघ ने खूब सेवा की और धर्मवृद्धि के अनेक कार्य किये । गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद उन्हीं की भावना को साकार रूप देने की प्रबल इच्छा तो थी ही, किन्तु अनुकूल संयोगों के अभाव में यह कार्य नहीं कर पाया । चातुर्मास के बीच श्रावकों के समक्ष मैंने अपने गुरुदेव की भावना को व्यक्त किया तो स्थानीय संघ ने इसका उत्साह–जनक जवाब दिया । उनके आर्थिक सहयोग से मैने यह कार्य प्रारंभ कर दिया । ४५ आगमों से तथा आगमिक साहित्य से चुने हुए श्रमण श्रमणियों के चरित्रों का अपनी बुद्धि के अनुसार संकलन कर लिया । फलस्वरूप **आगमके अनमोल रत्न** नामक यह पुस्तक पाठकोंके सामने प्रस्तुत कर सका हूँ । यह संकलन कैसा बना यह पाठकों पर ही छोड़ता हूँ ।

इस प्रकार के संकलन को तैयार करने का मेरा प्रथम प्रयास है इसमें अनेक भूलों का रहना संभव है किन्तु पाठक गण मेरी त्रुटियों के लिये क्षमा प्रदान करेंगे ऐसा विश्वास है ।

मुनि हस्तीमल (मेवाड़ी)

प्रकाशक की ओर से

जैन परम्परा में मंगलकारी सन्त सतियों का प्रातःकाल में स्मरण करने की पद्धति है। श्रद्धालु श्रावक श्राविका गण एवं सन्त-सतियाँ बड़े भक्ति भाव से इन महापुरुषों का स्मरण करते हैं। आगमोक्त महापुरुषों का स्मरण दिलाने वाली अनेक स्तुतियाँ व नामावलियाँ हमारे पूज्य पुरुषों ने पद्य के रूप में बनाई हैं। किन्तु उनके चरित्र पर सम्पूर्ण प्रकाश डालनेवाला विशद ग्रन्थ हिन्दी भाषा में बहुत कम होने से, इस उद्देश्य को लेकर पंडित मुनि श्री हस्तीमलजी म. साहब ने 'आगम के अनमोल रत्न' नामक ग्रन्थ की संयोजना की। उसके अन्तर्गत ४५ आगमों में आये हुए सन्त-सतियों के आदर्श जीवनी को नये ढंग से व सरल हिन्दी में पाठकों के समक्ष रखा है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में उदारचेता सज्जनों का आर्थिक सहयोग मिला है अतएव वे धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक पण्डित मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज साहब के हम अत्यन्त आभारी हैं। जिन के परिश्रम के फलस्वरूप यह उपयोगी प्रकाशन हो सका है। इस ग्रन्थ को संशोधनपूर्ण और सुन्दर बनाने का यश श्री रूपेन्द्रकुमारजी को ही है एवं इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीमान् प्यारचन्द्रजी साहब संचेती को भी इस अवसर पर हम नहीं भूल सकते, क्योंकि उन्होंने इस कार्य को सफल बनाने के लिये अच्छा प्रयत्न किया है। श्रीरामानन्द प्रेस के अधिकारी व कर्मचारियों ने भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हमारी हृदय से सहायता की हैं उनके सहयोग से ही प्रस्तुत पुस्तक इतनी जल्दी आपके हाथों में पहुँच पाई है।

अन्त में मै उन सभी सज्जनों के प्रति आभार प्रदर्शन करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने के लिए आर्थिक, शारीरिक एवं बौद्धिक सहयोग प्रदान कर हमें उपकृत किया है।

मैं आशा करता हूँ कि यह प्रकाशन पाठकों को जागृति की नव प्रेरणा प्रदान करेगा।

धनराज काठोरी
व्यवस्थापक

अनुक्रमणिका

विषय सूची		पृष्ठ

विषय सूची		पृष्ठ
तीर्थङ्कर विषयक २८ बोल	[सत्तरियसयठाण]	२६६
तीर्थङ्कर विषयक कुछ ज्ञातव्य बाते ✓	,,	२७८
बीस विहरमान एक दृष्टि में		२८५
बारह चक्रवर्ती [हेमचन्द्राचार्यकृत त्रिषष्टीशलाकापुरुषचरित्र]		२८८
भरत चक्रवर्ती ✓	,,	२८८
सगर चक्रवर्ती ✓	,,	३००
मघवान् चक्रवर्ती	,,	३०४
सनत्कुमार चक्रवर्ती ✓	,,	३०५
शातिनाथ चक्रवर्ती	,,	८३
कुन्थुनाथ चक्रवर्ती	,,	१०७
अरनाथ चक्रवर्ती	,,	१०९
सुभूम चक्रवर्ती	,,	३०८
महापद्म चक्रवर्ती	,,	३१२
हरिषेण चक्रवर्ती	,,	३१७
जय चक्रवर्ती	,,	३१९
ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती	,,	३१९
चक्रवर्तियों के विषय में सामान्य जानकारी		३२४
वासुदेव और वलदेव		३२९
त्रिपृष्ठवासुदेव और अचल बलदेव	,,	३२९
द्विपृष्ठ वासुदेव और विजय वलदेव	,,	३३०
स्वयंभू वासुदेव और भद्र वलदेव	,,	३३०
पुरुषोत्तम वासुदेव और सुप्रभ वलदेव	,,	३३१
पुरुषसिंह वासुदेव और सुदर्शन वलदेव	,,	३३२
पुरुष पुण्डरीक वासुदेव और आनन्द वलदेव	,,	३३३
दत्त वासुदेव और नन्दन वलदेव	,,	३३३
लक्ष्मण वासुदेव और राम वलदेव	,,	३३४

विषय सूची पृष्ठ

विषय सूची पृष्ठ

विषय सूची		पृष्ठ

विषय सूची				पृष्ठ

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
५	४	वहकर	कहकर
७	१८	मुान	मुनि
१८	१३	त्वप्नो	स्वप्नों
२२	१८	कोट कोटि	कोटाकोटि
'३४	२१	गर्दताय	गर्दतोय
३४	२३	हेप्रभा	हेप्रभो
४७	१७	भा	भी
४९	२	रानयाँ	रानियाँ
६७	१९	३३सागरोपम	३२सागरोपम
७०	१५	ह	हो०
८४	१९	भी भी	भी०
१०८	१९	परमान्न से	परमान्न से पारणा
१०९	१७	इन्द्रदि	इन्द्रादि
१२६	४	गजना	गर्जना
१२८	५	अरहन्नरकादि	अरहन्नकादि
१४०	१	उरस्थित	उपस्थित
१४३	४	उत्पत्न	उत्पन्न
१६१	१२	राजी	राजीमती
१७३	१०	राकुमवस्था	कुमारावस्था
१७३	१०	एक वर्ष संयमलेकर	संयम लेकर
१७४	९	छद्मस्थ	५४ दिनछद्मस्थ
१८५	१८	सापा	सौपा
१८५	१९	काम्पायमान	कम्पायमान
		पद्मवती	पद्मावती

१८६	१	मेघगाली	मेघमाली
१९७	१९	वतावरण	वातावरण
२०१	७	बाकक	बालक
२०४	६	८०लाख	८लाख
२१५	३	हागया	हो गया
२१५	१३	हाकर	होकर
२२०	२०	भनवान	भगवान
२२१	८	पिशाव	पिशाच
२२५	७	फर	कर
२४०	२१	गाशालक	गोशालक
२४१	१२	सवत्र	सर्वत्र
२४२	२५	गशालक	गोशालक
२८४	२४	मैंतोर्थ	तीर्थमें
२९६	४	विारजमान	विराजमान
३२६	१	माम	नाम
३२८	१२	गुच्छा	गुञ्जा
३४८	१४	दानो	दोनों
३६१	२७	वषय	विषय
,,	,,	हिजारों	हजारों
३६६	१७	वर्म	कर्म
३७३	२५	श्रति	श्रुति
३९६	८	मन	में
४१२	१०	धमपदेश	धर्मोपदेश
४१३	५	प्राणातिपाल	प्राणातिपात
४३०	५	दर्शनाय	दर्शणीय
४३६	१	दोदद	दोहद
४५६	२०	करत	करने

४५७	८	ही	है
४६२	२५	को	की
४७३	१८	डारायेगी	डराऐंगी
४७६	२५	स्कन्धक	स्कन्धक को
४७८	१	रोता	रोती
४७९	७	परिमाण	परिणाम
,,	१२	ज	जब
४८१	२२	बढ़ा	बड़ा
४८२	२६	कलि	कपिल
४८६	१९	विधर	किधर
४९०	१९	अनेवत्व	अनेकत्व
४९२	१८	विजप	विजय
५१०	१६	की	०
५१२	१७	संयाग	संयोग
५१३	१	वहेगा	कहेगा
६१३	४	निवाली	निकाली
५१६	१०	केवह	केवल
५१७	११	संयाग	संयोग
५१९	३	पत्मी	पत्नि
५२०	१३	बही	वही
,,	१८	मुान	मुनि
,,	२४	राज	राजा
,,	२६	हजरों	हजारों
५२१	५	छेड़कर	छोड़कर
५२१	१९	बडे	बड़े
५२२	पृष्ठ	२२६	५२२
५२६	२६	सेवित	सेवित

५२८	१	जक	अब
,,	२०	साय	साय
,,	२६	मक्षा	क्षमा
५३४	८	कती	करती
५३५	१७	याग	योग
५३६	१७	कमा	कर्मों
५३९	१८	र्दर्घदन्त	दीर्घदन्त
५४३	२	क	के
५४३	१९	सार्थवाहा	सार्थवाही
५४७	३	वोली	बोली
५४७	८	वो	को
५४७	२३	ग	त्याग
५४९	१	ता	तो
५४९	१०	थारिणी	धारिणी
५५०	९	क	एक
५५०	१९	का	को
५५३	११	प्रप्त	प्राप्त
५५३	२४	सोवने	सोचने
५५५	२०	पलस्वत	फलस्वरूप
५५६	८	संत्ति	संपत्ति
५५६	११	प्रप्त	प्राप्त
५५८	१२	नगरा	नगरी
५५९	९	श्रवण	श्रमण
५५९	१२	उहोने	उन्होंने
५६०	१	कहवीर	महावीर
५६०	११	अधान	प्रधान
५६१	५	श्रेष्ठी	श्रेष्ठ

,,	१८	वठोर	कठोर
५६४	१३	ानकट	निकट
,,	१८	कत्यय	कात्यायण
५६७	१९	पकार	प्रकार
,,	२१	अग्निदाहदि	अग्निदाहादि
,,	२४	परिभ्रम	परिभ्रमण
५६४	३	वो	को

सुवासवकुमार पृ० ५५८, जिनदासकुमार पृ० ५५९ धनपति कुमार पृ० ५६०, एवं महाबलकुमार पृ० ५६० इन्होने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया।

५७०	७	ानर्वाण	निर्वाण
५७१	१५	पड	पडे
५९०	२	ाकया	किया
५९२	१४	भलिछत्रा	अहिछत्रा
५९५	२५	जन्न	जन्म
५९७	१६	चार	चोर
६००	२४	कलान्तर	कालान्तर
६०३	१६	अर्जुननाली	अर्जुनमाली
६०३	२४	व्याक्त	व्यक्ति
६१०	१	हाकर	होकर
६११	२	धमर्पोशदेक	धर्मोपदेशक
६१२	२२	यहाँ के	के यहाँ
६३१	२	ासहकेशर	सिंहकेशर
६३५	१२	पारवर्तन	परिवर्तन
६३५	१४	दमयंता	दमयन्ती
,,	१६	ानपुण	निपुण

६४४	२	बद	बाद
६४४	५	पुन:	पुनः
६४४	१२	लेन	लेने
६४६	८	मेज	मेजा
६५२	३	नरद	नारद
६५३	२७	र	पर
६६०	१	।नकले	निकले
६६०	२०	अविलाषा	अभिलाषा
६६७	२२	सुशाभित	सुशोभित
६८४	२७	अई	आई
६२	२१	१०१) शाह जेचन्द नागजी भाई विलखा	
		५१) वोरा शान्तिलाल कस्तुरचद	

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवाऽवि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥

卐 卐 卐

ॐ ह्रीं

श्री नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोएसव्वसाहूणं
एसो पंचनमुक्कारो,
सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवई मंगलं॥

卐

श्रीं नमः

ॐ अर्हं वन्दे

आगम के अनमोल रत्न

मंगलाचरण

वंदे उसभं अजियं संभव, मभिनंदण सुमइ सुप्पभ सुपासं ।
ससि पुप्फदंत सीयल, सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥
विमलमणंत य धम्मं, संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च ।
मुनिसुव्वय नमिनेमिं पासं तह वद्धमाणं च ॥
तित्थयरे भगवंते, अणुत्तर परक्कमे अमियनाणी ।
तिण्णे सुगइगइगए, सिद्धिपह पएसए वंदे ॥
वंदामि महाभागं महामुणिं महायसं महावीरं ।
अमरनररायमहियं तित्थयरमिमस्स तित्थस्स ॥
इक्कारस वि गणहरे पवायए पवयणस्स वंदामि ।
सव्वं गणहरवंसं वायगवंसं पवयणं य ॥
अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं ।
सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तेइ ॥

अर्थ—मै भगवान ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दनस्वामी, सुमतिनाथ, सुप्रभ–अर्थात् पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत यानी सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतस्वामी नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान-महावीर स्वामी को वन्दन करता हूँ ।

सर्वोत्कृष्ट पराक्रमवाले, अमितज्ञानी, संसारसमुद्र से तरे हुए, सुगतिगति अर्थात् मोक्ष में गये हुए, सिद्धिपथ अर्थात् मोक्षमार्ग के उपदेशक तीर्थंकर भगवान को वन्दन हो।

महाभाग्य, महामुनि, महायश देवेन्द्र और नरेन्द्रों द्वारा पूजित तथा वर्तमान तीर्थ के प्रवर्तक भगवान महावीर को वन्दन हो।

प्रवचन अर्थात् आगमों का सूत्ररूप से उपदेश देनेवाले, गौतम आदि ग्यारह गणधरों को, सभी गणधरों के वंश अर्थात् शिष्यपरम्परा को, वाचकवंश को तथा आगमरूप प्रवचन को वन्दना करता हूँ।

अरिहंत भगवान, केवल अर्थ कहते हैं। गणधर देव उसे द्वादशाङ्गी रूप सूत्रों में गूंथते हैं। अतएव शासन का हित करने के लिये सूत्र प्रवर्तमान हैं।

तीर्थङ्कर चरित्र

भगवान् ऋषभदेव के तेरह भव

भगवान ऋषभदेव के जीव ने धन्ना सार्थवाह के भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया था। उस भव से लेकर मोक्ष होजाने तक तेरह भव किये थे। वे ये हैं—

धन्ना सार्थवाह, युगलिया, देव, (सौधर्म देवलोक में) महाबल, ललितांगदेव (दूसरे देवलोक में) वज्रजंघ, युगलिया, देव (सौधर्म देवलोक में) जीवानन्द वैद्य, देव (अच्युत देवलोक में) वज्रनाभ चक्रवर्ती, देव (सर्वार्थसिद्धविमान में) प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव।

प्रथम भव—धन्ना सार्थवाह

जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में क्षितिप्रतिष्ठित नाम का नगर था। वहाँ प्रसन्नचन्द्र नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। वह अपनी महत् ऋद्धियों के कारण इन्द्र की तरह शोभायमान था। उस नगर में धन्ना नाम का श्रेष्ठी रहता था। जिस तरह अनेक नदियाँ समुद्र के आश्रित रहती हैं उसी प्रकार उस श्रेष्ठी के घर अनेक निरा-

श्रित आश्रय पा रहे थे। वह अपनी सम्पत्ति को परोपकार में ही खर्च करता था। वह सदाचारी और धर्मपरायण था।

एक समय उसने किराणा लेकर वसन्तपुर जाने का निश्चय किया। उसने सारे नगर में यह घोषणा करवाई कि "धन्ना श्रेष्ठी व्यापारार्थ वसन्तपुर जानेवाले हैं। जिस किसी को वसन्तपुर चलना हो वह चले। जिसके पास चढ़ने को सवारी नहीं होगी, वे उसे सवारी देंगे। जिसके पास अन्न-वस्त्र नहीं है, उसे वे अन्नवस्त्र देंगे। जिसके पास व्यापार के लिये धन नहीं है उसे धन भी प्रदान करेंगे तथा रास्ते में चोरों डाकुओं एवं व्याघ्र आदि हिंस्र प्राणियों से उनका रक्षण करेंगे।" इस प्रकार की घोषणा करवाने के बाद धन्ना श्रेष्ठी ने चार प्रकार की वस्तुएँ गाड़ियों में भरी। घर की स्त्रियों ने उनका प्रस्थान मंगल किया। शुभ मुहूर्त में सेठ रथ पर आरूढ़ होकर नगर के बाहर चले। सेठ के प्रस्थान के समय जो भेरी बजी उसी को क्षितिप्रतिष्ठित निवासियों ने अपने बुलाने का आमंत्रण समझा और अपनी अपनी साधन सामग्रियों के साथ तैयार होकर सेठ के साथ नगर के बाहर आये। धन्ना श्रेष्ठी नगर के बाहर उद्यान में आकर ठहरे।

उस समय धर्मघोष नाम के तेजस्वी आचार्य अपनी शिष्यमण्डली के साथ नगर में पधारे हुए थे। वे भी वसन्तपुर जाना चाहते थे किन्तु मार्ग की कठिनाइयों के कारण वे जा नहीं सकते थे। उन्होंने भी यह घोषणा सुनी। धन्ना सार्थवाह का मणिभद्र नामक प्रधान मुनीम था। धर्मघोष आचार्य ने उनके पास अपने दो साधुओं को भेजा। अपने घर पर आये हुए मुनियों को देखकर मणिभद्र ने उन्हें प्रणाम किया और विनयपूर्वक आने का कारण पूछा। साधुओं ने कहा-धन्ना सार्थवाह का वसन्तपुर गमन सुनकर आचार्य महाराज ने हमें आपके पास भेजा है। यदि सार्थवाह को स्वीकार हो तो वे भी उनके साथ जाना चाहते हैं। मणिभद्र ने उत्तर दिया-सार्थवाह का अहोभाग्य है अगर आचार्य महाराज साथ में पधारें किन्तु जाने के समय

आचार्य महाराज स्वयं आकर सार्थवाह को कह दें। यह कह कर नमस्कारपूर्वक उसने मुनियों को विदा किया। साधुओं ने जाकर सारी बात आचार्य महाराज को कही। उसे स्वीकार करके आचार्य महाराज अपने मुनि परिवार के साथ सार्थवाह को दर्शन देने के लिये उनके डेरे पर गये। अपने द्वार पर आये हुए आचार्य का सार्थवाह ने उचित सत्कार किया और उनसे विनयपूर्वक आने का कारण पूछा। आचार्य ने कहा—"हम भी तुम्हारे साथ वसन्तपुर जाना चाहते हैं।"

धन्ना सार्थवाह ने अपना सद्भाग्य मानते हुए कहा—आचार्यप्रवर ! आज मैं धन्य हूँ। आप जैसे महापुरुष के साथ रहने से हमारा क़ाफ़िला पवित्र हो जायगा। हमारे जैसे अनेक व्यक्ति आपके उपदेशामृत का पान कर सन्मार्ग की ओर आकृष्ट होंगे। आप अवश्य मेरे साथ पधारें। उसी समय सार्थवाह ने अपने रसोइये को बुलाया और कहा—"अशन, पान आदि जैसा आहार इन मुनिवरों को चाहिये उसे बिना संकोच के देना। इन्हें भोजन विषयक किसी प्रकार का कष्ट न हो इस बात का पूरा ध्यान रखना।"

यह सुनकर आचार्य ने कहा—हे सार्थपते ! इस प्रकार हमारे निमित्त तैयार किया हुआ आहार हम नहीं लेते किन्तु दूसरों के लिये बनाया गया निर्दोष आहार ही माधुकरी वृत्ति से ग्रहण करते हैं। तथा कुआँ, वापी और तालाब का अग्नि आदि से असंस्कारित जल भी हम ग्रहण नहीं करते।

उसी समय किसी ने पके हुए सुगंधित आम्रफलों से भरा हुआ थाल सार्थपति को उपहार स्वरूप दिया। उसे देखकर प्रसन्न होते हुए सार्थपति ने आचार्य से कहा—भगवन् ! इन फलों को ग्रहण करके मुझ पर अनुग्रह कीजिए। आचार्य ने कहा—श्रेष्ठिन् ! मुनि सचित्त फल, बीज, कन्द, मूल ग्रहण नहीं करते। ये पदार्थ निर्जीव ही ग्राह्य हैं।

यह सुनकर सार्थवाह बोला—आपका व्रत अत्यन्त कठोर है। मोक्ष का शाश्वत सुख विना कष्ट के नहीं मिलता। यद्यपि आपको हमारे से बहुत कम प्रयोजन है फिर भी मार्ग में किसी प्रकार का कष्ट हो तो अवश्य ही हमें आज्ञा दीजियेगा। ऐसा कहकर सार्थवाह ने आचार्य को प्रणाम किया और उन्हें विदा किया। आचार्य अपने स्थान पर चले आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही आचार्य सार्थवाह के काफिले के साथ रवाना हुए। सार्थवाह अपने काफिले के साथ आगे बढ़ा। सबसे आगे धन्ना सार्थवाह चल रहा था। उसके पीछे उसका प्रधान मुनीम मणिभद्र और दोनों ओर उसके रक्षकों का दल था। उनके साथ आचार्य धर्मघोष भी अपनी शिष्य मण्डली के साथ चल रहे थे। उनके पीछे पीछे अन्य व्यापारी अपने अपने वाहनों के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। धन्ना सार्थवाह अपने साथ के सभी व्यक्तियों का पूरा ध्यान रखता था और उनकी हर कठिनाई को दूर करता था। इस प्रकार सार्थपति का विशाल काफिला गर्मी की ऋतु में भी सतत प्रयाण करता हुआ आगे बढ रहा था। बड़ी तेजी से आगे बढ़ते हुए सार्थवाह के काफिले ने भयंकर जंगली जानवरों से युक्त अटवी में प्रवेश किया। वह अटवी वृक्षों से इतनी सघन थी कि उसमें सूर्य का प्रकाश भी नहीं आता था। सघन और लम्बी अटवी को पार करते हुए गर्मी की ऋतु समाप्त हो गई और वर्षा-काल प्रारंभ हो गया। आकाश बादलों से छा गया। आँधी और तूफान के साथ बिजली चमकने लगी। बादल गरजने लगे और मूस-लाधार वर्षा होने लगी। नदी नाले भर गये। मार्ग कीचड़ और पानी से दुर्गम बन गया। वाहनों का आगे बढ़ना दुष्कर हो गया। स्थान स्थान पर उभरते हुए नदी नाले सार्थ के काफिले को आगे बढ़ने से रोक रहे थे। ऐसी स्थिति में काफिले को वहीं रुकना पड़ा। सार्थवाह ने अपने साथियों से पूछकर वहीं सुरक्षित स्थल पर अपना

पड़ाव डाल दिया। सामान की सुरक्षा के लिए वृक्षों पर मंच बनाये गये। रहने के लिए घास की झोपड़ियाँ बनायी गईं। मणिभद्र ने अपने लिए बनाई हुई एक निर्दोष झोपड़ी आचार्य को रहने के लिये दी। आचार्य उस झोपड़ी में अपनी शिष्य मंडली के साथ रहने लगे और धर्म ध्यान में समय बिताने लगे।

वर्षा बहुत लम्बी चली। अतः सार्थवाह को अपनी कल्पना से भी अधिक रुकना पड़ा। लम्बे समय तक अटवी में रहने के कारण काफ़िले के समीप की खाद्य सामग्री खुट गई। लोग कंद, मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

एक समय सार्थवाह जब आराम कर रहा था उस समय उसके मुनीम ने कहा—स्वामिन्! खाद्य सामग्री के कम होने से सभी लोग कन्द-मूल और फल खाने लगे हैं और तापसों सा जीवन बिताने लगे हैं। भूख के कारण काफिले की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई है।

मणिभद्र की बात सुनकर धन्ना सार्थवाह चौंक गया। उसे अपने आपकी स्थिति पर एवं काफ़िले की दशा पर अत्यन्त दुःख हुआ। वह सोचने लगा—मेरे काफ़िले में सबसे अधिक दुःखी कौन है? यह सोचते-सोचते उसे धर्मघोष आचार्य का स्मरण हो आया। वह अपने आपको कहने लगा—इतने दिन तक मैंने उन महाव्रतधारियों का नाम तक नहीं लिया। सेवा करना तो दूर रहा। कन्द, मूल, फल, वगैरह वस्तुएँ उनके लिए अभक्ष्य हैं। वे निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं, अतः उनकी खाद्याभाव में क्या स्थिति रही होगी? उसकी मुझे जांच करनी चाहिये।

दूसरे दिन सार्थवाह शय्या से उठा। प्रातःकृत्य से निपटकर वह बहुत से लोगों के साथ आचार्य के समीप गया। वहाँ पहुँच कर मुनियों से घिरे हुए धर्मघोष आचार्य के दर्शन किये और पास में बैठकर आचार्यश्री से कहने लगा—भगवन्! मैं पुण्यहीन हूँ। पुण्य-

हीन के घर में कल्पवृक्ष नहीं उगता; न वहाँ कभी धन की वृष्टि होती है। आप संसार–समुद्र से पार होने के लिये जहाज के समान हैं। आप सच्चे धर्मोपदेशक व सद्गुरु हैं। आप जैसे सद्गुरु को प्राप्त करके भी मैंने कभी अमृत समान वचन नहीं सुने। प्रभो! मेरे इस प्रमाद को क्षमा कीजिए।

सार्थवाह के ये वचन सुनकर अवसर के ज्ञाता आचार्य कहने लगे–सार्थपते! आपको दुःखी न होना चाहिये। जंगल में क्रूर प्राणियों से हमारी रक्षा करके आपने सब कुछ कर लिया है। काफिले के लोगों से इस देश और कल्प के अनुसार आहार आदि मिल जाते हैं।

सार्थवाह ने कहा–भगवन्! यह आपकी महानता है कि मेरे अपराध की ओर ध्यान न देकर आप मेरी प्रशंसा करते हैं तथा प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट रहते हैं। किसी दिन मुझे भी दान का लाभ देने की कृपा कीजिये।

आचार्य ने कहा–कल्पानुसार देखा जायगा। इसके बाद सार्थवाह वन्दना करके चला गया।

उस दिन के बाद सार्थवाह प्रतिदिन भोजन के समय मुनियों की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन गोचरी के लिये फिरते हुए दो मुनि उसके निवासस्थान में पधारे। सार्थवाह को बड़ी खुशी हुई। वह सोचने लगा–आज मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मेरे घर मुनियों का आगमन हुआ, किन्तु इन्हें क्या दिया जाय? पास में ताजा घी पड़ा था। सार्थवाह ने उसे हाथ में लेकर मुनियों को प्रार्थना की। यदि यह ग्रहणीय हो तो आप इसे ग्रहण करें। ग्रहणीय है, यह कह कर मुनियों ने पात्र बढ़ा दिया। सार्थवाह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने जन्म को कृतार्थ समझता हुआ घी देने लगा। घी देते समय सेठ के परिणाम इतने उच्च हुए कि देवों को भी आश्चर्य होने लगा। सेठ के परिणामों की परीक्षा करने के लिए देवताओं ने मुनि की दृष्टि बाँध दी

जिससे मुनि अपने पात्र को देख नहीं सकते थे। इस कारण सेठ का वहराया हुआ घी पात्र भर जाने से बाहर जाने लगा। फिर भी सेठ घी डालता ही रहा। परिणामों की उच्चता के कारण वह यही समझता रहा कि मेरा दिया हुआ घी तो पात्र में ही आता है। सेठ के दृढ़ परिणामों को देखकर देवों ने अपनी माया समेट ली और दान का माहात्म्य बताने के लिये वसुधारा आदि पाँच द्रव्य प्रकट किये। धन्ना सार्थवाह ने भावपूर्वक दान देकर बोधिबीज-सम्यक्त्व को प्राप्त किया। भव्यत्व का परिपाक होने से वह अपार संसार समुद्र के किनारे पहुँच गया।

२-दूसरा भव—

सुखपूर्वक अपनी आयु पूर्ण करके वह उत्तर कुरुक्षेत्र में तीन पल्योपम की आयुवाला युगलिया हुआ।

३-तीसरा भव—

युगलिये का आयुष्य पूर्णकर धन्ना सेठ का जीव सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।

४-चौथा भव—

पश्चिम महाविदेह में गन्धिलावती नामका विजय है। इस विजय में गान्धार नामका देश है। उस देश की राजधानी का नाम गन्ध-समृद्धि है। इस नगरी में शतबल नामके विद्याधर राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चन्द्रकान्ता था। धन्ना सार्थवाह का जीव देव सम्बन्धी अपनी आयु पूरी करके महारानी चन्द्रकान्ता के गर्भ में उत्पन्न हुआ। गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने एक शक्तिशाली पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम महाबल रखा गया। महाबल अच्छे कलाचार्यों के समागम तथा पूर्वभव के संस्कार के सुयोग से समस्त विद्याओं में निपुण हो गया। महाराज शतबल ने अपने पुत्र की योग्यता को प्रकट करने वाले विनय आदि सद्गुणों से प्रभावित होकर उसे युवराज बना दिया।

कुछ समय के बाद विषय भोगों से विरक्त होकर महाराजा शतं-बल ने दीक्षा लेने का विचार किया और राज्याभिषेकपूर्वक समस्त राज्य अपने पुत्र महाबल को सौंपकर वे बन्धन से छुटे हुए हाथी की तरह घर से निकल पड़े व आचार्य के समीप जाकर चारित्र ग्रहण कर लिया।

पिता के दीक्षित होने पर महाराजा महाबल ने राज्य की बागडोरें सम्हाली। वे अत्यन्त न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। उनके जैसे न्यायी व प्रजावत्सल राजा को पाकर प्रजा अपने को धन्य मानने लगी।

महाराजा महाबल के चारों बुद्धि के निधान साम, दाम, दण्ड, भेद नीति के ज्ञाता चार महामन्त्री थे। इनके नाम थे स्वयंबुद्ध, संभिन्नमति, शतमति और महामति। ये चारों महाराजा के बाल मित्र व राज्य के हितचिंतक थे। उनमें स्वयंबुद्धमन्त्री सम्यग्दृष्टि था। शेष तीन मन्त्री मिथ्यादृष्टि थे। यद्यपि उनमें इस तरह मतभेद था परन्तु स्वामी का हित करने में चारों ही तत्पर थे।

एक समय महाराज महाबल अपनी राजसभा में बैठे हुए थे। चारों मन्त्री भी महाराज के साथ अपने अपने आसन पर आसीन थे। शहर के गण्य मान्य नागरिक भी सभा में उपस्थित थे। राजनर्तकी अपने मनमोहक नृत्य से महाराज व सभासदों को मन्त्रमुग्ध कर रही थी। महाराज बड़े मुग्ध होकर नर्तकी का नृत्य देख रहे थे। महाराज महाबल की इस आसक्ति को देख कर महामन्त्री स्वयंबुद्ध सोचने लगा हमारे स्वामी संसार के कार्यों में इतने अधिक निमग्न हैं कि उन्हें परलोक सम्बन्धी विचार करने का समय भी नहीं मिलता। स्वामी के इन्द्रियों पर विजय पाने की अपेक्षा इन्द्रियाँ स्वयं उन पर विजय पा रही हैं। अगर यही स्थिति रही तो महाराज महाबल का परलोक अवश्य बिगड़ जायगा। अतः राज्य और स्वामी के सच्चे हितैषी होने के नाते महाराज को इस मोह के कीचड़ से निकालना चाहिए। यह विचार कर स्वयंबुद्ध मन्त्री नम्र भाव से बोला–राजन्! जो शब्दादि विषय हैं वही संसार के कारण हैं, जो संसार के मूल

कारण हैं वे विषय हैं --इसलिए विषयाभिलाषी प्राणी प्रमादी वनकर शारीरिक और मानसिक बड़े बड़े दुःखों का अनुभव कर सदा परितप्त रहता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरे कुटुम्बी स्वजन, मेरे परिचित, मेरे हाथी घोड़े मकान आदि साधन, मेरी धन-सम्पत्ति, मेरा खान-पान, वस्त्र इस प्रकार के अनेक प्रपंचों में फँसा हुआ यह प्राणी आमरण प्रमादी वनकर कर्म बन्धन करता है मानव की विषयेच्छा अगाध समुद्र की तरह है। जिस तरह अनेक नदियों का अथाह जल मिलने पर भी समुद्र सदा अटल रहता है, उसी प्रकार अनन्त भोग-सामग्री के मिलने पर भी मानव सदा अतृप्त ही रहता है। विषयाभिलाषी मानव भवान्तर में महा दुःखी होता है। अतः हे स्वामी! विषयों से अपनी रुचि हटाकर अपने मन को धर्म-मार्ग की ओर लगाइये। कारण इस जीवन का कोई निश्चय नहीं, कभी भी मृत्यु आ सकती है। इस सत्य को न समझ कर जीवन को शाश्वत समझने वाले लोग कहा करते हैं कि धर्म की आराधना फिर कभी कर लेंगे, अभी क्या जल्दी है ? ये लोग न पहले ही धर्म की आराधना कर पाते हैं न पीछे ही। यों कहते कहते ही उनकी आयु पूरी हो जाती है और काल आकर खड़ा हो जाता है। तब अन्त समय में केवल पश्चात्ताप ही उनके हाथ रह जाता है। अतः आप इस मानव भव को सफल बनाने के लिए शाश्वत धर्म की आराधना कीजिए।

स्वयंबुद्ध मन्त्री की असमय धर्म की बातें सुनकर महाराजा महावल बोले-मन्त्रीप्रवर ! तुमने धर्माचरण की जो बात कही है वह बिना अवसर के कही है। यह अवस्था धर्माचरण की नहीं है। यह बात सुनकर मन्त्री बोला-राजन् ! धर्माचरण के लिये कोई समय का निर्धारण नहीं होता। मानव जीवन की असारता को देखते हुए प्रत्येक क्षण में धर्म का आचरण करना चाहिए। मैंने जो आपको बिना अवसर के धर्माचरण की सलाह दी है उसका कारण भी सुनिये। मैं आज नन्दनवन में गया था। वहाँ मैंने दो चारण मुनियों को एक वृक्ष

के नीचे ध्यान करते हुए देखा । मैं उनके पास गया और दर्शन कर उनके पास बैठ गया । मुनियों ने अपना ध्यान समाप्त कर मुझे उपदेश दिया । उपदेश समाप्ति के बाद मैंने उनसे आपकी आयुष्य का प्रमाण पूछा । उन्होंने आपका आयुष्य एक मास का बाकी बताया । हे स्वामी ! यही कारण है कि मै आपसे धर्माचरण करने की जल्दी कर रहा हूँ ।

स्वयबुद्ध मन्त्री से अपनी एक मास की आयु जानकर महाबल बोला—मन्त्री ! सोये हुए मुझको जगाकर तुमने बहुत अच्छा किया। किन्तु इतने अल्प समय में किस तरह धर्म की साधना करूँ ? स्वयंबुद्ध बोला—महाराज घबराइये नहीं । एक दिन का धर्माचरण भी मुक्ति दे सकता है तो स्वर्गप्राप्ति तो कितनी दूर है ।

महाबल राजा ने पुत्र को राज्य का भार सौंप दिया । दीन अनाथों को दान दिया । स्वजनों और परिजनों से क्षमा याचना की और स्थविर मुनि के पास आलोचनापूर्वक सर्व सावद्य योगों का त्याग कर अनशन ग्रहण कर लिया । यह अनशन २२ दिन तक चला । अन्त में नमस्कार मन्त्र का ध्यान करते हुए देह का त्याग किया ।

५–पाँचवाँ भव—

मानव भव का आयुष्य पूर्ण करके महाबल का जीव दूसरे देवलोक में श्रीप्रभ नामक विमान का स्वामी ललितांग नामक देव बना । उसकी प्रधान देवी का नाम स्वयंप्रभा था ।

महाराजा महाबल की मृत्यु का समाचार जानकर स्वयंबुद्ध मंत्री को वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने सिद्धाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की । शुद्ध चारित्र का पालन कर वह भी ईशान कल्प में ईशानेन्द्र का दृढ़धर्मा नामक सामानिक देव हुआ ।

ललितांगदेव अपनी मुख्य देवी स्वयंप्रभा के साथ स्वर्गीय सुखों का उपभोग करने लगा । इस प्रकार स्वयंप्रभा के साथ विहार करते

हुए ललितांग देव की आयु का बहुत बड़ा भाग बीत गया। स्वयंप्रभा देवी की आयु समाप्त हो गई। वह वहाँ से चवकर अन्य गति में उत्पन्न हुई।

'स्वयंप्रभा' की मृत्यु से ललितांगदेव को बड़ा आघात लगा। वह देवी के विरह में पागल की तरह इधर उधर घूमने लगा।

अपने पूर्व जन्म के स्वामी ललितांग को देवी के वियोग में पागल देखकर दृढ़धर्मा देव ललितांग के पास आया और अपने पूर्व जन्म का परिचय देकर बोला—स्वामी! आप महान् हैं फिर भी स्त्री के वियोग में आपकी यह स्थिति देखकर मुझे बड़ा अफसोस होता है। बुद्धिमान पुरुष स्त्रियों के पीछे पागल नहीं होते।

उत्तर में ललितांग ने कहा—बन्धुप्रवर! तुम ठीक कह रहे हो किन्तु स्वयंप्रभा मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। जब तक वह न मिलेगी तब तक मुझे एक क्षण के लिए भी चैन नहीं मिलेगा। मैं अपने प्राण को छोड़ सकता हूँ किन्तु स्वयंप्रभा का वियोग एक क्षण भी नहीं सह सकता।

ललितांगदेव की यह स्थिति देख दृढ़धर्मा देव को बड़ा दुःख हुआ। वह अवधिज्ञान से स्वयंप्रभा की उत्पत्ति के स्थल कोजान कर बोला—हे महासत्त्व! आप चिन्ता न करें। स्वयंप्रभा का जीव इस समय कहाँ है और वह पुनः आपको कैसे प्राप्त हो सकती है मैं उपाय बताता हूँ।

धातकीखण्ड के विदेह क्षेत्र में नन्दी नाम का एक छोटा सा गांव है। वहाँ नागिल नामका एक अत्यन्त दरिद्र गृहस्थ रहता है उसकी दरिद्रता में वृद्धि करनेवाली नागश्री नाम की स्त्री है। उसने एक के बाद एक ऐसी छह कुरूप कन्याओं को जन्म दिया। पहले ही वह दारिद्र्य के दुःख से पीडित था, इन कन्याओं के जन्म से उसका दुःख असीमित हो गया। इस बीच उसकी पत्नी ने पुनः गर्भ-

धारण किया। पत्नी को गर्भवती देख उसने सोचा–इस वार भी कन्या पैदा हुई तो मै इस दरिद्र कुटुम्ब का त्याग कर परदेश चला जाऊँगा। पत्नी ने सातवीं वार भी कन्या को ही जन्म दिया। जब उसने पुनः कन्या जन्म की बात सुनी तो वह चुपचाप कुटुम्ब को छोड़कर चला गया।

पति के वियोग और दारिद्रय दुःख से पीडित नागिल स्त्री ने सातवीं कन्या का नामकरण भी नहीं किया। इसलिये लोग उस कन्या को निर्नामिका कहने लगे। नागश्री ने उसका पालनपोषन भी नहीं किया। वह वनलता की तरह अपने आप बढ़ने लगी। अत्यन्त अभागी और माता को उद्वेग करने वाली वे कन्याएँ दूसरों के घरों में काम करके अपना निर्वाह करने लगीं।

एक समय गाँव में उत्सव के अवसर पर धनिक बालकों के हाथ में लड्डू देखकर निर्नामिका ने अपनी माँ से लड्डू की मांग की। माँ ने क्रोधित होकर कहा–दुष्टे! लड्डू कहाँ से लाऊँ? यहाँ तो सूखी रोटी का भी पता नहीं है। अगर तुझे लड्डू ही खाने हैं तो तू अंबरतिलक पर्वत पर जा और वहाँ से काष्ठ लाकर वेच दे। उससे जो पैसा आयेगा उससे लड्डू लेकर खा लेना।

हृदय में दाह पैदा करनेवाली यह बात सुनकर रोती हुई निर्नामिका अम्बरतिलक पर्वत पर पहुँची। वहाँ युगन्धर नाम के केवलज्ञानी मुनि उपदेश दे रहे थे। निर्नामिका भी वहाँ पहुँची और उनका उपदेश सुनने लगी। मुनियों का उपदेश सुनकर उसने गृहस्थ के बारह व्रत ग्रहण कर लिये। उसने युगन्धर मुनि से अपनी आयु के थोड़े दिन जानकर अनशन ग्रहण कर लिया है। वह इस समय अम्बरतिलक पर्वत पर अनशन कर रही है। तुम उसके पास जाओ और अपना दिव्य रूप दिखा कर अपनी देवी बनने के लिये कहो।

दृढ़धर्मादेव के मुख से यह बात सुनकर ललितांगदेव अम्बरतिलक पर्वत पर अनशन कर रही निर्नामिका के पास पहुँचा और अपना दिव्य

वैभव दिखाकर बोला–निर्नामिके! तुम मृत्यु के समय मेरा ध्यान करना ताकि तुम मर कर मेरी ही देवी बनो। ललितांगदेव की यह बात सुनकर पूर्व जन्म के स्नेह वश उसने वैसा ही किया और वह मर कर ललितांग देव की स्वयंप्रभा नाम की देवी बनी।

ललितांगदेव ने स्वयंप्रभा के साथ भोगविलास करते हुए अपनी आयु के शेष दिन बिता दिये। उसकी मृत्यु नजदीक आ गई जिससे उसके वक्ष-स्थल पर पड़ी हुई पुष्पमाला भी म्लान हो गई। उसकी कान्ति मंद पड़ गई। मुख पर दीनता आगई। अन्ततः उसकी देव–आयु जलते हुए कपूर की तरह समाप्त होगई।

ललितांगदेव के स्वर्ग से च्युत हो जाने पर स्वयंप्रभादेवी की वही दशा हुई जो चकवे के विछोह में चकवी की होती है। वह रातदिन पति के वियोग में चुपचाप बैठी रहती। अन्ततः उसने अपने पति का ध्यान करते हुए अपनी देव–आयु समाप्त की।

६–छठा भव—

ईशान देवलोक का आयुष्य समाप्त कर ललितांग देव का जीव महाविदेह क्षेत्र के पुष्कलावती विजय में स्थित लोहार्गल नगर के राजा स्वर्णजंघ की रानी लक्ष्मीदेवी की कुक्षि से पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम वज्रजंघ रखा गया। स्वयंप्रभा देवी का जीव इसी पुष्कलावती विजय में स्थित पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रसेन की पुत्रीरूप से उत्पन्न हुआ। इसका नाम श्रीमती रखा गया।

श्रीमती युवा हुई। एक समय वह अपने महल की छत पर बैठी थी। उसी समय उस ओर से कुछ देव विमान निकले। उन्हें देख कर उसे जातिस्मरण ज्ञान पैदा हो गया। उसे अपने पूर्वभव के पति ललितांग देव का स्मरण हो आया। उसने मन में दृढ़ संकल्प कर यह प्रण कर लिया कि जबतक मुझे अपने पूर्व भव का पति न मिलेगा तब तक मैं किसी से न बोलूँगी। अतः उसने मौन धारण कर लिया।

श्रीमती की पण्डिता नामकी सखी थी। वह बहुत चतुर थी। उसने इसका कारण जान लिया। श्रीमती की सहायता से उसने दूसरे देवलोक ईशानकल्प का तथा ललितांग देव के विमान का एक चित्र बनाया किन्तु उसमें त्रुटियाँ रहने दी। उस चित्रपट को राजपथ पर टाग दिया। संयोगवश उस समय कुमार वज्रजंघ उधर से निकला। राजपथ पर टंगे हुए उस चित्रपट को देख कर उसे भी जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसनें चित्रपट में रही हुई कमी दूर कर दी। इस बात का पता श्रीमती तथा उसके पिता वज्रसेन को लगा। इससे उसको बहुत प्रसन्नता हुई। वज्रसेन ने श्रीमती का विवाह वज्रजंघ के साथ कर दिया।

बहुतकाल तक सांसारिक भोग भोगने के बाद वज्रजंघ और श्रीमती दोनों को संसार से वैराग्य होगया। 'प्रातःकाल पुत्र को राज्य देकर दीक्षा अगीकार कर लेंगे' ऐसा विचार कर राजा और रानी सुखपूर्वक सो गये।

उसी दिन राजपुत्र ने किसी शस्त्र अथवा विषप्रयोग द्वारा राजा को मार कर राज्य प्राप्त कर लेने का विचार किया। राजदम्पति को सोये हुए जानकर राजपुत्र ने विषमिश्रित धूआँ छोड़ दिया जिससे राजा और रानी दोनों एक साथ मर गये।

७-सातवाँ भव—

परिणामों की सरलता के कारण राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती के जीव उत्तरकुरु क्षेत्र में तीन पल्योपम की आयुवाले युगलिये हुए।

८-आठवाँ भव—

युगलिये का आयुष्य समाप्त कर दोनों पतिपत्नी सौधर्म देवलोक में देव हुए।

९-नौवाँ भव—

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नामका रमणीय नगर था। उस नगर में सुविधि नामका एक वैद्य रहता था। देव-

लोक से चवकर वज्रजंघ का जीव सुविधि वैद्य के यहाँ पुत्र रूप से जन्मा। उसका नाम जीवानन्द रखा गया। उसी समय के लगभग उस नगर में अन्य चार बालकों ने भी जन्म लिया। उनमें ईशान-चन्द्र राजा की कनकावती रानी की कुक्षि से महीधर नामक पुत्र हुआ। दूसरा सुनासीर नामक मंत्री की लक्ष्मी नामक पत्नी से 'सुबुद्धि' नामक पुत्र हुआ। तीसरा सागरदत्त सार्थवाह की अभयमती स्त्री से पूर्ण-भद्र नामक बालक हुआ। चौथा धन श्रेष्ठी की शीलवती स्त्री के उदर से गुणाकर नामक पुत्र हुआ। सौधर्म देवलोक से च्युत होकर श्रीमती के जीव ने इसी क्षितिप्रतिष्ठित नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी ईश्वरदत्त के घर जन्म लिया। उसका नाम केशव रखा गया।

ये छहों बालक सुखपूर्वक बढ़ते हुए बाल्यकाल से ही परस्पर मित्र रूप में खेलकूद के साथ रहने लगे। इनकी मैत्री प्रगाढ़ थी। उनमें जीवानंद आयुर्वेद विद्या में निष्णात हुआ। वह अपने पिता की तरह अल्प समय में ही नगर का सुप्रसिद्ध वैद्य बन गया। नगर जन उसका बड़ा मान करते थे। अन्य पाँच मित्र भी युवा हुए और अपने अपने पिता के कार्य में हाथ बटाने लगे। इन छहों मित्रों की वय के साथ मित्रता भी बढ़ रही थी।

एक दिन वे पाँचों मित्र जीवानन्द वैद्य के यहाँ बैठे थे। उसी समय एक तपस्वी मुनि उधर से निकले। उनके चेहरे से ऐसा प्रतीत होता था कि उनके शरीर में कोई व्याधि है। अपने कार्य में व्यस्त होने के कारण जीवानन्द वैद्य का ध्यान उधर न गया। महीधर राज-कुमार ने उससे कहा—मित्र ! तुम बड़े स्वार्थी मालूम पड़ते हो। जहाँ निस्वार्थ सेवा का अवसर होता है उधर तुम ध्यान ही नहीं देते।

जीवानन्द ने कहा—मित्र ! आपका कथन यथार्थ है, किन्तु मुझे अब बताइये कि मेरे योग्य ऐसी कौनसी सेवा है !

राजकुमार ने जबाब दिया—वैद्य ! इस तपस्वी मुनिराज के शरीर में कोई रोग प्रतीत होता है। इसे मिटाकर महान् धर्म-लाभ लीजिये।

जीवानंद बहुत चतुर वैद्य था। उसने मुनि के शरीर को देखकर जान लिया कि कुपथ्य सेवन सेयह रोग हुआ है। जीवानन्द ने अपने मित्रों से कहा कि इसको मिटाने के लिये लक्षपाक तेल तो मेरे पास है किन्तु गोशीर्ष चन्दन और रत्नकंबल ये दो वस्तुएँ मेरे पास नहीं हैं। यदि ये दोनों वस्तुएँ आप ले आवें तो मुनि की चिकित्सा हो सकती है और इनका शरीर पूर्ण स्वस्थ बन सकता है।

जीवानन्द का उत्तर सुनकर पाँचों मित्र बाजार गये। जिस व्यापारी के पास ये दोनों चीजें मिलती थीं उसके पास जाकर इनकी कीमत पूछी। व्यापारी ने कहा—"इन दोनों वस्तुओं का मूल्य दो लाख सुवर्ण-मुद्रा है। मूल्य चुकाकर आप उन्हें ले जा सकते हैं, किन्तु प्रथम यह बताइयेगा कि आप लोग इतनी कीमत की वस्तु ले जाकर क्या करेंगे" उन्होंने कहा—एक मुनि की चिकित्सा के लिये इन की आवश्यकता है। युवकों की इस अपूर्व धर्म-भावना और दयालुता को देखकर रत्नकंवल का व्यापारी बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बोला—'युवको! तुम्हारी उठती जवानी में इस तरह की धार्मिक भावना को देखकर मै बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैं गोशीर्ष चन्दन और रत्नकंबल विना मूल्य के ही देता हूँ। आप इन चीजों से अवश्य ही मुनि की चिकित्सा करें।" वे दोनों चीजें लेकर रवाना हुए। मुनिराज के विषय में चिन्तन करते-करते वृद्ध को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने घर-बार त्याग कर दीक्षा ले ली और कर्मों का अन्तकर मोक्ष प्राप्त किया।

पाँचों मित्र वस्तुएँ लेकर जीवानन्द वैद्य के पास आये। वैद्य ने औषधोपचार कर मुनि के शरीर में से कीटाणुओं को निकाला और गोशीर्ष चन्दन का लेप कर उन्हें पूर्ण निरोग बना दिया।

कुछ काल के बाद छहों मित्रों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने एक साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। अनेक प्रकार की तपश्चर्या करते हुए वे संयम की साधना करने लगे। अन्तिम समय में अनशन कर समाधिपूर्वक देह का त्याग किया और मर कर वे अच्युत देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव बने।

दसवाँ, ग्यारहवाँ एवं बारहवाँ भव—

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह स्थित पुष्कलावती विजय में लवण समुद्र के पास पुण्डरीकिणी नाम की नगरी थी। वहाँ वज्रसेन नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। अच्युत देवलोक से जीवानन्द वैद्य का जीव चवकर महारानी धारिणी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देखकर महारानी जागृत हुई। उसने पति के पास जाकर स्वप्नों का फल पूछा। उत्तर में महाराज वज्रसेन ने कहा "प्रिये! तुम चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दोगी।" महारानी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह गर्भ का विधिवत् पालन करने लगी।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम वज्रनाभ रक्खा गया। जीवानंद के शेष चार मित्र देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर रानी धारिणी की कुक्षि से उत्पन्न हुए। वे वज्रनाभ के छोटे भाई हुए। उनके क्रमशः नाम ये थे–बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ।

इनके सिवाय केशव का जीव 'सुयशा' के नाम से दूसरे राजा का पुत्र हुआ। यह सुयशा बाल्यकाल से ही वज्रनाभ के यहाँ रहने लगा। ये छहों राजपुत्र साथ ही में रहते थे। पूर्व जन्म के स्नेह-वश इन में अगाध मित्रता थी। इन छहों ने कलाचार्य के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की और राजनीति में निपुण बने।

महाराज वज्रसेन तीर्थंकर थे इसलिये लोकान्तिक देवों ने उनसे तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की । समय आनेपर उन्होंने वर्षी-दान देकर प्रव्रज्या ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थ प्रवर्तन किया ।

पिता के दीक्षित होने पर राज्य को वज्रनाभ ने सम्हाला । इसकी आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति हुई । चक्ररत्न की सहायता से वज्रनाभ ने भरत के छहों खंड पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया । वह चौदह रत्न और नौ निधि का स्वामी बना । वज्रनाभ के चक्रवर्ती बनने के बाद अन्य चार राजकुमार मांडलिक राजा बने । सुयशा चक्रवर्ती का सारथी बना ।

कुछ समय के बाद चक्रवर्ती वज्रनाभ को तीर्थंकर वज्रसेन का उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया । उन्होंने अपने पुत्र को राज्य सौंपकर भगवान वज्रसेन के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की । साथ में बाहु, सुबाहु, पीठ, महापीठ और सुयशा ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। ये छहों दीक्षा ग्रहण कर कठोर तप करने लगे । कठोर तपस्या के कारण वज्रनाभ मुनि को अनेक लब्धियों की प्राप्ति हुई । उन्हें अनेक चमत्कारपूर्ण लब्धियाँ प्राप्त होने पर भी वे उनका प्रयोग नहीं करते थे। वे निरन्तर संयम के गुणों की उत्तरोत्तर वृद्धि में ही लगे रहते थे ।

मुनि वज्रनाभ ने अरिहंत, सिद्ध, आचार्य स्थविर, बहुश्रुत, तपस्वी और प्रवचन का गुणानुवाद करके एवं इनपर प्रगाढ़ भक्ति-भाव रखकर अपने परिणामों में विशिष्ट उज्ज्वलता प्राप्त की । आप स्वयं निरन्तर ज्ञानोपार्जन में और जिज्ञासु जनों को ज्ञानदान में संलग्न रहते, विशुद्ध श्रद्धा का पालन करते, गुणवृद्धों के प्रति विनययुक्त व्यवहार करते, प्रातःसायं उभयकाल विधिपूर्वक षडावश्यक क्रियाओं का अनुष्ठान करते, विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते, परिषह एवं उपसर्ग आने पर भी धर्म में अटल रहते, ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा में

लेश मात्र भी दोष न लगने देते एवं निदान हीन तपश्चरण करते, गुरु, ग्लान तपस्वी और नवदीक्षित मुनि की ग्लानि रहित सेवा करने में सकोच नहीं करते । शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य की दिनोदिन वृद्धि की, प्रवचन की विनय भक्ति की और जिन शासन की महिमा का विस्तार किया । ये सब स्थान तीर्थङ्कर गोत्र को उपार्जन करने के साधन हैं । इन स्थानों की उत्कृष्ट आराधना कर वज्र-नाभ मुनि ने तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन किया ।

बाहुमुनि को वृद्ध, रोगी और तपस्वी साधुओं की सेवा में अनुपम आनन्द का अनुभव होता था । आहार, पानी, औषिध और हितकारी निर्दोष पथ्य पदार्थ लाकर मुनियों को देते थे । निस्वार्थ भाव से सेवा करने से उनको भी महान प्रकृति का बंध हुआ । उन्होंने चक्रवर्ती ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी होने योग्य पुण्यकर्म का बन्धन किया ।

सुबाहुमुनि भी अत्यन्त सेवाभावी थे । वे वृद्ध, ग्लान, तपस्वी रोगी एवं बाल साधुओं के लिए विश्राम-स्थल थे । अपने शरीर की परवाह किये बिना वे निरन्तर साधुसेवा में निमग्न रहते थे । उन्होंने वृद्ध तपस्वी रोगी आदि असमर्थ मुनियों की सेवा में अपने शरीर को अर्पण कर दिया था । इस विशुद्ध और निःस्पृह सेवावृत्ति के फल-स्वरूप उन्होंने उच्चतर पुण्यप्रवृत्ति का बन्ध किया । चक्रवर्ती अतिशय बलवान होते हैं किन्तु सुबाहु मुनि ने चक्रवर्ती से भी अधिक बल-वंत होने योग्य पुण्यमय प्रकृति का उपार्जन किया ।

पीठ और महापीठ मुनि भी निरन्तर ज्ञान-ध्यान में तल्लीन रहते थे । किन्तु गुरु के मुख से बाहु-सुबाहु मुनि की प्रशंसा सुन-कर ईर्षा करते थे । इन मुनियों की प्रशंसा सुनकर उनके मन में मलिन-मात्सर्य भाव उत्पन्न होता था । उन्होंने प्रकट में गुरु पर विश्वास और अन्तरङ्ग में अविश्वास रक्खा । इस प्रकार वे कपट का

भी पोषण करते रहें । इस तरह कपट करने से पीठ और महापीठ को स्त्री वेद का वन्ध पड़ गया। स्त्री वेद का बन्ध करने के कारण पीठ मुनि का जीव ब्राह्मी और महापीठ का जीव सुन्दरी के रूप में जन्म लेगा । वाहुमुनि का जीव भरत चक्रवर्ती के रूप में, एवं सुबाहु-मुनि वाहुवलि के साथ में जन्म ग्रहण करेंगे । सारथी सुयशा मुनि का जीव भगवान ऋषभ को ईक्षुरस का दान देनेवाले श्रेयांसकुमार के रूप में जन्म ग्रहण करेगा ।

इन छहों मुनिराजों ने निरतिचारपूर्वक चौदह लाख वर्ष तक चारित्र का पालन किया। वज्रनाभ मुनि की कुल ८६ लाख पूर्व की आयु थी । जिनमें तीसलाख पूर्व कुमारावस्था में सोलह लाख पूर्व माडलिक अवस्था में २४ लाख पूर्व चक्रवर्ती पद एवं २४ लाख पूर्व श्रामण्य अवस्था में, व्यतीत किये ।

अपनी अन्तिम अवस्था में इन छहों मुनिराजों नें पादोपगमन अनशन ग्रहण किया और समाधिपूर्वक देह को त्याग कर मुनिराज तैंतीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयुवाले सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बने।

कालचक्र—

काल की उपमा चक्र से दी जाती है । जैसे गाड़ी का चक्र (पहिया) घूमा करता है वैसे ही काल भी सदा घूमता रहता है । वह कभी भी एक सा नहीं रहता । काल का स्वभाव ही परिवर्तन-शील है । उत्कर्ष और अपकर्ष ये दोनों सापेक्ष-हैं । जहाँ उन्नति है वहाँ अवनति भी है और जहाँ अवनति है वहाँ उन्नति भी है । जो उठता है वह गिरता भी है और जो गिरता है वह उठता भी है । घूमते समय-चक्र का जो भाग ऊँचा उठता है, वह नीचे भी जाता है और जो भाग नीचे जाता है वह ऊपर भी आता है । यही संसार की दशा है । एक बार वह उन्नति से अवनति की ओर जाता है तो दूसरी बार अवनति से उन्नति की ओर जाता है ।

जिस काल में यह विश्व अवनति से उन्नति की ओर जाता है उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इस काल में संहनन संस्थान, आयु, अवगाहना, उत्थान, बल, वीर्य, कर्म, पुरुषाकार और पराक्रम बढ़ते जाते हैं अतः इस काल को उत्सर्पिणी काल कहते हैं तथा जिसकाल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः हीन होते जायँ, आयु और अवगाहना घटते जायँ तथा उत्थान कर्म, वीर्य, बल, पुरुषाकार, और पराक्रम का ह्रास होता जाय वह अवसर्पिणी काल है जैसे कृष्ण पक्ष के बाद शुक्ल पक्ष और शुक्ल पक्ष के बाद कृष्ण पक्ष आता है उसी प्रकार उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी आता है।

इन दोनों कालों में से प्रत्येक काल के छह–छह भेद हैं–दुषमदुषमा, दुषमा, दुषमसुषमा, सुषमदुषमा, सुषमा और सुषमसुषमा ये छह भेद उत्सर्पिणी काल के हैं, और सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुषमा, दुषमसुषमा, दुषमा, और दुषमदुषमा ये छह भेद अवसर्पिणी काल के हैं। अवसर्पिणी काल का सुषमा नामक आरा चार कोटाकोटि सागरोपम का, दूसरे आरे का परिमाण तीन कोटाकोटि सागर, तीसरे आरे का दो कोटाकोटि सागर, चौथे आरे का परिमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटकोटि सागर, पाँचवे दुषमा और छठे दुषमदुषमा काल का परिमाण इक्कीस हजार वर्ष है। इस तरह दस कोटाकोटि सागर का अवसर्पिणी काल और दस कोटाकोटि सागर का उत्सर्पिणी काल होता है। दोनों मिलकर एक कल्पकाल होता है जो बीस कोटाकोटि सागर का है। इसे कालचक्र कहते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति—

वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे आरे के तीसरे भाग की समाप्ति में जब पल्योपम का आठवाँ भाग शेष रह गया, तब लोक व्यवस्था

करनेवाले कुलकरों का जन्म होता है। जैन शास्त्रों में ७,१४, अथवा १५ कुलकरों के नाम मिलते हैं। जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति में उनके नाम इस प्रकार हैं—१ सुमति, २ प्रतिश्रुति, ३ सीमंकर, ४ सीमंधर, ५ क्षेमंकर, ६ क्षेमंधर. ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान्, ९ यशस्वी, १० अभिचन्द्र, ११ चन्द्राभ, १२ प्रसेनजित, १३ मरुदेव, १४ नाभि, १५ ऋषभ।

समवायाग और आवश्यक निर्युक्ति में सात कुलकरों के नाम आते हैं।

१ विमलवाहन, २ चक्षुष्मान्, ३ यशस्वी, ४ अभिचन्द्र, ५ प्रश्रेणी, ६ मरुदेव, और ७ नाभि। ये सात कुलकर मनु भी कहलाते हैं।

उस समय दस प्रकार के कल्पवृक्ष कालदोष के कारण कम हो गये। यह देखकर युगलिए अपने अपने वृक्षों पर ममत्व करने लगे। यदि कोई युगलिया दूसरे के कल्पवृक्ष से फल ले लेता तो झगड़ा खड़ा हो जाता। इस तरह कई जगह झगड़े खड़े होने पर युगलियों ने सोचा कोई पुरुष ऐसा होना चाहिए जो सब के कल्पवृक्षों की मर्यादा बाध दे। वे किसी ऐसे व्यक्ति को खोज ही रहे थे कि उनमें से एक युगल स्त्री–पुरुष को वन के सफेद व चार दांत वाले हाथी ने अपने आप सूँड़ से उठाकर अपने ऊपर बैठा लिया। दूसरे युगलियों ने समझा यही व्यक्ति हम लोगों में श्रेष्ठ है और न्याय करने लायक है। सबने उसको राजा मान लिया। उसका नाम विमलवाहन रक्खा। विमलवाहन की पत्नी का नाम चन्द्रयशा था। विमलवाहन के द्वारा बनाई गई मर्यादा का सब युगलिये पालन करने लगे। इसने हाकार नीति का प्रचलन किया। 'हाँ' तुमने यह क्या किया? इतना कहना ही उस समय के अपराधी के लिए प्राणदण्ड के बराबर था। इस शब्द के कहने मात्र से ही अपराधी भविष्य के लिये अपराध करना छोड़ देता था।

विमलवाहन की जब आयु छः महीने शेष थी तब उसकी पत्नी चन्द्रयशा ने एक युगल सन्तान को जन्म दिया। इस पुरुष का नाम चक्षुष्मान् और स्त्री का नाम चन्द्रकाता रखा। विमलवाहन की मृत्यु के बाद द्वितीय कुलकर चक्षुष्मान् बने। इन्होंने अपने पिता की हाकार नीति से ही युगलियों पर अनुशासन किया। चक्षुष्मान् की पत्नी चन्द्रकान्ता ने भी यशस्वी और सुरूपा नाम के युगल पुत्र-पुत्री को जन्म दिया। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद यशस्वी कुलकर बने। सुरूपा पत्नी बनी। इसने 'हाकार और माकार' नामक दण्ड-नीति का प्रचलन किया।

यशस्वी कुलकर की पत्नी ने अभिचन्द्र नामक बालक और प्रतिरूपा नामक बालिका को जन्म दिया। पिता की मृत्यु के बाद अभिचन्द्र चौथा कुलकर बना। इसने भी हाकार और माकार नीति का प्रचलन किया

अभिचन्द्र की पत्नी प्रतिरूपा ने भी एक युगल को जन्म दिया प्रसेनजित् व चक्षुःकाता इनका नाम रक्खा।

पिता की मृत्यु के बाद प्रसेनजित् पाँचवाँ कुलकर बना। इसने हाकार माकार व धिक्कार नीति से युगलियों पर अनुशासन किया। आयु के कुछ मास पहले प्रसेनजित् की पत्नी चक्षुःकाता ने युगल सन्तान को जन्म दिया। इनका नाम मरुदेव और श्रीकांता रक्खा। पिता की मृत्यु के बाद मरुदेव कुलकर बना। इसने अपने पिता की तरह तीनों नीतियों का प्रचलन किया। मृत्यु के कुछ मास पहले उन्होंने एक युगल सन्तान को जन्म दिया। उनका नाम नाभि और मरुदेवी रक्खा। नाभि सवा पांचसौ धनुष ऊंचे थे। इनकी सुवर्ण जैसी काति थी। मरुदेवी का वर्ण प्रियंगुलता की तरह श्याम था। माता-पिता की मृत्यु के बाद नाभि कुलकर बने। मरुदेवी नाभि कुलकर की पत्नी बनी। पिता की तरह इन्होंने हाकार, माकार और धिक्कार नीतियों से युगलियों पर अनुशासन किया।

तेरहवाँ भव

भगवान ऋषभ देव का जन्म

गत चौवीसी के २४ वें तीर्थंकर संप्रतिनाथ के निर्वाण के बाद अठारह कोटाकोटी सागरोपम के बीतने पर इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के चौरासी लक्ष पूर्व और नवासी पक्ष अर्थात् तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे तब आषाढ़ महीने की कृष्ण चतुर्दशी के दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में चन्द्र का योग होते ही वज्रनाभ का जीव तैंतीस सागरोपम आयु भोगकर सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर जिस तरह मानस सरोवर से गंगातट में हंस उतरता है, उसी तरह नाभि कुलकर की स्त्री–मरुदेवी के पेट में अवतीर्ण हुआ। भगवान के गर्भ में आते ही तीनों लोक प्रकाश से आलोकित हो उठे और लोग सुख और शान्ति का अनुभव करने लगे। उसी रात्रि में महादेवी मरुदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे। यथा–वृषभ, हाथी, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, महाध्वज, कलश, पद्मसरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि, और निर्धूम अग्नि। इन स्वप्नों को देखकर मरुदेवी तत्काल जाग उठी। अपने देखे हुए स्वप्नों का चिन्तन कर हर्षित होती हुई रानी मरुदेवी अपने पति महाराजा नाभि के पास गई और उन्हें अपने देखे हुए महास्वप्न सुनाये। स्वप्नों को सुनकर महाराजा नाभि को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—"हे भद्रे! इन महास्वप्नों के प्रभाव से तुम महान् भाग्यशाली कुलकर को जन्म दोगी।" पति के मुखसे स्वप्न का फल सुनकर मरुदेवी अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान के च्यवन और मरुदेवी के स्वप्न दर्शन के फल स्वरूप इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। इन्द्रों ने अवधिज्ञान से भगवान का मरुदेवी के गर्भ में उत्पन्न होना जान लिया। वे मरुदेवी के पास आकर कहने लगे –"हे स्वामिनी! आपने जो चौदह स्वप्न देखे हैं वे इस बात को सूचित करते हैं कि आपका पुत्र चौदह भुवन का स्वामी होगा और सारे संसार में धर्मचक्र का प्रवर्तन करेगा।' इस तरह स्वप्नार्थ कहकर और मरुदेवी माता को प्रणाम करके, सब इन्द्र अपने अपने स्थान चले गये। इन्द्रों के मुख

से स्वप्न का फल सुनकर मरुदेवी बड़ी खुश हुई और यत्नपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी।

इस तरह नौमास और साढ़े आठ दिन बीतने पर चैत्र मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की अर्द्ध रात्रि में उत्तराषाढा नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर महारानी मरुदेवी ने त्रिलोकपूज्य पुत्र को जन्म दिया। साथ में एक कन्या का भी जन्म हुआ। पुत्र का जन्म होते ही आकाश निर्मल हो गया। दिशाएँ स्वच्छ और दिव्य प्रकाश से आलोकित हो उठीं। शीतल मन्द-मन्द सुगन्धित वायु बहने लगी। बादल सुगन्धित जल बरसाने लगे। उस समय क्षणमात्र के लिए नरक-वासियों को भी ऐसा अपूर्व सुख और आनन्द का अनुभव हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

भगवान के जन्म से अधोलोकवासिनी आठ दिशाकुमारियों के आसन चलायमान हुए। वे तत्काल अपने विशाल परिवार के साथ भगवान के जन्मस्थान पर आई और बालतीर्थंकर तथा उसकी माता को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना की और अपना परिचय देती हुई बोली—

हे जगज्जननी! हे विश्वोत्तम लोक-दीपक महापुरुष को जन्म देने वाली महामाता! हम अधोलोकवासिनी आठ दिशाकुमारियाँ भगवान का जन्मोत्सव करने के लिए यहाँ आई हैं। आप हमें देख कर भयभीत न होवें। इसके बाद उन अधोलोकवासिनी दिशाकुमारि-काओं ने संवर्तक वायु चलाकर आसपास एक योजन भूमि साफ की और एक विशाल सूतिकागृह का निर्माण किया।

इसके बाद मेरु पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारिकाएँ आई। उन्होंने सुगन्धित जल वर्षाकर उस जगह की धूल शान्त की।

मेरु पर्वतपर रहनेवाली ऊर्ध्वलोकवासिनी आठ दिशाकुमारियाँ भी आई। उन्होंने पाँच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि की। इसी प्रकार

रुचक पर्वत की पूर्व दिशा में रहनेवाली आठ दिशाकुमारिकाएँ आईं और अपने हाथ में दर्पण लेकर भगवान की माता के पास गीत गाती हुई खड़ी हुईं। दक्षिण दिशा की आठ दिशा कुमारियाँ हाथ में कलश लेकर खड़ी हुईं। पश्चिम दिशा की रुचक पर्वतवासिनी आठ दिशा कुमारियाँ हाथ में पंखा लेकर खड़ी रहीं। उत्तर रुचकस्थ आठ दिशाकुमारियाँ हाथ में चँवर लिये खड़ी रहीं। रुचक पर्वत की विदिशा में रहनेवाली चार दिशा कुमारियों ने हाथ में दीपक लिया। तद-नन्तर रुचक पर्वत के मध्य में रहने वाली चार दिशाकुमारियों ने आकर नाभिनाल का छेदन कर उसे भूमि में गाड़ा। उस गड्ढे को रत्न से भर दिया।

इसके बाद उन दिशाकुमारियों ने जन्म-गृह के पूर्व उत्तर दक्षिण में तीन कदलीगृह बनाये। उनमें देव विमान जैसे चौक व रत्नमय सिंहासन की रचना की। फिर उन देवियों में से एक देवी ने तीर्थं-कर को अपने हाथ में लिया। दूसरी देवी तीर्थंकर की माता का हाथ पकड़ कर उन्हें कदलीगृह में ले आई। वहाँ माता और पुत्र को सिंहासन पर बिठाया। माता को लक्षपाक तेल से मालिस कर उबटन लगाया और सुगन्धित जल से स्नान कराया, अंग पोंछा और उन्हें दिव्य वस्त्र पहनाये। फिर बाल तीर्थंकर के साथ माता को उत्तर दिशा के मण्डप में ले आई। वहाँ अग्नि जलाकर हवन किया। हवन की आग से जो भस्म तैयार हुई उसकी उन्होंने रक्षा-पोटलियाँ बनाकर दोनों के हाथों में बाँध दीं। इसके बाद 'आप पर्वत की जैसी आयुवाले होओ' प्रभु के कान में ऐसा कहकर पत्थर के गोलों को आपस में रगड़कर टिक-टिक शब्द किया। इसके बाद प्रभु और उनकी माता को सूतिकागृह में लाकर सुलाया और उनके पास खड़ी रहकर गीत गाने लगीं।

उस समय सब इन्द्रों के आसन कम्पित हुए और उन्होंने अवधि-ज्ञान का उपयोग किया। अवधिज्ञान में तीर्थंकर का जन्म जानकर

उन्होंने उस दिशा की ओर सात आठ कदम आगे बढ़कर तीर्थंकर देव को नमस्कार किया और भगवान की '**णमोत्थुणं अरिहंताणं** ...'इस पाठ से स्तुति की ।

इसके बाद घण्टा की महान आवाज से तथा सेनापतियों द्वारा की गई घोषणा से देवता एकत्रित हो गये और भगवान का जन्मोत्सव करने के लिये उत्सुक हो अपने-अपने इन्द्र के साथ चलने को तैयार हो गये । उन्होंने तत्काल आभियोगिक देवताओं से अपने अपने असंभाव्य और अप्रतिम विमान तैयार करवाये और एकत्रित हुए देवताओं तथा अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने दिव्य यान-विमान में बैठकर भगवान के जन्मोत्सव के लिये रवाना हुए । उन इन्द्रों में वैमानिकों के १० भवनपतियों के २०, व्यंतरों के ३२, और ज्योतिषियों के २ इस प्रकार ६४ इन्द्र मिलकर जन्मोत्सव मनाने के लिये मेरु पर्वत पर एकत्रित हुए। इन इन्द्रों ने भगवान का जन्माभिषेक किया । उसके के बाद शक्रेन्द्र ने अपने पाँच रूप बनाकर एक रूप में भगबानको अपनी गोद में लिया दूसरे रूप में छत्र, चमर, और वज्र लेकर आकाश-मार्ग से चलकर भगवान के जन्मस्थान पर आया और भगवान के पूर्व स्थापित विम्ब को हटाकर भगवान को माता के पास सुलाया और माता की अवस्वापिनी निद्रा दूर की । शक्रेन्द्र ने भगवान के सिरहाने वस्त्र युगल और कुण्डल रक्खे तथा भगवान की दृष्टि में आवे वैसा रत्नमय गेंद लटकाया ।

इसके बाद कुबेर को आज्ञा देकर ३२ करोड सुवर्ण, रत्न, चान्दी एवं ३२ नन्दासन और भद्रासन तथा अन्य अनेक दिव्य सामग्री से भगवान का घर भरवा दिया । इसके बाद आज्ञाकारी देवों से शक्रेन्द्र ने यह घोषणा करवाई कि यदि किसी भी देव ने भगवान का या भगवान की माता का अनिष्ट चिन्तन किया तो उसे सौधर्मेन्द्र कठोर दण्ड देंगे उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे ।

इस प्रकार की घोषणा के बाद इन्द्र ने भगवान के अंगूठे में अमृत भर दिया । तीर्थङ्कर माता का स्तनपान नहीं करते अतः वे अमृतमय

अगूठे को चूसकर ही अपनी क्षुधा शान्त करते हैं । इसके बाद धात्री कर्म करने के लिये इन्द्र ने बालक की सेवा में पाँच देवियों को नियुक्त किया । इसके बाद सभीने नन्दीश्वर द्वीप पर जाकर अठाई महोत्सव मनाया और वे अपने अपने स्थान पर चले गये।

प्रातःकाल होने पर मरुदेवी जागृत हुई । उसने प्रभु का जन्म और देवागमन की बात नाभिराजा से कही । सारी घटना सुनकर नाभिराजा बड़े आश्चर्यचकित हुए । उन्होंने बालक के जन्मपर बड़ी खुशियाँ मनाईं ।

भगवान का जन्मोत्सव किया । बालक के जाँघ पर ऋषभ का चिह्न तथा मरुदेवी ने पहले ऋषभ का स्वप्न देखा था इसलिए माता-पिता ने शुभ दिवस मे प्रभु का नाम **ऋषभ** रक्खा । भगवान के साथ जिस कन्या का जन्म हुआ उसका नाम सुमंगला रक्खा गया । दोनों बालक द्वितीया के चन्द्र की तरह बढ़ने लगे।

भगवान के जन्म के एक वर्ष पश्चात् सौधर्मेन्द्र भगवान की वंश स्थापना करने के लिये आये। इन्द्र ने भगवान के हाथ में ईक्षु का टुकड़ा दिया । भगवान ने उसे सहर्ष स्वीकार किया । उसी दिन से भगवान के वंश का नाम ईक्ष्वाकु पड़ा तथा भगवान के पूर्वज ईक्षुरस का पान करते थे अतः उनका काश्यप गोत्र हुआ ।

युगादिदेव का शरीर स्वेद–पसीना, रोग–मल से रहित सुगन्धि-पूर्ण सुन्दर आकारवाला और सोने के कमल-जैसा शोभायमान था । उनके शरीर में माँस और खून गाय के दूध की धारा जैसा उज्ज्वल और दुर्गन्धरहित था । उनके आहार–विहार की विधि चर्मचक्षु के अगोचर थी और उनके श्वास की खुशबू खिले हुए कमल के सदृश थी। ये चारों अतिशय प्रभु को जन्म से प्राप्त हुए थे । उनका संघयन वज्रऋषभनाराच था और संहनन समचतुरस्त्र । उनकी बाल–क्रीड़ा देवताओं को भी आकर्षित करती थी । उनकी मधुर भाषा व वाक्-

चातुर्य सब को आनन्द देने वाला था। भगवान का लालन-पालन पांच धाइयों के संरक्षण में होने लगा। क्रमशः भगवान ने बाल्यकाल को पार कर युवावस्था में प्रवेश किया।

जब भगवान की उम्र एक वर्ष से कुछ कम थी तब की बात है कि एक युगल अपनी युगल सन्तान को ताड़वृक्ष के नीचे रखकर क्रीडा करने की इच्छा से कदली-गृह में गया। हवा के झोंके से एक पक्व ताड़ का फल बालक के सिर पर गिरा। सिर पर चोट लगते ही बालक की मृत्यु हो गई। अब बालिका माता-पिता के पास अकेली रह गई। थोड़े दिनों के बाद बालिका के माता-पिता का भी देहांत हो गया। बालिका अपने साथी एवं माँबाप के अभाव में अकेली पड़ गई। वह अब अकेली ही वनदेवी की तरह घूमने लगी। देवी की तरह सुन्दर रूपवाली उस बालिका को युगल पुरुषों ने आश्चर्य से देखा और फिर वे उसे नाभि कुलकर के पास ले गये। नाभि कुलकर ने उन लोगों के अनुरोध से बालिका को यह कह कर रख लिया कि भविष्य में यह ऋषभ की पत्नी होगी। इस कन्या का नाम सुनन्दा रक्खा गया।

कालान्तर में २० लाख वर्ष कुमार अवस्था में रहने के बाद सौधर्मेन्द्र ने आकर भगवान का विधिपूर्वक सुनन्दा और सुमंगला के साथ विवाह कर दिया। यहीं से विवाह प्रथा प्रारंभ हुई। ऋषभ देव अपनी दोनों पत्नियों के साथ सांसारिक सुखों का अनुभव करते हुए रहने लगे। अपनी पत्नियों के साथ भोगविलास करते हुए भगवान के कुछ कम छः लाख वर्ष व्यतीत हुए उस समय बाहु और पीठ के जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर सुमंगला की कोख में युग्म रूप से उत्पन्न हुए और सुबाहु तथा महापीठ के जीव भी उसी सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवकर सुनन्दा की कोख से उत्पन्न हुए। सुमंगला ने गर्भ के महात्म्य को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न

देखे। देवी ने उन स्वप्नों का सारा हाल प्रभु से कहा, तब प्रभु ने कहा–"तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा। समय आने पर पूरब दिशा जिस तरह सूरज को जन्म देती है उसी तरह सुमंगला ने भी अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशमान करनेवाले भरत और ब्राह्मी नामके दो युग्म बच्चों को जन्म दिया। सुनन्दा ने भी सुन्दर आकृतिवाले बाहुबलि और सुन्दरी नामक युग्म सन्तान को जन्म दिया। उसके बाद सुमंगलाने ४९ युग्म बालकों को जन्म दिया। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के एक सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं।

समय की विषमता के कारण अब कल्पवृक्ष फल रहित होने लग गये। लोग भूखों मरने लगे और हाहाकार मच गया। इस समय ऋषभदेव की आयु बीस लाख वर्ष की हो चुकी थी। इन्द्रादि देवों ने आकर ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया। राजसिंहासन पर बैठते ही ऋषभदेव ने भूख से पीड़ित लोगों का दुःख दूर करने का निश्चय किया। उन्होंने लोगों को विद्या और कला सिखला कर परावलम्बी से स्वावलम्बी बनाया और लोकनीति का प्रादुर्भाव कर अकर्मभूमि को कर्मभूमि में बदल दिया। भगवान ने अपने बड़े पुत्र भरत को निम्न ७२ कलाएँ सिखलाईं—

१ लेख, २ गणित, ३ रूप, ४ नाट्य, ५ गीत, ६ वाद्य, ७ स्वर जानने की कला, ८ ढोल इत्यादि बजाने की कला, ९ ताल देना, १० द्यूत, ११ वार्तालाप की कला, १२ नगर के रक्षा की कला, १३ पासा खेलने की कला, १४ पानी और मिट्टी मिलाकर कुछ बनाने की कला, १५ अन्न उत्पादन की कला, १६ पानी उत्पन्न करने की और शुद्ध करने की कला, १७ वस्त्र बनाने की कला, १८ शय्या निर्माण करने की कला, १९ संस्कृत कविता बनाने की कला, २० प्रहेलि रचने की कला, २१ छंद विशेष बनाने की कला, २२ प्राकृत गाथा रचने की कला, २३ श्लोक बनाने की कला, २४ सुगन्धित पदार्थ बनाने की कला,

२५ मधुरादिक छह रस बनाने की कला, २६ अलंकार बनाने की कला, २७ स्त्री को शिक्षा देने की कला, २८ स्त्रीलक्षण, २९ पुरुषलक्षण, ३० अश्वलक्षण, ३१ हस्तिलक्षण, ३२ गोलक्षण, ३३ कुक्कुटलक्षण, ३४ मेंढ़े के लक्षण, ३५ चक्रलक्षण, ३६ छत्रलक्षण, ३७ दण्डलक्षण, ३८ तलवारलक्षण, ३९ मणिलक्षण, ४० काकिणी (चक्रवर्त्ती का रत्न विशेष) का लक्षण जानना, ४१ चर्मलक्षण, ४२ चन्द्रलक्षण, ४३ सूर्य की गति आदि जानना, ४४ राहुकी गति आदि जानना, ४५ ग्रहों की गति जानना, ४६ सौभाग्य का ज्ञान, ४७ दुर्भाग्य का ज्ञान, ४८ रोहिनी प्रज्ञप्ति विद्या सम्बन्धी ज्ञान, ४९ मंत्रसाधना ज्ञान, ५० गुप्त वस्तु का ज्ञान ५१ हर वस्तु की हकीकत जानना, ५३ सेना को युद्ध में उतारने की कला, ५४ व्यूह रचने की कला, ५५ प्रतिव्यूह रचने की कला, ५६ सेना के पड़ाव का प्रमाण जानना, ५७ नगर निर्माण, ५८ वस्तु का प्रमाण जानना, ५९ सेना के पड़ाव आदि का ज्ञान, ६० हर बस्तु के स्थापन कराने का ज्ञान, ६१ नगर बसाने का ज्ञान, ६२ थोड़े को बहुत करने की कला, ६३ तलवार की मूठ बनाने का ज्ञान, ६४ अश्वशिक्षा, ६५ हस्तिशिक्षा, ६६ धनुर्वेद, ६७ हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक बनाने की कला, ६८ बाहुयुद्ध दण्डयुद्ध मुष्टियुद्ध, यष्टियुद्ध, युद्धनियुद्ध, युद्धातियुद्ध, ६९ सूत बनाने की कला, नली बनाने की कला, गेंद खेलने की कला, वस्तु का स्वभाव जानने की कला, चमड़ा बनाने की कला, ७० पत्रछेदन, वृक्षांग छेदन की कला, ७१ संजीवन निर्जीवन, ७२ पक्षियों के शब्द आदि से शुभाशुभ शकुन जानने की कला ।

भरत ने अपने अन्य भाइयों को एवं प्रजाजनों को ७२ कलाएँ सिखलाई । बाहुबली को प्रभु ने हाथी, घोड़े और स्त्री, पुरुषों के अनेक प्रकार के भेदवाले लक्षण बतलाए । ब्राह्मी को दाहिने हाथ से १८ प्रकार की लिपियाँ सिखलाईं, वे १८ प्रकार की लिपियाँ ये हैं– १ ब्राह्मी, २ यवनानी, ३ दोसापुरिया, ४ खरौष्ठी, ५ पुक्खरसरिया,

६ भोगवतिका, ७ प्रहारातिगा, ८ अंतक्खरिया, ९ अक्षरपृष्ठिक, १० वैन-यिकी, ११ निहणविका, १२ अंकलिपि, १३ गणितलिपि, १४ गंधर्वलिपि, १५ आदर्शलिपि, १६ माहेश्वरी, १७ दामिललिपि, १८ वोलिंदलिपि।

सुन्दरी को बायें हाथ से गणित सिखाया साथ ही भगवान ने स्त्रियों को ६४ कला का कभी ज्ञान दिया। स्त्रियों की ६४ कलाएँ ये हैं :—

१	नृत्य	२०	संस्कृतजल्प
२	औचित्य	२१	प्रासादनीति
३	चित्र	२२	धर्मरीति
४	वादित्र	२३	वर्णिकावृद्धि
५	मंत्र	२४	स्वर्णसिद्धि
६	तंत्र	२५	सुरभितैलकरण
७	ज्ञान	२६	लीलासंचरण
८	विज्ञान	२७	हयगजपरीक्षण
९	दम्भ	२८	पुरुष–स्त्री लक्षण
१०	जलस्तंभ	२९	हेमरत्नभेद
११	गीतमान	३०	अष्टादश लिपि परिच्छेद
१२	तालमान	३१	तत्कालबुद्धि
१३	मेघवृष्टि	३२	वास्तुसिद्धि
१४	फलाकृष्टि	३३	कामविक्रिया
१५	आरामरोपण	३४	वैद्यकक्रिया
१६	आकारगोपण	३५	कुम्भभ्रम
१७	धर्मविचार	३६	सारिश्रम
१८	शकुनविचार	३७	अंजनयोग
१९	क्रियाकल्प	३८	चूर्णयोग

३९	हस्तलाघव	५२	भूषणपरिधान
४०	वचनपाटव	५३	भृत्योपचार
४१	भोज्यविधि	५४	गृहाचार
४२	वाणिज्यविधि	५५	व्याकरण
४३	मुखमंण्डन	५६	परनिराकरण
४४	शालिखण्डन	५७	रन्धन
४५	कथाकथन	५४	केशबन्धन
४६	पुष्पग्रन्थन	५९	वीणावादन
४७	वक्रोक्ति	६०	वितण्डावाद
४८	काव्यशक्ति	६१	अंकविचार
४९	स्फारविधिवेश	६२	लोकव्यवहार
५०	सर्वभाषाविशेष	६३	अंत्याक्षरिका
५१	अभिधानज्ञान	६४	प्रश्नप्रहेलिका

इसके अतिरिक्त भगवान ने लोगों को असि, मसि एवं कृषि का व्यवसाय सिखाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया। इस तरह प्रजा को मार्ग-दर्शन देते हुए भगवान के तिरासी लाख पूर्व व्यतीत हुए।

एक समय वसन्त-क्रीडा के अवसर पर भगवान को संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने संसार के बन्धनों का परित्याग कर स्व-पर का कल्याण करने का निश्चय किया। जिस समय भगवान के मन में वैराग्य की तरंगें उठ रही थीं उस समय पांचवे देवलोक में रहने वाले सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट नाम के लोकान्तिक देव भगवान के पास आये और उन्हें नमन कर निवेदन करने लगे--"हे प्रभो! आपने जिस तरह इस लोक की सारी व्यवस्था चलाई, उसी तरह अब धर्मतीर्थ को चलाइये।" इस तरह भगवान को निवेदन कर, देवगण अपने-अपने स्थान चले गये। देवताओं की प्रार्थना पर भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

घर आकर भगवान ने अपने समस्त पुत्रों को बुलाया और उनके सामने उन्होंने अपनी दीक्षा की भावना व्यक्त की। बहुत कुछ सम-झाने के बाद भरतादि पुत्रों ने पिता के द्वारा दिये गये राज्य को

स्वीकार किया । भगवान ने भरत को विनीता नगरी का और निन्यानवे पुत्रों को अलग अलग नगरों का राज्य दे दिया ।

इसके बाद प्रभु ने सांवत्सरिक दान देना प्रारम्भ कर दिया । नित्य सूर्योदय से भोजनकाल तक प्रभु एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण-मुद्राएँ दान करते थे । इस तरह एक साल में प्रभु ने तीन सौ अठ्यासी-करोड़ अस्सीलाख सुवर्ण मुद्राओं का दान दिया ।

वार्षिक दान के अन्त में इन्द्रादि देव भगवान के पास आये और उनका दीक्षाभिषेक किया । तदन्तर भगवान सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो 'सुदर्शना' नाम की पालकी पर आरूढ़ हुए । भगवान की पालकी को देव और मनुष्य वहन करने लगे । भगवान की पालकी के पीछे पीछे उनका समस्त परिवार चलने लगा । इस प्रकार विशाल जनसमूह व देवताओं के साथ भगवान की पालकी सिद्धार्थ नामक उद्यान में लाई गई । भगवान पालकी पर से नीचे उतरे । एकान्त में जाकर भगवान ने अपने समस्त वस्त्राभूषण उतार दिये । अपने हाथों से ही अपने कोमल केशों का लुंचन किया । चार मुठ्ठी लुंचन के बाद भगवान पांचवी मुठ्ठी से जब शेष बालों को उखाड़ने लगे तब इन्द्र ने भगवान से शिखा रहने देने की प्रार्थना की । भगवान ने इन्द्र की प्रार्थना को मान लिया ।* चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के योग में दिन के पिछले प्रहर में भगवान ने महाव्रतों का उच्चारण करते हुए स्वयमेव दीक्षा ग्रहण कर ली । दीक्षा लेते ही भगवान को मन-पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया । भगवान के साथ कच्छ, महाकच्छ आदि चारहजार पुरुषों ने दीक्षा धारण की ।

[*इन केशों के धारण करने से ही भगवान ऋषभदेव का दूसरा नाम केशरियानाथ पड़ा । समस्त तीर्थङ्करों में केवल भगवान ऋषभ-देव के मस्तक पर ही शिखा थी । जिस प्रकार सिंह केशों के कारण केशरी कहलाता है उसी प्रकार केशी और केशरी एक ही केशरिया-नाथ या ऋषभदेव के वाचक प्रतीत होते हैं । केशरियानाथ पर जो केशर चढ़ाने की विशेष मान्यता प्रचलित है वह नाम साम्य के कारण ही उत्पन्न हुई प्रतीत होती है ।]

दीक्षा लेकर भगवान वन की ओर पधारने लगे तब मरु-देवी माता उन्हें वापिस महल चलने के लिए कहने लगी। जब भगवान वापिस न मुड़े तब वह बड़ी चिन्ता में पड़ गई। अन्त में इन्द्र ने माता मरुदेवी को समझा बुझाकर घर भेजा और भगवान वन की ओर विहार कर गये।

इस अवसर्पिणी काल में भगवान सर्वप्रथम मुनि थे। इससे पहले किसी ने भी संयम नहीं लिया था। इस कारण जनता मुनियों के आचार-विचार, दान आदि की विधि से बिलकुल अनभिज्ञ थी। जब भगवान भिक्षा के लिए जाते तब लोग हर्षित होकर वस्त्राभूषण, हाथी, घोड़े आदि लेने के लिए आमंत्रित करते किन्तु शुद्ध और एष-णिक आहार-पानी कहीं से भी नहीं मिलता। भूख और प्यास से व्याकुल होकर भगवान के साथ दीक्षा लेने वाले चार हजार मुनि तो अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने लग गये। वे कंद मूल फल खा कर अपना जीवननिर्वाह करने लगे।

कच्छ और महाकच्छ जिनने भगवान ऋषभ के साथ ही में दीक्षा ग्रहण की थी वे भी जङ्गल में फल, फूल, कन्द आदि खाकर जीवननिर्वाह करने लगे। उनके नमि और विनमि नामके दो पुत्र थे। वे प्रभु के दीक्षा लेने से पहले ही उनकी आज्ञा से दूर देश को गये थे। वहाँ से लौटते हुए उन्होंने अपने पिता को वन में देखा। उनको देखकर वे विचारने लगे-ऋषभनाथ जैसे नाथ होने पर भी हमारे पिता अनाथ की तरह इस दशा में क्यों प्राप्त हुए। कहाँ वह राज-वैभव और कहाँ यह वनचारी पशुओं सा जीवन! वे पिता के पास आये और उन्हें प्रणाम कर सब हाल पूछा। तब कच्छ और महा-कच्छ ने कहा—भगवान ऋषभदेव ने राजपाट को त्याग भरत आदि को राज्य देकर व्रत ग्रहण किया है। हमने भी प्रभु के साथ व्रत ग्रहण किया था किन्तु भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि परिषहों को सह नहीं सकने के कारण चारित्र से च्युत होकर वनवासी बन गये हैं

और कंद मूल खाकर जीवन निर्वाह करते हैं। पिता के मुख से ये सब बातें सुनकर उन्होंने कहा—हम प्रभु के पास जाकर राज्य का हिस्सा मांगेंगे। यह कह कर नमि और विनमि प्रभु के पास आये। भगवान निसंग हैं इस बात को वे नहीं जानते थे, अतः वे कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को प्रणाम करके प्रार्थना करते हुए कहने लगे—भगवन् ! हमें भी भरतादि की तरह राज्य का कुछ हिस्सा दीजिये। भगवान त्यागी थे, अतः वे कुछ भी जवाब नहीं देते थे। नमि और विनमि भगवान की अविरत रूप से सेवा करते और तीनों समय भगवान को हाथ जोड़कर राज्य के लिये याचना करते।

भगवान की इस सेवा भक्ति को देखकर नागराज इन्द्र नमि, विनमि पर प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें विद्याधरों की विद्या दी जिसके प्रभाव से नमि, विनमि ने वैताढ्य गिरिमाला पर नये नगर बसाकर अपना स्वतन्त्र राज्य कायम किया।

एक वर्ष से अधिक समय बीत गया किन्तु भगवान को कहीं भी शुद्ध आहार नहीं मिला। विचरते-विचरते भगवान गजपुर पधारे। वहाँ सोमप्रभ नाम का राजा राज्य करता था। वह भगवान ऋषभदेव का पौत्र और तक्षशिला के राजा बाहुबलि का पुत्र था। सोमप्रभ के श्रेयांस नामका युवराज था। वह बहुत सुन्दर, बुद्धिमान और गुणी था। एक दिन रात को उसने स्वप्न देखा—"काले पड़ते हुए सुमेरु पर्वत को मैंने अमृत के घड़ों से सींचा और वह अधिक चमकने लगा।" उसी रात को सुबुद्धि नामके सेठ ने भी स्वप्न देखा कि अपनी हजारों किरणों से रहित होते हुए सूर्य को श्रेयांसकुमार ने किरण सहित कर दिया और वह पहले से भी अधिक प्रकाशित होने लगा। राजा सोमप्रभ ने भी स्वप्न देखा कि एक दिव्य पुरुष शत्रु-सेना द्वारा हराया जा रहा है। उसने श्रेयांसकुमार की सहायता से विजय प्राप्त कर ली।

दूसरे दिन तीनों ने राज्य सभा में अपने अपने स्वप्न का वृतान्त कहा। स्वप्न के वास्तविक फल को बिना जाने सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहने लगे। इस बात में सभी का एक मत था कि श्रेयांसकुमार को कोई महान लाभ होगा।

राजा सेठ तथा सभी दरबारी अपने अपने स्थान पर चले गये। श्रेयांसकुमार अपने सतमंजिले महल की खिड़की में आकर बैठ गया। जैसे ही उसने बाहर दृष्टि डाली भगवान ऋषभदेव को पधारते हुए देखा। वे एक वर्ष की कठोर तपस्या का पारण करने के लिये भिक्षार्थ घूम रहे थे। शरीर एकदम सूख गया था। उस समय के भोले लोग भगवान को अपना राजा समझकर अपने-अपने घर निमन्त्रित कर रहे थे। कोई उन्हें भिक्षा में धन देना चाहता था, कोई कन्या। इस बात का किसी को ज्ञान न था कि भगवान इन सब चीजों को त्याग चुके हैं। ये वस्तुएँ उनके लिये व्यर्थ हैं। उन्हें तो लम्बे उपवास का पारणा करने के लिये शुद्ध आहार की आवश्यकता है।

श्रेयांसकुमार उन्हें देखकर विचार में पड़ गया। उसी समय उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। थोड़ी देर के लिये उसे मूर्छा आ गई। कपूर और चन्दन वाले पानी के छींटे देने पर होश आया। ऊपर वाले महल से उतर कर वह नीचे आंगन में आ गया। इतने में भगवान भी उसके द्वार पर आ गये। उसी समय कोई व्यक्ति कुमार को भेट देने के लिये इक्षुरस से भरे घड़े लाया। श्रेयांसकुमार ने एक घड़ा हाथ में लिया और सोचने लगा--मै धन्य हूँ जिसे इस प्रकार की समस्त सामग्री प्राप्त हुई है। सुपात्रों में श्रेष्ठ भगवान तीर्थ-ङ्कर स्वयं भिक्षुक बनकर मेरे घर पधारे हैं, निर्दोष इक्षुरस से भरे हुए घड़े तैयार हैं। इनके प्रति मेरी भक्ति भी उमड़ रही है। यह कैसा शुभ अवसर है? यह सोचकर भगवान को प्रणाम करके उसने निवेदन किया--यह आहार सर्वथा निर्दोष है। अगर आपके अनुकूल हो, तो ग्रहण कीजिए। भगवान ने मौन रहकर हाथ फैला दिये। श्रेयांस-

कुमार भगवान के हाथों में इक्षुरस डालने लगा। अतिशय के कारण रस की एक बूँद भी नीचे नही गिरी। भगवान का कृश तथा उत्तम शरीर स्वस्थ तथा शान्त हो गया। इक्षुरस का पान करते हुए उन्हे किसी ने देखा नहीं क्योंकि भगवान का यह जन्मजात अतिशय था।

उसी समय भगवान के पारणे से होनेवाले हर्ष के कारण देवों ने गन्धोदकादि पांच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि की। गम्भीर मधुरस्वर वाली दुंदुभियाँ बजाईं, दिव्य वस्त्रों से बनी पताकाएँ फहराईं। अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वृष्टि की। जय-जय शब्द करके दान का माहात्म्य गाया। कुछ देवता घर के आंगन में उतर कर श्रेयांसकुमार की प्रशंसा करने लगे। दूसरे लोग भी श्रेयांसकुमार के घर पर इकट्ठे हो गए और पूछने लगे– भगवान के पारने की विधि आपने कैसे जानी? श्रेयांसकुमार ने उत्तर दिया–जाति स्मरण ज्ञान से। लोगों ने फिर पूछा–जाति स्मरण किसे कहते हैं? उससे पारणे की विधि कैसे जानी जाती है? उसने उत्तर दिया–जाति स्मरण का अर्थ है पूर्वजन्म का स्मरण और यह मतिज्ञान का एक भेद है। इससे मैंने पिछले वे आठ भव जान लिये जिनमें मैं भगवान के साथ रहा था। वर्तमान भव से पहले नवें भव में मेरे प्रपितामह भगवान ऋषभदेव का जीव ईशानकल्प देवलोक में ललितांग नाम का देव था। मैं उनकी स्नेहपात्री स्वयंप्रभा नाम की देवी थी। इस प्रकार स्वर्ग और मृत्युलोक में बारी-बारी से आठ भवों तक मैं प्रभु के साथ-साथ रहा हूँ। इस भव से तीसरे भव में विदेह क्षेत्र में भगवान के पिता वज्रसेन नामक तीर्थङ्कर थे। उनसे प्रभु ने दीक्षा ली। भगवान के बाद मैंने भी दीक्षा ग्रहण की। उनके पास दीक्षित होने के कारण मैं दान आदि की विधि को जानता हूँ, केवल इतने दिन मुझे पूर्वभव का स्मरण नहीं था। आज भगवान को देखने से जातिस्मरण हो गया। पूर्व भव की सारी बाते मैं जान गया इसीलिये भगवान का पारणा विधिपूर्वक

हो गया। मेरु पर्वत आदि के स्वप्न जो मैंने, पिताजी ने और सेठजी ने देखे थे उनका वास्तविक फल यही है कि एक वर्ष एक माह और १० दिन के अनशन के कारण भगवान का शरीर सूख रहा था। उनका पारण कराकर कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में सहायता की है। यह सुनकर श्रेयांसकुमार की सभी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थान चले गये।

पूर्वभव के स्मरण के कारण श्रेयांस कुमार को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई इसलिये उसने भगवान को भक्तिपूर्वक दान दिया। तत्वों में श्रद्धा रखता हुआ चिरकाल तक संसार के सुख भोगता रहा। भगवान को केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर उसने दीक्षा स्वीकार कर ली। निरतिचार संयम पालते हुए घनघाति कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। आयुष्य पूरा होने पर सभी कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया।

छद्मस्थावस्था में विचरते हुए भगवान को एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक समय वे पुरिमताल नगर के शकटमुख उद्यान में पधारे। फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन भगवान तेले का तप करके वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में स्थित हुए। उत्तरोत्तर परिणामों की शुद्धता के कारण घातिकर्मों का क्षय करके भगवान ने केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान महोत्सव करके समवशरण की रचना की। देव-देवी, मनुष्य-स्त्री, तिर्यंच आदि बारह प्रकार की परिषद प्रभु का उपदेश सुनने के लिये आई। उस समय भगवान पैंतीस सत्य वचनातिशय और चौंतीस अतिशयों से सम्पन्न थे। वे ये हैं—

सत्य वचन के पैंतीस अतिशय ये हैं—

(१) संस्कारवत्व—संस्कृत आदि गुणों से युक्त होना अर्थात् वाणी का भाषा और व्याकरण की दृष्टि से निर्दोष होना।

(२) उदात्तत्व—उदात्तस्वर अर्थात् स्वर का ऊँचा होना।

(३) उपचारोपेतत्व—ग्राम्य-दोष से रहित होना।

(४) गम्भीरशब्दता–मेघ की तरह आवाज में गम्भीरता होना।

(५) अनुनादित्व–आवाज का प्रतिध्वनि सहित होना।

(६) दक्षिणत्व–भाषा में सरलता होना।

(७) उपनीतरागत्व–मालव केशिकादि ग्राम राग से युक्त होना अथवा स्वर में ऐसी विशेषता होना कि श्रोताओं में व्याख्येय विषय के प्रति बहुमान के भाव उत्पन्न हों।

(८) महार्थत्व–अभिधेय अर्थ में महानता एवं परिपुष्टता का होना। थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ कहना।

(९) अव्याहतपौर्वापर्यत्व–वचनों में पूर्वापर विरोध न होना।

(१०) शिष्टत्व–अभिमत सिद्धान्त का कथन करना अथवा वक्त की शिष्टता सूचित हो ऐसा अर्थ कहना।

(११) असंदिग्धत्व–अभिमत वस्तु का स्पष्टतापूर्वक कथन करना जिससे कि श्रोताओं के दिल में सन्देह न रहें।

(१२) अपहृतान्योत्तरत्व–वचन का दूषण रहित होना और इसलिए शंका समाधान का मौका न आने देना।

(१३) हृदयग्राहित्व–वाच्य अर्थ को इस ढङ्ग से कहना कि श्रोता का मन आकृष्ट हो एवं वह कठिन विषय भी सहज ही में समझ जाय।

(१४) देशकालाव्यतीतत्व–देशकाल के अनुरूप अर्थ कहना।

(१५) तत्त्वानुरूपत्व–विवक्षित वस्तु का जो स्वरूप हो उसीके अनुसार उसका व्याख्यान करना।

(१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व–प्रकृत वस्तु का उचित विस्तार के साथ व्याख्यान करना। अथवा असम्बद्ध अर्थ का कथन न करना एवं सम्बद्ध अर्थ का भी अत्यधिक विस्तार न करना।

(१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व–पद और वाक्यों का सापेक्ष होना।

(१८) अभिजातत्व–भूमिकानुसार विषय और वक्ता का होना।

(१९) अतिस्निग्धमधुरत्व–भूखे व्यक्ति को जैसे घी, गुड़ आदि परम सुखकारी होते हैं उसी प्रकार स्नेह एवं माधुर्य परिपूर्ण वाणी का श्रोता के लिये परम सुखकारी होना।

(२०) अपरमर्मविद्धत्व–दूसरे के मर्म रहस्य का प्रकाशन होना।

(२१) अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व–मोक्ष रूप अर्थ एवं श्रुतचारित्र रूप धर्म से सम्बद्ध होना।

(२२) उदारत्व–प्रतिपाद्य अर्थ का महान होना अथवा शब्द और अर्थ की विशिष्ट रचना होना।

(२३) परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्व–दूसरे की निन्दा एवं आत्म प्रशंसा से रहित होना।

(२४) उपगतश्लाघत्व–वचन में उपरोक्त (परनिंदात्मोत्कर्ष विप्रयुत्व) गुण होने से वक्ता की श्लाघा-प्रशंसा होना।

(२५) अनपनीतत्व–कारक, काल, वचन, लिंग आदि के विपर्यास रूप दोषों का न होना।

(२६) उत्पादिताविच्छिन्नकुतूहलत्व–श्रोताओं में वक्ताविषयक निरन्तर कुतूहल बने रहना।

(२७) अद्भुतत्व–वचनों के अश्रुतपूर्व होने के कारण श्रोता के दिल में हर्षरूप विस्मय का बने रहना।

(२८) अनतिविलम्बितत्व–विलम्ब रहित होना अर्थात् धारा-प्रवाह से उपदेश देना।

(२९) विभ्रमविक्षेपकिलिकिंचितादि विमुक्तत्व–वक्ता के मन में भ्रांति होना विभ्रम है। प्रतिपाद्य विषय में उसका दिल न लगना विक्षेप है। रोष, भय, लोभ आदि भावों के सम्मिश्रण को किलिकिंचित कहते हैं। इनसे तथा मन के अन्य दोषों से रहित होना।

(३०) अनेकजातिसंश्रयाद्विचित्रत्व–वर्णनीय वस्तुओं के विविध प्रकार की होने के कारण वाणी में विचित्रता होना।

(३१) आहितविशेषत्व–दूसरे पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त होना।

(३२) साकारत्व–वर्ण पद और वाक्यों का अलग अलग होना।

(३३) सत्वपरिग्रहतत्व–भाषा का ओजस्वी प्रभावशाली होना।

(३४) अपरिखेदितत्व—उपदेश देते हुए थकावट अनुभव न करना।

(३५) अव्युच्छेदत्व—जो तत्व समझना चाहते हैं उसकी सम्यक् प्रकार से सिद्धि न हो तब तक बिना व्यवधान के उसका व्याख्यान करते रहना।

पहले सात अतिशय शब्द की अपेक्षा हैं। शेष अर्थ की अपेक्षा हैं।

✓ तीर्थङ्करदेव के चौंतीस अतिशय

(१) तीर्थंकरदेव के मस्तक और दाढ़ी मूछ के बाल बढ़ते नहीं हैं। उनके शरीर के रोम और नख सदा अवस्थित रहते हैं।

(२) उनका शरीर सदा स्वस्थ तथा निर्मल रहता है।

(३) शरीर में रक्तमांस गाय के दूध की तरह श्वेत होते हैं।

(४) उनके श्वासोच्छ्वास में पद्म एवं नीलकमल की अथवा पद्म तथा उत्पलकुष्ट (गन्धद्रव्य विशेष) की सुगन्ध आती है।

(५) उनका आहार और निहार (शौचक्रिया) प्रच्छन्न होता है चर्मचक्षु वालों को दिखाई नहीं देता।

(६) तीर्थंकर देव के आगे आकाश में धर्मचक्र रहता है।

(७) उनके ऊपर तीन छत्र रहते हैं।

(८) उनके दोनों ओर तेजोमय (प्रकाशमय) श्रेष्ठ चँवर रहते हैं।

(९) भगवान् के लिये आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणि का बना हुआ पादपीठ वाला सिंहासन होता है।

(१०) तीर्थङ्कर देव के आगे आकाश में बहुत ऊँचा हजारों छोटी छोटी पताकाओं से परिमण्डित इंद्रध्वज चलता है।

(११) जहाँ भगवान ठहरते हैं अथवा बैठते हैं वहाँ पर उसी समय पत्र, पुष्प और पल्लव से शोभित छत्र, ध्वज, घंटा और पताका सहित अशोक वृक्ष प्रकट होता है।

(१२) भगवान के कुछ पीछे मस्तक के पास अति भास्वर (देदीप्यमान) भामण्डल रहता है।

(१३) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ का भूभाग बहुत सम-तल एवं रमणीय हो जाता है।

(१४) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ काँटे अधोमुख हो जाते हैं।

(१५) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ ऋतुएँ सुखस्पर्शवाली यानी अनुकूल हो जाती हैं।

(१६) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ संवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यन्त क्षेत्र चारों ओर से शुद्ध साफ हो जाता है।

(१७) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ मेघ आवश्यकतानुसार बरस कर आकाश एवं पृथ्वी में रही हुई रज को शान्त कर देते हैं।

(१८) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ जानु प्रमाण देवकृत पुष्प-वृष्टि होती है। फूलों के डंठल सदा नीचे की ओर रहते हैं।

(१९) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध नहीं रहते।

(२०) भगवान जहाँ विचरते हैं वहाँ मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्रकट होते हैं।

(२१) देशना देते समय भगवान का स्वर अतिशय हृदयस्पर्शी होता है और एक योजनतक सुनाई देता है।

(२२) तीर्थङ्कर अर्द्धमागधी भाषा में उपदेश करते हैं।

(२३) उनके मुख से निकली हुई अर्द्धमागधी भाषा में यह विशेषता होती है कि आर्य, अनार्य सभी मनुष्य एवं मृग पशु पक्षी और सरीसृप जाति के तिर्यंच प्राणी उसे अपनी भाषा में समझते हैं और वह उन्हें हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी प्रतीत होती है।

(२४) पहले से ही जिनके वैर बँधा हुआ है ऐसे भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव प्रभु के चरणों में आकर अपना वैर भूल जाते हैं और शान्तचित्त होकर धर्मोपदेश सुनते हैं।

(२५) तीर्थङ्कर के पास आकर अन्य तीर्थी भी उन्हें वंदन करते हैं।

(२६) तीर्थङ्कर के पास आकर अन्य तीर्थिकलोग निरुत्तर हो जाते हैं।

जहाँ-जहाँ भी तीर्थङ्कर देव विहार करते हैं वहाँ पच्चीस योजन अर्थात् सौ कोस के अंदर—

(२७) ईति-चूहे आदि जीवों से धान्यादि का उपद्रव नहीं होता।

(२८) मारी अर्थात् जनसंहारक प्लेग आदि उपद्रव नही होते।

(२९) स्वचक्र का भय (स्वराज्य की सेना से उपद्रव) नहीं होता।

(३०) परचक्र का भय (पर राज्य की सेना से उपद्रव) नहीं होता।

(३१) अधिक वर्षा नहीं होती।

(३२) वर्षा का अभाव नहीं होता।

(३३) दुर्भिक्ष-दुष्काल नहीं पड़ता।

(३४) पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियाँ भी शान्त हो जाती हैं।

इन चौंतीस अतिशयों में से दो से पांच तक के ४ अतिशय तीर्थङ्कर देव के जन्म से ही होते हैं। इक्कीस से चौंतीस तक तथा भामंडल ये पंद्रह अतिशय घाती कर्मों के क्षय होने से प्रकट होते हैं। शेष अतिशय देवकृत होते हैं।

दीक्षा लेकर जब से भगवान विनीता नगरी से विहार कर गये थे तभी से माता मरुदेवी उनके कुशल समाचार प्राप्त न होने के कारण बहुत चिन्तातुर हो रही थी। इसी समय भरत महाराज उनके चरण वन्दन करने के लिये गये। वह उनसे भगवान के विषय में पूछ ही रही थी कि इतने में एक पुरुष ने आकर भरत महाराज को "भगवान को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है" यह बधाई दी। उसी समय दूसरे पुरुष ने आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होने की और तीसरे पुरुष ने पुत्र जन्म की बधाई दी। सबसे पहले केवलज्ञान महोत्सव मनाने का निश्चय करके भरत महाराज भगवान को वंदन करने के लिये रवाना हुए, हाथी पर सवार होकर मरुदेवी माता भी साथ में पधारी।

समवशरण के नजदीक पहुँचने पर देवों के आगमन और केवलज्ञान के साथ प्रकट होने वाले *अष्टमहाप्रतिहार्य की विभूति को देखकर माता मरुदेवी को बहुत हर्ष हुआ। वह मन ही मन विचार करने लगी कि मैं तो समझती थी कि मेरा ऋषभकुमार जंगल में गया है, इससे उसको तकलीफ होगी परन्तु मैं देख रही हूँ कि ऋषभकुमार तो बड़े आनन्द में है और उसके पास तो बहुत ठाठ लगा हुआ है। मै वृथा मोह कर रही थी। इस प्रकार अध्यवसायों की शुद्धि के कारण माता मरुदेवी ने घाति कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन उपार्जन कर लिये। उसी समय आयु कर्म का भी अन्त आ चुका था। सब कर्मों का नाशकर माता मरुदेवी मोक्ष पधार गई।

भरत महाराज भगवान को वन्दना नमस्कार कर समवशरण में बैठ गये। भगवान ने धर्मोपदेश दिया जिससे श्रोताओं को अपूर्व-शान्ति मिली। भगवान के उपदेश से बोध पाकर भरत महाराज के पुत्र ऋषभसेन ने पाच सौ पुत्रों और सात सौ पौत्रों के साथ भगवान के पास दीक्षा अंगीकार की। भरत महाराज की बहिन सती ब्राह्मी ने भी अनेक स्त्रियों के साथ संयम अंगीकार किया। समवशरण में बैठे हुए बहुत से श्रोताओं ने श्रावकव्रत लिये और बहुतों ने सम्यक्त्व धारण किया। उसी समय साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना की। भगवान ने ऋषभसेन आदि ८४ चौरासी पुरुषों को **'उप्पण्णेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा'** इस त्रिपदी का उपदेश दिया। जिस प्रकार जल पर तेल की बूँद फैल जाती है और एक बीज से सैकड़ों हजारों बीजों की प्राप्ति होती है उसी प्रकार त्रिपदी के उपदेश मंत्र से उनका ज्ञान बहुत विस्तृत हो गया। उन्होंने अनुक्रम से चौदह पूर्व और द्वादशांगी की रचना की।

---

१ *अशोकवृक्ष २ देवकृत अचित पुष्पवृष्टि ३ दिव्यध्वनि ४ चँवर ५ सिंहासन ६ देवदुन्दुभि ८ छत्र।

केवल ज्ञान होने के पश्चात् भगवान एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक जनपद में विचरते रहे और धर्मोपदेश द्वारा अनेक भव्य जीवों का उद्धार करते रहे। भगवान ऋषभदेव के ऋषभसेन आदि ८४ गणधर, ८४००० मुनि, ३००००० साध्वी, ३०५००० श्रावक, ५५४००० श्राविकाएँ, ४७५० चौदह पूर्वधर, ९००० अवधि ज्ञानी, २०००० केवल ज्ञानी, २०६०० वैक्रिय लब्धिधारी, १२६५० मनःपर्यवज्ञानी, १२६५० वादी और २२५०० अणुत्तरविमानवासी मुनि थे।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान दस हजार मुनियों के साथ अष्टापद पर्वत पर पधारे। वहाँ सब ने अनशन किया। छः दिन तक उनका अनशन चलता रहा। माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन अभिजित नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर शेष चार अघाति कर्मों का नाश करके भगवान मोक्ष में पधार गये। उस समय इस अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा समाप्त होने में तीन वर्ष साढे आठ महिने बाकी थे। जिस समय भगवान मोक्ष में पधारे उसी समय में दूसरे १०७ पुरुष और भी सिद्ध हुए। भगवान के साथ अनशन करनेवाले दस हजार मुनि भा उसी नक्षत्र में सिद्ध हुए जिसमें भगवान मोक्ष में पधारे थे। इन्द्र तथा देवों ने सभी का अन्तिम संस्कार किया। फिर नन्दीश्वर द्वीप में जाकर सभी देवी-देवताओं ने भगवान का निर्वाण-कल्याण मनाया।

२. भगवान अजितनाथ

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र की सीता नदी के दक्षिण तट पर वत्सनामक देश में सुसीमा नाम की नगरी थी। वहाँ विमलवाहन नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा न्यायी एवं धर्मप्रिय था।

एक समय संसार की विचित्रता पर विचार करके उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अरिंदम नामक मुनिवर के पास दीक्षा ग्रहण की। निरतिचार संयम का पालन करते हुए उसने वीस स्थान की आराधना की और तीर्थंङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। एकावली,

कनकावली आदि अनेक प्रकार की तपस्या की। अन्तः में संथारा ग्रहण कर देह का त्याग किया। वह मरकर विजय नामक अनुत्तर विमान में तेतीस सागरोपम की आयु वाला देव हुआ।

वहाँ देवताओं के शरीर एक हाथ के होते हैं। उनके शरीर चन्द्रकिरणों की तरह उज्ज्वल होते हैं। वे सदैव अनुपम सौख्य का अनुभव करते रहते हैं। वे अपने अवधिज्ञान से समस्त लोक नालिका का अवलोकन करते हैं। वे तेतीस पक्ष बीतने पर, एक बार श्वास लेते हैं। तेतीस हजार वर्ष में एक बार उन्हें भोजन की इच्छा होती है। विमलवाहन मुनि का जीव भी इसी स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगा। जब आयु के छह महीने शेष रहे तब अन्य देवताओं की तरह उन्हें देवलोक से चवने का किंचित् भी दुःख नहीं हुआ प्रत्युत भावी तीर्थङ्कर होने के नाते उनका तेज और भी बढ़ गया।

भगवान अजितनाथ का जन्म

भरत क्षेत्र में विनीता नामकी सुप्रसिद्ध नगरी थी। इस नगरी में इक्ष्वाकु वंशतिलक अनेक राजा होगये। उसी इक्ष्वाकु वश का जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसके छोटे भाई का नाम सुमित्र विजय था यह युवराज था। जितशत्रु राजा की रानी का नाम विजयादेवी एव सुमित्रविजय की रानी का नाम वैजयन्ती था। दोनों रानियाँ अपने रूप और गुणों में अनुपम थीं।

वैशाख शुक्ला १३ को विमलवाहन मुनिराज का जीव, महारानी विजयादेवी की कुक्षि में विजय नामके अनुत्तर बिमान से आकर उत्पन्न हुआ। उस रात्रि के अन्तिम प्रहर में महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। उसी रात को युवराज सुमित्रविजय की महारानी वैजयन्ती ने भी चौदह महास्वप्न देखे किन्तु श्रीमती विजयादेवी के स्वप्नों की प्रभा की अपेक्षा इनके स्वप्नों की प्रभा कुछ मंद थी। दूसरे दिन स्वप्नपाठकों को बुलाया गया और उनसे स्वप्न का फल पूछा। स्वप्न पाठकों ने कहा—महारानी विजयादेवी त्रिलोक पूज्य तीर्थंकर महापुरुष को जन्म देगी और युवराज्ञी वैजयंती चक्रवर्ती की माता बनेगी।

स्वप्नपाठकों से स्वप्न का फल सुनकर सब प्रसन्न होगये। दोनों महा-रानियाँ अपने-अपने गर्भ का विधिवत् पालन करने लगीं।

गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी विजयादेवी ने माघ शुक्ला अष्टमी की रात्रि में लोकोत्तम पुत्ररत्न को जन्म दिया। बालक के जन्मते ही तीनों लोक में दिव्य प्रकाश फैल गया। इन्द्रों के आसन चलायमान हो गये। आकाश में देव दुंदुभियाँ बजने लगीं। भगवान के जन्म का समाचार पाकर छप्पन दिग्कुमारिकाएँ आईं और भग-वान को तथा उनकी माता को प्रणाम कर अपने-अपने कार्य में लग गईं। चौसठ इन्द्रों ने तथा असंख्य देवी देवताओं ने भगवान का जन्मो-त्सव किया।

भगवान के जन्म के थोड़े काल के बाद ही युवराज्ञी वैजयन्ती ने भी एक दिव्य बालक को जन्म दिया। पुत्र और भतीजे के जन्म की बधाई पाकर महाराज जितशत्रु बड़े प्रसन्न हुए। पुत्र जन्म की खबर सुनाने वाले को महाराज ने खूब दान दिया। बन्दीजनों को मुक्त किया और सारे नगर भर में उत्सव मनाने का आदेश जारी किया। प्रजा ने भी अपने भावी सम्राट् का दिल खोल कर उत्सव किया।

शुभ मुहूर्त में पुत्र का नामकरण किया गया। महारानी विज-यादेवी के गर्भ के दिनों में महाराजा के साथ पासे के खेल में सदा महारानी की ही विजय होती थी। इस जीत को गर्भ का प्रभाव मानकर बालक का नाम अजितकुमार एवं युवराज्ञी के पुत्र का नाम सगर रक्खा गया।

अजितकुमार जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे। अतः उनको पढ़ाने की कोई अवश्यकता नहीं रही किन्तु सगरकुमार अध्यापक के पास रहकर अध्ययन करने लगे। सगरकुमार की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। उन्होंने अल्प समय में ही समस्त कलाओं में निपु-

णता प्राप्त करली। दोनों कुमार युवा हो गये। उनका शरीर सम-चतुरस्र था। वज्रऋषभनाराज संहनन होने से वे बड़े शक्तिशाली थे।

विवाह के योग्य जानकर माता-पिता ने उनका सैकड़ों रूपवती कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। दोनों राजकुमार यौवनवय का आनंद लेने लगे। अवसर पाकर महाराजा जितशत्रु ने अजितकुमार का राज्याभिषेक किया। अजितकुमार के राजा बनने के बाद उन्होंने सगरकुमार को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया।

एक बार ऋषभदेव की परम्परा के स्थविर मुनि का आगमन हुआ। उनका उपदेश सुनकर महाराज जितशत्रु ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और विशुद्ध चारित्र की आराधना करके केवलज्ञान और केवल-दर्शन प्राप्त किया और वे मोक्ष में गये।

अब महाराजा अजितकुमार बड़ी कुशलता पूर्वक राज्य का संचा-लन करने लगे। इनकी वीरता और गुणों से आकृष्ट होकर सैकड़ों राजागण इनके चरणों में झुकने लगे। प्रजा में न्याय नीति और सौहार्द की अभिवृद्धि होने लगी। इनके राज्य काल में प्रजा ने अपूर्व सुख समृद्धि की प्राप्ति की। इस प्रकार सुख पूर्वक राज्य का संचालन करते हुए अजित महाराजा का तिरपन लाख पूर्व का समय बीत गया।

एक दिन महाराज अजितकुमार एकान्त में बैठकर सोचने लगे-अब मुझे सांसारिक भोगों का परित्याग कर स्व-पर कल्याण के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। बन्धनों को छेदन कर निर्बन्ध, निष्क्र-मण और निर्विकार होने के लिये अविलम्ब त्याग मार्ग को स्वीकार कर लेना चाहिये। भगवान का यह चिन्तन चल ही रहा था कि इतने में लोकान्तिक देवों का आसन चलायमान हुआ। उन्होंने अपने ज्ञान से देखा कि अर्हत् अजितनाथ के निष्क्रमण का समय निकट आगया है। वे भगवान के पास आये और परम विनीत शब्दों में निवेदन करने लगे—

भगवन् ! बुझो ! हे लोकनाथ ! जीवों के हित, सुख और मुक्तिदायक धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो ।

इस प्रकार दो तीन बार निवेदन करके और भगवान को प्रणाम करके देव लौट गये ।

अरिहंत अजितनाथ ने निश्चय किया कि मै एक वर्ष के पश्चात् संसार का त्याग कर दूँगा । भगवान का अभिप्राय जानकर प्रथम स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र ने वर्षीदान की व्यवस्था करवाई । अजित भगवान नित्य प्रातःकाल एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुहुरों का दान करने लगे । उधर युवराज सगर ने भी विशाल दानशाला खोल दी जिसमें हजारों याचक आहार-वस्त्र आदि ऐच्छिक वस्तु प्राप्त करने लगे । इस प्रकार भगवान अजितनाथ ने एक वर्ष की अवधि में तीन अरब अठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान किया।

वर्षीदान देने के पश्चात् शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ । वह भगवान के पास आया । अन्य इन्द्रों, देवों तथा देवियों ने भगवान का दीक्षा महोत्सव किया । भगवान ने भी अपने लघु भ्राता सगर का राज्याभिषेक किया और उसे विनीता का राजा बनाया । देवों ने 'सुप्रभा' नामकी शिविका तैयार की । भगवान ने सुन्दर वस्त्रालंकार धारण किये और शिविका पर आरूढ़ हो गये । शिविका को देव तथा मनुष्य वहन करने लगे । उत्सव पूर्वक विशाल जन समूह के साथ शिविका सहस्राम्र उद्यान में पहुँची ।

माघ शुक्ला नवमी के दिन दिवस के पिछले प्रहर में जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में आया तब भगवान ने सम्पूर्ण वस्त्रालंकार उतार दिये और इन्द्र द्वारा दिये गये देवदूष्य को धारण किया, पंचमुष्टि लोच किया और सिद्ध भगवान को प्रणाम कर के सामायिक चारित्र को ग्रहण किया । उस दिन भगवान के छठ का तप था । सामायिक चारित्र स्वीकार करते समय भगवान अप्रमत्त गुणस्थान में स्थित थे । भावों की उच्चतम अवस्था के कारण उसी समय भग-

वान को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया। इस ज्ञान से वे मनवाले प्राणियों के मनोगत भावों को जानने लगे। भगवान के साथ एक हजार राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् भगवान ने सहस्राम उद्यान से विहार कर दिया। दूसरे दिन अजितनाथ भगवान ने अपने बेले का पारणा ब्रह्मदत्त राजा के घर परमान्न से किया। पारणे के समय देवों ने दिव्य वृष्टि की और दान देनेवाले की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। भगवान तप संयम की आराधना करते हुए ग्रामानुग्राम विचरने लगे। इस प्रकार छद्मस्थ अवस्था में विचरते हुए भगवान के बारह वर्ष व्यतीत होगये। पौषमास की शुक्ल एकादशी के दिन भगवान विहार करते हुए पुनः सहस्राम्र उद्यान में पधारे। उस दिन भगवान के वेले का तप था। ध्यान करते हुए भगवान के घन घाती कर्म नष्ट हो गये और केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। जिससे वे सम्पूर्ण चराचर वस्तु को जानने लगे। देवों और इन्द्रों ने भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। उद्यान पालक ने सगर महाराजा को भगवान के आगमन और केवलज्ञान की खबर सुनाई। महाराज सगर बड़े आडम्बर के साथ भगवान के दर्शन के लिये आये। भगवान ने समवशरण के बीच अपनी देशना प्रारंभ कर दी। भगवान की देशना सुनकर हजारों नर नारियों ने त्याग मार्ग स्वीकार किये जिसमें सगर चक्रवर्ती के पिता सुमित्रविजय भी थे जो कि भगवान के काका थे तथा भावदीक्षित थे।

भगवान की देशना से गणधर पद के अधिकारी सिंहसेन आदि ९५ महापुरुषों ने दीक्षा ग्रहण की। भगवान के मुख से त्रिपदी का श्रवण कर उन्होंने चौदह पूर्व सहित द्वादशांगी की रचना की। भगवान ने विशाल मुनिसमूह एवं गणधरों के साथ सहस्राम्र उद्यान से निकल कर बाहर जनपद में विहार कर दिया। विहार करते हुए भगवान कोशांबी नगरी के निकट पहुँचे। वहाँ शालिग्राम के निवासी

शुद्धभट और उसकी पत्नी सुलक्षणा ने भगवान के पास प्रवज्या ग्रहण की ।

भगवान अजितनाथ के ९५ गणधर हुए । एक लाख साधु, तीन लाख तीस हजार साध्वियाँ, ३७२० चौदहपूर्वधारी, १२५५० मनःपर्ययज्ञानी २२००० केवली, १२४०० वादी, २०४०० वैक्रियलब्धिधारी, २९८००० श्रावक एवं ५४५००० श्राविकाएँ हुईं ।

दीक्षा के बाद एक पूर्वाङ्ग कम लाख पूर्व बीतने पर अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान **समेतशिखर** पर पधारे वहाँ एक हजार मुनियों के साथ पादोपगमन अनशन किया ।

एक मास के अन्त में चैत्रशुक्ला पंचमी के दिन मृगशिर नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया । इन्द्रादि देवों ने निर्वाण-महोत्सव मनाया ।

भगवान की ऊंचाई ४५० धनुष थी । भगवान ने अठारह लाख पूर्व कौमार अवस्था में, त्रेपनलाख पूर्व चौरासी लाख वर्ष राज्यत्व काल में, बारह वर्ष छद्मस्थ अवस्था में, चौरासीलाख बारह वर्ष कम एक लाख पूर्व केवलज्ञान अवस्था में विताये । इस तरह बहत्तर लाख पूर्व की आयु समाप्त कर भगवान अजितनाथ ऋषभदेव के निर्वाण के पचास लाख करोड़ सागरोपम वर्ष के बाद मोक्ष में गये ।

३. भगवान संभवनाथ

धातकीखण्ड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र में 'क्षेमपुरी' नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी । वहाँ का विपुलवाहन नामका तेजस्वी एवं पराक्रमी राजा था । वह प्रजा का पुत्र की तरह पालन करता था । उसके राज्य में सभी सुखी और समृद्ध थे ।

राजा नीतिपूर्वक राज्य कर रहा था । कालान्तर से अशुभकर्म के उदय से दुष्काल पड़ गया । वर्षा के अभाव में वर्षाकाल भी दूसरा ग्रीष्मकाल बन गया था । नैऋत्यकोण के भयंकर वायु से रहे सहे पानी का शोषण और वृक्षों का उच्छेद होने लगा । सूर्य कांसे की थाली जैसा

लगता था और लोग धान्य के अभाव में तापसों की तरह वृक्षों की की छाल, कन्दमूल और फल खाकर जीवन बिताने लगे। इस समय लोगों की भूख भी भस्मक व्याधि की तरह जोरदार हो गई थी। उनको पर्याप्त खुराक मिलने पर भी तृप्ति नहीं होती थी। जो लोग भीख मांगना लज्जाजनक मानते थे वे भी दंभपूर्वक साधु का वेष बनाकर भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे। माता-पिता भूख के मारे अपने बच्चों को भी छोड़कर इधर उधर भटकने लगे। भूखे मनुष्यों के भटकते हुए दुर्बल कंकालों से नगर के प्रमुख बाजार और मार्ग भी श्मशान जैसे लग रहे थे। उनका कोलाहल कर्णशूल जैसा लग रहा था।

ऐसे भयंकर दुष्काल को देखकर राजा बहुत चिन्तित हुआ। उसे प्रजा को दुष्काल की भयंकर ज्वाला से वचाने का कोई साधन दिखाई नहीं दिया। उसने सोचा यदि मेरे पास जितना धान्य है, वह सभी बाँट दूँ, तो भी प्रजा की एक समय की भूख भी नहीं मिटा सकता इसलिए इस सामग्री का सदुपयोग कैसे हो ? उसने विचार कर के निश्चय किया कि प्रजा में भी साधर्मी अधिक गुणवान एवं प्रशस्त होते हैं और साधर्मी से साधु विशेष रक्षणीय होते हैं। मेरी सामग्री से संघ रक्षा हो सकती है। उसने अपने रसोइये को बुलाकर कहा—

"तुम मेरे लिये जो भोजन बनाते हो; वह साधु साध्वियों को दिया जावे और अन्य आहार, संघ के सदस्यों को दिया जावे। इसमें से बचा हुआ आहार मै काम में लूंगा।"

राजा इस प्रकार चतुर्विध संघ की वैयावृत्य करने लगा। वह स्वयं उल्लास पूर्वक सेवा करता था। जब तक दुष्काल रहा, तब तक इसी प्रकार सेवा करता रहा। संघ की वैयावृत्य करते हुए भावों के उल्लास में राजा ने तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया।

एक दिन राजा आकाश में छाई हुई काली घटा देख रहा था। बिजलियाँ चमक रही थीं। लग रहा था कि घनघोर वर्षा होनेवाली है किन्तु अकस्मात् प्रचण्ड वायु चला और नभ मण्डल में छाये

हुए बादल, टुकड़े टुकड़े होकर बिखर गये । क्षणभर में बादलों का नभमण्डल में छा जाना और क्षणभर में बिखर जाना देखकर राजा विचार में पड़ गया । उसने सोचा--

"ओह ! यह कैसी विडम्बना है । बादलों की तरह संसार की सभी पौद्गलिक वस्तुएँ भी नष्ट होने वाली हैं ।" बादलों की तरह पौद्गलिक पदार्थों की असारता का विचार करते हुए राजा को वैराग्य हो गया । उसने अपने पुत्र विमलकीर्ति को बुलाकर उसे राज्याधिकार दे दिया और स्वय स्वयंप्रभ आचार्य के समीप दीक्षित हो गया । प्रव्रज्या स्वीकार करने बाद वे पूर्ण उत्साह के साथ साधना करने लगे । परिणामों की उच्चता से तीर्थंङ्कर नाम कर्म को पुष्ट किया और समाधि पूर्वक आयुष्यपूर्ण करके 'आनत' नामके नौवे स्वर्ग में उत्पन्न हुए । स्वर्ग के सुखभोग कर आयुष्य पूर्ण होने पर 'श्रावस्ती' नगरी के 'जितारी' नाम के प्रतापी नरेश की 'सेनादेवी' नामकी महारानी की कुक्षि में उत्पन्न हुए । महास्वप्न और उत्सवादि तीर्थंङ्कर के गर्भ एवं जन्मकल्याणक के अनुसार हुए ।

भगवान का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ला १४ को हुआ । प्रभु का शरीर चार सौ धनुष ऊँचा था । युवावस्था में भगवान का अपने ही समान राजाओं की श्रेष्ठ कुमारियों के साथ विवाह हुआ । पन्द्रह लाख पूर्व तक आप कुमार युवराज पद पर रहे । पिता ने प्रभु को राज्याधिकार देकर प्रव्रज्या ले ली । प्रभु ने चार पूर्वांग और चवालीस लाख पूर्व की उम्र होने पर वर्षीदान देकर मार्गशीर्ष पूर्णिमा को प्रव्रज्या स्वीकार कर ली । प्रभु चौदह वर्ष तक छद्मस्थ रहे । कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन बेले के तप युक्त प्रभु के घाति कर्म नष्ट हो गये और केवल–ज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गया । भगवान ने केवलज्ञान के पश्चात् चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की ।

भगवान के दो लाख साधु, तीनलाख छत्तीस हजार साध्वियाँ, २१५० चौदह पूर्वधर, ९६०० अवधिज्ञानी, १२१५० मनःपर्ययज्ञानी,

१५००० केवलज्ञानी, १९८०० वैक्रियलब्धिधारी, १२००० वादी, २९३००० श्रावक एवं ६३६००० श्राविकाएँ हुईं ।

भगवान ने केवल ज्ञान होने के बाद चार पूर्वाङ्ग और चौदह वर्ष कम एकलाख पूर्व तक तीर्थङ्कर पद पर रह करके एक हजार मुनियों के साथ **समेतशिखर** पर्वत पर चैत्र शुक्ला ५ के दिन मोक्ष प्राप्त किया । भगवान का कुल आयुष्य साठ लाख पूर्व का था ।

४. भगवान अभिनन्दन

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में मङ्गलावती नामक विजय में 'रत्नसंचया' नाम की नगरी थी । वहाँ 'महाबल' नाम का राजा राज्य करता था । उसने संसार से विरक्त होकर विमलसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की तथा कठोर तपश्चर्या व निरतिचार संयम का पालन कर तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन के बीस स्थानों की आराधना की और तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया ।

वह अन्त में अनशन पूर्वक देह त्याग कर महाबलमुनि विजय नामक अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देव बना ।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की सुन्दर नगरी थी। वहाँ इक्ष्वाकुवंश तिलक 'सवर' नाम के राजा राज्य करते थे । उन के अनुशासन में प्रजा अत्यन्त सुख पूर्वक रहती थी । उस संवर राजा के 'सिद्धार्था' नाम की रानी थी । वह कुल मर्यादा का पालन करने वाली श्रेष्ठ नारी थी ।

महाबल मुनि का जीव विजय विमान से चवकर वैशाख शुक्ला चतुर्थी के दिन अभिजित नक्षत्र में महारानी 'सिद्धार्था' की कुक्षि में उत्पन्न हुआ । गर्भ के प्रभाव से महारानी ने रात्रि में चौदह महास्वप्न देखे । जागृत होकर महारानी ने पति से स्वप्न का फल पूछा । महाराजा संवर ने स्वप्न के महान फल को देखकर कहा–प्रिये ! तुम त्रिलोक पूज्य पुत्र रत्न को जन्म दोगी ।

गर्भकाल पूर्ण होनेपर माघ शुक्ला द्वितीया के दिन जब चन्द्र अभिजित नक्षत्र में आया तब महारानी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। बालक का वर्ण सुवर्ण जैसा था, और वानर के चिह्न से चिह्नित था। बालक के जन्मते ही समस्त दिशाएँ प्रकाश से जगमगा उठीं। इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। इन्द्र, देव, देवियों ने मेरु पर्वत पर भगवान का जन्मोत्सव किया। जब भगवान गर्भ में थे तब सर्वत्र आनन्द छा गया था इसलिए माता पिता ने बालक का नाम 'अभिनन्दन' रखा।

अभिनन्दनकुमार युवा हुए। उनका अनेक श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। साढ़े बारह लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहने के बाद भगवान का राज्याभिषेक हुआ। आठ अंग सहित साढ़े छत्तीस लाख पूर्व तक राज्यधर्म का पालन किया।

एक बार संसार की विचित्रता का विचार करते हुए आपको वैराग्य उत्पन्न हो गया। उस समय लोकान्तिक देव श्री भगवान के पास उपस्थित हुए और लोक कल्याण के लिए भगवान से दीक्षा लेने की प्रार्थना करने लगे। भगवान ने नियमानुसार वार्षिक दान दिया। माघ शुक्ला १२ के दिन अभिजितनक्षत्र में इन्द्रों के द्वारा तैयार की गई 'अर्थसिद्धा' नामकी शिविका पर आरूढ़ होकर 'सहस्राम्र' उद्यान में पधारे। वहाँ एक हजार राजाओं के साथ भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण की। परिणामों की उच्चता के कारण भगवान को उसी क्षण मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। दीक्षा के समय भगवान ने छठ की तपस्या की थी। दूसरे दिन अयोध्या नगरी के राजा इन्द्रदत्त के घर परमान्न (खीर) से पारणा किया। उनके प्रभाव से वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट हुए।

अठारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में विचरण कर भगवान अयोध्या नगरी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ षष्ठ तप कर शाल वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। शुक्ल ध्यान की परमोच्च स्थिति में भगवान ने घाति कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान और केवलदर्शन

प्राप्त किया । देवों ने समवशरण रचा । भगवान ने देशना दी । भगवान की देशना सुनकर अनेक नर नारियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की । उनमें वज्रनाथ आदि एक सौ सोलह गणधर मुख्य थे । भगवान के मुख से त्रिपदी को सुनकर उन्होंने चौदह पूर्व सहित द्वादशांगी की रचना की । भगवान की देशना के पश्चात वज्रनाथ गणधर ने धर्म देशना दी । यह देशना द्वितीय प्रहर तक चलती रही ।

भगवान के शासन रक्षक देव यक्षेश्वर एवं शासन देवी कालिका थी । चौतीस अतिशय से युक्त भगवान अपने विशाल शिष्य परिवार के साथ ग्रामानुग्राम भव्यों को प्रतिबोध देते हुए विचरने लगे ।

भगवान के ३००००० साधु, ६३०००० साध्वियाँ, ९८०० अवधिज्ञानी, १५०० चौदह पूर्वधर, ११६५० मनःपर्ययज्ञानी ११००० वादलब्धि वाले, २८८००० श्रावक एव ५२७००० श्राविकाएँ हुई । कैवलज्ञान प्राप्त करने के बाद आठ पूर्वांग अठारहवर्षन्यून लाख पूर्व व्यतीत होने पर एवं अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान **समेतशिखर** पर पधारे । वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया । वैशाख मास की शुक्ल अष्टमी के दिन सम्पूर्ण कर्मों का अन्त कर भगवान हजार मुनियों के साथ निर्वाण को प्राप्त हुए । इन्द्रादि देवों ने भगवान का देह संस्कार कर निर्वाण महोत्सव मनाया ।

भगवान ने कुमारावस्था में साढ़े बारह लाख पूर्व, राज्य में आठ पूर्वांग सहित साढ़े छत्तीस लाख पूर्व एवं आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व दीक्षा में व्यतीत किये । इस प्रकार भगवान की कुल आयु पचास लाख पूर्व की थी । संभवनाथ भगवान के निर्वाण के बाद दस लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर भगवान् अभिनन्दन मोक्ष पधारे ।

५. भगवान सुमतिनाथ

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती विजय में 'शंखपुर' नाम का नगर था । वहाँ 'जयसेन' नाम का राजा राज्य करता था ।

उसकी सुदर्शना नाम की रानी थी। सुदर्शना को सन्तान न होने से वह सदा दुःखी रहा करती थी।

अपने पति के कहने से उसने कुल देवी की आराधना की। कुल देवी प्रकट हुई। रानी ने पुत्र मांगा। देवी यह वरदान देकर चली गई कि एक जीव देवलोक से चवकर तेरे घर में पुत्र रूप में जन्म लेगा।

समय पर रानी गर्भवती हुई। उस रात्रि में महारानी ने सिंह का स्वप्न देखा। गर्भ के प्रभाव से रानी को दया पलवाने का और अठाई महोत्सव कराने का दोहद उत्पन्न हुआ। महाराजा ने उसे पूरा किया।

समय आने पर पुत्र हुआ। उसका नाम पुरुषसिंह रखा। पुरुषसिंह का युवावस्था में आठ सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह हुआ।

एक दिन कुमार उद्यान में गया वहाँ उसने 'विजयनन्दन' नाम के आचार्य को देखा। उनका उपदेश सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। कुमार ने माता पिता को पूछ कर 'विजयनन्दन' आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और निरतिचार संयम का पालन करते हुए कठोर तप करने लगे। 'तीर्थङ्कर' नाम कर्म का उपार्जन करने वाले बीस स्थानों में से किसी एक स्थान की उत्कृष्ट भावना से आराधना कर तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन पूर्वक देह त्याग कर पुरुषसिंह मुनि 'वैजयन्त' नामक अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देव बने।

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। वहाँ 'मेघ' नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'मंगलादेवी' था। 'पुरुषसिंह' का जीव 'वैजयन्त' देव का आयु पूर्ण कर श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में महारानी मंगलावती के उदर में उत्पन्न हुआ। महारानी ने तीर्थङ्कर को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न देखे। रानी गर्भवती हुई। गर्भ काल के पूर्ण होने पर वैशाख शुक्ला अष्टमी के दिन मघा नक्षत्र के योग

में क्रौंच पक्षी के चिन्ह से चिह्नित सुवर्णकान्ति वाले इक्ष्वाकुकुल के दीपक पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्म से तीनों लोक प्रकाशित हो उठे। दिक्कुमारिकाएँ आईं। इन्द्रादि देवों ने भगवान को मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक किया। जब भगवान गर्भ में थे, तब कुल की शोभा बढ़ाने वाली उत्तम बुद्धि उत्पन्न हुई थी अतः माता पिता ने बालक का नाम 'सुमति' रखा। युवावस्था में भगवान का विवाह किया गया। उस समय भगवान की काया तीनसौ धनुष्य ऊँची थी। जन्म से दसलाख पूर्व बीतने पर पिता के आग्रह से भगवान ने राज्य ग्रहण किया। बारह पूर्वाङ्ग सहित उनतीसलाख, पूर्व राज्यावस्था में रहने के बाद भगवान ने दीक्षा लेने का निश्चय किया। भगवान के मनोगत विचारों को जानकार लोकान्तिक देवों ने भी जग कल्याण के लिये दीक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की तदनुसार भगवान ने वर्षीदान दिया। वर्षीदान के समाप्त होने पर देवों द्वारा तैयार की गई 'अभयकरा' नाम की शिविका पर भगवान आरूढ़ हुए और सुर असुर एवं मनुष्यों के विशाल समूह के साथ सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वैशाख शुक्ला नवमी के दिन मध्याह्न के समय मघा नक्षत्र के योग में भगवान ने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। भगवान को उसी क्षण चतुर्थ ज्ञान मनःपर्यय उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन भगवान ने 'विजयपुर' के राजा 'पद्म' के घर परमान्न से पारणा किया उस दिन पद्मराजा के घर वसुधारा आदि पांच दिव्य प्रकट हुए।

बीस वर्ष तक भगवान छद्मस्थ अवस्था में पृथ्वी पर विचरण करते रहे।

अनेक ग्राम नगरों को पावन हुए भगवान अयोध्या नगरी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ प्रियंगु वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। उस दिन भगवान के षष्ठ तप था। चैत्र शुक्ला, एकादशी के के दिन मघा नक्षत्र में भगवान ने समस्त घाती कर्मों को क्षय कर

केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। उस में पूर्व द्वार से प्रवेश कर एक कोस सोलह धनुष ऊँचे चैत्य वृक्ष के नीचे 'नमःतीर्थाय' ऐसा कह कर रत्न सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गये। भगवान उपस्थित परिषद् को उपदेश देने लगे। भगवान की देशना सुनकर अनेक नर नारियों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की उनमें 'चमर' आदि सौ गणधर मुख्य थे। भगवान से त्रिपदी का श्रवण कर गणधरों ने द्वादशांगी की रचना की। प्रथम-प्रहर में भगवान ने अपनी देशना समाप्त कर दी। द्वितीय प्रहर में गणधर श्री 'चमर' ने देशना दी। द्वितीय प्रहर में 'चमर' गणधर ने अपनी देशना समाप्त की। भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। वे विशाल साधु साध्वी-परिवार के साथ विचरण करते हुए भव्यों को प्रतिबोध देने लगे।

भगवान के तीर्थ में 'तुंवरु' नामक यक्ष एवं महाकाली नाम की शासन देवी हुई।

भगवान के परिवार में ३,२०००० साधु, ५,३०००० साध्वीं, २४०० चौदह पूर्वधर, ११००० अवधिज्ञानी, १०४५० मनःपर्ययज्ञानी १३००० केवलज्ञानी, १८४०० वैक्रियलब्धिधारी, १०४५० वादी, २८१००० श्रावक एवं ५,१६००० श्राविकाएँ थीं।

वे केवलज्ञान प्राप्ति के बाद वीस वर्ष बारह पूर्वांग न्यून एक लाख पूर्व तक पृथ्वी विचारण करते रहे। अपना मोक्ष काल नजदीक जानकर प्रभु **समेतशिखर** पर पधारे वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। एक मास के अन्त में चैत्र शुक्ला नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में अवशेष कर्मों को खपाकर एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया। भगवान का देह संस्कार इन्द्रों ने किया।

भगवान दस लाख पूर्व कौमार अवस्था में, उनतीस लाख बारह पूर्वाङ्ग राज्य अवस्था में एवं बारह पूर्वाङ्ग कम लाख पूर्व चारित्रावस्था

में न रहे । इस प्रकार भगवान की कुल आयु चालिस लाख पूर्व की थी। भगवान 'अभिनन्दन' के निर्वाण के पश्चात नौलाख करोड़ सागरोपम बीतने पर सुमतिनाथ भगवान मोक्ष में पधारे ।

६. भगवान पद्मप्रभ

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र के वत्स विजय में 'सुसीमा' नाम की नगरी थी । वहाँ 'अपराजित' नाम के शूर वीर राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में सारी प्रजा सुख पूर्वक निवास करती थी।

एक बार अरिहंत भगवान का नगरी में आगमन हुआ । राजा भगवान के दर्शन करने गया और उनकी वाणी सुनने लगा। भगवान की वाणी सुनकर उसे वैराग्य हो गया । उसने अपने पुत्र को राज्य गद्दी पर बिठला कर उत्सव पूर्वक भगवान के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली । दीक्षा ग्रहण करने के बाद उत्कृष्ट तप संयम की आराधना करते हुए उसने 'तीर्थङ्कर' नामकर्म का उपार्जन किया । अन्तिम समय में संलेखना पूर्वक देह का त्याग कर वह सर्वोच्च ग्रैवेयक में महान ऋद्धि सम्पन्न देव बना ।

वत्सदेश की राजधानी कोशांबी थी । वहाँ के शासक का नाम 'धर' था । महाराज 'धर' की रानी का नाम 'सुसीमा' था । अपराजित मुनि का जीव देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके चौदह महास्वप्न पूर्वक, माघ कृष्णा छठ की रात्रि में, चित्रा नक्षत्र मे महारानी 'सुसीमा' की कुक्षि में उत्पन्न हुआ । गर्भ काल पूरा होनेपर कार्तिक कृष्णा द्वादशी को चित्रा नक्षत्र के योग में भगवान का जन्म हुआ । जन्मोत्सव आदि तीर्थङ्कर परम्परा के अनुसार हुआ । गर्भ में माता को 'पद्म' की शय्या का दोहद होने से बालक का नाम पद्मप्रभ रक्खा गया । युवावस्था में भगवान का विवाह हुआ । साढ़े तीन लाख पूर्व तक युवराज रहकर फिर भगवान का राज्यारोहण हुआ। साढ़े इक्कीस लाख पूर्व और १६ पूर्वाङ्ग तक राज्य संचालन किया। इसके बाद कार्तिक कृष्णा तेरस को चित्रा नक्षत्र के योग में संसार

का त्याग कर पूर्ण संयमी बन गये । दीक्षा के समय आप को बेले का तप था । छह महीने तक कठोर साधना करते हुए आपने घनघाती कर्मों को क्षय किया और चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र के योग में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया ।

केवलज्ञान प्राप्त कर, आपने चार तीर्थ की स्थापना की । आपने अपने तीर्थ प्रवर्तन के समय अनेक भव्य प्राणियों का उद्धार किया ।

आपने सोलह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व तक संयम पर्याय का पालन किया । इस प्रकार कुल तीस लाख पूर्व का आयुष्य भोग कर मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को चित्रा नक्षत्र में एक मास की संलेखना पूर्वक आप **समेतशिखर** पर ३०८ मुनियों के साथ सिद्धगति को प्राप्त हुए ।

भगवान के सुव्रत आदि १०७ गणधर, ३३०००० साधु, ४२०००० साध्वी, २३०० चौदह पूर्वधर, १०००० अवधिज्ञानी, १०३०० मनःपर्यवज्ञानी, १२००० केवलज्ञानी, १६१०८ वैक्रिय-लब्धिधारी, ९६०० वादलब्धि सम्पन्न, २७६००० श्रावक एवं ५०५००० श्राविकाओं का परिवार था ।

भगवान सुमतिनाथ के निर्वाण के बाद ९० हजार करोड़ साग-रोपम बीतने पर भगवान पद्मप्रभ निर्वाण को प्राप्त हुए ।

७. भगवान सुपार्श्वनाथ

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह में 'क्षेमपुरी' नामकी रमणीय नगरी थी । वहाँ 'नंदिषेण' नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे । वे बड़े धर्मात्मा थे । धर्ममय जीवन व्यतीत करने के कारण उन्हें संसार के प्रति विरक्ति होगई । उन्होंने 'अरिमर्दन' नामक स्थविर आचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की । उत्कृष्ट भावना से तप और संयम की साधना करते हुए 'नंदिषेण' मुनि ने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया । अन्तिम समय में सलेखना-संथारा करके समाधि पूर्वक देह का त्याग

किया और मर कर वे ग्रैवेयक विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ उन्हें २८ सागरोपम का आयुष्य प्राप्त हुआ।

काशी देश की राजधानी का नाम 'वाणारसी' था। यहाँ 'प्रतिष्ठ-सेन' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'पृथ्वी' था। जैसा नाम वैसे ही उनमें गुण थे। नंदिषेण मुनि का जीव देवलोक से चवकर भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को अनुराधा नक्षत्र में महारानी पृथ्वी की कुक्षि में चौदह महास्वप्न पूर्वक उत्पन्न हुआ। गर्भ काल में महारानी ने क्रमशः पांच और नौ फणवाले नाग की शय्या पर स्वयं को सोयी हुई देखा। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को विशाखा नक्षत्र के योग में भगवान ने जन्म ग्रहण किया। अन्य तीर्थंकरों की तरह भगवान का भी इन्द्रादि देवों ने जन्मोत्सव आदि किया। गर्भ काल में माता का पार्श्व (छाती और पेट के अगल बगल का हिस्सा) बहुत ही उत्तम और सुशोभित लगता था अतः पुत्र का नाम श्री सुपार्श्वकुमार रखा गया। सुपार्श्वकुमार ने क्रमशः यौवन-वय को प्राप्त किया। युवा होने पर सुपार्श्वकुमार का अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। पाँच लाख पूर्व तक युवराज पद पर अधिष्ठित रहने के बाद पिता ने सुपार्श्वकुमार को राज्य गद्दी पर स्थापित किया। पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को आपने खूब समृद्ध किया और न्याय पूर्वक प्रजा का पालन किया। इस प्रकार चौदह लाख पूर्व और बीस पूर्वाङ्ग तक राज्य का संचालन करने के बाद ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को अनुराधा नक्षत्र में बेले का तप करके आप पूर्ण संयमी बन गए। नौ मास की कठिन साधना के बाद घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त किया। वह दिन फाल्गुन कृष्ण छठ का था और उस दिन चित्रा नक्षत्र का भी योग था।

भगवान के मुख्य गणधर का नाम 'विदर्भ' था। आपके कुल ९५ गणधर थे। तीन लाख साधु, चार लाख तीस हजार साध्वियाँ, २०३० चौदह पूर्वधर, ९००० अवधिज्ञानी, ९१५० मनःपर्यवज्ञानी,

११००० केवलज्ञानी, १५३०० वैक्रियलब्धिधारी, ८४०० वादलब्धि-संपन्न, २५७००० श्रावक और ४९३००० श्राविकाओं का उनका परिवार था।

केवलज्ञान प्राप्त कर बीस पूर्वांग और नौ मास कम एक लाख पूर्व तक भव्य प्राणियों को भगवान प्रतिबोध देते रहे। बीस लाख पूर्व का आयु पूर्ण कर भगवान ने **समेतशिखर** पर्वत पर फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को मूल नक्षत्र के योग में पांच सौ मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान 'पद्मप्रभ' के निर्वाण के पश्चात् नौ हजार करोड़ सागरोपम बीतने पर सुपार्श्वनाथ का निर्वाण हुआ।

८. भगवान चन्द्रप्रभ

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में 'मंगलावती' विजय में 'रत्नसंचया' नाम की नगरी थी। वहाँ 'पद्म' नाम के वीर राजा राज्य करते थे। वे संसार में रहते हुए भी जल कमलवत् निरासक्त थे। कोई कारण पाकर उन्हें संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने युगन्धर नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। चिरकाल तक संयम का उत्कृष्ट भाव से पालन करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन किया। आयु पूर्ण होने पर पद्मनाभ मुनि वैजयन्त नामक विमान में ऋद्धि संपन्न देव हुए। वहाँ वे सुखपूर्वक देव-आयु व्यतीत करने लगे।

स्वर्ग से चवकर चैत्रवदि ५ के दिन अनुराधा नक्षत्र में, 'पद्म' का जीव 'चन्द्रानना' नगरी के पराक्रमी राजा 'महासेन' की रानी 'लक्ष्मणा' के गर्भ में आया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का गर्भ कल्याणक मनाया।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर पौष कृष्णा द्वादशी को अनुराधा नक्षत्र में लक्ष्मणा देवी ने पुत्र को जन्म दिया। इन्द्रादि देवों ने

णक मनाया । माता को गर्भ काल में चन्द्रपान की इच्छा हुई इससे पुत्र का नाम 'चन्द्रप्रभ' रखा गया ।

बाल्यकाल को पारकर जब भगवान युवा हुए तब उनका अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ । ढाईलाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहने के बाद प्रभु का राज्याभिषेक हुआ । साढ़े छह लाख पूर्व और चौबीस पूर्वाङ्ग तक राज्य का संचालन किया । तदनन्तर लोकान्तिक देवों ने आकर दीक्षा लेने की प्रार्थना की । उनकी बात मानकर भगवान ने वर्षीदान दिया और पौष वदि १३ के दिन अनुराधा नक्षत्र में सहस्राम्र उद्यान में जा, एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की । इन्द्रादि देवोंने दीक्षा कल्याणक मनाया । दीक्षाग्रहण के दिन आपने बेले का तप किया था । तीसरे दिन 'सोमदत्त' राजा के यहाँ क्षीरान्न का पारणा किया ।

तीन महीने की उत्कृष्ट तप साधना करते हुए भगवान् पुनः चन्द्रानना नगरी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और पुन्नाग वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में लीन हो गये । ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था में फाल्गुनवदि ७ के दिन अनुराधा नक्षत्र में भगवान को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । इन्द्रादि देवोंने केवलज्ञान उत्सव मनाया और समवशरण की रचना की । सिंहासन पर विराजकर प्रभु ने भव्य जीवों को उपदेश दिया ।

भगवान के 'दत्त' आदि ९३ गणधर हुए । उनके २५०००० साधु, ३८०००० साध्वियाँ, २००० चौदह पूर्वधर, ८००० अवधिज्ञानी, ८००० मनःपर्यवज्ञानी, १०००० केवली, १४००० वैक्रियलब्धिधारी, ७६०० वादी २५०००० श्रावक और ४९१००० श्राविकाएँ हुईं ।

२४ पूर्व तीन मास न्यून एक लाख पूर्व तक विहार कर भगवान निर्वाण-काल समीप जान **समेतशिखर** पर्वत पर पधारे । वहाँ पर एक हजार मुनियों के साथ, एक मास का अनशन कर, निर्वाण प्राप्त किया । निर्वाण का दिन भाद्रपद वदि सप्तमी था और श्रवण

नक्षत्र का योग था। भगवान के निर्वाणोत्सव को इन्द्रादि देवों ने मनाया।

चन्द्रप्रभस्वामी की कुल आयु १० लाख पूर्व की थी। जिन में ढाईलाख पूर्व शिशुकाल में विताये। २४ पूर्व सहित साढ़े छ लाख पूर्व पर्यन्त राज्य किया और २४ पूर्व सहित एक लाख पूर्व तक वे साधु रहे। उनका शरीर १५० धनुष ऊँचा था।

सुपार्श्व स्वामी के मोक्ष गये पीछे नौ सौ कोटी सागरोपम बीतने पर चन्द्रप्रभ जी मोक्ष में गये।

९. भगवान सुविधिनाथ

पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्व विदेह में पुष्कलावती विजय है। उसकी नगरी 'पुंडरीकिनी' थी। महापद्म वहाँ का राजा था। वह बड़ा ही धर्मात्मा तथा प्रजावत्सल था। वह संसार से विरक्त हो गया और उसने जगन्नद नामक स्थविर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। एकावली जैसी कठोर तपश्चर्या करते हुए महापद्ममुनि ने तीर्थङ्कर नाम-कर्म का उपार्जन किया। अन्त में वे शुभ अध्यवसाय से मर कर वैजयन्त नामक देव विमान में महर्द्धिक देव रूप में उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कांकदी नाम की नगरी थी। उस भव्य नगरी का शासक महाराजा 'सुग्रीव' था। उसकी महारानी का नाम 'रामा' था। वैजयन्त विमान में ३३ सागरोपम का आयु पूर्ण करके महापद्मदेव का जीव फाल्गुन कृष्णा नौमी को मूल नक्षत्र में रामादेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। चौदह महास्वप्न देखे। इन्द्रादि देवों ने गर्भ कल्याणक को मनाया। मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को मूल नक्षत्र में पुत्र जन्म हुआ। देवी देवताओं ने और इन्द्रों ने जन्मोत्सव किया। गर्भा-वस्था में गर्भ के प्रभाव से रामादेवी सभी प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने की विधि में कुशल हुई, इसलिये पुत्र का नाम सुविधि रखा और गर्भ काल में माता को पुष्प का दोहद उत्पन्न हुआ था इसलिये बालक का दूसरा नाम 'पुष्पदन्त' रक्खा गया।

युवा होने पर पिता के आग्रह से भगवान ने विवाह किया। वे ५० हजार पूर्व तक युवराज रहे। बाद में पिता ने उन्हें राज्य गद्दी पर अधिष्ठित किया। पचास हजार पूर्व और अट्ठाइस पूर्वाङ्ग तक राज्य का शासन किया। एक समय लोकान्तिक देवों नें आकर प्रार्थना की कि हे प्रभु! अब आप जगत के हितार्थ दीक्षा धारण कीजिये तब प्रभुने वर्षीदान दिया और मार्गशीर्ष कृष्णा ६ के दिन मूल नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ सहस्राम्रवन में आकर दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवों ने भगवान का दीक्षा-उत्सव मनाया। श्वेतपुर के राजा पुष्प के घर भगवान ने तीसरे दिन परमान्न से पारणा किया।

वहाँ से विहार कर चार मास बाद भगवान उसी उद्यान में आये और मालुर वृक्ष के नीचे 'कायोत्सर्ग' कर, कार्तिक सुदि ३ मूल नक्षत्र में चार घनघाती कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त किया।

भगवान के परिवार में ८८ गणधर थे, जिनमें मुख्य गणधर का नाम 'वराह' था। दो लाख साधु एवं एक लाख २० हजार साध्वियाँ थीं। आठ हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे। १५०० चौदह पूर्वधारी, ७५०० मनःपर्ययज्ञानी, ७५०० केवलज्ञानी, १३००० वैक्रियलब्धि वाले, २२९००० श्रावक और ४७२००० श्राविकाएँ थी।

आयुष्य काल की समाप्ति निकट आनेपर भगवान **समेतशिखर** पर एक हजार मुनियों के साथ पधारे। एक मास का अनशन कर कार्तिक कृष्णा नौमी को मूल नक्षत्र में अट्ठाइस पूर्वाङ्ग और चार मास कम एकलाख पूर्व तक तीर्थङ्कर पद भोग कर मोक्ष पधारे।

भगवान के निर्वाण के बाद कुछ समय तक तो धर्मशासन चलता रहा, किन्तु बाद में हुण्डा अवसर्पिणी काल के दोष से श्रमणधर्म विच्छेद हो गया। एक भी साधु नहीं रहा। लोग वृद्ध श्रावकों से धर्म का स्वरूप जानते थे। भक्तगण वृद्ध श्रावकों की अर्थ से पूजा करने

लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे धार्मिक शिथिलता बढ़ने लगी। यह शिथिलता भगवान शीतलनाथ के तीर्थ प्रवर्तन तक अनवरत रूप से चलती रही। इस काल में ब्राह्मणों का ही भरतक्षेत्र पर एकछत्र राज्य चलता रहा। इस प्रकार छः तीर्थङ्करों के अन्तर में [धर्मनाथ से शान्तिनाथ के अन्तर में] इसी प्रकार बीच-बीच में तीर्थोच्छेद होता रहा और मिथ्यात्व बढ़ता रहा।

१०. भगवान शीतलनाथ

पुष्करार्ध द्वीप के वज्र नामक विजय में 'सुसीमा' नाम की नगरी थी। वहाँ 'पद्मोत्तर' नामके राजा राज्य करते थे। उन्हें संसार की असारता का विचार करते हुए वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अस्ताघ नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर वे कठोर तप करने लगे। तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन के बीस स्थानों में से किसी एक स्थान का आराधन कर उन्होंने तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में संथारा कर वे प्राणत नामक देव विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में भद्दिलपुर नाम का नगर था। वहाँ 'दृढरथ' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'नंदा' था। पद्मोत्तर मुनि का जीव प्राणत 'कल्प' से चवकर वैशाख कृष्णा छठ के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के योग में महारानी नंदा के उदर में आया। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भ काल के पूर्ण होने पर माघ कृष्णाद्वादशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के योग में श्रीवत्स के चिन्ह से चिन्हित सुवर्णकान्तिवाले पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही समस्त लोकों में प्रकाश फैल गया। समस्त लोकों में शान्ति व्याप्त होगई। इन्द्रादि देवों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। बाद में दृढरथ राजा ने भी पुत्र जन्मोत्सव किया। जब भगवान माता के गर्भ में थे तब दृढरथ राजा के शरीर में दाह उत्पन्न हो गया था।

अनेक उपचार करने पर भी वह शान्त नहीं हुआ किन्तु महारानी के स्पर्श करते ही दाह रोग शान्त हो गया इसलिये माता पिता ने बालक का नाम "शीतलनाथ" रखा। अनेक धात्री, देव एवं देवियों के संरक्षण में भगवान युवा हुए। उनका अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह किया गया।

दृढरथ राजा शीतलनाथ को राज्य भार संभला कर व्रती बन गये। पचास हजार वर्ष तक अपने अतुल पराक्रम से राज्य करते हुए एक समय उन्हें वैराग्य उत्पन्न होगया। उन्होंने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। उस समय लोकान्तिक देवों ने आकर लोक कल्याण के लिये दीक्षा लेने की भगवान से प्रार्थना की तदनुसार वर्षीदान देकर माघ कृष्णा १२ के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में देवों द्वारा सजाई गई 'चन्द्रप्रभा' नामक शिविका पर आरूढ़ होकर सहस्राम्र उद्यान में आये। दिन के अन्तिम प्रहर में छठ के तप के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान के साथ एक हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली। भगवान को उसी समय मनःपर्यय-ज्ञान उत्पन्न हो गया।

तीसरे दिन भगवान ने छठ तप का पारणा रिष्ट नगर के राजा पुनर्वसु के घर परमान्न से किया। वहाँ वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट हुए।

तीन महिने तक छद्मस्थ काल में विचरण कर भगवान भद्दिलपुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ पीपल वृक्ष के नीचे प्रतिमास्थित हो ध्यान करने लगे। पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में घनघाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का ज्ञान कल्याणक मनाया। देवों ने सम-वशरण की रचना की। भगवान पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश कर मध्य में रहे हुए एक हजार अस्सी धनुष ऊँचे चैत्य वृक्ष के नीचे रत्न सिंहासन पर बैठ गये। उपस्थित परिषद् को भगवान देशना सुनाने लगे। भगवान के उपदेश से अनेक नर नारियों ने चारित्र ग्रहण किया।

उनमें आनन्द आदि-८१ गणधर मुख्य थे । भगवान की देशना समाप्त होने पर आनन्द गणधर ने उपदेश दिया । भगवान ने चार तीर्थ की स्थापना की ।

भगवान के शासन का अधिष्ठायक ब्रह्मयक्ष और अशोका नाम की देवी अधिष्ठायिका हुई ।

भगवान शीतलनाथ ने विशाल साधु साध्वी परिवार के साथ अन्यत्र विहार कर दिया । तीन मास कम पच्चीस हजार वर्ष तक केवल अवस्था में भगवान पृथ्वी को पावन करते रहे । अपना निर्वाण काल समीप जान कर प्रभु **समेतशिखर** पर पधारे । वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया । एक मास के अन्त में वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में अवशेष कर्मों को खपा कर भगवान हजार मुनियों के साथ मोक्ष में पधारे । इन्द्रों ने भगवान का देह संस्कार किया ।

भगवान के परिवार में एक लाख मुनि, एक लाख छह हजार साध्वियाँ, १४०० चौदह पूर्वधर, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी, साढे सात हजार मनःपर्ययज्ञानी, सात हजार केवलज्ञानी, बारह हजार वैक्रियलब्धिवाले, पाँच हजार आठ सौ वाद लब्धिवाले, दो लाख नवासी हजार श्रावक एवं चार लाख अट्ठावन हजार श्राविकाएँ थीं।

भगवान ने कुमारावस्था में पच्चीस हजार पूर्व, राजत्वकाल में पचास हजार पूर्व, दीक्षा पर्याय में पच्चीस हजार पूर्व व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान की कुल आयु एक लाख पूर्व की थी ।

भगवान सुविधिनाथ के निर्वाण के पश्चात नौ कोटि सागरोपम बीतने पर भगवान शीतलनाथ मोक्ष में पधारे ।

११. भगवान श्रेयांसनाथ

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व विदेह में कच्छ विजय के अन्दर 'क्षेमा' नाम की नगरी थी वहाँ 'नलिनीगुल्म' नाम का तेजस्वी एवं पराक्रमी राजा था ।

वह प्रजा का पुत्र की तरह पालन करता था। वह अपराध का दण्ड और गुणों की पूजा उचित रूप से करता था। उसके राज्य में सभी सुखी और समृद्ध थे।

एक बार अनित्य भावना में लीन हुए महाराजा नलिनीगुल्म के हृदय में वैराग्य बस गया—उन्होंने वज्रदत्त मुनि के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। साधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए उन्हों ने तीर्थङ्कर नामकर्म का बंध कर लिया। वे बहुत वर्षों तक संयम का पालन करते हुए आयु पूर्ण करके महाशुक्र देवलोक में महर्द्धिक देव रूप से उत्पन्न हुए।

जम्बू द्वीप के भरत खण्ड मे सिंहपुर नाम का एक नगर था। उस विशाल मनोहर एवं समृद्ध नगर के स्वामी थे महाराजा विष्णुराज। वे इन्द्रियजयी थे। वे न्याय नीति एवं सदाचार पूर्वक शासन कर रहे थे। उनकी पटरानी का नाम विष्णुदेवी था। वह सुलक्षणी, सद्गुणों की पात्र और लक्ष्मी के समान सौभाग्य-शालिनी थी। नलिनी-गुल्म मुनि का जीव देवलोक का सुखमय जीवन व्यतीत करके आयुष्य पूर्ण होनेपर ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी के दिन श्रवण नक्षत्र के योग में विष्णु-देवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। विष्णुदेवी ने तीर्थङ्कर के योग्य चौदह महास्वप्न देखे। भाद्रपद कृष्णा द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में 'गेंडे' के चिन्ह से चिन्हित सुवर्णवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही समस्त दिशाएँ प्रकाश से प्रकाशित हो उठीं। देव-देविओं एवं इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। माता-पिता ने बालक का नाम श्रेयांसकुमार रखा। कुमार क्रमशः देव देवियों एवं धात्रियों के संरक्षण मे बड़े होने लगे। यौवनवय प्राप्त होने पर भगवान की काया ८० धनुष ऊँची थी। उस समय अनेक देश के राजाओं ने अपनी पुत्रियों का विवाह श्रेयांसकुमार के साथ किया। कुमार सुख पूर्वक रहने लगे।

भगवान ने, जन्म से इक्कीस लाख वर्ष बीतने-पर, पिता के आग्रह से राज्य ग्रहण किया । बयालिसलाख वर्ष आप अपने राज्य पर अनुशासन करते रहे । इसके बाद आपने दीक्षा लेने का निश्चय किया तदनुसार लोकान्तिक देव आए और तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना कर गये । भगवान ने वर्षीदान दिया । देवों द्वारा बनाई गयी 'विमलप्रभा' नाम की शिविका पर आरूढ़ होकर भगवान सहस्राम्रउद्यान में पधारे । वहाँ फाल्गुन मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन पूर्वाह्ण के समय श्रवण नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग आने पर षष्ठ तप के साथ भगवान ने एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की ।

तीसरे दिन सिद्धार्थ नगर के नन्द राजा के घर प्रभु ने परमान्न से पारणा किया । देवों ने वहाँ पांच दिव्य प्रकट किये । दो मास तक छद्मस्थकाल में विचरण कर भगवान सिंहपुरी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे । वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे 'कायोत्सर्ग' करने लगे । ध्यान करते हुए भगवान ने शुक्ल ध्यान की परमोच्च स्थिति में पहुँच कर समस्त घाती कर्मों को नष्ट कर दिया । माघ मास की अमावस्या के दिन श्रवण नक्षत्र के साथ चन्द्र के योग में षष्ठ तप की अवस्था में केवलज्ञान एवं केवलदर्शन उत्पन्न हो गया । इन्द्रादि देवों ने केवलज्ञान महोत्सव किया । समवशरण की रचना हुई । उसमें विराज कर भगवान ने देशना दी । देशना सुनकर गोशुभ आदि ७६ गणधर हुए । अनेक राजाओं ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की भगवान ने तीर्थ की स्थापना की और विशाल साधु समूह के साथ विहार कर दिया ।

भगवान के परिवार में चौरासी हजार साधु, एक लाख तीन हजार साध्वियाँ, १३०० चौदहपूर्वधारी, छः हजार अवधिज्ञानी, छः हजार मनःपर्यवज्ञानी, साढे छः हजार केवली, ग्यारह हजार वैक्रियलब्धिधारी, पांच हजार वादी, २ लाख ७९ हजार श्रावक एवं ४ लाख ४८ हजार श्राविकाएँ थीं ।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान **समेतशिखर** पर पधारे। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। श्रावण मास की कृष्णा तृतीया के दिन धनिष्ठा नक्षत्र में एक मास का अनशन कर एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया। भगवान का निर्वाणोत्सव इन्द्रादि देवों ने किया।

कौमार वय में २१ लाख वर्ष, राज्य पर ४२ लाख वर्ष, दीक्षा पर्याय में २१ लाख वर्ष, इस प्रकार भगवान ने कुल ८४ लाख वर्ष आयु के व्यतीत किये।

भगवान शीतलनाथ निर्वाण के बाद ६६ लाख और ३६ हजार वर्ष तथा सौ सागरोपम कम एक कोटी सागरोपम बीतने पर श्रेयांसनाथ भगवान मोक्ष में पधारे।

१२. भगवानवासुपूज्य

पुष्कर द्वीपार्ध के पूर्वविदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में रत्नसंचया नाम की नगरी थी। वहाँ के शासक का नाम पद्मोत्तर था। वह धर्मात्मा न्यायी, प्रजापालक और पराक्रमी था। उसने संसार का त्याग करके वज्रनाभ मुनिराज के पास दीक्षा धारण की। संयम की कठोर साधना करते हुए उसने तीर्थङ्कर गोत्र का बन्ध किया और आयुष्य पूर्ण करके प्राणत कल्प में महर्द्धिक देव बना।

जम्बू द्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में चंपा नाम की नगरी थी। उस सुन्दर नगरी के महाराजा वसुपूज्य थे। उनकी पट्टरानी का नाम 'जया' था। प्राणतकल्प का आयु पूर्ण करके पद्मोत्तर मुनि का जीव ज्येष्ठ शुक्ला नवमी के दिन शतभिषा नक्षत्र में जया रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी के दिन शतभिषा नक्षत्र में रक्तवर्णीय महिष-लांछन से युक्त एक पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। देवी-देवताओं और इन्द्रों ने जन्मोत्सव किया। पिता के नाम पर ही पुत्र का नाम वासुपूज्य दिया गया। कुमार देव देवियों एवं धात्रियों के संरक्षण में बढ़ने लगे

यौवन वय के प्राप्त होने पर भगवान की काया ७० धनुष ऊँची हो गई। अब राजकुमार वासुपूज्य के साथ अपनी राजपुत्रियों का विवाह कराने के लिए अनेक राजाओं के संदेश महाराजा वसुपूज्य के पास आने लगे। माता पिता भी अपनें पुत्र को विवाहित देखना चाहते थे किन्तु वासुपूज्य सांसारिक भोग विलास से सदैव विरक्त रहते थे। उन्हें संसार के प्रति किंचित भी आसक्ति नहीं थी। एक दिन अवसर देखकर माता पिता ने वासुपूज्य से कहा—पुत्र ! हम वृद्ध होते जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि तुम विवाह करके हमारे इस भार को अपने कन्धे पर ले लो। हमें तुम्हारी यह उदासीनता अच्छी नहीं लगती। पिता की बात सुनकर वासुपूज्य कहने लगे—पूज्य पिताजी ! आपका पुत्र-स्नेह मैं जानता हूँ किन्तु मै चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करते हुए ऐसे सम्बन्ध अनेक वार कर चुका हूँ। संसार सागर में भटकते हुए मैने जन्म मरणादि के अनन्त दुःख भोगे हैं। अब मै संसार से उद्विग्न हो गया हूँ इसलिए अब मेरी इच्छा मोक्ष प्राप्त करने की है। आप मुझे स्व—पर कल्याण के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करने आज्ञा दीजिए।

वासुपूज्य के तीव्र वैराग्य—भावना के सामने माता पिता को झुकना पड़ा। अन्त में उन्होंने उन्हें प्रव्रज्या लेने की स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् लोकान्तिक देवों ने भी भगवान को प्रव्रजित होने की प्रार्थना की। भगवान ने वर्षीदान दिया। देवों द्वारा सजाई गई पृथ्वी नाम की शिविका पर आरूढ़ हो विहारगृह नामक उद्यान में भगवान पधारे। उस दिन भगवान ने उपवास किया था। फाल्गुनी अमावस्या के दिन वरुण नक्षत्र में दिवस के अपराह्न में पंचमुष्टी लुंचन कर प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान के साथ छः सौ राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। भगवान को उस दिन मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्र द्वारा दिये गये देव-दूष्य को धारण कर भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया।

दूसरे दिन भगवान ने उपवास का पारणा महापुर के राजा सुनन्द के घर परमान्न से किया।

एक मास तक छद्मस्थकाल में विचरण कर भगवान विहारगृह नामक उद्यान में पधारे। वहाँ पाटल वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। माघ शुक्ल द्वितीया के दिन शतभिषा नक्षत्र में चतुर्थभक्त के साथ भगवान ने शुक्ल ध्यान की परमोच्च स्थिति में घनघाती कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान उत्सव किया। देवों ने समवशरण की रचना की। भगवान समवशरण में रत्न सिंहासन पर विराज कर देशना देने लगे। भगवान की देशना सुनकर अनेक नर नारियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उनमें सूक्ष्म आदि ६६ गणधर मुख्य थे।

भगवान के परिवार में ७२ हजार साधु, १ लाख साध्वियाँ, १२०० चौदह पूर्वधर, ५४०० अवधिज्ञानी, छ हजार एकसौ मनःपर्ययज्ञानी' छः हजार केवलज्ञानी, दस हजार वैक्रियलब्धिधारी, चार हजार सात सौ वादलब्धिधारी, दो लाख १५ हजार श्रावक एवं चार लाख ३६ हजार श्राविकाएँ हुईं। इस प्रकार अपने विशाल साधु परिवार के साथ एक मास कम चौवन लाख वर्ष तक केवली अवस्था में भव्यों को भगवान उपदेश देते रहे।

अपना मोक्ष काल समीप जानकर भगवान चंपा नगर पधारे। वहाँ आपने छः सौ मुनियों के साथ अनशन ग्रहण कर, एक मास के अन्त में अवशेष कर्मों को खपाकर, आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान ने कुमारावस्था में अठारह लाख वर्ष एवं व्रत में ५४ लाख वर्ष व्यतीत किये। इस प्रकार कुल ७२ लाख वर्ष आयु के पूर्ण होने पर भगवान मोक्ष में पधारे। भगवान श्रेयांस के निर्वाण के बाद चौवन सागरोपम बीतने पर भगवान वासुपूज्य का निर्वाण हुआ।

१३. भगवान विमलनाथ

धातकीखण्ड द्वीप के प्राग्विदेह क्षेत्र में भरत नामक विजय में महापुरी नाम की नगरी थी। वहाँ पद्मसेन नाम के राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा एवं न्यायप्रिय थे। उन्होंने सर्वगुप्त नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और साधना के सोपान पर चढ़ते हुए तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। कालान्तर में आयुष्य पूर्ण करके सहस्रार देवलोक में उत्पन्न हुए।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कांपिल्यपुर नामक नगर था। वहाँ 'कृतवर्मा' नामका न्यायप्रिय राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'श्यामा' था।

कृतवर्मा मुनि का जीव सहस्रार देवलोक से च्युत होकर वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र में श्यामादेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। चौदह महास्वप्न देखे। माघ मास की शुक्ला तृतीया के दिन मध्यरात्रि में उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र में शूकर से चिह्न से चिन्हित तप्तसुवर्ण की कान्तिवाले पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। देवी देवताओं एवं इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। गुण के अनुसार भगवान का नाम विमलनाथ रखा गया। युवा होने पर विमलकुमार का विवाह अनेक राजकुमारियों के साथ हुआ। साठ धनुष ऊँचे एवं एक सौ आठ लक्षण से युक्त प्रभु का उनके पिता ने राज्याभिषेक किया। ३० लाख वर्ष तक राज्य पद पर रहने के बाद भगवान ने वर्षीदान देकर देवों द्वारा तैयार की गई 'देवदत्ता' नामक शिविका पर आरुढ हो, माघ मास की शुक्ल चतुर्थी के दिन, उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र में, छठ तप सहित सहस्राम्र उद्यान में दीक्षा धारण की। साथ में एक हजार राजाओंने प्रव्रज्या ग्रहण की। उस समय भगवान को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्र द्वारा दिये गये देवदूष्य वस्त्र को धार कर भगवान ने विहार कर दिया।

तीसरे दिन 'धान्यकूट' नगर के राजा 'जय' के घर परमान्न से उन्होंने पारणा किया। उसके घर देवों ने पाँच दिव्य प्रकट किये।

दो वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहने के बाद भगवान पुनः कांपिल्यपुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ जम्बू-वृक्ष के नीचे पौष मास की शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में, षष्ठ तप की अवस्था में एवं शुक्ल ध्यान की परमोच्च स्थिति में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। भगवान की देशना से 'मंदर' आदि सत्तावन गणधर हुए। षण्मुख यक्ष एवं 'विदिता' नाम की शासन देवी हुई।

भगवान के परिवार में ६८ हजार साधु, १ लाख आठ सौ साध्वियाँ, ग्यारहसौ चौदह पूर्वधर, ४ हजार ८०० अवधिज्ञानी, ५ हजार ५०० सौ मनःपर्ययज्ञानी, ५५०० केवलज्ञानी, नौ हजार वैक्रिय लब्धिधारी, दो लाख आठ हजार श्रावक एवं ४ लाख ३४ हजार श्राविकाएँ थीं। केवलज्ञान के बाद दो वर्ष कम १५ लाख वर्ष तक भव्यों को प्रतिबोध देने के बाद, उन्होंने आषाढ़ कृष्णा सप्तमी के दिन पुष्य नक्षत्र में छ हजार साधुओं के साथ एक मास का अनशन ग्रहण कर **समेतशिखर** पर मोक्ष प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का निर्वाणोत्सव किया।

१५ लाख वर्ष कौमारावस्था में, ३० लाख वर्ष राज्यकाल में एवं १५ लाख वर्ष चारित्र में व्यतीत किये। भगवान की कुल आयु ६० लाख वर्ष की थी। भगवान वासुपूज्य के निर्वाण के तीस लाख सागरोपम बीतने पर भगवान विमलनाथ मोक्ष में पधारे।

स्वयम्भू वासुदेव और भद्र बलदेव, भगवान विमलनाथ के परम भक्त थे।

१४. भगवान अनन्तनाथ

धातकीखण्ड द्वीप के प्राग्विदेह क्षेत्र में ऐरावत नामक विजय में अरिष्टा नाम की नगरी थी। वहाँ पद्मरथ नामके राजा राज्य करते

थे । वे धर्मात्मा एवं न्यायप्रिय थे । उन्होंने चित्तरक्ष नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और साधना के सोपान पर चढ़ते हुए तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया । कालान्तर में वे आयुष्य पूर्ण करके प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए ।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी । वहाँ सिंहसेन नाम का न्यायप्रिय राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम 'सुयशा' था ।

पद्मरथ मुनि का जीव प्राणत देवलोक से च्युत होकर श्रावण कृष्ण सप्तमी के दिन रेवती नक्षत्र में सुयशा रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ । चौदह महास्वप्न देखे । वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन मध्यरात्रि में रेवती नक्षत्र में बाज के चिन्ह से चिन्हित तप्तसुवर्ण की कान्ति वाले पुत्र को महारानी ने जन्म दिया । देवी देवताओं एवं इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव किया । गुण के अनुसार भगवान का नाम 'अनन्तनाथ' रखा गया । युवा होने पर अनन्तनाथ का विवाह अनेक राजकुमारियों के साथ हुआ । पचास धनुष ऊँचे एवं एकसौआठ लक्षण से युक्त प्रभु का उनके पिता ने राज्याभिषेक किया । १५ लाख वर्ष तक राज्य पद पर रहने के बाद भगवान ने वर्षीदान देकर देवों द्वारा तैयार की गई 'सागरदत्ता' नामक शिविका पर आरूढ़ हो वैशाख मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन रेवती नक्षत्र में अपराह्न में छठ तप सहित सहस्राम्र उद्यान में दीक्षा धारण की । साथ में एक हजार राजाओं ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की । इन्द्र द्वारा दिये गये देवदूष्य वस्त्र को धारण कर भगवान ने विहार कर दिया ।

तीसरे दिन भगवान ने वर्द्धमान नगर के राजा विजय के घर परमान्न से पारणा किया । उसके घर देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये ।

तीन वर्ष तक छद्मस्थकाल में विचरने के बाद भगवान अयोध्या नगरी के सहास्राम्र-उद्यान में पधारे । अशोक वृक्ष के नीचे 'कायोत्सर्ग' में रहे । वैशाख कृष्ण १४ के दिन रेवती नक्षत्र में घनघाती कर्मों का

क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देवेन्द्रों ने केवलज्ञान उत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने देशना दी। देशना सुनकर 'यश' आदि ५० गणधर हुए। ६ सौ धनुष ऊँचा चैत्यवृक्ष था। पाताल नामक यक्ष एवं अंकुशा नाम की देवी, शासन के देव-देवी हुए।

भगवान के परिवार में छासठ हजार साधु, ६२ हजार साध्वियाँ, ९०० चौदह पूर्वधर,* ४३०० अवधिज्ञानी, ४५०० मनःपर्ययज्ञानी, ५ हजार केवलज्ञानी, ८ हजार वैक्रिय लब्धिधर, तीन हजार दो सौ वादी, २ लाख ६ हजार श्रावक एवं ४ लाख चौदह हजार श्राविकाएँ थीं।

व्रत ग्रहण के पश्चात् साढ़े सातलाख वर्ष बीतने पर चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन रेवती नक्षत्र में **समेतशिखर** पर एक मास का अनशन कर सात हजार साधुओं के साथ भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान ने कुमारावस्था में साढ़ेसात लाख वर्ष, १५ लाख वर्ष पृथ्वी पालन में एवं साढ़े सातलाख वर्ष व्रत पालन में-व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान की कुल आयु तीसलाख वर्ष की थी। विमलनाथ भगवान के निर्वाण से नौ सागरोपम व्यतीत होने पर अनन्तनाथ भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया।

आपके पुरुषोत्तम वासुदेव और प्रभ नाम के बलदेव परम भक्त थे।

१५. भगवान धर्मनाथ

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह में भरत नामक विजय में भद्दिल-पुर नाम का नगर था। वहाँ दृढरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसने विमलवाहन मुनि के समीप दीक्षा ली और कठोर साधना कर तीर्थंङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्तिम समय में संथारा लिया और काल कर वैजयन्त विमान में महर्द्धिक देव बना।

*प्रवचनसारोद्धार में एक हजार चौदह पूर्वधर और पाँच हजार मनःपर्ययज्ञानी होने का उल्लेख है।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नपुर नाम का नगर था। वहाँ सूर्य की तरह प्रतापी 'भानु' नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'सुव्रता था'। वह शीलवती एवं पतिपरायणा थी। दृढरथ मुनि का जीव वैजयन्त विमान से चवकर वैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन पुष्यनक्षत्र में महारानी के उदर में उत्पन्न हुआ। महारानी ने तीर्थङ्कर के सूचक चौदह महास्वप्न देखे।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर माघ शुक्ला तृतीया के दिन पुष्यनक्षत्र में वज्र चिन्ह से चिन्हित सुवर्णवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। उसी समय भोगंकरा आदि दिग्कुमारिकाओं ने आकर प्रभु की माता का सुतिका कर्म किया। सौधर्म आदि इन्द्रों ने भगवान को मेरु पर्वत पर लेजाकर अतिपाण्डुक शिला पर उनका जन्माभिषेक किया।

जन्माभिषेक होने पर इन्द्र ने प्रभु को माता की गोद में रख दिया। माता पिता ने बालक का जन्मोत्सव किया। जब भगवान गर्भ में थे तब माता को धर्म करने का दोहद उत्पन्न हुआ था इसलिए बालक का नाम धर्म रखा। भगवान शिशु अवस्था को पार कर युवा हुए। युवावस्था में भगवान के शरीर की ऊँचाई ४५ धनुष थी। अनेक राजकुमारिओं के साथ भगवान का विवाह हुआ। जन्म से ढाई लाख वर्ष बीतने पर पिता के आग्रह से भगवान ने राज्य ग्रहण किया। पांच लाख वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण करने का निश्चय किया। तदनुसार लोकान्तिक देवों ने भी दीक्षा लेने के लिये विनती की। नियमानुसार भगवान ने वर्षीदान दिया। देवों द्वारा सजाई गई 'नागदत्ता' नामक शिविका में बैठकर भगवान वप्रकाचन उद्यान मे पधारे। वहाँ षष्ठ तप की अवस्था में एक हजार राजाओं के साथ माघशुक्ला त्रयोदशी के दिन पुष्य नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की। भगवान को उसी समय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होगया।

तीसरे दिन भगवान ने सोमनसपुर के राजा धर्मसिंह के घर परमान्न से पारणा किया । देवों ने वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट किये ।

दो वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहने के बाद भगवान अपने दीक्षा स्थल वप्रकांचन उद्यान में पधारे । वहाँ दधिपर्ण वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए पौष मास की पूर्णिमा के दिन पुष्य नक्षत्र में केवलज्ञान प्राप्त किया । देवों ने केवलज्ञान उत्सव मनाया । समवशरण की रचना हुई । उसमें भगवान ने रत्न-सिंहासन पर बैठकर उपदेश दिया । उपदेश सुनकर पुरुषसिंह वासुदेव ने सम्यक्त्व प्राप्त किया । सुदर्शन बलदेव ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये । अरिष्ट आदि ४३ गणधर बने । भगवान का चैत्य वृक्ष पांच सौ चालीस धनुष ऊँचा था । भगवान के शासन में किन्नर नाम का यक्ष एवं कंदर्पा नामक शासनदेवी हुई ।

भगवान के परिवार में ६४ हजार साधु, ६२ हजार चारसौ साध्वियाँ ९०० चौदह पूर्वधर, ३ हजार छसौ अवधिज्ञानी, ४५ सौ मनःपर्ययज्ञानी, ७ हजार वैक्रियलब्धिधारी, दो हजार आठ सौ वाद लब्धिवाले, दो लाख चालीस हजार श्रावक*, एवं चार लाख तेरह हजार श्राविकाएँ थीं ।

महाव्रत में ढाई लाख वर्ष व्यतीत करने बाद भगवान अपना निर्वाणकाल समीप जान कर **समेतशिखर** पर पधारे । वहाँ आठ सौ मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया । एक मास के अन्त में ज्येष्ठ मास की शुक्ल पंचमी के दिन पुष्य नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया ।

भगवान ने कुमारावस्था में ढाई लाख वर्ष, राज्य में पांच लाख एवं व्रत में ढाई लाख वर्ष व्यतीत किये । इस प्रकार भगवान की कुल आयु दसलाख वर्ष की थी । अनन्तनाथ भगवान के निर्वाण के बाद४ सागरोपम बीतने पर भगवान धर्मनाथ मोक्ष में गये ।

---

*अन्यत्र दो लाख चार हजार श्रावकों का उल्लेख है ।

१६. भगवान शान्तिनाथ

प्रथम भव

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नपुर नाम का रमणीय नगर था। वहाँ 'श्रीषेण' नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी 'अभिनन्दिता' एवं 'शिखिनन्दिता' नामकी दो रानियाँ थीं।

एक दिन अभिनन्दिता रानी ने स्वप्न में अपनी गोद में चन्द्र और सूर्य को खेलते हुए देखा। उसके फल स्वरूप महारानी अभिनन्दिता ने एक साथ दो पुत्र रत्नों को जन्म दिया जिसमें एक का नाम इन्दुषेन और दूसरे का नाम विन्दुषेन रखा गया। दोनों ने कलाचार्य के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की। वे युवा हुए।

उसी नगर में सत्यकी नाम का उपाध्याय रहता था। उसकी पत्नी का नाम जम्बुका था और पुत्री का नाम सत्यभामा।

अचल ग्राम में धरनीजट नाम का वेदों में पारंगत ब्राह्मण रहता था। उसकी यशोभद्रा नाम की पत्नी थी। यशोभद्रा ने नंदिभूति और शिवभूति नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। धरणीजट की कपिला नाम की एक रखैत दासी थी उससे कपिल नामक पुत्र हुआ। कपिल बुद्धिमान था। जब धरणीजट अपने पुत्रों को अभ्यास कराता था तब वह पास में बैठ कर पाठ याद कर लेता था। उसने अल्प-काल में पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। अपने को योग्य और समर्थ जानकर कपिल घर छोड़ कर विदेश चला गया। अपने गले में दो यज्ञोपवीत धारण करके अपने आपको उत्तम ब्राह्मण बताने लगा। वह घूमता हुआ रत्नपुर आया। वहाँ उसने महोपाध्याय सत्यकी को अपनी विद्वत्ता से खूब प्रभावित किया। धीरे धीरे दोनों का संपर्क गाढ़ हो गया। सत्यकी ने अपनी सर्वांगसुन्दरी पुत्री सत्यभामा का विवाह कपिल के साथ कर दिया। इस लग्न के सम्बन्ध से कपिल की प्रतिष्ठा बढ़ गई। सभी नगर के लोग कपिल को आदर बुद्धि से देखने लगे।

एक बार रात के समय कपिल नाटक देखने गया। नाटक देखकर जब वापस घर लौट रहा था तब मार्ग में जोरों से वर्षा होने लगी। रात्रि का समय और गाढ़ अंधेरा होने से उसने सोचा-अंधेरी रात में कौन देखता है, फिर क्यों नये वस्त्रों को भिगो कर खराब करूँ? उसने सारे वस्त्र उतार कर बगल में दबा लिये और नंगा ही भीगता हुआ घर पहुँचा और कपड़े पहिन कर दरवाजा खटखटाया। सत्यभामा पति की राह देख रही थी। उसने किवाड़ खोल दिये। इतनी वर्षा में भी पति के सूखे वस्त्रों को देखकर वह विचार में पड़ गई। पत्नी को विचार मग्न देखकर कपिल ने पूछा-प्रिये! किस विचार में मग्न हो? उसने उत्तर दिया-इतनी वर्षा में भी आपके वस्त्र सूखे हैं इसका क्या कारण है? कपिल ने उत्तर दिया-"मंत्र के प्रभाव से मेरे वस्त्र भीग नहीं सके।" सत्यभामा चतुर थी। वह समझ गई कि कपिल अवश्य ही नंगा होकर आया है। अपने पति की इस अकुलीनता से उसे अत्यन्त खेद हुआ। उसे निश्चय हो गया कि मेरा पति उच्चकुल का नहीं है। अब वह पति से उदासीन रहने लगी।

कालान्तर में विद्वान धरणीजट सत्यकी के घर पहुँचा। भोजन के समय धरणीजट कपिल से अलग बैठ कर भोजन करने लगा। सत्यभामा धरणीजट के इस व्यवहार से कपिल के प्रति और भी संशयग्रस्त हो गई। उसने धरणीजट को सौगन्ध देकर कपिल के विषय में पूछा। धरणीजट ने कहा-'कपिल दासी पुत्र है।'

अपने पति की कुलहीनता से उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने राजा की सहायता से कपिल का परित्याग कर दिया। वह राजा के महल में रानी के साथ तपमय जीवन बिताने लगी। महाराजा की आज्ञा से कपिल रत्नपुर छोड़कर अन्यत्र चला गया।

कोशांबी के राजा बल के श्रीमती रानी से उत्पन्न श्रीकान्ता नाम की रूपवती पुत्री थी। उसने अपनी पुत्री के लिए योग्य वर प्राप्त करने के लिए स्वयम्वर रचा। इस स्वयम्वर में अनेक नगरों के राजकुमार उपस्थित हुए। उसमें श्रीसेन का पुत्र इन्दुसेन भी

उपस्थित हुआ । इन्दुसेन के रूप और गुणों से मुग्ध हो कर श्रीकांता ने इन्दुसेन के गले में वरमाला डाल दी । दोनों का विवाह संपन्न हो गया । बलराजा ने बहुत सा धन व साथ में अनन्तमती नामकी एक वेश्यापुत्री को देकर सम्मान पूर्वक इन्दुसेन और श्रीकान्ता को विदाई दी । दोनों घर पहुँचे । अनन्तमती अत्यन्त सुन्दरी थी ।·उसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर राजकुमार इन्दुसेन और बिन्दुसेन दोनों उसपर आसक्त हो गये । दोनों भाई उसे प्राप्त करना चाहते थे । इस बात को लेकर दोनों भाई युद्ध के लिए तैयार हो गये । महाराज श्रीषेन को जब इस बात का पता लगा तो वे तत्काल वहाँ आये और अपने दोनों पुत्रों को समझाने लगे किन्तु उनका समझाना व्यर्थ गया । महाराज निराश हो कर अन्तःपुर में चले आये । उन्हें पुत्रों की दुर्दमता, भातृ-वैर और निर्लज्जता से बड़ा आघात लगा । नरेश अब जीवित रहना नहीं चाहते थे । उन्होंने तालपुट विष से व्याप्त कमल को सूँघकर प्राण त्याग दिये । दोनों रानियों ने भी महाराजा का अनुसरण किया । सत्यभामा ने यह सोचकर फूल सूँघ लिया कि अगर जीती रहूँगी तो कपिल मुझे अपने घर जरूर ले जायगा । इस प्रकार ये चारों जीव मर कर जंबूद्वीप के उत्तर कुरुक्षेत्र में युगल मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुए । श्रीषेन और अभिनन्दिता तथा शिखिनन्दिता और सत्यभामा, इस प्रकार दो युगल सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे ।

इधर अनन्तमती वैश्या को पाने के लिये दोनों भाई युद्ध करने लगे । उस समय चारणमुनि वहाँ आए और दोनों को उपदेश दिए मुनि का उपदेश और अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर दोनों भाइयों को वैराग्य उत्पन्न होगया । उन्होंने चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की । अन्त में दोनों भाइयों ने उग्र-तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया । शरीरान्त के बाद वे मोक्ष में गये ।

द्वितीय और तृतीय भव –

श्रीषेनराजा आदि चारों युगलिक भव को पूरा कर मृत्यु के पश्चात् सौधर्म देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए ।

चतुर्थ और पंचम भव—

वैताढ्यपर्वत की उत्तर श्रेणी में रथनुपुरचक्रवाल नाम के नगर में ज्वलनजटी नाम का विद्याधरों का राजा रहता था। उसकी पत्नी का नाम वायुवेगा था। उसके अर्ककीर्ति नाम का पुत्र और स्वयंप्रभा नाम की पुत्री थी। स्वयंप्रभा अनुपम सुन्दरी थी। उसका विवाह त्रिपृष्ठ नाम के प्रथम वासुदेव के साथ किया गया। वासुदेव त्रिपृष्ठ ने प्रसन्न होकर अपने श्वसुर ज्वलनजटी को दोनों श्रेणियों का राजा बनाया। अर्ककीर्ति का विवाह विद्याधर राजा मेघवन की पुत्री ज्योतिर्माला के साथ हुआ। श्रीषेन राजा का जीव सौधर्म देवलोक का आयु पूरा कर ज्योतिर्माला के गर्भ में उत्पन्न हुता। गर्भकाल पूरा होने पर ज्योतिर्माला ने अप्रतिम तेजवाले पुत्र को जन्म दिया। उसके तेजस्वी रूप को देखकर उसका नाम 'अमिततेज' रक्खा।

इधर ज्वलनजटी ने अपने पुत्र अर्ककीर्ति को राज्य देकर चारण-मुनि के पास दीक्षा ग्रहण करली। सत्यभामा का जीव प्रथम देवलोक से चवकर ज्योतिर्माला की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'सुतारा' रखा गया।

अभिनन्दिता का जीव सौधर्मकल्प से चवकर स्वयंप्रभा के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम श्रीविजय रखा गया। स्वयंप्रभा के एक विजयभद्र नामका दूसरा पुत्र जन्मा।

शिखिनन्दिता का जीव सौधर्मकल्प से चवकर स्वयंप्रभा के गर्भ से ज्योति.प्रभा नामकी पुत्री के रूप में जन्मा।

सुतारा का विवाह श्रीविजय के साथ एवं ज्योतिःप्रभा का विवाह अमिततेज के साथ हुआ।

सत्यभामा के पति कपिल का जीव अनेक योनियों में परिभ्रमण करता हुआ चमरचंचा नाम की नगरी में, अशनिघोष नाम का विद्याधरों का प्रसिद्ध राजा हुआ।

एक बार रथनुपुरचक्रवाल नगर में अभिनन्दन जगनन्दन और ज्वलनजटी मुनियों का आगमन हुआ। महाराज अर्ककीर्ति ने उनका उपदेश सुना और वे पुत्र अमिततेज को राज्य देकर दीक्षित हो गये।

त्रिपृष्ठ वासुदेव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र श्रीविजय राजा बने और अचल बलदेव ने दीक्षा धारण करली।

एकबार अमिततेज अपनी बहन सुतारा और बहनोई श्रीविजय से मिलने के लिए पोतनपुर गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि सारे नगर में उत्सव मनाया जा रहा है।

अमिततेज ने पूछा आज अकारण ही शहर में उत्सव किसलिये मनाया जा रहा है?

श्रीविजय ने उत्तर दिया दस दिन पहले एक भविष्यवेत्ता यहाँ आया था। उसने कहा था कि आज से सातवें दिन पोतनपुर के राजा पर बिजली गिरेगी। यह सुनकर मंत्रियों की सलाह से मैने सात दिन के लिये राज्य छोड़ दिया और राज्य सिंहासन पर एक यक्ष की मूर्ति को बैठा दिया। मैं आयंबिल तप करता हुआ धर्म-ध्यान में समय बिताने लगा। सातवें दिन बिजली गिरी और यक्ष की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गये। मेरी प्राण रक्षा हुई इसीलिए सारे शहर में उत्सव मनाया जा रहा है।"

यह सुन अमिततेज और ज्योतिप्रभा को बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिन रहकर दोनों पति-पत्नी अपने देशको चले गये।

एकबार राजा श्रीविजय रानी सुतारा के साथ वन विहार के लिए ज्योतिर्वन में गये। उस समय कपिल का जीव अशनिघोष प्रतारणी विद्या का साधन कर उधर से आ रहा था उसकी दृष्टि सुतारा पर पड़ी। पूर्व जन्म के स्नेह के वश वह उस पर आसक्त हो गया और उसने उसका अपहरण करने का निश्चय किया। उसने विद्या के

बल से एक सुन्दर और स्वर्णवर्णी हिरण बनाया। उस हिरण को भागते हुए सुतारा ने देख लिया और अपने स्वामी से कहा-प्राणनाथ! मुझे यह हिरण चाहिये।

श्रीविजय हरिण को पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़ा। वह बहुत दूर निकल गया। सुतारा को अकेली पाकर अशनिघोष ने उसे उठा लिया और उसकी जगह बनावटी सुतारा रखदी। अशनिघोष सुतारा को लेकर भाग निकला। बनावटी सुतारा जोर-जोर से चिल्लाई 'मुझे कुक्कुट सर्प डस गया। हाय मै मरी!' यह आवाज सुनते ही राजा घबड़ाया और शीघ्रता से दौड़कर वहाँ आया। उसने बेहोश सुतारा के अनेक इलाज किये मगर कोई लाभ नहीं हुआ और रानी मर गई। रानी का वियोग राजा सह नहीं सका। उसने एक बड़ी चिता तैयार करवाई और अपनी रानी के साथ वह भी चिता में जाकर बैठ गया। धू धू करके चिता जलने लगी।

उसी समय दो विद्याधर आये। उन्होंने पानी मंत्रित करके चिता पर डाला। चिता शान्त हो गई और उसमें से नकली सुतारा के रूप में प्रतारणी विद्या अट्टहास करती हुई भाग गई। यह सब आश्चर्य देखकर श्रीविजय ने आगन्तुक विद्याधरों से पूछा आप कौन हैं? यह चिता कैसे बुझ गई और मरी हुई सुतारा कहाँ अदृश्य हो गई?

विद्याधर ने कहा-श्रीविजय! मेरा नाम संभिन्नश्रोत है। यह मेरा पुत्र दीपशिख है। हमने अपने स्वामी अमिततेज की बहन सुतारा को जबरदस्ती हरण करते हुए अशनिघोष को देखा। हमने उसका रास्ता रोका और उससे लड़ने को तैयार हुए। इतने में सुतारा ने कहा विद्याधरो! तुम तुरत ज्योतिर्वन में जाओ और उनके प्राण बचाओ। मुझे मरी समझकर कहीं वे प्राण न दे दें। उनको अशनिघोष द्वारा मेरे अपहरण के समाचार देना। वे आकर मेरा अवश्य उद्धार करेंगे। हम यह सुनते ही तुरन्त इधर दौड़ आये

और मंत्रबल से अग्नि को बुझा दिया । बनावटी सुतारा जो मंत्रबल से बनी हुई थी वह भाग गई ।

श्रीविजय राजा ने जब यह घटना सुनी तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ उसने अशनिघोष से युद्ध कर सुतारा को मुक्त करने का निश्चय किया। वह विद्याधरों के साथ वैताढ्य पर्वत पर आया और वहाँ के राजा अमिततेज से मिला । अमिततेज को जब अपनी बहन के अपहरण का पता लगा तो वह भी बड़ा क्रुद्ध हुआ । उसने श्रीविजय के साथ अपनी विशाल सेना भेजी । श्रीविजय ने महाज्वाला नाम की विद्या की सहायता से अशनिघोष की तमाम सेना नष्ट कर दी । अशनि-घोष अपने प्राण बचाने के लिये वहाँ से भागा । महाज्वाला भी उसके पीछे पड़गई । अशनिघोष भरतार्द्ध में सीमंत गिरिपर केवलज्ञान प्राप्त अचल बलदेव मुनि की शरण में गया । अशनिघोष को केवली सभा में बैठा देख महाज्वाला वापस लौट आई । महाज्वाला के मुख से अचल बलदेव मुनि को केवलज्ञान होने की बात सुनकर अमिततेज सुतारा और श्रीविजय विमान में बैठकर मुनि के दर्शन के लिये सीमंतगिरि पर आये । केवली को वन्दन कर उनकी देशना सुनने लगे।

देशना समाप्ति के बाद अशनिघोष ने अचल केवली से पूछा—मेरे मन में कोई पाप नहीं था फिर भी मै सुतारा की ओर इतना क्यों आकृष्ट हुआ और मैने उसका अपहरण क्यों किया ?

अचल केवली ने सत्यभामा और कपिल का पूर्ववृत्तांत सुनाया और कहा कि-पूर्वभव का स्नेह ही इसका मुख्य कारण था ।

अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत सुनकर अशनिघोष को वैराग्य उत्पन्न हो गया उसने अचल केवली के समीप दीक्षा धारण करली ।

अमिततेज ने पूछा—हे भगवन् ! मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ ? केवली ने कहा—अमिततेज तुम आज से नौवें भव में सोलहवे तीर्थङ्कर और पांचवें चक्रवर्ती बनोगे और श्रीविजय राजा तुम्हारा प्रथम पुत्र और प्रथम गणधर बनेगा ।

केवली के मुख से अपना भविष्य सुनकर अमिततेज तथा श्री-विजय ने दीक्षा ग्रहण की और अन्त में अपनी आयु का क्षय सन्निकट जान कर दोनों मुनियों ने पादोपगमन संथारा कर लिया। संथारा के चलते श्रीविजय मुनि के मन में अपने पिता त्रिपृष्ठ वासुदेव का स्मरण हो आया। वे सोचने लगे–मेरे पिता तो तीन खण्ड के स्वामी थे उन्हें वासुदेव पद मिला था किन्तु मै एक साधारण राजा ही बना रहा। अब यदि मेरी साधना का उत्तम फल हो तो मैं भी वासुदेव बनूँ और तीन खण्ड पर एकछत्र राज्य करूँ। श्रीविजय मुनि ने अपनी उत्कृष्ट-साधना का इस प्रकार निदान कर लिया। अमिततेज मुनि ने निदान-रहित संयम साधना की। दोनों मुनिवर आयु पूर्ण करके प्राणत नाम के दसवें कल्प में सुस्थितावर्त और नन्दितावर्त नामके विमान के स्वामी मणिचूल और दिव्यचूल नाम के देव हुए। वहाँ उन्होंने बीस सागरोपम की आयु प्राप्त की।

छठा और सातवाँ भव :—

जम्बूद्वीप की सीता नदी के दक्षिण तट पर शुभा नाम की रमणीय नगरी थी। वहाँ के शासक का नाम स्तिमितसागर था। उसकी वसुन्धरा और अनुद्धरा नाम की दो रानियाँ थीं।

एक रात्रि में महारानी वसुन्धरा ने बलदेव के जन्म की सूचना देने वाले चार महास्वप्न देखे। अमिततेज का जीव प्राणत कल्प से च्युत होकर वसुन्धरा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। गर्भकाल के पूर्ण होने पर वसुन्धरा रानी ने श्रीवत्स के चिन्ह वाले श्वेतवर्णी एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम 'अपराजित' रखा गया।

अनुद्धरा देवी ने भी वासुदेव के जन्म के सूचक सात महास्वप्न देखे। गर्भकाल पूर्ण होने पर अनुद्धरा ने श्यामवर्णी एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम 'अनन्तवीर्य' रखा गया। दोनों ने कलाचार्य के पास रहकर तत्कालीन समस्त विद्याएँ सीखलीं। वे युवा हुए।

एक बार स्तिमितसागर वन-विहार के लिए उद्यान में गया। स्वयंप्रभ नाम के आचार्य को वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए देखा। वह उनके पास बैठा। ध्यान समाप्त होने पर मुनिवर ने उसे उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने पुत्र अनन्तवीर्य को राजगद्दी पर स्थापित कर उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। बहुत काल तक संयम की आराधना की। एक बार मन से चारित्र की विराधना हो गई जिसकी वजह से वह मर कर भवनपति के इन्द्र चमर के रूप में जन्मा।

अनन्तवीर्य अपने बड़े भ्राता अपराजित की सहायता से राज्य का संचालन करने लगा। एक समय कोई विद्याधर उसकी राजधानी में आ निकला। उसके साथ उन दोनों की मित्रता हो गई। इससे प्रसन्न हो कर विद्याधर ने दोनों भाइयों को महाविद्या प्रदान की। अनन्तवीर्य के यहाँ बर्बरी और किराती नाम की दो दासियाँ थीं। वे संगीत नृत्य एवं नाट्यकला में बड़ी कुशल थीं। वे समय समय पर संगीत और नृत्य से दोनों भाइयों का मनोरंजन करती थीं।

एक समय अनन्तवीर्य और अपराजित राजसभा में नृत्यांगनाओं की नृत्यकला का आनन्द ले रहे थे कि अचानक कौतुकप्रिय नारद जी वहाँ आ पहुँचे। दोनों भाई नृत्य देखने में इतने तल्लीन हो गये थे कि उन्हें नारद जी के आने का कोई पता ही न लगा। इसी वजह से वे नारदजी का यथोचित सन्मान नहीं कर सके। बस फिर क्या था ! नारदजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बिना कुछ कहे वहाँ से चल दिये। मार्ग में सोचने लगे-ये दोनों भाई बड़े अभिमानी हैं। इन्हें अपने वैभव का गरूर है। अवश्य ही उन्हें अपनी मगरूरी का मजा चखना होगा। इस प्रकार विचार करते नारदजी वैताढ्य पर्वत पर विद्याधरों के राजा दमितारि की राजसभा में पहुँचे। महाराज दमितारि ने नारदजी का यथोचित सम्मान कर उन्हें ऊँचे आसन पर बिठलाया। नारदमुनि ने आशीर्वाद देकर कुशल प्रश्न पूछा। यथोचित

उत्तर देकर दमतारि ने कहा—मुनिवर्य ! आप अनेक स्थलों में घूमते है। अनेक चीजें देखते हैं और अनेक बातें सुनते हैं इसलिये कृपाकर ऐसी आश्चर्यजनक बात बतलाइए जो मेरे लिये नई हो।

नारदजी इसी अवसर की खोज में थे। वे बोले "महाराज ! मैं आज ही एक अद्भुत आश्चर्य देख कर आया हूँ। मैं 'शुभा' नाम की नगरी में गया था। वहाँ अनन्तवीर्य के दरबार में किराती और बर्बरी नाम की दो नृत्यागनाएँ हैं। वे संगीत, नाट्य और वाद्यकला में अत्यन्त निपुण हैं। उनकी कला देखकर मैं दंग रह गया। स्वर्ग की अप्सरा तक उनके सामने तुच्छ लगती हैं। हे नराधिप ! वे नृत्यागनाएँ तेरी राज-सभा के योग्य हैं।" इस प्रकार आग की चिनगारी फेंक कर नारदजी वहाँ से चल दिये।

नारद जी की बात सुनते ही तीन खण्ड के अधिपति दमितारि ने राजदूत को बुलाया और उसे अनन्तवीर्य के पास जाने का आदेश दिया। राजा के आदेश से दूत अनन्तवीर्य के पास पहुँचा और उसका आदेश सुनाते हुए कहा—महाराज ! आपकी सभा में बर्बरी और किराती नाम की जो दो नृत्यांगनायें हैं उन्हें हमारे स्वामी दमितारि को भेंट स्वरूप भेजो। यह दमतारि की राजाज्ञा है।

अनन्तवीर्य ने दूत से कहा—तुम जाओ। हम बाद में विचार करके दासियों को भेज देंगे।

दूतके चले जाने पर दोनों भाईयों ने विचार किया कि—दमितारि विद्या के बल पर ही अपने पर शासन करता है। हम भी यदि विद्या धर की दी हुई महाविद्या को सिद्ध करलें तो फिर हम उससे टक्कर ले सकेंगे।

वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि विज्ञप्ति आदि विद्याएँ स्वत: प्रकट हुईं और उनके शरीर में समा गईं। विद्या की प्राप्ति से दोनों भाई बड़े शक्तिशाली हो गये। अब उन्होंने दमितारि की आज्ञा को तिरस्कार पूर्वक टाल दिया।

जब दमितारि के पास दासियाँ नहीं पहुचीं तो उसने कठोर आदेश के साथ पुनः दूत को अनन्तवीर्य के पास भेजा। दूत अनन्तवीर्य के पास आया और तिरस्कार पूर्वक बोला-दमितारि का यह आदेश है कि नर्तकियों को शीघ्र ही भेज दियाजाय नहीं तो तुम्हे राज्यभ्रष्ट कर दिया जायगा।

यह सुनकर अनन्तवीर्य को यद्यपि बहुत क्रोध आया किन्तु ठीक अवसर नहीं है यह जानकर अपना क्रोध प्रकट नहीं होने दिया। वह गम्भीर स्वर में बोला-महाराज दमितारि की यही इच्छा है तो मै अवश्य ही तुम्हारे साथ दासियों को भेजता हूँ। तुम अभी ठहरो संध्या के समय दोनों दासियाँ तुम्हारे पास आ जावेगीं।

राजदूत संतुष्ट हो कर विश्राम स्थान पर चला गया। विद्या के बल से अनन्तवीर्य और अपराजित ने बर्बरी और किराती का रूप धारण किया और दूत के पास आकर कहने लगीं-महाराज अनन्तवीर्य ने हमें आपके पास दमितारि की सेवा में पहुँचने के लिए भेजा है अतएव चलिये हम तैयार हैं। दूत बड़ा प्रसन्न हुआ। वह दोनों दासियों को साथ में ले महाराज की सेवा में उपस्थित हो गया। दासियों को आया देख महाराज दमितारि बड़ा प्रसन्न हुआ। दमितारि ने दोनों नृत्यांगनाओं को नृत्यकला प्रदर्शित करने की आज्ञा दी।

महाराज की अज्ञा से उन नटियों ने अपनी नाटचकला का अपूर्व परिचय देना प्रारंभ किया। रंगमंच पर नाना प्रकार के अभिनय दिखा कर महाराज दमितारि को एवं दर्शकों को मुग्ध कर दिया। उनके कलाकौशल को देखकर दमितारि उत्साह के साथ नर्तकियों से बोला-सचमुच ही तुम कला-जगत की रत्न हो। मै तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम आनन्द से मेरी पुत्री 'कनकश्री' की सखियाँ बनकर रहो और उसे नृत्य-गान आदि की शिक्षा दो।

महाराज की आज्ञा से कपटवेषी वे दासियाँ कनकश्री के साथ रहने लगीं और उसे नाट्य-कला सिखाने लगीं। बीच बीच में अपराजित, अनन्तवीर्य के रूप गुण और शौर्य का गुणगान भी कर दिया करता था।

अपराजित से अनन्तवीर्य की प्रशंसा सुनकर कनकश्री ने अपराजित से पूछा-तुम जिसकी प्रशंसा करती हो वह कैसा है ? उसने कहा—अनन्तवीर्य शुभा नगरी का महापराक्रमी राजा है उसका रूप कामदेव के रूप को लज्जित करता है। शत्रुओं का वह काल है। अधिक क्या कहूँ उसके समान इस पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं है।

अनन्तवीर्य के गुणगान सुनकर कनकश्री उसको देखने के लिये लालायित हो उठी। वह अब सदा अनन्तवीर्य का ध्यान करने लगी। उसे विचार मग्न देखकर अपराजित ने कहा-सुन्दरि ! आजकल तुम चिन्तामग्न क्यों दिखाई देती हो ? इस पर कनकश्री ने कहा-जब से मैंने अनन्तवीर्य की प्रशंसा सुनी है तभी से मैं उससे मिलने के लिये लालायित हो उठी हूँ। इस पर अपराजित ने कहा-भद्रे ! चिन्ता मत करो, अगर चाहोगी तो अनन्तवीर्य को मै तुम्हारे सामने उपस्थित कर सकती हूँ।

कनकश्री बोली-सखि ! मेरा ऐसा भाग्य ही कहाँ है जो कि मुझे अनन्तवीर्य के दर्शन हों। अगर तू मुझे उनके दर्शन करा देगी तो मैं जन्म भर तेरा उपकार नहीं भूलूंगी।

कनकश्री की बात सुनते ही दोनों भ्राताओं ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। राजकुमारी सचमुच ही अनन्तवीर्य को अपने सम्मुख पाकर स्तंभित रह गई। अनन्तवीर्य के अद्‌भुत रूप को देख कर वह उस पर आसक्त होगई। अनन्तवीर्य भी कनकश्री के रूप पर मुग्ध हो गया।

अनन्तवीर्य बोला-कनकश्री ! अगर शुभा नगरी की साम्राज्ञी बनने की इच्छा हो तो तुम मेरे साथ चलो।

कनकश्री ने कहा-प्राणनाथ ! मैंने अपना जीवन आपके चरणों में समर्पित कर दिया है। अब आप मेरा शीघ्र ही पाणिग्रहण करके मुझे कृतार्थ करें।

अनन्तवीर्य ने कहा-यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो हम अपनी राजधानी में चलेंगे और वहीं समस्त विवाह-विधि करेंगे।

कनकश्री ने कहा- मैं चलने को तैयार हूँ किन्तु मुझे अपने पिता का भय लगता है कारण कि उन्हें इस घटना का पता लग जायगा तो वे आपका अनिष्ट करने में किंचित् भी विलम्ब नहीं करेंगे।

अनन्तवीर्य बोला—प्रिये ! भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पिता में चाहे जितनी ताकत हो किन्तु वे हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। यदि उन्होंने युद्ध की स्थिति पैदा की तो उसका परिणाम उन्हें ही भुगतना पड़ेगा। तुम निर्भय होकर हमारे साथ चलो।

राजकुमारी उनके साथ हो गई। अपराजित और कनकश्री के साथ अनन्तवीर्य राजसभा में पहुँचा। राजा और सभासद अनन्त-वीर्य को कनकश्री के साथ देख आश्चर्यचकित हो गये। अनन्त-वीर्य गम्भीर वाणी में बोला-"हे दमितारि और उसके सुभटो सेना-पतियो ! हम अनन्तवीर्य और अपराजित राजकन्या कनकश्री को ले जा रहे हैं। तुमने हमारी दासियाँ चाही थीं वे तुम्हें न मिलीं किन्तु आज हम तुम्हारी राजकन्या को ले जारहे हैं; जिसमें साहस हो वे हमारा मार्ग रोकें। तुम्हें हमने सूचना दे दी है। बाद में यह मत कहना कि महाराज अनन्तवीर्य राजकुमारी को चुराकर भाग गया है।" इतना कह कर अनन्तवीर्य राजकुमारी को उठाकर वहाँ से चल दिया। अपराजित भी उन्हीं के साथ हो गया।

राजकुमारी को दरबार के बीच में से उठाकर लेजाते हुए अनन्तवीर्य को देखकर दमितारि के क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल अपने योद्धाओं को उनके पीछे दौड़ाया। दमितारि की विशाल सेना को अपनी

ओर आते देख दोनों भाई युद्ध के लिये सावधान हो गये। अनन्तवीर्य ने भी विद्या की सहायता से विशाल सेना बना ली। दोनों सेनाओं में जमकर युद्ध होने लगा। अनन्तवीर्य और अपराजित के रण कौशल और वीरता के सामने दमितारि की सेना हतोत्साह होगई।

दमितारि अपनी सेना की यह हालत देखकर रथ पर चढ़कर युद्ध मैदान में आगया। उसने अनन्तवीर्य को ललकारा। फिर क्या था, दोनों वीरों में डटकर युद्ध होने लगा। अनन्तवीर्य की जबरदस्त ताकत को देखकर दमितारि ने अन्त में चक्र का सहारा लिया। चक्र को आता देख अनन्तवीर्य ने उसे अपने हाथ में झेल लिया और उसी चक्र को दमितारि के शिरच्छेद के लिये फेंका। चक्र ने दमितारि का शिरच्छेद कर दिया।

उसी समय देवों ने आकाश से पुष्प वृष्टि की और अनन्तवीर्य को तीनखण्ड के स्वामी वासुदेव के रूप में घोषित किया। अपराजित बलदेव बने। समस्त विद्याधरों ने एवं उनके राजाओं ने, उनकी आधीनता स्वीकार कर ली।

वासुदेव अनन्तवीर्य एवं बलदेव अपराजित राजकुमारी कनकश्री के साथ शुभा नगरी के लिये रवाना हुए। मार्ग में कीर्तिधर केवली के दर्शन किये। कीर्तिधर केवली के मुख से अपने पूर्वजन्म का वृतान्त सुनकर कनकश्री को वैराग्य उत्पन्न हो गया। शुभा नगरी में आने के बाद कनकश्री ने स्वयंभव केवली से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

वासुदेव अनन्तवीर्य अपने भाई अपराजित के साथ राजलक्ष्मी भोगने लगे। अपराजित बलदेव की 'वीरता' नाम की रानी से सुमति नाम की कन्या हुई। वह बड़ी धर्मात्मा थी। उसने एक बार मुनि को सुपात्र दान दिया था जिसके प्रभाव से देवताओं ने पांच दिव्य प्रकट किये। सुमति ने सात सौ कन्याओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की और कठोर तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त में वह मोक्ष में गई।

कालान्तर में वासुदेव अनन्तवीर्य चौरासी लाख पूर्व की आयु भोगकर निकाचित कर्म से प्रथम नरक में उत्पन्न हुए। वहाँ बयालिस हजार वर्ष तक नरक की वेदना सहन करते रहे।

अपराजित बलदेव बन्धु-विरह से अत्यन्त शोकाकुल रहने लगे। अन्त में उन्हें भी संसार के प्रति विरक्ति हो गई। उन्होंने जयधर नामक गणधर से दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ सोलह हजार राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार अपराजित मुनि चिर काल तक संयम की आराधना कर अन्त में अनशन कर अच्युत देवलोक में इन्द्र हुए।

वासुदेव का जीव प्रथम नरक से निकल कर भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत के गगनवल्लभपुर के विद्याधर राजा मेघवाहन की पत्नी मेघमालिनी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। जन्म होने पर बालक का नाम मेघनाद रखा गया। मेघनाद अपनी शक्तियों के बल से वैताढ्य की दोनों श्रेणियों का राजा बना।

एक बार अच्युतेन्द्र ने अपने पूर्व भव के भाई को देखा और प्रतिबोध करने आया। मेघनाद ने अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ले ली। एकबार वे एक पर्वत पर ध्यान कर रहे थे। उस समय उनके पूर्व भव के वैरी, अश्वग्रीव जो प्रतिवासुदेव का पुत्र था और इस समय दैत्य था उसने उन्हें देखा और द्वेषाभिभूत होकर उपसर्ग करने लगा किन्तु वह निष्फल रहा। मुनिराज मेघवाहन उग्रतप का आचरण करते हुए अनशन करके अच्युत देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव रूप से उत्पन्न हुए।

आठवाँ और नौवाँ भव

जम्बूद्वीप के पूर्वमहाविदेह में सीता नदी के दक्षिण किनारे मंगलावती विजय में रत्नसंचया नाम की नगरी थी। वहाँ के शासक का नाम क्षेमंकर था। उसकी रानी का नाम रत्नमाला था। रत्नमाला

ने एक रात्रि में चौदह महास्वप्न और १५ वाँ वज्र का स्वप्न देखा। अपराजित का जीव अच्युत देवलोक से चवकर महारानी रत्नमाला के उदर में उत्पन्न हुआ। गर्भ काल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। गर्भकाल में महारानी ने वज्र का स्वप्न देखा था इसलिये बालक का नाम वज्रायुध रक्खा। युवावस्था में वज्रायुध का विवाह लक्ष्मीवती नाम की राजकुमारी के साथ हुआ। कालान्तर में अनन्तवीर्य का जीव अच्युतकल्प से चवकर रानी लक्ष्मीवती की कुक्षि से उत्पन्न हुआ उसका नाम सहस्रायुध रखा गया। वह बड़ा हुआ। उसका विवाह कनकश्री नामकी सुन्दर राजकुमारी के साथ हुआ।

राजा क्षेमंकर को लोकान्तिक देवों ने आकर दीक्षा लेने की सूचना की। उन्होंने वज्रायुध को राज्य देकर दीक्षा ली और तप से घनघाती कर्मों को नष्ट कर जिन हुए।

वज्रायुध के शस्त्रागार में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। फिर अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। चक्रायुध ने रत्नों की सहायता से छः खण्डों पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया।

कालान्तर में वज्रायुध ने अपने पुत्र सहस्रायुध को राज्य देकर क्षेमंकर केवली के पास दीक्षा ग्रहण करली। सहस्रायुध ने भी कुछ काल के बाद पिहिताश्रव नाम के मुनियों के समीप दीक्षा ली। अन्त में दोनों राजमुनियों ने ईषत् प्राग्भार पर्वत पर पादोपगमन अनशन किया।

आयु पूर्ण होने पर दोनों मुनि तीसरे ग्रैवेयक में अहमीन्द्र हुए। और वहाँ पच्चीस सागरोपम आयु प्राप्त की।

दसवाँ और ग्यारहवाँ भव

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह के भूषणरूप पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नाम की नगरी थी। वहाँ धनरथ नाम के तीर्थङ्कर राजा राज्य करते थे। उनकी रूप और लावण्य से युक्त दो रानियाँ थी। जिसमें एक का नाम प्रीयमती और दूसरी का नाम मनो-

रमा था । ग्रैवेयक का आयु पूरा कर वज्रायुध का जीव महारानी प्रीयमती के उदर में मेघ का स्वप्न सूचित कर उत्पन्न हुआ । जन्मने पर बालक का नाम मेघरथ रखा । सहस्रायुध का जीव भी देवलोक से चवकर मनोरमा के उदर में आया । जन्मलेने पर इसका नाम दृढरथ रखा गया । दोनों बालकों ने कलाचार्य के पास समस्त कलाओं का अभ्यास किया ।

सुमन्दिरपुर के महाराजा निहतशत्रु की तीन पुत्रियाँ थीं । उनमें प्रियमित्रा और मनोरमा का विवाह युवराज मेघरथ के साथ हुआ एवं छोटी राजकुमारी सुमति का विवाह दृढरथ के साथ संपन्न हुआ । ये दोनों राजकुमार सुखपूर्वक काल यापन करने लगे ।

कालान्तर में राजकुमार मेघरथ की रानी प्रियमित्रा ने एक पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम नन्दिषेण रखा गया । मनोरमा ने भी मेघसेन नामक पुत्र को जन्म दिया । राजकुमार दृढरथ की पत्नी ने भी एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम रथसेन रखा गया ।

कुछकाल के बाद लोकान्तिक देवों ने आकर महाराज घनरथ से निवेदन किया–"स्वामिन् ! अब आपके धर्मतीर्थ प्रवर्तन का समय आ गया है । कृपा कर लोक हित के लिये आप प्रव्रज्या ग्रहण करें" वे तो तीन ज्ञान के धनी और संसार से विरक्त थे ही । योग्य अवसर भी आ गया था । अतएव महाराज ने युवराज मेघरथ को राज्यभार सौंपा और राजकुमार दृढरथ को युवराज पद प्रदान कर वर्षीदान दिया और संसार छोड़ कर दीक्षा ग्रहण की । कठोर तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया और धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया ।

मेघरथ राजा न्याय और नीति से राज्य संचालन करने लगे । उनके राज्य में समस्त प्रजा सुख पूर्वक रहती थी । महाराजा स्वयं धार्मिक होने से प्रजा में भी धार्मिक वातावरण फैला हुआ था ।

एक दिन महाराज मेघरथ पौषधशाला में पौषध कर रहे थे कि सहसा एक भयभीत कबूतर महाराज मेघरथ की गोद में आकर बैठ गया। कबूतर घबड़ाया हुआ था और भय से कांप रहा था। वह मनुष्य की बोली में बोला–महाराज! मेरी रक्षा करो। मुझे बचाओ। महाराज मेघरथ ने अत्यन्त प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरा और कहा–कबूतर! तुम्हें डरने की जरूर नहीं है। मेरे रहते तेरा कोई बाल भी नहीं उखाड़ सकता। तुम निर्भय होकर रहो। इतने में एक बाज आया और मानव बोली में बोला—

राजन्! यह कबूतर मेरा भक्ष्य है। मै कभी का भूखा हूँ। अतः इस कबूतर को आप लौटा दें। मैं इसे खाकर अपनी भूख शान्त करना चाहता हूँ।

मेघरथ—बाज! तुम कबूतर के सिवाय जो चाहो मांग सकते हो। यह कबूतर अब मेरी शरण में आ गया है। मैंने इसे प्राण-रक्षा का आश्वासन दे दिया है। अतः किसी भी स्थिति में यह कबूतर तेरा भक्ष्य नहीं बन सकता।

बाज बोला—नराधिप! आप कबूतर की रक्षा करते हैं तो मेरी भी रक्षा कीजिये। मुझे भूख से तड़फते हुए मरने से बचाइये। प्राणी जब तक क्षुधातुर रहता है तबतक उसे धर्माधर्म का विचार नहीं आता। क्षुधा की शान्ति के बाद ही मैं आपकी धर्म की बातें सुनूँगा। प्रथम मेरा भक्ष्य मुझे दीजिये। कबूतर मेरा भक्ष्य है। मैं मांसाहारी हूँ। अतः मांस खाकर ही मैं तृप्त हो सकता हूँ।

मेघरथ—बाज! क्या तू मांस ही खाता है? दूसरा कुछ भी नहीं खा सकता? यदि ऐसा ही है, तो ले, मैं तेरी इच्छा पूरी करने को तैयार हूँ। तुझें केवल मांस ही चाहिये तो मैं अपने शरीर के मांस को काट कर कबूतर के बराबर तुझे देता हूँ। फिर तो तू इस कबूतर की मांग नहीं करेगा?

बाज—नहीं महाराज ! मुझे कबूतर नहीं चाहिये अगर आप अपने शरीर का मांस काटकर देगे तो मै उसे ही खा कर तृप्त हो जाऊँगा ।

महाराज मेघरथ ने बिना कुछ विचार किये कबूतर की प्राण-रक्षा के हेतु उसी क्षण छुरी और तराजू मंगवाया । तराजू के एक पल्ले में कबूतर को बिठाया और महाराज स्वयं अपने शरीर का मांस काटकर दूसरे पल्ले में रखने लगे । यह देखकर राज्य परिवार हा-हाकार कर उठा । रानियाँ, राजकुमार, मन्त्रीगण एवं प्रजागण आक्रन्दन करने लगे । महाराज को ऐसा न करने लिये खूब समझाने लगे—

"महाराज! आप पृथ्वी पालक हैं । आपकी देह प्रजा की, राष्ट्र की संपत्ति है । आप के चले जाने से सारा राष्ट्र अनाथ हो जायेगा। कबूतर तो एक क्षुद्र प्राणी है । उसकी रक्षा के लिये अमूल्य देह को नष्ट करना उचित नहीं है । एक कबूतर के दुःख का आप इतना ध्यान रखते हैं तो हमारे आक्रन्दन दुःख पर आप का ध्यान क्यों नहीं जा रहा है ?

महाराज मेघरथ समस्त प्रजाजनों एवं परिवार के सदस्यों को आश्वासन देते हुए कहने लगे-प्रजाजनो ! यह देह एक दिन अवश्य नष्ट होनेवाला है । अगर इस देह के विलीनीकरण से एक प्राणी के प्राण बच सकते हैं तो इस से बढ़कर और क्या पुण्य हो सकता है ?

आप सब मोह और स्नेह से प्रेरित हो कर इतना आक्रन्द कर रहे हैं । मै अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ । आप मेरे इस कर्तव्य पालन में बाधक न बने ।

महाराज मेघ बिना विलम्ब के अपने हाथ से अपने शरीर का मांस काट काट कर तराजू में रखते जाते परन्तु तराजू का पलड़ा ऊँचा ही रहने लगा । कबूतर का पलड़ा ऊपर उठा ही नहीं। महा-राज को तीव्र वेदना हो रही थी किन्तु अत्यन्त शान्त भाव से वे उसे सह रहे थे । शरीर के कई भाग काट कर पलड़े में रख दिये

गये लेकिन कबूतर का पलड़ा भारी ही रहा। अन्त में महाराज स्वयं पलड़े में बैठ गये।

महाराज का यह आत्म समर्पण देखकर देव अवाक् हो गया। स्वर्ग से पुष्प बरसने लगे। सर्वत्र धन्य धन्य की आवाज आने लगी। 'शरणागतरक्षक महामानव मेघरथ की जय हो' यह कहता एक दिव्य कुण्डलधारी देव प्रकट हुआ और महाराज मेघरथ को प्रणाम कर बोला—

हे राजन्! मै ईशान देवलोक का एक देव हूँ। एकबार देव सभा में ईशानेन्द्र ने आपकी दयालुता धार्मिकता और शरणागत वात्सल्य आदि गुणों की प्रशंसा की। मुझे इन्द्र की बात पर विश्वास नहीं हुआ और मै आपकी परीक्षा करने यहाँ आया हूँ। आप धन्य हैं। जैसी इन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी, उससे अधिक आप गुणवान हैं। आपके जन्म से यह पृथ्वी धन्य हो गई है। मैंने अकारण ही आपको जो कष्ट दिया उसके लिये आप क्षमा करें।

देवने अपनी माया समेटली और वह अपने स्थान चला गया। महाराज मेघरथ ने प्रजाजनों के पूछने पर कबूतर और बाजरूप धारी देवों का पूर्वभव बताया।

एक बार महाराज पौषधव्रत कर रहे थे। उन्हें अठ्ठम तप था। धर्म ध्यान में निमग्न देखकर ईशानेन्द्र मेघरथ राजा को प्रणाम करने लगा। हाथ जोड़ते हुए इन्द्र को देखकर इन्द्रानियों ने पूछा—स्वामिन्! आप किस को नमस्कार कर रहे हैं? इन्द्र ने कहा—पुण्डरीकिणी नगर के दृढधर्मी एव धर्म ध्यान में निमग्न मेघरथ को मै प्रणाम कर रहा हूँ। महाराजा मेघ आगामी भव में सोलहवे तीर्थङ्कर भगवान होंगे। उनका ध्यान इतना निश्चल और दृढ़ होता है कि उन्हे चलायमान करने में कोई भी देव या देवी समर्थ नहीं है।

इन्द्र की इस बात पर सुरूपा और प्रतिरूपा नामकी दो इन्द्रानियों को विश्वास नहीं हुआ। वे मेघरथ को ध्यान से विचलित करने

के लिये वहाँ आई और अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्ग करने लगीं। रात भर उपसर्ग करने के बाद भी जब मेघरथ को अविचल देखा तो वह हार गई। अन्त में इन्द्राणियों ने अपना असली रूप प्रकट कर मेघरथ की धार्मिक दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा मेघरथ को प्रणाम कर अपने स्थान चली गई।

एक बार तीर्थङ्कर भगवान घनरथ स्वामी का समवशरण हुआ। महाराज मेघरथ ने अपने समस्त राज्य परिवार के साथ भगवान के दर्शन किये। भगवान घनरथ स्वामी ने उपदेश दिया। उपदेश सुनकर मेघरथ को वैराग्य उत्पन्न होगया। युवराज दृढरथ ने भी दीक्षा लेने की भावना प्रकट की। महाराज मेघरथ ने अपने पुत्र मेघसेन को शासन भार सौंप दिया और युवराज दृढरथ के पुत्र रथसेन को युवराज पद पर अधिष्ठित किया।

महाराज मेघरथ ने अपने सात सौ पुत्रों, चार हजार राजाओं एवं अपने लघु भ्राता दृढरथ के साथ घनरथ तीर्थङ्कर के समीप दीक्षा ग्रहण की। एक लाख पूर्व तक विशुद्ध संयम का पालन कर और तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन कर अनशन पूर्वक मर कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए। दृढरथ मुनि भी विशुद्ध संयम की आराधना कर सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की आयु वाले देव बने।

तेरहवाँ भव—

भगवान शान्तिनाथ

कुरु देश में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहाँ विश्वसेन नाम के परम प्रतापी एवं धर्मवीर राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम अचिरा था। उसका सौंदर्य रति को भी लज्जित करता था। वह पतिपरायणा सतीशिरोमणि थी।

मेघरथ देव का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर भाद्रपद कृष्ण सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र में जब चन्द्रमा का योग आया तब महा-

रानी अचिरा देवी की कुक्षि में अवतरित हुआ। उस समय महारानी अचिरा देवी ने अर्धजागृत अवस्था में रात्रि के पिछले प्रहर में चौदह महास्वप्न देखे।

स्वप्नों को देखते ही महारानी जागृत हो गई। वह उसी समय अपनी शैया से उठी और पति के पास पहुँच कर उसने अपने स्वप्नों का फल पूछा। महाराज विश्वसेन ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा-महारानी! तुम त्रिलोक-पूज्य एक महान पुत्ररत्न को जन्म दोगी। इस पुत्र के जन्म से तुम्हारी कोख धन्य बनेगी।

महारानी पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। अब वह विधि पूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी। गर्भ में भगवान के आने से सारे विश्व में शान्ति व्याप्त होगई।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर जेष्ठ मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन भरणी नक्षत्र में जब सब ग्रह उच्च स्थान में थे तब महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही तीनों लोक में प्रकाश फैल गया। कुछ समय के लिये नारकी जीवों को भी शान्ति मिली। इन्द्रों के आसन कम्पित हो उठे। दिशाकुमारियाँ आईं। इन्द्र आये और मेरु पर्वत पर बाल भगवान का जन्माभिषेक महोत्सव किया। महाराजा विश्वसेन ने भी पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जब भगवान गर्भ में थे तब उनके प्रभाव से नगर की महामारी शान्त हो गई थी अतः बाल भगवान का नाम 'शान्तिनाथ' रखा।

भगवान को जन्म से ही तीन ज्ञान थे। धीरे धीरे दूज के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगे। अपनी बाल सुलभ लीला से शान्ति कुमार माता पिता को बड़ा प्रसन्न करते थे। जब शान्तिकुमार युवा हुए तब महाराज विश्वसेन ने यशोमती आदि अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ उनका विवाह किया। राजकुमार शान्तिनाथ जब पच्चीस हजार वर्ष के हुए तब महाराज विश्वसेन ने राज्य का भार उन्हें सौंप दिया और वे प्रव्रज्या ग्रहण कर आत्म साधना करने लगे।

भगवान शान्तिनाथ ने अब राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली और न्याय पूर्वक राज्य करने लगे। उनके यशोमती नामकी एक पट्टरानी थी। उसने एक रात्रि को स्वप्न में सूर्य के समान तेजस्वी ऐसे एक चक्र को आकाश से उतर कर मुख में प्रवेश करते हुए देखा। दृढरथ मुनि का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर उनकी कुक्षि में उत्पन्न हुआ। महारानी ने स्वप्न की बात पति से निवेदन की। महाराज शान्तिनाथ अवधिज्ञान से युक्त थे। उन्होंने कहा—देवी! मेरे पूर्व भव का भाई दृढरथ अनुत्तर विमान से च्युत होकर तुम्हारे गर्भ में आया है। गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी यशोमती ने पुत्र को जन्म दिया। स्वप्न में चक्र देखा था इसलिये बालक का नाम चक्रायुध रखा। यौवन वय प्राप्त होने पर चक्रायुध का अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह किया गया।

कलान्तर में शान्तिनाथ के शस्त्रागार में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। चक्ररत्न के बाद अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। उनकी सहायता से महाराजा शांतिनाथ ने भरतक्षेत्र के छह खण्डों को जीता। छहों खण्डों पर विजय प्राप्त करने में आठ सौ वर्ष लगे। देवों इन्द्रों और मनुष्यों ने मिलकर भगवान शान्तिनाथ को चक्रवर्ती पद पर अधिष्ठित किया। उन्हें इस अवसर्पिणी काल का पांचवाँ चक्रवर्ती घोषित किया। आठसौ वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष तक भगवान चक्रवर्ती पद पर आसीन रहे।

एक समय चक्रवर्ती शान्तिनाथ संसार की असारता का विचार कर रहे थे। इतने में लोकान्तिक देव भगवान के पास उपस्थित हुए और प्रणाम कर कहने लगे–भगवन्! अब आप धर्मचक्र का प्रवर्तन करें। जनकल्याण के लिये चारित्र ग्रहण कर तीर्थ की स्थापना करें।

भगवान पूर्व से ही वैराग्य के रंग में रंगे हुए थे। देवों की प्रेरणा से उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। अपने पुत्र चक्रायुध को राज्यभार देकर वे वर्षीदान देने लगे। वर्षीदान की समाप्ति पर

इन्द्रादि देवों ने शिविका सजाई। आप शिविका पर आरूढ़ होकर ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। भावों की उच्चता से आपको चौथा ज्ञान उत्पन्न हो गया। उस दिन आपने बेले का तप किया था। दूसरे दिन भगवान ने मन्दिरपुर के राजा सुमित्र के घर परमान्न से पारणा किया। राजमहल में वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट हुए

एक वर्ष तक भगवान छद्मस्थ अवस्था में विचरण कर पुनः हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ पौष सुदि नवमी के दिन भरणी नक्षत्र में शुक्ल ध्यान की परमोच्च स्थिति में उन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। इन्द्रों ने केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने परिषद् के बीच देशना दी। इस देशना से प्रभावित हो महाराजा चक्रायुध अपने पुत्र कुलचंद्र को राज्य देकर अन्य पैंतीस राजाओं के साथ दीक्षित हुए। चक्रायुध ने त्रिपदी श्रवण कर चौदह पूर्व सहित अंग सूत्रों की रचना कर गणधर पद प्राप्त किया। इसी प्रकार पैंतीस राजाओं ने भी गणधर पद प्राप्त किये।

भगवान के शासन में शूकर वाहन वाला गरुड़ नामक शासन देवता और कमल के आसन पर स्थित हाथ में कमण्डल पुस्तकादि धारण करने वाली निर्वाणी नामक शासन देवी प्रकट हुई।

केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद भगवान २४९९९ वर्ष तक भारतभूमि को अपने पावन उपदेश से पवित्र करते रहे। इस के बीच भगवान शान्तिनाथ के ६२००० साधु, ६१६०० साध्वियाँ, ८०० चौदह पूर्वधर, ३००० अवधिज्ञानी, ४००० मनःपर्ययज्ञानी, ४३०० केवलज्ञानी, ६००० वैक्रियलब्धि वाले, २४०० वादविजयी, २९०००० श्रावक एवं ३९३००० श्राविकाएँ हुईं।

भगवान ने अपना निर्वाणकाल समीप जान समेतशिखर पर पदार्पण किया। वहाँ नौ सौ मुनियों के साथ अनशन कर एक मास के अन्त में जेठवदि त्रयोदशी के दिन भरणी नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया। भगवान का कुल आयुष्य एक लाख वर्ष का था जिस में भगवान ने पच्चीस हजार वर्ष कौमार अवस्था में, पच्चीस हजार वर्ष युवराज (मांडलिक) अवस्था में, पच्चीस हजार वर्ष चक्रवर्ती पद पर एवं पच्चीस हजार वर्ष मुनि अवस्था में व्यतीत किये। उनका शरीर चालीस धनुष ऊँचा था। वर्ण स्वर्ण जैसा था।

श्री धर्मनाथ जिनेश्वर के निर्वाण के बाद पौन पल्योपम न्यून तीन सागरोपम बीतने पर भगवान शान्तिनाथ मोक्ष में पधारे।

१७. भगवान कुन्थुनाथ

जंबूद्वीप के पूर्वविदेह में आवर्त नामक देश है। उसमें खड्गी नाम की नगरी थी। वहाँ सिंहावह नाम का राजा राज्य करता था। संवराचार्य के आगमन पर वह उनके दर्शन के लिये गया। उनका उपदेश सुनकर उसे संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न होगया और उसने अपने पुत्र को राज्य गद्दी पर स्थापित कर दीक्षा ग्रहण की। वे दीक्षा लेने के बाद उच्चकोटि का तप और मुनियों की सेवा करने लगे जिससे उन्होंने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन कर लिया। अन्तिम समय में समाधि पूर्वक मर कर वे सर्वार्थसिद्ध विमान में ३३ सागरोपम की आयु वाले अहमीन्द्र देव बने।

भारतवर्ष में हस्तिनापुर नामक सुन्दर नगर था। वहाँ शूर नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। वह अत्यन्त शीलवती व धर्मपरायणा थी। तेतीस सागरोपम का आयुष्य पूरा करके सिंहावह देव का जीव श्रावण वदि नवमी के दिन कृत्तिका नक्षत्र के योग में श्रीदेवी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उत्तम गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी ने वैशाख वदी चौदस को कृत्तिका नक्षत्र के योग में जब सारे ग्रह उच्चस्थान में थे तब पुत्ररत्न को जन्म

दिया । भगवान के जन्मने पर इन्द्रादि देवों ने उत्सव मनाया । गर्भ काल के समय श्रीदेवी ने कुन्थु नाम का रत्न-संचय देखा था अतः बालक का नाम कुन्थुनाथ रखा गया । यौवनवय के प्राप्त होने पर कुन्थुनाथ का अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ । जन्म से तेइस हजार साढ़ेसातसौ वर्ष के बाद राजा बने और उतने ही वर्ष के बाद उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । उसी के बल से छसौ वर्ष में उन्होंने भरतक्षेत्र के छ खण्डों पर विजय प्राप्त किया । छह खण्ड पर विजय पाने के बाद आप विधिपूर्वक चक्रवर्ती पद पर अधिष्ठित हुए । तेइस हजार सातसौ पचास वर्ष तक चक्रवर्ती पद पर रहने के बाद इन्हें वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ । भगवान को वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ जान लोकान्तिक देव उनके पास आये और प्रार्थना करने लगे कि हे भगवन् ! जगत के हित सुख एवं कल्याण के लिये आप दीक्षा धारण करें । देवों की प्रार्थना पर भगवान ने दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय किया और एक वर्ष तक नियमानुसार वर्षीदान दिया । वर्षी दान के बाद वैषाख कृष्णा पंचमी को दिन के अन्तिम प्रहर में कृत्तिका नक्षत्र के योग में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हुए । इन्द्रादि देवों ने भगवान का दीक्षा महोत्सव किया । उस दिन भगवान को परिणामों की उच्चता के कारण मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । दूसरे दिन षष्ठ का पारणा चक्रपुर के राजा व्याघ्रसिंह के घर परमान्न से किया । देवों ने पुष्पवृष्टि की और दान देने वाले की खूब महिमा गाई ।

सोलह वर्ष तक भगवान छद्मस्थ काल में विचरते रहे । विहार करते हुए आप पुनः हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और तिलक वृक्ष के नीचे बेले का तप कर ध्यान करने लगे । घातीकर्म जर्जर हो चुके थे । ध्यान की धारा वेगवती हुई और धर्म-ध्यान से आगे बढ़कर शुक्लध्यान की उच्चतम अवस्था में प्रवेश कर गई । ध्यान के प्रभाव से घातीकर्म समूल नष्ट हो गये और भगवान

को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। चैत्र मास की शुक्ल तृतीया के दिन कृतिका नक्षत्र के योग में भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये। इन्द्रादि देवों ने भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवशरण रचा गया। भगवान की देशना हुई। हजारों जीवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। चार तीर्थ की स्थापना हुई। स्वयंभू आदि पैंतीस गणधर हुए।

भगवान के ६०००० साधु,६०६०० साध्वियाँ, ६७० चौदह पूर्वधारी, २५०० अवधिज्ञानी, ३३४० मनःपर्ययज्ञानी, ३२०० केवलज्ञानी, ५१०० वैक्रियलब्धिवाले, २००० वादलब्धि वाले, १७९००० श्रावक और ३८१००० श्राविकाएँ हुईं। आपके शासन काल में गंधर्व नामका यक्ष और बला नाम की शासन देवी हुई।

केवलज्ञान के पश्चात् २३७३४ वर्ष तक भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देते हुए भगवान विचरते रहे। निर्वाण काल समीप जानकर भगवान एक हजार मुनियों के साथ **समेतशिखर** पर पधारे। वहाँ उन्होंने हजार मुनियों के साथ एक मास का अनशन कर लिया। वैशाख वदि प्रतिपदा के दिन कृतिका नक्षत्र में सम्पूर्ण कर्म का क्षय कर प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए। इन्द्रादि देवों ने भगवान का निर्वाण कल्याण मनाया। भगवान की कुल आयु ९५००० वर्षकी थी। उनका शरीर ३५ धनुष ऊँचा था। भगवान शान्तिनाथ के निर्वाणके पश्चात् आधा पल्योपम बीतने पर भगवान कुन्थुनाथ जी ने निर्वाण प्राप्त किया।

१८, भगवान अरनाथ

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में सुसीमा नाम की नगरी थी। वहाँ धनपति नाम के प्रजावत्सल राजा रहते थे। वे राज्य का संचालन करते हुए भी जिनधर्म का हृदय से पालन करते थे। संवर नाम के आचार्य का उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्य गद्दी पर स्थापित कर संवराचार्य के समीप दीक्षा धारण कर

ली। प्रव्रजित होकर धनपति मुनि कठोर तप करने लगे। बीस स्थानक की, शुद्ध भावना से आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। अनेक वर्ष तक शुद्ध भाव से संयम की आराधना कर अन्तिम समय में अनशन किया और समाधि पूर्वक मर कर ग्रैवेयक विमान में अहमींद्र पद प्राप्त किया।

वहाँ से चवकर धनपति का जीव हस्तिनापुर के प्रतापी राजा सुदर्शन की महारानी 'महादेवी' की कुक्षि में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया के दिन चन्द्र रेवती नक्षत्र के योग में उत्पन्न हुआ। उस समय भगवान तीन ज्ञान के धारक थे। उस रात्रि में महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। इन्द्रों ने गर्भ कल्याण महोत्सव किया।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला दसमी के दिन रेवती नक्षत्र में नन्दावर्त लक्षण से युक्त स्वर्णवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। भगवान के जन्म से तीनों लोक में शान्ति का वातावरण फैल गया। दिग्कुमारिकाएँ आईं। इन्द्रादि देवों ने भगवान का मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक किया। माता पिता ने भी पुत्र जन्म का महोत्सव किया। गर्भकाल में महादेवी ने आरा-चक्र देखा था अतः बालक का नाम अरनाथ रखा गया। शैशव अवस्था को पार कर भगवान ने युवावस्था में प्रवेश किया। भगवान का ६४००० हजार सुन्दर राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ। २१००० हजार वर्ष तक युवराज अवस्था में रहने के बाद उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ।

चक्ररत्न की सहायता से भगवान ने भरत क्षेत्र के छह खण्ड पर विजय प्राप्त की। इस विजय में ४०० वर्ष लगे। छह खण्ड के विजेता बनने पर आप चक्रवर्ती पद पर अधिष्ठित हुए। २१००० हजार वर्ष तक आप चक्रवर्ती पद पर बने रहे। राज्य का संचालन करते हुए आप को एक दिन संसार की असारता का विचार करते हुए वैराग्य उत्पन्न हो गया। उस समय लोकान्तिक देव भगवान के पास आये

और वन्दन कर भगवान से प्रार्थना करने लगे–हे प्रभु ! भव्य जीवों के कल्याणार्थ अब आप धर्मचक्र का प्रवर्तन करें ।

देवों की इस प्रेरणा से भगवान का वैराग्य और भी दृढ़ हो गया । उन्होंने वर्षीदान प्रारंभ कर दिया । एक वर्ष तक सुवर्णदान देकर माघ शुक्ला ११ के दिन रेवती नक्षत्र में छठ का तप कर सहस्राम्र उद्यान में मनुष्य और देवों के विशाल समूह के बीच दीक्षा ग्रहण की । भावों की उत्कृष्टता के कारण आपको उसी समय मनःपर्यय-ज्ञान उत्पन्न हो गया । इन्द्रों ने भगवान का दीक्षा महोत्सव किया । आप के साथ एक हजार राजाओं ने प्रव्रज्या धारण की । दूसरे दिन छठ का पारणा राजगृह के राजा अपराजित के घर परमान्न से किया । देवों ने इस अवसर पर पांच दिव्य प्रकट किये ।

तीन वर्षतक छद्मस्थ अवस्था में विचरने के बाद ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आप पुनः हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे । कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्र मे चन्द्र के योग में आम्र-वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए भगवान को केवलज्ञान एवं केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । आकाश देव दुंदुभियों की आवाज से गूँज उठा । देवों ने पुष्पवृष्टि की । इन्द्रोंने भगवान का समवशरण रचा । भगवान ने देव और मनुष्यों की विशाल परिषद् में धर्म-देशना दी । भगवान का उपदेश श्रवण कर कुंभ आदि ३३ पुरुषों ने दीक्षा धारण कर गणधर पद प्राप्त किया । चार तीर्थ की स्थापना हुई । प्रभु ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भव्यों का कल्याण करने लगे ।

भगवान के विचरण काल में ५०००० साधु एवं ६०००० साध्वियाँ ६१० चौदह पूर्वधर, २६०० अवधिज्ञानी, २५५१ मनःपर्ययज्ञानी २८०० केवली, ७ हजार ३ सौ वैक्रियलब्धिवाले, एक हजार छसौ वादी, १८४००० श्रावक और ३७२००० श्राविकाएँ हुईं ।

निर्वाण का समय समीप जान भगवान एक हजार मुनियों के साथ **समेतशिखर** पर पधारे। एक मास का अनशन कर हजार मुनियों के साथ मार्गशीर्ष शुक्ला दसमी के दिन रेवती नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का निर्वाणोत्सव किया।

भगवान की सम्पूर्ण आयु ८४ हजार वर्ष की थी। शरीर की ऊँचाई ३० धनुष की थी। कुन्थुनाथ भगवान के निर्वाण के पश्चात् हजार करोड़ वर्ष कम पल्योपम का चौथा अंश बीतने पर अरनाथ भगवान का निर्वाण हुआ।

१९. भगवती मल्ली

प्राचीनकाल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह वर्षक्षेत्र में मेरु-पर्वत से पश्चिम में, निषधवर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीतोदा महानदी से दक्षिण में, सुखावह वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में, और पश्चिम लवण-समुद्र से पूर्व में सलिलावती विजय था। इस सलिलावती विजय की राजधानी का नाम था वीतशोका। यह नगरी अपरिमित वैभव और धनधान्य से परिपूर्ण थी। यह नगरी नौ योजन चौड़ी थी और देव-लोक के समान अत्यन्त रमणीय थी। इस नगरी में प्राचीन काल में बल नाम के राजा राज्य करते थे। वे न्यायप्रिय और प्रजा के पालक थे। इनके राज्य में प्रजा संतुष्ट, सुखी, संपन्न और स्वस्थ थी। महा-राज के धारिणी नाम की एक रानी थी। वह पतिव्रता थी और पति की सेवा में सदा तत्पर रहती थी।

एक रात्रि में महारानी ने स्वप्न में केशरीसिंह को मुख में प्रवेश करते हुए देखा। स्वप्न को देखकर महारानी जाग उठी। वह पति के शयनखण्ड में गई और उसने पति को जगाकर स्वप्न कह सुनाया। स्वप्न सुनकर महाराज "बल" ने कहा—तुम आदर्श पुत्ररत्न को जन्म दोगी। उसी दिन से महारानी ने गर्भ धारण किया। नौ मास और साढ़े सात रात्रि के बीत जाने पर महारानी ने एक सुन्दर पुत्ररत्न

को जन्म दिया । गुण के अनुरूप बालक का नाम महाबलकुमार रखा। महाबल जब आठ वर्ष के हुए तब वे कलाचार्य के पास कला सीखने गये । अल्पकाल में ही ७२ कलाएँ सीखलीं । युवा होने पर महाबल-कुमार का एक ही दिन में पांच सौ सुन्दर एवं गुणवती कन्याओं के साथ विवाह कर दिया गया । युवराज महाबलकुमार अपने पिता के राज्य को सम्भालने लगे । युवराज महाबल के छह मित्र थे उनके नाम क्रमशः अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण और अभिचन्द थे । ये छहों राजकुमार थे और महाबल के अनुगामी थे । उनके सुख दुःख में साथ देने वाले थे । बचपन से ही वे साथ में रहते थे ।

एक बार धर्मघोष नामके स्थविर अपने शिष्यपरिवार के साथ वीतशोका पधारे । महाराजा बल और नगरी की जनता धर्मोपदेश सुनने उनके पास गई और उपदेश सुन वापस लौट आई । महाराज बल को स्थविर के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने महाबल को राज्य पर स्थापित कर के दीक्षा अंगीकार करली । कुछ समय के बाद महाराज महाबल को भी एक पुत्ररत्न हुआ जिसका नाम बलभद्र रक्खा । बलभद्र युवा हुआ और उसका सुन्दर राज-कुमारियों के साथ विवाह कर दिया गया ।

कुछ समय के बाद फिर धर्मघोष मुनि का इस नगरी में आगमन हुआ । उनका उपदेश सुनकर महाराजा महाबल के मन में संसार के प्रति विरक्ति हो गई । उन्होंने अपने मित्रों से संयम-धारण करने की भावना प्रकट की । सभी मित्रों ने महाबल की मनोकामना की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए स्वयं भी दीक्षा धारण करने का निश्चय किया। मित्रों का सहयोग पाकर महाबल का उत्साह बढ़ गया । उन्होंने अपने उत्तराधिकारी सुपुत्र बलभद्र का राज्यसिंहासन पर अभिषेक किया । राजा बनने के बाद बलभद्र ने राजोचित समारोह के साथ अपने पिता की

दीक्षा का उत्सव मनाया । महाबल ने अपने छहों मित्रों के साथ धर्मघोष स्थविर के समीप दीक्षा धारण की और संयम की उत्कृष्ट भावना से आराधना करते हुए विचरने लगे । जिस प्रकार राज्यकार्य में छहों मित्रों ने महाबल का साथ दिया था, उसी प्रकार संयम साधना में भी देने लगे । एकबार सभी ने मिलकर यह निश्चय किया कि हम सब मिलकर एक साथ तप करेंगे और साथ ही में पारणा भी करेंगे.। इसी संकल्प के अनुसार सातों मुनिराजों ने छठ छठ का तप प्रारम्भ कर दिया । एक छठ की तपस्या में महाबल मुनि ने अपने मित्र मुनियों से भी अधिक तप करने का निश्चय किया । तदनुसार छठ का पारणा न करके अष्टम भक्त का प्रत्याख्यान कर लिया किन्तु यह बात मित्रों से गुप्त रक्खी । छठ की समाप्ति पर अन्य मुनियों ने पारणा करने के भाव प्रकट किये तो महाबलमुनि ने भी यही भाव व्यक्त किया । जब अन्य मुनियों ने पारणा कर लिया तो वे कहने लगे-मैं तो तेला करूँगा । जब छहों अनगार चतुर्थ भक्त (उपवास) करते तो वे महाबल अनगार अपने मित्र मुनियों को बिना कहे ही षष्ठ भक्त (वेला) ग्रहण करते । इसी तरह जब छहों अनगार षष्ठ भक्त अंगीकार करते तब महाबल अनगार अष्ठम भक्त ग्रहण करते इस प्रकार अपने साथी मुनियों से छिपाकर कपट पूर्वक महाबल मुनि अधिक तप करते थे । इसी कपट के फलस्वरूप उन्हें स्त्रीवेद का बन्ध हुआ । इसके अतिरिक्त महाबल मुनि ने उत्कृष्ट भावना से अनेक प्रकार की कठोर तपस्या प्रारम्भ करदी जिसके फलस्वरूप उन्होंने तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया ।

तीर्थङ्कर नामकर्म का निम्न बीस कारणों से बन्ध होता है—

(१) **अरिहन्तवत्सलता**—घनघाती कर्मों का नाशकर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्तकरने वाले अर्हन्तों की आराधना करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है ।

(२) **सिद्धवत्सलता**—आठ कर्मों के नाश करनेवाले सिद्ध भगवान की आराधना–गुणगान करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन होता है।

(३) **प्रवचनवत्सलता**—श्रुतज्ञान के गुणगान से तथा अर्हत् शासन के अनुष्ठायी श्रुतधर, बाल, तपस्वी, वृद्ध, शैक्ष, ग्लानादि के प्रति अनुग्रह से एवं साधर्मिक के प्रति निष्काम स्नेहभाव रखने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(४) **गुरुवत्सलता**—गुरु एवं आचार्य की विनय भक्ति एवं उनके गुणगान से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(५) **स्थविरवत्सलता**—ज्ञान–स्थविर (वृद्ध) समवायांग के ज्ञाता ज्ञानस्थविर, साठ वर्ष की उम्रवाले जातिस्थविर एवं बीसवर्ष की दीक्षा वाले चारित्रस्थविरों का विनय करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(६) **बहुश्रुतवत्सलता**—विशिष्ट आगम के अभ्यासी साधुओं का विनय करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन होता है।

(७) **तपस्वी वत्सलता**—एक उपवास से आरम्भ कर बड़ी बड़ी तपस्या करने वाले मुनियों की सेवा भक्ति करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्ध होता है।

(८) **अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग**–अभीक्ष्ण–बार बार। ज्ञान अर्थात् द्वादशांग प्रवचन। उपयोग अर्थात् प्रणिधान–सूत्र अर्थ और उभय में आत्मव्यापार–आत्मपरिणाम वाँचना, प्रच्छना अनुपेक्षा धर्मोपदेश के अभ्यास से तथा जीवादि पदार्थ विषयक ज्ञान में सतत जागरूकता से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन होता है।

(९) **दर्शन विशुद्धि**–जिनेश्वर द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों में शङ्कादि दोष रहित, निर्मल रुचि, प्रीति–दृष्टि दर्शन का होना, तत्त्वों में निर्मल श्रद्धा रूप सम्यग् दर्शन के होने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१०) **तत्त्वार्थ विनय**–सम्यग् ज्ञानादि रूप मोक्षमार्ग, उसके साधन आदि में उचित सत्कार आदि विनय से युक्त होना। ज्ञान-दर्शन चारित्र और उपचार विनय से युक्त होने पर तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(११) **आवश्यक**–सामायिकादि छह आवश्यकों का भावपूर्वक अनुष्ठान करना, उनका परित्याग न करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन होता है।

(१२) **शीलव्रतानतिचार**–हिंसा असत्य आदि से विरमण-रूप मूल गुणों को व्रत कहते हैं। उन व्रतों के पालन में उपयोगी उत्तर गुणों को शील कहते हैं उनके पालन में जरा भी प्रमाद न करना। उनके निरतिचार निरवद्य पालन से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१३) **क्षणलव संवेग**–सांसारिक भोगों के प्रति सतत उदासीनता रखने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१४) **तप**–अनशनादि बारह प्रकार की तपस्या करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१५) **त्याग**–साधुओं को प्रासुक एषणीय दान देने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१६) **वैयावृत्य**–आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शैक्ष्य, कुल, गण, संघ और साधर्मिक की सेवा सुश्रुषा करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१७) **समाधि**–मुनिजनों को साता उपजाने से तीर्थङ्कर नाम-कर्म का बन्ध होता है।

(१८) **अपूर्व ज्ञान ग्रहण**–नया नया ज्ञान ग्रहण करने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

(१९) **श्रुत भक्ति**–सिद्धान्त की भक्ति करने से तीर्थङ्कर नाम-कर्म का बन्ध होता है।

(२०) **प्रवचन प्रभावना**-अभिमान छोड़, ज्ञानादि मोक्ष मार्ग को जीवन में उतारना और दूसरों को उसका उपदेश देकर उसका प्रभाव बढ़ाने से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है।

तात्पर्य यह है कि इन बीस कारणों से महाबल मुनि ने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। इसके बाद महाबल आदि सातों अनगारों ने बारह प्रकार की भिक्षु प्रतिमाएँ धारण की जिसमें पहली भिक्षु प्रतिमा एक मास की, दूसरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चोथी चार मास की, पाँचवी पाँच मास की, छठीं छह मास की, सातवीं सात मास की, आठवीं सात अहोरात्र की, नौवीं सात अहोरात्र की, दसवीं सात अहोरात्र की ग्यारहवीं एक अहोरात्र की एवं बारहवीं एक रात्रि की थी। भिक्षु-प्रतिमाओं का सम्यक् रूप से आराधन कर, इन सातों मुनियों ने क्षुल्लक 'सिंहनिष्क्रीड़ित' तप आरम्भ कर दिया [सिंह की क्रीडा के समान तप सिंहनिष्क्रीड़ित कहलाता है। जैसे सिंह चलता-चलता पीछे देखता है, इसी प्रकार जिस तप में पीछे के तप की आवृत्ति करके आगे का तप किया जाता है और इसी क्रम से आगे बढ़ा जाता है, वह 'सिंहनिष्क्रीड़ित' तप कहलाता है।] इस तप में मुनिवरों ने प्रथम एक उपवास कर "सर्व-काम गुणित, (विगय आदि सभी पदार्थों का ग्रहण करना) पारणा किया। इसी प्रकार दो उपवास और करके पारण किया। शेष क्रम इस प्रकार है-

१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८
१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	

इस प्रकार इस क्षुल्लक 'सिंहनिष्क्रीड़ित' तप की पहली परिपाटी छह मास और सात अहोरात्रि में कुल १५४ उपवास और तेतीस पारणे के साथ पूर्ण की। इसके बाद मुनिवरों ने द्वितीय परिपाटी प्रारम्भ कर दी। इसकी विधि प्रथम परिपाटी की ही तरह है। विषेशता

इतनी है कि इससे विगय रहित पारणा किया जाता है अर्थात् पारणे में घृत आदि विगय का सेवन नहीं करते । इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी समझनी चाहिये । इसमें विशेषता यह है कि अलेपकृत (विगय के लेप मात्र का त्याग) से पारणा करते हैं । चौथी परि-पाटी में भी ऐसा ही करते हैं । इसमें **आयंबिल** से पारणा की जाती है । इस प्रकार दो वर्ष और अठ्ठाईस अहोरात्रि में लघुसिंह-निष्क्रीडित तप का सम्यक् रूप से आराधन कर महानिष्क्रीडित तप प्रारम्भ कर दिया । यह तप भी लघुनिष्क्रीडित की तरह ही किया जाता है अन्तर इतना है कि इसमें चौंतीस भक्त अर्थात् सोलह उप-वास तक पहुँच कर वापस लौटा जाता है । एक परिपाटी एक वर्ष, छह मास और अठारह अहोरात्रि में समाप्त होती है । सम्पूर्ण महा-सिंहनिष्क्रीडित तप छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्रि में समाप्त होता है। प्रत्येक परिपाटी में ५५८ दिन तक लगते हैं। ४९७ उप-वास और ६१ पारणा होते हैं । महासिंहनिष्क्रीडित तप करने के बाद महाबल आदि सातों मुनिराजों ने और भी अनेक प्रकार के तप किये जिससे उनका शरीर अन्यन्त कृष हो गया । रक्त और मांस सूख गया । शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया । अन्त में अपना आयुष्य अल्प रहा जानकर सातों मुनिवर स्थविर की आज्ञा प्राप्त कर 'चारु' नामक वक्षष्कार पर्वत पर आरूढ़ हुए । वहाँ दो मास की संलेखना करके अर्थात् एक सौ बीस भक्त का अनशन कर चौरासी लाख वर्षों तक संयम पालन करके, चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोग कर जयन्त नामक तीसरे अनुत्तर विमान में देवपर्याय से उत्पन्न हुए । इनमें महाबलमुनि ने ३२ सागरोपम की और शेष छह मुनिवरों ने कुछ कम ३२ सागरोपम की उत्कृष्ट आयु प्राप्त की । महाबल के सिवाय छह देव, देवायु पूर्ण होने पर भारत वर्ष में विशुद्ध माता-पिता के वंशवाले राजकुलों में अलग अलग कुमार के रूप में उत्पन्न हुए । वे इस प्रकार हैं—

१-पहला मित्र अचल प्रतिबुद्धि नामक इक्ष्वाकु वंश का अथवा इक्ष्वाकु (कोशल) देश का राजा हुआ । इसकी राजधानी अयोध्या थी ।

२-दूसरा मित्र धरण, चन्द्रच्छाय नाम से अंगदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी ।

३-तीसरा मित्र पूरण, रुक्मि नामक कुणाल देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी ।

४-चौथा मित्र वसु, शंख नामक काशी देश का राजा हुआ जिसकी नगरी वाराणसी थी ।

५-पांचवा मित्र वैश्रमण, अदीनशत्रु नाम कुरुदेश का राजा हुआ जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी ।

६-छठा मित्र अभिचन्द, जीतशत्रु नाम धारण कर पंचाल देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी कांपिल्यपुर थी ।

महाबल देव मति श्रुति और अवधिज्ञान से युक्त हो कर, जब समस्त ग्रह उच्च स्थान में रहे हुए थे, सभी दिशाएँ सौम्य थीं सुगन्ध, मन्द और शीतलवायु दक्षिण की ओर वह रहा था और सर्वत्र हर्ष का वातावरण था ऐसी सुमङ्गल रात्रि के समय अश्विनी नक्षत्र के योग में हेमन्त ऋतु के चौथे मास आठवें पक्ष अर्थात् फाल्गुण मास के शुक्ल पक्ष में चतुर्थी की रात्रि में बत्तीस सागरोपम की स्थिति को पूर्ण कर जयन्त नामक विमानसे च्युत होकर इसी जम्बू-द्वीप में भरतक्षेत्र की मिथिला नामक राजधानी में कुम्भराजा की प्रभा-वती देवी की कोख में अवतरित हुए । उस रात्रि में प्रभावती देवी ने चौदह महास्वप्न देखे । जो इस प्रकार हैं-गज, ऋषभ, सिंह, अभि-षेक, पुष्पमाला, चन्द्रमा, सूर्य, ध्वजा, कुम्भ, पद्म युक्त सरोवर, सागर, विमान, रत्नों की राशि, एवं धूमरहित अग्नि । इन चौदह महास्वप्नों को देखकर महारानी जाग उठी और राजा के शयन कक्ष में जाकर सवि-नय बोली—

प्राणनाथ ! मैंने चौदह महास्वप्न देखे हैं । इनका फल क्या है ? कुम्भ राजा ने मधुर स्वर नें कहा—प्रिये ! तुम्हारे ये स्वप्न शुभ हैं । तुम तीन लोक में पूजे जाने वाली सन्तान को जन्म दोगी । तुम्हें इस स्वप्न से अर्थ और राज्य की प्राप्ति होगी ।

महाराज द्वारा अपने स्वप्नों का फल सुनकर रानी प्रभावती बड़ी प्रसन्न हुई । इस प्रकार कुम्भ राजा के वचन को हृदय में स्मरण रखती हुई महारानी प्रभावती वहाँ से उठकर अपने शयनागार में गयीं और मंगलकारी चौदह महास्वप्न निष्फल न हों इस विचार से वह शेष रात जागती रही और धर्म चिन्तन करने लगी ।

प्रातः काल राजा कुम्भ ने स्नान किया तथा सुन्दर वस्त्रालंकार पहनकर वे राज सभा में आये और अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता ज्योतिषियों को उन्होंने बुलाया। महाराज कुम्भ के आदेश पर स्वप्नपाठक आये और उन्होंने महारानी प्रभावती के चौदह स्वप्नों का फल बताते हुए कहा—

हे देवानुप्रिय ! हमारे स्वप्नशास्त्र में सामान्य फल देने वाले बयालिस और उत्तम फल देने वाले तीस महास्वप्न बतलाये हैं । ऐसे सब मिलाकर बहत्तर स्वप्न कहे हुए हैं । उनमें से अर्हत तीर्थङ्कर की माताएँ और चक्रवर्ती की माताएँ जब तीर्थङ्कर या चक्रवर्ती का जीव गर्भ में आता है तब तीस महास्वप्नों में से चौदह महास्वप्न देखती हैं । वासुदेव की माताएँ सात महास्वप्न और बलदेव की माताएँ चार महास्वप्न देखती हैं । माण्डलिक राजा की माताएँ एक महास्वप्न को देखती हैं । महारानी प्रभावती देवी ने १४ महास्वप्न देखे हैं अतः महारानी धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले तीर्थङ्कर महापुरुष को जन्म देगी । महाराजा और महारानी स्वप्नपाठकों के मुख से स्वप्न का शुभ फल सुनकर बड़े प्रसन्न हुए । महाराजा ने स्वप्नपाठकों को विपुल धनराशि देकर सम्मानित किया और उन्हें विदा कर दिया ।

तीन मास के पूर्ण होने पर महारानी प्रभावती को पँचरंगे पुष्पों से आच्छादित और पुनः पुनः आच्छादित की हुई शय्या पर सोने का

तथा पाटला, मालती , चंपा, अशोक, पुंनाग के फूलों, मरुआ के पत्तों, दमनक के फूलों, शतपत्रिका के फूलों एवं कोरंट के उत्तम पत्तों से गूंथा हुआ सुखमय स्पर्श वाला तथा अत्यन्त सौरभ को छोड़ने वाला श्रीदाम-काण्ड (फूलों की सुन्दर माला) सूँघने का दोहद उत्पन्न हुआ। प्रभावती देवी के इस दोहद को जानकर समीपस्थ वानव्यन्तर देवों ने जल और थल में उत्पन्न विविध पुष्पों के ढेर रानी के महल में डाल दिए तथा एक सुखप्रद और सुगन्ध को फैलाने वाला श्रीदामकाण्ड भी लाकर महल में डाल दिया। महारानी ने फूलों की शय्या पर सोकर एवं श्रीदाम-काण्ड को सूँघ कर अपना दोहद पूर्ण किया।

प्रभावतीदेवी ने नौ मास और साढ़े सात दिवस के पूर्ण होने पर हेमन्त के प्रथम मास के दूसरे पक्ष में यानी मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन मध्यरात्रि में अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर सभी ग्रहों के उच्च स्थान पर स्थित होने पर उन्नीसवें तीर्थङ्कर को जन्म दिया तीर्थंकरों के जन्म के नियम के अनुसार ५६ दिग्कुमारिकाओं ने प्रसूतिका का कर्म किया। इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर जाकर बालिका भगवान का जन्म महोत्सव किया। आठ दिन का महोत्सव मनाकर भगवान को अपनी माता के पास वापस रख दिया। महाराज कुम्भ ने पुत्री का जन्म महोत्सव किया। उत्सव काल में तीसरे दिन चन्द्र और सूर्य का दर्शन कराया गया। छठे दिन रात्रि जागरण का उत्सव हुआ बारहवें दिन नाम सस्कार कराया गया। इस बीच राजा कुम्भ ने अपने नौकर, चाकर, इष्ट मित्र स्नेहियों और ज्ञातिजनों को आमंत्रित किया और भोजन पान अलंकार आदि से सब का सत्कार किया और कहा-जब यह बालिका गर्भ में थी तब इसकी माता को पुष्प शय्या पर सोने का तथा पुष्पमाला सूंघने का दोहद हुआ था अतः इस बालिका का नाम मल्ली रखेंगे। सब ने इस बात को आदर पूर्वक स्वीकार किया।

भगवती मल्ली का बाल्यकाल सुख समृद्धि और वैभव के साथ बीतने लगा। उनके लिए ५ धाएँ रखी गईं थीं तथा और भी दास दासियाँ थीं जो उनका लालन-पालन करती थीं। भगवती मल्ली अत्यन्त रूपवती थी। उसके यौवन के सामने अप्सरा भी लज्जित थीं। लम्बे और काले केश सुन्दर आंखें और बिम्बफल जैसे लाल अधर थे। वह कुमारी से युवा हो गई। उन्हें जन्म से अवधिज्ञान था और उस ज्ञान से उन्होंने अपने मित्रों की उत्पत्ति तथा राज्यप्राप्ति आदि बातें जान ली थीं। उन्हें अपने भावी का पता था। आने वाले संकट से बचने के लिए उन्होंने अभी से प्रयोग प्रारम्भ कर दिया।

भगवती मल्ली ने अपने सेवकों को अशोकवाटिका में एक विशाल मोहनगृह (मोह उत्पन्न करने वाला अतिशय रमणीय घर) बनाने की आज्ञा दी। साथ में यह भी आदेश दिया कि "यह मोहनगृह अनेक स्तंभों वाला हो उस मोहनगृह के मध्य भाग में छह गर्भगृह (कमरे) बनाओ। उन छहों गर्भगृहों के ठीक बीच में एक जालगृह (जिसके चारों ओर जाली लगी हो और जिसके भीतर की वस्तु बाहर वाले देख सकते हों ऐसा घर) बनाओ। उस जालगृह के मध्य में एक मणिमय पीठिका बनाओ तथा उस मणिपीठिका पर मेरी एक सुवर्ण की प्रतिमा बनवाओ उस प्रतिमा का मस्तक ढक्कन वाला होना चाहिये।" भगवती मल्ली की आज्ञा पाकर शिल्पकारों ने मोहनगृह बनाया और उसमें मल्ली कुमारी की सुन्दर सुवर्ण प्रतिमा बनाई।

अब मल्लीकुमारी प्रति दिन अपने भोजन का एक कवल प्रतिमा के मस्तक का ढक्कन खोलकर उस में डालती थी और पुनः उसे ढँक देती थी। अन्न के सड़ने से उस प्रतिमा के भीतर अत्यन्त दुसह्य दुर्गन्ध पैदा हो गई थी। मल्ली कुमारी का प्रति दिन यही क्रम चलता रहा।

उस समय कोशल जनपद में साकेत नाम का नगर था। वहाँ इक्ष्वाकु वंश के प्रतिबुद्धि नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी

का नाम पद्मावती था। राजा के प्रधान मंत्री का नाम सुबुद्धि था। वह साम, दाम, दण्ड और भेद नीति में कुशल था और राज्य का शुभचिन्तक था। उस नगर के ईशान कोण में एक विशाल नाग गृह था।

एक बार पद्मावती देवी का नाग पूजा का उत्सव आया। महारानी पद्मावती ने महाराजा प्रतिबुद्धि से निवेदन किया-"स्वामी! कल नाग पूजा का दिन है। आपकी आज्ञा से उसे मनाना चाहती हूँ। आप भी नाग पूजा में मेरे साथ रहें, ऐसी मेरी इच्छा है।"

महाराज प्रतिबुद्धि ने पद्मावती देवी की यह प्रार्थना स्वीकार की। महाराज प्रतिबुद्धि की स्वीकृति प्राप्त कर उसने अपने सेवकों को बुलाकर कहा-कल मैं नागपूजा करूँगी अतः तुम माली को बुलाकर कहो कि-"पद्मावती देवी और महाराज प्रतिबुद्धि नागपूजा करेंगे अतः जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले पांच वर्ण के पुष्पों को विविध प्रकार से सजाकर एक विशाल पुष्प मण्डप बनाओ। उसमें फूलों के अनेक प्रकार के हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मैना, कोयल, ईहामृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, मृग, अष्टापद, चमरी, वनलता, एवं पद्मलता आदि के चित्रों को बनाया जाए। उस पुष्पमण्डप के मध्य भाग में सुगन्धित पदार्थ रखो एवं उसमें श्रीदामकाण्ड (पुष्पमालाएँ) लटकाओ और पद्मावतीदेवी की राह देखते हुए रहो।" सेवकों ने माली से जाकर पद्मावतीदेवी की उक्त आज्ञा कही। मालियों ने महारानी के आदेशानुसार वैसा ही किया।

प्रातः महारानी की आज्ञानुसार सारे नगर की सफाई की गई और सारे नगर में सुगन्धित जल छिड़काया गया।

महारानी स्नान कर एवं सर्ववस्त्रालंकारों से विभूषित हो धार्मिक यान पर बैठी। अपने विशाल परिवार से घिरी हुई महारानी का यान नगर के बीच से निकला और जहाँ पुष्करणी थी वहाँ आया।

रानी पद्मावती यान से नीचे उतरी और पुष्करणी में प्रवेश करके स्नान किया और गीली साड़ी पहने ही कमल पुष्पों को ग्रहण कर नागगृह में प्रवेश किया। वहाँ उसने सर्वप्रथम लोमहस्तक से नाग प्रतिमा का परिमार्जन किया और उसकी पूजा की। फिर महाराजा की प्रतीक्षा करने लगी।

इधर प्रतिबुद्धि महाराज ने भी स्नान किया। फिर सर्वअलंकार पहिनकर सुबुद्धि प्रधान के साथ हाथी पर बैठकर वे नागगृह आए। हाथी से नीचे उतर कर महाराजा एवं सुबुद्धि मन्त्री ने नाग मन्दिर में प्रवेश किया और नाग प्रतिमा को प्रणाम किया। नाग मन्दिर से निकल कर वे पुष्प-मण्डप में आये और श्रीदामकाण्ड की अपूर्व रचना का निरीक्षण करने लगे। कलात्मक पुष्प-मंडप की रचना को देखकर महाराज अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए। अमात्य को बुलाकर महाराज प्रतिबुद्धि कहने लगे-मन्त्री! तुम मेरे दूत के रूप में अनेक ग्राम नगरों में घूमें हो। राजा महाराजों के महलों में भी गये हो। कहो, आज तुमने पद्मावतीदेवी का जैसा श्रीदामकाण्ड देखा वैसा अन्यत्र भी कहीं देखा है?

सुबुद्धि बोला-"स्वामी! एक दिन आपके दूत के रूप में मैं मिथिला नगरी गया था। वहाँ विदेहराज की पुत्री मल्लीकुमारी की जन्मगांठ के महोत्सव के समय मैंने एक दिव्य श्रीदामकाण्ड देखा था। उस दिन मैंने पहले पहल जो श्रीदामकाण्ड देखा, पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड उसके लाखवें भाग की भी बराबरी नहीं कर सकता। महाराज ने पूछा-"वह विदेह राजकन्या मल्लीकुमारी रूप में कैसी है? मंत्री ने कहा-स्वामी! विदेह राजा की श्रेष्ठ कन्या मल्लीकुमारी सुप्रतिष्ठित कूर्मोन्नत (कछुए के सामान उन्नत) एवं सुन्दर चरणवाली है। वह अनुपम सुन्दरी है। उसका लावण्य अवर्णनीय है।

मंत्री के मुख से मल्लीकुमारी के रूप की प्रशंसा सुनकर महाराज प्रतिबुद्धि बड़े प्रसन्न हुए और उसी क्षण दूत को बुलाकर कहने लगे— तुम मिथिला राजधानी जाओ। वहाँ कुम्भराजा की पुत्री एवं प्रभावती

देवी की आत्मजा और विदेह की श्रेष्ठ राजकन्या मल्ली की मेरी पत्नी के रूप में मँगनी करो। अगर इसके लिये समस्त राज्य भी देना पड़े तो स्वीकार कर लेना।" महाराज की आज्ञा प्राप्त कर दूत सुभटों के साथ विदेह जनपद की राजधानी मिथिला की ओर चल पड़ा।

उस समय अंग नाम का एक जनपद था जिसकी राजधानी चंपा थी। वहाँ चन्द्रच्छाय नामके राजा राज्य करते थे। उस नगरी में अर्हन्नक आदि बहुत से नौ-वणिक् (नौका से व्यापार करने वाले) तथा सांयात्रिक (परदेश जाकर यात्रा करने वाले) रहते थे। वे संपन्न थे और उनके पास अपार धन राशि थी। उनमें जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचन में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाला अर्हन्नक नाम का श्रमणोपासक था। वह भी समृद्ध था।

एकबार ये व्यापारी एक जगह इकट्ठे हुए और उन्होंने पुनः समुद्र यात्रा का निश्चय किया तदनुसार इन वणिकों ने अपने अपने वाहनों में विविध वस्तुएँ भरीं और शुभ मुहूर्त में चंपा से यात्रा के लिए निकल पड़े। गम्भीर नामक पोतपट्टन (वन्दरगाह) में आकर जहाजों में अपना अपना सामान भर दिया। खाने पीने की वस्तुएँ साथ लीं तथा मित्र, शुभचिन्तकों और अपने सगे सम्बधियों के आशीर्वाद प्राप्त कर जहाजों में बैठ गये। जहाज का लंगर खोल दिया गया और वह विशाल समुद्र की छाती को चीरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

जब जहाज कई सौ योजन आगे चला गया तो अचानक ही समुद्र में तूफान आने के लक्षण दिखाई देने लगे। आकाश में मेघ छा गये। बिजली चमकने लगी और कानों के पर्दों को चीरने वाली भयंकर गर्जना होने लगी। उमड़ते हुए बादलों के बीच एक भयंकर पिशाच दिखाई देने लगा। जहाज की दिशा की ओर वह पवन वेग से बढ़ रहा था। उसका वर्ण काजल की तरह काला था। ताड़ पेड़ की तरह उसकी लम्बी लम्बी आँखें थीं। सूप की तरह उसके कान थे। नाक चपटी

थी और आंख जुगुनू की तरह थीं। होठ लटक रहे थे और लम्बे व नुकीले दांत बाहर निकले हुए थे। हाथ में तलवार लिये भयंकर अट्टहास करता हुआ वह पिशाच जहाज पर चढ़ गया और भयंकर गर्जना करता हुआ बोल उठा–ऐ यात्रिको रुक जाओ! अब तुम्हारी मौत नजदीक आगई है। अगर एक भी यात्री ने मेरी बात न मानी तो उसे इसी समय मौत के घाट उतार दिया जायगा।" वह पिशाच अरहन्नक श्रावक के पास आया और गरज कर बोला "हे अरणक! तुझे अपने धर्म से विचलित होना इष्ट नहीं है परन्तु मैं तुझे तेरे धर्म से विचलित करूँगा। तू अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा मैं तेरे जहाज को आकाश में उठाकर फिर समुद्र में पटक दूंगा जिससे तू मरकर आर्त और रौद्र ध्यान करता हुआ दुर्गति को प्राप्त होगा।"

पिशाच के उपरोक्त वचनों को सुन कर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण दुर्गा आदि देवों की अनेक प्रकार की मानताएँ करने लगे किन्तु अरणक श्रावक किंचित् मात्र भी घबराया नहीं और न विचलित ही हुआ प्रत्युत अपने वस्त्र से भूमि का परिमार्जन करके सागारी संथारा करके, धर्म ध्यान करता हुआ शान्त चित्त से बैठ गया। इस प्रकार निश्चल बैठे हुए अरणक श्रावक को देखकर पिशाच और भी क्रुद्ध हुआ और नंगी तलवार को घुमाता हुआ भयोत्पादक वचन कहने लगा। फिर भी अरहन्नक शान्त भाव से बैठा ही रहा। अरहन्नक को विचलित न होते देख पिशाच उस जहाज को दो अंगुलियों से उठाकर आकाश में बहुत ऊंचा ले गया और अरहन्नक श्रावक से फिर इस प्रकार कहने लगा–हे अरहन्नक! अगर तू अपने धर्म को छोड़ने के लिए तैयार है तो मैं तुझे जीवित छोड़ सकता हूँ वरना जहाज सहित तुझे इस समुद्र में डुबा दूँगा। पिशाच के इन भयजनक शब्दों का अरहन्नक पर कोई असर नहीं हुआ, वह पूर्ववत् ही स्थिर रहा। अन्त में पिशाच अरहन्नक श्रावक को धर्म से विचलित करने में असमर्थ रहा। पिशाच का क्रोध शान्त हो गया। वह

अपने असली देव रूप में प्रकट होकर अरहन्नक श्रावक से बोला-- हे अरहन्नक ! तुम धन्य हो ! तुम्हारा जीवन सफल है । तुमने जिस श्रद्धा से निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार किया है उसी श्रद्धा और दृढ़ता से तुम उसे निभा रहे हो। हे अरहन्नक ! आज देवसभा में शक्रेन्द्र ने तुम्हारी धार्मिक दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए कहा था कि-- "अहरन्नक श्रावक जीवाजीवादि का ज्ञाता है और उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित करने की तथा सम्यक्त्व से भ्रष्ट करने की किसी देव या मानव में शक्ति नहीं है ।" मुझे शक्रेन्द्र के इन वचनों पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ । अतः मै तुम्हारी धार्मिक दृढ़ता की परीक्षा करने के लिये ही पिशाच का भयंकर रूप बनाकर यहाँ आया किन्तु यहाँ आने पर तुम्हारी धार्मिक दृढ़ता और निर्भयता को देख-कर मैं आश्चर्यचकित हुआ हूँ । जिस तरह शक्रेन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वास्तव में आप वैसे ही हैं। आपकी धार्मिक दृढ़ता की प्रशसा एक इन्द्र नहीं अपितु हजार इन्द्र भी करें तव भी कम ही है । आप का जीवन सचमुच धन्य है । आप जैसे श्रावकों से ही निर्ग्रन्थ प्रवचन गौरवान्वित है । मैने जो आपको कष्ट दिया है और आपके साथियों को भयभीत किया है उसके लिये क्षमा याचना करता हूँ । मेरे अपराध को क्षमा कर और मेरी यह कुण्डलों की जोड़ी स्वीकार करें । देव अरहन्नक श्रावक से वार-वार क्षमा याचना कर और दिव्य कुण्डल जोड़ी को रख कर अपने स्थान को चला गया । उपद्रव के शान्त होने पर अरहन्नक श्रावक ने अपना सागारी संथारा पारित किया । समुद्र का वातावरण शान्त था । हवा भी अनुकूल वहने लगी । सब को जीवन वचने का आनन्द था । जहाज वड़ी तेजी के साथ दक्षिण दिशा की ओर वढ़ने लगे। और गम्भीर नामक बन्दर-गाह के किनारे आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने अपना सामान गाड़ा और गाड़ियों में भरा और मिथिला की ओर प्रस्थान कर दिया ।

ये नौ यात्रिक अपने-अपने सामान के साथ मिथिला नगरी पहुँचे । उन्होंने उद्यान में अपना अपना पड़ाव डाला । बहुमूल्य

उपहार और कुण्डल युगल लेकर वहाँ के राजा कुम्भ की सेवा में पहुँचे और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उन्होंने वह भेंट महाराजा को प्रदान की ।

महाराज कुम्भ ने भगवती मल्ली को बुलाकर उसे दिव्य कुण्डल पहना दिये । महाराजा ने अरहन्नकादि व्यापारियों का बहुत आदर सत्कार किया और उनका राज्य महसूल माफ कर दिया तथा रहने के लिये एक बड़ा आवास दे दिया । वहाँ कुछ दिन व्यापार करने के बाद उन्होंने अपने जहाजों में चार प्रकार का किराणा भरकर समुद्रमार्ग से चम्पानगरी की ओर प्रस्थान कर दिया ।

चम्पानगरी में पहुँचने पर उन्होंने बहुमूल्य कुण्डल वहाँ के महाराजा चन्द्राच्छाय को भेंट किया । अंगराज चन्द्रच्छाय ने भेंट को स्वीकार कर अरहन्नकादि श्रावकों से पूछा-"तुम लोग अनेक ग्राम और नगरों में घूमते हो, बार-बार लवणसमुद्र की यात्रा करते हो । बताओ, ऐसा कोई आश्चर्य है जिसे तुमने पहली बार देखा हो ?" अरहन्नक श्रमणोपासक बोला-हमलोग इसबार व्यापारार्थ मिथिला नगरी भी गये थे । वहाँ हम लोगोंने कुंम्भ महाराजा को दिव्य कुण्डल युगल की भेंट दी । महाराज कुम्भ नें अपनी पुत्री मल्लीकुमारी को बुलाकर वे दिव्य कुण्डल उसे पहना दिये । मल्ली कुमारी को हमने वहाँ एक आश्चर्य के रूप में देखा । विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली-कुमारी का जैसा रूप और लावण्य है वैसा रूप देवकन्याओं को भी प्राप्त नहीं है ।" महाराज चन्द्रच्छाय ने अरहन्नकादि व्यापारियों का सत्कार-सम्मान कर उन्हें विदा किया ।

व्यापारियों के मुख से मल्लीकुमारी के रूप एवं सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर महाराज चन्द्रच्छाय उसपर अनुरक्त हो गये । दूत को बुला-कर कहा-"तुम मिथिला नगरी जाओ और वहाँ के राजा कुम्भ से मल्लीकुमारी की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो । अगर कन्या के

बदले में वे मेरे राज्य की भी मांग करें तो स्वीकार कर लेना।" महाराजा का सन्देश लेकर दूत मिथिला पहुँचा।

उस समय कुणाल नाम के जनपद की राजधानी श्रावस्ती थी। वहाँ रुक्मि नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम धारणी था। उसके रूप और लावण्य में अद्वितीय सुबाहु नाम की कन्या थी। उसके हाथ पैर अत्यन्त कोमल थे।

एकबार सुबाहुकुमारी का चातुर्मासिक स्नान का उत्सव आया। इस अवसर पर महाराज के सेवकों ने पांचवर्णों के पुष्पों का एक एक विशाल मण्डप बनाया और उस मण्डप में श्रीदामकाण्ड (पुष्प की मालाएँ) लटकाये। नगरी के चतुर सुवर्णकारों ने पांचरंग के चावलों से नगरी का चित्र बनाया उस चित्र के मध्यभाग में एक पट्ट–बाजोट स्थापित किया।

महाराज रुक्मि ने स्नान किया और सुन्दर वस्त्राभूषण पहने और अपनी पुत्री सुबाहु के साथ गंधहस्ति पर बैठे। कोरंट पुष्प की माला और छत्र को धारण किये हुए चतुरंगी सेना के साथ राज-मार्ग से होते हुए वे मण्डप में पहुँचे। गन्धहस्ति से नीचे उतरकर पूर्वाभिमुख हो उत्तम आसन पर आसीन हुए। तत्पश्चात् राजकुमारी को पट्ट पर बैठाकर श्वेत और पीत चान्दी और सोने के कलशों से उसका अभिषेक किया और उसे सुन्दर वस्त्रालंकारों से विभूषित किया। फिर उसे पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिये लाया गया।

सुबाहुकुमारी पिता के पास आई और उन्हें प्रणाम कर उनकी गोद में बैठ गई। गोद में बैठी हुई पुत्री का लावण्य देखकर महाराज बड़े विस्मित हुए। उसी समय राजा ने वर्षधर को बुलाकर पूछा-वर्षधर! तुम मेरे दौत्य कार्य के लिये अनेक नगरों में और राज-महलों में जाते हो। तुमने कहीं भी किसी राजा महाराजा सेठ साहू-

कारों के यहाँ ऐसा मज्जनक (स्नानउत्सव) पहले भी देखा है, जैसा इस सुबाहुकुमारी का मज्जन-महोत्सव है ? उत्तर में वर्षधर ने कहा-स्वामी ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मै एकबार मिथिला गया था। वहाँ मैने कुम्भराजा की पुत्री मल्ली का स्नान महोत्सव देखा था। सुबाहुकुमारी का यह मज्जनोत्सव उस मज्जनमहोत्सव के लाखवें अंश को भी नहीं पा सकता। इतना ही नहीं मल्लीकुमारी का जैसा रूप है वैसा स्वर्ग की अप्सरा का भी नहीं है। उसके सौन्दर्य रूपी दीप के सामने संसार की राजकुमारियों के रूप जुगनू जैसे लगते हैं।

वर्षधर के मुख से मल्लीकुमारी की प्रशंसा सुनकर राजा उसकी ओर आकर्षित हो गया और राजकुमारी मल्ली की मंगनी के लिये अपना दूत कुम्भराजा के पास मिथिला भेज दिया।

उस समय काशी नामक जनपद में वाराणसी नाम की नगरी थी। वहाँ शंख नामका राजा राज्य करता था।

उस समय विदेहराज कुम्भ की कन्या मल्लीकुमारी का देवप्रदत्त कुण्डल-युगल का सन्धि भाग खुल गया। उसे सान्धने के लिए नगरी के चतुर से चतुर सुवर्णकारों को बुलाया गया। सुवर्णकार उस कुण्डल-युगल को लेकर घर आये और उसे जोड़ने का प्रयत्न करने लगे। नगरी के सभी सुवर्णकार इस काम में जुट गये लेकिन अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी वे कुण्डल-युगल के सन्धि-भाग को नहीं जोड़ सके। अंत में हताश होकर वे महाराज के पास पुनः पहुँचे और अनुनय विनय करते हुए कहने लगे-स्वामी ! हमने इस कुण्डल-युगल को जोड़ने का बहुत प्रयत्न किया लेकिन हम इसमें असफल होगये। अगर आप चाहें तो हम ऐसा ही दिव्य दूसरा कुण्डलयुगल बनाकर आपकी सेवा में उपस्थित कर सकते हैं। महाराज सुवर्णकारों की बात सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हें देश निर्वासन की आज्ञा देदी। महाराज के आदेश से ये लोग अपने परिवार और सामान के साथ मिथिला

से निकल पड़े और काशी देश की राजधानी बनारस आ पहुँचे। वे लोग बहुमूल्य उपहार लेकर महाराज शंख की सेवा में पहुँचे और उपहार भेंटकर कहने लगे-स्वामी! हमलोगों को मिथिला नगरी के कुम्भ राजा ने देश निष्कासन की आज्ञा दी है वहाँ से निर्वासित होकर हमलोग यहाँ आये हैं। हमलोग आपकी छत्रछाया में निर्भय होकर सुखपूर्वक रहने की इच्छा करते हैं।" काशीनरेश ने सुवर्णकारों से पूछा--"कुम्भराजा ने आपको देश निकाले की आज्ञा क्यों दी?" स्वर्णकारों ने उत्तर दिया-स्वामी! कुम्भराजा की पुत्री मल्लीकुमारी का कुण्डलयुगल टूट गया। हमें जोड़ने का कार्य सौंपा गया किन्तु हम लोग उसके संधिभाग को जोड़ नहीं सके जिससे क्रुद्ध हो महाराजा ने देश निकाले की आज्ञा दी है। शंख राजा ने पूछा-मल्लीकुमारी का रूप कैसा है? उत्तर में सुवर्णकारोंने कहा-स्वामी! मल्लीकुमारी के रूप की क्या प्रशंसा की जाय उसके रूप के सामने देव कन्या का रूप भी लज्जित है। महाराज शंख ने जब मल्लीकुमारी के रूप की प्रशंसा सुनी तो वह उसपर आसक्त हो गया। महाराज शंख ने सुवर्णकारों को नगरी में रहने की आज्ञा दे दी। बादमें उसने अपना दूत बुलाया और उसे कहा-तुम मिथिला जाओ! और मल्लीकुमारी की मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो। अगर इसके लिए राज्य भी देना पड़े तो भी मेरी ओर से स्वीकार करना। महाराजा की आज्ञा पाकर के दूत ने मिथिला नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

एक समय विदेह के राजकुमार मल्लदिन्न ने अपने प्रमद-वन (घर के उद्यान) में एक विशाल चित्रसभा का निर्माण कराया, तथा नगर के अच्छे से अच्छे चित्रकारों को चित्रसभा में चित्र निर्माण का आदेश मिला। आदेश पाकर चित्रकारों ने भी विविध चित्रों से चित्र सभा को अलंकृत करना प्रारंभ कर दिया। उनमें एक ऐसा भी चित्रकार था जो किसी भी पदार्थ का एक भाग देखकर उसका सम्पूर्ण चित्र आलेखित कर लेता था। एकबार इस चित्रकार की दृष्टि-पर्दे के

अन्दर रही हुई मल्लीकुमारी के अंगूठे पर पड़ी। उसे अपनी कला का परिचय देने का एक अच्छा अवसर मिला। उसने उसी क्षण अपनी तूलिका से मल्लीकुमारी का सम्पूर्ण चित्र बना डाला। चित्र क्या था मानों साक्षात् मल्लीकुमारी ही खड़ी हो। अन्य चित्रकारों ने भी एक से एक सुन्दर चित्रों से सभाभवन को सजाया। युवराज ने चित्रकारों का खूब सत्कार सम्मान किया तथा उन्हें बहुत बड़ा पुरस्कार देकर बिदा किया।

मल्लदिन्नकुमार धाय माता के साथ चित्रसभा को देखने आया और वहाँ अनेक हावभाव वाली सुन्दर स्त्रियों के चित्रों को देखने लगा। चित्र देखते देखते अचानक ही उसकी दृष्टि भगवती मल्ली के चित्र पर पड़ी। चित्र को ही साक्षात् मल्लीकुमारी समझकर वह लज्जित हुआ और धीरे धीरे पीछे हटने लगा। यह देखकर उसकी धाय माता कहने लगी–पुत्र ! तुम लज्जित होकर पीछे क्यों हट रहे हो ? मल्लदिन्न ने कहा–माता ! मेरी गुरु और देवता के सामान जेष्ठ भगिनी जो सामने खड़ी है उसके रहते हुए चित्रशाला में प्रवेश करना क्या मेरे लिये योग्य है ?" तब धायमाता ने कहा–"पुत्र ! यह मल्ली-कुमारी नहीं है किन्तु उसका चित्र है।" मल्लीकुमारी के हुबहू चित्र को देखकर युवराज मल्लदिन्न अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। चित्र-कार का यह साहस कि जिसने मेरी देव गुरु और धर्म की साक्षात् मूर्ति बड़ी बहन का चित्रशाला में चित्र बना डाला। उसने चित्रकार के वध का हुकुम सुना दिया। जब अन्य चित्रकारों को इस बात का पता लगा तो वे राजकुमार के पास पहुँचे और राजकुमार से बहुत अनु-नय विनय करके चित्रकार का वध न करने की प्रार्थना की। चित्र-कारों की प्रार्थना पर राजकुमार ने चित्रकार के वध के बदले उसके अंगुष्ठ और कनिष्ठ अंगुली को छेदने की और देश निर्वासन की आज्ञा दे दी।

चित्रकार मिथिला से निर्वासित होकर हस्तिनापुर गया। वहाँ उसने मल्लिकुमारी का एक चित्र बनाया और उस चित्रपट को साथ

में लेकर महाराजा अदीनशत्रु के पास पहुँचा। बहुमूल्य उपहार के साथ मल्लीकुमारी का चित्र भेट करते हुए कहा-"स्वामी ! मिथिला नरेश ने अपने देश से मुझे निष्कासित कर दिया है। मै आपकी छत्र-छाया में सुखपूर्वक रहना चाहता हूँ।" चित्रकार के मुख से उसके निर्वासन का समस्त हाल सुन महाराज ने उसे अपने शरण में रख लिया। मल्लीकुमारी के अनुपम सौंदर्य को देख महाराज अत्यन्त मुग्ध हो गये। उन्होंने अपने दूत को बुलाकर आज्ञा दी-"तुम मिथिला नगरी जाओ और महाराज कुम्भ से मल्लीकुमारी की मेरी भार्या के रूप में मगनी करो" दूत महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर मिथिला की ओर प्रस्थान किया।

तत्कालीन पाचाल देश की राजधानी कांपिल्यपुर थी। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करते थे। उसकी धारिणी आदि हजार रानियाँ थी।

एकसमय चोखा नाम की परिव्राजिका मिथिला नगरी में आई। वह ऋग्वेदादि षष्ठीतंत्र की विज्ञा थी। वह दानधर्म, शौचधर्म, तीर्थाभिषेक-धर्म की परूपणा किया करती थी। एक दिन वह राजमहलों में पहुँची और मल्लीकुमारी को शौचधर्म का उपदेश देने लगी। मल्लीकुमारी स्वयं विदुषी थी। चोखा को यह ज्ञान नहीं था कि जिसे मैं शौचधर्म का उपदेश दे रही हूँ वह एक महान् तत्वज्ञानी है। वह परिव्राजिका मल्ली को शौचधर्म का तत्वज्ञान समझाते हुए कहने लगी-अपवित्र वस्तु की शुद्धि जल और मिट्टी से होती है। मल्लीकुमारी ने कहा-परिव्राजिके ! रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से धोनेपर क्या उसकी शुद्धि हो सकती है ! इस पर परिव्राजिका ने कहा-"नहीं।" मल्ली बोली-"इसी प्रकार हिंसा से हिंसा की शुद्धि नहीं हो सकती।" जैसे रुधिरवाले वस्त्र क्षार आदि से धोने से शुद्ध होते हैं वैसे ही अहिंसामय धर्म और शुद्ध श्रद्धान से पाप स्थानों की शुद्धि होती है। जल और मिट्टी से केवल बाह्य-पदार्थ की शुद्धि होती है। आत्मा की नहीं। मल्लीकुमारी के युक्तिपूर्ण वचन सुनकर चोखा परिव्राजिका स्वयं

संशयग्रस्त होगई। मल्लीकुमारी के तर्क का उत्तर नहीं दे सकी। निरुत्तर परिव्राजिका को देख मल्ली की दासियाँ उसकी हँसी उड़ाने लगीं और उन्होंने उसका गला पकड़ कर उसे बाहर निकाल दिया।

मल्ली के राजमहल से अपमानित वह चोखा अपनी शिष्याओं के साथ मिथिला से निकल गई और पांचाल देश की राजधानी कांपिल्यपुर पहुँची। एक दिन वह अपनी कुछ शिष्याओं को साथ में लेकर जितशत्रु महाराज के महल में गई और वहाँ महाराज को दानधर्म शौचधर्म का उपदेश देने लगी।

महाराज जितशत्रु को अपने अन्तःपुर की विशाल एवं अनुपम सुन्दरियों पर बड़ा अभिमान था। महाराज ने परिव्राजिका से पूछा-परिव्राजिके! तुम अनेक ग्राम नगरों में घूमती हो और अनेक राजमहलों में भी प्रवेश करती हो। राजा महाराजाओं के वैभव को अपनी आँखों से देखती हो। कहो-मेरे जैसा अन्तःपुर भी तुमने कहीं देखा है? परिव्राजिका ने उत्तर दिया-राजन्! आप कूपमण्डूक प्रतीत होते हैं। आपने दूसरों की पुत्रवधुओं, भार्याओं, एवं पुत्रियों को नहीं देखा इसीलिये ऐसा कहते हैं। मैंने मिथिला नगर के विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्लीकुमारी का जो रूप देखा है वैसा रूप किसी देवकुमारी या नागकन्या का भी नहीं। मल्लिकुमारी के रूप की प्रशंसा सुनकर महाराज ने मल्लिकुमारी के साथ विवाह करने का निश्चय किया और उसी समय दूत को बुलाकर मल्लीकुमारी की मंगनी के लिये मिथिला जाने का आदेश दिया। महाराज की आज्ञा पाकर दूत मिथिला की ओर चल पड़ा।

छहों राजाओं के दूत मिथिलाधिपति कुम्भ के पास पहुँचे और अपने अपने राजाओं की ओर से मल्लीकुमारी की मंगनी करने लगे। महाराज कुम्भ ने छहों राजाओं के प्रस्ताव को मानने से इनकार कर दिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर दूतों को अपमानित कर उन्हें निकाल

दिया । महाराज कुम्भ से अपमानित दूत अपने अपने राजा के पास पहुँचे और उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

कुम्भ का निराशाजनक उत्तर सुनकर वे बहुत कुपित हुए और सब ने सम्मिलित होकर राजा कुम्भ पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया । छहों राजाओं ने अपनी अपनी विशाल सेना के साथ मिथिला पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान कर दिया । इधर महाराज कुम्भ ने भी छहों राजाओं का मुकाबला करने के लिये युद्ध की तैयारी करली । कुछ चुनी हुई सेना को ले महाराज कुम्भ भी अपने राज्य की सीमा पर पहुँच गये । दोनों ओर की सेनाओं में घमसान युद्ध प्रारम्भ हो गया । एक ओर छह राजाओं की विशाल सेनाये थीं और दूसरी ओर अपनी कुछ सेना के साथ अकेले कुम्भ । कुम्भ बड़ी वीरता से लड़े किन्तु शत्रुपक्ष की विशाल सेना के सामने इनकी मुट्ठी भर सेना नहीं टिक सकी अन्त में हार कर पीछे हटने लगी और इधर उधर भागने लगी । अपने पक्ष को कमजोर होता देख वे अपने कुछ बहादुर सिपाहियों के साथ नगर लौट आये । नगरी के चहुँओर दरवाजों के फाटक बन्द करवा दिये और अपनी सेना को किले पर सजा कर दुश्मनों की प्रतीक्षा करने लगे । इधर छहों राजाओं की सेना ने मिथिला को घेर लिया और नगरी के द्वार को तोड़ कर अन्दर घुसने का प्रयत्न करने लगी । मिथिला की बहादुर सेना ने शत्रुसेना के सब प्रयत्न असफल कर दिये ।

महाराजा कुम्भ सिंहासन पर बैठे हुये युद्ध की परिस्थिति का विचार कर रहे थे । उसी समय भगवती मल्ली अपने सुन्दर वस्त्राभूषणों में सजी हुई प्रतिदिन के नियमानुसार पिता के चरण छूने आई । पिता के चरण छू कर वह एक ओर खड़ी हो गई । महाराज कुम्भ अपने विचार में इतने निमग्न थे कि उन्हें मल्ली के आने का ध्यान तक नहीं रहा । पिता को अत्यन्त चिन्ता निमग्न देख वह बोली— तात ! जब मैं आपके पास आती तब आप बड़े प्रसन्न होकर मुझे

गोद में उठा लेते थे और मीठी मीठी बातें करते थे किन्तु क्या कारण है कि, आज आप मेरी ओर नजर उठा कर भी नहीं देख रहे हैं ?

महाराज कुम्भ-पुत्री ! तुम मेरे लिये अपने प्राणों से अधिक प्यारी हो। तुम्हारी जैसी दिव्य कन्या पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। पर आज जिस विषमस्थिति में मैं आ पड़ा हूँ उससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं दीख रहा है। इसी चिन्ता में मैं पड़ा हूँ कि इस विपत्ति का सामना कैसे किया जाय।

मल्ली--तात ! आप पर आई हुई इस विपत्ति को मैं अच्छी तरह समझती हूँ और इस विपत्ति से छुटकारा पाने का उपाय मेरे पास है। हम युद्ध से शत्रु को परास्त नहीं कर सकते किन्तु बुद्धि-बल से ही शत्रुओं पर विजय पा सकते हैं। अगर आपका मेरे पर पूरा भरोसा हो तो आप इस विपत्ति के बादलों को छिन्न भिन्न कर देने का भार मुझ पर छोड़ दें। मैंने राजाओं पर विजय पाने का उपाय सोच लिया है। मुझे अपने उपाय पर पूरा विश्वास है। महाराज कुम्भ ने कहा-पुत्री ! कौनसा वह उपाय है जिससे ये राजा लोग तुम्हारी बात मान जायेंगे।

मल्ली ने कहा-तात ! मैं क्या करना चाहती हूँ यह तो आप को यथासमय मालूम हो ही जायगा। आप सब राजाओं के पास अलग अलग दूत भिजवा दीजिये और उन्हें यह सन्देश कहलवा दीजियेगा कि मैं आपको अपनी कन्या देना चाहता हूँ शर्त इतनी है कि मेरा सन्देश अन्य राजा तक नहीं पहुँचना चाहिये। महाराज कुम्भ को अपनी पुत्री की बुद्धिमत्ता और विवेक पर पूरा विश्वास था। उसने सभी राजाओं के पास दूत भेजे और उन्हें मोहन घर पर अकेले ही आने को कहा गया।

महाराज कुम्भ का दूत द्वारा सन्देश पाकर सभी राजा बड़े प्रसन्न हुये और अकेले ही दूत के साथ मोहन घर में आ पहुँचे। छहों राजाओं को अलग अलग बिठलाया गया। छहों राजाओं की मोहन-

गृह के बीच खड़ी सुवर्णमूर्ति पर दृष्टि पड़ी । वे बड़े मुग्ध हो गये और उसे एक दृष्टि से देखने लगे । सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राजकुमारी मल्ली जब मोहन-घर में आई तभी उनको होश हुआ कि यह मल्ली नहीं है परन्तु उसकी मूर्तिमात्र है । वहाँ आकर राजकुमारी मल्ली ने बैठने के पहले मूर्ति के ढक्कन को हटा दिया । ढक्कन के हटते ही मूर्ति के भीतर से बड़ी भयंकर दुर्गन्ध निकली । उस भयंकर दुर्गन्ध के मारे राजाओं की नाक फटने लगी और दम घुटने लगा । उन्होंने अपनी अपनी नाक बन्द कर ली और मुँह फेर लिया । नाक भौं सिकोड़ते राजाओं को देख मल्लीकुमारी बोली-हे राजाओ ! आप लोग अभी इस पुतली की ओर बड़े चाव से देख रहे थे और अब नाक भौं क्यों सिकोड़ रहे हो ? क्या यह पुतली तुम्हें पसन्द नहीं । जिस मूर्ति के सौन्दर्य को देखकर आप लोग मुग्ध हो गये थे उसी मूर्ति में से यह दुर्गन्ध निकल रही है । यह मेरा सुन्दर दिखाई देनेवाला शरीर भी इसी तरह रक्त थूंक मल मूत्र आदि घृणोत्पादक वस्तुओं से भरा पड़ा है । शरीर में जानेवाली अच्छी से अच्छी सुगन्धवाली और स्वादिष्ट वस्तुएँ भी दुर्गन्धयुक्त विष्ठा बनकर बाहर निकलती हैं तब फिर इस दुर्गन्ध से भरे हुए और विष्ठा के भण्डार-रूप शरीर के बाह्य सौन्दर्य पर कौन विवेकी पुरुष मुग्ध होगा ?

मल्ली की मार्मिक बातों को सुनकर सब के सब राजा बड़े लज्जित हुए और अधोगति के मार्ग से बचाने वाली मल्ली का आभार मानते हुए कहने लगे-हे देवानुप्रिये ! तू जो कहती है, वह बिलकुल ठीक है । हम लोग अपनी भूल के कारण अत्यन्त पछता रहे हैं ।

पुनः मल्ली बोली-हे राजाओ ! मनुष्य के कामसुख ऐसे दुर्गन्ध युक्त शरीर पर ही अवलम्बित हैं । शरीर का यह बाहरी सौंदर्य भी स्थायी नहीं है । जब यह शरीर जरा से अभिभूत होता है तब उसकी कान्ति बिगड़ जाती है । चमड़ी निस्तेज हो कर शिथिल पड़ जाती है । मुख से लार टपकने लगती है और सारा शरीर काँपने लगता

है । ऐसे शरीर से उत्पन्न होने वाले कामसुखों में कौन आसक्ति रखेगा और कौन उसमें मोहित होगा ?

हे राजाओ ! आप मेरे पूर्वजन्म के मित्र थे । अब से तीसरे भव में सलिलावती विजय में हम लोग उत्पन्न हुए थे । मेरा नाम महाबल था । हम लोग साथ साथ खेले कूदे थे । वीतशोका हमारी राजधानी थी । हम लोगों ने साथ ही में निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की थी । हम लोग एक जैसी तपस्या करते थे पर थोड़े से कपटाचार के कारण मुझे स्त्रीवेद का बन्ध हुआ था । वहाँ से हम सब जयन्त विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ का आयु पूरा कर तुम सब राजा हुए हो और मैंने महाराजा कुम्भ के यहाँ कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया है ।

मल्लीकुमारी के इन वचनों का राजाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा । वे अपने पूर्वभव का विचार करने लगे । विचार करते करते शुद्ध अध्यवसायों, शुभ लेश्याओं और जातिस्मरण को आवरण करने वाले कर्मों के नष्ट होने से उन्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । वे अब अपने पूर्वभव को कांच की तरह स्पष्ट देखने लगे । भगवती मल्ली की बात पर उन्हें पूरा विश्वास हो गया । भगवती ने मोहनघर के द्वार खुलवा दिये । सब एक दूसरों से खूब मित्रभाव से मिले ।

भगवती मल्ली ने राजाओं से कहा—मै दीक्षा लेना चाहती हूँ । आजीवन ब्रह्मचारिणी रह कर संयम पालन द्वारा चित्त में रही हुई काम, क्रोध मोह आदि असद्वृत्तियों को निर्मूल करने का मैंने निश्चय कर लिया है । इस सम्बन्ध में आप लोगों के क्या विचार हैं ?

राजाओं ने कहा—भगवती ! हम लोग भी आपकी ही तरह काम-सुखों का त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे । जैसे हम पूर्व जन्म में आप के मित्र थे सहयोगी थे वैसे इस भव में भी आप का ही अनुकरण करेंगे ।

तब भगवती मल्ली ने कहा—मित्रो ! जाओ अपनी राजधानी में जा कर अपने अपने पुत्रों को राज्य भार सौंप कर तथा दीक्षा के लिये उनकी अनुमति लेकर यहाँ चले आओ ।

यह निश्चय हो जाने पर मल्ली सब राजाओं को लेकर अपने पिता के पास आई । वहाँ पर सब राजाओं ने अपने अपराध के लिये कुम्भराजा से क्षमा याचना की । कुम्भराजा ने भी उनका यथेष्ट सत्कार किया और सब को अपनी अपनी राजधानी की ओर विदा किया ।

भगवती मल्ली ने अपने मन में ऐसा निश्चय किया कि—मैं एक वर्ष के अन्त में दीक्षा ग्रहण करूँगी ।

उस समय शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ । अवधिज्ञान से आसन के कम्पन का कारण यह मालूम हुआ कि भगवती मल्ली ने एक वर्ष के अन्त में दीक्षा लेने का विचार किया है । उन्होंने अपने जीताचार के अनुसार वैश्रमण देव को तीन सौ क्रोड़ अस्सी लाख सुवर्ण मोहरों को मिथिलाधिपति कुम्भ के महलों में डालने का आदेश दिया । इन्द्र के आदेशानुसार जृंभक और वैश्रमण देवों ने तीन सौ करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण मुहरें कुम्भ के महल में भर दीं ।

भगवती मल्ली ने वार्षिकदान प्रारम्भ कर दिया । वे प्रतिदिन प्रातः काल से प्रारम्भ करके दुपहर तक याचकों को दान देती रहती थीं । महाराज कुम्भ ने भी बड़ी बड़ी भोजन-शालाएँ बनवाईं और उनमें बड़ी संख्या में लोग आकर भोजन करने लगे । तीर्थङ्कर का दान ग्रहण करके और भोजन-शाला में भोजन खाकर के याचक गण बड़े संतुष्ट होते थे । इस पुनीत अवसर का लाभ लेने के लिये अगणित लोग आते और दान ग्रहण करते ।

आसन चलायमान होने पर पांचवें ब्रह्मदेवलोक के अरिष्ट नामक देव विमानों में रहने वाले—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट नाम के नौ लोकान्तिक देव

भगवती मल्ली के पास उपस्थित हुए और हाथ जोड़ कर नम्र भाव से कहने लगे-भगवन् ! बोधि को प्राप्त करो, धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो । वह धर्मतीर्थ जीवों के लिये हितकारी सुखकारी और निश्रेयसकारी होगा। इस प्रकार बार बार प्रार्थना करके वे देव अपने स्थान चले गये ।

देवताओं से उद्बोधित भगवती मल्ली ने प्रव्रज्या के लिए माता-पिता से आज्ञा प्राप्त की । महाराज कुम्भ ने प्रव्रज्या के लिए प्रवृत्त भगवती मल्ली का एक हजार आठ सुवर्ण कलशों से अभिषेक किया। अभिषेक के अवसर पर चौंसठ इन्द्र भी उपस्थित थे । अभिषेक के बाद भगवती मल्ली मनोरमा नाम की शिविका में बैठी । शक्रेन्द्र देवराज ने मनोरमा शिविका की दक्षिण भाग की बाहा (डंडी) पकड़ी । ईशान इन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपर की बाहा पकड़ी । चमरेन्द्र ने दक्षिण तरफ की निचली बाहा ग्रहण की तथा शेष देवों ने यथा-योग्य इस मनोरमा शिविका के भाग को ग्रहण करते हुए उसका वहन करने लगे । मनोरमा शिविका के आगे आठ मङ्गल* चलनेलगे । इस पुनीत अवसर पर देवों ने संपूर्ण नगरी को सजाया था और साफ सुथरा किया था ।

भगवती मल्ली की मनोरमा शिविका सहस्राम्र वन में अशोक वृक्ष के नीचे आई । भगवती मल्ली ने वस्त्राभरणों को त्याग कर पंचमुष्टि लोच किया । भगवती मल्ली के वस्त्राभरण प्रभावती देवी ने ग्रहण किये । भगवती मल्ली ने सिद्धों को वन्दन कर सामायिक चारित्र को ग्रहण किया । उस समय वातावरण अत्यन्त शान्त था । उस समय भगवती मल्ली को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ । उस समय आपने तीन दिन का उपवास ग्रहण किया था वह दिन पौष शुक्ला एकादशी का था । आपके साथ तीनसौ मनुष्य और तीनसौ स्त्रियों ने

---

*स्वस्तिक, श्रीवत्स नन्दिकावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण ।

दीक्षा धारण की । आप के साथ नन्द, नन्दिमित्र, सुमित्र, बलमित्र, भानुमित्र; अमरपति, अमरसेन और महासेन इन आठ इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों ने भी दीक्षा ग्रहण की । देवोंने नन्दीश्वर द्वीप में जा कर अठाई महोत्सव किया ।

दीक्षा लेने के बाद दिन के अन्तिम प्रहर में अशोक वृक्ष के नीचे केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया जिससे उन्हें तीन-काल और तीनलोक के समस्त पदार्थ हस्तामलकवत् प्रतिभासित होने लगे । केवलज्ञान के बाद देवोंने उनका कैवल्य कल्याणक बड़े हर्षोल्लास से मनाया । पूर्वोक्त जितशत्रु आदि राजाओं ने भगवान मल्लिनाथ से दीक्षा धारण की, चौदह पूर्व का अध्ययन किया और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया ।

भगवान मल्ली सहस्राम्र उद्यान से निकलकर बाहर जनपद में विहार करने लगे ।

भगवान मल्ली के अठ्ठाईस गण और भिषक आदि अठ्ठाईस गणधर थे । चालीस हजार साधु और बन्धुमती आदि पचपन हजार साध्वियाँ थीं । इनके श्रमण संघ में छसौ चौदह पूर्वधर (त्रिषष्टी के अनुसार ६६८ चौदह पूर्वधर), दो हजार अवधिज्ञानी (त्रिषष्टी के अनुसार २२-००), बत्तीस सौ केवलज्ञानी (त्रिषष्टी के अनुसार २२००), पैंतीस सौ वैक्रियलब्धिधारी (त्रिषष्टी के अनुसार २९००), आठ सौ मनःपर्याय-ज्ञानी (त्रिषष्टी के अनुसार १७५०), १४०० वाद लब्धिवाले, दो हजार अनुत्तरोपपातिक, १८४००० श्रावक (त्रिषष्टी के अनुसार १८३१००) एवं ३६५००० श्राविकाएँ (त्रिषष्टी के अनुसार ३७०००० श्राविकाएँ) थीं ।

भगवान मल्ली के तीर्थ में दो प्रकार की अन्त-कर भूमि हुई । वह इस प्रकार युगान्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि । इनमें से शिष्य प्रशिष्य आदि बीस पुरुषों रूप युगों तक अर्थात् बीसवें पाट तक युगान्तकर भूमि हुई अर्थात् बीस पाट तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्त

की। बीसवें पाट के पश्चात् उनके तीर्थ में किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया और दो वर्ष का पर्याय होने पर अर्थात् मल्ली अरिहंत को केवल ज्ञान प्राप्त किये दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर पर्यायान्तकर भूमि हुई भव पर्याय का अन्त करने वाले–मोक्ष जाने वाले साधु हुए। इससे पहले कोई जीव मोक्ष नहीं गया।

मल्ली अरिहंत पच्चीस धनुष ऊँचे थे। उनके शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान था। समचतुरस्त्र संस्थान और वज्रऋषभनाराच संहनन था। वह मध्यदेश में सुखे-सुखे विचरकर **समेतशिखर** पर्वत पर आये और वहाँ पादोपगमन अनशन अंगीकार किया।

मल्ली अरहंत एक सौ वर्ष गृहवास में रहे। सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष केवलीपर्याय पालकर कुल पचपन हजार वर्ष की आयु में ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष अर्थात् चैत्र शुक्ला चौथ के दिन भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर *अर्द्धरात्रि के समय आभ्यंतर परिषद् की पांच सौ साध्वियों और वाह्य परिषद् के पाँच सौ साधुओं के साथ निर्जल एक मास के अनशन पूर्वक दोनों हाथ लम्बे कर वेदनीय आयु और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर सिद्ध हुए। इन्द्रादि देवों ने निर्वाणोत्सव किया। अरनाथ के निर्वाण के बाद कोटी हजार वर्ष के बीतने पर मल्ली अरहंत ने निर्वाण प्राप्त किया।

२०. भगवान् मुनिसुव्रत

जम्बूद्वीप के अपरविदेह में भरत नामक विजय में चंपा नामकी नगरी थी। वहाँ सुरश्रेष्ठ नाम का राजा राज्य करता था। उसने नन्दनमुनि के पास दीक्षा ग्रहण की और तपस्या कर तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में संथारा कर वह प्राणत देवलोक में महर्द्धिक देवता हुआ।

*त्रिषष्टी के अनुसार फाल्गुन शुक्ला द्वादशी के दिन याम्य नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया।

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में राजगृही नाम की नगरी थी। वहाँ सुमित्र नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उसके पद्मावती नाम की एक रानी थी। सुरश्रेष्ठ का जीव श्रावणी पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र में पद्मावती रानी के उदर में उत्पन्न हुआ। तीर्थङ्कर को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न रानी ने देखे। रानी गर्भवती हुई।

गर्भकाल के समाप्त होने पर जेठवदि अष्टमी के दिन श्रवण नक्षत्र में कूर्मलांछन वाले श्यामवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। इन्द्रादि देवों ने जन्मोत्सव किया। माता पिता ने बालक का नाम मुनिसुव्रत रखा। युवावस्था में भगवान मुनिसुव्रत का प्रभावती आदि श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। भगवान की काया २० धनुष ऊँची थी। मुनिसुव्रत कुमार को प्रभावती रानी से एक पुत्र हुआ। जिसका नाम सुव्रत रखा गया। साढ़े सात हजार वर्ष की अवस्था में भगवान ने पिता का राज्य ग्रहण किया। १५ हजार वर्ष राज्य करने के बाद भगवान ने दीक्षा लेने का निश्चय किया। लोकान्तिक देवों ने भी आकर भगवान से दीक्षा के लिए निवेदन किया। भगवान ने वर्षीदान दिया। देवों द्वारा सजाई गई अपराजिता नाम की शिविका पर आरूढ़ होकर नीलगुहा नाम के उद्यान में आये। वहाँ फाल्गुन शुक्ला १२ के दिन श्रवण नक्षत्र में दिवस के अन्तिम प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ भगवान ने दीक्षा ग्रहण की। भगवान को उस समय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। तीसरे दिन भगवान ने राजगृही के राजा ब्रह्मदत्त के घर खीर का पारणा किया। वहाँ पाँच दिव्य प्रकट हुए।

ग्यारह मास तक छद्मस्थ अवस्था में रहने के बाद भगवान नीलगुहा उद्यान में पधारे। वहाँ चंपक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए फाल्गुन कृष्ण द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में घातीकर्म का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रोंने आकर भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। समवशरण में बैठकर भगवान ने

धर्मदेशना दी। धर्मदेशना सुनकर अनेक नर नारियों ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की। देशना के प्रभाव से इन्द्रादि १८ गणधर हुए। भगवान के शासन में वरुण नामक शासन देव एवं नरदत्ता नाम की शासन देवी हुई।

एक बार भगवान विहार करते हुए भृगुकच्छ पधारे। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। भगवान का समवशरण हुआ। देशना सुनने के लिये जितशत्रु राजा घोड़े पर चढ़कर आया। राजा अन्दर गया। घोड़ा बाहर खड़ा रहा। घोड़े ने भी कान ऊँचे कर प्रभु का उपदेश सुना। उपदेश समाप्त होने पर गणधर ने भगवान से पूछा— इस समवशरण में किसने धर्म प्राप्त किया? प्रभु ने उत्तर दिया—जितशत्रु राजा के घोड़े ने धर्म प्राप्त किया है। जितशत्रु राजा ने पूछा— यह घोड़ा कौन है और उसकी आपके धर्म के प्रति श्रद्धा कैसे हुई उत्तर में भगवान ने घोड़े के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाया। घोड़े के पूर्वजन्म को सुनकर राजा ने घोड़े को मुक्त कर दिया।

भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया। वे हस्तिनापुर पधारे। वहाँ कार्तिक नाम का श्रावक श्रेष्ठी रहता था। वह अपने धर्म पर अत्यन्त दृढ़ था। अपने देव गुरु धर्म के सिवाय वह किसी के भी सामने नहीं झुकता था।

एक बार उस नगर में भगवावस्त्रधारी सन्यासी आया। उसने अपने पाखण्ड से लोगों पर अच्छा प्रभाव जमाया। वह मासोपवासी था। महिने के पारणे के अवसर पर नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने संन्यासी को निमंत्रित किया।

सम्यक्त्वधारी श्रावक होने से कार्तिक सेठ ने सन्यासी को आमंत्रित नहीं किया और न उपदेश सुनने के लिये उसके पास गया। कार्तिक सेठ की इस धार्मिक दृढ़ता पर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने कार्तिक सेठ को हर प्रकार से अपमानित करने का निश्चय किया। वह इसके लिये उपयुक्त अवसर की खोज करने लगा।

एक समय जितशत्रु राजा ने मास खमन के पारणे के लिये संन्यासी को अपने घर निमंत्रित किया। संन्यासी ने राजा को कहलवाया कि अगर कार्तिकसेठ मुझे भोजन परोसेगा तो मैं आपके घर पारणा करूँगा। राजा ने सेठ को बुलाकर उसे संन्यासी को भोजन परोसने की आज्ञा दी। राजाज्ञा को मानकर कार्तिकसेठ संन्यासी को भोजन परोसने लगा। भोजन परोसते हुए कार्तिकसेठ का वह बार-बार तिरस्कार करता था। संन्यासी से तिरस्कृत कार्तिक सेठ सोचने लगा—यदि मै दीक्षित होता तो मुझे यह विडंबना न सहन करनी पड़ती।

दूसरे दिन जब उसे भगवान मुनिसुव्रत के आगमन का समाचार मिला तो वह १ हजार आठ वणिकों के साथ भगवान की सेवा में पहुँचा और प्रव्रज्या ग्रहणकर आत्मसाधना करने लगा। बारह वर्ष तक चारित्रपालन कर वह मरकर सौधर्मेन्द्र बना। संन्यासी मरकर सौधर्मेन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी बना। पूर्वजन्म का वैर स्मरण कर ऐरावत इधर उधर भागने लगा। इन्द्र ने वज्र के प्रहार से उसे अपने वश में कर लिया।

भगवान के परिवार में ३० हजार साधु, ५० हजार साध्वियाँ ५०० चौदह पूर्वधर, १८०० अवधिज्ञानी, १५०० मनःपर्ययज्ञानी, १८०० केवलज्ञानी, २००० वैक्रिय लब्धिधारी, एक हजार दो सौ वादी, एक लाख ७२ हजार श्रावक एवं ३ लाख ५० हजार श्राविकाएँ थीं।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान **समेतशिखर** पर पधारे। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। एक मास के अन्त में ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र में अवशेष कर्मों को खपाकर भगवान मोक्ष में पधारे।

भगवान ने कुमारावस्था में साढ़ेसात हजार वर्ष, १५ हजार वर्ष राज्य पद पर एवं साढ़े सात हजार वर्ष चारित्रावस्था में व्यतीत किये। इस प्रकार कुल ३० हजार वर्ष भगवान की आयु थी।

भगवान मल्लीनाथ के निर्वाण के बाद ५४ लाख वर्ष के बीतने पर भगवान मुनिसुव्रत मोक्ष में पधारे ।

२१. भगवान नमिनाथ

जम्बूद्वीप के पश्चिमविदेह में भरत नामक विजय में कौशांबी नाम की नगरी थी । वहाँ सिद्धार्थ नाम का राजा राज्य करता था । उसने संसार से विरक्त होकर सुदर्शन नामक मुनि के समीप दीक्षा ग्रहण की । राजर्षिसिद्धार्थ ने कठोरतप करतेहुए तीर्थङ्कर नामकर्म के बीस स्थानों की सम्यक्आराधना कर तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया । अन्तिम समय में अनशनकर वे अपराजित नामक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए ।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मिथिला नाम की नगरी में विजय नाम के पराक्रमी राजा राज्य करते थे । उनकी पट्टरानी का नाम वप्रा था । वह गंगा की तरह पावनमूर्ति थी ।

सिद्धार्थ मुनि का जीव अपराजित विमान से तेतीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर वप्रा रानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ । आश्विनमास की पूर्णिमा का दिन था और उस समय अश्विनी नक्षत्र का योग था । महारानी वप्रा ने गर्भ के प्रभाव से चौदह महास्वप्न देखे । महारानी गर्भवती हुई और विधिवत् गर्भ का पालन करने लगी ।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी वप्रा ने श्रावण कृष्णा अष्टमी के दिन अश्विनी नक्षत्र के योग में नीलकमल चिन्ह से चिन्हित सुवर्ण-कान्ति वाले दिव्य पुत्ररत्न को जन्म दिया । भगवान के जन्मते ही समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं । इन्द्रों के आसन चलायमान हुए । छप्पन दिग्कुमारिकाएँ आई । उन्होंने मेरुपर्वत पर भावी-तीर्थङ्कर को लेजाकर जन्मोत्सव किया । विजय राजा ने भी पुत्रजन्म के उपलक्ष में बड़ा उत्सव किया ।

जब भगवान वप्रा रानी के गर्भ में थे तब मिथिला नगरी को शत्रुओं ने घेर लिया था। उस समय महारानी महल पर चढ़ी। गर्भस्थ बालक के प्रभाव से महलों पर खड़ी रानी को देखकर शत्रु भाग खड़ा हुआ और महाराज विजय के सामने झुक गया इसलिये महाराजा विजय ने बालक का नाम नमि रखा। शैशव को पारकर भगवान ने यौवनावस्था में प्रवेश किया। युवावस्था में नमिकुमार की काया १५ धनुष ऊँची थी। महाराज विजय ने नमिकुमार का अनेक सुन्दर राजकन्याओं के साथ विवाह किया। जन्म से ढाई हजार वर्ष के बाद विजय राजा ने नमिकुमार को राज्यगद्दी पर स्थापित किया। पांचहजार वर्ष तक राज्य करने के बाद स्वयं की प्रेरणा से एवं लोकान्तिक देवों की प्रार्थना से नमिराजा ने दीक्षा-ग्रहण करने का निश्चय किया तदनुसार वर्षीदान देकर 'सुप्रभ' नामक राजकुमार को राज्यभार सौंपकर वे आषाढ़कृष्णा नवमी के दिन अश्विनी नक्षत्र में देवकुरु नामक शिविका पर आरूढ़ होकर सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ छठ तप के साथ, एक हजार राजाओं के साथ नमिराजा ने दीक्षा ग्रहण की। परिणामों की उच्चता के कारण उसी क्षण भगवान नमि को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन छठ का पारणा वीरपुर के राजा दत्त के घर परमान्न से किया। वहाँ वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट हुए।

नौ मास पर्यन्त छद्मस्थ काल में विचरण करने के पश्चात् भगवान विचरण करते हुए पुनः मिथिला के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। षष्ठ तप कर वोरसली वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में शुक्लध्यान की परमोच्च-स्थिति में भगवान नमि ने समस्त घातीकर्मों को नष्ट कर दिया। कर्मों के नष्ट होते ही भगवान को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। उसी समय देवों ने भगवान का समवशरण रचा।

वह समवशरण एक सौ अस्सी धनुष ऊँचे अशोक वृक्ष से सुशोभित हो रहा था। अशोक वृक्ष के नीचे भगवान पूर्वदिशा की ओर मुख-कर रत्नसिंहासन पर आसीन हो गये और धर्म-देशना देने लगे। भगवान की देशना सुनकर अनेक नर-नारियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की उनमें कुंभ आदि सत्रह गणधर मुख्य थे। भगवान की देशना समाप्त होने पर कुंभ गणधर ने भी उपदेश दिया। भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की।

भगवान के तीर्थ में भृकुटी नामक यक्ष एवं गांधारी नामक शासनदेवी हुई। इस प्रकार भगवान नौ मास कम ढाई हजार वर्ष तक केवलीअवस्था में विचरण कर के भव्यों को प्रतिबोध देते रहे। भगवान के हरिसेन चक्रवर्ती परम भक्त थे।

भगवान के विहारकाल में बीसहजार साधु, इकतालीसहजार साध्वियाँ, ४५० चौदह पूर्वधारी, एक हजार छह सौ अवधिज्ञानी, बारह सौ आठ मन:पर्ययज्ञानी, सौलहसौ केवली, पांच हजार वैक्रियलब्धिवाले, एकहजार वादलब्धिवाले, एकलाख सत्तरहजार श्रावक एवं तीनलाख अड़तालीसहजार श्राविकाएँ हुईं।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान **समेतशिखर** पर पधारे। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। एक मास के अन्त में वैशाख कृष्णा दसमी के दिन अश्विनी नक्षत्र के योग में हजार मुनियों के साथ अक्षय-अव्यय पद प्राप्त किया। भगवान के निर्वाण का उत्सव इन्द्रादि देवों ने किया।

ढाईहजार कुमारावस्था में, पांचहजार राज्यत्व में एवं ढाईहजार वर्ष व्रतमें बिताये। इस प्रकार भगवान की कुल आयु दस हजार वर्ष की थी। भगवान मुनिसुव्रत के निर्वाण के बाद छहलाख वर्ष व्यतीत होने पर भगवान नमिनाथ का निर्वाण हुआ।

२२. भगवान अरिष्टनेमि

प्रथम और द्वितीय भव

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अचलपुर नाम के नगर में विक्रमधन नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे । उनकी मुख्य रानी का नाम धारिणी था । रात्रि के अन्तिम प्रहर में महारानी धारिणी ने मंजरी से युक्त एक आम्रवृक्ष को स्वप्न में देखा । कोई पुरुष उस आम्रवृक्ष को हाथ में लेकर महारानी से बोला–देवी ! इस आम्रवृक्ष को तुम्हारे आगन में लगा रहा हूँ । कालान्तर में यही आम्रवृक्ष नौ जगह रुपेगा और अधिक से अधिक फल देगा । महारानी इस स्वप्न को देखकर जागृत हुई। उसने अपने स्वप्न का फल पति से पूछा। पति ने कहा— महारानी ! इस स्वन का फल यही है कि तुम सुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दोगी । दूसरे दिन स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्न का फल उनसे पूछा । उन्होंने भी यही कहा कि महारानी सुन्दर पुत्र को जन्म देगी किन्तु यह आम्रवृक्ष नौ जगह रुपेगा और फलद्रुम होगा इसका अर्थ हम नहीं जानते ।

महारानी गर्भवती हुई । गर्भकाल के पूर्ण होने पर रानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम धनकुमार रखा गया । धनकुमार धात्रियों के सरक्षण में बड़े हुए । धनकुमार का विवाह कुसुमपुर के राजा सिंह की रानी विमलादेवी से उत्पन्न राजकुमारी धनवती के साथ हुआ । दोनों पति-पत्नी सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे ।

एक समय धन राजकुमार धनवती रानी के साथ जलक्रीड़ा के लिये सरोवर गये । वहाँ एक मुनि को मूर्च्छित अवस्था में देखा । राजकुमार धन ने उपचार कर उनकी मूर्च्छा दूर की । मुनि का नाम मुनिचन्द्र था । राजकुमार मुनि को अपने घर ले गया और निर्दोष आहार पानी देकर उनकी खूब सेवा भक्ति की । मुनि ने उपदेश दिया । मुनि का उपदेश सुनकर उसने सम्यक्त्व सहित श्रावक के व्रत ग्रहण किये । कल्पकाल समाप्त होने पर मुनि ने अन्यत्र विहार कर दिया ।

विक्रमधन राजा ने राजकुमार धन को राज्यभार सौंप दिया और दीक्षा ग्रहणकर आत्मकल्याण करने लगा।

एकबार वसुन्धर नाम के आचार्य का नगर में आगमन हुआ। महाराज धन महारानी धनवती के साथ उनका उपदेश सुनने गया। मुनि का उपदेश सुन उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने छोटे भाई धनदत्त और धनदेव के साथ पुत्र जयन्तकुमार को राज्यभार सौंप कर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर धन-ऋषि कठोरतप करने लगे। धनवती ने भी दीक्षा ग्रहण की। दोनों ने अन्तिमसमय में अनशन ग्रहण किया और मर कर वे सौधर्मेन्द्र के सामानिक देव बने। धन-दत्त और धनदेव भी मरकर सौधर्म देवलोक में महर्द्धिक देव बने।

तीसरा और चौथा भव—

भरतक्षेत्र में वैताढ्यपर्वत की उत्तर श्रेणियों में सूरतेज नाम का नगर था। वहाँ सूर नाम का खेचरों का राजा राज्य करता था। उसकी विद्युन्मती नाम की रानी थी। धनकुमार का जीव देवलोक से चवकर महारानी विद्युन्मती के गर्भ में उत्पन्न हुआ। गर्भकाल की समाप्तिपर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम चित्रगति रखा। क्रमशः बढ़ता हुआ चित्रगति युवा हुआ।

वैताढ्यपर्वत की दक्षिण श्रेणी में शिवमन्दिर नाम का नगर था। वहाँ अनन्तसिंह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम शशिप्रभा था। धनवती का जीव स्वर्गलोक से चवकर महारानी शशिप्रभा के उदर से पुत्री के रूप में जन्मा। उसका नाम 'रत्नवती' रखा गया। रत्नवती युवा हुई। कालान्तर में रत्नवती का विवाह चित्र-गति के साथ हुआ। सूर राजा ने चित्रगति को राज्य देकर दीक्षा ले ली। चित्रगति न्याय से राज्य करने लगा। एक समय संसार की विचित्रता का विचार करते हुए उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने पुरंदर नामक अपने पुत्र को राज्य देकर पत्नी रत्नवती और अनुज मनो-

गति तथा चपलगति के साथ दमधर मुनि के पास दीक्षा ले ली। चिरकाल तक तपकर चित्रगति माहेन्द्र देवलोक में महर्द्धिक देवता हुए। उसके दोनों भाई और उसकी पत्नी भी उसी देवलोक में देव बने।

पाँचवाँ और छठा भव—

पूर्वविदेह के पद्म नामक विजय में सिंहपुर नाम का नगर था। वहाँ हरिनन्दी नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम प्रियदर्शना था। चित्रगति मुनि का जीव देव आयु पूरी कर महारानी प्रियदर्शना के उदर में उत्पन्न हुआ। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम अपराजित रखा।

जनानन्दपुर के राजा जितशत्रु थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। रत्नवती का जीव धारिणी के उदर से पुत्री रूप में जन्मा उसका नाम प्रीतिमती रखा। प्रीतिमती युवा हुई। महाराज जितशत्रु ने स्वयंवर पद्धति से प्रीतिमती का विवाह करने का निश्चय किया। इसके लिये उसने देश देश के राजा राजकुमार स्वयंवर के लिये आमंत्रित किये। भव्य, सुन्दर और विशाल स्वयंवर–मण्डप बनाया गया।

स्वयंवर के समय अनेक देश के राजा एवं राजकुमार वहाँ उपस्थित हुए। अपराजित कुमार भी वेष बदल स्वयंवर मण्डप में उपस्थित हुआ। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार राजकुमारी ने स्वयंवर मण्डप में अपनी कला का प्रदर्शन किया किन्तु कोई भी राजकुमार उसे जीत नहीं सका। अपराजितकुमार ने राजकुमारी प्रीतिमती को कला में जीत लिया। राजकुमारी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपराजितकुमार के के गले मे वरमाला डाल दी। विधिपूर्वक राजकुमारी का विवाह अपराजित के साथ होगया। कुछ दिन श्वशुरगृह में रहकर राजकुमार अपराजित प्रीतिमती के साथ अपनी राजधानी लौट आये। माता-पिता पुत्र को एवं पुत्रवधू को देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

मनोगति और चपलगति के जीव माहेन्द्र देवलोक से च्यवकर अपराजित के सूर और सोम नाम के अनुज बन्धु हुए।

राजा हरिनन्दी ने अपराजित को राज्य देकर दीक्षा ली और तप करके वे मोक्ष गये।

संसार की अस्थिरता का विचार करते हुए राजा अपराजित को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने पुत्र पद्मनाभ को राज्यदेकर दीक्षा ले ली। उसके साथ ही उसके भाइयों ने एवं रानी प्रीतिमती ने भी दीक्षा ले ली। वे सभी तप कर कालधर्म को प्राप्त हुए और आरण नामक ग्यारहवें देवलोक में महर्द्धिक देवता बने।

सातवाँ और आठवाँ भव—

भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहाँ श्रीषेण नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीमती था। अपराजित मुनि का जीव देवलोक से चवकर श्रीमती रानी के उदर से जन्मा। उसका नाम शंख रखा गया। शंख ने शैशव पार किया और यौवन में कदम रखा।

इधर प्रीतिमती का जीव भी देवलोक से चवकर अंगदेश की चंपा नगरी के राजा जितारी के घर पुत्री रूप में जन्मा। उसका नाम यशोमती रखा गया। यशोमती अत्यन्त रूपवती थी। उसने श्रीषेण के पुत्र शंख की प्रशंसा सुन रखी थी। उसने मन ही मन शंख को अपने पति के रूप में चुन लिया था।

इधर विद्याधरपति मणिशेखर भी यशोमती को चाहता था। उसने जितारी से यशोमती की माग की किन्तु जितारी ने मणिशेखर की मांग को ठुकरा दिया। तब विद्या के बल से मणिशेखर यशोमती को हरकर ले गया। शंखकुमार को जब इस बात का पता लगा तो वह यशोमती को ढूंढ़ने निकला। अन्त में एक पर्वत पर मणिशेखर को पकड़ा और उसे ललकारा। दोनों में युद्ध हुआ। मणिशेखर हार

गया और उसने यशोमती शंख को सौंप दी । शंख की वीरता से प्रसन्न हो कर अनेक विद्याधरों ने भी अपनी कन्याएँ उसे अर्पण कीं। शंख सब को लेकर हस्तिनापुर गया । शंख की पराक्रम-गाथा सुनकर उसके माता-पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

शंख के पूर्वजन्म के बंधु सूर और सोम भी आरण देवलोक से चवकर श्रीषेण के घर यशोधर और गुणधर नाम से पुत्र हुए।

राजा श्रीषेण ने पुत्र को राज्यदेकर दीक्षा ली । जब उन्हें केवलज्ञान हुआ तब राजा शंख अपने छोटे भाइयों के साथ उनकी देशना सुनने गया । देशना के अन्त में शंख ने पूछा–भगवन् ! मेरा यशोमती पर इतना अधिक स्नेह क्यों है ?

श्रीषेण केवली ने कहा–जब तू धनकुमार था तब यह तेरी धनवती पत्नी थी। सौधर्म देवलोक मे यह तेरी मित्र हुई । चित्रगति के भव में यह तेरी रत्नवती नाम की प्रिया थी । माहेन्द्र देवलोक में यह तेरी मित्र थी । अपराजित के भव में यह तेरी प्रीतिमती नाम की पत्नी थी । आरण देवलोक में यह तेरी मित्र हुई । इस भव में यह तेरी यशोमती नाम की पत्नी हुई है । इसतरह यशोमती के साथ तुम्हारा सात भवों का सम्बन्ध है । आगामी भव में तुम दोनों अपराजित देवलोक में उत्पन्न होओगे और वहाँ से चवकर तू भरतखण्ड में नेमिनाथ के नाम का २२ वाँ तीर्थङ्कर होगा । यशोमती राजीमती नाम की स्त्री होगी । तुमसे ही विवाह का निश्चय कर यह अविवाहित अवस्था में ही दीक्षित बनेगी और मोक्ष में जाएगी ।

अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुन शंख को वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ले ली । यशोमती ने एवं उनके छोटे भाइयों ने एवं मित्रों ने भी शंख राजा के साथ दीक्षा ग्रहण की। शंख मुनि ने बीस स्थानों की आराधनाकर तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया ।

अन्त में अनशन कर शंखमुनि अपराजित नाम के अनुत्तर विमान में ३३ सागरोपम की स्थितिवाले महर्द्धिक देव बने। उनके अनुज मुनि एवं यशोमती साध्वी भी अपराजित विमान में महर्द्धिक देव बने।

नौवाँ भव-

भगवान अरिष्टनेमि का जन्म

रघुवंश तथा यदुवंश भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति-सभ्यता के उत्पत्तिक्षेत्र थे। रघुवंश में राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम और सीता जैसी महासती हुईं। उसीप्रकार यादवकुलतिलक भगवान अरिष्टनेमि, श्रीकृष्ण एवं राजीमती जैसी सतियों से यादवकुल सदा के लिए अमर बन गया है।

इसी यदुवंश में अंधकवृष्णि और भोजवृष्णि नाम के दो परम-प्रतापी राजा हुए। अंधकवृष्णि शौर्यपुर के और भोजवृष्णि मधुरा (मथुरा) के राजा थे।

महाराज अंधकवृष्णि के समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव ये दस दशार्ह पुत्र थे। समुद्रविजय के बड़े पुत्र का नाम अरिष्टनेमि था जिसका वर्णन पाठकों के सामने है। महाराज अंधकवृष्णि के छोटे पुत्र वसुदेव के कृष्ण आदि पुत्र हुए। कृष्ण की माता का नाम देवकी था। देवकी ने एकसमान आकृति रूप एव रंग वाले आठ पुत्रों को जन्म दिया जिनमें श्रीकृष्ण सातवें पुत्र और गजसुकुमाल आठवे पुत्र थे। वसुदेव जी के कुंती और माद्री ये दो छोटी बहने थीं। भोजवृष्णि के एक भाई मृत्तिकावती नगरी में राज्य करते थे। भोजवृष्णि के पुत्र महाराज उग्रसेन हुए। इनकी रानी का नाम धारिणी था।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में शौर्यपुर नाम का नगर था। वहाँ के शासक महाराजा समुद्रविजय थे। उनकी रानी का नाम शिवादेवी था। शंखमुनि का जीव अनुत्तरविमान से चवकर कार्तिक वदि १२ के दिन चित्रा नक्षत्र में महारानी शिवादेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। महारानी ने उसी रात्रि में तीर्थङ्कर के सूचक १४ महास्वप्न देखे। गर्भवती महारानी अपने गर्भ का यत्नपूर्वक पालन करने लगी।

गर्भ के पूर्ण होने पर महारानी शिवादेवी ने सावन सुदि पंचमी के दिन चित्रा नक्षत्र में शंख के चिन्ह से चिन्हित श्यामवर्णीय पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही समस्तदिशाएँ प्रकाश से प्रकाशित हो उठीं। नरक के जीव भी कुछ समय के लिये शान्ति का अनुभव करने लगे। भगवान की माता का सूतिकाकर्म करने के लिये ५६ दिग्कुमारिकाएँ आई। इन्द्रादि देवों ने भगवान को मेरुपर्वत पर ले जाकर नहलाया और उत्सव किया। माता-पिता ने भी पुत्र जन्मोत्सव किया। जब भगवान गर्भ में थे तब उनकी माता ने स्वप्न में अरिष्ट रत्नमयी चक्रधारा देखी थी इसलिए बालक का नाम अरिष्टनेमि रखा। अरिष्टनेमि देवदेवियों एवं धात्रियों के संरक्षण में बढ़ने लगे। शैशव-अवस्था को पार कर वे युवा हुए।

एक समय अरिष्टनेमि घूमते हुए महाराज श्रीकृष्ण के शस्त्रागार में पहुँच गये। शस्त्रागार का संरक्षक अरिष्टनेमि को वासुदेव कृष्ण के शस्त्रों को दिखाने लगा। शस्त्रों का निरीक्षण करते हुए अरिष्टनेमि की दृष्टि सारंगधनुष पर पड़ी। उन्होंने उसी समय सारंगधनुष को उठाया। सारंगधनुष को उठाते देख संरक्षक अरिष्टनेमि से बोला--स्वामी! यह धनुष श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई उठा नहीं सकता। यह बड़ाभारी और भयंकर धनुष है। आप इसे उठाने का व्यर्थ प्रयत्न न करें। अरिष्टनेमि हँसे और धनुष को उठाकर उसे कमल-नाल की भाँति झुकाकर प्रत्यंचा भी चढ़ाई और एक टंकार भी की। इस टंकार को सुनकर सभी लोग कांप से गये। शस्त्रागार का रक्षक विस्फारित नेत्रों से देखता रह गया।

उसी समय अरिष्टनेमि ने पांचजन्य शंख उठाया और फूंका। पांच-जन्य की आवाज सुनकर सारी पृथ्वी काँपने लगी और प्रजाजन घबरा उठे। उधर श्री अरिष्टनेमि ने सुदर्शनचक्र भी उठाकर घुमाया। फिर गदाएँ और खड्ग चलाये जिनके विषय में सभी को ज्ञात था कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उन्हे उठाने की शक्ति किसी में नहीं है।

अस्त्र-शस्त्रों की आवाज सुनकर श्रीकृष्ण के महल में खलबली मच गई। सभी बड़ेबड़े वीर एकत्र हुए जिनमें श्रीकृष्ण के बड़े भ्राता बलदेव भी थे। सभी दौड़कर श्रीकृष्ण के पास आये और बोले-गोविंद! यह कैसी आवाजें आ रही हैं? अभी अभी हमने सारंग धनुष की टंकार सुनी, पांचजन्य की ध्वनि सुनी। कैसी आवाजें आ रही हैं। कोई चक्रवर्ती या वासुदेव तो पैदा नहीं हुआ है?

श्रीकृष्ण स्वयं विस्मित थे। वे यह सोच ही रहे थे कि एक पहरेदार ने आकर सूचना दी कि अरिष्टनेमि शस्त्रागार में पहुँचकर आपके शस्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं। श्रीकृष्ण को पहरेदार की सूचना पर विश्वास नहीं हुआ। वे स्वयं अपने साथियों के साथ आयुधशाला में पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि अरिष्टनेमि सारंगधनुष को धारण कर पांचजन्य शंख फूंक रहे हैं। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर मुस्कुराते हुए कहा—भैया! आपके शस्त्रागार के संरक्षक कहते थे कि इन अस्त्र-शस्त्रों को आपके सिवाय और कोई नहीं उठा सकता और न चला ही सकता है किन्तु मै इनमें ऐसी कोई विशेषता नहीं देखता।

श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के इस अतुलपराक्रम को देखकर विचार में पड़ गये। इस अतुलपराक्रमी के सामने कृष्ण को अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। उन्होंने अरिष्टनेमि के वास्तविक बल का पता लगाने का निश्चय किया। अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा-"भाई आज हम कुश्ती करें। देखें कौन बली है?" अरिष्टनेमि ने नम्रता से कहा-बन्धुवर! आप बड़े हैं, इसलिए हमेशा ही आप बली है। श्रीकृष्ण ने कहा-इसमें क्या हर्ज है? थोड़ी देर खेल ही हो जाएगा। अरिष्टनेमि बोले-धूल में लोटने की मेरी इच्छा नहीं है किन्तु मै बल परीक्षा का दूसरा उपाय बताता हूँ। आप हाथ लम्बा कीजिए। मै उसे झुका दूँ। जो हाथ

न झुका सकेगा वही कम ताकतवाला माना जायगा । अरिष्टनेमि के इस प्रस्ताव को श्रीकृष्ण ने मान लिया और उसीक्षण उन्होंने अपना हाथ लम्बा कर दिया । अरिष्टनेमि ने उनका हाथ इसतरह से झुका दिया जैसे कोई वेंत की पतली लकड़ी को झुका देता है । फिर अरिष्टनेमि ने अपना हाथ लम्बा किया परन्तु श्रीकृष्ण उसे नहीं झुका सके । श्रीकृष्ण ने अपना पूरा वल आजमा लिया पर भुजा ज्यों की त्यों अकड़ी रही । श्रीकृष्ण स्वयं उनकी भुजा पर लटक गये किन्तु वे अरिष्टनेमि की भुजा को नहीं झुका सके । श्रीकृष्ण ने अजेय-वली भाई को स्नेहातिरेक में गले लगाया ।

वे भगवान अरिष्टनेमि के इस अपरिमेय बल को देख कर चिन्तित हो उठे । उनके मन में कई प्रकार की शंका-कुशंका होने लगीं । वे अपने महल में आकर सोचने लगे—अगर अरिष्टनेमि इतना शक्तिशाली व्यक्ति है तो कहीं सारे भरतखण्ड में अपना राज्य स्थापित करने की लालसा तो उसके हृदय में जागृत नहीं हो जायगी ? इतने में कुलदेवी ने आकर कहा—हे कृष्ण ! चिन्ता की वात नहीं है । अरिष्टनेमि २२वें तीर्थङ्कर हैं । वे राज्यप्राप्ति के लिये नहीं किन्तु जगत का उद्धार करने के लिए ही जन्मे हैं । यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई । देवी के मुख से वात सुनकर श्रीकृष्ण की चिन्ता कुछ कम हुई फिर भी विचार आया—मै सोलहहजार स्त्रियों के साथ भोग भोगता हूँ और अरिष्टनेमि अखण्ड ब्रह्मचारी है इसी कारण उसका वल प्रवल है और वह अजेय है । यदि इसका विवाह हो जाय तो मेरा वलप्रयोग उस पर सफलता प्राप्त कर सकेगा ।

श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि को विवाहित करने का निश्चय किया । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सत्यभामा को सहायक वनाया । उससे कहा—प्रिये ! तुम जानती हो कि अरिष्टनेमि युवा हो गया है फिर भी अविवाहित है । उसके माता-पिता बहू को देखने के लिए

लालायित हैं मगर वह सुनीअनसुनी कर देता है। समझता है कि विवाह गले का फंदा है। दुनिया क्या कहती होगी कि तीनखण्ड के नाथ का भाई अविवाहित ही रह गया, किसी ने एक लड़की भी नहीं दी! तुम चाहो तो उसे विवाह के लिए राजी कर सकती हो। मुझे रातदिन यही चिन्ता बनी रहती है।

सत्यभामा ने कहा—नाथ! मै इसके लिए अवश्य प्रयत्न करूंगी। वसन्तोत्सव के अवसर पर हम हरप्रकार का प्रयत्नकर देवरजी को मनाने का प्रयत्न करेंगी।

कुमार अरिष्टनेमि अलौकिक महापुरुष थे। संसार में रहतेहुए भी संसार से ऊँचे उठे हुए थे। राजप्रासाद में बास करते हुए भी राजसगुण से अलिप्त थे। उनका लक्ष्य सुमेरुशिखर से भी अत्युच्च और हिमालय के हिमशृङ्गों से भी अधिक उज्ज्वल और शुभ्र था। उनके आध्यात्मचिन्तन और संसार के प्रति औदास्य से मातापिता भी चिन्तित हो उठे। वे भी अपने पुत्र को विवाहित देखना चाहते थे। अब चारोंओर अरिष्टनेमि को विवाहित करने के लिए प्रयत्न होने लगे। वसन्तोत्सव समीप आ गया।

रैवतगिरि अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए अनुपम है। उसी पर वासुदेव श्रीकृष्ण ने वसन्तोत्सव मनाने का निश्चय किया। धूम-धाम से तैयारियाँ शुरू हो गई। श्री कृष्ण, बलदेव आदि सभी यादव-गण अपनी अपनी प्रियतमाओं के साथ रैवतगिरि पर पहुँचे और वहाँ क्रीड़ा में निमग्न हो गये। निसर्ग की सर्वोत्तम वनश्री से सुशोभित रैवत-गिरि पर यादवगण खुलकर क्रीड़ा करने लगे। रंग-रस के रसिया श्रीकृष्ण वहाँ स्वयं मौजूद थे और अपनी सहेलियों के साथ उसकी पटरानी सत्यभामा भी। ऐसा जान पड़ता था कि मानो रति के साथ कामदेव ने आज इस स्वभाव-सुन्दर गिरिराज को अपना क्रीड़ास्थल बनाया।

युवक अरिष्टनेमि को इस रागरंग में कोई अभिरुचि नहीं थी। वे एकान्त में वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर संसार की विचित्रता का विचार करने लगे।

सत्यभामा की दृष्टि एकान्त में बैठे हुए कुमार अरिष्टनेमि पर पड़ी। अच्छा अवसर देखकर वह भी अपनी सहेलियों के साथ उनके पास पहुँच गईं। वस्तुतः यह सारा आयोजन अरिष्टनेमि को लक्ष्य करके ही किया गया था। अवसर पाकर सत्यभामा अरिष्टनेमि से कहने लगी–

देवरजी ! योगसाधना का समय अभी दूर है। भोग की साधना में सिद्धि प्राप्त करने के बाद योग की साधना सरल हो जावेगी। मुझे आपकी यह एकान्तप्रियता अच्छी नहीं लगती। आप के भाईबन्द सृष्टि-सौन्दर्य का रसपान कर रहे हैं और आप वृक्ष के नीचे बैठे बैठे आत्मा परमात्मा की बातें सोच रहे हैं। आपकी इस उदासीनता के कारण हमारा सारा उत्सव रसरहित हो गया है। आप भी आओ और इस आमोद प्रमोद में समुचित भाग लो। जीवन की ऐसी घड़ियाँ बार बार नहीं आतीं। मैं जानती हूँ आपके अकेलेपन का कारण। आपको एक योग्य सहचरी की आवश्यकता है। क्या यह बात सच है न ?

कुमार अरिष्टनेमि चुपचाप सत्यभामा की यह बात सुन रहे थे। उन्होंने भाभी की इस मोहदशा पर मुस्करा दिया। वह सोचने लगे– अनन्तकाल तक भोगने पर भी जिनसे तृप्ति नहीं हो सकी, जो दुर्गति के कारण हैं और जिनसे आत्मा का अधःपतन होता है, उन भोगों के प्रति इतनी उत्सुकता क्यों है ? जिस देवदुर्लभ देह से अनुत्तर और अव्याबाधसुख की प्राप्ति होती है उस मानवदेह को भोग की भट्टी में झोंक देना क्या विडंबना नहीं है ?

इस प्रकार संसार की विचित्र दशा पर कुमार अरिष्टनेमि को हँसी आ गई। सत्यभामा ने इस हँसी को विवाह का सूचक समझ लिया, यही नहीं, उसने कुमार की स्वीकृति की घोषणा भी कर दी।

अरिष्टनेमि को विवाह के लिए राजी हुआ समझ कर सारा यादवपरिवार हर्ष से उन्मत्त हो गया। वसन्तोत्सव भी समाप्त हो गया। यादवगण अपने अपने परिवार के साथ लौट आये। श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि के द्वारा विवाह की स्वीकृति का वृत्तान्त समुद्रविजय तथा शिवादेवी से कहा। उन्हें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने कृष्ण से फिर कहा--अरिष्टनेमि के लिये योग्य कन्या को खोजने का काम भी आप ही का है। इसे भी आप ही पूरा कीजिये। श्रीकृष्ण ने यह जिम्मेदारी अपने पर ले ली।

भोजवृष्णि के पुत्र महाराज उग्रसेन मिथिला में शासन करते थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। इनके एक पुत्र था जिसका नाम 'कंस' था। अपराजित विमान से चवकर यशोमती का जीव धारिणी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। उसका नाम राजीमती रखा गया। राजीमती अत्यन्त सुशील सुन्दर और सर्वगुणसम्पन्न राजकन्या थी। उसकी कान्ति बिजली की तरह देदीप्यमान थी। उसका शैशवकाल राजोचित लाड़-प्यार से बीतने लगा। वह शैशवकाल को पारकर युवा हुई। मातापिता को योग्यवर की चिन्ता हुई। वे चाहते थे, राजीमती जैसी सुशील तथा सुन्दर है उसके लिए वैसा ही वर खोजना चाहिए। इसके लिए उन्हें बहुत तलाश करने की जरुरत नहीं पड़ी। उनकी दृष्टि में राजुल के लिए सबसे उपयुक्त वर यदुकुलनन्दन अरिष्टनेमि थे किन्तु अरिष्टनेमि बचपन से ही वैराग्यरंग में रंगे हुए थे। यादवों के भोगविलास उन्हें अच्छे नहीं लगते थे। वे इस वंश में त्यागजीवन का एक आदर्श उपस्थित करना चाहते थे। इसी कारण महाराज उग्रसेन को चिन्ता हो रही थी कि कहीं राजीमती का विवाह उसके अनानुरूप वर से न करना पड़े।

सत्यभामा की भी इच्छा थी कि उसकी बहन राजीमती के साथ अरिष्टनेमि का विवाह हो। उसने श्रीकृष्ण के सामने प्रस्ताव रखा और श्री कृष्ण के मुँह से वह प्रस्ताव समुद्रविजय के सामने गया।

सभी ने प्रस्ताव स्वीकार करते हुए यह उपयुक्त समझा कि श्री कृष्ण स्वयं राजा उग्रसेन के महल में जाकर कन्या देख ले और विवाह का निश्चय करदे ।

कन्या की मांग करने के लिए श्रीकृष्ण स्वयं महाराज उग्रसेन के घर गये । कृष्ण वासुदेव के आगमन से उग्रसेन के आनन्द की सीमा न रही । उन्होंने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से श्रीकृष्ण का राजोचित सन्मान किया । महाराज उग्रसेन से कुशलक्षेम सम्बन्धी वार्ता विनिमय के बाद श्रीकृष्ण बोले-महाराज ! मैं आपकी गुणवती पुत्री राजीमती का विवाह यदुकुलनन्दन अरिष्टनेमि से करना चाहता हूँ। आपकी कन्या की याचना करने के लिये ही मैं आपके द्वार पर उपस्थित हुआ हूँ । आप निराश तो न करेंगे ?

राजी का चेहरा खिल उठा । राजीमती के मुखमण्डल पर अरुणाई की आभा प्रस्फुटित हो गई और वह वहाँ से खिसक गई । राजा उग्रसेन अरिष्टनेमि के गुणों की प्रशंसा सुन चुके थे । हृदय में उमड़ते हुए प्रसन्नता के सिन्धु को रोकते हुए उन्होंने कहा-"आपको निराश किया ही कैसे जा सकता है । जब कि हम स्वयं राजीमती के लिये ऐसे ही उपयुक्त वर की खोज में थे ।" किन्तु मेरी एक शर्त है । श्रीकृष्ण ने कहा-वह क्या ? उग्रसेन-कुमार सपरिवार यहाँ पदार्पण करें । श्रीकृष्ण-मुझे आपकी यह शर्त मंजूर है । आप विवाह की तैयारियाँ प्रारंभ करदें । श्रावणशुक्लाषष्ठी के शुभमुहूर्त में कुमार का विवाह होगा । कुमार के साथ यादवों का विशाल परिवार होगा । श्रीकृष्ण स्वीकृति प्राप्तकर द्वारावती लौट आये ।

श्रीकृष्ण के लौटते ही महाराज समुद्रविजय ने विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ करदीं । सभी यादवों को आमंत्रण भेजे गये । द्वारिकानगरी नववधू की तरह सजायी गयी । जगह जगह बाजे बजने लगे । मंगलगीत गाये जाने लगे । नगरी के प्रत्येक द्वारपर सुवर्ण के स्तम्भों

पर इन्द्रनीलमणि के तोरण लटका दिये गये । राजमार्गों को मुक्ता के रंगीन स्वस्तिकों से सजाया गया । कई नववधुओं ने अपने अपने गृहांगणों में सुन्दर सुन्दर रंगीन चित्र बनाये ।

श्रावण के बादल आकाश में छाये हुए थे। ईशानकोण का वायु किसी बादल को खींच ले जाता था और किसी को धरतीपर बरसा देता था। ऊँचे ऊँचे भवनों के शिखरों पर नृत्य करते हुए मयूर उन्मुक्तकण्ठ से केकारव कर रहे थे।

द्वारिका के महाप्रभु श्रीकृष्ण अपने लघुभ्राता नेमिकुमार की विशाल बारात लेकर विवाह करने के लिये चल पड़े। अश्व, हाथी, और शिविकाओं से भरी हुई यह बारात जहाँ ठहरती वहाँ एक छोटी सी नगरी बस जाती थी। उसकी सजावट और शोभा को देखने के लिये दूर दूर से लोग पंक्तियों में चले आरहे थे। आकाश में रहे हुए देवतागण पुष्प बरसाकर भगवान अरिष्टनेमि का स्वागत कर रहे थे।

इधर महाराज उग्रसेन यादवों की विशाल बारात का स्वागत करने के लिये आतुर थे। वे चाहते थे कि अरिष्टनेमि की इस बारात का स्वागत ऐसा हो कि द्वारिका के महारथी भी एकबार दाँतों तले अंगुली दबाने लगें ।

राजद्वार पर नगाड़े बज रहे थे और शहनाइयों के अमृतस्वर तो समाप्त ही नहीं होते थे ।

महारानी अन्तःपुर में तैयारियाँ कर रही थीं। अभी बारात आ पहुँचेगी, नगर द्वार पर वरराजा का मोतियों से स्वागत करने के लिये जाना पड़ेगा । वे तैयारियों की शीघ्रता में कोमल गलीचों को दबाती हुई आगे बढ़ रही थीं । राज्यकुल की नववधुओं के उत्साह का कोई पार न था । उनके उत्साह सूचक नूपुरों की आवाजों से सारा महल गूँज रहा था । उनके हास्य से सारामहल हँस पड़ता था ।

लग्नवेला समीप आरही थी । राजमहल के प्रांगण में तैयारियाँ हो रही थीं। पुरोहित और पुजारी आगये थे । वेदिका पर कुंकुम

और अक्षत रख दिये गये थे । मण्डप के बाहर नवयुवतियाँ मंगल-कलश लिये वरराजा का स्वागत करने के लिये खड़ीं थीं ।

यादवकुल-शिरोमणि नेमिकुमार का रूप अद्भुत था। सिर पर मुकुट, भुजाओं में भुजबन्ध, कानों में कुण्डल, आजानुबाहु में सुन्दर चाप । वे कामदेव के दूसरे अवतार लगते थे । वे अकेले ही सारथी के साथ रथ पर बैठे हुए थे । महल के निकट पहुँचते ही शहनाइयों और गीतों की आवाज को भेदते हुए पशुओं के चीत्कार सुनाई दिये । अरिष्टनेमि के कानों में यह चीत्कार शूल की भाँति चुभे । कुछ क्षण के बाद शहनाई के बजाय केवल पशुओं की चीत्कार ही चीत्कार सुनाई देने लगी । वे सिहर उठे । हृदय धड़कने लगा । उन्होंने सारथी से पूछा—यह शोकपूर्ण हृदय को हिलादेने वाला आक्रन्दन क्यों और कहाँ से आरहा है ?

सामने बाड़ों में बन्द पशुओं की ओर इशारा करके सारथी बोला—दीनानाथ ! यह पशुपक्षी बारात में आये हुए मांस-भोजी अतिथियों की भोजन सामग्री हैं। अपना स्थान छूट जाने से, स्वाधीनता लुट जाने से और प्रिय साथियों का साथ छूट जाने से तथा अपने प्रिय साथियों का बिछोह होजाने से, ये पशु व्याकुल और भयभीत हो रहे हैं । अज्ञात पीड़ा से छटपटा रहे हैं । अश्रुतपूर्व वाद्यध्वनियों से एवं मृत्यु की आशंका से उनका हृदय विह्वल हो रहा है ।

सारथी के मुख से यह सुनकर उनकी आत्मा कांप उठी । उन्होंने इस अनर्थ को टालने का निश्चय किया । करुणा के सागर भगवान इस महान् हिंसा के भागी कैसे बन सकते हैं! वे मन ही मन सोचने लगे—इस समय मेरे ही कारण इन पशुओं की बलि होगी । मैं इन पशुओं के शव पर सुख का महल खड़ा नहीं करूँगा । उसीक्षण नेमिकुमार ने सारथी से कहा—सारथी ! जाओ ! बाड़े का द्वार खोलकर इन पशुओं को मुक्त कर दो । मैं इन पशुओं की बलिवेदी पर सेहरा नहीं बांध सकता । सारथी ने नेमिकुमार के आदेश से बाड़े का द्वार

खोल दिया। द्वार खुलते ही उन्मुक्तमन से प्रसन्नता की किलकारियाँ करते हुए पशु-पक्षी अपने अपने निवासस्थान की ओर भागने लगे। पशुओं को उन्मुक्तमन से भागते देख अरिष्टनेमि अपार प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे। सारथी के इस कार्यपर प्रसन्न होकर नेमिकुमार ने अपने समस्त अमूल्य आभूषण सारथी को दे दिये। उन्होंने अपने रथ को शौर्यपुर की ओर चलाने का आदेश दे दिया। भगवान विना विवाह किये ही शौर्यपुर लौट आये।

भगवान को वापस लौटता देख एक दूत दौड़ा हुआ लग्नमण्डप के पास पहुँचा। उसने महाराज उग्रसेन से कहा-स्वामी! नेमिकुमार विवाह करने से इन्कार करके आधे मार्ग से ही लौट गए।

क्यों? महाराज ने धड़कते हुए हृदय से प्रश्न किया।

पाकशाला के पास में बंधे हुए पशुओं की चीत्कारों ने उनके हृदय को भारी आघात पहुँचाया। वे वहाँ गये और सब पशुओं को बन्धनमुक्त कर विना कुछ कहे सुने सारथी को रथ वापिस लौटाने का आदेश दिया। महाराज! मैं वहाँ उपस्थित था। वे कुछ न बोले किन्तु उनकी आखों में अद्भुत चमत्कार था। ऐसा लगता था मानों उन्होंने सबकुछ पा लिया।

चहलपहल रुक गई। महाराज उग्रसेन महारथी श्रीकृष्ण आदि सब के सब अपने अपने शीघ्रगामी वाहन पर आरूढ़ होकर घटनास्थल पर पहुँचे। महारानी भी दो चार दासियों के साथ शिविका में बैठकर रवाना होने की तैयारी करने लगीं। शहनाई के स्वर शिथिल पड़ गये।

राजकुमारी राजुल तो मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। महारानी राजुल को धैर्य बँधा रही थी। श्रावण के बादलों की तरह सब की आखों में आंसू बह रहे थे।

समुद्रविजय महारथी श्रीकृष्ण तथा महाराज उग्रसेन नेमिकुमार को समझाने आये किन्तु नेमिकुमार अपने निश्चय पर अटल थे। वे सांसारिक भोगविलासों को छोड़ने का निश्चय कर चुके थे। महाप्रभु नेमि के दृढ़वैराग्य व अटलतर्क के सामने वे सब निरुत्तर थे। अन्त में वे निराश होकर अपने स्थान में लौट आये। भगवान नेमिनाथ बारात छोड़कर अपने महल की ओर रवाना हुए।

भगवान के जाते ही बरातियों की सारी उमंगे हवा हो गईं। सभी के चहरे पर उदासी छा गई। महाराज उग्रसेन की दशा और भी विचित्र हो रही थी। उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था कि इससमय क्या करना चाहिये?

राजीमती को जब चेतना आई तो उसका सारा दुःख बाहर उमड़ आया। वह अपना सर्वस्व नेमिकुमार के चरणों में अर्पित कर चुकी थी। उन्हें अपना आराध्यदेव मानचुकी थी। उनके विमुख होने पर वह अपने को सूनीसी, निराधार सी एवं नाविक रहित नौका सी, मानने लगी। उसकी आखों में अविराम आंसू बह रहे थे। मातापिता पुत्री के इस दुःख को देख नहीं सके। कहा—

बेटी! राजकुमार नेमि ने हमारी बात नहीं मानी। वह वापिस चला गया। हजारों युक्तियों का एक ही उत्तर था और वह था उसका अवलोकन! सभी उसके सामने अकिंचित्कर सिद्ध हुए। बेटी! हमारा दुर्भाग! ऐसे रत्न सरीखे जामाता को देख कर मेराहृदय कितने उल्हास से भरता!

राजीमती बोली—माताजी! यदि वे वापिस नहीं आये तो मेरा क्या होगा।"

महारानी ने उत्तर—दिया बेटी! उन्होंने दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। उस महापुरुष के निश्चय को बदलने की अब किसी में ताकत नहीं है। अब तो उन्हें भूल जाने में ही भलाई है। किसी नये

राजकुमार की खोज करेंगे । कुँआरी कन्या के, सौ वर । ऐसे संन्यासी का क्या विश्वास । बेटी जो हुआ सो ठीक हुआ । पांच फेरे फिर गये होते तो न जाने क्या होता ! राजमाता को संतोष था ।

राजीमती बोली—माताजी ! आप क्या कहती हैं ! "यह प्रीति इस भव में कम हो सकती है ! राजकुमार को देखते ही मेरे मन में अनन्तभवों की प्रीति उत्पन्न होती थी । मैं तो उनसे कभी का विवाह कर चुकी थी"

पुत्री ! लग्न-संस्कार तो होना ही चाहिये न ! बिना उसके विवाह कैसा ! पुत्री तू मूर्खता न कर ! भावावेश में अपना भव न बिगाड़ ! यह रूप, यह यौवन, यह विद्या ?

राजकुमारी हँसी—माताजी ! इसीलिये कहती हूँ कि मेरा विवाह तो हो चुका था । लग्नसंस्कार और विधि से क्या प्रयोजन ? ये तो हृदय में कभी के मेरे पति हो चुके थे । यह अग्नि यह लग्नमंत्र यह राजगुरु तो आन्तरिक लग्न होने के पश्चात् होनेवाली शोभा के पुतले हैं । राजकुमार नेमि मेरे हैं और मैं उनकी हूँ । भव भव की प्रीति आज कैसे तोड़ूँ ? बस हमारा विवाह अमर है ।

पुत्री ! नेमिकुमार तो दीक्षा लेंगे क्या उनके पीछे तुम भी ऐसी ही रह जाओगी ।

राजीमती—माताजी जब वे दीक्षा लेंगे तो मैं भी उनके मार्गपर चलूँगी । पति कठोरसंयम का पालन करे तो पत्नी को भोगविलासों में पड़े रहना शोभा नहीं देता । जिस प्रकार वे काम-क्रोध आदि आत्मा के शत्रुओं को जीतेंगे उसी प्रकार मैं भी उनपर विजय प्राप्त करूँगी ।

राजीमती के इस दृढ़ निश्चय को कोई बदल नहीं सका । वह भी नेमिकुमार के मार्ग पर चलने के लिये कृतनिश्चयी हो गई । अब वह अपना सारासमय धार्मिक आचरणों में बिताने लगी ।

राजीमती में स्त्रीहृदय की कोमलता महासती की पवित्रता और महापुरुषों की वीरता का अपूर्वमिश्रण था । उसकी विचारधारा सांसारिक भोगविलास से उठकर त्याग के रूप में परिणित हो गई थी ।

भगवान अरिष्टनेमि के छोटे भाई का नाम रथनेमि था। एक ही माता के पुत्र होने पर भी उन दोनों की विचारधारा में महान अन्तर था। एक भोग की ओर आकृष्ट था तो दूसरा त्याग की ओर। नेमिकुमार जिनवस्तुओं को तुच्छ मानते थे रथनेमि उन्हीं के लिये तरसते थे।

रथनेमि राजीमती के सौन्दर्य व गुणों की प्रशंसा सुन चुके थे। वे राजीमती के साथ विवाह करना चाहते थे किन्तु अरिष्टनेमि के साथ राजीमती के विवाह का निश्चय होजानेपर वे मन मसोस कर रह गये थे। अरिष्टनेमि ने जब राजीमती का परित्याग कर दिया तो रथनेमि बड़े प्रसन्न हुए। उनके हृदय में फिर आशा का संचार हुआ और वे राजीमती को प्राप्त करने का उपाय सोचने लगे।

इस कार्य के लिए रथनेमि ने एक दूती को राजीमती के पास भेजा। पुरस्कार के लोभ में पड़ कर दूती राजीमती के पास आई। एकान्त अवसर देखकर उसने रथनेमि की इच्छा राजीमती के सामने प्रकट की और उसे यह सम्बन्ध स्वीकार करने का आग्रह किया। उसने रथनेमि के सौन्दर्य, वीरता एवं रसिकता आदि गुणों की प्रशंसा की।

राजीमती को रथनेमि की भोगलिप्सा पर अत्यन्त दुःख हुआ। उसने कामान्ध रथनेमि को मार्ग पर लाने का विचार किया।

उसने दूती से कहा—रथनेमि के इस प्रस्ताव का उत्तर मैं उन्हें ही दूँगी इसलिए तुम जाओ और उन्हें ही भेज दो। साथ में कह देना कि वे अपनी पसन्द के अनुसार किसी पेय वस्तु को लेते आवें।

दूती का संदेश पाकर राजकुमार रथनेमि ने सुन्दर वस्त्राभूषण पहने। बड़ी उमंगों के साथ पेयवस्तु तैयार कराई। रत्नखचित सुवर्ण-कटोरे में उसे भरकर बहुमूल्य वस्त्र से ढँक दिया। एक सेवक को साथ में लेकर राजीमती के महल में वे पहुँचे।

राजीमती ने रथनेमि का भावभीना स्वागत किया। वह कहने लगी–आपके दर्शन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। दूती ने आपकी जैसी प्रशंसा की थी वे सभी गुण आप में मौजूद हैं। भगवान अरिष्टनेमि जैसे त्रिलोकपूज्य महामानव के भाई होने का आपको सौभाग्य प्राप्त है। आप जैसा भाग्यशाली और कौन हो सकता है ?

राजीमती के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर रथनेमि फूले नहीं समाये। वे कहने लगे–सुन्दरी ! बहुत दिनों से मैंने आपको अपने हृदय की अधीश्वरी मान रखा था, किन्तु भाई के साथ आपके सम्बन्ध की बात सुनकर मै चुप हो गया। मालूम पड़ता है मेरा भाग्य तेज है इसीलिए नेमिकुमार ने इस सम्बन्ध को नामंजूर कर दिया। निश्चय होने पर भी मैं एक बार आप के मुँह से स्वीकृति के शब्द सुनना चाहता हूँ। फिर विवाह में देर न होगी। यह कहकर रथनेमि ने पेय का कटोरा आगे बढ़ाया।

राजीमती रथनेमि के मुँह से यह बात सुनकर मनमें सोचने लगी—मोह की विडम्बना विचित्र है। वासना के आवेश में यह रथ-नेमि अपने भाई के स्नेह को भी भूल गया है। अस्तु, अब इन्हें कर्तव्य का भान कराना ही होगा !

राजीमती ने कटोरा ले लिया और उसमें वमन की दवा मिलाकर उसे पी गई। खीरके पीते ही दवा के प्रभावसे तत्काल कै हो गई। उसने सारी "कै" को कटोरे में उतार कर कहा–राजकुमार ! लीजिए ! और इसे पीजिए।

वमन के कटोरे को सामने देखकर राजकुमार रथनेमि अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बोले–राजीमती ! तुम्हारा यह साहस ! तुम्हें अपने रूप पर इतना घमण्ड है ? क्या मुझे कुत्ता या कौआ समझ रखा है जो वमन की हुई वस्तु पिलाना चाहती हो ? राजीमती–वमन हुआ पदार्थ है तो क्या हुआ ? है तो वही जो आप लाये थे और जो आप को

अत्यधिक प्रिय है। इसके रूप, रस या रंग में कोई फरक नहीं पड़ा है। केवल एकबार मेरे पेट तक जाकर निकल आया है।

रथनेमि—इससे क्या, है तो वमन ही ?

राजीमती—मेरे साथ विवाह करने की इच्छा रखनेवालों के लिये वमन पीना कठिन नहीं है।

रथनेमि—क्यों ?

राजीमती—जिस प्रकार यह पदार्थ मेरे द्वारा त्यागा हुआ है। उसी प्रकार मैं आपके भाई द्वारा त्यागी हुई हूँ। त्यागी हुई वस्तु को स्वीकार करने का अर्थ ही वमन की हुई वस्तु का पुनः उपभोग करना है। यादवकुमार! मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव रखते समय आपने यह नहीं सोचा कि मैं आपके बड़े भाई की परित्यक्ता पत्नी हूँ। आप के इस वासनामय जीवन को धिक्कार है।

राजीमती की युक्तिपूर्ण बात सुनकर रथनेमि का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। उसे मन ही मन पश्चात्ताप होने लगा। उसने कहा—महादेवी मुझे क्षमा करो। आपने मेरी आँखे खोल दी हैं।

रथनेमि चुपचाप राजीमती के महल से चले आये। उनके हृदय में लज्जा और ग्लानि थी। सांसारिक विषयों से उन्हें विरक्ति हो गई। उन्होंने अपने भाई अरिष्टनेमि के साथ प्रव्रज्या लेने का निश्चय कर लिया। वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

धीरे धीरे एक वर्ष बीत गया। भगवान अरिष्टनेमि का वार्षिक-दान समाप्त हो गया। इन्द्र आदि देव दीक्षा-महोत्सव मनाने के लिये आये। श्रीकृष्ण तथा यादवों ने भी खूब तैयारियाँ कीं। अन्त में श्रावणशुक्ला षष्ठी के दिन 'उत्तरकुरा' नाम की शिविका पर आरूढ़ होकर उज्जयंत पर्वत पर सहस्राम्र नामक उद्यान में भगवान ने दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ उनके लघु भ्राता रथनेमि, दृढ़नेमि आदि हजार राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। उस दिन भगवान ने छठ की तपस्या की थी।

दूसरे दिन गोष्ठमें वरदत्त ब्राह्मण के घर परमान्न से पारणा किया। देवताओं ने वसुधारादि पाँचदिव्य प्रकट किये। भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया।

चौवन दिनरात छद्मस्थकाल में विचरण करनेके बाद भगवान रैवतगिरि के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ वेतस्-वृक्ष के नीचे अष्टमभक्त तप की अवस्था में आश्विनमास की अमावस्या के दिन घातीकर्मों को क्षय कर भगवान ने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। भगवान को केवलज्ञान हुआ जानकर इन्द्रादि देव भगवान की सेवा में आये। समवशरण की रचना हुई। एक सौ बीस धनुष ऊँचे चैत्यवृक्ष के नीचे रत्नमय सिंहासन पर आरूढ़ होकर भगवान उपस्थित परिषद् को धर्मोपदेश देने लगे। भगवान की वाणी श्रवण कर वरदत्त आदि ने दीक्षा ग्रहणकर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान की देशना समाप्त होनेपर वरदत्त गणधर ने उपदेश दिया। भगवान के उपदेश से अनेक राजाओं तथा यादवकुमारों ने श्रावकव्रत एवं साधुव्रत ग्रहण किये। भगवान के शासन में गोमेध यक्ष एवं अंबिका देवी शासनरक्षक देवदेवी के रूप में प्रकट हुए।

भगवान अरिष्टनेमि की दीक्षा का समाचार राजीमती को भी मालूम पड़ा। समाचार सुनकर वह विचार में पड़ गई कि अब मुझे क्या करना चाहिये! इसप्रकार विचार करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसे मालूम पड़ा कि मेरा और भगवान का प्रेम सम्बन्ध पिछले आठ भवों से चला आ रहा है। इस नवे भव में भगवान का संयम अंगीकार करने का निश्चय पहले से था। मुझे प्रतिबोध देने की इच्छा से ही उन्होंने विवाह का आयोजन स्वीकार कर लिया था। अब मुझे भी शीघ्र सयम अंगीकार करके उनका अनुसरण करना चाहिये।

महासती राजीमती ने मातापिता को पूछकर सातसौ सखियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। महाराज उग्रसेन तथा श्रीकृष्ण ने उसका

दीक्षा महोत्सव किया। राजकुमारी राजीमती साध्वी राजीमती बन गई। श्रीकृष्ण तथा सभी यादवों ने उसे वंदना की। अपनी शिष्याओं सहित राजीमती तप-संयम की आराधना करने लगी। थोड़ेसमय में ही वह बहुश्रुत हो गई।

एक बार राजीमतो भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन के लिये गिरनार पर्वत की ओर जा रही थी। मार्ग में जोर से आँधी चलने लगी। साथ में पानी भी बरसने लगा। कालीघटाओं के कारण अन्धेरा छा गया। साध्वी राजीमती उस बवण्डर में पड़कर अकेली रह गई। सभी साध्वियों का साथ छुट गया। वर्षा के कारण उसके सारे बाल भीग गये। राजीमती को पास ही में एक गुफा दिखाई पड़ी। कपड़े सुखाने के विचार से वह उसी में चली गई। उसने एकान्त स्थान देख कर एक एक करके समस्त वस्त्र उतार दिये और सुखाने के लिये फैला दिये।

रथनेमि उसी गुफा के एक कोने में ध्यान कर रहे थे। अन्धेरा होने से राजीमती को वे दिखाई नहीं दिये किन्तु रथनेमि की दृष्टि राजीमती के नग्न शरीर पर पड़ी। उनके हृदय में कामवासना जागृत हो गई एकान्त स्थान, वर्षा का समय, सामने वस्त्र रहित सुन्दरी, ऐसी अवस्था में रथनेमि अपने को न सम्भाल सके। वे राजीमती के निकट गये और कहने लगे-सुन्दरी! मैं तुम्हारा देवर रथनेमि हूँ। अचानक एक पुरुष को अपने सामने देख वह अकचका गई। उसी समय उसने अपने अङ्गों को ढंक लिया।

राजीमती को सम्बोधितकर रथनेमि कहने लगे-प्रिये! डरो मत! भय और लज्जा को छोड़ दो! आओ हम तुम मनुष्योचित सुख भोगें। यहस्थान एकान्त है, कोई देखने वाला नहीं है। दुर्लभ मानवदेह को पाकर सुख से वंचित रहना निरी मूर्खता है।

राजीमती ने कहा–कुमार रथनेमि ! आप अन्धकवृष्णि के पौत्र हैं, महाराज समुद्रविजय के पुत्र एवं तीर्थङ्कर भगवान अरिष्टनेमि के भाई हैं। त्यागी हुई वस्तु को फिर भोगना लज्जा जनक है।

पक्खंदे जलियं जोइं धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं कुले जाया अगंधणे॥

अगन्धन कुल में पैदा हुए सांप जाज्वल्यमान प्रचण्ड अग्नि में गिर कर भस्म हो जाते हैं किन्तु उगलेहुए विष को पीना पसन्द नहीं करते।

आप तो मनुष्य हैं, महापुरुषों के कुल में आपका जन्म हुआ है फिर यह दुर्भावना कहाँ से आई ?

आपने घर-द्वार छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की है। आप और भगवान दोनों एक कुल के हैं। इस प्रकार श्रेष्ठकुल में जन्म लेकर वमन की हुई वस्तु को फिर ग्रहण करना श्रेष्ठमानव का कार्य नहीं हो सकता। हे महामुने ! अपने इस दुष्कृत्य का पश्चात्ताप कर पुनः संयम में दृढ़ होइये।

राजीमती के उक्त वचन सुनकर रथनेमि का सिर लज्जा से झुक गया। उसे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होने लगा। अपने अपराध के लिये वे राजीमती से बारबार क्षमा मांगने लगे।

रथनेमि ने भविष्य के लिये संयम में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की। राजीमती साध्वी ने उन्हें कई प्रकार के हित वचन सुनाकर संयम में दृढ़ किया। जैसे मदोन्मत्त हाथी अंकुश की मार से वश में हो जाता है, उसी प्रकार राजीमती के सुभाषित वचनों से कामोन्मत्त रथनेमि ठिकाने आ गये। वे पुनः संयम में स्थित हो गये।

बार बार चोट खाये रथनेमि ने अपनी समस्त शक्ति वासना के उन्मूलन में लगादी। उन्होंने उग्रतर तपस्या करके घातीकर्मों को नष्ट किया और केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष की राह ली।

रथनेमि को संयम में स्थिरकर राजीमती गुफा से निकली और अपने साध्वीसमूह में आ मिली। सब के साथ वह पहाड़ पर चढ़ी और भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन किये। राजीमती की चिरअभिलाषा पूर्ण हुई। आनन्द से उसका हृदय गद्गद् हो उठा। उसने भगवान का उपदेश सुना और अपनी आत्मा को सफल बनाया। भगवान के उपदेशानुसार कठोरतप और संयम की आराधना करने लगी। फलस्वरूप उसके सभी कर्म नष्ट हो गये। भगवान के मोक्ष पधारने से चौदह दिन पहले वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

राजीमती की आयु कुल ९०१ वर्ष की थी। वह ४०० वर्ष राकुमवस्था में एकवर्ण सयम लेकर छद्मस्थ अवस्था में और पाँच सौ वर्षकेवली अवस्था में रही थीं।

भगवान अरिष्टनेमि ने अनेक स्थलों पर विहार कर यादवकुमारों को, राजाओं को एवं श्रेष्ठियों को प्रतिबोध दिया। भगवान के उपदेश से अठारह हजार साधु हुए, वरदत्त आदि ग्यारह गणधर हुए। ४० हजार साध्वियाँ ४०० चौदहपूर्वधर, १५०० सौ अवधिज्ञानी, १५०० वैक्रिय लब्धिधारी, १५०० केवलज्ञानी, १००० मनःपर्ययज्ञानी, ८०० वाद १ लाख ६९ हजार श्रावक एवं ३ लाख ३९ हजार श्राविकाएँ हुई।

विहार करते हुए भगवान रेवतगिरि पर आये। वहाँ अपना निर्वाण काल समीप जानकर ५३६ साधुओं के साथ अनशन ग्रहण किया। एकमास के अन्त में आषाढ़ शुक्ल अष्टमी के दिन चित्रा नक्षत्र में ५३६ मुनियों के साथ भगवान निर्वाण पधारे।

भगवान अरिष्टनेमिने कुमारावस्था मे तीन सौ वर्ष एवं साधु पर्याय में ७०० वर्ष व्यतीत किये। भगवान की कुल आयु १००० वर्ष की थी। शरीर की ऊँचाई १० धनुष प्रमाण थी।

भगवान नमिनाथ के निर्वाण के बाद–पाँच लाख वर्ष के बीतने पर भगवान अरिष्टनेमि का निर्वाण हुआ।

२३. भगवान पार्श्वनाथ

प्रथम और द्वितीय भव—

पोतनपुर नगर में अरविन्द नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम रतिसुन्दरी था। महाराज अरविन्द का विश्वभूति नाम का पुरोहित था। उसकी स्त्री का नाम अनुद्धरा था। अनुद्धरा से कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र हुए। कमठ वक्र एवं कुटिल प्रकृति का था और मरुभूति भद्र प्रकृति का था। कमठ का विवाह वरुणा के साथ और मरुभूति का वसुन्धरा के साथ हुआ था।

समयजाते विश्वभूति ने घर का भार कमठ को सौंपा और स्वयं दीक्षा ग्रहण की। तपश्चर्या की और मरकर देवलोक में गया। अनुद्धरा भी तपश्चर्या पूर्वक पति के पीछे जीवन बिताती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई। पुत्र भी मातापिता के मृतकार्य के थोड़े दिनों के बाद शोक भूल गये और अपना जीवन सुख पूर्वक बिताने लगे।

एक समय पोतनपुर नगर में हरिश्चन्द्र नाम के आचार्य का आगमन हुआ। उनका उपदेश सुनकर मरुभूति श्रावक बन गया और धार्मिकजीवन बिताने लगा। मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा अत्यन्त रूपवती थी। कमठ उसके रूप पर आसक्त था अवसर पाकर कमठ ने उसे अपनी प्रेमिका बना लिया।

एक बार मरुभूति ने कमठ को अपनी पत्नी वसुन्धरा के साथ व्यभिचार करते देख लिया। उसने राजा से जा कर कमठ की शिकायत की। राजा ने कमठ को बुलाया और उसे गधे पर बिठवा कर सारे शहर में फिरवाया और नगर से बाहर निकलवा दिया।

कमठ क्रोध से जलता हुआ एक तापस आश्रम में पहुँचा वहाँ तापस बन उग्र तपश्चर्या करने लगा। थोड़े दिनों के बाद कमठ की उग्रतपस्वी के रूप में प्रसिद्धि हो गई। सैकड़ों लोग उसके पास आने लगे। मरुभूति भी अपने अपराधों की क्षमा मांगने कमठ के आश्रम

में पहुँचा । कमठ को वन्दनकर वह अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा ।

मरुभूति को सामने देख कमठ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । उसने पास में पड़ी एक बड़ी शिला उठाकर मरुभूति के माथे पर दे मारी । शिला की चोट से मरुभूति की तत्काल मृत्यु हो गई । वह मरकर विन्ध्यगिरि में हथनियों का यूथपति बना । कमठ की स्त्री वरुणा भी पति के बुरेकार्य से शोक करके मरी और उसी अटवी में यूथपति की प्रिय हथिनी बनी ।

तृतीयभव—

पोतनपुर के राजा अरविंद अपने महल की अटारी में बैठे हुए बादलों की ओर देख रहे थे । देखते-देखते पंचरंगी बादलों से आकाश घिर गया और हवा के झोंकों से वह उसी समय बिखर गया । साथ ही अरविंद के अज्ञान पटल भी बिखर गये । उन्हें बादलों की तरह संसार भी अनित्य लगने लगा । उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र को बुलाकर उसे राज्यभार दे दिया और समन्तभद्र नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण करली ।

एकसमय अरविंद मुनि सागरदत्त सेठ के साथ विहार कर रहे थे । रास्ते में उन्होंने एक सरोवर के किनारे पड़ाव डाला । अरविंद मुनि एक तरफ बैठकर कायोत्सर्ग करने लगे ।

उस समय मरुभूति हाथी अपनी हथनियों के साथ जलक्रीड़ा के लिये सरोवर आया । पानी में खूब कल्लोलें कर वापिस चला । सरोवर के किनारे पड़ाव को देखकर वह उसी तरफ झपटा । कइयों को पैरों तले रौंदा और कइयों को सूंड में पकड़कर फैंक दिया । लोग इधर-उधर अपने प्राण लेकर भागने लगे । अरविंद मुनि ध्यान में खड़े ही रहे । हाथी उनपर झपटा, किन्तु उनके पास जाकर सहसा रुक गया । मुनि के तेज के सामने हाथी की क्रूरता जाती रही । वह मुनि के पास आ उन्हें अनिमेष दृष्टि से निहारने लगा ।

मुनि अवधिज्ञान से उसके पूर्वभव को जानकर बोले-गजराज अपने पूर्वभव को याद कर ! मुझ अरविंद को पहचान । तू पूर्वभव में मेरे पुरोहित विश्वभूति का पुत्र और कमठ का बड़ा भाई था। आर्तध्यान से मरकर तू तिर्यञ्च हो गया है। हाथी चमका; उसे पूर्व-भव याद आया । जातिस्मरण ज्ञान से उसने अपने पूर्व को अच्छी तरह से जान लिया । मुनि का उपदेश सुनकर गजराज मरुभूति ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये । कमठ की स्त्री वरुणा भी हथिनी हुई थी । उसने भी सारी बाते सुनीं और उसे भी जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होगया । सेठ के साथ के अनेक मनुष्य तप का प्रभाव देखकर मुनि हो गये । अरविंदमुनि सार्थवाह के काफिले के साथ अष्टापद की ओर विहार कर गये ।

अब मरुभूति हाथी श्रावक बन गया । वह सूर्य के ताप से तपा हुआ पानी पीता । सूखीघास और सूखेपत्ते खाता । ब्रह्मचर्य से रहता और किसी प्राणी को नहीं सताता । रात-दिन वह सोचता मैंने कैसी भूल की कि मनुष्य भव पाकर उसे व्यर्थ खो दिया। अगर मैं संयमी बन जाता तो पशुजन्म में नहीं आता। इसप्रकार विचार करता हुआ वह संयमपूर्वक काल यापन करने लगा । शुष्क आहार से उसका शरीर क्षीण हो गया ।

एक दिन वह पानी पीने के लिये सरोवर में गया । वहाँ वह दलदल में फँस गया। उससे निकला नहीं गया । उधर कमठ के उस हत्यारे काम से सारे तापस उससे नाराज होगये उन्होंने उसे आश्रम से निकाल दिया । वह भटकता हुआ मरकर, कुक्कुट साँप हुआ । वह सर्प वहाँ पहुँचा और उसने हाथी को प्राणघातक डंक मारा । हाथी के सारे शरीर में जहर व्याप्त हो गया । अपने मन को समभाव में स्थिर रखकर वह मरा और सहस्रारकल्प में महर्द्धिक देवता बना । वरुणा का जीव हथिनी भी थोड़ेसमय बाद मृत्यु पाकर दूसरे देव-लोक में देवी बनी। पूर्वभव के स्नेह के कारण वह सहस्रार देवलोक

में उत्पन्न हुए मरुभूति देव के साथ ही क्रीड़ा करती हुई अपना सुख-मय जीवन बिताने लगी ।

कमठ का जीव भी मरकर पांचवें नरक में १७ सागरोपम की आयुवाला नारकी हुआ ।

चौथा और पाँचवाँ भव—

पूर्व विदेह के सुकच्छ विजय में तिलका नाम की नगरी थी। उस नगरी में विद्युत्वेग नाम का खेचर राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'कनकतिलका' था। मरुभूति का जीव सहस्रार कल्प से च्युत होकर महारानी कनकतिलका के उदर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। गर्भकाल के पूर्ण होने पर रानी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। उसका नाम किरणवेग रखा। युवा होने पर पद्मा-वती आदि सुन्दर राजकुमारियों के साथ उसका विवाह हुआ। कुछ कालके बाद विद्युत्वेग ने किरणवेग को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की।

किरणवेग को किरणतेज नाम का पुत्र हुआ। एक बार सुरगुरु नाम के आचार्य पधारे। उनका उपदेश सुनकर किरणवेग को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

मुनि किरणवेग एक बार हिमगिरि पर्वत की गुफा में ध्यान कर रहे थे। इतने में जिस कुक्कुट सर्प नें मरुभूति हाथी को काटा था वही पापी धूमप्रभा नरक से निकल कर अजगर के रूप में उत्पन्न हुआ। वह घूमता हुआ मुनिराज के पास आया। मुनिराज को देखते ही उसके मन में वैर जागृत हो गया। वह उन्हें निगल गया। सम-भाव से मरकर मुनि बारहवें देवलोक में जम्बूद्रुमावर्त नाम के विमान में बाईस सागरोपम की स्थिति वाले देव बने।

कमठ का जीव अजगर की योनि में दावाग्नि में जलकर मरा और तमःप्रभा नाम के नरक में उत्पन्न हुआ।

छट्ठा और सातवाँ भव

किरणवेग मुनि का जीव स्वर्गीय सुख का अनुभव करते हुए अपनी आयु की समाप्ति पर जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेहक्षेत्र में सुगन्ध विजय की राजधानी अश्वपुर में वहाँ के राजा वज्रवीर्य और रानी लक्ष्मीवती के वज्रनाभ नाम का पुत्र हुआ। युवावस्था में वज्रनाभ का का विवाह हुआ। कुछ काल के बाद वज्रवीर्य राजा ने वज्रनाभ को राज्य देकर दीक्षा लेली।

वज्रनाभ को कुछ काल के बाद एक पुत्र हुआ उसका नाम चक्रायुध रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तब राजा वज्रनाभ ने चक्रायुध को राज्य देकर क्षेमंकर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण करली।

कमठ का जीव चिरकाल तक नरक का दुःख भोगकर सुकच्छ विजय के ज्वलनगिरि के भयंकर जंगल में कुरंग नामक भील हुआ। वह भील वन के प्राणियों के साथ अत्यन्त क्रूरतापूर्वक वर्ताव करने लगा।

एकसमय वज्रनाभ मुनि उसी वन में सूर्य की आतापना ले रहे थे। कुरंग भील उधर से निकला। मुनि को देखते ही उसके मन में वैर भड़क उठा। उसने ध्यानस्त मुनि पर बाण चलाया और उन्हें मार डाला। समभाव से मरकर वज्रनाभ मुनि ग्रैवेयक में ललितांग नाम के देव हुए।

कुरंग भील चिरकाल तक पापकर्म कर मरा और सातवे नरक में उत्पन्न हुआ।

आठवाँ भव—

जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में पुराणपुर नाम का नगर था। उसमें वज्रबाहु नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुदर्शना था। वज्रनाभ मुनि का जीव देवआयु पूरी कर सुदर्शना की कुक्षि में पुत्र रूप से जन्मा। उसका नाम सुवर्णबाहु रखा गया।

जब सुवर्णबाहु युवा हुए तब उनके पिता वज्रबाहु ने उन्हें राज्यगद्दी पर बिठला कर दीक्षा ले ली।

एक दिन सुवर्णबाहु घोड़े पर सवार होकर घूमने निकला। घोड़ा बेकाबू हो गया और उन्हें एक भयानक जंगल में ले गया वहाँ एक सुन्दर सरोवर के किनारे गालवऋषि का आश्रम था। राजा विश्राम लेने के लिये आश्रम में गया। वहाँ पद्मा नाम की राजकुमारी तापस कन्याओं के साथ रहती थी। राजा की दृष्टि उस पर पड़ी। वह उसके सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हो गया। राजा ने गालवऋषि से पद्मा की मांग की। गालवऋषि ने बड़े प्रेम से पद्मादेवी का विवाह सुवर्णबाहु से कर दिया। कुछ समय तक वहाँ रहकर सुवर्णबाहु अपनी राजधानी पुराणपुर लौट आया।

राज्य करते हुए सुवर्णबाहु की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। बाद में क्रमशः अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हो गये। रत्नों की सहायता से सुवर्णबाहु ने छः खण्ड पर विजय प्राप्त कर ली। वे चक्रवर्ती बनकर पृथ्वी पर एकछत्र राज्य करने लगे।

एक बार जगन्नाथ तीर्थङ्कर का पुराणपुर में आगमन हुआ। सुवर्णबाहु परिवार सहित उनके दर्शन करने गया। वहाँ उपदेश सुनकर उन्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। अपने पूर्वभव को देख उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्य भार दे दिया और जगन्नाथ तीर्थङ्कर के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। वहाँ कठोर तप करके उन्होंने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया।

कमठ का जीव नरक से निकल कर क्षीरवगा वन में सिंह रूप से उत्पन्न हुआ। वह भ्रमण कर रहा था। दो दिन से उसे आहार नहीं मिला था। उधर सुवर्णबाहु मुनि उधर से आ रहे थे। मुनि को सामने आता देख वह उन पर झपटा। मुनि ने उसी समय संथारा कर लिया। सिंह ने उन्हें मार डाला। समभाव से सुवर्णबाहु ने देह को छोड़ा। मरकर वे महाप्रभ नामके विमान में महर्द्धिक देव बने।

कमठ का जीव सिंह मरकर चौथी नरक में पैदा हुआ।

नौवाँ भव

भगवान पार्श्वनाथ का जन्म

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में काशीदेश में वाराणसी नाम की नगरी थी। वह विशाल नगरी उच्च प्रासादों भवनों और ध्वजा पताकाओं से सुशोभित थी। सुशोभित बाजारों, बाग-बगीचों उद्यानों और स्वच्छ जलाशयों से दर्शनीय थी और धनधान्य से परिपूर्ण थी।

उस नगर पर अश्वसेन महाराजा का राज्य था। वे प्रतापी, शूर-वीर, न्यायप्रिय राजाओं के अनेक गुणों से युक्त थे। उनके प्रबलतेज के सामने अन्य राजा और ईर्ष्यालु सामन्त दबे रहते और नत मस्तक होकर उनकी कृपा के इच्छुक रहते थे। उनके राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखपूर्वक निवास करती थी। महाराजा अश्वसेन के वामादेवी नाम की रानी थी वह रूप लावण्य एवं सुलक्षणों से सुशोभित थी। महाराज और महारानी में प्रगाढ़ प्रीति थी। उस समय महाप्रभ विमान में सुवर्ण-बाहु का जीव अपनी २२ सागरोपम की सुखमय आयुपूर्णकर चुका था। वह वहाँ से चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन विषाखा नक्षत्र में च्यवकर महारानी (वामादेवी) की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। महारानी ने चौदह महा-स्वप्न देखे। महारानी ने स्वप्नों की बात महाराजा से कही। स्वप्न सुनकर महाराजा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—महादेवी! आपकी कुक्षि में कोई लोकोत्तम महापुरुष आया है। वह त्रिलोक पूज्य और परमरक्षक होगा।

गर्भकाल की समाप्ति के बाद पौष कृष्णा दशमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में नीलवर्णी सर्प लक्षण वाले एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इन्द्रादि देवों ने आकर सुमेरु पर्वत पर भगवान का जन्मोत्सव किया। महाराजा अश्वसेन ने भी जन्मोत्सव मनाया। जब भगवान गर्भ में थे उस समय एक भयंकर सर्प फूत्कार करता हुआ माता की बगल से निकल गया था, इसलिये बालक का नाम पार्श्वकुमार रखा गया।

पार्श्वकुमार ने क्रमशः शैशव को पार करके यौवन में प्रवेश किया। वे अब अपने पिता के राज्यकार्य में हाथ बटाने लगे।

एक बार एक दूत राजा अश्वसेन के दरबार में आकर बोला— देव! मै कुशस्थल नगर के राजा नरवर्मा का दूत हूँ। महाराज नरवर्मा अपने पुत्र प्रसेनजित को राज्य सौंपकर दीक्षित हो गये हैं। राजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम की पुत्री है। वह अत्यन्त रूपवती है। एकबार प्रभावती ने राजकुमार पार्श्वनाथ की प्रशंसा सुनी और उसने अपना जीवन उनके चरणों में समर्पण करने का संकल्प कर लिया। वह रात दिन उन्हीं के ध्यान में लीन हो एक त्यागिनी की तरह जीवन बिताने लगी। राजा प्रसेनजित को जब ये समाचार मिले तो उसने प्रभावती को स्वयंवरा की तरह बनारस भेजने का संकल्प किया। कलिंग देश के यवनराज को जब इस बात का पता चला तो वह प्रभावती को प्राप्त करने के लिये सेनासहित कुशस्थल पर चढ़ आया है। उसने अपनी विशाल सेना से सारे नगरको घेर लिया है। महाराज प्रसेनजित इस कार्य में आपकी सहायता चाहते हैं। अब आप जैसा उचित समझें—करें!

दूत के मुख से यह बात सुनकर महाराज अश्वसेन यवनराज की धृष्टता पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने दूत से कहा—दूत! तुम जाओ! मैं यवनराज को पराजित करने के लिये शीघ्र ही सेना के साथ आ रहा हूँ। दूत महाराज का सन्देश लेकर चला गया। महाराज अश्वसेन ने अपनी सेना को युद्ध प्रयाण का आदेश दे दिया। महाराज स्वयं युद्ध के लिये तैयार हो गये।

जब पार्श्वकुमार को इस बात का पता चला तो वे स्वयं पिता के पास आये और कहने लगे—पिताजी! मेरे होते हुए आपको युद्धस्थल पर जाने की जरूरत नहीं। पिता ने कहा—पुत्र! मै जानता हूँ कि तुम महान् पराक्रमी हो। केवल यवनराज को ही नहीं किन्तु तीन

जगत को जीतने का तुम सामर्थ्य रखते हो। फिर भी पुत्र! मैं तुम्हें घर पर क्रीड़ा करते हुए देखकर ही अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ। तुम्हें इस समय युद्धस्थल पर जाने की जरूरत नहीं पार्श्वकुमार ने कहा–युद्धस्थल भी मेरे लिये क्रीड़ारूप ही है। अतः पिताजी! मुझे जाने की आज्ञा दें। पार्श्वकुमार के विशेष आग्रह को देखकर पिता ने उन्हें युद्धस्थल पर जाने की आज्ञा दे दी।

पार्श्वकुमार ने अपनी विशाल सेना के साथ कुशस्थल की ओर प्रयाण कर दिया। चलतेचलते वे कुशलस्थल पहुँच गये। वहाँ उन्होंने अपनी छावनी डालदी। तुरंत ही दूत को बुलाकर उसे यवनराज के पास भेजा और कहलाया–अगर तुम अपनी खैरियत चाहते हो तो शीघ्र ही अपनी सेना के साथ वापिस लौट जाओ वरना युद्ध के लिये तैयार हो जावो। पार्श्वकुमार का सन्देश सुनकर प्रथम तो यवनराज अत्यन्त क्रुद्ध हुआ किन्तु उसे जब पार्श्वकुमार की शक्ति का पता चला तो वह नम्र हो गया। उसने पार्श्वकुमार के साथ सन्धि करली और अपनी सेना के साथ वापिस लौट चला।

घेरा उठ जाने पर कुशस्थल के निवासी बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। शहर के हजारों निवासियों ने अपने रक्षक पार्श्वकुमार का स्वागत किया। राजा प्रसेनजित भी अनेकतरह की भेंटे लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना करने लगा–कुमार! आप मेरी कन्या को ग्रहण कर मुझे उपकृत करें! पार्श्वकुमार ने कहा–मै पिताजी की आज्ञा से कुशस्थल का रक्षण करने के लिये आया था विवाह करने नहीं अतः आपके इस अनुरोध को पिता की बिना आज्ञा के स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।

पार्श्वकुमार अपनी सेना के साथ बनारस लौट आये। प्रसेनजित भी अपनी कन्या को ले कर बनारस गया। महाराज अश्वसेन ने पार्श्वकुमार का विवाह प्रभावती के साथ कर दिया। पतिपत्नी आनन्द के साथ रहने लगे।

एकदिन पार्श्वकुमार अपने झरोखे में बैठे हुए थे उस समय उन्होंने देखा-लोगों के टोले के टोले बनारस के बाहर जा रहे हैं। उनमें किसी के हाथ में पुष्पों के हार, किसी के हाथ में खाने की वस्तु और किसी के हाथ में पूजा की सामग्री थी। पूछनेपर पता चला कि नगर के बाहर कठ नाम का तपस्वी आया है और वह पंचाग्नितप की कठोर तपस्या कर रहा है। उसी के लिये लोग भेट ले जारहे हैं। पार्श्वकुमार भी उस तपस्वी को देखने के लिये गये।

यह कठतपस्वी कमठ का जीव था। जो सिंह के भव से मरकर अनेक योनियों में परिभ्रमण करता हुआ एक गांव में एक गरीब ब्राह्मण के घर जन्मा। उसका जन्म होनेके थोड़े दिन के बाद उसके माता-पिता की मृत्यु होगई। वह अनाथ बालक कठ तापसों के सत् संग में आया और तापस बन गया तापस बनकर वह कठोर तप करने लगा। वह अपने चारों ओर आग तपाकर बीच में बैठता और सूर्य की आतापना लेता। उसकी कठोर तपश्चर्या की लोग बड़ी तारीफ करने लगे।

पार्श्वकुमार कठ के पास पहुँचे। उन्होंने अवधिज्ञान से देखा कि तापस की धूनी के एक लक्कड़ में नाग का जोड़ा झुलस रहा है। वे बोले-तापस! यह तुम्हारा कैसा तप कि जिसमें अंशतः भी दया धर्म नहीं। तुम्हारा यह अज्ञानतप मुक्ति का कारण नहीं हो सकता। जिसमें दया है वही वास्तव में धर्म है। दयाशून्य धर्म विधवा के शृङ्गार जैसा निरर्थक है। हे तापस! यह जो तुम पंचाग्नि तप, तप रहे हो वह वास्तव में हिंसा ही कर रहे हो। इस प्रकार के अज्ञानतप से तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता।

कठ बोला-राजकुमार! धर्म का स्वरूप क्या है यह तुम नहीं जान सकते। मैं जो कर रहा हूँ वह ठीक कर रहा-हूँ और तुम जो मुझ पर हिंसा का आरोप लगाते-हो यह तुम्हारी निरी-मूर्खता ही है।

पार्श्वकुमार ने कहा-तपस्वी ठहरो? अभी बताये देता हूँ कि तुम

इस अज्ञानतप में कितनी बड़ी हिंसा कर रहे हो। पार्श्वकुमार ने उसी समय अपने आदमियों को धूनी में से लक्कड़ खींचने की आज्ञा दी। सेवकों ने धूनी में जलता हुआ एक बड़ा काष्ठ खींच लिया। पार्श्वकुमार ने लक्कड़ को चीरकर उसमें अधजले नाग के जोड़े को बताया। कुमार ने **'नमोक्कार मंत्र'** सुनाकर नागराज को संथारा करवा दिया। उसके प्रभाव से नागराज मरकर भवनपति देवनिकाय में धरण नाम का इन्द्र हुआ और नागिनी मर कर उसकी पद्मावती नाम की देवी बनी।

अर्धमृत सर्प को देखकर वह अत्यन्त लज्जित हुआ। पार्श्व-कुमार पर उसे अत्यन्त क्रोध आया। कठ की प्रतिष्ठा में धक्का लग गया। लोग अब कठ की प्रशंसा की बजाय उसकी निंदा करने लगे। कुमार के विवेक एवं ज्ञान की तारीफ करने लगे। कुछ समय के बाद कठ मरकर अज्ञानतप के प्रभाव से मेघमाली नाम का तापस बना।

दीक्षा—

भगवान पार्श्वनाथ के संसारत्याग का समय निकट आ रहा था। लोकान्तिक देव आपकी सेवा में उपस्थित होकर अपने कल्प के अनुसार निवेदन करने लगे—"हे भगवन्! अब आप धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करिये" इतना कह कर और प्रणाम करके वे रवाना हो गये। इसके बाद प्रभु ने वर्षीदान दिया। वर्षीदान की समाप्ति के बाद इन्द्रादि देव आये और उन्होंने सुन्दर शिविका बनाई। उसका नाम विशाला था। सुन्दर वस्त्राभूषण पहनकर भगवान शिविका पर आरूढ़ हुए। भगवान नगर के बाहर आश्रमपद नामक उद्यान में पधारे। वहाँ पौषवदि एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षाग्रहण करते ही भगवान को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। इन्द्रादि देवोंने भगवान का दीक्षा महोत्सव किया।

दूसरे दिन कोकट गांव में धन्य नामक गृहस्थ के घर परमान्न से पारणा किया। उस समय धन्य गृहस्थ के घर देवों ने वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट किये। भगवान ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया।

भगवान ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए एक वन में सूर्यास्त के समय ठहर गये। वहाँ तापसों का का आश्रम था। भगवान एक जीर्ण कूप के समीप वृक्ष के नीचे खड़े रहकर ध्यान करने लगे। उस समय कठ तापस का जीव मेघमाली देव की दृष्टि भगवान पर पड़ी। तत्काल उसे अपना पूर्व वैर याद आ गया। उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव को देख लिया। अपने वैर का बदला लेनेकेलिये वह भगवान के पास आया और सांप, बिच्छू, शेर, चीते, हाथी आदि अनेक क्रूर रूप बनाकर भगवान को कष्ट देने लगा। गर्जनातर्जना, फूत्कार-चीत्कारें कर भगवान को डराने लगा परन्तु पर्वत के समान स्थिर प्रभु जरा भी विचलित नहीं हुए। वे मेरुपर्वत की तरह अडोल और अकम्प रहे। जब इन उपद्रवों से भगवान विचलित नहीं हुए तो उसने आकाश में भयंकर मेघ बनाये और उन्हें मूसलाधार बरसाने लगा। आकाश में कालजिह्वा के समान भयंकर बिजली चमकाने लगा और कानों के पर्दों को फाड़ने वाली गर्जना करने लगा।

मूसलाधार वर्षा होने लगी। बड़े-बड़े ओले बरसने लगे। सर्वत्र जल ही जल दिखाई देने लगा। पानी बढ़ते-बढ़ते भगवान की कमर और छाती से भी आगे नाक तक जा पहुँचा तब धरणेन्द्र का आसन काम्पायमान हुआ। अपने आसन कम्पायमान होने का कारण जानकर वह तत्काल पद्मवती के साथ भगवान के पास आया। उसने सुवर्ण का कमल बनाया और भगवान को उस पर रख दिया। नाग का रूप बनाकर धरणेन्द्र ने भगवान पर फन फैला दिये। धरणेन्द्र की रानियाँ प्रभु के आगे नृत्यकर अपनी भक्ति प्रदर्शित करने लगीं।

धरणेन्द्र मेघमाली से कहने लगा-अरे दुष्ट-अब तू अपनी यह उपद्रवी लीला बंद कर। अगर तू अपनी इसी प्रकार की प्रवृत्ति चालू रखेगा तो उसका तेरे लिये भयंकर परिणाम होगा।

धरणेन्द्र के मुख से यह बात सुनकर मेघमाली चौंका। वह घबराया हुआ नीचे उतरा और अपने अपराध की क्षमा मांगता हुआ प्रभु के चरणों में गिरा। भगवान तो समभावी थे। उन्हें न रोष ही था और न राग। वे तो अपने ध्यान में ही लीन थे। भगवान को उसने उपसर्ग रहित कर दिया। अत्यन्त नम्र भाव से भगवान की भक्तिकर वह अपने स्थान पर चला गया। धरणेन्द्र भी भगवान की भक्ति कर चला गया।

दीक्षाग्रहण करने के चौरासी दिन के बाद भगवान विचरण करते हुए बनारस के आश्रमपद नामक उद्यान में पधारे। वहाँ धातकी वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। चैत्रवदि चतुर्थी के दिन विशाखा नक्षत्र में ध्यान की परमोच्चस्थिति में भगवान को केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवों ने आकर भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। देवों ने समवशरण की रचना की। महाराज अश्वसेन के साथ उनके प्रजाजन भी भगवान की देशना सुनने के लिये आये। भगवान ने देशना दी। उनकी देशना सुनकर अपने छोटे पुत्र हस्तिसेन को राज्य देकर दीक्षा ले ली। माता वामादेवी ने एवं महारानी प्रभावती ने भी दीक्षा ग्रहण की।

भगवान के शासन में पार्श्व नामक शासन देव और पद्मावती नाम की शासन देवी हुई।

भगवान के परिवार में शुभदत्त, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्म, सोम, श्रीधर, वारिषेण, भद्रयश, जय और दसवें गणधर विजय थे। दसगण धर, १६००० साधु, ३८००० हजार साध्वियाँ, ३५० चौदह पूर्वधर, १ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, ७५० मन.पर्यय ज्ञानी, १००० केवली, ११ सौ वैक्रियलब्धिधर, ६०० वादी, १ लाख ६४ हजार श्रावक एवं ३ लाख ७० हजार श्राविकाएँ हुईं।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान **समेतशिखर** पर पधारे। वहाँ उन्होंने तेतीस मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। श्रावण शुक्ला ८ के दिन विशाखा नक्षत्र में एकमास का अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया। भगवान की ऊँचाई नौ हाथ थी।

भगवान की कुल आयु १०० बरस की थी। उसमें तीसवर्ष गृहस्थ-पर्याय में एवं ७० वर्ष साधु-पर्याय में व्यतीत किये। नेमिनाथ के निर्वाण के बाद ८३ हजार सात सौ ५० वर्ष बीतनेपर पार्श्वप्रभु का निर्वाण हुआ।

२४. भगवान महावीर और उनके सत्ताईस भव

प्रथम और द्वितीय भव—

जम्बूद्वीप के पश्चिमविदेह में महावप्र नामक विजय में जयन्ती नाम की नगरी थी। वहाँ शत्रुमर्दन नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्य में पृथ्वीप्रतिष्ठान नाम के गांव में नयसार नाम का ग्रामाधिकारी रहता था।

एक समय वह राजाज्ञा पाकर काष्ठ लिवाने के लिये गाड़ियाँ लेकर जंगल में गया। मध्यान्ह का समय हुआ और नयसार तथा उसके साथी दोपहर के भोजन की तैयारी करने लगे। ठीक उसीसमय वहाँ एक साधु समुदाय आया।

साधु किसी एक सार्थ के संग चल रहे थे और सार्थ के आगे निकल जानेपर मार्ग भूलकर भटकते हुए दोपहर को उस प्रदेश में आये जहाँ नयसार की गाड़ियों का पड़ाव था।

मुनियों को देखते ही नयसार का हृदय दयार्द्र हो गया। वह उठा और आदरपूर्वक श्रमणों को अपने पास बुलाकर निर्दोष आहार पानी से उनका आतिथ्य किया और साथ चलकर मार्ग बताया। मार्ग में चलते मुनियों ने नयसार को उपदेश दिया। नयसार पर मुनि के

उपदेश का असर पड़ गया । साधुओं को मार्ग बताकर नयसार वापस लौट आया ।

मुनियों के उपदेश से नयसार ने सम्यक्त्व प्राप्त किया । मरकर वह सौधर्म देवलोक में पल्योपम की आयुवाला देव बना ।

तृतीय और चतुर्थ भव—

देवगति का आयुष्य पूर्णकर नयसार का जीव तीसरेभव में चक्रवर्ती भरत का पुत्र मरीचि नामक राजकुमार बना ।

युवावस्था में मरीचि ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की । कालान्तर में वह श्रमणमार्ग से च्युत होकर त्रिदण्डी संन्यासी बन गया ।

एकसमय भगवान ऋषभदेव ने भरत चक्रवर्ती से कहा कि तेरा पुत्र मरीचि २४वाँ तीर्थङ्कर महावीर होगा । इतना ही नहीं, तीर्थङ्कर होने से पहले वह भारतवर्ष में त्रिपृष्ठ नाम का वासुदेव होगा उसके बाद पश्चिमविदेह में प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती होगा और अन्त में चरमतीर्थङ्कर महावीर होगा ।

भगवान के मुख से भावी वृतांत सुनकर भरत मरीचि के पास जाकर वन्दनपूर्वक बोला—मरीचि ! मैं तुम्हारे इस परिव्राजकत्व को वन्दन नहीं करता पर तुम अन्तिम तीर्थङ्कर होने वाले हो यह जानकर तुम्हें वन्दन करता हूं । तुम इसी भारतवर्ष में त्रिपृष्ठ वासुदेव, महाविदेह में प्रियमित्र चक्रवर्ती और फिर वर्द्धमान नामक २४वें तीर्थङ्कर होंगे ।

भरत की बात से मरीचि बहुत प्रसन्न हुआ । वह त्रिदण्ड को उछालता हुआ बोला—अहो ! मै वासुदेव चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर होऊँगा बस मेरे लिये इतना ही बहुत है ।

मैं वासुदेवों में पहला ! पिता चक्रवर्तियों में पहले ! और दादा तीर्थङ्करों में पहले । अहो ! मेरा कुल कैसा श्रेष्ठ है !

इस कुलाभिमान से मरीचि ने नीचगोत्र का बन्धन किया ।

८४लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण करके मरीचि ब्रह्म देवलोक में देव बना ।

पाँचवाँ और छठा भव—

ब्रह्म देवलोक में दस सागरोपम का आयुष्य पूर्णकर नयसार का जीव कोल्लागसन्निवेश में कौशिक नामक ब्राह्मण हुआ । उसने ८० लाख पूर्व वष का आयुष्य पाया था । वहाँ से मरकर सौधर्म देवलोक में देव हुआ और वहाँ से चवकर नयसार के जीवने अनेक भव किये ।

सातवाँ और आठवाँ भव—

सातवे भव में नयसार का जीव थुना नगरी में पुष्यमित्र नामक ब्राह्मण हुआ । उसका आयुष्य ७२ लाख पूर्व का था । गृहस्थाश्रम में कुछ काल तक रहकर वह परिव्राजक बना और आयुष्य पूर्णकर सौधर्म देवलोक में देव हुआ ।

नवाँ और दसवाँ भव-

देवलोक का आयु पूर्णकर नयसार का जीव चैत्यसन्निवेश में अग्निद्योत नामक ब्राह्मण हुआ । अग्निद्योत भी अन्त में परिव्राजक बना और चौसठ लाख पूर्व का आयुष्य समाप्त करके ईशान देवलोक में मध्यम स्थितिवाला देव बना ।

ग्याहरवाँ और बारहवाँ भव-

ईशानदेवलोक से च्युत होकर नयसार का जीव दसवें भव में मन्दिरसन्निवेश में अग्निभूति ब्राह्मण हुआ । अन्त में उसने परिव्राजक दीक्षा ग्रहण की और छप्पनलाख पूर्व की आयु पूर्णकर सनत्कुमार देवलोक में देव बना ।

तेरहवाँ और चौदहवाँ भव-

सनत्कुमार देवलोक की आयु पूर्ण कर नयसागर का जीव श्वेताम्बिका नगरी मे भारद्वाज नामक ब्राह्मण हुआ । भारद्वाज ने परिव्राजक

दीक्षा ग्रहण की और चवालिसलाख वर्ष पूर्व की आयु पूर्णकर माहेन्द्र कल्प में देव हुआ ।

माहेन्द्र कल्प के बाद नयसार ने अनेक छोटे छोटे भव किये।

पन्द्रहवाँ और सोलहवाँ भव-

तदनन्तर नयसार का जीव राजगृह में स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ । अन्त में परिव्राजक धर्म स्वीकार करके आयुष्य समाप्ति के बाद ब्रह्मदेव देवलोक में देव हुआ ।

सत्रहवाँ और अठारहवाँ भव-

सोलहवे भव में नयसार का जीव राजगृह में विश्वनन्दी राजा के भाई विशाखभूति का पुत्र विश्वभूति राजकुमार हुआ । राजा विश्वनन्दी का विशाखनन्दी नाम का पुत्र था । विशाखनन्दी के व्यवहार से दुःखी होकर विश्वभूति ने आर्यसंभूत के पास दीक्षा ग्रहण की । कठोर तप किया । अन्तमें विशाखनन्दी से अपमान का बदला लेने के लिये इन्होंने निदान किया । एक करोड वर्ष आयुष्य के पूर्ण होने पर विश्वभूतिमुनि महाशुक्र देवलोक में देव बने ।

उन्नीस, बीस, इक्कीस और बाइसवाँ भव—

महाशुक्र देवलोक से निकल कर नयसार का जीव अपने निदान के फलस्वरूप पोतनपुर में त्रिपृष्ठ नामक वासुदेव हुआ । इनके पिता का नाम प्रजापति था । इनके लघुभ्राता अचल थे ।

त्रिपृष्ठ और अचल युवा हुए । युवावस्था में एक बार त्रिपृष्ठ वासुदेव ने एक बलिष्ठ सिंह को अपने दोनों हाथों में पकड़ कर चीर डाला और अपने प्रतिशत्रु अश्वग्रीव को उसी के चक्र से मार डाला था । प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के मारेजाने पर ये भरतार्द्ध के स्वामी वासुदेव बने ।

८४ लाख वर्ष का आयुष्य पूरा करके त्रिपृष्ठ वासुदेव सातवीं नरक में उत्पन्न हुए । वहाँ से निकल कर नयसार सिंहयोनि में पैदा हुआ । वहां से मरकर नरक में उत्पन्न हुआ ।

तेईसवाँ और चोवीसवाँ भव-

तेईसवें भव में नयसार का जीव पश्चिमविदेह की राजधानी मूका नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती राजा हुआ। उसने संसार से विरक्त होकर प्रोष्ठिलाचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य भोगकर चौवीसवें भव में महाशुक्र कल्प के सर्वार्थ नामक देव विमान में देव हुआ।

पच्चीसवाँ और छब्बीसवाँ भव-

सर्वार्थ सिद्ध विमान से निकल कर नयसार का जीव छत्रा नगरी के राजा जितशत्रु का पुत्र नन्दन नामक राजकुमार हुआ। २४लाख वर्ष तक राज्यावस्था में रहने के बाद नन्दन राजा ने प्रोष्ठिलाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। और ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। उसके बाद वे नन्दनमुनि कठोर तप करने लगे। उन्होंने एकलाख वर्ष तक निरन्तर मासखमन की तपस्या की। जिनकी संख्या एक लाख आठ हजार थी। इसतरह निरन्तर कठोर तप करके एवं अर्हत, सिद्ध, संघ, धर्मोपदेशक, वृद्ध, वहुश्रुत, तपस्वी, आर्हतादि, वात्सल्य आदि तीर्थङ्कर नामकर्म के उपार्जन करनेवाले वीस स्थानों की आराधना की और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

अन्त में नन्दनमुनि ने अनशन किया और समाधि पूर्वक देह छोड़कर प्राणतकल्प के पुष्पोत्तर विमान में महर्द्धिक देवपद प्राप्त किया।

सत्ताईसवाँ भव

भगवान महावीर का जन्म

भारत के इतिहास में विहारप्रान्त का गौरवपूर्ण स्थान है। इसी गौरव-गरिमा से सम्पन्न प्रान्त में वैशाली नामकी नगरी थी। काल के अप्रतिहत प्रभाव से आज वैशाली का वह वैभव नहीं रह गया है; फिर भी उसके खण्डहर आज भी विद्यमान हैं। गङ्गातट के उत्तरीय भाग अर्थात् हाजीपुर सवडिवीजन से करीब १२-१४ मील उत्तर में

"बसाढ़" नामक ग्राम है जो आज भी मौजूद है। इस गांव के उत्तर में एक बहुत बड़ा खण्डहर है। उसे लोग राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। इस गढ़ के समीप एक विशाल अशोकस्तंभ है। पुरातत्ववेत्ताओं के मत से यही लिच्छवियों की प्रतापभूमि वैशाली है।

वैशाली नगरी के यह ध्वंसावशेष करीब ढाईहजार वर्ष पहले की अनेक सुखद स्मृतियाँ जागृत करते हैं। यही गौतमबुद्ध और भगवान महावीर जैसे महान् क्रान्तिकारी पुरुषों की कर्मभूमि रही है, जिनके ज्ञान आलोक से सारा विश्व आज भी प्रकाशित है।

वैशाली नगरी का नाम ही सूचित कर रहा है कि किसी जमाने में वह बड़ी विशाल नगरी थी। रामायण में बतलाया गया है कि वैशाली बड़ी विशाल, रम्य, दिव्य और स्वर्गोपम नगरी थी। जैनआगमों में उसका वर्णन बड़ा भव्य है। बारहयोजन लम्बी और नौयोजन चौड़ी, सुन्दर रमणीय प्रासादों से सम्पन्न धन-धान्य से समृद्ध और सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से युक्त, वैशाली अत्यन्त दर्शनीय नगरी थी। यह नगरी तीन बड़ी दिवारों से घिरी हुई थी। किले में प्रवेश करने के लिये तीन विशाल द्वार थे। संसार के समस्त गणतन्त्रों से पुरानी गणतन्त्र-शासन-प्रणाली उस समय वैशाली में प्रचलित थी। वहाँ का गणतन्त्र विश्व का सबसे पुराना गणतन्त्र था। उसे जन्म देने का श्रेय इसी नगरी को है। हैहय वंश के राजा चेटक इस गण-तन्त्र के प्रधान थे। इनके नेतृत्व में वैशाली की ख्याति, समृद्धि एवं वैभव चरम सीमा तक पहुँच चुका था।

तत्कालीन भारत के प्रसिद्धराजा शतानिक, चम्पा के राजा दधि-वाहन तथा मगध के सम्राट् बिम्बिसार, अवंती के राजा चण्डप्रद्योतन, सिन्धुसौवीर के सम्राट् उदयन और भगवान महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन महाराजा चेटक के दामाद होते थे। इनके शासनकाल में प्रजा अत्यन्त सुखी थी।

वैशाली के पश्चिमभाग में गण्डकी नदी बहती थी। उसके पश्चिमतट पर स्थित ब्राह्मणकुण्डपुर, क्षत्रियकुण्डपुर, वाणिज्यग्राम, कमरिग्राम और कोल्लागसन्निवेश जैसे अनेक उपनगर वैशाली की समृद्धि बढ़ा रहे थे।

ब्राह्मणकुण्डपुर और क्षत्रियकुण्डपुर क्रमशः एक दूसरे के पूर्व और पश्चिम में थे। उन दोनों के दक्षिण और उत्तर ऐसे दो-दो भाग थे। दोनों नगर पास-पास में थे। इनके बीच 'बहुसाल' नाम का उद्यान था।

ब्राह्मणकुण्ड का दक्षिण विभाग ब्रह्मपुरी के नाम से प्रसिद्ध था। उसमें अधिकांश ब्राह्मणों का ही निवास था। इसका नायक कोडाल-गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण था। वह वेदादि शास्त्रों में पारंगत था। उसकी स्त्री देवानन्दा जालन्धर गोत्रीया ब्राह्मणी थी। ऋषभदत्त और देवानन्दा भगवान पार्श्वनाथ के शासनानुयायी थे।

उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर में करीब ५०० घर ज्ञातवंशीय क्षत्रियों के थे। उनके नायक थे महाराजा सिद्धार्थ। वे सर्वाधिकार सम्पन्न राजा थे। इनका काश्यप गोत्र था। महाराजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला वैशाली के सम्राट् चेटक की बहन एवं वासिष्ठ गोत्रीया क्षत्रियाणी थी। वे दोनों भगवान पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा को माननेवाले थे। इनके ज्येष्ठपुत्र का नाम नन्दिवर्धन था। नन्दिवर्धन का विवाह वैशाली के राजा चेटक की पुत्री जेष्ठा के साथ हुआ था।

महामुनि नन्दन का जीव 'प्राणत' कल्प के पुष्पोत्तरविमान से च्यवकर आषाढ़शुक्ला छठ के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र से चन्द्रमा का योग होने पर देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आया। उसरात्रि में देवानन्दा ने चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देखकर वह तुरन्त अपनी शय्या से उठ बैठी और ऋषभदत्त के शयनकक्ष में जाकर बोली—

"प्राणनाथ, ! मैने चौदह महास्वप्न देखे हैं। ये शुभ हैं या अशुभ ? इसका फल क्या है ?"

ऋषभदत्त ने मधुर स्वर में कहा-"प्रिये ! तुमने उदार स्वप्न देखे हैं-कल्याण रूप, शिवरूप, धन्य, मङ्गलमय और शोभायुक्त स्वप्नों को तुमने देखा है। इन शुभ स्वप्नों से तुम्हें पुत्रलाभ, अर्थलाभ, और राज्यलाभ होगा। तुम सर्वाङ्गसुन्दर उत्तमलक्षणों से युक्त, त्रिलोक-पूज्य पुत्र को जन्म दोगी।" स्वप्न का फल सुनकर देवानन्दा पति को प्रणाम करके वापिस अपने शयनकक्ष में लौट आई और शेष रात्रि को धर्मध्यान में बिताने लगी।

गर्भ सुखपूर्वक बढ़ने लगा। गर्भ के अनुकूल प्रभाव से देवानन्दा के शरीर की शोभा, कान्ति और लावण्य भी बढ़ने लगा एवं ऋषभदत्त की ऋद्धि यश तथा प्रतिष्ठा में भी वृद्धि होने लगी। इस प्रकार गर्भ के ८२ दिन बीत गये। ८३वे दिन की ठीक मध्यरात्रि में देवानन्दा ने स्वप्न देखा कि "मेरे स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणी ने चुरा लिये हैं।"

जिस समय देवानन्दा ने त्रिशला द्वारा किया गया अपने स्वप्नों का हरण देखा उसी समय त्रिशला रानी ने चौदह महास्वप्न देखे जो पहले देवानन्दा ने देखे थे।

स्वप्नहरण का मूल कारण यह था कि जब अवधिज्ञान से सौधर्मेन्द्र को भगवान के अवतरण की बात ज्ञात हुई तो उसे विचार हुआ कि तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, एवं वासुदेव केवल क्षत्रियकुल में ही उत्पन्न होते हैं किन्तु आश्चर्य है कि भगवान का अवतरण ब्राह्मण कुल में हुआ है। तीर्थङ्कर न कभी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हैं और न होंगे। अतः इस अपवाद से बचाने के लिये भगवान को अन्य किसी क्षत्रियाणी के गर्भ में रखना होगा। उन्होंने उसी समय हरिणेगमेषी देव को बुलाया और उसे भगवान को त्रिशला के गर्भ

में रखने का आदेश दिया। इन्द्र का आदेश पाकर हरिणेगमेषी देव ने भगवान को देवानन्दा के गर्भ से निकाल कर आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन मध्यरात्रि में त्रिशला रानी के गर्भ में रख दिया और त्रिशला के गर्भ में रही हुई कन्या को देवानन्दा के गर्भ में रख दिया। जब भगवान गर्भ में आये तब त्रिशला देवी ने १४ महा-स्वप्न देखे। महारानी जागृत हुई उसने अपने पति से स्वप्न का फल पूछा। महाराज सिद्धार्थ ने अपनी मति के अनुसार स्वप्न का फल बताते हुए कहा—देवी! तुम महान पुत्र को जन्म दोगी। दूसरे दिन स्वप्नपाठकों से स्वप्नों का अर्थ कराया। उन्होंने गम्भीर विचार के बाद कहा कि महारानी त्रिशला के गर्भ में लोकोत्तम लोकनाथ तीर्थ-ङ्कर भगवान का जीव आया है रानी ने जो चौदह महास्वप्न देखे हैं उनका संक्षिप्त फल इस प्रकार है—

(१) **चार दाँत वाले हाथी** को देखने से वह जीव चार प्रकार के धर्म को कहने वाला होगा।

(२) **वृषभ** को देखने से इस भरतक्षेत्र में बोधि-बीज का वपन करेगा।

(३) **सिंह** को देखने से कामदेव आदि उन्मत्त हाथियों से भग्न होते भव्यजीव रूप वन का रक्षण करेगा।

(४) **लक्ष्मी** को देखने से वार्षिक दान देकर तीर्थङ्कर-ऐश्वर्य को भोगेगा।

(५) **माला** देखने से तीनभुवन के मस्तकपर धारण करने योग्य होगा।

(६) **चन्द्र** को देखने से भव्यजीव रूप चन्द्र-विकासी कमलों को विकसित करने वाला होगा।

(७) **सूर्य** को देखने से महातेजस्वी होगा।

(८) **ध्वज** को देखने से धर्मरूपी ध्वज को सारे संसार में लह-राने वाला होगा।

(९) **कलश** को देखने से धर्म रूपी प्रासाद के शिखर पर उनका आसन होगा ।

(१०) **पद्मसरोवर** को देखने से देवनिर्मित सुवर्णकमल पर उनका विहार होगा ।

(११) **समुद्र** को देखने से केवलज्ञान रूपी रत्न का धारक होगा ।

(१२) **विमान** को देखने से वैमानिक देवों से पूजित होगा ।

(१३) **रत्नराशि** को देखने से रत्न के गहनों से विभूषित होगा ।

(१४) **निर्धूम अग्नि** को देखने से भव्य प्राणिरूप सुवर्ण को शुद्ध करने वाला होगा ।

इन चौदह महास्वप्नों का समुचित फल यह है कि वह चौदह राजलोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्धशिला के उपर निवास करने वाला होगा । रानी अपने स्वप्नदर्शन का फल सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और बार बार अपने स्वप्नों का ही स्मरण करती हुई अपने स्थान पर चली आई । राजा ने स्वप्नपाठकों को विपुल दान दक्षिणा देकर विदा किया ।

भगवान गर्भावस्था में ही विशिष्टज्ञानी थे अर्थात् उन्हें मति श्रुति और अवधिज्ञान था । जब गर्भ का सातवाँ महिना बीत चुका तब एक दिन भगवान ने सोचा–मेरे हलन चलन से माता को कष्ट होता है । अतः उन्होंने गर्भ में हिलना-डुलना कतई बन्द कर दिया ।

अचानक गर्भ का हिलना डुलना बन्द होने से माता त्रिशला अमङ्गल की कल्पना से शोकसागर में डूब गई । उन्हें लगा कहीं गर्भ में बालक की मृत्यु तो नहीं हो गई ? धीरे धीरे यह खबर सारे राज: कुटुम्ब में फैल गई । सभी यह बात सुनसुन कर दुखी होने लगे ।

भगवान ने यह सब अपने ज्ञान से देखा और सोचा–'माता पिता की सन्तान विषयक ममता बड़ी प्रबल होती है । मैंने तो मा के सुख के लिये ही हलन चलन बन्द कर दिया था परन्तु उसका परिणाम विपरीत ही हुआ ।" मातापिता के इस स्नेहभाव को देखकर

भगवान ने अंग संचालन किया और साथ में यह प्रतिज्ञा की कि– "जबतक मातापिता जीवित रहेंगे, तब तक मै प्रव्रज्या नहीं ग्रहण करूँगा।"

जब गर्भस्थ बालक का हलन चलन हुआ तो त्रिशलादेवी को अपार हर्ष हुआ। रानी त्रिशला को हर्षित देखकर सारा राजभवन आनन्द से नाच उठा और खूब उत्सव मनाने लगा।

अब महारानी अपने गर्भ का पथ्यपूर्वक पालन करने लगी। गर्भ के अनुकूल प्रभाव से त्रिशलारानी के शरीर की शोभा, कान्ति और लावण्य भी बढ़ने लगे तथा सिद्धार्थ राजा की ऋद्धि, यश, प्रभाव और प्रतिष्ठा में भी वृद्धि होने लगी। गर्भ के समय त्रिशला के मन में जो प्रशस्त इच्छाएँ उत्पन्न होती थीं उन्हें महाराज पूरी कर देते थे। इसप्रकार गर्भ का काल सुखपूर्वक बीता।

चैत्रमास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी मंगलवार के दिन नौ मास और साढ़ेसात रात्रि सम्पूर्ण होने पर त्रिशला माता ने हस्तोत्तरा नक्षत्र में सुवर्ण जैसी कान्तिवाले एवं सिंहलक्षण वाले पुत्ररत्न को जन्म दिया। जिसप्रकार देवों की उपपातशय्यामें देव का जन्म होता है। उसी प्रकार रुधिरादि से वर्जित, कर्मभूमि के महामानव २४वें तीर्थङ्कर का जन्म हुआ। दिशाएँ प्रफुल्ल हुईं। जनसमुदाय में स्वभाव से ही आनन्द का वतावरण निर्मित हो गया। तीनोंलोक में प्रकाश फैल गया। नरक के जीवों को क्षणभर के लिये अपूर्वसुख की प्राप्ति हुई। आकाश देव दुंदुभियों से गूंज उठा। मेघ सुगन्धित जलधारा बरसाने लगे। मंद सुगन्धित पवन रजकणों को हटाने लगा। इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। अवधिज्ञान से भगवान के जन्म को जानकर उनके हर्ष का पार नहीं रहा। वे आसन से नीचे उतरे और भगवान की दिशा में सात आठ कदम चलकर दाहिने घुटने को नीचा कर और बायें घुटने को खड़ाकर दोनों हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति करने लगे। उसके बाद

अपने अपने आज्ञाकारी देवों को भगवान के जन्मोत्सव में शरीक होने की 'सुघोषा' घंटा द्वारा सूचना दी। छप्पनदिक्कुमारिकाओं ने माता त्रिशला के पास आकर उनका सूतिकाकर्म किया और मंगलगान करती हुई माता का मनोरंजन करने लगीं।

सौधर्मेन्द्र पालक विमान में बैठकर भगवान के पास आया और भगवान को तथा माता को प्रणामकर स्तुति करने लगा। स्तुति कर लेने के बाद बोला—मैं सौधर्मस्वर्ग का इन्द्र हूँ और आपके पुत्र का जन्मोत्सव करने के लिये यहाँ आया हूँ। इतना कहकर इन्द्र ने माता त्रिशला को निद्राधीन कर दिया और भगवान का एक प्रतिविम्ब वनाकर त्रिशला के पास रख दिया। इसके वाद पांचरूपधारी इन्द्र ने भगवान को अपने दोनों हाथों से उठा लिया। आकाशमार्ग से चल कर वे मेरुपर्वत के पाण्डुकवन में आये। वहाँ अतिपाण्डुकम्बला नामक शिलापर सिंहासन रखा और अपनी गोदी में प्रभु को लेकर सौधर्मेन्द्र पूर्वदिशा की तरफ मुँह कर के बैठ गया। उस समय अन्य ६३ इन्द्र और उनके आधीन असंख्य देवी देवता भी वहाँ उपस्थित हुए। आभियोगिक देव तीर्थजल ले आये और सव इन्द्र-इन्द्रानियों ने एवं चार निकाय के देवों ने भगवान का जन्माभिषेक किया। सब दोसौपचास अभिषेक हुए। एक एक अभिषेक में ६४ हजार कलश होते हैं।

इस अवसर्पिणी काल के चौबीसवें तीर्थङ्कर का शरीर प्रमाण दूसरे तेईस तीर्थङ्करों के शरीर प्रमाण से बहुत छोटा था इसलिये अभिषेक करने की सम्मति देने के पहले इन्द्र के मन में शंका हुई कि भगवान का यह वालशरीर इतनी अभिषेक की जलधारा को कैसे सह सकेगा?

भगवान अवधिज्ञानी थे। वे इन्द्र की शंका को जान गये। तीर्थङ्कर का शरीर प्रमाण में छोटा हो या बड़ा हो किन्तु बल की अपेक्षा सभी तीर्थंकर समान अनन्तबली होते हैं और यह बताने के लिये उन्होंने अपने बाएँ पैर के अंगूठे से मेरुपर्वत को जरा सा दवाया

तो सारा मेरुपर्वत कम्पायमान हो गया*। मेरुपर्वत के अचानक हिल उठने से इन्द्र विचार में पड़ गया। अवधिज्ञान का उपयोग लगाया तो उसे पता चला कि भगवान ने तीर्थङ्कर के अनन्तवली होने की बात बताने के लिये ही मेरुपर्वत को अंगूठे के स्पर्शमात्र से हिलाया है। इन्द्र ने उसीसमय भगवान से क्षमा मांगी। अभिषेक के बाद इन्द्र ने भगवान के अंगूठे में अमृत भरा और नंदीश्वर पर्वतपर अष्टाह्निक महोत्सव मनाकर और फिर अष्टमंगल का आलेखन करके और स्तुति करके भगवान को अपनी माता के पास वापिस रख दिया।

प्रातःकाल प्रियंवदा नामकी दासी ने राजा सिद्धार्थ को पुत्र जन्म की खबर सुनाई। राजा ने मुकुट और कुंडल को छोड़कर अपने समस्त आभूषण दासी को भेंट में दे दिये और उसे दासीत्व से मुक्त कर दिया।

बारह योद्धाओं का बल १ सांड (बैल) में होता है। दस बैलों का बल एक घोड़े में होता है। बारह घोड़ों का बल एक भैंसे में होता है। पन्द्रह भैंसों का बल एक मत्त हाथी में होता है। पांचसौ मत्तहाथियों का बल एक केशरीसिंह में होता है। दोहजार केशरीसिंह का बल एक अष्टापदपक्षी में होता है। दसलाख अष्टोपदों का बल एक बलदेव में होता है। दो बलदेवों का बल एक वासुदेव में, दो वासुदेवों का बल एक चक्रवर्ती में, एकलाख चक्रवर्तियों का बल एक नागेन्द्र में और एककरोड़ नागेन्द्रों का बल एक इन्द्र में होता है। ऐसे असंख्य इन्द्र मिलकर भी भगवान की चट्टी—सबसे छोटी अंगुली को नमाने में समर्थ नहीं हैं। इसलिये तीर्थंकर भगवान 'अतुल'बलधारी' कहलाते हैं।

---

*तीर्थंकरों में कितना बल होता है! उसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है।

राजा सिद्धार्थ ने नगर में दसदिन का उत्सव मनाया। प्रजा के आनन्द और उत्साह की सीमा न रही। सर्वत्र धूम मचगई। कैदियों को बन्धन मुक्त कर दिया। प्रजा को कर मुक्त किया। सारा नगर उत्सव और आनन्द का स्थान बन गया।

जन्म के तीसरे दिन चन्द्र और सूर्य का दर्शन कराया गया। छठे दिन रात्रिजागरण का उत्सव हुआ। बारहवें दिन नामसंस्कार कराया गया। राजा सिद्धार्थ ने इस प्रसंगपर अपने मित्र, ज्ञातिजन, कुटुम्ब-परिवार एवं स्नेहियों को आमन्त्रित किया और भोजन, ताम्बूल,वस्त्र-अलंकारों से सब का सत्कार कर कहा—जब से बालक हमारे कुल में अवतरित हुआ है तबसे हमारेकुल में धनधान्य, कोश, कोष्ठागार, बल, स्वजन और राज्य में वृद्धि हुई है। अतःहम इस बालक का नाम 'वर्धमान' रखना चाहते हैं। सबने इस सुन्दर नाम का अनुमोदन किया।

वर्धमानकुमार का बाल्यकाल दासदासियों एवं पांच धात्रियों के संरक्षण में सुखपूर्वक बीतने लगा।

वर्धमानकुमार ने आठवर्ष की अवस्था में प्रवेश किया। एकबार वे अपने समवयस्क बालकों के साथ प्रमदवन में आमलकी नामक खेल खेलने लगे। उस समय इन्द्र अपनी देवसभा में वर्द्धमानकुमार की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—वर्धमानकुमार बालक होते हुए भी बड़े पराक्रमी है। विनयी और बुद्धिमान हैं। इन्द्र देव दानव कोई भी उन्हें पराजित नहीं कर सकता। एक देव को इन्द्र की इसबात पर विश्वास नहीं हुआ। वह वर्धमानकुमार के बल, साहस एवं धैर्य की परीक्षा करने की इच्छा से जहाँ वर्धमानकुमार अपने साथियों के साथ खेल रहे थे वहाँ आया और भयंकर सर्प का रूप धारण करके पीपल वृक्ष से लिपट गया। उस समय वर्धमानकुमार साथियों के साथ पीपल पर चढ़े हुए थे। फूत्कार करते हुए भयानक सर्प को देखकर सभी बालक भय से कांपने लगे और बचाओ! बचाओ!! की आवाज से रोने लगे किन्तु 'वर्ध-

मानकुमार' जरा भी भयभीत नहीं हुए। वे धैर्यपूर्वक सर्प की ओर बढ़े और उसे हाथ से खींचकर दूर फेंक दिया।

पुनः खेल प्रारंभ हो गया। वे 'तिंदूसक' नाम का खेल खेलने लगे। इसमें यह नियम था कि अमुक वृक्ष को लक्ष्य करके लड़के दौड़ें। जो लड़का सब से पहले उस वृक्ष को छू ले वह विजयी और शेष पराजित। इसबार वह देव बालक के रूप में उनके साथ खेल खेलने लगा। क्षणभर में बालकरूपधारी देव अपने हरीफ वर्धमानकुमार से हार गया और शर्त के अनुसार वर्धमानकुमार को अपनी पीठ पर लेकर दौड़ने लगा। वह दौड़ता जाता था और अपना शरीर बढ़ाता जाता था। क्षण भर में उसने अपना शरीर सात ताड़ जितना ऊँचा बना लिया और बड़ा भयंकर बन गया। वर्धमान को दैवी माया समझते देर न लगी उन्होंने जोर से उसकी पीठ पर एक घूँसा जमा दिया। वर्धमान का वज्रमय प्रहार देव सह नहीं सका। वह तुरंत नीचे बैठ गया।

अब देव को विश्वास हो गया कि वर्धमान को पराजित करना उसकी शक्ति के बाहर है। वह असली रूप में प्रकट होकर बोला— वर्धमान! सचमुच ही आप 'महावीर' हो। सौधर्मेन्द्र ने आपकी जैसी प्रशंसा की वैसे ही आप हैं। कुमार! मै तुम्हारा परीक्षक बन कर आया था और प्रशंसक बनकर जाता हूँ। देव चला गया किन्तु वर्धमान कुमार का 'महावीर' विशेषण सदा के लिये अमर बनगया।

महावीर का लेखशाला में प्रवेश—

भगवान महावीर के आठ वर्ष से कुछ अधिक होने पर उनके मातापिता ने शुभमुहूर्त देखकर सुन्दर वस्त्र अलंकार धारण कराके हाथी पर बैठाकर भगवान महावीर को पाठशाला में भेजा। अध्यापक को भेंट देने के लिये अनेक उपहार और छात्रों को बाँटने के लिये नाना प्रकार की वस्तुएँ भेजी गईं। जब भगवान पाठशाला में पहुँचे तो अध्यापक ने उन्हें सम्मान पूर्वक आसन पर बिठलाया।

उस समय इन्द्र का आसन प्रकम्पित हुआ। अवधिज्ञान से उसने भगवान को पाठशाला में बैठा हुआ देखा। वह उसीक्षण वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर पाठशाला में उपस्थित हुआ। कुमार महावीर को प्रणाम कर वह व्याकरण विषयक विविध प्रश्न कुमार महावीर से पूछने लगा। भगवान महावीर अलौकिक ज्ञानी तो थे ही उन्होंने सुन्दर ढंग से वृद्ध ब्राह्मण के प्रश्नों का उत्तर दिया।

कुमार के विद्वत्तापूर्ण उत्तरों से पाठशाला का अध्यापक चकित हो गया। वह अपने शंकास्थलों को याद कर कुमार महावीर से पूछने लगा। महावीर ने अध्यापक के सभी प्रश्नों का समाधान कर दिया। महावीर की इस अलौकिक बुद्धि और विद्वत्ता से अध्यापक दंग रह गया। तब ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने अध्यापक से कहा "पण्डित ! यह बालक कोई साधारण छात्र नहीं है। यह सकल शास्त्रपारगंत भगवान महावीर हैं।" अध्यापक अपने सामने अलौकिक बालक को देखकर चकित हो गया। उसने भगवान को प्रणाम किया। इन्द्र ने भी अपना असली रूप प्रकट किया और भगवान को प्रणाम कर अपने स्थान चला गया। महावीर के मुख से निकले हुए वचन 'ऐन्द्र' व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध हुए।

भगवान महावीर को अलौकिक पुरुष मानकर अध्यापक बालक महावीर को लेकर राजा सिद्धार्थ के पास आया और बोला-भगवान महावीर स्वयं अलौकिक ज्ञानी हैं। उन्हें पढ़ाने की आवश्यकता नहीं।

भगवान महावीर ने बाल्यावस्था को पार कर यौवनवय में प्रवेश किया। महावीर के अलौकिक रूप और बलबुद्धि की प्रशंसा सुनकर अनेक देश के राजाओं ने राजकुमार महावीर के साथ अपनी राजकन्याओं का वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने के लिये सन्देश भेजे किन्तु विरक्त महावीर ने उन्हें वापिस लौटा दिया। अन्त में अपनी अनिच्छा होते हुए भी भोगावली कर्म को शेष जानकर एवं मातापिता तथा बड़ेभाई

की आज्ञा को शिरोधार्य कर भगवान ने वसन्तपुर के राजा समरवीर की रानी पद्मावती के गर्भ से उत्पन्न राजकुमारी यशोदा के साथ शुभ मुहूर्त में पाणिग्रहण किया।

राजकुमार महावीर यशोदा के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। कालान्तर में उन्हें 'प्रियदर्शना' नाम की पुत्री हुई। प्रियदर्शना जब युवा हुई तब उसका विवाह क्षत्रियकुण्ड के राजकुमार जमालि के साथ कर दिया गया।

राजकुमार वर्धमान स्वभाव से ही वैराग्यशील और एकान्तप्रिय थे। उन्होंने मातापिता के आग्रह से ही गृहवास स्वीकार किया। जब भगवान महावीर २८ वर्ष के हुए तब उनके माता-पिता का स्वर्गवास होगया। मातापिता के स्वर्गवास के बाद भगवान ने अपने बड़े भ्राता नन्दिवर्द्धन से कहा-भाई! अब मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। नन्दिवर्धन ने कहा-भाई! घावों पर नमक न छिड़को। अभी मातापिता के वियोग का दुःख तो भूले ही नहीं कि तुम भी मुझे छोड़ने की बात करने लगे। जबतक हमारा मन स्वस्थ न हो जाय तब तक के लिये घर छोड़ने की बात मत करो।

भगवान महावीर ने कहा-तुम मेरे बड़े भ्राता हो अतः तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं किन्तु गृहवास में रहने की मेरी अवधि बतादो।

नन्दिवर्धन—भाई! कम से कम दो वर्ष तक।

वर्धमान ने कहा—अच्छा पर आज से मेरे लिये कुछ भी आरंभ समारंभ मत करना। नन्दिवर्धन ने भगवान की बात मानली। भगवान महावीर गृहस्थवेष में रहकर भी त्यागमय जीवन बिताने लगे। वे अचित गरम पानी पीते थे। निर्दोष भोजन ग्रहण करते थे। रात्रि को वे कभी नहीं खाते थे। जमीन पर सोते थे और ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।

भगवान के दीक्षा की बात जानकर सारस्वतादि नौ लोकान्तिक देव भगवान के पास आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे– "हे क्षत्रियवर वृषभ ! आप की जय हो विजय हो ! हे भगवन् ! आप दीक्षा ग्रहण करें ! लोकहित के लिये धर्मचक्र का प्रवर्तन करें"। ऐसा कह कर वे स्वस्थान चले गये । उसके पश्चात् भगवान ने वर्षी दान देना प्रारंभ कर दिया । वे प्रतिदिन १ करोड़ ८० लाख सुवर्ण मुद्रा का दान करने लगे। इसप्रकार एक वर्ष की अवधि में ३ अरब ८८ करोड़ ८० लाख सुवर्णमुद्राओं का दान दिया । वर्षदान की समाप्ति के बाद भगवान, अपने भाई नन्दिवर्धन तथा अपने चाचा सुपार्श्व के पास आये और बोले–अब मै दीक्षा के लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ । तब नन्दिवर्धन ने एवं सुपार्श्व ने साश्रुनयनों से भगवान को दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी ।

सौधर्म आदि इन्द्रों के आसन चलायमान होने से उन्हें भी भगवान की दीक्षा का समय मालूम हो गया। सभी इन्द्र अपने अपने देव देवियों के असंख्य परिवारों के साथ क्षत्रियकुण्ड आये और भगवान का दीक्षाभिषेक किया। नन्दिवर्धन ने भी भगवान को पूर्वाभिमुख बिठला करके दीक्षाभिषेक किया । उसके बाद भगवान ने स्नान किया चन्दन आदि का लेप कर दिव्यवस्त्र और अलंकार परिधान किये ।

देवों ने पचास धनुष लम्बी ३६ धनुष ऊँची और२५ धनुष चौड़ी चन्द्रप्रभा नाम की दिव्य पालकी तैयार की। यह पालकी अनेक स्तभों से एवं मणिरत्नों से अत्यंत सुशोभित थी। भगवान इस पालकी में पूर्वदिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठगये। प्रभु की दाहिनी ओर हंसलक्षणयुक्त पट लेकर कुलमहत्तरिका बैठी । बाईं ओर दीक्षा का उपकरण लेकर प्रभु की धाई मा बैठी । राजा नन्दिवर्धन की आज्ञा से पालकी उठाई गई । उस समय शक्रेन्द्र दाहिनीभुजा को, ईशानेन्द्र बायीं भुजा को, चमरेन्द्र दक्षिण ओर की नीचे की बाँह

को और बलीन्द्र उत्तर ओर की नीचे की बाँह को उठाये हुए थे। इन्द्रों के अतिरिक्त अन्य व्यन्तर, भुवनपति, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों ने भी हाथ लगाया। उस समय देवों ने आकाश से पुष्पवृष्टि की। दुंदुभियाँ बजाईं। भगवान की पालकी के आगे रत्नमय अष्टमंगल चलने लगे। जुलूस के आगे आगे भंभा, भेरी एवं मृदंग आदि बाजे बजने लगे।

भगवान की पालकी के पीछे पीछे उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल और क्षत्रियकुल के राजा तथा सार्थवाह प्रभृति देवदेवियाँ तथा पुरुष समूह चलने लगा। इन सब के बाद नन्दिवर्धन राजा हाथी पर बैठ कर कोरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र को धारण करके भगवान के पीछेपीछे चलने लगे। उन पर श्वेत चमर झला जा रहा था। हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदलसेना उनके साथ थी। उसकेबाद स्वामी के आगे १०८ घोड़े, १०८ हाथी एवं १०८ रथ अगल बगल में चल रहे थे।

इसप्रकार बड़ीऋद्धि सम्पदा के साथ भगवान की पालकी ज्ञातखण्डवन में अशोकवृक्ष के नीचे आई। भगवान पालकी से नीचे उतरे। तत्पश्चात् भगवान ने अपने समस्त वस्त्रालंकार उतार दिये। उस दिन हेमन्त ऋतु की मार्गशीर्ष कृष्णा १० रविवार का तीसरा प्रहर था। भगवान को बेले की तपस्या थी। विजय मुहूर्त में भगवानने पंचमुष्टिलोच किया। उस समय शक्र देवेन्द्र ने भगवान के उन केशों को एक वस्त्र में ग्रहण किया और उन्हें क्षीरसमुद्र में बहा दिया। भगवान ने **'नमो सिद्धाणं'** कह कर **'करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जंज्जोगं पच्चक्खामि'** कहा। इस प्रकार उच्चारित करते ही शुभ अध्यवसायों के कारण चतुर्थ मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। नन्दिवर्धन आदि जनों ने भगवान को वन्दन कर अत्यन्त दुःखीहृदय से विदा ली।

उससमय भगवान के कन्धे पर सौधर्मेन्द्र ने देवदूष्य वस्त्र रख दिया। भगवान श्रामण्य ग्रहणकर अपने भाई–बन्धुओं से विदा ले, ज्ञातखण्ड से आगे विहार कर गये। भगवान की इससमय तीस वर्ष की अवस्था थी।

प्रथम वर्षाकाल—

दीक्षाग्रहण करने के बाद भगवान ने निम्न कठोरतम प्रतिज्ञा की—कि बारह वर्ष तक जबतक कि "मुझे केवलज्ञान नहीं होगा मैं इस शरीर की सेवा–सुश्रूषा नहीं करूँगा और मनुष्य तिर्यञ्च एवं देवता सम्बन्धी जो भी कष्ट आयेगे उनको समभावपूर्वक सहन करूँगा। मन में किंचित्-मात्र भी रंज नहीं आने दूंगा।" इस प्रकार की कठोर प्रतिज्ञा कर भगवान ने एकाकी विहार कर दिया। जब वे कुछ दूरी पर गये तो मार्ग में उनके पिता का मित्र 'सोम' नामक ब्राह्मण मिला। भगवान को वन्दन कर बोला—स्वामिन्! मैं जन्म से ही दरिद्र ब्राह्मण हूँ। गांव–गांव याचना कर अपनी आजीविका चलाता हूँ। आप जब वार्षिक दान देकर जगत का दारिद्र्य दूर कर रहे थे उस समय मैं अभागा गांवों में याचना करता हुआ भटक रहा था। जब घर आया तो मेरी स्त्री ने फिर मेरा तिरस्कार करते हुए कहा—अभागे! जब यहाँ घर–आंगन में गंगा प्रकट हुई तब तू बाहर भटकने चला गया। अब भी अवसर है तू भगवान महावीर के पास जा उनसे याचना कर वे जरूर तुझे कुछ न कुछ देंगे। इससे भगवान! मैं यहाँ आया हूँ। आप जरूर मेरी आशा पूरी करेंगे। भगवान ने कहा—सोम! अब तो मैं अपरिग्रही साधु हो गया हूँ। देने के लिये अब मेरे पास कुछ भी नहीं है फिर भी कंधे पर रखे हुए देवदूष्य का आधा टुकड़ा तुझे देता हूँ। ऐसा कह कर भगवान ने आधा देवदूष्य फाड़कर उसे दे दिया। ब्राह्मण देवदूष्य का आधा भाग पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह उसे लेकर रफूगर के पास गया और उसे बताया। देवदूष्य देखकर रफूगर बोला—ब्राह्मण! अगर तू इसका आधाभाग और ले आवेगा तो इसकी कीमत एक लाख सुवर्णमुद्रा मिलेगी।" ब्राह्मण वापस महावीर स्वामी के पास पहुँचा। आधा देवदूष्य प्राप्त करने के लिये वह उनके पीछे-पीछे घूमने लगा।

भगवान महावीर 'ज्ञातखण्ड' उद्यान से विहार करके उस दिन शामको जब एक मुहूर्त दिन शेष रहा तो कर्मार ग्राम आ पहुँचे। वहाँ वे ध्यान में स्थिर होगये। एक ग्वाला सारेदिन हल जोतकर संध्या के समय बैलों को साथ में लिये घर की ओर लौट रहा था। वह भगवान को खड़े देखकर अपने बैल उनके पास छोड़, गाय दुहने के लिये घर चला गया। बैल चरते-चरते जंगल में दूर निकल गये। जब ग्वाला लौटा तो उसने भगवान के पास बैलों को नहीं पाया। उसने भगवान से पूछा-आर्य! मेरे बैल कहाँ गये? भगवान की ओर से प्रत्युत्तर नहीं मिलने पर उसने समझा कि उनको मालूम नहीं है। वह जंगल में बैलों को खोजने के लिये चला गया। बहुत खोजने पर भी जब बैल नहीं मिले तो वह वापस लौट आया। बैल भी चरते-फिरते भगवान के पास आकर खड़े हो गये। उसने भगवान के पास बैलों को खड़े हुए देखा। बैलों को भगवान-के पास देख वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और भगवान के पास आकर बोला-अरे दुष्ट! तेरा विचार मेरे बैलों को चुराकर भागने का था इसीलिये जानते हुए भी तू ने मेरे बैल नहीं बताये। ऐसा कहकर वह भगवान को मारने के लिये दौड़ा। भगवान शान्त थे और ग्वाला रस्सियों से भगवान को मारे जा रहा था। उस समय इन्द्र अपनी सभा में बैठा विचार कर रहा था कि जरा देखूँ तो सही कि भगवान प्रथम दिन क्या करते हैं। इन्द्र ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया तो पता चला कि ग्वाला भगवान को मार रहा है। इन्द्र ने तत्काल उसे स्थंभित कर दिया। वह ग्वाले के पास आया और बोला—"अरे दुरात्मन्! तू यह क्या अनर्थ करने जा रहा है, जानता नहीं ये कौन है? ये महाराज सिद्धार्थ के पुत्र वर्धमान कुमार हैं" ग्वाला लज्जित होकर चला गया।

ग्वाले के चलेजाने पर भगवान् महावीर को वन्दनकर इन्द्र बोला-भगवन! आपको भविष्य में बड़े-बड़े कष्ट झेलने पड़ेंगे। आपको

आज्ञा हो तो मैं आपकी सेवा में रहूँ। भगवान ने उत्तर दिया-"हे शक! न कभी ऐसा हुआ है न होगा कि देवेन्द्र या सुरेन्द्र की सहायता से अर्हन्त केवलज्ञान और सिद्धि प्राप्त करे। अर्हन्त अपने ही बल और पराक्रम से केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धि प्राप्त करते हैं।" तब इन्द्र ने मरणान्त उपसर्ग टालने के लिये प्रभु की मौसी के पुत्र सिद्धार्थ नामक व्यंतरदेव को प्रभु की सेवा में नियुक्त कर दिया।

दूसरे दिन भगवान ने कर्मारग्राम से विहार किया और वे कोल्लाग-सन्निवेश आये। वहाँ वहुल नामक ब्राह्मण के घर परमान्न से भगवान ने छठ तप का पारणा किया। देवताओं ने उसके घर वसु-धारादि पांच दिव्य प्रकट किये।

दीक्षा के समय प्रभु के शरीर पर देवताओं ने गोशीर्ष चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का विलेपन किया था। इससे अनेक भँवरे और अन्य जीव-जन्तु प्रभु के शरीर पर आकर डंख मारते थे और सुगन्ध का रसपान करने की कोशिश करते थे। अनेक युवक भगवान के पास आकर पूछते थे "आपका शरीर ऐसा सुगन्धपूर्ण कैसे रहता है? हमें भी वह तरकीब बताइये, वह औषध दीजिये जिससे हमारा शरीर भी सुगन्धमय रहे।" परन्तु मौनावलम्बी प्रभु से उन्हें कोई उत्तर नहीं मिलता। इससे वे बहुत क्रुद्ध होते और प्रभु को अनेक तरह से कष्ट देते।

अनेक स्वेच्छा-विहारिणी स्त्रियाँ प्रभु के मनमोहक रूप को देखकर कामपीड़ित होतीं और दवा की तरह प्रभुअंग-संग चाहतीं परन्तु वह न मिलता। तब वे अनेक तरह का उपसर्ग करतीं और अन्त में हारकर चली जातीं।

भगवान महावीर कोल्लागसन्निवेश से विहार कर मोराक सन्नि-वेश पधारे। वहाँ दूईज्जन्तक नाम के तापसों का आश्रम था। भगवान वहाँ पधारे। उस आश्रम का कुलपति राजा सिद्धार्थ का मित्र था। भगवान महावीर को आते हुए देखकर वह उनके सम्मान के लिये

सामने गया । कुलपति की प्रार्थना पर भगवान ने उसरात्रि को वहीं रहने का विचार किया । वे रात्रि की प्रतिमा धारणकर वहीं ध्यान करने लगे ।

दूसरे दिन प्रातः ही जब भगवान विहार करने लगे तब कुलपति ने आगामी चातुर्मास आश्रम में ही व्यतीत करने की प्रार्थना की। ध्यान-योग्य एकान्तस्थल देखकर भगवान ने कुलपति की प्रार्थना स्वीकार की । भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया । आसपास के स्थलों में विचर कर भगवान चातुर्मास काल व्यतीत करने के लिये आश्रम में पधार गये । कुलपति ने उन्हे घास की एक झोपड़ी में ठहराया । भगवान झोपड़ी में रहकर अपना सारा समय ध्यान में व्यतीत करने लगे ।

यद्यपि कुलपति के आग्रहवश प्रभु ने वर्षाकाल आश्रम में ही बिताना स्वीकार कर लिया था पर कुछ समय रहने पर उन्हें मालूम हो गया कि यहाँ पर उन्हें शान्ति नहीं मिलेगी। आश्रमवासियों की विपरीत प्रवृत्तियों के कारण भगवान के ध्यान में विक्षेप होने लगा ।

जगलों में घास का अभाव हो गया था । वर्षा से अभी नवीन घास उगी न थी इसलिये जंगल में चरने वाले ढोर जहाँ घास देखते वहीं दौड़ जाते । कुछ गायें तापसों के आश्रम में आतीं और झोपड़ियों का घास चर जातीं । तापस लोग अपनी झोपडियों की रक्षा के लिये डंडे ले ले कर गायों के पीछे दौड़ते और उन्हें मार भगाते किन्तु भगवान तापसों की इन प्रवृत्तियों में जरा भी भाग नहीं लेते । वेसदैव ध्यान में लीन रहते । कौन क्या करता है इसपर वे जरा भी ध्यान नहीं देते । भगवान की झोपड़ी की घास को गायें खा जातीं तब भी भगवान उन्हें जरा भी नहीं रोकते । भगवान की इस अपूर्व समता से तापस जल उठे । वे कुलपति के पास आकर कहने लगे-आप कैसे अतिथि को लाये हैं? वह तो अकृतज्ञ, उदासीन और आलसी है । झोपड़ी की घास ढोर खा जाते हैं और वह चुपचाप बैठा देखता रहता है !

तापसों की इस शिकायत पर कुलपति भगवान के पास आया और बोला–कुमार ! एकपक्षी भी अपने घोंसले का रक्षण करता है और तुम क्षत्रिय होकर भी अपने आश्रमस्थान की रक्षा नहीं कर सकते ? महद् आश्चर्य है !

आश्रमवासियों के इस व्यवहार से भगवान का दिल उठ गया। उन्होंने सोचा–अब मेरा यहाँ रहना आश्रमवासियों के लिये अप्रीतिकर होगा, इसलिए वर्षा काल के पंद्रह दिन व्यतीत हो जाने पर भी वहाँ से अस्थिक ग्राम की ओर प्रयाण कर दिया–उस समय भगवान ने पांच प्रतिज्ञाएँ कीं—

१–अब से अप्रीतिकर स्थान में नहीं रहूँगा।
२–नित्य ध्यान में रहूँगा।
३–नित्य मौन रखूँगा।
४–हाथ में भोजन करूँगा।
५–गृहस्थ का विनय नहीं करूँगा।

भगवान मोराक गांव से विहार कर अस्थिक गांव में आये। वहाँ शूलपानी व्यंतर के मन्दिर में ठहरने के लिये भगवान ने गांववालों से आज्ञा मांगी। गांववालों ने कहा–देवार्य ! रात्रि में यदि कोई पथिक इस मन्दिर में ठहरता है तो यह यक्ष उसको मार डालता है। अतः यहाँ रहना खतरनाक है।

भगवान ने कहा–इस बात की आप लोग चिन्ता न करें। मुझे केवल आप लोगों की अनुमति चाहिये। भगवान के विशेष आग्रह पर गांववालों ने मजबूर होकर मन्दिर में ठहरने की आज्ञा दे दी। भगवान मन्दिर के एक कोने में जाकर ध्यान करने लगे।

भगवान की निर्भयता को शूलपानी ने धृष्टता समझा। उसने सोचा–यह व्यक्ति बड़ा धृष्ट है। मरने की इच्छा से ही यहाँ आया है। गांववालों के मना करने पर भी इसने यहाँ रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया है। रात होने दो फिर इसकी खबर लेता हूँ।

सूर्य अस्तांचल की ओर चला गया। धीरेधीरे सर्वत्र अन्धेरा फैल गया। शूलपानी ने भी अपने पराक्रम दिखलाने शुरु कर दिये। सर्वप्रथम उसने अट्टहास किया जिसकी आवाज से सारा जंगल गूँज उठा। गांव में सोते हुए मनुष्यों की छातियाँ धड़कने लगीं और हृदय दहल उठे पर इस भीषण अट्टहास का भगवान पर जरा भी असर नहीं हुआ। वे निश्चलभाव से ध्यान में मग्न रहे। अब शूलपानी ने हाथी का रूप बनाकर भगवान पर दन्तप्रहार किये और उन्हें पैरोंतले रौंधा, किन्तु शूलपानी फिर भी उन्हें विचलित नहीं कर सका। अन्त में कई क्रूर प्राणियों के रूप बना बना कर भगवान को कष्ट दिया लेकिन भगवान के मन को वह क्षुब्ध नहीं कर सका।

अंत में वह भगवान की दृढ़ता एवं अपूर्व क्षमता के सामने हार गया। वह शान्त होकर क्षमाशील भगवान के चरणों में गिर पड़ा और अपनी क्रूरता के लिये भगवान से क्षमा याचना करने लगा। भगवान के प्रभाव से शूलपानी की क्रूरता जाती रही और वह सदा के लिये दयावान बन गया।

उस दिन भगवान ने पिछली रात में एक मुहूर्त भर निद्रा ली जिसमें उन्होंने निम्न दस स्वप्न देखे–

(१) अपने हाथ से ताल पिशाच को मारना।
(२) अपनी सेवा करता हुआ श्वेत पक्षी।
(३) चित्रकोकिल पक्षी को अपनी सेवा करते हुए।
(४) सुगन्धित दो पुष्पमालाएँ।
(५) सेवा में उपस्थित गोवर्ग।
(६) पुष्पित–कमलोंवाला पद्मसरोवर।
(७) समुद्र को अपनी भुजा से पार करना।
(८) उदीयमान सूर्य की किरणों का फैलना।
(९) अपनी आंतों से मानुष्योत्तर पर्वत को लपेटना।
(१०) मेरुपर्वत पर चढ़ना।

रात्रि को शूलपानी का अट्टहास सुनकर गाँव के लोगों ने यह अनुमान कर लिया था कि शूलपानी ने भगवान को मार डाला है और गीतगान करते हुए सुना तब समझा कि वह यक्ष महावीर की मृत्यु की खुशी में अब आनन्द मना रहा है।

अस्थिक गांव में उत्पल नामक एक निमित्तवेत्ता रहता था। वह किसी समय पार्श्वनाथ की परम्परा का साधु था। बाद में गृहस्थ होकर निमत्त-ज्योतिष से अपनी आजीविका चलाता था।

उत्पल ने जब सुना कि शूलपानी के देवालय में भगवान महावीर ठहरे हैं तो उसे बड़ी चिन्ता हुई और अशुभ कल्पनाओं में सारी रात बिताकर सबेरे ही इन्द्रशर्मा पुजारी एवं अन्य ग्रामवालों के साथ शूलपानी के मन्दिर में पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उत्पल ने देखा कि महावीर के चरणों में पुष्प-गन्धादि द्रव्य चढ़े हुए हैं। यह दृश्य देखकर ग्रामवासी और उत्पल नैमित्तिक के आनन्द की सीमा न रही। वे भगवान के चरणों में गिर पड़े और भगवान के गुणगान गाने लगे। उन्होंने भगवान से कहा—भगवन्? आपने यक्ष की क्रूरता मिटाकर ग्रामनिवासियों पर महान् उपकार किया है। सचमुच आप धन्य हैं।

उत्पल हर्षावेश में विना पूछे ही भगवान के दस स्वप्नों का फल बताते हुए कहने लगा—

✓ १-आप मोहनीय कर्म का अन्त करेंगे।

२-शुक्लध्यान में आप सदा रहेंगे।

३-आप द्वादशाङ्गी का उपदेश देंगे।

४-चतुर्विध संघ आपकी सेवा करेगा।

५-संसार समुद्र को आप पार करेंगे।

६-आपको अल्पसमय में ही केवलज्ञान होगा

७-तीनलोक में आपका यश फैलेगा।

८-समवशरण में विराजकर आप देशना देंगे।

९–समस्त देवदेवेन्द्र आपकी सेवा करेंगे ।

१०–आपने पुष्प की दो माला देखी है लेकिन उसका फल मैं नहीं जानता। अपने इस स्वप्न का फल खुद भगवान ने बतलाते हुए कहा–उत्पल ! इस स्वप्न का फल यह है कि मैं साधु और गृहस्थ ऐसे दो धर्म की प्ररूपणा करूँगा ।

यह प्रथम वर्षावास भगवान ने १५—१५ उपवास की आठ तपस्याओं से पूर्ण किया ।

मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को भगवान ने अस्थिक गांव से विहार कर दिया । भगवान मोराक सन्निवेश पधारे । वहाँ अच्छंदक नामक एक पाखण्डी रहता था । वह ज्योतिष मंत्र–तंत्रादि से अपनी आजीविका चलाता था । उसका सारे गांव में प्रभाव था । उसके प्रभाव को सिद्धार्थ व्यन्तर सह नहीं सका । इससे प्रभु की पूजा कराने के विचार से उसने गांव वालों को चत्मकार दिखाया । इससे लोग अच्छंदक की उपेक्षा करने लगे। अपनी महत्ता घटते देख वह भगवान के पास आया और प्रार्थना करने लगा–देव ! आप अन्यत्र चले जाइए कारण कि आपके यहाँ रहने से मेरी आजीविका ही नष्ट हो जायगी और मैं दुःखी हो जाऊँगा। ऐसी परिस्थिति में भगवान ने वहाँ रहना उचित नहीं समझा और वहाँ से वाचाला की ओर विहार कर दिया।

वाचाला नाम के दो सन्निवेश थे । एक उत्तर वाचाला और दूसरा दक्षिणवाचाला। दोनों सन्निवेशों के बीच सुवर्णवालुका तथा रौप्यवालुका नामकी दो नदियाँ बहती थीं । भगवान महावीर दक्षिण वाचाला होकर उत्तर वाचाला जा रहे थे । उस समय उनके दीक्षा के समय का आधा देवदूष्य सुवर्णवालुका नदी के किनारे काँटों में फंस गया । भगवान महावीर उसे वहीं छोड़ कर आगे चले और बाद में कभी वस्त्रग्रहण नहीं किया । आधा देवदूष्य पाने के लिये जो सोम नामक ब्राह्मण १३ महिनों से महावीर के पीछे–पीछे घूमता था,

वह उस वस्त्र को उठाकर ले गया । उस आधे देवदूष्य को लेकर वह रफूगर के पास गया । रफूगर से उसे अखण्ड बनवाकर वह उसको बेचने के लिये राजा नन्दिवर्द्धन के पास ले गया । नन्दिवर्द्धन ने उसे देखकर पूछा—यह देवदूष्य आपको कहाँ मिला है ? उस ब्राह्मण ने सारी कहानी सुनाई । इससे हर्षित हो राजा नन्दिवर्धन ने एक लाख दीनार देकर उसे खरीद लिया ।

उत्तरवाचाला जाने के लिये दो मार्ग थे । एक कनकखल आश्रमपद के भीतर होकर जाता था और दूसरा आश्रम के बाहर होकर जाता था । भीतर वाला मार्ग सीधा होने पर भी भयंकर और उजड़ा हुआ था और बाहर का मार्ग लम्बा और टेढ़ा होनेपर भी निर्भय था । भगवान महावीर ने भीतर के मार्ग से प्रयाण कर दिया । मार्ग में उन्हें ग्वाले मिले । उन्होंने भगवान से कहा—देवार्य ! यह मार्ग ठीक नहीं है । रास्ते में एक भयानक-दृष्टिविष सर्प रहता है जो राहगीरों को जलाकर भस्म कर देता है । अच्छा हो आप वापस लौटकर बाहर के मार्ग से जायें ।

भगवान महावीर ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया । वे चलते हुए सर्प के बिल के पास यक्ष के देवालय में जाकर ध्यानारूढ़ हो गये ।

सारे दिन आश्रमपद में घूमकर सर्प जब अपने स्थान पर लौटा तो उसकी दृष्टि ध्यान में खड़े भगवान पर पड़ी । वह भगवान को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । उसने अपनी विषमय दृष्टि भगवान पर डाली । साधारण प्राणी तो उस सर्प के एक ही दृष्टिपात से जलकर भस्म हो जाता था किन्तु भगवान पर उस सर्प की विषमयी दृष्टि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । दूसरी-तीसरी बार भी उसने भगवान पर विषमय दृष्टि फेंकी किन्तु भगवान पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा ।

तीन बार विषमय एवं भयंकर दृष्टि डालने पर भी जब भगवान को अचल देखा तो वह भगवान पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और भगवान

पर जोरों से झपटा। उसने भगवान के अंगुष्ठ को मुंह में पकड़ लिया और उसे चूसने लगा। रक्त के स्वाद में दूध सा स्वाद पाकर वह स्तब्ध होगया। वह भगवान की ओर देखने लगा। भगवान की शान्त मुद्रा देखकर उसका क्रोध शान्त होगया। इसी समय महावीर ने ध्यान समाप्त कर उसे संबोधित करते हुए कहा—"समझ! चण्ड कौशिक समझ !!"

भगवान के इस वचनामृत से सर्प का क्रूर हृदय पानी पानी हो गया। वह शान्त होकर सोचने लगा—'चण्डकौशिक' यह नाम मैंने कहीं सुना हुआ है। उहापोह करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो आया। किस प्रकार उसका जीव पूर्व के तीसरे भव में इस आश्रमपद का 'चण्ड-कौशिक' नामका कुलपति था, किस प्रकार दौड़ता हुआ गड्ढे में गिर-कर मरा और पूर्वसंस्कारवश भवान्तर में इस उद्यान में सर्प की जाति में उत्पन्न होकर इसका रक्षण करने लगा इत्यादि सब बातें उसको याद आगई। वह विनीत शिष्य की तरह भगवान महावीर के चरणों में गिर पड़ा और अपने पाप का प्रायश्चित करते हुए वर्तमान पापमय जीवन का अन्त करने के लिये अनशन कर लिया। भगवान भी वहीं ध्यानारूढ़ होगये।

सर्प को स्थिर देखकर ग्वाले उसके नजदीक आने लगे और उसे पत्थर मारने लगे। ग्वालों ने जब देखा कि वह सर्प किंचित्मात्र भी हिलता-डुलता नहीं, तो वे निकट आये और भगवान को वन्दन कर उनकी महिमा गाने लगे। ग्वालों ने सर्प की पूजा की। दूध दही और घी बेचनेवाली जो औरतें उधर से आतीं वे उस सर्प पर भक्ति से घी आदि डालतीं और नमस्कार करतीं। फल यह हुआ कि सर्प के शरीर पर चीटियाँ लगने लगीं। इस प्रकार सारी वेदनाओं को सम-भाव से सहनकर के वह सर्प आठवें देवलोक सहस्रार में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

भगवान ने आगे विहार किया और उत्तर वाचाला में नागसेन के घर पर जाकर पंद्रहदिन के उपवास का पारणा खीर से किया। वहाँ देवताओं ने पाच दिव्य प्रकट किये। नागसेन का लड़का १२ वर्षों से बाहर चला गया था। अकस्मात् वह भी इसी दिन घर वापस लौटा।

उत्तरवाचाला से विहार कर भगवान श्वेताम्बी आये। वहाँ के राजा प्रदेशी* ने भगवान को वैभवपूर्वक वन्दन किया। वहाँ से भगवान ने सुरभिपुर की ओर विहार किया। सुरभिपुर जाते हुए, मार्ग में भगवान को रथों पर जाते हुए पांच नैयक राजे मिले। उन सब ने भगवान को वन्दन किया। ये प्रदेशी राजा के पास जा रहे थे।

आगे विहार करते हुए रास्ते में गंगा नदी आयी। भगवान ने सिद्धदत्त नाविक की नौका में बैठकर गंगा पार की। नौका पार करते समय सुदंष्ट्र नामक देव ने नौका को उलटने की कोशिश की किन्तु भगवान के भक्त कम्बल और शंबल नाम के नागकुमार देवों ने उसके इस दुष्ट प्रयत्न को सफल नहीं होने दिया। भगवान नौका से उतरकर थूनाकसन्निवेश पधारे और वहाँ गांव के बाहर ध्यान करने लगे।

थूनाकसन्निवेश में 'पुष्य' नामक सामुद्रिक महावीर के सुन्दर लक्षण देखकर बड़ा प्रभावित होगया। उसे पता लगा कि यह भिक्षु भावी तीर्थङ्कर है।

भगवान थूनाक से विहार कर राजगृह पधारे। वहाँ तन्तुवाय की शाला में ठहरे और वर्षाकाल वहीं व्यतीत करने लगे।

इसी तन्तुवाय शाला में गोशालक नामक एक मंखजातीय युवाभिक्षु भी चातुर्मास बिताने के लिये ठहरा हुआ था।

भगवान महावीर मास खमण के अन्त में आहार लेते थे। महावीर के इस तप ध्यान और अन्य गुणों से गोशालक बहुत प्रभा-

[* यह प्रदेशीराजा केशी श्रमण से श्रावकव्रत ग्रहण करने वाले प्रदेशीराजा से भिन्न लगता है।]

वित हुआ और उसने महावीर का शिष्य होने का निश्चय कर लिया। उसने भगवान से भेंट की और अनेक वार अपना शिष्यत्व स्वीकार करने की प्रार्थना की। अन्त में भगवान ने मौनभाव से उसका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

चातुर्मास की समाप्ति के वाद भगवान कोल्लागसन्निवेश पधारे। कोल्लाग से भगवान गोशालक के साथ सुवर्णखल, नन्दपाटक, आदि गांवों में होते हुए चंपा पधारे। तीसरा चातुर्मास भगवान ने चंपा में ही व्यतीत किया। इस चातुर्मास में भगवान ने दो दो मास की तपस्या की। पहले दो मास खमण का पारणा चम्पा में किया और दूसरे दो मास खमण का पारणा चंपा के वाहर। वहाँ से आपने कालायसन्निवेश की ओर विहार कर दिया। पत्तकालय, कुमार सन्निवेश, चोराक– सन्निवेश आदि गावों में अनेक प्रकार के उपसर्ग और परिषह सहते हुए भगवान पृष्ठचंपा पधारे। चौथा चातुर्मास आपने पृष्ठचम्पा में ही व्यतीत किया। चातुर्मास समाप्त होने पर वाहरगांव में तप का पारणा कर आपने कयंगला की ओर विहार कर दिया। कयंगला में दरिद्दथेर के मन्दिर में एक रात रहे। साथ में गोशालक भी था। दूसरे दिन विहार कर भगवान श्रावस्ती पधारे। भगवान ने वहाँ कायोत्सर्ग किया। वहाँ से हलिद्दुग नामक विशाल वृक्ष के नीचे ध्यान किया। वहाँ आग के कारण ध्यानस्थ भगवान के पैर झुलस गये।

दोपहर के समय भगवान ने वहाँ से विहार किया और नंगला गांव के वाहर वासुदेव के मन्दिर में जाकर ठहरे। नंगला से आप आवत्ता गांव गये और बलदेव के मन्दिर में ध्यान किया। आवत्ता से विचरते हुए भगवान और गोशालक चोरायसन्निवेश होकर कलंवुआसन्निवेश की ओर गये।

कलंवुआ के अधिकारी मेघ और कालहस्ती जमींदार होते हुए भी आस पास के गांवों में डाका डालते थे। जिस समय भगवान वहाँ

पहुँचे कालहस्ती डाकुओं के साथ डाका डालने आ रहा था। इन दोनों को देखकर डाकुओं ने पूछा–"तुम कौन हो ?" इन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। कालहस्ती ने विशेष शंकित होकर इन्हें पिटवाया और प्रत्युत्तर न मिलने से बन्धवाकर मेघ के पास भेज दिया।

मेघ ने महावीर को गृहस्थाश्रम में एकबार क्षत्रियकुण्ड में देखा था। उसने महावीर को देखते ही पहिचान लिया और तुरंत मुक्त करवाकर बोला–भगवन् ! क्षमा कीजिये ! आपको न पहिचानने से यह अपराध होगया है। ऐसा कहकर उसने भगवान का बहुत मान किया और उन्हें विदा किया।

अभी बहुत कर्म क्षय करना बाकी है और अनार्यदेश में कर्म निर्जरा में सहायक अधिक मिलेंगे, यह सोचकर भगवान ने राढ़ भूमि की ओर विहार कर दिया। यहाँ पर अनार्य लोगों की अवहेलना निंदा, तर्जना और ताड़ना आदि अनेक उपसर्गों को सहते हुए आपने बहुत से कर्मों की निर्जरा कर डाली।

भगवान राढ़भूमि से लौट रहे थे। उसके सीमा प्रदेश के पूर्णकलश नामक अनार्यगांव से निकलकर आप आर्य देश की सीमा में आरहे थे। रास्ते मे चोर मिले उन्होंने भगवान के दर्शन को अपशकुन मानकर उन पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र ने तत्काल उपस्थित होकर चोरों के आक्रमण को निष्फल कर दिया।

आपने आर्यदेश में पहुँच कर मलयदेश की राजधानी भद्दिलनगरी में पांचवाँ चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास–समाप्ति पर भगवान ने भद्दिलनगर के बाहर पारणा किया और वहाँ से चलकर आप कयलि–समागम पधारे।

भगवान कयलि–समागम से अम्बूसंड और तंवाय सन्निवेश गये। तबाय सन्निवेश में नन्दिषेण पार्श्वापत्य से गोशालक की तकरार हुई तंबाय सन्निवेश से भगवान कूपिय सन्निवेश गये। यहाँ पर आपको

गुप्तचर समझकर राजपुरुषों ने पकड़ा पीटा और कैद करलिया। विजया और प्रगल्भा नाम की परिव्राजिका को जब इस बात का पता चला तो वह तत्काल राजपुरुषों के पास पहुँची और उन्हें महावीर का परिचय दिया। महावीर का वास्तविक परिचय जब राजपुरुषों को मिला तो उन्होंने भगवान से क्षमायाचना की और भगवान को वन्दन कर उन्हे विदा किया।

कुपियसन्निवेश से भगवान ने वैशाली की ओर विहार किया। गोशालक ने इससमय आपके साथ चलने से इन्कार कर दिया। उसने कहा आपके साथ रहते हुए मुझे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है परन्तु आप कुछ भी सहायता नहीं देते इसलिये मै आपके साथ नहीं चलूँगा। भगवान ने कुछ नहीं कहा।

भगवान क्रमशः वैशाली पहुँचे और लोहे के कारखाने में ठहरे। यहाँ एक लोहार भगवान के दर्शन को अमंगल मानकर हथौड़ा लेकर उन्हें मारने के लिये दौड़ा परन्तु उसके हाथ पांव वहीं स्थंभित होगये।

वैशाली से आप ग्रामाक सन्निवेश पधारे। वहाँ बिभेलक यक्ष ने आपकी खूब महिमा की। ग्रामाक से शालिशीर्ष पधारे। यहाँ कटपूतना नाम की व्यंतरी ने आपको बड़ा कष्ट दिया। अन्त में वह भगवान की प्रशंसक बनी।

शालिशीर्ष से विहार कर भद्दिया नगरी आये और छठा चातुर्मास आपने भद्दिया में ही व्यतीत किया। चातुर्मास समाप्ति के बाद चातुर्मास तप का पारणा नगरी के बाहर किया। वहाँ से आपने मगधदेश की ओर विहार कर दिया।

सातवाँ चतुर्मास आपने मगधदेश को नगरी आलंभिया में व्यतीत किया। चातुर्मास समाप्ति पर आपने चातुर्मासिक तप का पारणा किया। वहाँ से विहार कर आप कुण्डाक सन्निवेश होते हुए मद्दना सन्निवेश बहुसाल तथा लोहार्गल पधारे। लोहार्गल के राजा जितशत्रु ने आपको

शत्रुपक्ष का आदमी मानकर पकड़ लिया। यहाँ उत्पल ज्योतिषी ने राजा को आपका परिचय देकर आपको मुक्त करवा दिया। वहाँ से पुरमिताल, उन्नाग तथा गोभूमि होते हुए वे राजगृह पधारे। आठवाँ चातुर्मास आपने राजगृह में ही व्यतीत किया।

चातुर्मास के बाद विशेष कर्मों को खपाने के लिये आपने वज्रभूमि तथा शुद्धभूमि जैसे अनार्य प्रदेश में विहार किया यहाँ भी आपको अनेक प्रकार के उपसर्ग सहने पड़े। अनार्य भूमि में आपको चातुर्मास के योग्य कहीं भी स्थान नहीं मिला अतः आपने नौवाँ चातुर्मास चलते फिरते व्यतीत किया।

अनार्य भूमि से निकल कर भगवान गोशालक के साथ कूर्मग्राम पधारे। कूर्मग्राम के बाहर वैश्यायन नामक तापस औंधे मुख लटकता हुआ तपस्या कर रहा था। धूप से आकुल होकर उसकी जटाओं से जूएँ गिर रही थीं और वैश्यायन उन्हें पकड़ पकड़ कर अपनी जटा में डाल देता था। गोशालक यह दृश्य देखकर बोला—भगवन! यह जुओं को स्थान देने वाला मुनि है या पिशाच?

गोशालक ने बार बार उक्त बात दोहराई। गोशालक के मुँह से बारबार उक्त बातें सुनकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने गोशालक को मारने के लिये तेजोलेश्या छोड़ी परन्तु उसी समय भगवान ने शीतलेश्या छोड़कर गोशालक को बचा लिया।

इस अवसर पर गोशालक ने तेजोलेश्या प्राप्ति का उपाय भगवान से पूछा। भगवान ने उसे उपाय बता दिया। तेजोलेश्या की साधना करने के लिये वह भगवान से जुदा हुआ और श्रावस्तीमें हालाहला कुम्भारिण के घर रहकर तेजोलेश्या की साधना करने लगा।

भगवान की कहीहुई विधि के अनुसार छः मास तक तप और आतापना करके गोशालक ने तेजोलेश्या प्राप्त कर ली और परीक्षा के तौर पर उसका पहला प्रयोग कुएँ पर पानी भरती हुई एक दासी पर किया।

तेजोलेश्या प्राप्त करने के बाद गोशालक ने छः दिशाचरों से निमित्तशास्त्र पढ़ा जिससे वह सुख दुःख, लाभ--हानि, जीवन और मरण इन छः बातों में सिद्धवचन नैमित्तिक बन गया । तेजोलेश्या और निमित्त ज्ञान जैसी असाधारण शक्तियों से गोशालक का महत्त्व बढ़ गया। उसके अनुयायी बढ़ने लगे । वह अपने संप्रदाय आजीवकों का आचार्य बन गया ।

सिद्धार्थपुर से भगवान वैशाली पधारे । वहाँ के बालक आपको पिशाच मानकर सताने लगे। सिद्धार्थ राजा के मित्र शंख को इस बात का पता लगा तो उसने बालकों को भगा दिया। शंख राजा ने भगवान से क्षमा याचनाकर वन्दना की ।

वैशाली से भगवान वाणिज्यग्राम पधारे । वैशाली और वाणिज्यग्राम के बीच गंडकी नदी पड़ती थी । भगवान ने उसे नाव द्वारा पार किया। वाणिज्यग्राम में आनन्द नाम का अवधिज्ञानी श्रावक रहता था उसने आपको वन्दन कर कहा--भगवन् ! अब आपको अल्पकाल में ही केवलज्ञान उत्पन्न होगा ।

वाणिज्यग्राम से भगवान क्रमशः श्रावस्ती पधारे और दसवाँ चातुर्मास आपने श्रावस्ती में ही बिताया । चातुर्मास समाप्ति के बाद भगवान सानुलट्ठिय पधारे। वहाँ आपने सोलह की तपस्या की और महाभद्र और सर्वतोभद्र प्रतिमाओं का आराधन किया । अपनी तपस्या का पारणा आनन्द गाथापति की दासी द्वारा फेंके जाने वाले अन्न से किया।

सानुलट्ठिय से भगवान ने दृढ़भूमि की तरफ विहार किया और उसके बाहर पेढालउद्यान स्थित पोलासचैत्य में जाकर अट्ठम तप कर रात भर एक अचित्त पुद्गल पर निर्निमेष दृष्टि से ध्यान किया । भगवान के इस ध्यान की इन्द्र ने प्रशंसा की । संगम नाम के देव को यह प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। वह तत्काल भगवान के पास आया और उन्हें ध्यान से विचलित करने के लिये कष्टदायक २० उपसर्ग किये किन्तु उसमें वह असफल रहा ।

वे बीस उपसर्ग ये हैं ।

(१) पहले उसने प्रलयकारी धूल की भीषण वृष्टि की । भगवान के नाक, आँख, कान उस धूल से भर गये; लेकिन् अपने ध्यान से वे जरा भी विचलित नहीं हुए ।

(२) धूल की वर्षा करने का उपद्रव शान्त होते ही उसने वज्र जैसी तीक्ष्ण मुँहवाली चीटियाँ उत्पन्न की । चीटियों ने महावीर के सारे शरीर को खोखला बना दिया ।

(३) फिर उसने मच्छर के झुण्ड के झुण्ड भगवान पर छोड़े जो उनके शरीर को छेद कर खून पीने लगे । उस समय भगवान के शरीर में से बहते हुए दूध जैसे खून से भगवान का शरीर झरने वाले पहाड़ सरीखा मालूम होता था ।

(४) यह उपसर्ग शान्त ही नहीं हुआ था कि प्रचण्ड मुखवाली (घृतेलिका) दीमक आकर भगवान के शरीर से चिपट गयीं और उनको काटने लगीं । उनको देखने से ऐसा लगता था मानो भगवान के रोंगटे खड़े हो गये हों ।

(५) उसके बाद उस देव ने विच्छुओं को उत्पन्न किया, जो अपने तीखे दंशों से भगवान के शरीर को डसने लगे ।

(६) फिर उसने न्यौले उत्पन्न किये, जो भयंकर शब्द करते हुए भगवान की ओर दौड़े और उनके शरीर के मांस–खण्ड को छिन्न–भिन्न करने लगे ।

(७) उसके पश्चात् उसने भीमकाय सर्प उत्पन्न किये । वे भगवान को काटने लगे । पर जब उनका सारा विष निकल गया तो ढीले होकर गिर पड़े ॥

(८) फिर चूहे उत्पन्न किये । जो भगवान के शरीर को काटते और उस पर पेशाब करके भगवान के शरीर में अधिक जलन उत्पन्न करते ।

(९) उसने लम्बी सूंड वाला हाथी उत्पन्न किया जो भगवान को उछाल कर अपने नुकीले दांतों पर झेल लेता था और उन्हें नीचे

डालकर उनपर दाँतों का प्रहार करता था। जिससे वज्र जैसी भगवान की छाती में से अग्नि की चिनगारियाँ निकलती थीं। लेकिन हाथी भी अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुआ।

(१०) उसके बाद हथिनी ने भी भगवान पर वैसा ही उपद्रव किया। उनके शरीर को बींध डाला। अपने शरीर का जल-विष की तरह भगवान पर छिड़का। लेकिन वह भी भगवान को विचलित करने में सफल नहीं हुई।

(११) उसके बाद उसने पिशाच का रूप ग्रहण किया और भयानक रूप में किलकारी भरते हुए हाथ में बर्छी लेकर भगवान की ओर झपटा और कष्ट पहुँचाने लगा।

(१२) फिर उसने विकराल बाघ का रूप धारण किया। उसने वज्र जैसे दांतों से व त्रिशूल की तरह नखों से भगवान के शरीर का विदारण किया।

(१३) फिर उसने सिद्धार्थ और त्रिशला का रूप धारण किया और हृदय विदारक ढंग से विलाप करते हुए कहने लगा—"हे वर्द्धमान ! तुम वृद्धावस्था में हमे छोड़कर कहाँ चले गये।" लेकिन भगवान अपने ध्यान में स्थित रहे।

(१४) उसके बाद उसने भगवान के दोनों पैरों के बीच अग्नि जलाकर उन पर भोजन पकाया।

(१५) उसने फिर चाण्डाल का रूप धारण किया और भगवान के शरीर पर विविध पक्षियों के पिंजरे लटका दिये, जो भगवान के शरीर पर चोंच और नख के प्रहार करने लगे।

(१६) फिर उसने भयंकर आन्धी चलाई। वृक्षों के मूल उखाड़ता-हुआ और मकानों की छतों को उड़ाताहुआ वायु गगनभेदी निनाद के साथ बहने लगा। भगवान महावीर कई बार ऊपर उड़ गये और फिर नीचे गिरे; लेकिन फिर भी वे ध्यान से विचलित नहीं हुए।

(१७) उसके बाद उसने बवन्डर चलाया जिसमें भगवान चक्र की तरह घूमने लगे लेकिन फिर भी वे ध्यान से च्युत नहीं हुए।

(१८) थककर उसने भगवान पर कालचक्र चलाया जिससे भगवान घुटने तक जमीन में धँस गये लेकिन इतने पर भी भगवान का ध्यान भंग नहीं हुआ।

इन प्रतिकूल उपसर्गों से भगवान को विचलित करने में अपने को असमर्थ पाकर उसने अनुकूल उपसर्गों द्वारा भगवान का ध्यान भंग करने का प्रयास किया।

(१९) एक विमान में बैठकर भगवान के पास आया और बोला—"कहिये आपको स्वर्ग चाहिये या अपवर्ग ?" लेकिन भगवान महावीर फिर भी अडिग रहे।

(२०) अन्त में उसने अन्तिम उपाय के रूप में एक अप्सरा को लाकर भगवान के सन्मुख खड़ी कर दिया। लेकिन उसके हावभाव भी भगवान को विचलित नही कर सके।

जब रात्रि पूरी हुई और प्रातःकाल हुआ तब भगवान ने अपना ध्यान पूरा करके बालुका ग्राम की ओर विहार कर दिया।

पोलासचैत्य से चलकर भगवान ने बालुका सुभोग, सुच्छेत्ता, मलय और हत्थीसीस आदि स्थानों में भ्रमण किया और उन सभी ग्रामों में संगम तरह तरह के उपसर्ग करता रहा। भगवान को उसने छह महीने तक अनेक कष्ट दिये। अन्त में हारकर वह भगवान की प्रशंसा करता हुआ स्वस्थान चला गया।

व्रजगांव, श्रावस्ती, कोशांबी, वाराणसी, राजगृह और मिथिला आदि नगरों में घूमते हुए भगवान वैशाली पधारे और वहीं ग्यारवाँ चातुर्मास पूरा किया। यहाँ भूतानन्द नागकुमारेन्द्र ने आकर प्रभु को वन्दना की।

वैशाली में जिनदत्त नाम का श्रेष्ठी रहता था। उसकी सम्पत्ति चलीजाने से वह 'जीर्णसेठ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह हमेशा भगवान के दर्शन करने आता था। उसके मन में यह अभिलाषा थी कि प्रभु को मै अपने घर पर पारणा कराऊँगा और अपने जीवन को सफल करूँगा।

चातुर्मास समाप्त हुआ। जीर्णसेठ ने प्रभु को भक्तिपूर्वक वन्दना कर प्रार्थना की-भगवन्! आज मेरे घर पारणा करने के लिये पधारिए। वह घर आया और भगवान के आने की प्रतीक्षा करने लगा। समय पर प्रभु आहार के लिए निकले और घूमते हुए पूरणसेठ के घर में प्रवेश किया। भगवान को देखकर पूरणसेठ ने दासी से सकेत किया-जो कुछ तैयार हो इन्हें दे दो। दासी ने उबाले हुए उड़द के बाकुले भगवान के हाथों में रख दिये। भगवान ने उसे निर्दोष आहार मानकर ग्रहण किया। देवताओं ने उसके घर पंचदिव्य प्रकट किये। लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। वह मिथ्याभिमानी पूरण कहने लगा कि, मैंने खुद प्रभु को परमान्न से पारणा कराया है।

जीर्णसेठ प्रभु को आहार देने की भावना से बहुत देर तक राह देखता रहा। उसके अन्तकरण में शुभ भावनाएँ उठ रही थीं। उसी समय उसने आकाश में होता हुआ देव-दुंदुभि नाद सुना। 'अहोदान! अहोदान!' की ध्वनि से उसकी भावना भंग हो गई। उसे मालूम हुआ कि-प्रभु ने पूरणसेठ के घर पारणा कर लिया है तो वह बहुत निराश हो गया। अपने भाग्य को कोसने लगा। पूरणसेठ के दान की प्रशंसा करने लगा। शुभ-भावना के कारण जीर्णसेठ ने अच्युत देवलोक का आयु बांधा।

वैशाली से विहार कर प्रभु अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए सुंसुमारपुर में आये और अष्टम तप सहित एक रात्रि की प्रतिमा ग्रहण

कर अशोकवृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे । यहाँ चमरेन्द्र ने शक्रेन्द्र के वज्र से भयभीत होकर भगवान की शरण ग्रहण की।

दूसरे दिन भगवान भोगपुर पधारे । यहाँ महेन्द्र नामक क्षत्रिय भगवान को लकड़ी लेकर मारने आया किन्तु सनत्कुमार देवेन्द्र ने उसे समझाकर रोक दिया ।

भोगपुर से विहार कर प्रभु नंदी गांव आये और मेंढक गांव होकर कोशांबी नगरी में आये। पौष वदि प्रतिपदा का दिन था । भगवान ने उसदिन तेरह बोल का भीषण अभिग्रह ग्रहण किया। 'राजकन्या हो, अविवाहित हो, सदाचारिणी हो, निरपराध होने पर भी जिसके पावों में वेड़ियाँ तथा हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई हों, सिर मुण्डा हुआ हो, शरीर पर काछ लगी हुई हो, तीन दिन का उपवास किये हो, पारणे के लिए उड़द के बाकले सूप में लिये हुए हो, न घर में हो, न बाहर हो, एक पैर देहली के भीतर तथा दूसरा बाहर हो । दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्नमुख हो और आँखों में आंसू भी हों, इन तेरह बातों से युक्त कोई स्त्री मुझे आहार दे तो मैं उसी से आहार करूँगा।'

उक्त प्रतिज्ञा करके भगवान प्रतिदिन कोशांबी में आहार के लिये जाते परन्तु कहीं भी अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था । इसप्रकार भगवान महावीर को भ्रमण करते करते चार मास बीत गये परन्तु उन्हें आहार लाभ न हुआ । वे नन्दा के घर आये । नन्दा कोशांबी के महामात्य सुगुप्त की पत्नी थी । नन्दा बड़े आदर के साथ आहार लेकर उपस्थित हुई परन्तु महावीर का अभिग्रह पूर्ण न होने से वे वापिस लौट गये। नन्दा को बहुत दुःख हुआ। उसने मंत्री से कहा— "इतने दिन हो गये, भगवान को भिक्षा नहीं मिल रही है, अवश्य ही कोई कारण होना चाहिये । कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे उन्हें आहार मिले ।" उस समय नन्दा के घर मृगावती की प्रतिहारी आई

हुई थी। उसने जो कुछ सुना अपनी रानी से कह सुनाया। रानी ने राजा से कहा कि ऐसे राज्य से क्या लाभ जो भगवान को आहार तक नहीं मिलता ? राजा ने मंत्री को बुलाकर इस बात की चर्चा की। राजा ने अपने धर्मगुरु से सब भिक्षुओं के आचार व्यवहार पूछकर उनका अपनी प्रजा में प्रचार किया, परन्तु फिर भी महावीर को भिक्षा-लाभ नहीं हुआ।

भगवान के अभिग्रह को पांच महीने हो चुके थे और छठा महिना पूरा होने में सिर्फ पांच दिन शेष रह गये थे। भगवान नियमानुसार इस दिन भी कोशाम्बी में भिक्षा-चर्या के लिये निकले और फिरते हुए सेठ धनावह के घर पहुँचे। यहाँ आपका अभिग्रह पूर्ण हुआ और आपने चन्दना राजकुमारी के हाथों भिक्षा ग्रहण की। देवों ने वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट किये।

कोशांबी से सुमंगल, सुच्छेता, पालक आदि गावों में होते हुए भगवान चम्पानगरी पधारे और चातुर्मासिक तप कर वहीं स्वातिदत्त ब्राह्मण की यज्ञशाला में वर्षावास बिताने लगे।

यहाँ पर भगवान की तपसाधना से आकृष्ट होकर पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो यक्ष रात्रि के समय आकर आपकी भक्ति करने लगे। स्वातिदत्त को जब इस बात का पता चला तो वह भी भगवान के पास आया और बोला—भगवन् ! आत्मा क्या वस्तु है ? सूक्ष्म का क्या अर्थ है और प्रत्याख्यान किसे कहते है ? भगवान ने उसका समाधान कर दिया।

चातुर्मास की समाप्ति के बाद भगवान जंभिय गांव की तरफ पधारे। जंभिय गांव में कुछ समय ठहर कर भगवान वहाँ से मिंढिय होते हुए छम्माणि गये और गांव के बाहर कायोत्सर्ग में लीन हो गये।

सन्ध्या के समय एक ग्वाला (जिसके कानों में भगवान ने अपने वासुदेव के पूर्वभव में सीसा तपाकर डाला था वही जीव) भगवान के

पास अपने बैलों को छोड़कर गांव में चला गया और जब वह वापस लौटा तो उसे बैल वहाँ नहीं मिले। उसने भगवान से पूछा–देवार्य! मेरे बैल कहाँ है? भगवान मौन रहे। इस पर ग्वाले ने क्रुद्ध होकर भगवान के दोनों कानों में काठ के कीले ठोंक दिये।

छम्माणि से भगवान मध्यमा पधारे और आहार के लिये फिरते हुए सिद्धार्थ वणिक के घर गये। सिद्धार्थ अपने मित्र खरक से बातें कर रहा था। भगवान को देखकर वह उठा और आदरपूर्वक उनको वन्दन किया।

उस समय भगवान को देखकर खरक बोला–भगवान का शरीर सर्व-लक्षण सम्पन्न होते हुए भी सशल्य है।

सिद्धार्थ ने कहा–मित्र भगवान के शरीर में कहाँ शल्य है? जरा देखो तो सही!

देखकर खरक ने कहा–यह देखो भगवान के कान में किसी ने काठ की कील ठोक दी हैं। सिद्धार्थ ने कहा, वैद्यराज शलाकायें निकाल डालो। महातपस्वी को अरोग्य पहुँचाने से हमें महा पुण्य होगा।

वैद्य और वणिक शलाका निकालने के लिये तैयार हुए पर भगवान ने स्वीकृति नहीं दी और आप वहाँ से चल दिये।

भगवान के स्थान का पता लगा कर सिद्धार्थ और खरक औषध तथा आदमियों को साथ लेकर उद्यान में गये और भगवान को तैल द्रोणी में बिठाकर तेल की मालिश करवाई। फिर अनेक मनुष्यों से पकड़वा कर कानों में से काष्ट कील खींच निकालीं। शलाका निकालते समय भगवान के मुख से एक भीषण चीख निकल पड़ी।

भगवान महावीर का यह अन्तिम भीषण परिषह था। परिषहों का प्रारंभ भी ग्वाले से हुआ और अन्त भी ग्वाले से ही हुआ।

केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान एक मुहूर्त तक वहीं ठहरे। इन्द्रादि देवों ने आकर भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। देवों ने समवशरण की रचना की। समवशरण में बैठकर भगवान ने देशना दी। इस प्रथम समवशरण में केवल देवता ही उपस्थित थे अतः विरति रूप संयम का लाभ किसी भी प्राणी को नहीं हुआ। यह आश्चर्यजनक घटना जैनागमों में 'अछेरा' के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे दश आश्चर्य हुए वे इस प्रकार हैं:—

दस आश्चर्य—

जो बात अभूतपूर्व (पहले कभी नहीं हुई) हो और लोक में विस्मय एवं आश्चर्य की दृष्टि से देखी जाती हो ऐसी बात को अच्छेरा (आश्चर्य) कहते हैं। इस अवसर्पिणीकाल में दस बातें आश्चर्य जनक हुई हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—उपसर्ग २—गर्भहरण ३—स्त्रीतीर्थङ्कर ४—अभव्या परिषद ५—कृष्ण का अपरकंका गमन ६—चन्द्र सूर्य अवतरण ७—हरिवंश कुलोत्पत्ति ८—चमरोत्पात ९—अष्टशत-सिद्धा १०—असंयत पूजा।

प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी के समय एक यानी एक समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ व्यक्तियों का सिद्ध होना। दसवें तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ स्वामी के समय में एक अर्थात् हरिवंशोत्पत्ति, उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लीनाथ स्वामी के समय एक यानी स्त्री तीर्थङ्कर। बाइसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ भगवान के समय में एक अर्थात् कृष्णवासुदेव का अपरकंका गमन। चौबीसवें तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी के समय में पांच अर्थात् १ उपसर्ग २ गर्भहरण ३ चमरोत्पात ४ अभव्या परिषद् ५ चन्द्रसूर्यावतरण। उपरोक्त दस बातें इस अवसर्पिणी में अनन्तकाल में हुई थीं अतः ये दस ही इस हुण्डा अवसर्पिणी में अच्छेरे माने जाते हैं।

नौवें तीर्थङ्कर भगवान सुविधिनाथ के समय तीर्थ के उच्छेद से होनेवाली असंयतों की पूजा रूप एक आश्चर्य हुआ। इस प्रकार असंयतों की पूजा भगवान सुविधिनाथ के समय प्रारंभ हुई थी इसलिये यह

अच्छेरा उन्हीं के समय का माना जाता है। वास्तव नवें तीर्थङ्कर से लेकर सोलहवें भगवान शान्तिनाथ तक बीच के सात अंतरों में तीर्थ का विच्छेद और असंयतों की पूजा हुई थी। भगवान ऋषभदेव के समय मरीचि, कपिल आदि असंयतों की पूजा तीर्थ के रहते हुई थी इसीलिए उसे अच्छेरा में नहीं गिना गया।

उस समय मध्यमा पावापुरी में सोमिल नामक ब्राह्मण बड़ा भारी यज्ञ करा रहा था। इस यज्ञ में भाग लेने के लिये दूर दूर से विद्वान ब्राह्मण वहाँ आये थे। उनमें ग्यारह विद्वान-१, इन्द्रभूति २, अग्निभूति, ३, वायुभूति ४, व्यक्त, ५, सुधर्मा ६, मंडिक ७, मौर्यपुत्र ८, अकम्पिक ९ अचल भ्राता १० मेतार्य और ११ प्रभास विशेष प्रतिष्ठित थे। इनके साथ क्रमशः ५००, ५००, ५००, ५००, ५००, ३५०, ३५०, ३००, ३००, ३०० एवं ३०० छात्र थे।

ये सभी कुलीन ब्राह्मण सोमिल ब्राह्मण के आमंत्रण से विशाल छात्र परिवार के साथ मध्यमा आये थे। इन ग्यारह विद्वानों को एक एक विषय में संदेह था परन्तु वे कभी किसी को पूछते नहीं थे क्योंकि उनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि उन्हें ऐसा करने से रोकती थी।

बोधिप्राप्त भगवान महावीर ने देखा कि मध्यमा नगरी का यह प्रसंग अपूर्व लाभ का कारण होगा। यज्ञ में आये हुए विद्वान् ब्राह्मण प्रतिबोध पायेंगे और धर्मतीर्थ के आधारस्तंभ बनेंगे। यह सोच कर भगवान ने वहाँ से उग्र विहार कर दिया और बारह योजन [४८ कोस] चल कर मध्यमा के 'महासेन' नामक उद्यान में उन्होंने वास किया। देवों ने समवशरण की रचना की। बत्तीस धनुष ऊँचे चैत्य वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान ने अपनी देशना प्रारम्भ कर दी। भगवान की देशना सुनने के लिये हजारों स्त्री पुरूष एवं देवतागण आने लगे।

भगवान महावीर के समवशरण में इतने बड़े जनसमूह एवं देवों को जाते हुए देख इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण भी क्रमशः अपने

अपने छात्र समूह के साथ समवशरण में पहुँचे । इन्होंने भगवान से शास्त्रार्थ किया । अपनी अपनी शंकाओं का समाधान पाकर ये सभी अपने अपने छात्रसमूह के साथ दीक्षित हो गये ।

इसप्रकार मध्यमा के समवशरण में एक ही दिन में ४४११ ब्राह्मणों ने निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार कर देवाधिदेव महावीर के चरणों में नतमस्तक हो श्रामण्यधर्म को स्वीकार किया ।

इन्द्रभूति आदि प्रमुख ग्यारह विद्वानों ने त्रिपदी पूर्वक द्वादशांगी की रचना की । अतः उन्हें गणधर पद से सुशोभित किया गया ।

इसके अतिरिक्त अनेक स्त्रीपुरुषों ने साधुधर्म और श्रावकधर्म स्वीकार किया । इस प्रकार भगवान महावीर ने वैशाख शुक्ला दसमी के दिन चतुर्वंघ संघ की स्थापना की ।

इसके बाद भगवान महावीर ने विशाल शिष्य परिवार के साथ राजगृह की ओर विहार कर दिया । क्रमशः विहार करते हुए भगवान राजगृह के गुणशील नामक उद्यान में पधारे ।

यहाँ के महाराज श्रेणिक सपरिवार राजसी ठाठ के साथ भगवान महावीर के दर्शन के लिये गये । देवनिर्मित समवशरण में विराज कर भगवान ने हजारों की संख्या में उपस्थित जनसमूह को उपदेश दिया । भगवान महावीर के उपदेश से प्रभावित हो राजकुमार मेघ, नन्दिषेण आदि अनेक स्त्री पुरुषों ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की । भगवान ने अपना १३ वाँ चातुर्मास यहीं व्यतीत किया ।

वर्षाकाल व्यतीत होनेपर भगवान ने विदेह की ओर विहार कर दिया । अनेक गावों में धर्मप्रचार करते हुए महावीर ब्राह्मणकुण्ड पहुँचे और नगर के बाहर बहुसाल उद्यान में विराजे ।

१४वाँ चातुर्मास—

ऋषभदत्त तथा देवनन्दा की दीक्षा—

ब्राह्मणकुण्ड ग्राम के मुखिया का नाम ऋषभदत्त था । यह कोडाल गोत्रीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण था । इसकी पत्नी देवानन्दा जालंधर गोत्रीया

ब्राह्मणी थी। ऋषभदत्त और देवानन्दा ब्राह्मण होते हुए भी जीव, अजीव, पुण्य-पाप आदि तत्त्वों के ज्ञाता श्रमणोपासक थे। बहुसाल में भगवान का आगमन सुनकर ऋषभदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ। वह देवानन्दा को साथ में ले, धार्मिक रथ पर आरूढ़ हो बहुसाल उद्यान में पहुँचा। विधिपूर्वक सभा में जाकर वन्दन नमस्कार कर भगवान का उपदेश सुनने लगा।

देवानन्दा भगवान को अनिमेष दृष्टि से देखने लगी। उसका पुत्र-स्नेह उमड़ पड़ा। स्तनों में से दूध की धारा बह निकली। उसकी कंचुकी भीग गई। उसका सारा शरीर पुलकित हो उठा।

देवानन्दा के इन शारीरिक भावों को देखकर गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया —भगवन्! आपके दर्शन से देवानन्दा का शरीर पुलकित क्यों हो गया? इनके नेत्रों में इस प्रकार की प्रफुल्लता कैसे आगई और इनके स्तनों से दुग्धस्राव क्यों होने लगा?

भगवान ने उत्तर दिया—गौतम! देवानन्दा मेरी माता है और मैं इनका पुत्र हूँ। देवानन्दा के शरीर में जो भाव प्रकट हुए उनका कारण पुत्रस्नेह ही है।

उसके बाद भगवान ने महती सभा के बीच अपनी माता देवानन्दा को एवं पिता ऋषभदत्त को उपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुनकर दोनों को वैराग्य उत्पन्न गया। परिषद् के चले जाने पर ऋषभदत्त उठा और भगवान को वन्दन कर बोला-भगवन्! आपका कथन सत्य है। मैं आपके पास प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिये। इसके बाद ऋषभदत्त ने गृहस्थवेष का परित्याग कर मुनिवेष पहन लिया और भगवान के समीप सर्व विरति रूप प्रव्रज्या ग्रहण करली। माता देवानन्दा ने भी अपने पति का अनुसरण किया। उसने आर्या चन्दना के पास दीक्षा ग्रहण करली।

भगवान के पास प्रव्रज्या लेने के बाद ऋषभदत्त अनगार ने स्थविरों के पास सामायिकादि एकादश अंगों का अध्ययन किया और कठोर तप

कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देवानन्दा को भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। इन दोनों ने अन्तिम समय में एकमास का अनशन कर निर्वाण पद प्राप्त किया।

भगवान महावीर की पुत्री सुदर्शना ने भी जो जमालि से व्याही थी इसी वर्ष एकहजार स्त्रियों के साथ आर्या चन्दना के पास दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने अपना १४वाँ चातुर्मास वैशाली महानगर में व्यतीत किया।

१५वाँ चातुर्मास—

चातुर्मास समाप्त होने पर भगवान ने वैशाली से वत्स भूमि की ओर विहार किया। मार्ग में अनेक ग्राम नगरों को पावन करतेहुए वे कोशाम्बी पहुँचे और नगर के वाहर चन्द्रावतरण उद्यान में ठहरे।

कोशाम्बी के तत्कालीन राजा का नाम उदयन था। उदयन वत्सदेव के प्रसिद्ध राजा सहस्रानीक का पौत्र तथा राजा शतानीक का पुत्र और वैशाली के सम्राट् चेटक का दोहता होता था। वह अभी नाबालिक था। अतः राज्य का प्रबन्ध उसकी माता मृगावतीदेवी प्रधानों की सलाह से करती थी। यहाँ जयन्ती नामकी प्रसिद्ध श्राविका रहती थी।

भगवान महावीर का आगमन सुनकर महाराज उदयन, श्राविका जयन्ती, महारानी मृगावती तथा नगरी के अनेक नागरिकों ने भगवान के दर्शन किये और उपदेश श्रवण किया। जयन्ती श्राविका ने भगवान से अनेक प्रश्न किये और उनका समाधान पाकर उसने आर्या चन्दना से दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने वहाँ से श्रमणसंघ के साथ श्रावस्ती की ओर विहार किया। श्रावस्ती पहुँच कर आप कोष्ठक उद्यान में ठहरे। यहाँ अनगार सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठित आदि की दीक्षाएँ हुईं।

कोशल प्रदेश से विहार करते हुए श्रमण भगवान महावीर विदेह भूमि पधारे। यहाँ वाणिज्यग्राम निवासी गाथापति आनन्द ने एवं

उनकी पत्नी शिवानन्दा ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये । इस वर्ष का चातुर्मास आपने वाणिज्यग्राम में व्यतीत किया ।

१६वाँ चातुर्मास—

वाणिज्यग्राम का चातुर्मास पूर्णकर भगवान ने श्रमण संघ के साथ मगध भूमि में प्रवेश किया । अनेक ग्राम नगरों को पावन करते हुए आप राजगृह के गुणशील उद्यान में पधारे । यहाँ के सम्राट् श्रेणिक ने सदलबल भगवान के दर्शन किये । राजगृह के प्रसिद्ध धनपति शालिभद्र ने तथा धन्य आदि ने भगवान से प्रवज्या ग्रहण की ।

इस वर्ष का चातुर्मास भगवान ने राजगृह में विताया ।

१७वाँ चातुर्मास—

राजगृह से भगवान चंपा पधारे । यहाँ चंपा के राजा दत्त और उसकी रानी रक्तवती के पुत्र महचंद कुमार ने आपके उपदेश से दीक्षा ग्रहण की । चंपा से आप विकट मार्ग को पार करते हुए सिन्धुसौवीर की राजधानी वीतभय पधारे । वीतभय का राजा उदायन श्रमणोपासक था । भगवान महावीर के दर्शन कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ । कुछ काल वहाँ विराजकर भगवान वाणिज्यग्राम पधारे और आपने श्रमण संघ के साथ यहीं चातुर्मास पूरा किया ।

१८वाँ चातुर्मास—

चातुर्मास की समाप्ति के बाद आपने काशी देश की राजधानी वाराणसी की ओर विहार कर दिया । अनेक स्थानों पर निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार करते हुए आप वाराणसी पहुँचे और वहां कोष्ठक नामक उद्यान में ठहरे ।

यहाँ के करोड़पति गृहस्थ चुलनी पिता और उसकी स्त्री श्यामा तथा सुरादेव और उसकी स्त्री धन्या ने भगवान से श्रावक व्रत ग्रहण किये और निर्ग्रन्थ प्रवचन के आधारस्तम्भ बने ।

बनारस से आपने पुनः राजगृह की ओर विहार किया । मार्ग में आलभिया नगरी आई । भगवान श्रमणसंघ के साथ आलभिया के शंखवन उद्यान में ठहरे । यहाँ के हजारों स्त्रीपुरुषों ने भगवान

का प्रवचन सुना । आलभिया के प्रसिद्ध धनिक गृहपति चुल्लशतक और उसकी स्त्री बहुला ने श्रावकधर्म स्वीकार किया ।

यहाँ पोग्गल नामका एक विभंगज्ञानी परिव्राजक रहता था । उसने भगवान का प्रवचन सुनकर आर्हती दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा लेकर ग्यारह अंग पढ़ा और कठोरतप करके अन्त में निर्वाण को प्राप्त हुआ ।

आलभिया से भगवान राजगृह पधारे और गुणशील उद्यान में ठहरे । यहाँ के प्रसिद्ध धनिक, मंकाती, किंकिम, अर्जुन और काश्यप ने निर्ग्रन्थ प्रवचन को सुनकर आप से दीक्षा ग्रहण की ।

भगवान का यह चातुर्मास राजगृह में व्यतीत हुआ ।

१९ वाँ चातुर्मास—

चातुर्मास के बाद भी भगवान राजगृह में ही धर्म-प्रचारार्थ ठहरे । इस सतत प्रचार का आशातीत लाभ हुआ । राजगृह के अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों ने भगवान से श्रमणधर्म स्वीकार किया । जालिकुमार, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिषेण, दीर्घदन्त, लष्टदन्त, गूढ़दन्त, शुद्धदन्त, हल्ल, द्रुम, द्रुमसेन, महाद्रुमसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंह-सेन, पूर्णसेन इन श्रेणिकों के तेइस पुत्रों ने और नन्दा, नन्दमती, नन्दोत्तरा, नन्दसेणिया, महया, सुमरुता, महामरुता, मरुदेवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमणा, और भूतदिन्ना आदि श्रेणिक की १३ रानियों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की ।

उस समय भगवान महावीर के दर्शन के लिये मुनि आर्द्रक गुणशील उद्यान में जा रहे थे । मार्ग में उन्हें गोशालक, बौद्ध भिक्षु, हस्तितापस आदि अनेक अन्य तीर्थिक मिलें । आर्द्रक ने उन्हें वाद में पराजित किया । वाद में पराजित कुछ हस्तितापसों एवं स्वप्रतिबोधित पांच सौ चोरों के साथ आर्द्रक मुनि भगवान से आ मिला । भगवान ने उन सब को प्रव्रजित किया । इस वर्ष भी भगवान ने वर्षावास राजगृह में ही बिताया ।

२०वाँ चातुर्मास—

वर्षाकाल पूरा होने पर भगवान ने कोशांवी की ओर विहार किया। मार्ग में आलभिया नगरी पड़ती थी। भगवान कुछ कालतक आलभिया में ही विराजे। यहाँ ऋषिभद्र प्रमुख श्रमणोपासक रहते थे। उन्होंने भगवान से प्रश्न पूछे और योग्य समाधान पाकर बड़े प्रसन्न हुए। आलभिया से विहार कर भगवान कोशांवी पधारे।

उस समय चण्ड-प्रद्योतन जो उज्जैनी का राजा था। उसने कोशाबी को घेर लिया था। कोशांवी पर शासन महारानी मृगावती करती थी। उनका पुत्र उदयन नाबालिग था। चण्डप्रद्योतन मृगावती को अपनी रानी बनाना चाहता था।

भगवान महावीर के आगमन से मृगावती को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह महावीर के समवशरण में पहुँची। उस समय चण्डप्रद्योतन भी भगवान की सेवामें उपस्थित था। महारानी मृगावती आत्मकल्याण का सुन्दर अवसर जानकर सभा के बीच खड़ी होकर बोली—भगवन्! मै प्रद्योत की आज्ञा लेकर आपके पास दीक्षा लेना चाहती हूँ। इसके बाद अपने पुत्र उदयन को प्रद्योत के संरक्षण में छोड़ते हुए उसने दीक्षा की आज्ञा मांगी। यद्यपि प्रद्योत की इच्छा मृगावती को स्वीकृति देने की नहीं थी पर उस महती सभा में लज्जावश इनकार नहीं कर सका।

अंगारवती आदि चण्डप्रद्योतन की आठ रानियों ने भी दीक्षा लेने की आज्ञा मागी। प्रद्योत ने उन्हे भी आज्ञा दे दी। भगवान महावीर ने मृगावती अंगारवती आदि रानियों को दीक्षा देकर उन्हें आर्या चन्दना को सौंप दिया। भगवानने कोशावी से विहार कर विदेह की राजधानी वैशाली में पदार्पण किया। आपने यहीं चातुर्मास व्यतीत किया।

२१वाँ चातुर्मास—

वर्षावास पूरा होने पर भगवान ने वैशाली से उत्तर विदेह की ओर विहार किया और मिथिला होते हुए काकन्दी पधारे। काकन्दी में धन्य, सुनक्षत्र, आदि को दीक्षा दी।

काकन्दी से भगवान ने पश्चिम की ओर विहार किया और श्रावस्ती होते हुए काम्पिल्य पधारे। काम्पिल्य निवासी कुण्डकोलिक गृहपति को श्रमणोपासक बनाकर अहिच्छत्रा होते हुए गजपुर पहुँचे यहाँ अनेक व्यक्तियों को प्रतिबोधित कर आप पोलासपुर पधारे। पोलासपुर के धनाढ्य कुम्भकार सद्दालपुत्र जो गोशालक मतानुयायी था उसकी शाला में विराजे।

भगवान महावीर का उपदेश सुनकर सद्दालपुत्र और उसकी भार्या अग्निमित्रा श्रमणोपासक बन गई।

जब गोशालक को सद्दालपुत्र के आजीविक संप्रदाय के परित्याग का समाचार मिला तो वह अपने संघ के साथ सद्दालपुत्र के पास आया और उसे पुनः आजीविक बनने के लिये समझाने लगा। गोशालक की बातों का सद्दालपुत्र पर जरा भी असर नहीं पडा। गोशालक निराश होकर चला गया।

भगवान ने इस वर्ष का चातुर्मास वाणिज्यग्राम में व्यतीत किया।

२२वाँ चातुर्मास—

वर्षाकाल बीतने पर भगवान राजगृह पधारे यहाँ महाशतक गाथापति ने श्रावकधर्म स्वीकार किया। साथ ही अनेक पार्श्वापत्य श्रमणों ने भी आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

इस वर्ष भगवान ने वर्षावास राजगृह में ही किया।

२३वाँ चातुर्मास—

वर्षाकाल पूरा होने पर भगवान विहार करते हुए क्रमशः कृतंगला नगरी पधारे और छत्रपलास चैत्य में विराजे। यहाँ श्रावस्ती के विद्वान परिव्राजक कात्यायन गोत्रीय स्कन्धक भगवान के पास आया और अपनी शंकाओं का समाधान पाकर भगवान के पास प्रव्रजित हो गया।

भगवान श्रावस्ती से विदेहभूमि की तरफ पधारे और वाणिज्यग्राम में आकर वर्षावास किया।

२४वाँ चातुर्मास—

वर्षाकाल पूरा होने पर भगवान वाणिज्यग्राम से ब्राह्मणकुण्ड के बहुसाल चैत्य में पधारे। यहाँ जमाली अपने पांच सौ साधुओं के साथ भगवान से अलग हो गया और उसने अन्यत्र विहार कर दिया। ब्राह्मणकुण्ड ग्राम से भगवान कोशांबी पधारे। यहाँ सूर्य चन्द्र ने पृथ्वी पर उतर कर भगवान के दर्शन किये। यहाँ से विहार कर काशीराष्ट्र में से होकर भगवान राजगृह के गुणशील उद्यान में पधारे। इस वर्ष में भगवान के शिष्य वेहास अभय आदि अनगारों ने विपुलपर्वत पर अनशन कर देवपद प्राप्त किया।

२५वाँ चातुर्मास—

भगवान ने इस वर्ष का चातुर्मास राजगृह में बिता कर चंपा की ओर विहार कर दिया।

मगधपति श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया इस कारण मगध का राजकुटुम्ब चम्पा में ही रहता था। भगवान निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रचार करते हुए चंपा पधारे और पूर्णभद्र उद्यान में ठहरे।

भगवान के आगमन का समाचार सुनकर कोणिक बड़े राजसी ठाठ से भगवान के दर्शन के लिये गया। चंपा के नागरिक भी विशाल संख्या में भगवान के पास गये और भगवान की वाणी सुनी। कइयों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया, कइयों ने श्रावक व्रत लिये और कई मुनि बने। मुनि धर्म अंगीकार करने वालों में पद्म, महापद्म, भद्र, सुभद्र, पद्मभद्र, पद्मसेन, पद्मगुल्म, आनन्द और नन्द मुख्य थे। ये सभी श्रेणिक के पौत्र थे। जिनपालित आदि धनपतियों ने भी श्रावकधर्म स्वीकार किया।

चम्पा से विहारकर प्रभु काकन्दी पधारे। यहाँ क्षेमक, धृतिधर आदि ने श्रमणधर्म स्वीकार किया। इस वर्ष का चातुर्मास आपने मिथिला में बिताया। चातुर्मास समाप्ति के बाद आपने अंग देश की ओर विहार किया।

इनदिनों विदेह की राजधानी वैशाली रणभूमि बनी हुई थी। एक ओर मगधपति कोणिक और उसके काल आदि सौतेले भाई अपनी अपनी सेना के साथ लड़ रहे थे और दूसरी वैशालीपति चेटकराजा और काशी, कोशल के अठारह गणराजा अपनी अपनी सेना के साथ कोणिक का सामना कर रहे थे। इस युद्ध में कोणिक विजयी हुआ। काल आदि दस कुमार चेटक के हाथों मारे गये। भगवान पुनः चम्पा पधारे। अपने पुत्र के मृत्यु के समाचारों से काली आदि रानियों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की।

कुछ समय तक चम्पा में विराज कर भगवान पुनः मिथिला पधारे। आपने इस वर्ष का चातुर्मास मिथिला में ही विताया। चातुर्मास समाप्ति के बाद भगवान श्रावस्ती पधारे। यहाँ कोणिक के भाई वेहास (हल्ल) वेहल्ल जिनके निमित्त वैशाली में युद्ध हो रहा था किसी तरह भगवान के पास पहुँचे और दीक्षा लेकर भगवान के शिष्य बन गये।

भगवान विचरते हुए श्रावस्ती पहुँचे और श्रावस्ती के ईशान कोण स्थित कोष्ठक में ठहरे।

गोशालक प्रकरण—

उनदिनों मंखलिपुत्त गोशालक भी वहीं था। भगवान महावीर से अलग होकर वह प्रायः श्रावस्तो के आस पास ही घूमता था। तेजो-लेश्या की प्राप्ति और निमित्त शास्त्रों का अभ्यास गोशालक ने श्रावस्ती में ही किया था। श्रावस्ती में अयंपुल नामक गाथापति और हाला-हला कुम्हारिण गोशालक के परम भक्त थे। प्रायः गोशालक हालाहला कुम्हारिण की भाण्डशाला में ही ठहरता था।

गोशालक भगवान महावीर के छद्मस्थ काल में उनके साथ छ वर्ष तक रहा था। भगवान महावीर से तेजोलेश्या प्राप्ति का उपाय पाकर वह उनसे अलग हो गया। हालाहला कुम्हारिण की भाण्ड-शाला में उसने तपश्चर्या कर तेजोलब्धि प्राप्त करली थी। कालान्तर

में उसके पास शान, कलंद, कर्णिकार, अछिद्र, अग्निवेश्यायन और अर्जुन गोमायुपुत्र नामक छ दिशाचर (भगवान पार्श्व की परम्परा के पथभ्रष्ट शिष्य) आये। उन दिशाचरों ने आठ प्रकार के निमित्त, नवम गीत-मार्ग, तथा दशम नृत्यमार्ग का ज्ञान प्राप्त कर रखा था। उन्होंने गोशालक का शिष्यत्व अङ्गीकार किया। इन दिशाचरों से गोशालक ने निमित्त--शास्त्र का अभ्यास किया जिससे वह सभी को लाभ, अलाभ, सुख, दुःख एवं जीवन, मरण आदि के विषय में सत्यसत्य बताता था। अपने इस अष्टांग निमित्त ज्ञान के कारण उसने अपने को श्रावस्ती में जिन न होते हुए भी जिन, केवली न होते हुए भी केवली, सर्वज्ञ न होते हुए भी सर्वज्ञ घोषित करना प्रारंभ कर दिया। वह कहा करता था—मैं जिन, केवली और सर्वज्ञ हूँ। उसकी इस घोषणा की श्रावस्ती में सवत्र चर्चा थी।

भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति अनगार ने भिक्षार्थ घूमते समय यह जन प्रवाद सुना कि आजकल श्रावस्ती में दो तीर्थङ्कर विचर रहे हैं। एक श्रमण भगवान महावीर और दूसरे मखलिपुत्र गोशालक। वे भगवान के पास आये और जन प्रवाद के सम्बन्ध में पूछा--भगवन्! आजकल श्रावस्ती में दो तीर्थङ्कर होने की चर्चा हो रही है। यह कैसे ? क्या गोशालक सचमुच तीर्थङ्कर, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है ?

भगवान ने कहा—गौतम! गोशालक के विषय में जो नगरी में बातें हो रही हैं वे मिथ्या हैं। गोशालक जिन, केवली और सर्वज्ञ नहीं है। वह अपने विषय में जो घोषणा कर रहा है वह मिथ्या है। वह जिन, केवली, सर्वज्ञ आदि शब्दों का दुरुपयोग कर रहा है। गौतम! यह शरवण ग्राम के बहुल ब्राह्मण की गौशाला में जन्म लेने से गोशालक और मंखलि नामक मंख का पुत्र होने से मंखलिपुत्र कहलाता है। यह आज से चौवीस वर्ष पहले मेरा शिष्य होकर मेरे साथ

रहता था। छ वर्ष तक मेरे साथ रहने के बाद वह मुझ से अलग हो गया। तदनन्तर उसने मेरे बताये गये उपाय से तेजोलब्धि प्राप्त की। दिशाचरों से निमित्तशास्त्र पढ़ा। तेजोलब्धि और निमित्त-शास्त्रके बल से वह अपने आपको सर्वज्ञ कहता फिरता है वस्तुतः उसमें सर्वज्ञ होने की किंचित् भी योग्यता नहीं है।

भगवान महावीर ने यह सब बातें गौतम को सभा के बीच कहीं। सुनने वाले अपने अपने स्थानों की ओर चल दिये। भगवान महावीर ने गोशालक का जो विस्तृत परिचय दिया वह सारे नगर में फैल गया। सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी—"गोशालक जिन नहीं है परन्तु जिन प्रलापी है। श्रमण भगवान महावीर ऐसा कहते हैं।"

मंखलिपुत्र गोशालक ने भी अनेकों मनुष्यों से यह बात सुनी। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। क्रोध से जलता हुआ वह आतापना भूमि से हालाहला कुम्हारिण की भाण्डशाला में आया और अपने आजीविक संघ के साथ अत्यन्त आमर्ष के साथ बैठा और एतद् विषयक विचार करने लगा।

उस समय भगवान महावीर के शिष्य आनन्द नाम के अनगार जो कि निरन्तर छठछठ तप क्रिया करते थे आहार के लिये घूमते हुए हालाहला के कुम्भकारापण के आगे होकर जा रहे थे। गोशालक देखते ही उन्हें रोक कर बोला—देवानुप्रिय आनन्द ! तेरे धर्माचार्य और धर्म-गुरु श्रमण ज्ञातपुत्र ने उदार अवस्था प्राप्त की है। देव मनुष्यादि में उनकी कीर्ति तथा प्रशंसा है पर यदि वे मेरे सम्बन्ध में कुछ भी कहेंगे तो अपने तप तेज से उन्हें मै लोभी वणिक की तरह जलाकर भस्म करदूँगा और हितैषी वणिक की तरह केवल तुझे बचा दूँगा। तू अपने धर्माचार्य के पास जा और मेरी कही हुई बात उन्हें सुना दे।

गोशालक का क्रोधपूर्ण भाषण सुनकर आनन्द स्थविर घबरा गया। वह जल्दी जल्दी महावीर के पास गया और गोशालक की बातें

कहकर बोला–भगवन्! गोशालक अपने तप तेज से किसी को जलाकर भस्म करने में समर्थ है ?

भगवान ने कहा–आनन्द! अपने तप तेज से गोशालक किसी को भी जलाने का सामर्थ्य रखता है किन्तु वह अनन्तशक्तिशाली नहीं है। अर्हन्त को जलाकर भस्म करने में वह समर्थ नहीं है। कारण कि जितना तपोबल गोशालक में है उससे भी अनन्तगुना तपोबल निर्ग्रन्थ-अनगारों में है तो फिर अर्हन् के तपोबल के लिये कहना ही क्या! किन्तु अनगार स्थविर एवं अर्हत् क्षमाशील होने से वे अपनी तपोलब्धि का उपयोग नहीं करते।

आनन्द! गौतमादि स्थविरों को इस बात की सूचना कर देना कि गोशालक इधर आ रहा है। इस समय वह द्वेष और म्लेच्छभाव से भरा हुआ है इसलिये वह कुछ भी कहे, कुछ भी करे पर तुम्हें उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहिये यहाँ तक कि कोई भी श्रमण उसके साथ धार्मिक चर्चा तक न करे।

स्थविर आनन्द ने भगवान का सन्देश गौतमादि प्रमुख मुनियों को सुना दिया।

इधर ये बातें चल ही रही थीं कि उधर गोशालक आजीवक संघ के साथ भगवान के समीप पहुँच गया और बोला–

"हे आयुष्मान काश्यप! तुमने ठीक कहा है कि मंखलिपुत्र गोशालक मेरा शिष्य है किन्तु तुम्हारा शिष्य मंखलिपुत्र कभी का मर कर देवलोक पहुँच गया है। मै तुम्हारा शिष्य मंखलिपुत्र गोशालक नहीं किन्तु गोशालक शरीर प्रविष्ट उदायी कुण्डियायन नामक धर्मप्रवर्तक हूँ। यह मेरा सातवाँ शरीरान्तर प्रवेश है। मै गोशालक नहीं किन्तु गोशालक से भिन्न आत्मा हूँ।

भगवान महावीर ने कहा–गोशालक! तू अपने आपको छिपाने का प्रयत्न न कर। यह आत्मगोपन तेरे लिये उचित नहीं। तू वही मंखलिपुत्र गोशालक है जो मेरा शिष्य होकर रहा था।

भगवान महावीर के इस सत्य कथन से गोशालक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और वह भगवान को तुच्छ शब्द से सम्बोधित करता हुआ बोला-काश्यप! अब तेरा विनाशकाल समीप आया है। अब तू शीघ्र ही भ्रष्ट होने की तैयारी में है।

गोशालक के ये अपमानजनक वचन भगवान महावीर के शिष्य सर्वानुभूति अनगार से न सहे गये। उसने गोशालक से कहा-गोशालक! अपने शिक्षा और दीक्षागुरु से ऐसे वचन कहना तेरे लिये शोभास्पद नहीं है। सर्वानुभूति के ये शब्द आग में घी का काम कर गये। शान्त होने के बदले गोशालक का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने अपनी तेजोलेश्या को एकत्र करके सर्वानुभूति अनगार पर छोड़ दिया। तेजोलेश्या की प्रचण्डज्वाला से सर्वानुभूति अनगार का शरीर जलकर भस्म हो गया और उनकी आत्मा सहस्रार देवलोक में देवपद को प्राप्त हुई।

गोशालक फिर महावीर को धिक्कारने लगा। यह देख कौशलिक अनगार सुनक्षत्र, गोशालक के पास आया और उसे हितशिक्षा देने लगा। इसका भी परिणाम विपरीत ही निकला। गोशालक ने सुनक्षत्र अनगार को भी अपनी तेजोलेश्या से जलाकर भस्म कर दिया। सुनक्षत्र मुनि मर कर अच्युत देवलोक में गये।

दो मुनियों को जलाकर भस्म कर देने के बाद भी गोशालक का क्रोध शान्त नहीं हुआ किन्तु उसका बकवास मर्यादा के बाहर हो गया। भगवान ने पुनः उसे अनार्य कृत्य न करने के लिये समझाया किन्तु औंधे घड़े पर पानी की तरह वह समझाना निष्फल ही गया। गोशालक के क्रोध की सीमा न रही। वह क्रुद्ध होकर सात आठ कदम पीछे हटा उसने अपनी सारी तेजोलेश्या एकत्र की और भगवान को जलाकर भस्म करने के लिये उसने तेजोलेश्या बाहर निकाली। तेजोलेश्या भगवान का चक्कर काटती हुई ऊपर आकाश में उछली और वापस

गोशालक के शरीर में प्रविष्ट हुई। तेजोलेश्या के शरीर में घुसते ही जलता और व्याकुल होता हुआ गोशालक बोला--आयुष्मन् काश्यप ! मेरे तप तेज से तेरा शरीर व्याप्त हो गया है। अब तू पित्त और दाहज्वर से पीड़ित होकर छ महिनों के भीतर छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।

श्रमण भगवान महावीर ने कहा—गोशालक ! मैं छ महिने के भीतर नहीं मरूंगा किन्तु अभी सोलह वर्ष तक इस पृथ्वी पर सुख-पूर्वक विचरूंगा। तू खुद ही सात दिन के भीतर पित्तज्वर से पीड़ित होकर मरेगा। गोशालक ! तू ने जो कुछ भी किया है वह अच्छा नहीं किया। तू स्वयं अपने इस दुष्कृत्य का पश्चाताप करेगा।

इसके बाद भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थों को बुलाकर कहा—आर्यो ! अब गोशालक निस्तेज हो गया है। विनष्ट तेज हो गया है। इससे अब धार्मिक चर्चा कर इसे निरुत्तर कर सकते हो। भगवान की आज्ञा पाकर अनेक अनगारों ने उसे प्रश्न पूछे किन्तु गोशालक उनका उत्तर नहीं देसका। गोशालक को निरुत्तर और हतप्रभ देखकर अनेक आजीविक श्रमण भगवान महावीर के संघ में आकर मिल गये।

हताश और पीड़ित गोशालक 'हाय मरा ! हाय मरा' कहता हुआ हलाहला कुम्हारिण के घर आया और आम्रफल सहित मद्यपान करता हुआ हालाहला कुम्हारिन को हाथ जोड़ता हुआ, शीतल मृत्तिका के पानी से अपने गात्रों को सींचता हुआ शरीर दाह को शान्त करने का प्रयत्न करने लगा–किन्तु उसकी वेदना उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। अन्त में भगवान महावीर की भविष्यवाणी के अनुसार सातवें दिन गोशालक अपने किये हुए दुष्कृत्य की आग में जलता हुआ मर गया। मृत्यु के समय उसे भगवान महावीर के प्रति किये गये वर्ताव का खूब पश्चाताप हुआ। पश्चाताप की आग में उसके अशुभ कर्म जलकर नष्ट हो गये। उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होगई वह मरकर अच्युत देवलोक

में देवरूप से उत्पन्न हुआ। देवलोक से चवकर वह अनन्त संसार में परिभ्रमण करता हुआ अन्त में मोक्ष प्राप्त करेगा।

भगवान ने अपने श्रमणसंघ के साथ श्रावस्ती से विहार कर दिया। क्रमशः विहार करते हुए भगवान मेंढिय गांव के बाहर सालकोष्ठक उद्यान में पधारे। यहाँ गोशालक के द्वारा छोड़ी गई तेजोलेश्या के प्रभाव से भगवान के शरीर में दाहज्वर उत्पन्न होगया। खून की दस्तें लगने लगीं। पित्तज्वर और खून की दस्तों से भगवान महावीर का शरीर अत्यन्त दुर्बल होगया। भगवान की यह दशा देखकर नगर निवासी आपस में बातें करने लगे-भगवान महावीर का शरीर क्षीण हो रहा है, कहीं गोशालक की भविष्यवाणी सत्य न हो जाय?

सालकोष्ठ उद्यान के पास मालुकाकच्छ में ध्यान करते हुए भगवान के शिष्य 'सिंह' अनगार ने उक्त चर्चा सुनी। छठ-छठ तप और धूप में आतापना करने वाले महातपस्वी 'सिंह' अनगार का ध्यान टूट गया। वे सोचने लगे-भगवान को करीब छ महीने होने आये हैं लगातार खून की दस्तों से उनका शरीर क्षीण होगया है। कहीं गोशालक की भविष्यवाणी के अनुसार भगवान कालधर्म को तो प्राप्त नहीं होंगे। अगर ऐसा ही हुआ तो मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण महावीर के सम्बन्ध में ससार क्या कहेगा? इत्यादि विचार करते-करते वे जोरों-जोरों से मालुकाकच्छ में जाकर रोने लगे।

अन्तर्यामी भगवान ने सिंह अनगार के रोने का कारण जान लिया उन्होंने उसी समय अपने साधुओं द्वारा 'सिंह' अनगार को बुलाया और पूछा "हे सिंह! तुम्हें ध्यानान्तरिका में मेरे मरने की शंका हुई और तुम मालुकावन में जाकर खूब रोये थे न?"

सिंह अनगार ने उत्तर दिया—हाँ भगवन्! यह बात सत्य है।

भगवान ने कहा—सिंह! तुम इस विषय में मेरी चिन्ता न करो। मैं अभी साढ़े पन्द्रह वर्ष तक सुखपूर्वक भूमण्डल पर विचरण करूँगा।

सिंह—भगवन् ! आपका वचन सत्य हो । हम यही चाहते हैं कि आप दीर्घजीवी हों परन्तु आपका शरीर प्रतिदिन क्षीण होता जाता है यह बड़े दुःख की बात है । क्या इस बीमारी को हटाने का कोई उपाय नहीं ?

भगवान ने कहा—सिंह ! अवश्य है। तेरी इच्छा है तो तू मेंढिय गांव में रेवती गाथापत्नी के यहाँ जा । उसके घर कुम्हड़े (कौरना) और बिजोरे से बनी हुई दो औषधियां तैयार हैं । इनमें से पहली जो मेरे लिये बनाई गई है, उसकी जरूरत नहीं । दूसरी जो रेवती ने अन्य प्रयोजनवश बनाई है वह इस रोग-निवृत्ति के लिये उपयोगी है, उसे ले आ ।

भगवान की आज्ञा पा सिंह अनगार बड़े प्रसन्न हुए । वे रेवती के घर पहुँचे । रेवती ने सिंह अनगार का बड़ा विनय किया और उन्हें निर्दोष बिजोरा पाक वहराया । उसे लेकर सिंह अनगार भगवान के पास आये । भगवान ने उस औषधि का अनासक्त भाव से सेवन किया जिससे भगवान एकदम अच्छे हो गये ।

भगवान पूर्ववत् स्वस्थ हो गये । उनका शरीर पहले की तरह तेजस्वी होकर चमकने लगा । रेवती गाथापत्नी ने इस दान से तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया । वह आगामी उत्सर्पिणी काल में १७ वाँ तीर्थङ्कर समाधिनाथ होगी । इस समय देवलोक में वह देव-ऋद्धि का उपभोग कर रही है । भगवान के स्वस्थ होने से समस्त संघ प्रसन्न एवं संतुष्ट हो गया ।

भगवान ने श्रमणसंघ के साथ मिथिला की ओर विहार कर दिया । मिथिला पहुँचकर भगवान ने उस वर्ष का चातुर्मास मिथिला में ही पूरा किया । चातुर्मास समाप्ति के बाद भगवान श्रावस्ती पधारे।

२८वाँ चातुर्मास

श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य में ठहरे । उनदिनों पार्श्वापत्य स्थविर केशी श्रमण भी अपने पांच सौ साधुओं के साथ श्रावस्ती के तिन्दुक उद्यान में पधारे थे ।

गौतमस्वामी के साथ केशिकुमार श्रमण का वार्तालाप हुआ। गौतमस्वामी के विचारों से प्रभावित होकर केशिकुमार श्रमण अपने ५०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर के श्रमणसंघ में मिल गये।

श्रावस्ती से भगवान अहिछत्रा होते हुए हस्तिनापुर पधारे। यहाँ हस्तिनापुर के शिवराजर्षि ने भगवान से निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की और कठोर तप कर मोक्ष प्राप्त किया।

हस्तिनापुर से भगवान मोका नगरी होते हुए वाणिज्यग्राम पधारे और यहीं चातुर्मास किया।

२९वाँ चातुर्मास

इस वर्ष का चातुर्मास आपने राजगृह में किया। यहाँ अनेक मुनियों ने विपुलाचल पर्वत पर अनशन कर स्वर्ग और निर्वाण प्राप्त किया।

३०वाँ चातुर्मास

राजगृह का चातुर्मास पूरा कर भगवान पृष्ठचंपा पधारे। यहाँ शाल और महाशाल राजा ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की। वहाँ से भगवान ने विहार कर दिया। तीसवाँ वर्षावास भगवान ने वाणिज्य ग्राम में व्यतीत किया।

३१वाँ चातुर्मास

चातुर्मास समाप्त होते ही भगवान महावीर कोशल राष्ट्र के साकेत श्रावस्ती आदि नगरों में ठहरते हुए पांचाल की ओर पधारे और काम्पिल्य के बाहर सहस्राम्र वन में ठहरे।

काम्पिल्यपुर में सात सौ परिव्राजकों के साथ अम्मड परिव्राजक आपका उपदेश सुनकर श्रमणोपासक बना। वह परिव्राजक का वेश रखता हुआ भी जैन श्रावकों के आचार विचार पालता था।

काम्पिल्य से भगवान ने विदेह की ओर विहार किया और ३१वाँ चातुर्मास विदेह की राजधानी वैशाली में व्यतीत किया।

३२वाँ चातुर्मास

वैशाली का चातुर्मास पूरा कर भगवान वाणिज्यग्राम पधारे। यहाँ पार्श्वापत्य गांगेय अनगार ने भगवान से दीक्षा ग्रहण की और अन्त में मोक्ष प्राप्त किया। ३२वाँ चातुर्मास आपने वैशाली में ही व्यतीत किया।

३३वाँ चातुर्मास

इस साल का वर्षावास भी भगवान ने राजगृह में ही किया।

३४वाँ चातुर्मास

३४ वाँ चातुर्मास भगवानने नालन्दा में किया।

३५ वाँ चातुर्मास

नालंदा से विहार कर प्रभु वाणिज्यग्राम पधारे और दूतिपलास नामक उद्यान में ठहरे। यहाँ आपके उपदेश से सुदर्शन श्रेष्ठी ने प्रव्रज्या ग्रहण की। सुदर्शन मुनि ने १२वर्ष का चारित्र पालकर मोक्ष प्राप्त किया।

३६वाँ चातुर्मास

इस वर्ष का चातुर्मास भगवान ने वैशाली में व्यतीत किया।

३७वाँ चातुर्मास

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् भगवान विहार कर कोशलदेश के प्रसिद्ध नगर साकेत पधारे। यहाँ कोटिवर्ष के राजा किरात ने आपके दर्शन किये और उपदेश सुनकर आपसे प्रव्रज्या ग्रहण की। वहाँ से विहार कर मथुरा, शौर्यपुर, नन्दीपुर आदि नगरों को पावन करते हुए विदेहभूमि की नगरी मिथिला पधारे और चातुर्मास यहीं व्यतीत किया।

३८वाँ चातुर्मास

चातुर्मास समाप्तकर भगवान राजगृह पधारे और इस वर्ष का चातुर्मास आपने राजगृह में किया।

३९ वाँ चातुर्मास

चातुर्मास आपने नालन्दा में व्यतीत किया ।

४०वाँ चातुर्मास

चातुर्मास समाप्त कर भगवान ने विदेह की ओर विहार किया और आप मिथिला पधारे । यहाँ के राजा जितशत्रु ने आपका बड़ा आदर किया । ४०वाँ वर्षावास आपने मिथिला में किया ।

४१वाँ चातुर्मास

मिथिला से विहार कर आप राजगृह पधारे । इस वर्ष में अग्नि-भूति और वायुभूति नामक गणधरों ने अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया। इस वर्ष का चातुर्मास भगवान ने राजगृह में किया ।

४२वाँ चातुर्मास-

भगवान महावीर के जीवन का यह अन्तिम वर्ष था । इस वर्ष का वर्षाकाल पावा में व्यतीत करने का निर्णय करके आप हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा में पधारे और वहीं चातुर्मास की स्थिरता की ।

इस वर्ष के चातुर्मास में आपने अनेक भव्यों को उद्बोधित किया राजा पुण्यपाल आदि ने आपसे श्रामण्य ग्रहण किया ।

एक एक करके वर्षाकाल के तीन महिने बीत गये और चौथा महिना लगभग आधा बीतने आया । कार्तिक अमावस्या का प्रातःकाल हो चुका था । उस समय राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा-भवन में भगवान महावीर के अन्तिम समवशरण की रचना हुई ।

उसी दिन भगवान ने सोचा-आज मै मुक्त होनेवाला हूँ और गौतम का मुझपर बहुत अधिक स्नेह है । यह स्नेह बन्धन ही इसे केवली होने से रोक रहा है इसलिये इसके स्नेह बन्धन को नष्ट करने का उपाय करना चाहिए । यह सोचकर भगवान ने गौतम स्वामी को बुलाया और कहा-गौतम ! पास के गाँव में देवशर्मा ब्राह्मण रहता है वह तुम्हारे उपदेश से प्रतिबोध पायगा इसलिये तुम उसे उपदेश देने जाओ । भगवान की आज्ञा प्राप्त कर गौतम, देवशर्मा ब्राह्मग को उपदेश देने चले गये ।

प्रभु के समवशरण में अपापापुरी का राजा हस्तिपाल, काशी कोशल के नौ लिच्छवी तथा नौ मल्ली एवं अठारह गणराज भी आये। इन्द्रादि देव भी समवशरण में उपस्थित हुए।

भगवान ने अपनी देशना आरम्भ कर दी। छठ का तप किये हुए भगवान ने ५५ अध्ययन पुण्यफल विपाक सम्बन्धी और ५५ अध्ययन पापफल विपाक सम्बन्धी कहे। उसके बाद ३६ अध्ययन अप्रश्न व्याकरण-बिना किसी के पूछे कहे। उसके बाद अन्तिम प्रधान नाम का अध्ययन कहने लगे।

उस समय इन्द्र ने भगवान से निवेदन किया-भगवन्! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा, और केवलज्ञान में हस्तोत्तरा नक्षत्र था। इस समय उसमें भस्मकग्रह संक्रान्त होने वाला है। आपके जन्मनक्षत्र में संक्रमित वह ग्रह २ हजार वर्ष तक आपकी सन्तान (साधु-साध्वियों) को बाधा उत्पन्न करेगा। इसलिये वह भस्मक ग्रह आपके जन्म नक्षत्र से संक्रमण करे; तब तक आप प्रतीक्षा करें।

भगवान ने कहा-इन्द्र! आयु बढ़ाने की शक्ति किसी में भी नहीं है।

उस दिन भगवान को केवलज्ञान हुए २९ वर्ष ६ महिना १५ दिन व्यतीत हुआ था। उस समय पर्यंक आसन से बैठे प्रभु ने निर्वाण प्राप्त किया।

जिस रात्रि में भगवान का निर्वाण हुआ उस रात्रि में बहुत से देवी देवता स्वर्ग से आये। अतः उनके प्रकाश से सर्वत्र प्रकाश हो गया।

उस समय नव मल्ली, नौ लिच्छवी काशी कोशलके १८ गण राजाओं ने भाव ज्योति के अभाव में द्रव्य ज्योति से प्रकाश किया। उसकी स्मृति में तब से आजतक दीपोत्सव पर्व चला आ रहा है।

शोक संतप्त देवेन्द्र एव नरेन्द्रों ने भगवान का दाह संस्कार किया। भगवान की अस्थि को देवगण ले गये।

भगवान के निर्वाण के समाचार जब इन्द्रभूति को मिले तो वे मूर्छित होकर गिर पड़े। मूर्छा दूर होने पर वे भगवान के वियोग में हृदयद्रावक विलाप करने लगे। अन्ततः उनका स्नेहावरण नष्ट हो गया। उन्होंने घाती कर्म नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्द्रभूति के केवली बन जाने के बाद श्रमण संघ के नेता भगवान सुधर्मा बने।

बीस विहरमान

जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र के मध्यभाग में मेरुपर्वत है। पर्वत के पूर्व में सीता और पश्चिम में सीतोदा महानदी है। दोनों नदियों के उत्तर और दक्षिण में आठ आठ विजय हैं। इस प्रकार जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में आठ आठ की पंक्ति में बत्तीस विजय हैं। इन विजयों में जघन्य ४ तीर्थङ्कर रहते हैं अर्थात् प्रत्येक आठ विजयों की पंक्ति में कम से कम एक तीर्थङ्कर सदा रहते हैं। प्रत्येक विजय में एक तीर्थङ्कर के हिसाब से उत्कृष्ट बत्तीस तीर्थङ्कर रहते हैं।

धातकीखण्ड और पुष्करार्द्धद्वीप के चारों विदेहक्षेत्र में भी ऊपर लिखे अनुसार ही बत्तीस बत्तीस विजय हैं। प्रत्येक विदेहक्षेत्र में ऊपर लिखे अनुसार जघन्य चार और उत्कृष्ट बत्तीस तीर्थङ्कर सदा रहते हैं। कुल विदेहक्षेत्र पाच हैं और उनमें विजय १६० हैं। सभी विजयों में जघन्य बीस और उत्कृष्ट १७० तीर्थङ्कर रहते हैं।

वर्तमानकाल में पाचों विदेहक्षेत्र में बीस तीर्थङ्कर विद्यमान हैं। वर्तमान समय में विचरने के कारण उन्हें विहरमान कहा जाता है।

इन सभी विहरमानों की आयु ८४ लाख पूर्व की, ऊँचाई पांचसौ धनुष की एव बर्ण सुवर्णमय है। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१–श्री सीमन्धरस्वामी

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नाम की नगरी है। वह अत्यन्त रमणीय व समृद्ध

है। इस नगरी के शासकनृपति का नाम श्रेयांस था। ये शूरवीर प्रजाहितैषी और पूरे न्यायशील थे। उनके शासन में प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। वे स्वभाव से बड़े नम्र और दयालु थे। उसकी रानी का नाम सत्यकी था। सत्यकीदेवी सौंदर्य की जीती जागती मूर्ति थी। इसके साथ ही वह आदर्श पतिव्रता और परम विनीता थी। जैसा नाम है वैसे ही गुण उसमें थे।

एकबार सत्यकीदेवी रात्रि के समय जबकि अपने राजोचित शयन-भवन में सुख-शय्या पर सुखपूर्वक सो रही थी तो अर्द्धजागृत अवस्था में अर्थात् वह न तो गाढ़निद्रा में थी और न सर्वथा जाग ही रही थी, ऐसी अवस्था में उसने चौदह महास्वप्न देखे। इस स्वप्न के अनन्तर जब सत्यकी देवी जागी तो उसका फल जानने की उत्कण्ठा से वह उसी समय अपने पतिदेव श्रेयांस राजा के पास पहुँची। मधुर तथा कोमल शब्दों से जगाकर उसने अपने स्वप्नों को कह सुनाया। स्वप्न सुनकर महाराज ने कहा—देवी! ये स्वप्न अत्यन्त शुभ एवं मंगलकारी है। तुम्हें अर्थलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा। यह सुनकर महारानी सत्यकी बड़ी प्रसन्न हुई। पतिदेव को प्रणाम कर वह अपने शयन-स्थान पर लौट आई। दुष्ट स्वप्न से बचने के लिये उसने शेष रात्रि धर्म-चिन्तन में व्यतीत की।

दूसरे दिन महाराज श्रेयास ने स्वप्नपाठकों को बुलाया और महारानी सत्यकी के स्वप्न के फल को पूछा। स्वप्नपाठकों ने स्वप्न का फल बताते हुए कहा—राजन्! चौदह स्वप्न तीर्थङ्कर या चक्रवर्ती जब गर्भ में आते हैं तब उसकी माता देखती है। सत्यकीदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे हैं अतः इनके गर्भ से चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर महाप्रभु का जन्म होगा। स्वप्न का फल सुनकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वप्नपाठकों को बहुत बड़ा पारितोषिक दिया।

यथासमय महारानी सत्यकी ने एक सर्वांग सुन्दर ऋषभ लांछन-युक्त पुत्ररत्न को जन्म दिया। तीर्थङ्कर महाप्रभु के जन्म के अवसर

पर छप्पन दिक्कुमारिओं ने प्रसूतिकर्म किया। पुत्र के जन्म होते ही आकाश निर्मल होगया, दिशाएँ स्वच्छ हो गई। प्रजा के हर्ष का पारावार नहीं रहा। तीनोंलोक प्रकाशित होगये। आकाश में दुंदुभीं बजने लगीं। शीतल मन्द सुगन्धित वायु वहने लगी। इन्द्रासन कांप उठा।

अपने आसन को कम्पित देखकर क्षणभर के लिये इन्द्र भी स्तब्ध होगया किन्तु तत्काल ही उसे अवधिज्ञान से मालूम हो गया कि महाविदेह की पुष्कलावती विजय की राजधानी पुण्डरीकिणी में तीर्थङ्कर प्रभु का जन्म हुआ है। फिर तो वह आनन्द से फूल उठा और उसने सिंहासन से नीचे उतरकर बाल-जिनेंद्र को नमस्कार किया।

चौसठ इन्द्रों ने सुमेरु पर्वत पर भगवान का जन्मोत्सव और जन्माभिषेक किया और बालक को उनकी मां की गोद में रख दिया। जातकर्मादि संस्कारों के कराने के बाद बालक का गुणनिष्पन्न नाम 'सीमन्धर' रक्खा। सीमन्धर कुमार को जन्म से ही तीन ज्ञान थे। पुण्यशाली आत्मा के प्रादुर्भूत होने से सर्वत्र आनन्द मंगल ही दिखाई देने लगा। भगवान के जन्म से श्रेयांस राजा की समृद्धि में असाधारण वृद्धि होने लगी।

मातापिता के स्नेह सुधा से पालित पोषित होकर के क्रमशः प्रभुने यौवन अवस्था प्राप्त की। युवावस्था में आपका देहमान पांचसौ धनुष ऊँचा हो गया। इच्छा न होते हुए भी कुटुम्बी जनों के आग्रह से रुक्मिणी नाम की सुन्दर राजकन्या के साथ आपका विवाह हुआ। जब तिरासीलाख वर्ष पूर्व बीत गये तब आपने वार्षिक-दान देकर प्रव्रज्या ग्रहण की और घनघाती कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया।

आप इस समय पुष्कलावती विजय में विचर कर धर्मदेशना द्वारा भव्यप्राणियों का कल्याण कर रहे हैं। आपकी सर्वायु चौरासी

लाख पूर्व की है। जब भरतक्षेत्र में उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में पन्द्रहवें तीर्थङ्कर विचर रहे होंगे उस समय आपका निर्वाण होगा।

२. श्री युगमन्द्रस्वामी

जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में वपुविजय में विजया नाम की नगरी है। वह अत्यन्त रमणीय है। उस नगरी में सुदृढ नाम के प्रजावत्सल राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुतारा था। सुतारादेवी ने गज–लांछन वाले युगमन्दर नाम के तीर्थङ्कर भगवान को जन्म दिया। युगमन्दर ने युवावस्था में प्रियंगला नाम की राजकन्या से विवाह किया। तिरासी लाख वर्ष की आयु में आपने दीक्षा ग्रहण की और घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। आपका वर्ण सुवर्ण जैसा है। ऊँचाई पाँचसौ धनुष्य है और वज्रऋषभनाराच संघयन है और समचतुरस्त्र संस्थान है। चौरासी लाख पूर्व की सर्वायु है। आप एक लाख वर्ष तक धर्मोपदेश देने के बाद निर्वाण पद प्राप्त करेंगे। आप इस समय वपु विजय में विराज-मान हैं।

३. श्री बाहुस्वामी

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में वच्छ नाम के विजय मे सुसी-मापुरी नाम की अतिसुन्दर नगरी है। वहाँ राजधर्म का पालन करने वाले महाराजा सुग्रीव राज्य करते थे। उनकी विजया नाम की रानी थी। विजयारानी ने वाहुकुमार नाम के बालक–रत्न को जन्म दिया। वाहुकुमार जन्म से ही तीन ज्ञानी थे। युवावस्था में आपका मोहना-देवी के साथ विवाह हुआ। मृगलांछन से युक्त श्री वाहुकुमार ने तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में दीक्षा ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त किया। आप पाँचसौ धनुष ऊँचे हैं। चौरासी लाख पूर्व की सम्पूर्ण आयु में आप निर्वाण पद प्राप्त करेंगे। आप वच्छ विजय में विचर रहे हैं।

४. श्री सुबाहुस्वामी

जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में वपु नाम के विजय में वीत-शोका नाम की नगरी में निषढ नाम के न्याय-सम्पन्न राजा राज्य करते थे। उनकी मुख्य रानी का नाम सुनन्दा था। वानर लांछन से युक्त भगवान सुबाहु ने सुनन्दा महारानी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। युवावस्था में आपका 'किंपुरुषा' नाम की सुन्दर राजकन्या के साथ विवाह हुआ। तिरासी लाख पूर्व तक संसारी भोगों को भोग कर आपने प्रव्रज्या ग्रहण की। कठोर तप कर चार घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त किया। चार तीर्थों की स्थापना कर आपने तीर्थङ्कर पद प्राप्त किया। आप की कुल आयु चौरासी लाख पूर्व की है। एकलाख पूर्व तक चारित्र का पालन कर आप निर्वाण पद प्राप्त करेंगे। वर्तमान में आप वपु विजय में तीर्थ प्रवर्तन करते हुए भव्य प्राणियों का उद्धार कर रहे हैं।

५. श्री सुजातस्वामी

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नाम की अतीव रम्य नगरी है। उस नगर में देवसेन नाम के परम प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी सर्वगुण सम्पन्ना देवसेना नाम की रानी थी। उसकी कुक्षि से सुजात स्वामी का जन्म हुआ। युवावस्था में आपका विवाह जयसेना रानी के साथ हुआ। सूर्य के लांछन वाले सुजातकुमार ने तिरासी लाख पूर्व की आयु में प्रव्रज्या ग्रहण की और घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। आपकी ऊँचाई पाँचसौ धनुष है। वर्ण सुवर्ण जैसा है। एक लाख पूर्व तक तीर्थप्रवर्तन कर कुल चौरासी लाख पूर्व की आयु में सिद्ध पद प्राप्त करेंगे। आप वर्तमान में धातकीखण्ड के पुष्कला-वती विजय में भव्य प्राणियों का कल्याण कर रहे हैं।

६. स्वयंप्रभस्वामी

धातकीखण्ड द्वीप के वपु नामक विजय में विजया नाम की नगरी में मित्रसेन नाम के राजा राज्य करते थे। वे प्रजावत्सल और न्यायप्रिय थे। उनकी रानी का नाम सुमंगला था। इस रानी का जैसा नाम था वह वैसी ही गुणवती थी। रानी सुमंगला के गर्भ से भगवान स्वयंप्रभ ने जन्म ग्रहण किया। जब भगवान स्वयंप्रभ गर्भ में आये तब रानी सुमंगला ने १४ महास्वप्न देखे थे। स्वयंप्रभ का जन्मोत्सव इन्द्र तथा देवी देवताओं ने बड़ी धूम धाम से किया। आप जन्म से ही अवधिज्ञानी थे। आपका लांछन चन्द्र था और ऊँचाई पाँचसौ धनुष थी। यौवनावस्था में वीरसेना नाम की रूपवती कन्या से आपका विवाह हुआ। तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में आप ने ऋद्धि सम्पदा का परित्याग कर वार्षिकदान देकर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेते ही आप को मन-पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। कालान्तर में सम्पूर्ण घनघाती कर्मों के क्षय से आप को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। कुल ८४ लाख पूर्व की अवस्था में आप निर्वाण पद को प्राप्त करेंगे। वर्तमान में आप चारों तीर्थ का नेतृत्व करते हुए अपनी दिव्यवाणी से भव्यों का कल्याण कर रहे हैं।

७. ऋषभाननस्वामी

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह में वपुविजय नामक विजय में सुसीमा नाम की सुन्दर नगरी है। वहाँ कीर्तिराय नाम के न्यायप्रिय राजा राज्य करते थे। उनकी सर्वगुण सम्पन्ना वीरसेना नाम की रानी थी।

एक बार सुखशय्या पर सोई हुई महारानी ने रात्रि के समय चौदह महास्वप्न देखे। महारानी ने गर्भ धारण किया और नौ मास व साढे सात रात्रि के बीतने पर एक भव्य व तेजस्वी बालक को जन्म दिया। बालक के जन्मते ही तीनों लोक दिव्य प्रकाश से आलोकित हो उठे। नरक में अन्तर्मुहूर्त के लिए शान्ति छा गई। चौसठ

इन्द्रों ने तथा देवी देवताओं ने सुमेरु पर जन्मोत्सव किया । महाराज कीर्तिराय ने अपने दिव्यबालक का बड़ी धूमधाम से जन्मोत्सव किया । बालक का नाम ऋषभानन रखा गया । बालक ऋषभानन की कंचनवर्णी काया पर सिंह का लाँछन बड़ा सुन्दर लगता था । युवावस्था में ऋषभानन का विवाह जयादेवी के साथ सम्पन्न हुआ। पाँचसौ धनुष की ऊँचाई वाले ऋषभानन ने तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में वार्षिक दान देकर प्रव्रज्या ग्रहण की । कठोर तप की साधना कर आपने सम्पूर्ण घनघाती कर्मों का नाश कर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया । चार तीर्थों की स्थापना कर आपने तीर्थङ्कर पद प्राप्त किया । आप ८४ लाख पूर्व की सम्पूर्ण आयु में निर्वाण पद प्राप्त करेंगे । वर्तमान में भव्य प्राणियों को अपनी दिव्यवाणी का अमृतपान कराते हुए आप धातकीखण्ड के वपुविजय में विचरण कर रहे हैं ।

८. अनन्तवीर्यस्वामी

धातकीखण्ड के पश्चिम महाविदेह में नलिनावती विजय में वीतशोका नाम की नगरी है । इस नगरी में मेघराय नामक प्रजापालक राजा राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम मंगलावती था । भगवान अनन्तवीर्य ने अपने जन्म से महारानी मंगलावती को भाग्यशालिनी बनाया था । पाच सौ धनुष्य की काया वाले व गज लांछन से सुशोभित सुवर्ण के रंग जैसे देदीप्यमान अनन्तवीर्य ने विजयादेवी के साथ विवाह किया । तिरासीलाख पूर्व तक गृहस्थाश्रम में रहने के बाद वार्षिकदान देकर आपने प्रव्रज्या ग्रहण की और घनघाती कर्मों को खपाकर केवलज्ञान प्राप्त किया । ८४ लाख पूर्व की अवस्था में आप निर्वाण प्राप्त करेंगे ।

इस समय महाप्रभु अनन्तवीर्य चारों तीर्थ को अपनी भव्य वाणी द्वारा पावन करते हुए धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिम महाविदेह के नलिनावती विजय में विचरण कर रहे हैं।

९. सुरप्रभस्वामी

धातकीखण्ड के पूर्व महाविदेह में पुष्कलावती विजय में पुंडरगिणी नगरी में विजय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी विजयादेवी नाम की रानी थी। रात्रि के समय विजयादेवी ने १४ महास्वप्न देखे। उसी दिन सुरप्रभ महारानी के गर्भ में आये। यथा समय चन्द्र-लांछन से युक्त आपने जन्म ग्रहण किया। ६४ इन्द्रों एवं देव देवियों ने आपका जन्मोत्सव किया। युवावस्था में आपका विवाह नन्दसेना नाम की सुन्दर कन्या के साथ हुआ। तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में आपने वार्षिक दान देकर दीक्षा ग्रहण की और घनघाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और दर्शन प्राप्त किया। कुल ८४ लाख पूर्व की अवस्था में आप निर्वाण पद प्राप्त करेंगे।

इस समय आप भव्य प्राणियों को उपदेश देते हुए धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह में पुष्कलावती विजय में विचरण कर रहे हैं।

१०. विशालप्रभस्वामी

धातकी खण्ड द्वीप में पश्चिम महाविदेह में वपु विजय में विजयापुरी नाम की नगरी है। वहाँ सर्वगुण सम्पन्न नभराय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी अत्यन्त रूपवती भद्रा नाम की रानी थी। जब विशालप्रभ महारानी के गर्भ में आये थे तब रानी ने चौदह महास्वप्न देखे। यथा समय प्रभु ने जन्म ग्रहण किया। आपका वर्ण सुवर्ण जैसा व शरीर सूर्य के लाछन से युक्त है। आपकी काया की ऊँचाई पांच सौ धनुष्य की है। आपका युवावस्था में विमलादेवी के साथ विवाह हुआ। जब आप तिरासी लाख पूर्व वर्ष के हुए तब आपने वार्षिकदान देकर दीक्षा ग्रहण की। घनघाती कर्मों का क्षय कर आपने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। एक लाख पूर्व तक चारित्रावस्था में रहने के बाद कुल ८४ लाख पूर्व की अवस्था में आप निर्वाण पद प्राप्त करेंगे। इस समय आप अपने द्वारा संस्थापित चारों तीर्थों को पावन उपदेश देते हुए वपु विजय में विचरण कर रहे हैं।

११. वज्रधरस्वामी

धातकीखण्ड द्वीप में पूर्व महाविदेह के वच्छ नामक विजय में सुसीमापुरी नामक नगरी में पद्मरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी सरस्वती की कुक्षि से वज्रधरस्वामी ने जन्मग्रहण किया। आप जब गर्भ में आये थे तब महारानी ने १४ महास्वप्न देखे थे। जन्म से ही अवधिज्ञानी वज्रधर कुमार का शरीर कंचनवर्णी है तथा शंख लाछन से युक्त है। आपका विवाह विजयादेवी से हुआ। पांच सौ धनुष की ऊँचाई वाले महाप्रभु वज्रधर ने तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में वार्षिकदान देकर दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त किया। ८४ लाख पूर्व की अवस्था में आप निर्वाण प्राप्त करेंगे। आप इस समय वच्छ विजय में विचरण कर जनता को पावन कर रहे हैं।

१२. चन्द्राननस्वामी

धातकीखण्ड द्वीप में नलिनावती विजय में वीतशोका नाम की सुन्दर नगरी है। वहाँ वल्मीक नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पद्मावती नाम की मुख्य रानी थी। भगवान चन्द्रानन जब माता के गर्भ में आये थे तब उनकी माता ने चौदह महास्वप्न देखे थे। यथा-समय भगवान चन्द्रानन का जन्म हुआ। इन्द्र, देव एवं देवियों ने उत्साह-पूर्वक भगवान का जन्मोत्सव किया। भगवान के कांचनवर्णी देह पर वृषभ का लांछन बड़ा मनोहर लगता है। युवावस्था में भगवान का विवाह लीलावती नाम की सुन्दर कन्या के साथ हुआ। पाचसौ धनुष की ऊंचाई वाले भगवान चन्द्रानन ने तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में वार्षिक दान देकर प्रव्रज्या ग्रहण की और घन घाती कर्मों को खपाकर केवलज्ञान प्राप्त किया। ८४ लाख पूर्व की उनकी कुल-आयु है। चार तीर्थों का नेतृत्व करते हुए भगवान चन्द्रानन इस समय नलिनावती विजय में विचरण कर रहे हैं।

१३. चन्द्रबाहुस्वामी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेहमें पुष्कलावती विजय में पुण्डरीगिनी नाम की नगरी में देवानन्द नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी शीलवती रानी का नाम रेणुका था। चौदह महास्वप्नों को सूचित कर चन्द्रबाहु स्वामी ने रेणुका रानी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। चौंसठ इन्द्रों ने तथा देव देवियों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। भगवान के कांचनवर्णी देह पर पद्मकमल का चिन्ह अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। पांचसौ धनुष की ऊँचाई वाले चन्द्रबाहु का विवाह सुगन्धा रानी के साथ हुआ। तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में आपने गृहत्याग कर एवं वार्षिकदान देकर प्रव्रज्या ग्रहण की तथा घनघाती कर्मों को खपाकर केवलज्ञान प्राप्त किया। आप वर्तमान में चारों तीर्थों का नेतृत्व करते हुए भव्य प्राणियों का पुष्कलावती विजय में कल्याण कर रहे हैं। आपकी आयु ८४ लाख पूर्व की है।

१४. भुजंगस्वामी

पुष्करवर द्वीपार्द्ध के पश्चिम विदेहक्षेत्र में वपुविजय में विजयापुरी नाम की एक विशाल एवं समृद्ध नगरी थी। महाबल नरेश वहाँ के शासक थे। वे जिनेश्वर भगवान की उपासना करनेवाले थे। वे न्यायप्रिय शासक थे। उनकी पटरानी का नाम सुसीमादेवी था। वह सुलक्षणी और लक्ष्मी के समान सौभाग्यशालिनी थी। शुभनक्षत्र के योग में महारानी सुसीमादेवी ने गर्भ धारण किया। उत्तम गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने पद्म चिन्ह से युक्त सुवर्णवर्णी सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। देव-देवियों और इन्द्रों ने जन्मोत्सव किया। बाल भगवान का नाम भुजङ्गकुमार रखा। यौवन वय प्राप्त होने पर गन्धसेना आदि अनेक राजकुमारियों के साथ भुजङ्गकुमार का विवाह हुआ। पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य का चिरकाल तक उपभोग कर ८३ लाख पूर्व की अवस्था में वर्षीदान देकर भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण की। घनघाती कर्मों का क्षयकर भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया। इस समय भुजङ्गस्वामी अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोधित करते हुए पुष्करार्द्ध द्वीप के

पश्चिम महाविदेह में विचर रहे हैं । भगवान की ऊँचाई पांचसौ धनुष है और आयु ८४ लाख पूर्व की ।

१५. ईश्वरप्रभु

अर्द्धपुष्कर द्वीप के पूर्व महाविदेह में वत्सविजय में सुसीमापुरी नामकी नगरी है । वहाँ राजसेन नाम के प्रजापालक राजा राज्य करते थे । उनकी यशोज्वला नाम की रानी थी । महारानी यशोज्वला ने एक रात्रि में चौदह महास्वप्न देखे । उसी दिन महारानी गर्भवती हुई । यथा समय महारानी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया । तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान देव-देवियों ने तथा ६४ इन्द्रोंने मिलकर जन्मोत्सव किया । बालक का नाम ईश्वर रखा गया । भगवान ईश्वर के कांचनवर्णीय शरीर पर चन्द्र का चिन्ह बड़ा मनोहर लगता है । युवावस्था में आपका विवाह सर्वगुण सम्पन्न राजकुमारी चंद्रावती के साथ हुआ । पांच सौ धनुष की उँचाई वाले ईश्वरप्रभु ने तिरासी लाख पूर्व वर्ष की अवस्था में वार्षिकदान देकर दीक्षा ग्रहण की । घनघाती कर्मो को खपाकर भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया । आप ८४ लाख पूर्व की अवस्था में निर्वाण पद प्राप्त करेंगे । इस समय आप धर्मतीर्थ प्रवर्तन करते हुए भव्यों को प्रतिबोधित कर रहे हैं ।

१६. नेमिप्रभु स्वामी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम विदेह में नलिनावती विजय में वीतशोका नाम की नगरी है । वहाँ वीर नाम के राजा राज्य करते थे । उनको रानी का नाम सेनादेवी था । नेमिप्रभु ने सेनादेवी की कुक्षि से जन्म ग्रहण किया । युवावस्था में आपका मोहिनी रानी के साथ विवाह हुआ । आपका वर्ण सुवर्ण जैसा व चिन्ह सूर्य का है । देह की ऊँचाई पांचसौ धनुष हैं । तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में आपने वार्षिक दान देकर दीक्षा ग्रहण की । तथा केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थ प्रवर्तन किया । ८४ लाख वर्ष की अवस्था में आप निर्वाण प्राप्त करेंगे । वर्तमान में आप धर्मोपदेश करते हुए भव्यों को भवजलधि से पार उतार रहे हैं ।

१७. वीरसेनस्वामी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेह में पुष्करावती नामके विजय में पुण्डरिकिनी नाम की नगरी है। उस नगरी का राजा भूमिपाल था। उसको रानी का नाम भानुमती था। महारानी भानुमती को चौदह स्वप्न सूचित कर भगवान वीरसेन ने जन्मग्रहण किया। आपका चिन्ह वृषभ, पांचसौ धनुष का देहमान और वर्ण कंचन है। आपका विवाह महारानी राजसेना के साथ हुआ था। तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में आपने वार्षिक दान देकर दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्तकर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया। ८४ लाख पूर्व की अवस्था में आप निर्वाण प्राप्त करेंगे।

१८. महाभद्र स्वामी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम महाविदेह मे वपु नाम के विजय में विजया नाम की नगरी है। वहाँ देवराय नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी अग्रमहिषी का नाम था उमया। महारानी उमया को चौदह स्वप्न सूचितकर भगवान महाभद्र ने रानी के उदर से जन्म ग्रहण किया। चौंसठ इन्द्रों ने तथा देव-देवियोंने भगवान का जन्मोत्सव किया। भगवान का चिन्ह हाथी व वर्ण सुवर्ण जैसा है और ऊँचाई ५०० धनुष की है। युवावस्था में भगवान ने सूर्यकान्ता देवी के साथ विवाह किया। आयुष्य के एक लाख पूर्व शेष रहने पर भगवान ने दीक्षा ग्रहण की और केवल ज्ञान प्राप्त किया। वर्तमान में भगवान उपरोक्त क्षेत्र में धर्मोपदेश द्वारा जन कल्याण कर रहे हैं। आप ८४ लाख पूर्व की अवस्था में निर्वाण प्राप्त करेंगे।

१९. देवयशस्वामी

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेह में वच्छविजय में सुसीमा नाम की नगरी है। उस नगरी में सर्वभूति नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी मुख्य रानी का नाम गंगादेवी था। देवयशस्वामी ने चौदह स्वप्न सूचित कर गगादेवी की कुक्षि से जन्म ग्रहण किया। आपका लाछन चन्द्र, वर्ण सुवर्ण और ऊँचाई पाचसौ धनुष है। आपने पद्मा-

वती देवी के साथ सुखानुभव कर तिरासी लाख पूर्व की आयु में दीक्षा ग्रहण की तथा घनघाती कर्मों को खपाकर केवलज्ञान प्राप्त किया। आपकी कुल आयु चोरासी लाख पूर्व की है। इस समय आप पुष्कराद्धं द्वीप के वच्छ विजय में धर्मतीर्थ प्रवर्तन करते हुए भव्यों का कल्याण कर रहे हैं।

२०. अजितसेनस्वामी

पुष्कराद्धं द्वीप के पश्चिम महाविदेह में नलिनावती नाम के विजय में बीतशोका नाम की नगरी है। वहाँ राज्यपाल नाम का महाप्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी अत्यन्त शीलवती कर्णिका नाम की मुख्य रानी थी। एक समय महारानी कर्णिका ने रात्रि में चौदह महास्वप्न देखे। उसी दिन महारानी ने गर्भ धारण किया। यथा-समय महारानी ने एक दिव्यपुरुष-रत्न को जन्म दिया। बालक के जन्मते ही तीनों लोक में प्रकाश फैल गया। चौंसठ इन्द्रों ने मेरु-पर्वत पर जन्मोत्सव कर भावी भगवान के प्रति अपनी असीम श्रद्धा का परिचय दिया। बालक का नाम अजितसेन रखा। तीन ज्ञान के धारक अजितसेन कुमार के सुवर्ण वर्ण जैसे दिव्य शरीर पर स्वस्तिक का चिन्ह अत्यन्त मोहक लगता है। युवावस्था में अजितसेनकुमार का विवाह अपने ही समान श्रेष्ठ राजकुलीन कन्या रत्नमाला के साथ सम्पन्न हुआ। आप तिरासी लाख पूर्व तक संसारी भोग भोगते रहें। तदनन्तर प्रव्रज्या का उचित अवसर जानकर आपने वार्षिकदान दिया। इसके बाद आपने देव-देवियों, मनुष्य और स्त्रियों के विशाल समूह के बीच प्रव्रज्या ग्रहण की। पाँचसौ धनुष की ऊँचाई वाले प्रभु ने कर्म खपाने के लिये कठोर तप आरम्भ कर दिया। कठोर तप की साधना से आपने चार घनघाती कर्मों को नष्ट कर दिया और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त किया। केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् चार तीर्थ की स्थापना कर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। इस समय आप पुष्कराद्धं द्वीप के पश्चिम महाविदेह के नलिनावती विजय में धर्मोपदेश करते हुए भव्य प्राणियों का कल्याण कर रहे हैं। आप ८४ लाख की आयु भोग कर निर्वाण प्राप्त करेंगे।

गत उत्सर्पिणी के चौवीस तीर्थङ्कर

गत उत्सर्पिणी काल में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे चौवीस तीर्थङ्कर हुए थे। उनके नाम ये हैं—

(१) केवलज्ञानी (२) निर्वाणी (३) सागरजिन (४) महायश (५) विमल (६) नाथसुतेज (सर्वानुभूति) (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामिजिन (१२) शिवाशी (मुनिसुव्रत) (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अबाध (अस्ताघ) (१६) नाथ-नेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) जिनकृतार्थ (२०) धर्मीश्वर (जिनेश्वर) (२१) शुद्धमति (२२) शिवकरजिन (२३) स्यन्दन (२४) सम्प्रतिजिन ।

ऐरावत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के चौवीस तीर्थङ्कर—

वर्तमान अवसर्पिणी में ऐरावत क्षेत्र में चौवीस तीर्थङ्कर हुए हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) चन्द्रानन (२) सुचन्द्र (३) अग्निसेन (४) नंदिसेन (आत्मसेन) (५) ऋषिदिन्न (६) व्रतधारी (व्यवहारी) (७) श्यामचन्द्र (सोमचन्द्र) (८) युक्तिसेन (दीर्घबाहु, दीर्घसेन) (९) अजितसेन (शतायु) (१०) शिवसेन (सत्यसेन, सत्यकि) (११) देवशर्मा (देवसेन) (१२) निक्षिप्तशस्त्र (श्रेयांस) (१३) असंज्वल (स्वयंजल) (१४) अनन्तक (संहसेन) (१५) उपशान्त (१६) गुप्तसेन (गुप्तिसेन) (१७) अतिपार्श्व (१८) सुपार्श्व (१९) मरुदेव (२०) धर (२१) श्यामकोष्ठ (२२) अग्निसेन (महासेन) २३ अग्नि-पुत्र २४ वारिसेन ।

वर्तमान अवसर्पिणि के चौवीस तीर्थङ्कर

वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरतक्षेत्र में चौवीस तीर्थङ्कर हुए हैं। उनके नाम ये हैं—

श्री ऋषभदेव स्वामी महावीर स्वामी। (देखिये पृ० १–)

तीर्थंकर विषयक २८ बोल--

अट्ठाइस बोल	श्रीऋषभदेवस्वामी	श्री अजितनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	(आषाढ़ चातुर्दशी वदी ४)	वैसाख सुदी १३
२ विमान	सर्वार्थसिद्ध	विजय विमान
३ जन्म नगरी	इक्ष्वाकुभूमि	अयोध्या
४ जन्म तिथि	चैत्र वदी ८	माघ सुदी ८
५ माता का नाम	मरुदेवी	विजयादेवी
६ पिता का नाम	नाभि	जितशत्रु
७ लांछन	वृषभ	गज
८ शरीर मान	५०० धनुष	४५० धनुष
९ कौमार पद	२० लाख पूर्व	१८ लाख पूर्व
१० राज्यकाल	६३ लाख पूर्व	५३ लाख पूर्व १ पूर्वाङ्ग
११ दीक्षा तिथि	चैत्र वदी ८	माघ सुदी ९
१२ पारणे का स्थान	हस्तिनापुर	अयोध्या
१३ दाता का नाम	श्रेयांस	ब्रह्मदत्त
४ छद्मस्थ काल	१००० वर्ष	१२ वर्ष
५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	फाल्गुन वदी ११	पौष सुदी ११
१६ गणधर संख्या	८४	९५
१७ प्रथम गणधर	ऋषभसेन (पुन्डरिक)	सिंहसेन
१८ साधु संख्या	८४ हजार	१ लाख
१९ साध्वी संख्या	३ लाख	३ लाख ३० हजार
२० प्रथम आर्या	ब्राह्मी	फल्गु
२१ श्रावक संख्या	३ लाख ५ हजार	२ लाख ९८ हजार
२२ श्राविका संख्या	५ लाख ५४ हजार	५ लाख ४५ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	१ लाख पूर्व	१ पूर्वांग कम १लाख पूर्व
२४ निर्वाण तिथि	माघ वदी १३	चैत्र सुदी ५
२५ निर्वाण स्थल	अष्टापद	समेतशिखर
२६ मोक्ष परिवार	१० हजार	१ हजार
२७ आयुमान	८४ लाख पूर्व	७२ लाख पूर्व
२८ अन्तर मान	०	५० लाख कोटि सागर

अट्ठाईस बोल	श्री संभवनाथस्वामी	श्री अभिनन्दनस्वामी
१ च्यवन तिथि	फाल्गुन सुदी ८	वैशाख सुदी ४
२ विमान	सप्तम ग्रैवेयक	विजय (जयन्त) विमान
३ जन्म नगरी	श्रावस्ती	अयोध्या
४ जन्म तिथि	मगसिर सुदी १४	माघ सुदी २
५ माता का नाम	सेनादेवी	सिद्धार्था
६ पिता का नाम	जितारी	संवर
७ लांछन	अश्व	वानर
८ शरीर मान	४०० धनुष	३५० धनुष
९ कौमार पद	१५ लाख पूर्व	१२॥ लाख पूर्व
१० राज्यकाल	४४ लाख पूर्व ४ पूर्वांग	३६॥ लाख पूर्व ८ पूर्वाङ्ग
११ दीक्षा तिथि	मगसिर पूर्णिमा	माघ सुदी १२
१२ पारणे का स्थान	श्रावस्ती	अयोध्या
१३ दाता का नाम	सुरेन्द्रदत्त	इन्द्रदत्त
१४ छद्मस्थ काल	१४ वर्ष	१८ वर्ष
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	कार्तिक वदी ५	पौष सुदी १४
१६ गणधर संख्या	१०२	११६
१७ प्रथम गणधर	चारु (चारूरू)	वज्रनाभ
१८ साधु संख्या	२ लाख	३ लाख
१९ साध्वी संख्या	३ लाख ३६ हजार	६ लाख ३० हजार
२० प्रथम आर्या	श्यामा	अजिता
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ९३ हजार	२ लाख ८८ हजार
२२ श्राविका संख्या	६ लाख ३६ हजार	५ लाख २७ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	४ पूर्वांग कम १ लाख पूर्व	८ पूर्वांग कम १ लाख पूर्व
२४ निर्वाण तिथि	चैत्र सुदी ५	वैसाख सुदी ८
२५ निर्वाण स्थल	समेतशिखर	समेतशिखर
२६ मोक्ष परिवार	१ हजार	१ हजार
२७ आयुमान	६० लाख पूर्व	५० लाख पूर्व
२८ अन्तर मान	३० लाख कोटि सागर	१० लाख कोटि सागर

अट्ठाईस बोल	श्री सुमतिनाथस्वामी	श्री पद्मप्रभस्वामी
१ च्यवन तिथि	श्रावण सुदी २	महा वदी ६
२ विमान	वैजयन्त (जयंत) विमान	नवम ग्रैवेयक
३ जन्म नगरी	अयोध्या	कौशाम्बी
४ जन्म तिथि	वैशाख सुदी ८	कार्तिक वदी १२
५ माता का नाम	मंगला	सुसीमा
६ पिता का नाम	मेघ	धर
७ लांछन	क्रौञ्च	कमल (रक्त पद्म)
८ शरीर मान	३०० धनुष	२५० धनुष
९ कौमार पद	१० लाख पूर्व	(७) ३॥ लाख पूर्व
१० राज्यकाल	२९ लाख पूर्व १२ पूर्वांग	२१॥लाख पूर्व(१६)पूर्वाङ्ग
११ दीक्षा तिथि	वैशाख सुदी ९	कार्तिक वदी १३
१२ पारणे का स्थान	विजयपुर	ब्रह्मस्थल
१३ दाता का नाम	पद्म	सोमदेव
१४ छद्मस्थ काल	२० वर्ष	६ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	चैत्र सुदी ११	चैत्र पूर्णिमा
१६ गणधर संख्या	१००	१०७
१७ प्रथम गणधर	चमर	सुव्रत
१८ साधु संख्या	३ लाख २० हजार	३ लाख ३० हजार
१९ साध्वी संख्या	५ लाख ३० हजार	४ लाख बीस हजार
२० प्रथम आर्या	काश्यपी	रति
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ८१ हजार	२ लाख ७६ हजार
२२ श्राविका संख्या	५ लाख १६ हजार	५ लाख ५ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	१२ पूर्वांग कम १लाख पूर्व	१६पूर्वांग कम १ लाख पूर्व
२४ निर्वाण तिथि	चैत्र सुदी ९	मगसिर वदी ११
२५ निर्वाण स्थल	समेतशिखर	समेतशिखर
२६ मोक्ष परिवार	१ हजार	३०८
२७ आयुमान	४० लाख पूर्व	३० लाख पूर्व
२८ अन्तर मान	९ लाख कोटि सागर	९० हजार कोटि सागर

अट्ठाईस बोल	श्री सुपार्श्वनाथस्वामी	श्री चन्द्रप्रभस्वामी
१ च्यवन तिथि	भाद्र वदी ८	चैत्र वदी ५
२ विमान	षष्ठ ग्रैवेयक	वैजयन्त
३ जन्म नगरी	वाराणसी	चन्द्रानना (चन्द्रपुरी)
४ जन्म तिथि	जेठ सुदी १२	पौष वदी १२
५ माता का नाम	पृथ्वी	लक्ष्मणा
६ पिता का नाम	प्रतिष्ठ	महासेन
७ लांछन	स्वस्तिक	चन्द्र
८ शरीर मान	२०० धनुष	१५० धनुष
९ कौमार पद	५ लाख पूर्व	२॥ लाख पूर्व
१० राज्य काल	१४ लाख पूर्व २० पूर्वांग	६॥ लाख पूर्व २४ पूर्वाङ्ग
११ दीक्षा तिथि	जेठ (सुदी) वदी १३	पौष वदी १३
१२ पारणे का स्थान	पाटलिखंड	पद्मखंड
१३ दाता का नाम	माहेन्द्र	सोमदत्त
१४ छद्मस्थ काल	९ मास	३ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	फाल्गुन वदी ६	फाल्गुन वदी ७
१६ गणधर संख्या	९५	९३
१७ प्रथम गणधर	विदर्भ	दत्त
१८ साधु संख्या	३ लाख	२॥ लाख
१९ साध्वी संख्या	४ लाख ३० हजार	३ लाख ८० हजार
२० प्रथम आर्या	सोमा	सुमना
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ५७ हजार	२ लाख ५० हजार
२२ श्राविका संख्या	४ लाख ९३ हजार	४ लाख ९१ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२० पूर्वांग कम १ लाख पूर्व	२४ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
२४ निर्वाण तिथि	फाल्गुन वदी ७	भाद्र वदी ७
२५ निर्वाण स्थल	समेत शिखर	समेत शिखर
२६ मोक्ष परिवार	५००	१०००
२७ आयुमान	२० लाख पूर्व	१० लाख पूर्व
२८ अन्तरमान	९ हजार कोटि सागर	९०० कोटि सागर

अट्ठाईस बोल	श्री सुविधिनाथस्वामी	श्री शीतलनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	फाल्गुन वदी ९	वैशाख वदी ६
२ विमान	वैजयंत देवलोक	प्राणत देवलोक
३ जन्म नगरी	काकन्दी	भद्रिलपुर
४ जन्म तिथि	मगसिर वदी ५	महा वदी १२
५ माता का नाम	रामा	नन्दा
६ पिता का नाम	सुग्रीव	दृढरथ
७ लांछन	मकर	श्रीवत्स
८ शरीर मान	१०० धनुष	९० धनुष
९ कौमार पद	५० हजार पूर्व	२५ हजार पूर्व
१० राज्य काल	५० हजार पूर्व २८ पूर्वाङ्ग	५० हजार पूर्व
११ दीक्षा तिथि	मगसिर वदी ६	माह वदी १२
१२ पारणे का स्थान	श्वेतपुर (श्रेयपुर)	रिष्टपुर
१३ दाता	पुष्य	पुनर्वसु
१४ छद्मस्थ काल	४ मास	३ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	कार्तिक सुदी ३	पौष वदी १४
१६ गणधर संख्या	८८	८१
१७ प्रथम गणधर	वराह	आनन्द (प्रभुनन्द)
१८ साधु संख्या	२ लाख	१ लाख
१९ साध्वी संख्या	१ लाख २० हजार	१ लाख ६ हजार
२० प्रथम आर्या	वारुणी	सुलसा (सुयशा)
२१ श्रावक संख्या	२ लाख २९ हजार	४२ लाख ८९ हजार
२२ श्राविका संख्या	४ लाख ७१ (७२) हजार	४ लाख ५८ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२८ पूर्वांग कम ९ लाख पूर्व	२५ हजार पूर्व
२४ निर्वाण तिथि	भाद्र सुदी ९	वैशाख वदी २
२५ निर्वाण स्थल	समेत शिखर	समेत शिखर
२६ मोक्ष परिवार	१०००	१०००
२७ आयु मान	२ लाख पूर्व	१ लाख पूर्व
२८ अन्तर मान	९० कोटि सागर	९ कोटि सागर

अट्ठाईस बोल	श्री श्रेयांसनाथस्वामी	श्री वासुपूज्यस्वामी
१ च्यवन तिथि	जेठ वदी ६	जेठ सुदी ९
२ विमान	महाशुक्र (अच्युत) देवलोक	प्राणत देवलोक
३ जन्म नगरी	सिंहपुर	चम्पा
४ जन्म तिथि	भाद्रपद (फाल्गुन) वदी १२	फाल्गुन वदी १४
५ माता का नाम	विष्णुदेवी	जया
६ पिता का नाम	विष्णु	वसुपूज्य
७ लांछन	खड्गी (गेंडा)	महिष
८ शरीर मान	८० धनुष	७० धनुष
९ कौमार पद	२१ लाख वर्ष	१८ लाख वर्ष
१० राज्य काल	४२ लाख वर्ष	०
११ दीक्षा तिथि	फाल्गुन वदी १३	फाल्गुन अमावस्या
१२ पारणे का स्थान	सिद्धार्थपुर	महापुर
१३ दाता का नाम	नन्द	सुनन्द
१४ छद्मस्थ काल	२ मास	१ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	माघ अमावस्या	महा सुदी २
१६ गणधर संख्या	७६	६६
१७ प्रथम गणधर	कौस्तुभ (गोशुभ)	सुधर्मा (सूक्ष्म)
१८ साधु संख्या	८४ हजार	७२ हजार
१९ साध्वी संख्या	१ लाख ३ हजार	१ लाख
२० प्रथम आर्या	धारिणी	धरणी
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ७९ हजार	२ लाख १५ हजार
२२ श्राविका संख्या	४ लाख ४८ हजार	४ लाख ३६ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२१ लाख वर्ष	५४ लाख वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	श्रावण वदी ३	आषाढ़ सुदी १४
२५ निर्वाण स्थल	समेत शिखर	चंपा
२६ मोक्ष परिवार	१०००	६००
२७ आयुमान	८४ लाख पूर्व	७२ लाख वर्ष
२८ अन्तर मान	कुछ कम १ कोटि सागर	५४ सागर

अट्ठाईस बोल	श्री विमलनाथस्वामी	श्री अनन्तनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	वैशाख सुदी १२	श्रावण वदी ७
२ विमान	सहस्रार देवलोक	प्राणत देवलोक
३ जन्म नगरी	कम्पिलपुर	अयोध्या
४ जन्म तिथि	महा सुदी ३	वैशाख वदी १३
५ माता का नाम	श्यामा	सुयशा
६ पिता का नाम	कृतवर्मा	सिंहसेन
७ लांछन	वराह	श्येन
८ शरीर मान	६० धनुष	५० धनुष
९ कौमार पद	१५ लाख वर्ष	७॥ लाख वर्ष
१० राज्य काल	३० लाख वर्ष	१५ लाख वर्ष
११ दीक्षा तिथि	माह सुदी ४	वैशाख वदी १४
१२ पारणे का स्थान	धान्यकर (कूट)	वर्द्धमानपुर
१३ दाता का नाम	जय	विजय
१४ छद्मस्थ काल	२ वर्ष (मास)	३ वर्ष
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	पौष सुदी ६	वैशाख वदी १४
१६ गणधर संख्या	५७	५०
१७ प्रथम गणधर	मन्दर	यश
१८ साधु संख्या	६८ हजार	६६ हजार
१९ साध्वी संख्या	१ लाख ८००	६२ हजार
२० प्रथम आर्या	धरणीधरा [धरा]	पद्मा
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ८ हजार	२ लाख ६ हजार
२२ श्राविका संख्या	४ लाख ३४ (२४) हजार	४ लाख १४ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	१५ लाख वर्ष	७॥ लाख वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	आषाढ़ वदी ७	चैत्र सुदी ५
२५ निर्वाण स्थल	समेत शिखर	समेत शिखर
२६ मोक्ष परिवार	६०००	७०००
२७ आयु मान	६० लाख वर्ष	३० लाख वर्ष
२८ अन्तर मान	३० सागर	९ सागर

	१५	१६
अट्ठाइस बोल	श्री धर्मनाथ स्वामी	श्री शान्तिनाथ स्वामी
१ च्यवन तिथि	वैशाख सुदी ७	भाद्र वदी ७
२ विमान	वैजयंत (विजय) विमान	सर्वार्थसिद्ध
३ जन्म नगरी	रत्नपुर	गजपुर
४ जन्म तिथि	महा सुदी ३	जेठ वदी १३
५ माता का नाम	सुव्रता	अचिरा
६ पिता का नाम	भानु	विश्वसेन
७ लाछन	वज्र	हिरण
८ शरीर मान	४५ धनुष	४० धनुष
९ कौमार पद	२॥ लाख वर्ष	२५ हजार वर्ष
१० राज्य काल	५ लाख वर्ष	५० हजार वर्ष
११ दीक्षा तिथि	माह सुदी १३	जेठ वदी १४
१२ पारणे का स्थान	सौमनस	मन्दिरपुर
१३ दाता का नाम	धर्मसिंह	सुमित्र
१४ छद्मस्थ काल	२ वर्ष	१ वर्ष
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	पौष पूर्णिमा	पौष सुदी ९
१६ गणधर संख्या	४३	३६
१७ प्रथम गणधर	अरिष्ट	चक्रायुध
१८ साधु संख्या	६४ हजार	६२ हजार
१९ साध्वी संख्या	६२ हजार ४००	६१६००
२० प्रथम आर्या	आर्या शिवा	श्रुति (शुभा)
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ४ हजार	२ लाख ९० हजार
२२ श्राविका संख्या	४ लाख १३ हजार	३ लाख ९३ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२॥ लाख वर्ष	२५ हजार वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	जेठ सुदी ५	जेठ वदी १३
२५ निर्वाणस्थल	समेत शिखर	समेत शिखर
२६ मोक्ष परिवार	१०८	९००
२७ आयुमान	१० लाख वर्ष	१ लाख वर्ष
२८ अन्तर मान	४ सागर	पौन पल्य कम ३ सागर

अट्ठाइस बोल	श्री कुन्थुनाथस्वामी	श्री अरनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	श्रावण वदी ९	फाल्गुन सुदी २
२ विमान	सर्वार्थसिद्ध	नवम ग्रैवेयक (सर्वार्थसिद्ध)
३ जन्म नगरी	गजपुर	गजपुर
४ जन्म तिथि	बैशाख वदी १४	मगसिर सुदी १०
५ माता का नाम	श्री	(महा) देवी
६ पिता का नाम	सूर	सुदर्शन
७ लांछन	अज (बकरा)	नन्दावर्त
८ शरीर मान	३५ धनुष	३० धनुष
९ कौमार पद	२३७५० वर्ष	२१ हजार वर्ष
१० राज्य काल	४७ हजार वर्ष	४२ हजार वर्ष
११ दीक्षा तिथि	वैशाख वदी ५	मगसिर सुदी ११
१२ पारणे का स्थान	चक्रपुर	राजपुर
१३ दाता का नाम	व्याघ्रसिंह	अपराजित
१४ छद्मस्थ काल	सोलह वर्ष	३ वर्ष
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	चैत्र सुदी ३	कार्तिक सुदी १२
१६ गणधर संख्या	३५	३३
१७ प्रथम गणधर	स्वयम्भू (शम्ब)	कुम्भ
१८ साधु संख्या	६० हजार	५० हजार
१९ साध्वी संख्या	६०६००	६००००
२० प्रथम आर्या	दामिनी	रक्षी (रक्षिता)
२१ श्रावक संख्या	१ लाख ७९ हजार	१ लाख ८४ हजार
२२ श्राविका संख्या	३ लाख ८१ हजार	३ लाख ७२ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२३७५० वर्ष	२१ हजार वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	वैशाख वदी १	मगसिर सुदी १०
२५ निर्वाणस्थल	सम्मेत शिखर	समेत शिखर
२६ मोक्ष परिवार	१०००	१०००
२७ आयुमान	९५ हजार वर्ष	८४ हजार वर्ष
२८ अन्तर मान	आधा पल्योपम	कोटि सहस्र वर्ष कम पाव पल्य

अट्ठाइस बोल	श्री मल्लिनाथस्वामी	श्री मुनिसुव्रतस्वामी
१ च्यवन तिथि	फाल्गुन सुदी ४	श्रावण पूर्णिमा
२ विमान	वैजयंत (जयन्त)	प्राणतकल्प (अपराजित)
३ जन्म नगरी	मिथिला	राजगृह
४ जन्म तिथि	मगसिर सुदी ११	जेठ वदी
५ माता का नाम	प्रभावती	पद्मा
६ पिता का नाम	कुम्भ	सुमित्र
७ लाछन	कलश	कूर्म
८ शरीर मान	२५ धनुष	२० धनुष
९ कौमार पद	१०० वर्ष	७५०० वर्ष
१० राज्य काल	०	१५००० वर्ष
११ दीक्षा तिथि	मगसिर सुदी ११	फाल्गुन सुदी १२
१२ पारणे का स्थान	मिथिला	राजगृह
१३ दाता का नाम	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त
१४ छद्मस्थ	१ अहोरात्र	११ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	मगसिर सुदी ११	फाल्गुन वदी १२
१६ गणधर संख्या	२८	१८
१७ प्रथम गणधर	इन्द्र (भिषज)	कुम्भ (इन्द्र)
१८ साधु संख्या	४० हजार	३० हजार
१९ साध्वी संख्या	५५०००	५० हजार
२० प्रथम आर्या	बन्धुमती	पुष्पवती
२१ श्रावक संख्या	१ लाख ८३ हजार	१ लाख ७२ हजार
२२ श्राविका संख्या	३ लाख ७० हजार	३ लाख ५० हजार
२३ दीक्षा पर्याय	५४९०० वर्ष	७५०० वर्ष
२४ निर्माण तिथि	फाल्गुन सुदी १२	जेठ वदी ९
२५ निर्वाणस्थल	सम्मेत शिखर	समेत शिखर
२६ मोक्ष परिवार	५००	१०००
२७ आयु मान	५५ हजार वर्ष	३० हजार वर्ष
२८ अन्तर मान	एक कोटी सहस्र वर्ष	५४ लाख वर्ष

	अट्ठाईस बोल	श्री नमिनाथस्वामी	श्रीअरिष्टनेमिस्वामी
१	च्यवन तिथि	आश्विन पूर्णिमा	कार्तिक वदी १२
२	विमान	अपराजित (प्राणत) देवलोक	अपराजित
३	जन्म नगरी	मिथिला	सौर्यपुर
४	जन्म तिथि	श्रावण वदी ८	श्रावण सुदी ५
५	माता का नाम	वप्रा	शिवा
६	पिता का नाम	विजय	समुद्र विजय
७	लांछन	नीलोत्पल	शंख
८	शरीर मान	१५ धनुष	१० धनुष
९	कौमार पद	२५०० वर्ष	३०० वर्ष
१०	राज्य काल	५००० वर्ष	०
११	दीक्षा तिथि	आषाढ़ वदी ९	श्रावण सुदी ६
१२	पारणे का स्थान	वीरपुर	द्वारवती
१३	दाता का नाम	दिन्न	वरदत्त
१४	छद्मस्थ काल	नौ मास	५४ दिन
१५	ज्ञानोत्पत्ति तिथि	मगसिर सुदी ११	आश्विन अमावस्या
१६	गणधर संख्या	१७	११
१७	प्रथम गणधर	शुभ (शुम्भ)	वरदत्त
१८	साधु संख्या	२० हजार	१८ हजार
१९	साध्वी संख्या	४१०००	४००००
२०	प्रथम आर्या	अनिला	यक्षदत्त
२१	श्रावक संख्या	१ लाख ७० हजार	१ लाख ६९ हजार
२२	श्राविका संख्या	३ लाख ४८ हजार	३ लाख ३६ हजार
२३	दीक्षा पर्याय	२५०० वर्ष	७०० वर्ष
२४	निर्वाण तिथि	वैशाख वदी १०	आषाढ़ सुदी ८
२५	निर्वाणस्थल	समेतशिखर	रेवतगिरि
२६	मोक्ष परिवार	१०००	५३६
२७	आयुमान	१० हजार वर्ष	१ हजार वर्ष
२८	अन्तर मान	६ लाख वर्ष	५ लाख वर्ष

अट्ठाईस बोल	श्री पार्श्वनाथ स्वामी	श्रीमहावीर स्वामी
१ च्यवन तिथि	चैत्र वदी ४	आषाढ़ सुदी ६
२ विमान	प्राणत देवलोक	प्राणत देवलोक
३ जन्म नगरी	वाराणसी	कुण्डपुर
४ जन्मतिथि	पौष वदी १०	चैत्र सुदी १३
५ माता का नाम	वामा	त्रिशला
६ पिता का नाम	अश्वसेन	सिद्धार्थ
७ लांछन	सर्प	सिंह
८ शरीर मान	९ हाथ	७ हाथ
९ कौमार पद	३० वर्ष	३० वर्ष
१० राज्य काल	०	०
११ दीक्षा तिथि	पौष वदी ११	मगसिर वदी १०
१२ पारणे का स्थान	कोपकट	कोल्लाग सन्निवेश
१३ दाता का नाम	धन्य	बहुल
१४ छद्मस्थ काल	८४ दिन	१२ वर्ष(१२॥वर्ष)
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	चैत्र वदी ४	वैशाख सुदी १०
१६ गणधर संख्या	१०	११
१७ प्रथम गणधर	दत्त (आर्यदत्त)	इन्द्रभूति
१८ साधु संख्या	१६ हजार	१४ हजार
१९ साध्वी संख्या	३८०००	३६०००
२० प्रथम आर्या	पुष्पचूला	चन्दना
२१ श्रावक संख्या	१ लाख ६४ हजार	१ लाख ५९ हजार
२२ श्राविका संख्या	३ लाख ७० हजार	३ लाख १८ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	७० वर्ष	४२ वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	श्रावण सुदी ८	कार्तिक अमावस्या
२५ निर्वाणस्थल	अपापापुरी	अपापापुरी
२६ मोक्ष परिवार	३३	एकाकी
२७ आयुमान	सौ वर्ष	७२ वर्ष
२८ अन्तर मान	८३७५० वर्ष	२५० वर्ष

यन्त्र में चौबीस तीर्थङ्करों के सम्बन्ध में २८ बातें दी गई हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ ज्ञातव्य बातें दी जाती हैं:—

तीर्थङ्कर की माताएँ चौदह उत्तम स्वप्न देखती हैं। गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी का अभिषेक, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कुम्भ, पद्म सरोवर, सागर, विमान या भवन, रत्न राशि, निर्धूम अग्नि-ये चौदह स्वप्न हैं।

नरक से आये हुए तीर्थङ्करों की माताएँ चौदह स्वप्नों में भवन देखती हैं एवं स्वर्ग से आये हुए तीर्थङ्करों की माताएँ भवन के बदले विमान देखती हैं। भगवान् महावीर स्वामी की माता ने पहला सिंह का, भगवान् ऋषभदेव की माता ने पहला वृषभ का एवं शेष तीर्थङ्करों की माताओं ने पहला हाथी का स्वप्न देखा था।

तीर्थङ्कर के गोत्र एवं वंश

भगवान् नेमिनाथस्वामी और मुनिसुव्रतस्वामी ये दोनों गौतम गोत्र वाले थे और इन्होंने हरिवंश में जन्म लिया था। शेष बाईस तीर्थङ्करों का गोत्र काश्यप था और इक्ष्वाकु वंश में उनका जन्म हुआ था।

तीर्थंकर के वर्ण

पद्मप्रभ स्वामी और वासुपूज्य स्वामी रक्त वर्ण के थे। चन्द्रप्रभ स्वामी और सुविधिनाथ स्वामी चन्द्रमा के समान गौर वर्ण के थे। श्री मुनिसुव्रत स्वामी और नेमिनाथ स्वामी का कृष्ण वर्ण था तथा श्री पार्श्वनाथ स्वामी और मल्लिनाथ स्वामी का नील वर्ण था। शेष तीर्थङ्करों का वर्ण तपाये हुए सोने के समान था।

तीर्थंकरों का विवाह

भगवान् मल्लिनाथ स्वामी और अरिष्टनेमि स्वामी अविवाहित रहे। शेष बाईस तीर्थङ्करों ने विवाह किया था क्योंकि उनके भोगफल वाले कर्म शेष थे।

दीक्षा की अवस्था

भगवान् महावीरस्वामी, अरिष्टनेमि स्वामी, पार्श्वनाथ स्वामी और वासुपूज्य स्वामी इन पाँचों तीर्थङ्करों ने प्रथम वय, कुमारावस्था में दीक्षा ली। शेष तीर्थङ्कर पिछली वय में प्रव्रजित हुए।

गृहवास में और दीक्षा के समय ज्ञान

पिछले भव से लेकर यावत् गृहवास में रहने तक सभी तीर्थंकरों के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान होते हैं। दीक्षा ग्रहण करने के समय सभी तीर्थंकरों को चौथा मनःपर्यव ज्ञान हुआ।

दीक्षा नगर

भगवान् ऋषभदेव स्वामी ने विनिता में और अरिष्टनेमिनाथ स्वामी ने द्वारका में दीक्षा धारण की। शेष तीर्थंकरों ने अपनी जन्मभूमि में दीक्षा धारण की।

दीक्षा वृक्ष

सभी तीर्थंकर अशोक वृक्ष के नीचे प्रव्रजित हुए जैसे कि—**णिक्खंता असोगतरुतले सव्वे।**

दीक्षा तप

सुमतिनाथ स्वामी नित्यभक्त से और वासुपूज्य स्वामी उपवास तप से दीक्षित हुए। श्री पार्श्वनाथ स्वामी और मल्लिनाथ स्वामी ने तेला तप कर दीक्षा ली। शेष बीस तीर्थंकरों ने बेला तप पूर्वक प्रव्रज्या धारण की।

दीक्षा परिवार

भगवान् महावीर स्वामी ने अकेले दीक्षा ली। श्री पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ स्वामी ने तीन तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली*। वासुपूज्य स्वामी ने ६०० पुरुषों के साथ गृहत्याग किया। भगवान ऋषभ देव स्वामी ने उग्र, भोग राजन्य और क्षत्रियकुल के चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली। शेष छन्नीस तीर्थंकर एक एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए। शेष छन्नीस तीर्थंकर एक एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए।

---

*श्री मल्लिनाथ स्वामी ने तीन सौ पुरुष और तीन सौ स्त्रियाँ इस प्रकार ६०० के परिवार से दीक्षा ली थी किन्तु सभी जगह एक ही की तीन सौ संख्या ली है।

प्रथम पारणे का समय

त्रिलोकीनाथ भगवान ऋषभदेव स्वामी को एक वर्ष के बाद भिक्षा प्राप्त हुई। शेष तीर्थङ्करों को दीक्षा के दूसरे ही दिन प्रथम भिक्षा का लाभ हुआ।

प्रथम पारणे का आहार

भगवान ऋषभदेव के पारणे में ईक्षुरस था और शेष तीर्थंकरों के पारणे में अमृतरस के समान स्वादिष्ट क्षीरान्न था।

केवलज्ञानोत्पत्ति स्थान

महावीर भगवान् को जृम्बिक के बाहर (ऋजुवालिका नदी के तीर पर) केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान ऋषभदेव स्वामी और अरिष्टनेमिनाथ स्वामी को क्रमशः पुरिमताल नगर और रैवतक पर्वत पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। शेष तीर्थङ्करों को अपने अपने जन्म स्थानों में केवलज्ञान हुआ।

केवलज्ञान तप

श्री पार्श्वनाथ स्वामी, ऋषभदेव स्वामी, मल्लिनाथ स्वामी और अरिष्टनेमिनाथ स्वामी को अष्टम भक्त-तीन उपवास के अन्त में तथा वासुपूज्य स्वामी को एक उपवास के तप में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। शेष तीर्थंकरों को बेले के तप में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

केवलज्ञान वेला

ऋषभदेव स्वामी आदि तेईस तीर्थङ्करों को प्रथम प्रहर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और चौबीसवें तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान् को अन्तिम प्रहर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

तीर्थोत्पत्ति

ऋषभदेव स्वामी आदि तेईस तीर्थङ्करों के प्रथम समवसरण में ही तीर्थ (प्रवचन) एवं चतुर्विध संघ उत्पन्न हुए। श्री महावीर भगवान के दूसरे समवसरण में तीर्थ एवं संघ की स्थापना हुई।

निर्वाण तप

श्री ऋषभदेवस्वामी की निर्वाण तप अन्तक्रिया छः उपवास पूर्वक हुई। दूसरे तेईस तीर्थङ्करों की अन्तक्रिया एक मास के उपवास के बाद हुई। श्री महावीर स्वामी का निर्वाण बेले के तप से हुआ।

निर्वाण स्थान

श्री ऋषभदेव स्वामी, वासुपूज्यस्वामी, अरिष्टनेमि स्वामी, महावीरस्वामी और शेष अजितनाथ स्वामी आदि बीस तीर्थंकर क्रमशः अष्टापद, चम्पा, गिरनार, पावा और समेत पर्वत पर सिद्ध हुए।

मोक्षासन

मोक्ष जाते समय श्री महावीरस्वामी, ऋषभदेवस्वामी और अरिष्टनेमिस्वामी के पद्म आसन था। शेष तीर्थङ्कर उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) आसन से मोक्ष पधारे।

तीर्थंकरों की भव संख्या

वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थङ्कर भगवान को सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जितने भव के पश्चात् वे मोक्ष पधारे उनकी भव संख्या इस प्रकार है:—

ऋषभदेवस्वामी की भव संख्या १३, शान्तिनाथ स्वामी की १२, अरिष्टनेमि स्वामी की ९, पार्श्वनाथ स्वामी की १०, महावीर स्वामी की २७ और शेष तीर्थङ्करों की भवसंख्या ३ है।

बीस बोलों में से किसकी आराधना कर तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा ?

प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी और चरम तीर्थङ्कर श्रीमहावीर स्वामी ने तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के बीस बोलों की आराधना की थी और शेष तीर्थङ्करों ने एक, दो, तीन या सभी बोलों की आराधना की थी।

तीर्थंकरों के पूर्वभव का श्रुतिज्ञान

प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी पूर्वभव में द्वादशांग सूत्रधारी और शेष तेईस तीर्थङ्कर ११ अंग सूत्रधारी हुए।

तीर्थंकरों के जन्म और मोक्ष के आरे

संख्यातकाल रूप तीसरे आरे के अन्त में भगवान् ऋषभदेव स्वामी का जन्म हुआ और मोक्ष हुआ। चौथे आरे के मध्य में श्रीअजितनाथ स्वामी का जन्म और मोक्ष हुआ। चौथे आरे के पिछले आधे भाग में श्री संभवनाथ स्वामी से लेकर श्रीकुंथुनाथ स्वामी मुक्त हुए। चौथे आरे के अन्तिम भाग में अरनाथ स्वामी से श्री महावीर स्वामी तक सात तीर्थङ्करों का जन्म और मोक्ष हुआ।

तीर्थोच्छेद काल

चौबीस तीर्थङ्करों के तेईस अन्तर हैं। श्री ऋषभदेवस्वामी से लेकर श्री सुविधिनाथ स्वामी पर्यन्त नौ तीर्थंकरों के आदिम आठ अन्तर में और श्री शान्तिनाथ स्वामी से श्रीमहावीर स्वामी पर्यन्त नौ तीर्थङ्करों के अन्तिम आठ अन्तर में तीर्थ का विच्छेद नहीं हुआ। श्रीसुविधिनाथ स्वामी से श्री शान्तिनाथ स्वामी पर्यन्त आठ तीर्थंकरों के मध्य सात अन्तर में नीचे लिखे समय के लिए तीर्थ का विच्छेद हुआः—

१. श्री सुविधिनाथ और शीतलनाथ का अन्तर पाव पल्योपम।
२. श्री शीतलनाथ और श्रेयांसनाथ का अन्तर पाव पल्योपम।
३. श्री श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य का अन्तर पौन पल्योपम।
४. श्री वासुपूज्य और विमलनाथ का अन्तर पाव पल्योपम।
५. श्री विमलनाथ और अनन्तनाथ का अन्तर पौन पल्योपम।
६. श्री अनन्तनाथ और धर्मनाथ का अन्तर पाव पल्योपम।
७. श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ का अन्तर पाव पल्योपम।

भगवतीशतक २० उद्देशे ८ में तेईस अन्तरों में से आदि और अन्त के आठ अन्तरों में कालिक श्रुत का विच्छेद न होना कहा गया है और मध्य के सात अन्तरों में कालिक श्रुत का विच्छेद होना बतलाया है। दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी तीर्थङ्करों के अन्तर काल में हुआ है।

तीर्थङ्करों के तीर्थ में चक्रवर्ती और वासुदेव

तीर्थङ्कर के समकालीन जो चक्रवर्ती, वासुदेव आदि होते हैं वे उनके तीर्थ में कहे जाते हैं। जो दो तीर्थङ्कर के अन्तर काल मे होते हैं वे अतीत तीर्थङ्कर के तीर्थ में समझे जाते हैं।

श्री ऋषभदेव स्वामी और अजितनाथ स्वामी ये दो तीर्थङ्कर क्रमशः भरत और सगर चक्रवर्ती सहित हुए। इनके बाद तीसरे संभवनाथ स्वामी से लेकर दसवें शीतलनाथ स्वामी तक आठ तीर्थङ्कर हुए। तदन्तर श्री श्रेयांसनाथ स्वामी, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ स्वामी, अनन्तनाथ स्वामी और धर्मनाथ स्वामी, ये पाच तीर्थङ्कर वासुदेव सहित हुए अर्थात् इनके समय में क्रमशः त्रिपृष्ट, द्विपृष्ट, स्वयंभू, पुरुषोत्तम और पुरुषसिंह ये पाच वासुदेव हुए। धर्मनाथ स्वामी के बाद मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्ती हुए। बाद में पाँचवें शान्तिनाथ, छठे कुन्थुनाथ और सातवें अरनाथ चक्रवर्ती हुए और ये ही तीनों क्रमशः सोलहवें, सत्रहवें, और अठारहवें तीर्थङ्कर हुए। फिर क्रमशः छठे पुरुषपुंडरीक वासुदेव, आठवें सुभूम चक्रवर्ती और सातवें दत्त वासुदेव हुए। बाद में उन्नीसवे श्री मल्लिनाथ स्वामी तीर्थङ्कर हुए। इनके बाद बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी और नववें महापद्म चक्रवर्ती एक साथ हुए। बीसवें तीर्थकर के बाद लक्ष्मण वासुदेव हुए। इनके पीछे इक्कीसवें नेमिनाथ तीर्थङ्कर हुए एव इन्हीं के समकालीन दसवें हरिषेण चक्रवर्ती हुए। हरिषेण के बाद ग्यारहवें जय चक्रवर्ती हुए। इसके बाद बाइसवें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि और नवें कृष्ण वासुदेव एक साथ हुए। बाद में बारहवे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुए। ब्रह्मदत्त के बाद तेइसवे पार्श्वनाथ और चौवीसवें महावीर स्वामी हुए।

भरतक्षेत्र के आगामी २४ तीर्थङ्कर

आगामी उत्सर्पिणी में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) महापद्म (पद्मनाभ) (२) सूरदेव (३) सुपार्श्व (४) स्वयंप्रभ (५) सर्वानुभूति (६) देवश्रुत (देवगुप्त) (७) उदक (८) पेढालपुत्र (९) पोट्टिल (१०) शतकीर्ति (११) मुनिसुव्रत (सर्वविद) (१२) अमम (१३) निष्कषाय (१४) निष्पुलाक (१५) निर्मम (१६) चित्रगुप्त (१७) समाधिजिन (१८) संवर (अनिवृत्ति) (१९) यशोधर (२०) विजय (२१) मल्लि (विमल) (२२) देविजन (देवोपपात) (२३) (अनन्तवीर्य) अनन्तविजय (२४) भद्रजिन।

ऐरावत क्षेत्र के आगामी २४ तीर्थङ्कर

आनेवाले उत्सर्पिणी काल में जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम ये हैं—

१ सुमंगल २ सिद्धार्थ अर्थसिद्ध ३ निर्वाण ४ महायश ५ धर्मध्वज ६ श्रीचन्द्र ७ पुष्पकेतु ८ महाचन्द्र ९ श्रुतसागर १० पुण्यघोष ११ महाघोष १२ सत्यसेन १३ शूरसेन १४ महासेन १५ सर्वानन्द १६ देवपुत्र १७ सुपार्श्व १८ सुव्रत १९ सुकोशल २० अनन्तविजय २१ विमल २२ महाबल २३ उत्तर २४ देवानन्द

ग्यारह रुद्र—

१ भीमावली २ जितशत्रु ३ रुद्र ४ विश्वानल ५ सुप्रतिष्ठ ६ अचल ७ पुण्डरीक ८ जितधर ९ अजितनाभ १० पेढाल ११ सत्यकि

श्री ऋषभदेव के समय भीमावली नामक रुद्र हुआ। श्री अजितनाथ के तीर्थ में जितशत्रु, श्री सुविधिनाथ के तीर्थ में रुद्र, श्री शीतलनाथ के तीर्थ में विश्वानल, श्री श्रेयांसनाथ के तीर्थ में सुप्रतिष्ठ, श्री वासुपूज्य के तीर्थ में अचल, श्री विमलनाथ के तीर्थ में पुण्डरीक, श्री अनतनाथ के तीर्थ में अजितधर, श्री धर्मनाथ के तीर्थ में अजितनाभ, श्री शान्तिनाथ के तीर्थ में पेढाल एवं श्री महावीर स्वामी के में तीर्थ सत्यकी नाम के रुद्र हुए।

ये रुद्र कठिन तपश्चर्या करने वाले थे। एकादश अंग सूत्रों के ज्ञाता थे। कठोर तपश्चर्या के कारण ये महामुनि रुद्र कहलाये।

बीस विहरमान एक दृष्टि में

क्रमांक	विहरमान नाम	पिता	माता	स्त्री
१	सीमन्धर स्वामी	श्रेयांशराजा	सत्यकी	रुक्मिनी
२	युगमन्दर स्वामी	सुदृढ राजा	सुतारा	प्रियंगला०
३	वाहुस्वामी	सुग्रीव	विजया	मोहिनी
४	सुबाहु स्वामी	निषढ	सुनन्दा	किंपुरुषा
५	सुजात स्वामी	देवसेन	देवसेनाराणी	जयसेना
६	स्वयंप्रभ स्वामी	मित्रभूति	सुमंगला	प्रियसेना--
७	ऋषभानन स्वामी	कीर्ति राजा	वीरसेना	जयावती
८	अनन्तवीर्य स्वामी	मेघ राजा	मंगलावती	विजयावती
९	सूरप्रभ स्वामी*	विजय	विजया	नंदसेना
१०	विशालधर स्वामी	नाग	भद्रा	विमला
११	वज्रधर स्वामी	पद्मरथ	सरस्वती	विजयावती
१२	चन्द्रानन स्वामी	वाल्मीक	पद्मावती	लीलावती
१३	चन्द्रवाहु स्वामी	देवानन्द	रेणुका	सुगंधा
१४	भुजंग स्वामी	महाबल	महिमा	गंधसेना
१५	ईश्वर स्वामी	मंगलसेन×	यशोज्वला+	चन्द्रावती
१६	नेमिप्रभ स्वामी	वीरसेन	सेनादेवी	मोहिनी
१७	वीरसेन स्वामी	भूमिपाल	भानुमती	राजसेना
१८	महाभद्र स्वामी	देवराजा	उमादेवी	सूर्यकान्ता
१९	देवयश स्वामी	सर्वभूति	गंगादेवी	प्रभावती§
२०	अजितवीर्य स्वामी	राज्यपाल	कर्णिका	रत्नमाला

*विजयधरस्वामी §पद्मावती ×गजसेन कुलसेन +यशोदारानी ०मंगलावती --विजयसेना ।

क्रमांक	लांछन	गृहस्थ पर्याय	दीक्षा पर्याय	सर्वायु
१	ऋषभ	८३ लाख पूर्व	१ लाख पूर्व	८४ लाख पूर्व
२	हस्ती	,,	,,	,,
३	मृग	,,	,,	,,
४	कपि	,,	,,	,,
५	सूर्य	,,	,,	,,
६	चन्द्र	,,	,,	,,
७	सिंह	,,	,,	,,
८	हस्ती	,,	,,	,,
९	चन्द्र	,,	,,	,,
१०	सूर्य	,	,,	,,
११	शंख	,,	,,	,,
१२	वृषभ	,,	,,	,,
१३	पद्मकमल	,,	,,	,,
१४	पद्मकमल	,,	,,	,,
१५	चन्द्र	,,	,,	,,
१६	सूर्य	,,	,,	,,
१७	ऋषभ	,,	,,	,,
१८	हस्ती	,,	,,	,,
१९	चन्द्र	,,	,,	,,
२०	स्वस्तिक	,,	,,	,,

क्रमांक	द्वीप	विजय	नगरी	ऊँचाई	वर्ण
१	जम्बूद्वीप पूर्व महाविदेह	पुष्करावती	पुण्डरगिरि	५०० धनुष	सुवर्ण
२	जम्बूद्वीप पश्चिम महाविदेह	वपु	विजया	,,	,,
३	जम्बूद्वीप पूर्व महाविदेह	वच्छ	सुसीमा	,,	,,
४	जम्बूद्वीप पश्चिम महाविदेह	नलिनी	अयोध्या	,,	,,

क्रमांक	द्वीप		विजय	नगरी	ऊँचाई	वर्ण
५	धात की खण्ड	पूर्व महाविदेह	पुष्कलावतो	पुण्डरिकिणो	५००धनुष	सुवर्ण
६	,,	पश्चिम ,,	वपु	विजया	,,	,,
७	,,	पूर्व ,,	वच्छ	सुसीमा	,,	,,
८	,,	पश्चिम ,,	नलिनी	अयोध्या	,,	,,
९	,,	पूर्व ,,	पुष्कलावती	पुण्डरिकिणी	,,	,,
१०	,,	पश्चिम ,,	वपु	विजया	,,	,,
११	,,	पूर्व ,,	वच्छ	सुसीमा	,,	,,
१२	,,	पश्चिम ,,	नलिनी	अयोध्या	,,	,,
१३	पुष्करार्द्धद्वीप	पूर्व महाविदेह	पुष्कलावती	पुण्डरिकिणी	,,	,,
१४	,,	पश्चिम ,,	वपु	विजया	,,	,,
१५	,,	पूर्व ,,	वच्छ	सुसीमा	,,	,,
१६	,,	पश्चिम ,,	नलिनी	अयोध्या	,,	,,
१७	,,	पूर्व ,,	पुष्कलावती	पुण्डरिकिणी	,,	,,
१८	,,	पश्चिम ,,	वपु	विजया	,,	,,
१९	,,	पूर्व ,,	वच्छ	सुसीमा	,,	,,
२०	,,	पश्चिम ,,	नलिनी	अयोध्या	,,	,,

नोटः— (१) नं. १, २, ३ एवं ४, ये चारों तीर्थङ्कर जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरु की चारों दिशा में विचर रहे हैं।

(२) नं. ५, ६, ७ एवं ८, ये चारों तीर्थंकर धातकीखण्ड के पूर्व महाविदेह के विजय मेरु के पास विचरते हैं।

(३) नं. ९, १०, ११ एवं १२, ये चारों तीर्थंकर धातकी खण्ड के पश्चिम महाविदेह के अचल मेरु के पास विचरते हैं।

(४) नं. १३, १४, १५ एवं १६, ये चारों तीर्थंकर पुष्करार्धद्वीप के पूर्व दिशा में मंदिर नाम मेरु के पास विचरते हैं।

(५) नं. १७, १८, १९ एवं २०, ये चारों तीर्थंकर पुष्करार्धद्वीप के पश्चिम दिशा में विद्युन्माली मेरु के पास विचरते हैं।

बारह चक्रवर्ती

१-भरत चक्रवर्ती

भगवान ऋषभदेव की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम सुनन्दा और दूसरी का नाम सुमंगला था। सुमंगला ने चौदह महास्वप्न देखे। सर्वार्थ-सिद्ध विमान से चवकर वाहु और पीठ का जीव सुमंगला के गर्भ में अवतरित हुआ। महारानी सुमंगला अपने गर्भ का विधिवत् पालन करने लगी। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने एक सुन्दर युगल को जन्म दिया। युगल सन्तान में एक पुत्र और दूसरी पुत्री थी। बाहु का जीव पुत्र हुआ और पीठ का जीव पुत्री हुई। बालक का नाम भरत और बालिक का का नाम ब्राह्मी रखा गया। भरत की माता सुमंगला ने इनके अतिरिक्त ४९युगल पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१ भरत २ बाहुबलि) ३ शख ४ विश्वकर्मा ५ विमल ६ सुलक्षण ७ अमल ८ चित्राङ्ग ९ ख्यातकीर्ति १० वरदत्त ११ दत्त १२ सागर १३ यशोधर १४ अवर १५ थवर १६ कामदेव १७ ध्रुव १८ वत्स १९ नन्द २० सूर २१ सुनन्द २२ कुरु २३ अंग २४ वंग २५ कोसल २६ वीर २७ कलिङ्ग २८ मागध २९ विदेह ३० सङ्गम ३१ दशार्ण ३२ गम्भीर ३३ वसुवर्मा ३४ सुवर्मा ३५ राष्ट्र ३६ सुराष्ट्र ३७ बुद्धि-कर ३८ विविधकर ३८ सुयश ४० यशःकीर्ति ४१ यशस्कर ४२ कीर्तिकर ४३ सुषेण ४४ ब्रह्मसेन ४५ विक्रांत ४६ नरोत्तम ४७ चन्द्रसेन ४८ महासेन ४९ सुषेण ५० भानु ५१ कान्त ५२ पुष्पयुत ५३ श्रीधर ५४ दुर्द्धर्ष ५५ सुसुमार ५६ दुर्जय ५७ अजयमान ५८ सुधर्मा ५९ धर्मसेन ६० आनन्दन ६१ आनन्द ६२ नन्द ६३ अपराजित ६४ ६४ विश्वसेन ६५ हरिषेण ६६ जय ६७ विजय ६८ विजयंत ६९ प्रभाकर ७० अरिदमन ७१ मान ७२ महाबाहु ७३ दीर्घबाहु ७४ मेघ ७५ सुघोष ७६ विश्व ७७ वराह ७८ वसु ७९ सेन ८० कपिल

८१ शैलविचारी ८२ अरिंजय ८३ कुजरबल ८४ जयदेव ८५ नागदत्त ८६ काश्यप ८७ बल ८८ वीर ८९ शुभमति ९० सुमति ९१ पद्मनाभ ९२ सिंह ९३ सुजाति ९४ संजय ९५ सुनाभ ९६ नरदेव ९७ चित्तहर ९८ सुरवर ९९ दृढरथ १०० और प्रभञ्जन ।

महारानी सुनन्दा ने भी गर्भ धारण किया । सुबाहु तथा महापीठ के जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर महारानी सुनन्दा के गर्भ में उत्पन्न हुए । गर्भकाल पूर्ण होने पर महारानी सुनन्दा ने एक सुन्दर आकृति वाली युगल सन्तान को जन्म दिया । उनमें एक बालक और एक बालिका थी । सुबाहु का जीव बालक बना और महापीठ का जीव बालिका बनी । बालक का नाम बाहुबली और बालिका का नाम सुन्दरी रखा । विन्ध्याचल के हाथियों के बच्चों की तरह ये महापराक्रमी बालक क्रमश. बढ़ने लगे ।

भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा लेने से पहले ही अपने सौ पुत्रों को अलग-अलग राज्य बाँट दिया । भरत को विनीता का और बाहुबली को तक्षशिला का तथा अन्य ९८ पुत्रों को अलग-अलग नगरों का राज्य दे दिया । पुत्रों को राज्य देकर भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और वे आत्म साधना में जुट गये ।

भरत विनीता में रहकर राज्य का संचालन करने लगे । एक-बार उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । आयुधशाला के अध्यक्ष से चक्ररत्न की उत्पत्ति सुनकर भरत राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे तुरत अपने सिंहासन से उठे, एक शाटिक उत्तरासग धारण कर, हाथ जोड चक्ररत्न की ओर सात आठ पग चले और बायें घुटने को मोड़ तथा दाहिने को भूमिपर लगाकर चक्ररत्न को प्रणाम किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाकर विनीता नगरी को साफ और स्वच्छ करने का आदेश दिया । भरत ने स्नान घर में

प्रवेश कर सुगन्धित जल से स्नान किया और वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो वे बाहर निकले। फिर अनेक गणनायक, दण्डनायक, दूत, सन्धिपाल आदि से वेष्टित हो बाजे गाजे के साथ आयुधशाला की ओर चले। उनके पीछे-पीछे देश विदेश की अनेक दासियाँ चन्दन, कलश भृङ्गार, दर्पण, वातकरक (जलशून्य घड़े), रत्न करण्डक, वस्त्र, आभरण सिंहासन, छत्र, चमर, ताड़ के पंखे, धूपदान आदि लेकर चल रही थीं। आयुधशाला में पहुँच कर भरत ने चक्ररत्न को प्रणाम किया। रुएँदार पींछी से उसे झाड़ा पोंछा, जलधारा से स्नान कराया, चन्दन का अनुलेप किया फिर गन्ध-माल्य आदि से उसकी अर्चना की। उसके बाद चक्ररत्न के सामने चावलों के द्वारा आठ मंगल बनाये, पुष्पों की वर्षा की और धूप जलाई। फिर चक्ररत्न को प्रणाम कर भरत आयुधशाला के बाहर आये। उन्होंने अठारह श्रेणी प्रश्रेणी-कुंभार, पट्टइल्ल (पटेल), सुवर्णकार सूपकार (रसोइया), गांधर्व काश्यप (नाई), मालाकार (माली), कच्छकर (काछी), तंबोली, चमार, यंत्र पीलक (कोल्हू आदि चलाने वाला), गंछिअ (गांछी), छिंपाय, (छींपी) कंसकार (कसेरा), सीवग (सीनेवाला), गुआर (ग्वाला), भिल्ल एवं धीवर, इन को बुलाकर नगरी में आठ दिन के उत्सव की घोषणा की और सब जगह कहला-दिया कि इन दिनों में व्यापारियों आदि से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जायगा, राजपुरुष किसी के घर में जबरदस्ती प्रवेश नहीं कर सकेगे। किसी को अनुचित दण्ड नहीं दिया जाएगा।

उत्सव समाप्त होने के बाद चक्ररत्न ने विनीता से गंगा के दक्षिण तट पर पूर्व दिशा में स्थित मागध तीर्थ की ओर प्रयाण किया। यह देखकर भरत राजा चतुरंगिणी सेना से सज्जित हो, हस्तिरत्न पर सवार होकर गंगा के दक्षिण तट के प्रदेशों को जीतते हुये चक्ररत्न के पीछे-पीछे चलकर मागध तीर्थ में आये और यहाँ अपना पड़ाव डाल दिया। हस्तिरत्न से उतरकर भरत ने पोषधशाला में प्रवेश किया और वहाँ दर्भ के संथारे पर बैठ कर अष्टम भक्त (तेला) के साथ

मागध तीर्थकुमार नामक देव की आराधना की फिर भरत ने बाहर की उपस्थान शाला में आकर कौटुम्बिक पुरुष को अश्वरत्न तैयार करने की आज्ञा दी ।

चारघण्टे वाले अश्वरथ पर सवार होकर अपने दल–बल सहित भरत राजा ने चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए लवणसमुद्र में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मगध तीर्थाधिपति देव के भवन में एक बाण मारा जिससे देव अपने सिंहासन से खलबला कर उठा । बाण पर लिखे हुए भरत चक्रवर्ती के नाम को पढ़कर देव को पता चला कि भारतवर्ष में भरत नामक चक्रवर्ती का जन्म हुआ है। उसने तुरत ही भरत के पास पहुँच कर उसे बधाई दी और निवेदन किया–देवानुप्रिय का मै आज्ञाकारी सेवक हूँ । मेरे योग्य सेवा का आदेश दें। उसके बाद देव का आदर–सत्कार स्वीकार करके भरत चक्रवर्ती ने अपने रथ को भारतवर्ष की ओर लौटा दिया और विजयस्कन्धावार निवेश में पहुँच कर मगध तीर्थाधिपति देव के सन्मान में आठ दिन के उत्सव की घोषणा की । उत्सव समाप्त होने पर चक्ररत्न ने वरदाम तीर्थ की ओर प्रस्थान किया ।

वरदाम तीर्थ में भरत चक्रवर्ती ने तेला करके-वरदाम तीर्थ कुमार देव की और प्रभास तीर्थ में प्रभास कुमार देव की सिद्धि प्राप्त की । इसी प्रकार सिन्धुदेवी, वैताढ्य गिरिकुमार और कृतमाल देव को सिद्ध किया ।

उसके बाद भरत राजा ने अपने सुषेण नामक सेनापति को सिन्धु नदी के पश्चिम में स्थित निष्कुट प्रदेश को जीतने के लिये भेजा । सुषेण महापराक्रमी और अनेक म्लेच्छ भाषाओं का पण्डित था । वह अपने हाथी पर बैठकर सिन्धु नदी के किनारे पहुँचा और वहाँ से चमड़े की नाव द्वारा नदी में प्रवेशकर उसने सिंहल, बर्बर, अगलोक चिलाय लोक, यवन द्वीप, आरबक, रोमक, अलसंड, तथा पिश्खुर, कालमुख और जोनक (यवन) नामक म्लेच्छों तथा उत्तर वैताढय, में रहने वाली

म्लेच्छ जाति और दक्षिण-पश्चिम से लेकर सिन्धु सागर तक के प्रदेशों के तथा सर्वप्रवर कच्छदेश को जीत लिया । सुषेण के विजयी होने पर अनेक जनपद और नगर आदि के स्वामी सेनापति की सेवा में अनेक आभरण, भूषण, रत्न, वस्त्र तथा अन्य बहुमूल्य भेंट लेकर उपस्थित हुए । उसके बाद सुषेण सेनापति ने तिमिस्रगुहा के दक्षिण द्वार के कपाटों का उद्घाटन किया ।

इसके बाद भरत चक्रवर्ती अपने मणि रत्न को लिये तिमिस्रगुहा के दक्षिण द्वार के पास गये और भित्ति के ऊपर काकणिरत्न से उसने ४९ मण्डल बनाये ।

उत्तरार्द्ध भरत में अपात नाम के किरात रहते थे । वे अनेक भवन, शयन, यान, वाहन तथा दास, दासी, गो, महिष, आदि से सम्पन्न थे । एक बार अपने देश में अकाल-गर्जन, असमय में विद्युत् की चमक और वृक्षों का फलना फूलना तथा आकाश में देवताओं के नृत्य देखकर वे बड़े चिन्तित हुए उन्होंने सोचा कि शीघ्र ही कोई आपत्ति आने वाली है । इतने में तिमिस्र गुहा के उत्तर द्वार से बाहर निकलकर भरत राजा अपनी सेनासहित वहाँ आ पहुँचे । दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ और किरातों ने भरत की सेना को मार भगाया । अपनी सेना की पराजय देखकर सुषेण सेनापति अश्वरत्न पर आरूढ हो और असिरत्न को हाथ में ले किरातों की ओर बढ़ा और उसने शत्रुसेना को युद्ध में हरा दिया । पराजित किरात सिन्धु नदी के किनारे बालुका के संस्तारक पर ऊर्ध्व मुख करके वस्त्र रहित हो लेट गये और अष्टम भक्त से अपने कुल देवता मेघमुख नामक नागकुमारों की आराधना करने लगे । इससे नागकुमारों के आसन कम्पायमान हुए और वे शीघ्र ही किरातों के पास आकर उपस्थित हुए । अपने कुलदेवताओं को देखकर किरातों ने उन्हें प्रणाम किया और जयविजय से बधाई दी । उन्होंने कुल देवताओं से निवेदन किया—हे देवानुप्रियो ! यह कौन दुष्ट हमारे

देश पर चढ़ आया है, आप लोग इसे शीघ्र ही भगा दें। नागकुमारों ने उत्तर दिया—यह भरत नामक चक्रवर्ती है जो किसी भी देव दानव, किन्नर, किंपुरुष, महोरग या गन्धर्व से नहीं जीता जा सकता और न किसी शस्त्र, अग्नि, मंत्र आदि से ही इनकी कोई हानि की जा सकती है। फिर भी तुम लोगों के हितार्थ वहाँ पहुँच कर हम कुछ उपद्रव करेंगे। इतना कहकर नागकुमार विजयस्कंधावार निवेश में आकर मूसलाधार वर्षा करने लगे। लेकिन भरत ने वर्षा की कोई परवाह नहीं की और अपने चर्मरत्न पर सवार हो छत्ररत्न से वर्षा को रोक मणिरत्न के प्रकाश में सात रात्रियाँ व्यतीत कर दीं।

देवों को जब इस उपद्रव का पता लगा तो वे मेघमुख नागकुमारों के पास आये और उनको डाँटडपट कर कहने लगे-क्या तुम नहीं जानते हो कि भरत राजा अजेय है फिर भी तुम लोग वर्षा द्वारा उपद्रव कर रहे हो! यह सुनकर नागकुमार भयभीत हो गये और उन्होंने किरातों के पास पहुँचकर उन्हें सब हाल सुनाया। उसके बाद किरात लोग आर्द्र वस्त्र धारण कर श्रेष्ठ रत्नों को ग्रहण कर भरत की शरण में पहुँचे और अपराधों की क्षमा मांगने लगे। रत्नों को ग्रहण कर भरत ने किरातों को अभयदान पूर्वक सुख से रहने की अनुमति प्रदान की। तत्पश्चात् भरत क्षुद्रहिमवंत पर्वत के पास पहुँचे। क्षुद्र हिमवंत गिरि कुमार की अष्टम भक्त से आराधना की और उसे सिद्ध किया। फिर ऋषभकूट पर्वत पर पहुँच वहाँ काकणि-रत्न से पर्वत की भित्ति पर अपना नाम अंकित किया। उसके बाद दिग्विजय करते हुए भरत महाराज ने वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणियों पर आक्रमण कर दिया। उस समय कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि वहाँ के राजा थे। उनके साथ बारह वर्ष तक युद्ध चला। अन्त में नमि विनमि हारकर भरत महाराज के शरण में आये। विनमि ने अपनी दौहती सुभद्रा का विवाह महाराज भरत के साथ

किया । आगे जाकर यही सुभद्रा महाराज भरत की स्त्रीरत्न के रूप में प्रसिद्ध हुई । नमि ने रत्न, कटक और बाहुबन्द महाराज को भेंट के रूप में दिये ।

इसके बाद भरत ने गंगादेवी की सिद्ध की । खण्ड प्रपात गुहा में पहुँच कर नृत्यमालक देवता को सिद्ध किया और गंगा के पूर्व में स्थित निष्कुट प्रदेश को जीता । सुषेण सेनापति ने गुफा के कपाटों का उद्‌घाटन किया । यहाँ भी भरत ने काकणिरत्न से मण्डल बनाये ।

इसके बाद भरत महाराज ने गंगा के पश्चिम विजय स्कन्धावार निवेश स्थापति कर निधिरत्न की सिद्धि की । भरतचक्रवर्ती ने अपने साधना काल में तेरह तेले किये थे इस समय चक्ररत्न अपनी यात्रा समाप्त कर विनीता राजधानी की ओर लौट पड़ा । भरत चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये प्रयाण दिन से ६० हजारवें वर्ष छखण्ड पर विजय प्राप्त कर फिर से अयोध्या लौट रहे थे । भरत चक्रवर्ती दिग्विजय करने के पश्चात् हस्तिरत्नपर सवार हो उसके पीछे पीछे चले । हाथी के आगे आठ मंगल-पूर्णकलश, भृंगार, छत्र, पताका, और दंड आदि स्थापित किये गये । फिर चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न; काकणिरत्न और फिर नव निधियाँ रखी गईं । उसके बाद अनेक राजा सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्न, वर्द्धकीरत्न, पुरोहितरत्न, और स्त्रीरत्न चल रहे थे । फिर बत्तीस प्रकार के नाटकों के पात्र तथा सूपकार, अठारह श्रेणी प्रश्रेणी, और उनके पीछे घोड़े हाथी और अनेक पदाति चल रहे थे । उसके बाद अनेक राजा ईश्वर आदि थे और उनके पीछे असि, यष्टि, कुंत आदि के वहन करने वाले तथा दंडी मुंडी शिखंडी आदि हँसते, नाचते और गाते हुए चले जा रहे थे । भरत चक्रवर्ती के आगे बड़े अश्व, अश्वधारी, दोनों ओर हाथी सवार और पीछे पीछे रथ समूह चल रहे थे । अनेक कामार्थी, भोगार्थी, आदि भरत की स्तुति करते हुए जा रहे थे । अपनी नगरी में पहुँच

कर भरत चक्रवर्ती ने सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्न, वर्द्धकिरत्न, और पुरोहित-रत्न का सत्कार किया, सूपकारों, अठारह श्रेणी-प्रश्रेणी तथा राजा आदि को सम्मानित किया। उसके बाद वे अनेक ऋतुकल्याणिकाओं, जनपद-कल्याणिकाओं और विविध नाटकों से वेष्टित स्त्रीरत्न के साथ आनन्द पूर्वक जीवन यापन करने लगे।

एक दिन भरत ने अपने सेनापति आदि को बुलाकर महाराज्याभिषेक रचाने का आदेश दिया। अभिषेकमण्डप में अभिषेक आसन सजाया गया। इसके ऊपर भरत चक्रवर्ती पूर्व की ओर मुख करके आसीन हुए। मांडलिक राजाओं ने भरत की प्रदक्षिणा कर जय विजय से उन्हे बधाई दी। सेनापति, पुरोहित, सूपकार श्रेणी–प्रश्रेणी आदि ने उनका अभिषेक किया तथा उन्हें हार, और मुकुट आदि बहुमूल्य आभूषण पहनाये। नगरी में आनन्द मंगल मनाया जाने लगा।

भरत के चक्रवर्ती बनने के बाद उनकी दृष्टि अपने ९९ भाइयों पर पड़ी। उन्होंने अपनी आज्ञा मनवाने के लिये एक एक दूत ९९ भाइयों के पास भेजे। दूतों ने जाकर उनसे कहा कि यदि आप अपने राज्य की रक्षा चाहते हैं तो भरत चक्रवर्ती की आज्ञा शिरोधार्य कर उनकी आधीनता स्वीकार करें। दूतों की बात सुनकर बाहुबलि के सिवाय अन्य अट्ठानवे भाई एक स्थान पर एकत्र हुए और आपस में सोचने लगे कि अपने पिता भगवान ऋषभदेव ने जिस-प्रकार भरत को उसके हिस्से का राज्य दिया है उसी प्रकार हमें भी अपने अपने हिस्से का राज्य दिया है। ऐसी स्थिति में भरत को हमारा राज्य छीनने का या हमसे आज्ञा मनवाने का क्या हक है। जैसा वह अपने देश का राजा है वैसे हम भी अपने अपने देश के राजा हैं। भरत को छ खण्ड का राज्य मिलने पर भी उसकी राज्यलालसा कम नहीं हुई प्रत्युत वह हमारे राज्य को भी अपने राज्य में मिलाना चाहता है और हमसे जबरदस्ती आज्ञा मनवाना चाहता है। क्या हमें भरत की आधीनता स्वीकार करनी चाहिये या अपनी राज्य की रक्षा के लिये उससे

युद्ध करना चाहिये । इस सम्बन्ध में हमें अपने पिता भगवान ऋषभदेव की सम्मति लेकर ही कार्य करना चाहिये। उनसे पूछे बिना हमें किसी प्रकार का कदम न उठाना चाहिये । इस प्रकार विचार कर वे सभी जहाँ भगवान ऋषभदेव विराजमान थे, वहाँ आये और भगवान को वन्दन कर उन्होंने उपरोक्त सारी हकीकत प्रभु से निवेदन की। भगवान ने शान्तिपूर्वक अपने पुत्रों की बातें सुनकर कहा–

"हे आर्यो! तुम इस बाहरी राज्य लक्ष्मी के लिये इतने चिन्तित क्यों हो रहे हो? यदि कदाचित् तुम भरत से अपने राज्य की रक्षा करने में समर्थ भी हो जाओगे तब भी अन्त में आगे या पीछे इस राज्यलक्ष्मी को तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा । तुम धर्म की शरण ग्रहण करो जिससे तुम्हें ऐसी मोक्ष रूप राज्यलक्ष्मी प्राप्त होगी जिसे कोई नहीं छीन सकता । वह नित्य, स्थायी और अविनाशी है । भगवान ने आगे कहा—

संबुज्झह किं न बुज्झह ? संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।
णो हूवणमंति राइणो, णो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥
डहरा वुड्ढा य पासह गब्भत्था वि चयंति माणवा ॥
सेणे जह वट्टयं हरे, एवं आउखयम्मि तुट्टई ॥

हे भव्यो! तुम बोध प्राप्त करो । तुम क्यों नहीं बोध प्राप्त करते। जो रात्रि (समय) व्यतीत होगई है वह फिर लौटकर नहीं आती और संयम जीवन फिर सुलभ नहीं है ।

हे भव्यो! तुम विचार करो! बालक वृद्ध और गर्भस्थ मनुष्य भी अपने जीवन को छोड़ देते हैं । जैसे बाज पक्षी तीतर पर किसी भी समय झपटकर उसके प्राण हरण कर लेता है इसी प्रकार मृत्यु भी किसी समय अचानक प्राणियों के प्राणहरण कर लेती है ।

मनुष्य जन्म, आर्य देश, उत्तम कुल, पांचों इन्द्रियों की परिपूर्णता आदि बातों का बार बार मिलना बड़ा दुर्लभ है अतएव तुम सब समय रहते शीघ्र ही बोधि प्राप्त करने का प्रयत्न करो ।

भगवान का उपदेश सुनकर उन्हे वैराग्य उत्पन्न होगया । राज-पाट छोड़कर भगवान के पास उन ९८ भाइयों ने दीक्षा ग्रहण कर ली । अन्त में केवलज्ञान-कैवलदर्शन प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया ।

वाहुवली—

भरत की सूचना वाहुवली के पास भी पहुँची । वाहुवली बड़े शक्ति शाली और वीर राजा थे । उन्हे भरत के आधीन रहना पसन्द नहीं था । वे दूत द्वारा संदेश पाकर वड़े क्रुद्ध हुए और दूत को अप-मानित कर कहा-"पूज्य पिताजी ने जिसप्रकार भरत को अयोध्या का राज्य दिया है, उसी प्रकार मुझे तक्षशिला का राज्य दिया है। जो राज्य मुझे पिताजी से प्राप्त हुआ है उसे छीनने का अधिकार भरत को नहीं है । जाओ, तुम अपने स्वामी भरत से कहदो कि वाहुवली भरत के शासन में रहने के लिये तैयार नहीं है ।"

दूत की वात सुनकर भरत ने विशाल सेना के साथ वाहुवली पर चढ़ाई कर दी । वाहुवली ने भी अपनी सेना के साथ आकर सामना किया । एक दूसरे के रक्त की प्यासी वनकर दोनों सेनाएँ मैदान में आकर डट गईं । एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिये सेनाएं आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगीं ।

सौधर्मेन्द्र ने जब दोनों महावलियों को युद्ध के मैदान में युद्ध के लिये तैयार देखा तो उनके पास आकर यह कहा "आप दोनों निजी स्वार्थ के लिये सेना का संहार क्यों करने जा रहे हैं ! अगर आप को लड़ना ही है तो दोनों आपस में लड़कर हार-जीत का फैसला कर लें । व्यर्थ का मानव-संहार करने से क्या फायदा ।" दोनों भाइयों को इन्द्र की वात पसन्द आगई । दोनों के वीच दृष्टि-युद्ध, वाग्युद्ध और मुष्टि-युद्ध होना निश्चित हुआ । पहले के चार युद्धों में वाहुवली की जीत हुई, फिर मुष्टि-युद्ध की वारी आई । वाहुवली की भुजाओं में वहुत वल था । उसे अपनी विजय में विश्वास था । उसने भरत के मुष्टि-प्रहार को सह लिया । इसके वाद स्वयं प्रहार करने के लिये

बाहुबली ने मुट्ठी उठाई तो इन्द्र ने सोचा बाहुबली बड़े शक्तिशाली व्यक्ति हैं। बाहुबली के प्रहार से भरत जमीन में गड़ जायेंगे और यह चक्रवर्ती पद के लिये लांछन होगा। उन्होंने बाहुबली की मुट्ठी को ऊपर ही पकड़ लिया और कहा—"बाहुबली! यह क्या कर रहे हो! बड़े भाई पर हाथ उठाना क्या तुम्हें शोभा देता है? तुच्छ राज्य के लिये क्रोध के वशीभूत होकर तुम कितना बड़ा अनर्थ कर रहे हो इसे सोचो तो सही।"

बाहुबली की मुट्ठी उठी की उठी रह गई। उनके मन में पश्चात्ताप होने लगा। वे मन में सोचने लगे—"जिस राज्य के लिए इस प्रकार का अनर्थ करना पड़े उस राज्य से क्या लाभ!" यह सोच कर उन्होंने संयम लेने का निश्चय किया।

उठाई हुई मुट्ठी से उन्होंने पंचमुष्टि लोचकर लिया और तप करने के लिये वन में चले गये। वहाँ जाकर ध्यान लगा लिया। अभी तक उनके हृदय से अभिमान दूर नहीं हुआ था। मनमें सोचा—"मेरे छोटे भाइयों ने भगवान के पास पहले से ही दीक्षा ले रक्खी है। अभी मैं भगवान के पास जाऊँगा तो उन भाइयों को नमस्कार करना पड़ेगा। अतः मुझे केवली बनकर ही भगवान के समवशरण में पहुँचना चाहिए।"

यह सोच वे घने जङ्गल में ध्यान करने लगे। निर्जल और निराहार ध्यान करते हुए एक वर्ष बीत गया। सारे शरीर पर लताएँ छा गईं। पंछियों ने उनके शरीर पर अपने घौसले बना डाले, किन्तु अहंभाव लिये हुए तपस्वी बाहुबली निश्चल ध्यान में लीन ही रहे।

बाहुबली की यह अवस्था देखकर भगवान ऋषभदेव ने उन्हें समझाने के लिये साध्वी ब्राह्मी और सुन्दरी को उनके पास भेजा। दोनों साध्वियों ने लताओं से आच्छादित बाहुबलीजी को खोज निकाला और पास में आकर कहने लगीं—

"वीरा मारा गज थकी ऊतरो
गज चढ्यां केवल न होसी रे ॥
बन्धव गज थकी ऊतरो,
ब्राह्मी सुन्दरी इम भाखे रे"

अपनी बहनों के उपालम्भपूर्ण शब्द सुनकर बाहुबली चौंक पड़े। मन ही मन कहने लगे—"क्या मैं सचमुच हाथी पर बैठा हूँ। हाथी घोड़े, राज्य, परिजन आदि सब को छोड़कर ही मैंने दीक्षा ली है। फिर हाथी की सवारी कैसी? हाँ समझ में आया। मैं अहंकार रूपी हाथी पर बैठा हूँ। मेरी बहनें ठीक कह रही हैं। मैं कितने भ्रम में था। छोटे और बड़े की कल्पना तो सांसारिक जीवों में है। आध्यात्मिक जगत में वही बड़ा है जिसने आत्मा का पूर्ण विकास कर लिया है। मेरी आत्मा में अहंकार आदि अनेक दोष हैं और मेरे अनुज उनसे मुक्त हैं, अतः मुझे उन्हें नमस्कार करना ही चाहिये। यह सोच बाहुबली ने भगवान ऋषभदेव के पास जाने के लिये एक पैर आगे रखा। इतने में उनके चार घनघाती कर्म नष्ट हो गये। बाहुबली केवली हो गये। देवों ने पुष्पवृष्टि की। चारों ओर जय जयकार होने लगा। दोनों बहनें भगवान के पास लौट आईं। बाहुबली केवली परिषद् में जा विराजे। अन्त में उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

भरत चक्रवर्ती ने अपने ९९ भाइयों के राज्य को भी अपने आधीन कर लिया।

भरत चक्रवर्ती के चौदहरत्न, नवनिधान, बत्तीस हजार मुकुटबन्ध राजा, ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख रथ, ८४ लाख हाथी, ९६ करोड़ पैदल सैन्य, बत्तीस हजार देश, ४८ हजार पट्टन, ३२ हजार बड़े नगर, ९९ हजार द्रोण, १६ हजार यक्ष, ६४ हजार अन्तःपुर थे। इस प्रकार विशाल वैभव का उपभोग करते हुए भरत चक्रवर्ती ने ६ लाख पूर्व व्यतीत किये।

एक दिन स्नानादि कर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो भरत महाराज आदर्श भवन (शीश महल) में गये। महल में जाकर रत्न सिंहासन पर आरूढ़ हुए। दर्पण में अपने रूप सौंदर्य को देखने लगे। अचानक उनके एक हाथ की अंगुली में से अँगूठी नीचे गिर पड़ी। दूसरी अंगुलियों की अपेक्षा वह असुन्दर मालूम होने लगी। भरत को विचार आया कि क्या इन बाहरी आभूषणों से ही मेरी शोभा है? उन्होंने दूसरी अंगुलियों की अँगूठियों को भी उतार दिया और यहाँ तक कि मस्तक का मुकुट आदि सब आभूषण उतार दिये। पत्र रहित वृक्ष जिस प्रकार शोभाहीन हो जाता है उसी प्रकार वस्त्र और अलंकारों से रहित सारा शरीर असुन्दर लगने लगा। अपने शरीर की इस प्रकार अशोभा को देखकर महाराज विचारने लगे, "आभूषणों से ही शरीर की शोभा है। यह इसकी कृत्रिम शोभा है। इसका असली स्वरूप तो कुछ और ही है। यह अनित्य एवं नश्वर है। मल मूत्रादि अशुचि पदार्थों का भण्डार है। इस अनित्य शरीर की शोभा बढ़ाने की अपेक्षा आत्मा की शोभा बढाना ही सर्वश्रेष्ठ है।" इस प्रकार अनित्य भावना करते हुए भरत महाराज क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुए। चढ़ते हुए परिणामों की प्रबलता से घाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त किया। देवों ने आकर भरत केवली को साधु के औघा मुंहपत्ती आदि उपकरण दिये। भरत केवली होकर पृथ्वी पर विचरने लगे। गृहस्थ लिंग में केवलज्ञान प्राप्त करने वाले आप प्रथम चक्रवर्ती थे। भरत केवली के साथ एक हजार राजाओं ने भी चारित्र ग्रहण किया। अन्त में ८४ लाख पूर्व की आयु समाप्त कर भरत केवली ने मोक्ष पद प्राप्त किया।

२. सगर चक्रवर्ती

विनीता नगरी में भगवान अजितनाथ के पिता जितशत्रु राजा के लघु भ्राता सुमित्रविजय थे। राजा सुमित्रविजय की रानी का नाम वैजयन्ती अपर नाम यशोमती था। महारानी यशोमती ने एक रात्रि में

चौदह महास्वप्न देखे । स्वप्न देखकर वह जागृत हुई । उसने अपने पति से स्वप्न का फल पूछा । उत्तर में सुमित्रविजय ने कहा—प्रिये ! तुम चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दोगी । गर्भ काल पूर्ण होने पर महारानी वैजयन्ती ने माघ शुक्ल अष्टमी के दिन एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया । बालक का नाम 'सगरकुमार' रखा गया । सगरकुमार कलाचार्य के पास रहकर विद्याध्ययन करने लगा । वह अल्पकाल में समस्त कलाओं में पारंगत हो गया । सगरकुमार ने शैशव से यौवन अवस्था में प्रवेश किया ।

भगवान अजितनाथ के राजा बनने के बाद उसे युवराज पद मिला । राजा अजितनाथ और युवराज सगर राज्य का उत्तम रीति से संचालन करने लगे ।

भगवान अजितनाथ ने अपनी दीक्षा के समय युवराज सगर को समस्त राज्य का भार सौंप दिया । सगरकुमार न्याय नीति से समस्त राज्य का संचालन लगे ।

एक समय सगर राजा की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । सगर ने चक्ररत्न की उत्पत्ति के उपलक्ष में बड़ा उत्सव मनाया । सगर ने चक्ररत्न की सहायता से भरतक्षेत्र के छहों खण्ड पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया । तदनुसार उन्होंने विशाल चतुरंगिणी सेना को सजाया और चक्ररत्न के साथ विजय यात्रा पर चल पड़े । विनीता से वे मगध की ओर बढ़े । मगध पर विजय प्राप्त कर वरदाम प्रभास, गंगा, सिन्धु वैताढ्य इत्यादि देशों को जीतकर तमिस्रा गुफा के पास आये । वहाँ मेघमालीदेव की सहायता से तमिस्रा गुफा के मार्ग से होते हुए मूल हिमाद्रि खण्ड प्रपात आदि स्थानों पर विजय प्राप्त कर आरब, बर्बर आदि म्लेच्छ देशों को भी जीत लिया । इस प्रकार भारत के छहों खण्डों पर विजय प्राप्त कर सगर विनीता लौट आये । मार्ग में उन्होंने वैताढ्य पर्वत के गगन वल्लभ नगर के विद्याधर राजा सुलोचन की पुत्री 'सुकेशा' के साथ विवाह किया । राजा ने

उत्सव पूर्वक विनीता में प्रवेश किया । नगर की जनता ने एवं देवों ने राजा का दिग्विजय उत्सव किया। यह उत्सव बारह वर्ष तक चला। महाराज सगर को देवों ने चक्रवर्ती पद पर अधिष्ठित किया ।

महाराज सगर की चौंसठ हजार रानियाँ थीं। उनके साथ सुख-भोग करते हुए चक्रवर्ती सगर को साठ हजार पुत्र हुए। उनमें जाह्नुकुमार मुख्य था ।

एक दिन जाह्नुकुमार आदि साठ हजार पुत्र पिता के पास आये और निवेदन करने लगे "पूज्य पिताजी ! पूर्व दिशा के अलंकार सम मागधपतिदेव, दक्षिण दिशा के तिलक वरदामपति, पश्चिम दिशा के मुकुट प्रभासपति, पृथ्वी की दो भुजा सदृश गंगा सिन्धु देवी, भरत क्षेत्ररूपी कमल, कर्णिका,' के समान वैताढ्यादिकुमार देव तमिस्रगुफा के अधिपति कृतमाल देव, भरत क्षेत्र की मर्यादा के स्तंभरूप हिमाचल देव, खण्डप्रपात गुफा के अधिष्ठायक नाट्यमाल देव एवं नैसर्प आदि नौ ऋद्धियों के अधिष्ठायक नौ हजार देवों पर आपका शासनाधिकार हो चुका है। आपने ऐसा कोई प्रदेश नहीं छोड़ा जिस पर विजय करना शेष हो। अतः पिताजी आपके द्वारा विजित समस्त प्रदेश की हम यात्रा करना चाहते हैं।" महाराज सगर ने अपने पुत्रों को विजित प्रदेश में जाने की आज्ञा दे दी ।

पिता की आज्ञा प्राप्तकर जाह्नुकुमार आदि साठ हजार पुत्र देशाटन के लिये चल पड़े ।

विविध देशों की यात्रा करते हुए सगरपुत्र अष्टापद पर्वत के पास पहुँचे । अष्टापद पर्वत के नयन-रम्य दृश्य को देखकर वे बड़े प्रभावित हुए। भगवान ऋषभदेव की इस निर्वाणभूमि अष्टापद पर्वत की रक्षा के लिये उन्होंने एक विशाल खाई बनाने का निश्चय किया ।

अपने निश्चयानुसार दण्डरत्न की सहायता से सगरपुत्रों ने खाई खोदनी प्रारंभ करदी। खोदते-खोदते एक हजार योजन जमीन के अन्दर गहरी खाई खोद डाली । जमीन के भीतर नागकुमार देवों के भवन थे।

वे इस खुदाई से धराशायी होने लगे। नागकुमार भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। यह देखकर नागकुमारों का राजा ज्वलनप्रभ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और सगरपुत्रों के पास आकर कहने लगा—अरे दुष्टो! आप भगवान अजितनाथ के भ्राता सगरचक्रवर्ती के पुत्र होकर भी यह अनर्थ क्यों कर रहे हैं। तुम्हारे इस अविचारी कृत्य से नागकुमारों के भवन धराशायी हो रहे हैं। अगर तुम्हें जीवित रहना है तो यह अपना अविचारी कृत्य बन्द कर दो। नागराजा ज्वलनप्रभ की इस चेतावनी से सगरपुत्रों ने खाई खोदना बन्द कर दिया। ज्वलनप्रभ अपने स्थान को चला गया।

इसके बाद जाह्नुकुमार ने अपने भाइयों से कहा—इस खाई को जल से भर देना चाहिये और यह खाई गंगा के जल से ही भरी जा सकती है। अतः हमें गंगा नदी के प्रवाह को बदलकर उसे खाई की ओर लाना होगा। जाह्नुकुमार की यह राय सब को पसन्द आई। उन्होंने दण्डरत्न की सहायता से गंगा का किनारा तोड़ दिया और उसके प्रवाह को मोड़कर उसे खाई में ला छोड़ा। गंगा के जल से समस्त खाई जलमय होगई। वह जल पाताल तक पहुँचा, जिससे नागकुमार देवताओं के भवन जल में डूब गये। नागकुमार भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। ज्वलनप्रभ ने जब यह देखा तो वह सगर पुत्रों पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। वह नागराज, सगरपुत्रो के पास आया और अपनी भयकर ज्वाला से उन्हे जलाकर भस्म कर दिया। साठ हजार सगरपुत्र मृत्यु की गोद में सदा के लिये सोगये।

सगरपुत्रों की मृत्यु का समाचार लेकर सेनापति चक्रवर्ती सगर के पास पहुचा। उसने सगरपुत्रों के नागराज द्वारा भस्मसात् होने की खबर सुनाई। साठ हजार पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर सगर चक्रवर्ती बड़े दुःखी हुए। वे दिन-रात पुत्र वियोग में शोकाकुल एवं व्यथित रहने लगे। महाराज सगर का सुबुद्धि नामक मंत्री था। वह चक्रवर्ती को विविध प्रकार के उपदेश सुनाकर उन्हें सांत्वना देने लगा। मंत्रियों के उपदेश सुनकर चक्रवर्ती का शोक कुछ कम हो गया।

उन्हें वास्तव में संसार असार लगने लगा। उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पौत्र भगीरथ को राज्य सौंप दिया और भगवान अजितनाथ के पास दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ मंत्री सामन्तों ने भी दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर सगरमुनि आत्म-साधना करने लगे। उन्होंने अपनी कठोरतम साधना से घातीकर्मों को नष्ट कर दिया और केवलज्ञान प्राप्त कर वे मुक्त हो गये। इनकी सर्वायु ७२ लाख पूर्व की एवं ऊँचाई ४५० धनुष थी।

३. मघवान् चक्रवर्ती

भरतक्षेत्र में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहाँ समुद्रविजय नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी भद्रा नाम की रानी थी। नर-पति राजा का जीव ग्रैवेयक विमान से चवकर महारानी भद्रा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। रानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने उत्तम लक्षणवाले पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम मघवा रखा।

मघवा युवा हुए। एक बार इनकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। साथ ही अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। चौदह रत्नों की सहायता से मघवा ने षट्-खण्ड पर विजय प्राप्त की। षट्खण्ड जीत कर जब मघवा वापस श्रावस्ती लौटे तो देवताओं ने आपको चक्रवर्ती पद से विभूषित किया। तीन लाख ९० हजार वर्ष तक चक्रवर्ती अवस्था में रहने के बाद मघवा चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये। [दूसरी मान्यता के अनुसार मघवा चक्रवर्ती मरकर सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देव बने।]

आपने २५ हजार वर्ष कुमारावस्था में, २५ हजार वर्ष मांडलिक अवस्था में, दसहजार वर्ष दिग्विजय में, तीन लाख ९० हजार वर्ष चक्र-वर्ती पद में, पचास हजार वर्ष व्रत पालन में व्यतीत किये। आपकी कुल आयु ५ लाख वर्ष की और ऊँचाई ४२॥ धनुष थी।

मघवा चक्रवर्ती भगवान वासुपूज्य के तीर्थकाल में हुए थे।

४. सनत्कुमार चक्रवर्ती

कुरुदेश की राजधानी हस्तिनापुर थी। वहाँ शत्रुओं को दमन करने वाले अश्वसेन नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सहदेवी था। जिन धर्मकुमार का जीव सौधर्म देवलोक से च्यव-कर महारानी सहदेवी के गर्भ में आया। महारानी ने चौदह महा-स्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। माता पिता ने उत्सवपूर्वक बालक का नाम सनत्कुमार रखा। सन-त्कुमार बाल से युवा हुए।

युवावस्था में सनत्कुमार का विवाह साकेतपुर के राजा सुराष्ट्र की पुत्री सुनन्दा के साथ हुआ। सनत्कुमार ने अनेक देशों में परि-भ्रमण कर अपने पराक्रम का परिचय दिया। महाराज अश्वसेन ने पुत्र के प्रबल पराक्रम को देखकर अपने राज्य का भार कुमार सनत्कुमार को देकर राज्याभिषेक कर दिया और महेन्द्रसिंह नामक उसके बालमित्र को उनका सेनापति बनाया। इसके बाद वे स्थविर मुनिवर के पास दीक्षित हो गए।

नीतिपूर्वक राज्य का संचालन करते हुए महाराजा सनत्कुमार की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। बाद में अन्य तेरह रत्न भी प्राप्त हो गये। उन्होंने चौदह रत्नों की सहायता से षट्खंड पर विजय प्राप्त की। जब वे विजयी बनकर हस्तिनापुर आये तो शक्रेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने सनत्कुमार के चक्रवर्ती पद का राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक के उपलक्ष में चक्रवर्ती सम्राट् ने बारह वर्ष तक प्रजा को सभी प्रकार के कर से मुक्त कर दिया। सनत्कुमार चक्रवर्ती प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगे।

सनत्कुमार चक्रवर्ती बहुत रूपवान् थे। उनके रूप की प्रशंसा बहुत दूर दूर तक फैल चुकी थी। उनके रूप को देखने के लिये लोग दूर दूर से आते थे।

एक वार इन्द्र ने अपनी सौधर्म सभा में सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूप की प्रशंसा करते हुए कहा—देवो ! जैसा रूप चक्रवर्ती सनत्कुमार का है वैसा किसी मनुष्य का या देव का भी नहीं है !"

इन्द्र की यह बात विजय और वैजयन्त नामके दो देवों को अच्छी नहीं लगी । उन्होंने सोचा, पृथ्वी पर उतरकर हमें इन्द्र की इस बात की परीक्षा करनी चाहिये । ये दोनों देव सनत्कुमार का रूप देखने के लिये पृथ्वी पर उतर आये और वृद्ध ब्राह्मण के रूप में वे सनत्कुमार चक्रवर्ती के पास आये । उस समय सनत्कुमार चक्रवर्ती स्नान घर में जा रहे थे । उन्हें देखकर ब्राह्मणों ने उनके रूप की बहुत प्रशंसा की । अपने रूप की प्रशंसा सुनकर सनत्कुमार को बड़ा अभिमान हुआ । उन्होंने ब्राह्मणों से कहा, "तुम लोग अभी मेरे रूप को क्या देख रहे हो ? जब मै स्नानादि कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राजसभा में सिंहासन पर बैठूँ तब तुम मेरे रूप को देखना । स्नानादि से निवृत्त होकर जब सनत्कुमार सिंहासन पर जाकर बैठे तब उन ब्राह्मणों को राजसभा में उपस्थित किया गया । ब्राह्मणों ने कहा— "राजन् ! तुम्हारा रूप पहले जैसा नहीं रहा ।" राजा ने कहा— "यह कैसे ?" ब्राह्मणों ने कहा—"आप अपने मुँह को देखे । उसके अन्दर क्या हो रहा है ? " राजा ने पीकदानी में थूक कर देखा तो उसमें असंख्य कीड़े बिलबिलाहट कर रहे थे और उसमें महान दुर्गन्ध आ रही थी । चक्रवर्ती का रूप सम्बन्धी अभिमान चूर हो गया । उन्हें शरीर की अशुचि का भान हो गया । वे विचारने लगे— "शरीर रोग का घर है । इसमें अनेक घृणित वस्तुएँ भरी हुई हैं । जिस प्रकार दीमक कीड़ा काष्ठ को भीतर ही भीतर खाकर खोखला बना देता है, उसी प्रकार शरीर में से उत्पन्न रोग सुन्दर शरीर को विद्रूप बना देते हैं । " इस प्रकार अशुचि भावना भाते हुए सनत्कुमार चक्रवर्ती विरक्त हो गये और अपने पुत्र को राज्यभार सौंप कर विनयधर आचार्य के पास दीक्षित हो गये । सनत्कुमार के दीक्षित

होकर आते ही उनके पीछे उनका परिवार भी चल निकला। लगभग छह महीने तक पीछे पीछे फिरने के बाद परिवार के लोग हताश होकर लौट आये। सनत्कुमार मुनि वेले वेले का पारणा करने लगे। नीरस आहार के कारण तथा पूर्वजन्म के अशुभकर्मों के उदय से उनके शरीर में सोलह महारोग उत्पन्न हो गये। रोगों को अशुभ कर्म का उदय मानकर वे कभी औषधोपचार नहीं करते। इस प्रकार रोग परिषह को सहन करते हुए सातसौ वर्ष व्यतीत हो गए। तप के प्रभाव से सनत्कुमार मुनि को अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो गईं।

शक्रेन्द्र ने एक बार अपनी देवसभा में कहा, "सनत्कुमार मुनि उत्कृष्ट तपस्वी और सच्चे साधक हैं। उनके शरीर में असह्य रोग उत्पन्न हो गए हैं तो भी वे उनका प्रतिकार नहीं करते। यद्यपि उनके पास रोगोपशमनी अनेक लब्धियाँ हैं फिर भी वे उसका उपयोग नहीं करते। दो देव इस बात की परीक्षा करने के लिए वैद्य के रूप में सनत्कुमार मुनि के पास आए और रोग मिटाने के लिए औषधी लेने का आग्रह करने लगे। मुनि ने वैद्यों से कहा--

"वैद्यो! क्या तुम जरा मरण जैसे रोगों के मिटाने में समर्थ हो? मै भाव रोगों की चिकित्सा चाहता हूँ। द्रव्य रोगों को मिटाने की दवा तो मेरे पास भी है।" यह कह कर मुनि ने अपना थूक शरीर पर लगाया जिससे उनका शरीर निरोग हो गया। तेज और कान्ति से चमक उठा। यह देखकर दोनों देव मुनि को नमस्कार कर बोले—महर्षि! इन्द्र ने आपके तप तेज और वैराग्य की जैसी प्रशंसा की थी सचमुच आप वैसे ही हैं। आपका जीवन धन्य है। यह कह कर देव अपने स्थान चले गये।

एक लाख वर्ष का संयम पालन करके आपने घनघाती कर्म का क्षय किया और केवलज्ञान--केवलदर्शन प्राप्त कर मोक्षगामी हुए। दूसरी मान्यतानुसार सनत्कुमार चक्रवर्ती सनत्कुमार नाम के तीसरे देव-लोक में उत्पन्न हुए।

सनत्कुमार मुनि ५०००० वर्ष कुमारावस्था में, ५०००० वर्ष माण्डलिक अवस्था में, १०००० दिग्विजय में, ९०००० वर्ष चक्रवर्ती पद में एवं १००००० वर्ष संयम में इस प्रकार कुल ३००००० वर्ष का आयु पूर्ण करके मोक्ष में गये। ये ४१॥ धनुष ऊँचे थे।

५-वें **चक्रवर्ती शान्तिनाथ** के लिये देखिए १६वें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ। पृ०८३

६-वें **चक्रवर्ती कुन्थुनाथ** के लिए देखिये भगवान कुन्थुनाथ। पृ०१०७

७-वें **चक्रवर्ती अरनाथ** के लिये देखिये भगवान अरनाथ। पृ०१०९

८. सुभूम चक्रवर्ती

जमदग्नि नाम के एक तापस ने नेमिककोष्टक के राजा जितशत्रु की कन्या रेणुका के साथ विवाह किया। ऋतुकाल होनेपर जमदग्नि ने रेणुका से कहा-"मै तेरे लिये एक ऐसे चरु की साधना करूंगा कि जिससे तेरे गर्भ से ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हो।" इस पर रेणुका ने कहा-हस्तिनापुर के राजा अनन्तवीर्य की रानी मेरी बहिन होती है उसके लिए भी आप ऐसा चरु साधें कि जिससे उसके गर्भ से एक सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय पुत्र का जन्म हो। जमदग्नि ने दोनों चरु की साधना की और दोनों चरु रेणुका को दे दिये। रेणुका ने विचार किया-"मै क्षत्रियानी होते हुए भी तापस जमदग्नि के साथ रहकर बन-वासी बन गई हूँ। ब्राह्मण चरु खाने से वनवासी ब्राह्मण ही मेरे उदर से पैदा होगा इससे अच्छा यही है कि मै एक श्रेष्ठ क्षत्रियपुत्र को जन्म दूँ।" यह सोच उसने क्षत्रिय चरु खा लिया और अपनी बहन को ब्राह्मण चरु दे दिया। दोनों को एक एक पुत्र हुआ। रेणुका ने अपने पुत्र का नाम राम और उसकी बहन ने अपने पुत्र का नाम कृतवीर्य रखा। एक विद्याधर ने प्रसन्न होकर राम को परशु विद्या दी। राम ने उसे सिद्ध की। वह विद्या-सिद्ध परशु सदैव अपने पास रखता था अतएव उसे सभी लोग परशुराम कहने लगे।

एक बार रेणुका अपनी बहन को मिलने के लिए हस्तिनापुर गई। रेणुका के रूप को देखकर अनन्तवीर्य उस पर मोहित होगया। वह उसके साथ काम क्रीड़ा करने लगा फलस्वरूप रेणुका को गर्भ रह गया। गर्भकाल के पूर्ण होने पर उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। कुछ दिनों के बाद रेणुका अपने जारज पुत्र को लेकर पुनः पति के आश्रम लौट आई। अपनी माता की व्यभिचार वृत्ति देखकर परशुराम अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने जारज पुत्र के साथ अपनी माता रेणुका की परशु से हत्या करदी।

अनन्तवीर्य को जब यह समाचार मिला तो वह परशुराम पर बड़ा क्रुद्ध हुआ। अपने चुने हुए सैनिकों को साथ ले वह जमदग्नि के आश्रम में पहुँचा। उस समय कार्यवश परशुराम अन्यत्र चला गया था। अनन्तवीर्य ने जमदग्नि को तथा आश्रम वासियों को मारा पीटा। आश्रम को नष्ट कर और उनकी तमाम गायों को लेकर चला गया। परशुराम जब वापस लौटा तो उसने अपने उजड़े हुए आश्रम को देखा। उसे अनन्तवीर्य के इस दुस्साहस पर अत्यन्त क्रोध आया। क्रोधमूर्ति परशुराम अनन्तवीर्य को सजा देने के लिए चल पड़ा। रास्ते में ही उसने अनन्तवीर्य को और उसके साथियों को एक एक करके मार डाला। अपनी गायों को लेकर वह पुनः अपने आश्रम लौट आया। अनन्तवीर्य की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कृतवीर्य हस्तिनापुर का राजा बना। कृतवीर्य का राजकुमारी तारा के साथ विवाह हुआ रानी तारा के साथ सुखपूर्वक कृतवीर्य राज्य का संचालन करने लगा।

कालान्तर में रानी तारा गर्भवती हुई। भूपालमुनि का जीव महाशुक्र विमान से चवकर महारानी तारा के उदर में उत्पन्न हुआ। महारानी तारा ने १४ महास्वप्न देखे।

एक बार कृतवीर्य ने अपनी माता को अपने पिता का हाल पूछा। उसने कहा—पुत्र! जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने तेरे पिता की हत्या कर दी थी। जब उसने यह सुना तो वह परशुराम पर अत्यन्त क्रुद्ध

हुआ। वह अपनी सेना लेकर पितृ-हत्या का बदला लेने के लिए चल पड़ा। वह जमदग्नि के आश्रम में पहुँचा। उस समय परशुराम किसी कार्यवश अन्यत्र चले गये थे। कृतवीर्य ने जमदग्नि को मार डाला और उसके आश्रम को सम्पूर्णतः नष्ट कर चला गया।

क्रोधमूर्ति परशुराम ने यह सुना तो वह हस्तिनापुर आया और परशु घुमा घुमाकर क्षत्रियों का संहार करने लगा। वह राजमहल में घुसा और उसने अपने पितृ हत्यारे कृतवीर्य को परशु से मार डाला। परशुराम की संहार-लीला देखकर गर्भवती तारा रानी गुप्तमार्ग से भाग गई। चलते चलते वह एक तापस आश्रम में पहुँची। वहाँ के कुलपति ने उसे आश्रय दिया। उसे एक गुप्त भूमिगृह में रहने के लिए स्थान दे दिया। महारानी तारा भूमिगृह में रहकर गर्भ का पालन करने लगी। क्रोधमूर्ति परशुराम तारा को खोजता हुआ कुलपति के आश्रम में पहुँचा परन्तु वहाँ उसे पता नहीं लगने से वह वापस हस्तिनापुर आया। वह हस्तिनापुर का राजा बन गया। उसने चुन चुनकर क्षत्रियों का संहार प्रारंभ कर दिया। सात बार उसने पृथ्वी को क्षत्रिय-शून्य बना दिया।

इधर महारानी ने भूमिगृह में एक वीर पुत्र को जन्म दिया। भूमिगृह में जन्म होने से बालक का नाम सुभूम रखा। कुलपति ने बालक को सब प्रकार की शिक्षा दी और उसे वीर क्षत्रिय बनाया। वह युवा हुआ। उसने वैताढ्यपर्वत पर रहने वाले राजा मेघनाद की पुत्री पद्मश्री के साथ विवाह किया। वह अपने श्वसुर के साथ रहने लगा। उसने राजनीति में कुशलता प्राप्त करली।

एक बार परशुराम ने एक भविष्यवेत्ता से पूछा—मेरी मृत्यु किससे होगी? उत्तर में उसने कहा-"आपने जिन क्षत्रियों को मारकर उनकी दाढाओं को थाल में भर रखा है वह थाल जिस व्यक्ति के स्पर्श से खीर बन जायगी उसी व्यक्ति से तुम्हारी मृत्यु होगी।" भविष्यवेत्ता से यह सुनकर उसने अपने वैरी का पता लगाने के लिए एक दानशाला खोली

उस दानशाला में एक उच्च आसन पर दाढाओं का थाल रखा और उस पर वीर सैनिकों का पहरा बैठा दिया। उनको यह सूचना दी कि जब किसी व्यक्ति के स्पर्श से यह दाढाऐं खीर बन जांय तो तुरन्त मुझे सूचित करना।

सुभूम ने एक बार अपनी माता से अपना पूर्व वृत्तान्त सुना। परशुराम के द्वारा पिता की हत्या व अपने राज्य छिन जाने की सारी घटना सुनकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने पिता का बदला लेने का निश्चय किया। वह अपने श्वसुर मेघनाद के साथ हस्तिनापुर आया और दानशाला में पहुँचा। उसने दाढाओं को स्पर्श किया। सुभूम का हाथ लगते ही दाढाऐं गलकर खीर हो गईं। सुभूम खीर को पी गया। यह देख सैनिक सुभूम को मारने के लिए दौड़े। मेघनाद ने सब को मार डाला। एक सैनिक परशुराम के पास पहुँचा और उसने दानशाला की सारी घटना कह सुनाई। परशुराम तत्काल अपने वीर सैनिकों के साथ वहाँ आया और परशु को अत्यन्त क्रोध के साथ सुभूम पर फेंका। परशुराम का निशाना चूक गया। सुभूम ने उस परशु को उठा लिया। परशुराम जब परशु को छीनने के लिये आया तो सुभूम ने थाली को चक्र की तरह बड़ी तेजी से घुमाया और उसे परशुराम पर दे मारा। चक्र की तरह थाली ने परशुराम के सिर को काट दिया। परशुराम मर गया और सुभूम राजा बन गया। उसकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उसने चक्ररत्न की सहायता से भारतवर्ष के छः खण्ड पर अधिकार कर लिया। उसने २१ बार पृथ्वी को ब्राह्मण शून्य बना दिया।

विशाल राज्य पाकर सुभूम भोगविलासी बन गया। उसने अपने राज्य में अनेक हिंसा के कार्य किये। महारंभ महापरिग्रह और घोर हिंसा के परिणाम स्वरूप अपनी साठ हजार वर्ष की आयु पूरी कर वह मरा और सातवीं नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुआ। यह २८ धनुष ऊँचा था।

यह चक्रवर्ती भगवान अरनाथ स्वामी के तीर्थ में हुआ था।

९. महापद्म चक्रवर्ती

कुरुदेश में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहाँ पद्मोत्तर राजा राज्य करता था। उसकी 'ज्वाला' नाम की रानी थी। एक वार रात के अन्तिम भाग में उसने अपनी गोद में आते हुए सिंह का स्वप्न देखा प्रतापी पुत्र की उत्पत्ति रूप स्वप्न के फल को जानकर उसे वहुत हर्ष हुआ।

समय पूरा होने पर उसने देवकुमार के सदृश पुत्र को जन्म दिया। बड़ी धूम धाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया। शुभ मुहूर्त में बालक का नाम विष्णुकुमार रखा गया। धीरे धीरे वृद्धि पाता हुआ वह युवावस्था को प्राप्त हुआ।

उसके बाद किसी समय-प्रजापाल राजा का जीव अच्युत देवलोक से चवकर ज्वालारानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उस समय महारानी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में चौदह स्वप्न देखे। उचित समय पर महापद्म नामक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे वह भी युवावस्था को प्राप्त हुआ। चक्रवर्ती के लक्षण जानकर पिता ने उसको युवराज बनाया।

उसी समय उज्जैनी नगरी में श्रीधर्म नाम का राजा राज्य करता था। उसके नमुची नाम का मंत्री था। एक वार मुनिसुव्रतस्वामी के शिष्य सुव्रताचार्य अनेक मुनियों के साथ विचरते हुए वहाँ पधारे। नगरी के लोग सजधज कर जाने लगे। राजा और मंत्री अपने महल पर चढ़कर उन्हें देखने लगे। राजा ने नमुचि से पूछा—क्या लोग अकाल यात्रा के लिये जा रहे हैं? नमुचि ने कहा, "महाराज! आज सुवह मैंने सुना था कि उद्यान में कुछ श्रमण आए हैं" राजा ने कहा—"चलो हम भी चलें।" मंत्री ने उत्तर दिया—वहाँ आप किसलिये जाना चाहते हैं? धर्म सुनने की इच्छा से तो वहाँ जाना ठीक नहीं है, क्योंकि वेद विहित सर्वसम्मत धर्म का उपदेश तो हम ही देते हैं। राजा ने कहा, यह ठीक है कि आप धर्म का उपदेश देते

हैं, किन्तु महात्माओं के दर्शन करना चाहिए और यह जानना चाहिये कि वे कैसे धर्म का उपदेश देते हैं।

मंत्री ने जाना मंजूर करके कहा, आप वहाँ मध्यस्थ होकर बैठियेगा। मैं उन्हें शास्त्रार्थ में जीतकर निरुत्तर कर दूँगा।

राजा और मंत्री सामन्तों के साथ उनके पास गए। वहाँ धर्म देशना देते हुए आचार्य सुव्रत को देखा। प्रणाम करके वे उचित स्थान में पर बैठ गये। अकस्मात् नमुचि मन्त्री ने आचार्य को पराजित करने के उद्देश्य से अवहेलना-भरे शब्दों में प्रश्न पूछने शुरू किए। आचार्य के एक लघु शिष्य ने उन सब का उत्तर देकर मंत्री को चुप कर दिया। सभा के भीतर इस प्रकार निरुत्तर होने पर नमुचि को बहुत बुरा लगा। साधुओं पर द्वेष करता हुआ वह रात को तलवार निकाल कर उन्हें मारने आया। शासनदेव ने उसे स्तम्भित कर दिया। प्रातः काल राजा और नगर जन इस आश्चर्य को देखकर चकित हो गये। मुनि के समीप आकर धर्म कथा सुनने के बाद उन्होंने जिनधर्म को अंगीकार कर लिया।

नमुचि इस अपमान से दुःखी हो कर हस्तिनापुर में चला गया। वहाँ महापद्म राजा का मंत्री बन गया। उसी समय सिंहबल नाम का दुष्ट सामन्त देश में उपद्रव मचा रहा था। विषम दुर्ग के कारण उसे पकड़ना बड़ा कठिन हो गया। राजा महापद्म ने नमुचि से पूछा-सिंहबल को गिरफ्तार करने का कोई उपाय जानते हो?

नमुचि ने उत्तर दिया-हा जानता हूँ। उसने वहाँ जाकर अपनी कुशलता से सिंहबल के दुर्ग को तोड़ दिया और उसे गिरफ्तार कर लिया। राजा ने संतुष्ट होकर उसे वर मांगने को कहा। मन्त्री ने उत्तर दिया-जब मैं मांगूं तब देना।

युवराज महापद्म किसी कारण से नाराज होकर अटवी में चला गया। वहाँ एक आश्रम में ठहरा उसी समय चंपा के राजा जनमेजय

का काल नरेन्द्र के साथ युद्ध हुआ । जनमेजय हारकर भाग निकला उसका परिवार भी इधर उधर भाग गया ।

जन्मेजय की नागवती नामक पुत्री से उत्पन्न हुई उसकी दौहत्री मदनावली भागती हुई उसी आश्रम में पहुँची। वहाँ महापद्म और मदनावली में एक दूसरे को देखते ही स्नेह हो गया । कुछ दिनों बाद महापद्म आश्रम से रवाना होकर सिन्धुनद नामक नगर में पहुँचा । वहाँ उद्यानिका महोत्सव मनाया जा रहा था । इतने में एक मतवाला हाथी बन्धन तोड़कर भाग निकला । सभी स्त्रीपुरुष भयभीत होकर इधर उधर दौड़ने लगे । महापद्म ने उसे पकड़कर स्तंभ से बाँध दिया । यह बात वहाँ के राजा को मालूम पड़ी । उसने सारा हाल जानकर उसके साथ १०० कन्याओं का विवाह कर दिया किन्तु महापद्म के मनमें मदनावती बसी हुई थी ।

एक बार वह रात्रि में सुख पूर्वक सोया हुआ था उसी समय कोई विद्याधरी उसे उठा ले गई । नींद खुलने पर उसने अपहरण का कारण बता दिया और उसे वैताढ्य पर्वत पर बसे हुए सूरोदय नगर में ले गई । वहाँ इन्द्रधनुष नाम के विद्याधर राजा को सौंप दिया । इन्द्रधनुष ने श्रीकान्ता नामक भार्या से उत्पन्न हुई अपनी पुत्री जयकान्ता का विवाह उसके साथ कर दिया । जयकान्ता के विवाह से उसके ममेरे भाई गङ्गाधर और महीधर महापद्म पर कुपित हो गये । उन्हें युद्ध में जीतकर महापद्म विद्याधरों का राजा बन गया । वैताढ्य पर्वत की दोनों श्रेणियों पर उसका राज्य हो गया । फिर उसी आश्रम में गया । वहाँ उसने मदनावली से विवाह कर दिया ।

विद्याधरों का राजा बनकर महापद्म विशाल ऋद्धि के साथ हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुआ और वहाँ जाकर माता-पिता तथा भाई विष्णु कुमार को नमस्कार किया। उसके आगमन से सभी को अपार हर्ष हुआ ।

कुछ दिनों के बाद सुव्रताचार्य हस्तिनापुर में पधारे । विष्णु कुमार और महापद्म के साथ पद्मोत्तर राजा वन्दना करने गये । भक्तिपूर्वक

वन्दना करके सभी उचित स्थान बैठ गये। आचार्य का उपदेश सुनकर राजा और विष्णु कुमार दोनों संसार से विरक्त हो गये। महापद्म को गद्दी पर बैठाकर दोनों ने साथ में दीक्षा ले ली। कुछ दिनों के बाद पद्मोत्तर मुनि के घातीकर्म नष्ट हो जाने से उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया बहुत दिनों तक केवल पर्याय का पालनकर अनेक भव्य प्राणियों को को प्रतिबोध देकर वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

गद्दी पर बैठने के बाद महापद्म को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई तथा क्रमशः अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। रत्नों की सहायता से उन्होंने छहों खण्डपर विजय प्राप्त की। दिग्विजय कर जब महापद्म वापस हस्तिनापुर लौटे तो देवों ने आपका चक्रवर्ती पद का महोत्सव किया। यह महोत्सव बारह वर्ष तक चलता रहा। महोत्सव के समय तक महापद्म ने प्रजा को कर मुक्त रखा। वे भारतवर्ष के नौवें चक्रवर्ती के रूप में ख्यात हुए।

विष्णुकुमार मुनि ने दीक्षा लेने के बाद घोर तपस्या शुरू की। उन्हे विविध प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त हुईं।

कुछ दिनों बाद सुव्रताचार्य विचरते विचरते पुनः हस्तिनापुर पधारे। उन्हें देखकर नमुचि मंत्री का पुराना विरोध जागृत हो गया। बदला लेने के उद्देश्य से उसने राजा पद्मोत्तर के दिये हुए वर को मांगा। महापद्म ने उसे देना स्वीकार कर लिया। नमुचि ने कहा— "मै वेदोक्त विधि से यज्ञ करना चाहता हूँ। इसलिये कुछ दिनों के लिये मुझे अपना राज्य दे दीजिए।" महापद्म ने पिता के दिये हुए वचन को पूरा करने के लिये मंत्री को राज्य दे दिया और स्वयं अपने महलों में जाकर रहने लगा।

नमुचि के राजा बनने के बाद जैन साधुओं को छोड़कर सभी बधाई देने गए। इसी छिद्र को लेकर उसने मुनियों को बुलाकर कहा "मेरे देश को छोड़ दो। नगर से अभी निकल जाओ। तुम लोग गन्दे रहते हो। लोकाचार का पालन नहीं करते। सभी साधु मुझे बधाई देने

के लिये आए, किन्तु तुम नहीं आए। क्या तुम उनसे श्रेष्ठ हो ? तुम्हें बहुत घमण्ड है।

आचार्य ने उत्तर दिया "राजन्! हमारे न आनेका कारण अभिमान या आपके प्रति द्वेष नहीं है। सांसारिक सम्बन्धों का त्याग होने के कारण जैन मुनियों का ऐसा आचार ही है। सांसारिक लाभ या हानि में वे उपेक्षा भाव रखते हैं। लोकाचार के विरुद्ध भी हमने कोई कार्य नहीं किया। राजनियमों का उल्लंघन करना हमारा आचार नहीं है। आपके राज्य में हम पवित्र संयमी जीवन का पालन कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में हमें निकल जाने की आज्ञा देना ठीक नहीं है। फिर भी यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो चातुर्मास के बाद विहार कर देंगे। चातुर्मास में एक स्थान पर रहना जैन मुनियों का आचार है।

नमुचि ने क्रोध में आकर कहा—अधिक बातें बनाना व्यर्थ है। यदि जीवित रहना चाहते हो तो सात दिन के अन्दर अन्दर मेरे राज्य को छोड़कर चले जाओ। इसके बाद अगर किसी को यहाँ देखा तो सब को घानी में पिलवा दिया जायेगा। नमुचि का इस प्रकार निश्चय जानकर मुनि अपने स्थान पर चले गये। सभी इकट्ठे होकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। एक साधुने कहा—"विष्णुकुमार मुनि के कहने से यह शान्त हो जायगा ऐसी आशा है। इसलिये शीघ्र ही किसी मुनि को उनके पास भेजना चाहिये।" आचार्य ने पूछा— ऐसा कौनसा मुनि है जो शीघ्र से शीघ्र वहाँ जा सके। एक मुनि ने उत्तर दिया, "मै वहाँ जा सकता हूँ किन्तु वापिस नहीं आसकता।" आचार्य ने कहा "तुम चले जाओ। वापिस विष्णुकुमार स्वयं ले आयेंगे। मुनि उड़कर मेरु पर्वत पर पहुँचा जहाँ विष्णुकुमार मुनि तपस्या कर रहे थे। सारा वृत्तान्त उन्हें कहा। उसी समय विष्णुकुमार मुनि अपनी लब्धि के बल से दूसरे मुनि को लेकर हस्तिनापुर पहुँच गये। आचार्य को वन्दना करने के बाद वे एक साधु को साथ में लेकर नमुचि के पास गये। नमुचि को छोड़कर सभी राजा महाराजाओं ने उन्हें वन्दना

की। विष्णुकुमार ने नमुचि से कहा, "वर्षाकाल तक मुनियों को यहीं ठहरने दो वाद में जैसा कहोगे वैसा कर लिया जायगा।"

नमुचि ने उनके कथन की परवाह किए विना उत्तर दिया "पाच दिन ठहरने की भी मेरी इजाजत नहीं है।" विष्णुकुमार ने कहा "नगर से वाहर उद्यान में ठहर जाँय!" नमुचि ने अधिक क्रोधित होते हुए कहा "नगर के उद्यान में ठहरने की वात तो दूर है, नीच पाखण्डियों को मेरे राज्य से वाहर निकल जाना चाहिये। यदि जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र मेरे राज्य को छोड़ दो।"

इस पर विष्णुकुमार को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा "अच्छा! केवल तीन पैर स्थान दे दो। नमुचि ने कहा—"अगर इतने स्थान से बाहर किसी को देखा तो सिर काट डालूँगा।" विष्णुकुमार ने वैक्रियलब्धि द्वारा अपने शरीर को वढ़ाना शुरू किया। उनके विराट् रूप को देखकर सभी डर गये। नमुचि उनके पैरों में गिर कर क्षमा मागने लगा। सकट दूर होने पर शान्त चित्त होकर विष्णुकुमार ने प्रायश्चित ग्रहण किया और फिर तपस्या में लग गये। कुछ दिनों के वाद घातीकर्मों का नाश होजाने पर वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये। महापद्म ने भी चक्रवर्ती पद को छोड़ कर दीक्षा ग्रहण करली। आठ कर्मों का क्षयकर के वे मोक्ष में गये। दसहजार वर्ष केवली पर्याय में रहकर विष्णुकुमार मुनि भी सिद्ध हुए।

महापद्म चक्रवर्ती कुमार वय में ५०० वर्ष, मांडलिक वय में ५०० वर्ष, दिग्विजय में ३०० वर्ष, चक्रवर्नी पद में १८७००, व्रत में १०००० वर्ष, कुल ३०००० वर्ष की आयु भोगी। इनकी ऊँचाई २० धनुष थी।

१०. हरिषेण चक्रवर्ती

भरतक्षेत्र में अनन्तनाथ प्रभु के तीर्थ में नरपुर नाम का नगर था। वहाँ नयनाभिराम नाम का राजा राज्य करता था। उसे वैराग्य

उत्पन्न हो गया। उसने किसी महास्थविर के समीप दीक्षा ग्रहण की। अन्त में संथारापूर्वक देह का त्याग किया और वह मर कर सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देव बना।

पांचाल देश में काम्पिल्य नाम का नगर था। वहाँ सिंह जैसा पराक्रमी इक्ष्वाकुवंश-तिलक 'महाहरि' नाम का विख्यात राजा राज्य करता था। उसे अत्यन्त सद्गुणी महिषी नाम की पट्टरानी थी। नयनाभिराम मुनि का जीव स्वर्ग से चवकर महारानी महिषी के उदर में उत्पन्न हुआ। चक्रवर्ती को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न महारानी ने देखे।

समय आने पर महारानी महिषी ने सुवर्ण की कान्तिवाले एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। मातापिता ने बालक का नाम हरिषेण रखा। हरिषेण युवा हुए उस समय उनकी ऊंचाई १५ धनुष थी। महाहरि राजा ने हरिषेण कुमार को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। पिता ने समय आने पर उन्हें अपना समस्त अधिकार दे दिया।

कुछ समय के बाद हरिषेण राजा की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। राजा ने चक्ररत्न के उत्पन्न होने पर बड़ा उत्सव किया। क्रमशः पुरोहित, वर्द्धकि, गृहपति सेनापति आदि तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। महाराजा हरिषेण ने चौदहरत्नों की सहायता से भरत क्षेत्र के छ खण्डों पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्तीपद प्राप्त किया। विजय-यात्रा से लौटने के बाद चक्रवर्ती ने दिग्विजय उत्सव बारह वर्ष तक किया। लम्बे समय तक चक्रवर्ती पद पर रहने के बाद मोक्ष के इच्छुक हरिषेण ने दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये। सवातीनसौ वर्ष कुमारावस्था में, सवातीनसौ वर्ष मांडलिक अवस्था में, १५० वर्ष दिग्विजय में, आठ हजार आठसौ पचासवर्ष चक्रवर्ती पद में एवं तीन सौ वर्ष दीक्षा अवस्था में रहे। आपकी कुल आयु १० हजार वर्ष की थी आप नमिनाथ के शासन काल में हुए थे।

११. जय चक्रवर्ती

राजगृह नगर में समुद्रविजय नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम अभया था। अभया रानी ने १४ महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने उत्तम लक्षणवाले पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम जयकुमार रखा। जय युवा हुआ। पिताने जय को सम्पूर्ण राज्य का भार सौंप कर दीक्षा ग्रहण की। जय पिता द्वारा दिये गये राज्य का न्याय नीति से पालन करने लगे।

एक समय जय राजा की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। क्रमशः अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। रत्नों की सहायता से जय ने भरत के ६ खण्ड पर विजय प्राप्त कर भरत जैसा वैभव प्राप्त किया। दिग्विजय कर वापस जब लौटे तो देवोंने आपको चक्रवर्ती पद से विभूषित किया। चक्रवर्ती पद का बारह वर्ष तक उत्सव मनाया गया। इस समय के बीच उन्होंने प्रजा को कर मुक्त किया। लम्बे समय तक चक्रवर्ती का वैभव भोगने के बाद जयचक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा लेकर कठोर तप करते हुए आपने घनघाती कर्म का क्षय किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्तिम समय में आपने सिद्धि प्राप्त की।

१२ ब्रह्मदत्त

आप कांपिल्यपुर (पंचाल जनपद की राजधानी) के राजा ब्रम्ह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम चुलनी था। इनके बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु हो चुकी थी। मृत्यु के समय राजा ब्रम्हने अपने चार अनन्य मित्र वाराणसी के राजा कटक, गजपुर के राजा कणेरदत्त, साकेत के राजा दीर्घपृष्ट और चंपा के राजा पुष्पचूल को अपने पुत्र और राज्य के सरक्षण की जिम्मेदारी दी थी। ये राजा लोग बारी बारी से राज्य का सरक्षण करते थे। एक बार साकेत के राजा दीर्घपृष्ट कांपिल्य-पुर थे उस समय चुलनी और दीर्घपृष्ट में प्रेम सम्बध हो गया था। दीर्घपृष्ट की नियत खराब हो गई। उसने अपने रास्ते के कांटे ब्रह्मदत्त को

नष्ट कर देने का विचार किया। उसने चुलणी को यह बता दिया। चुलणी भी ब्रह्मदत्त को मार डालने में सहमत हो गई। इधर ब्रह्मदत्त को भी अपनी माता के व्यभिचार का पता चल गया। उसने माता को खूब समझाया लेकिन उसका उस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। राजा ब्रह्म का मंत्री धनु था। उसे दीर्घपृष्ठ राजा की बदनीयत का पता चल गया। दीर्घपृष्ठ राजा ने ब्रह्मदत्त को जिंदा जला डालने के लिए एक लाक्षागृह का निर्माण करा दिया। धनु मंत्री ने पहले ही से उसमें एक गुप्त रास्ता बनवा दिया। दीर्घपृष्ठ राजाने पुष्पचूल राजा की पुत्री पुष्पचूला के साथ विवाह करा उसे लाक्षागृह में भेज दिया। रात्रि के समय दीर्घपृष्ठ ने लाक्षागृह का रास्ता बन्द कर उसमें आग लगा दी। ब्रह्मदत्त पहले ही धनु के पुत्र वरधनु के साथ गुप्त रास्ते से निकल कर भाग गए। पुष्पचूला के स्थान पर एक दासी को वहीं रखा गया था। अब ब्रह्मदत्त वरधनु के साथ अन्य देश के लिए रवाना हो गये। भागते हुए जब वे एक घने जंगल में पहुँचे तो ब्रह्मदत्त को बड़ी प्यास लगी। उसे एक वृक्ष के नीचे बिठाकर वरधनु पानी लाने के लिए गया।

दीर्घपृष्ठ को जब मालूम हुआ कि कुमार बंभदत्त लाक्षागृह से जीवित निकल कर भाग गया है तो उसने चारों तरफ अपने आदमियों को दौड़ाया और आदेश दिया कि जहाँ भी ब्रह्मदत्त और वरधनु मिले उन्हें पकड़कर मेरे पास लाओ।

इन दोनों की खोज करते हुए राजपुरुष उसी बन में पहुँच गए। जब वरधनु पानी लेने के लिए एक सरोवर के पास पहुँचा तो राजपुरुषों ने उसे देख लिया और उसे पकड़ लिया। उसने उसी समय ऊँचे स्वर से संकेत किया जिससे ब्रह्मदत्त समझ गया और वहाँ से उठ कर एक दम भाग गया।

राजपुरुषों ने वरधनु को पकड़ लिजा और उसे राजकुमार के बारे में पूछा किन्तु उसने कुछ नहीं बताया। तब वे उसे मारने पीटने

लगे । वह जमीन पर गिर पड़ा और श्वास रोक कर निश्चेष्ट बन गया । 'यह मर गया है' ऐसा समझ कर राजपुरुष उसे छोड़कर चले गये ।

राजपुरुषों के चले जाने के पश्चात् वह उठा और राजकुमार को ढूँढने लगा किन्तु उसका कहीं पता नहीं लगा । तब वह अपने कुटुम्बियों की खबर लेने के लिये कम्पिलपुर की ओर चला । मार्ग में उसे संजीवन और निर्जीवन नामकी दो औषधियाँ प्राप्त हुईं । आगे चलने पर कम्पिलपुर के पास उसे एक चाण्डाल मिला । उसने वरधनु को सारा वृत्तान्त कहा और बतलाया कि तुम्हारे सब कुटुम्बियों को राजा ने कैद कर लिया है । तब वरधनु ने कुछ लालच देकर उस चाण्डाल को अपने वश में करके उसे निर्जीवन गुटिका दी और सारी बात समझा दी ।

चाण्डाल ने जाकर वह औषधि धनु मन्त्री को दी । उसने अपने सब कुटुम्बीजनों की आँखों में उसका अंजन किया जिससे वे तत्काल निर्जीव सरीखे हो गये । उन सब को मरे हुए जानकर दीर्घपृष्ठ राजा ने उन्हें श्मशान में ले जाने के लिए उस चाण्डाल को आज्ञा दी । वरधनु ने जो जगह बताई थी उसी जगह पर चाण्डाल उन सब को रख आया । इसके बाद वरधनु ने आकर उन सब की आंखों में संजीवन गुटिका का अंजन किया जिससे वे सब स्वस्थ हो गये । सामने वरधनु को देखकर आश्चर्य करने लगे । वरधनु ने उनसे सारी हकीकत कह सुनाई ।

उसके बाद वरधनु ने उन सब को अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ रख दिया और वह स्वयं ब्रह्मदत्त को ढूंढ़ने के लिये निकल गया । बहुत दूर किसी वन में उसे ब्रह्मदत्त मिल गया ।

ब्रह्मदत्त वरधनु को साथ में लेकर निकला । उसने काम्पिल्यपुर से गिरितटक, चम्पा, हस्तिनापुर, साकेत, समकटक, नन्दि, अवस्थानक, वंशीप्रासाद, आदि अनेक नगरों में परिभ्रमण किया । अपने परिभ्रमण काल में उसने चित्र की पुत्री चित्रा, विद्युन्माला और विद्युन्मती,

चित्रसेण की पुत्री भद्रा, पन्थक की नागयशा, कीर्तिसेण की पुत्री कीर्तिमती, यक्षहारिल्ल की नागदत्ता, यशोमती, रत्नवती, चारुदत्त की वत्सा, ऋषभ की शीला, धनदेव, वसुमित्र, सुदर्शन और दारुक इन सब वणिकों के कुक्कुट युद्ध के अवसर पर पुस्ती नाम की एक कन्या, पोत की पुत्री पिंगला, सागरदत्त वणिक की पुत्री दीपशिखा, काम्पिल्य की पुत्री मलयवती, सिंधुदत्त की वनराजी, और सोमा, सिंधुसेन की वानीर प्रद्युम्नसेन की प्रतिका और प्रतिभा आदि राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह किया था। हरिकेशा, गोदत्ता, कणेरुदत्ता, कणेरुपदिका कुंजरसेना, कणेरुसेना ऋषिवर्द्धिका, कुरुमती, देवी और रुक्मिणी ये इनकी मुख्य पट्टरानियाँ थीं। अपने श्वसुर राजाओं की सहायता से इसने बड़ी सेना तैयार की। वरधनु को सेनापति बनाया और अपनी बुद्धि वीरता और सामर्थ्य से अनेक देशों के राजाओं को अपने आधीन कर लिया। उसके बाद विशाल सेना के साथ ब्रह्मदत्त ने काम्पिल्यपुर पर चढ़ाई कर दी। दीर्घपृष्ठ राजा ने भी अपने सेना से ब्रह्मदत्त का प्रतिकार किया लेकिन ब्रह्मदत्त की विशाल सेना के सामने टिक नहीं सका अन्त में वह ब्रह्मदत्त द्वारा मार डाला गया। ब्रह्मदत्त काम्पिल्यपुर का राजा बनाया गया। किसी समय उसकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। क्रमशः अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए उसकी सहायता से उसने छ खण्ड पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पूर्वजन्म के भ्राता मुनि चित्त जो पुरिमताल नगर के एक धनाढ्य श्रेष्ठी के पुत्र थे। अपने पूर्व जन्म के साथी ब्रह्मदत्त को राज्य भोग में अत्यन्त आसक्त हुआ देख वे काम्पिल्यपुर आये। ब्रह्मदत्त भी मुनि के समीप पहुँचा और उनका उपदेश सुनने लगा। चित्त ने ब्रह्मदत्त को अपने पूर्व जन्म का परिचय देते हुए कहा—"हे ब्रह्मदत्त! हम एक जन्म में दोनों गोपाल साथी थे। मुनिचन्द नामक साधु के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की थी। साधुओं के मलीन वस्त्रों से हमें घृणा थी जिससे हम दसपुर के ब्राह्मण

शाण्डिल्य की यशोमती नामक दासी से पुत्ररूप से उत्पन्न हुए। युवावस्था में हम दोनों सांप के डस जाने से मर गये थे, वहाँ से कालिंजर पर्वत में हम दोनों हिरण बने। वहाँ भी हम एक शिकारी द्वारा मारे गये। वहाँ से मर कर मृतगङ्गा के तीर पर हंस बने वहाँ भी पारधि द्वारा मारे गये। वहाँ से हम दोनों वाराणसी के भूतदत्त नामक चाण्डाल के घर जन्में। मेरा नाम चित्त और तुम्हारा नाम सम्भूत था। हम दोनों अत्यन्त रूपवान् होने के साथ साथ संगीतज्ञ भी थे। हमारे संगीत से नगर के स्त्री पुरुष पागल से हो जाते थे। यहाँ तक की छुआछूत का भी लोग भान भूल गये थे। राजा को यह सहन नहीं हुआ और हम दोनों को अपने नगर से निकाल दिया। हम दोनों वहाँ से एक पहाड़ पर से कूदकर मरने जारहे थे किन्तु वहाँ एक ध्यानस्थ मुनि का लक्ष्य हमारी ओर गया उन्होंने हमें समझा कर प्रव्रज्या दी। हम दोनों कठोर तप करने लगे वहाँ से हम विहारकर हस्थिनापुर गये। हस्थिनापुर में नमुचि नामक सनत्कुमार चक्रवर्ती के मंत्री ने हमें चाण्डाल पुत्र समझकर नगर के वाहर अपने सुभटों द्वारा धकेल दिया। उस समय तुम (संभूत) अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अपनी तेजोलेश्या से भंयकर अग्निज्वाला के साथ धूआं निकालने लगे। सनत्कुमार चक्रवर्ती घबरा गया और वह अपनी राणियों के साथ अपराध की क्षमा याचना करने आया और वह बार-बार तुम्हारे चरण से अपना मस्तक छुलाने लगा। सनत्कुमार चक्रवर्ती के सरपर बावना चंदण का तैल लगा हुआ था। उसके मस्तक का शीतल तैल तुम्हारे चरण पर गिरते ही तुम्हारा क्रोध शान्त होगया। चक्रवर्ती के दिव्य वैभव से तुम बहुत आकर्षित होगये और तुमने अपने तप का निदान किया। जिसके कारण तुम इस समय चक्रवर्ती बने हो। तुम अब भी राज्य भोगों का त्याग कर श्रमण बनो और जन्म-मरण से मुक्त होकर शाश्वत सुख प्राप्त करो। इस पर ब्रह्मदत्त ने चित्त मुनि से कहा—हे मुने! आप मेरे अंतःपुर में रहें और राज्यसुख का अनुभव करें।

इस प्रकार अनेक प्रश्नोत्तर के बाद भी मुनि के उपदेश का असर उसपर कुछ भी नहीं पड़ा। हारकर मुनि अन्यत्र विहार कर गये।

कुछ दिनों के बाद एक ब्राह्मण कुल को उसने आग्रहपूर्वक भोजन करवाया था। चक्रवर्ती के भोज से ब्राह्मण परिवार को अत्यन्त उन्माद चढ़ गया था। ब्राह्मण को इस बात पर अत्यन्त क्रोध हुआ उसने एक निशाने बाज गोपालक से ब्रह्मदत्त की दोनों आंखे फोड़ दीं। इस पर ब्रह्मदत्त अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने इसका बदला लेने के लिए सैकड़ों ब्राह्मणों की आखें फोड़ डालीं। इस घनघोर पापी कृत्य से व भोगासक्ति से सातसौ वर्ष की आयु में मरकर नरक में गया।

चक्रवर्तियों के विषय में सामान्य जानकारी-

चक्रवर्तियों की संख्या

चक्रवर्ती १२ हैं। १ भरत २ सगर ३ मघवा ४ सनत्कुमार ५ शान्तिनाथ ६ कुन्थुनाथ ७ अरनाथ ८ सुभूम ९ महापद्म १० हरिषेण ११ जय १२ और ब्रह्मदत्त।

चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम-

१ ऋषभस्वामी २ सुमतिविजय ३ समुद्रविजय ४ अश्वसेन ५ विश्वसेन ६ सूर्य ७ सुदर्शन ८ कृतवीर्य ९ पद्मोत्तर १० महाहरि ११ विजय १२ और ब्रह्म

चक्रवर्तिओं की माताओं के नाम-

१ सुमंगला २ यशस्वती ३ भद्रा ४ सहदेवी ५ अचिरा ६ श्री ७ देवी ८ तारा ९ जाला १० मेरा ११ वप्रा १२ चुल्लणी

चक्रवर्तियों के जन्मस्थान-

१ वनिता २ अयोध्या ३ श्रावस्ती ४-५-६-७-८ हस्तिनापुर (इस नगर में ५ पाँच चक्रवर्तियों का जन्म हुआ था) ९ बनारस १० काम्पिल्यपुर ११ राजगृह १२ काम्पिल्यपुर

चक्रवर्तियों के ग्राम

चक्रवर्तियों के ग्राम ९६-९६ करोड होते हैं।

चक्रवर्तियों का बल-

कहा जाता है कि—कुंए आदि के तट पर बैठे हुए चक्रवर्ती को

श्रृंखला में बाँधकर हाथी घोड़े रथ और पैदल आदि सारी सेना सहित बत्तीस हजार राजा उस जंजीर को खींचने लगें तो भी वे एक चक्रवर्ती को नहीं खींच सकते किन्तु उसी जंजीर को बाएँ हाथ से पकड़ कर चक्रवर्ती अपनी तरफ उन सबको बड़ी आसानी से खींच सकता है।

चक्रवर्तियों का हार-

प्रत्येक चक्रवर्ती के पास श्रेष्ठ मोती और मणियों अर्थात् चन्द्रकान्त आदि रत्नों से जड़ा हुआ चौंसठ लड़ियों का हार होता है।

चक्रवर्तियों के एकेन्द्रिय रत्न-

प्रत्येक चक्रवर्ती के पास सात सात एकेन्द्रिय रत्न होते हैं। अपनी अपनी जाति में जो सर्वोत्कृष्ट होता है वह रत्न कहलाता है। वे ये हैं— १ चक्ररत्न २ छत्ररत्न ३ चर्मरत्न ४ दण्डरत्न ५ असिरत्न ६ मणिरत्न ७ काकिणीरत्न [अष्टसुवर्णपरिमाण होता है। यह रत्न छ खण्ड, बारह कोटि(धार) तथा अष्ट कोण वाला होता है। इसका आकार लोहार के ऐरण जैसा होता है] ये सातों रत्न पृथ्वी रूप हैं।

चक्रवर्तियों के सात पंचेन्द्रिय रत्न

१ सेनापति २ गृहपति(भंडारी) ३ वर्धकी (बढ़ई) ४ शान्तिकर्म कराने वाला पुरोहित ५ स्त्रीरत्न ६ अश्वरत्न ७ हस्तिरत्न।

इन चौदह रत्नों की एक एक हजार यक्ष देव सेवा करते हैं।

चक्रवर्तियों का वर्ण-

शुद्ध निर्मल सोने की प्रभा के समान उनके शरीर का वर्ण होता है।

चक्रवर्तियों के स्त्री रत्न-

१ सुभद्रा २ भद्रा ३ सुनन्दा ४ जया ५ विजया ६ कृष्णश्री ७ सूर्यश्री ८ पद्मश्री ९ वसुन्धरा १० देवी ११ लक्ष्मीमती १२ कुरुमती

चक्रवर्तियों की जीवनझाँकी—

नाम	स्थिति	अवगाहना
१ भरत	८४ लाख पूर्व	५०० धनुष
२ सगर	७२ ,,	४५० ,,

नाम	स्थिति	अवगाहना
३ मघवान्	५ लाख वर्ष	४२॥ धनुष
४ सनत्कुमार	३ लाख वर्ष	४१॥ ,,
५ शान्तिनाथ	१ ,, ,,	४० ,,
६ कुन्थुनाथ	९५ हजार वर्ष	३५ ,,
७ अरनाथ	८४ ,, ,,	३० ,,
८ सुभूम	६० ,, ,,	२८ ,,
९ महापद्म	३० ,, ,,	२० ,,
१० हरिषेण	१० ,, ,,	१५ ,,
११ जय	३ ,, ,,	१२ ,,
१० ब्रह्मदत्त	७०० वर्ष	७ ,,

चक्रवर्त्तियों की विजय पद्धति—

चक्रवर्ती पहले मध्य खण्ड को साधता है, फिर सेनानीरत्न द्वारा सिन्धुखण्ड को जीतता है। इसके बाद गुहानुप्रवेश नामक रत्न से वैताढय पर्वत का उल्लंघन कर उधर के मध्यखण्ड को विजय करता है। बाद में सिन्धुखण्ड और गंगा खण्ड को साधकर अपनी राजधानी में लौट आता है। गंगा खण्ड और सिन्धु खण्ड की देवी गंगा और सिन्धु देवी चक्रवर्तियों की सेविका बनकर रहती हैं।

चक्रवर्तियों की गति--

बारह चक्रवर्तियों में से दस चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं। सुभूम और ब्रह्मदत्त दोनों चक्रवर्ती कामभोगों में फँसे रहने के कारण सातवीं नरक में गए।

राज्यलक्ष्मी और कामभोग को छोड़कर जो चक्रवर्ती दीक्षा लेते हैं वे उसी भव में मोक्ष में या श्रेष्ठ देवलोक में भी जाते हैं। जो देवलोक में जाते हैं वे अर्द्धपुद्गल परावर्त के बाद अवश्य मोक्ष में जाते हैं।

चक्रवर्तियों के नवनिधान (खजाना)—

चक्रवर्ती का प्रत्येक निधान नौ योजन विस्तार वाला होता है। चक्रवर्ती की सारी सम्पत्ति इन नौ निधानों में विभक्त है। ये सभी निधान देवताओं द्वारा अधिष्ठित हैं। वे इस प्रकार हैं—

१-**नैसर्प निधि**—नये ग्रामों का बसाना, पुराने ग्रामों को व्यवस्थित करना, खानों का प्रबन्ध तथा सेना के पड़ाव का प्रबन्ध नैसर्प निधि से होता है।

२-**पाण्डुक निधि**—गिनी जानी वाली वस्तु, तथा मापी जानी वाली वस्तुओं का प्रबन्ध करने का काम पाण्डुक निधि में होता है।

३-**पिंगल निधि**—आभूषणों का प्रबन्ध करने वाली निधि।

४-**सर्वरत्न निधि**—चौदह रत्न का प्रबन्ध करने वाली निधि।

५-**महापद्मनिधि**—वस्त्र का प्रबन्ध करने वाली निधि।

६-**काल निधि**—काल ज्ञान, शिल्प और कर्म, कृषि आदि का ज्ञान कराने वाली।

७-**महाकाल निधि**-खानों से सोना चाँदी रत्न आदि को इकट्ठी करने वाली निधि।

८-**मानवक निधि**—चार प्रकार की दण्ड नीति मानवक निधि में होती है।

९-**शंख निधि**-नृत्य, गान, नाटक, छंद-रचना, आदि साहित्य की रचना करने वाली निधि।

ये निधियाँ चक्रपर प्रतिष्ठित हैं। इनकी आठयोजन ऊँचाई नौ योजन चौड़ाई, तथा बारह योजन लम्बाई होती है। ये पेटी के आकार की होती हैं। गंगा नदी का मुँह इनका स्थान है। इनके किवाड़ वैडूर्यमणि के बने होते हैं। इन्हीं नामों वाले निधियों के अधिष्ठाता त्रायस्त्रिंश देव हैं।

चक्रवर्तियों का भोजन

चक्रवर्तियों का भोजन कल्याण भोजन कहलाता है। उसके विषय में ऐसा कथन आता है-रोग रहित एक लाख गायों का दूध निकाल कर वह दूध पचास हजार गायों को पिला दिया जाय। फिर उन पचास हजार गायों का दूध निकाल कर पचीस हजार गायों को पिला दिया जाय। इस प्रकार क्रमशः करते हुए अन्त में वह दूध एक गाय को

पिला दिया जाय। फिर उस एक गाय का दूध निकाल कर उत्तम जाति के चावल डाल कर खीर बनाई जाय और उत्तमोत्तम पदार्थ डालकर उसे संस्कारित किया जाय। ऐसी खीर का भोजन कल्याण भोजन कहलाता है। चक्रवर्ती और उसकी पटरानी के अतिरिक्त यदि दूसरा कोई व्यक्ति उस खीर का भोजन कर ले तो वह उसको पचा नहीं सकता और उससे उसको महान् उन्माद पैदा हो जाता है।

चक्रवर्ती का काकिणीरत्न

प्रत्येक चक्रवर्ती के पास एक एक काकिणी रत्न होता है। वह अष्टसुवर्ण परिमाण होता है। सुवर्ण परिमाण इस प्रकार बताया गया है—चार कोमल तृणों की एक सफेद सरसों होती है। सोलह सफेद सरसों का एक धान्यमाषफल कहलाता है। दो धान्यमासफलों की एक गुन्छा (चिरमी) होती है। पाँच गुञ्जाओं (चिरमियों) का एक कर्ममाष होता है और सोलह कर्ममाषों का एक सुवर्ण होता है। सब चक्रवर्तियों के काकिणी रत्नों का परिमाण एक समान होता है। वह रत्न छः खण्ड, बारह कोटि (धार) तथा आठ कोण वाला होता है। इसका आकार लुहार के एरण सरीखा होता है।

भरत के बाद क्रमशः आठ युग प्रधान राजाओं ने मोक्ष प्राप्त किया था। वे आठ राजा ये हैं—

१ आदित्ययश २ महायश ३ अतिबल ४ महाबल ५ तेजोवीर्य ६ कार्तवीर्य ७ दण्डवीर्य ८ जलवीर्य

आगामी उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती

निम्न लिखित चक्रवर्ती आगामी उत्सर्पिणी में होंगे

(१) भरत (२) दीर्घदन्त (३) गूढ़दन्त (४) शुद्धदन्त (५) श्रीपुत्र (६) श्रीभूति (७) श्रीसोम (८) पद्म (९) महापद्म (१०) विमलवाहन (११) विपुलवाहन (१२) अरिष्ट।

वासुदेव और बलदेव

१. त्रिपृष्ठ वासुदेव और अचल बलदेव

पोतन नगर में रिपुप्रतिशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसकी मुख्य रानी का नाम 'भद्रा' था। एक रात्रि में महारानी ने चौदह महास्वप्न में से चार महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने शुक्लवर्णीय बालक को जन्म दिया। बालक का नाम 'अचल' रखा गया। रानी भद्रा के मृगावती नाम की पुत्री थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। राजा रिपुप्रतिशत्रु उसके रूप पर आसक्त हो गया और उसने उसी के साथ विवाह कर लिया। राजा के इस अनीति पूर्ण व्यवहार से भद्रारानी अत्यन्त क्रुद्ध हुई और वह अपने पुत्र अचल को साथ में लेकर दक्षिनापथ में गई और वहीं माहेश्वरपुरी नामक नगरी बसाकर रहने लगी।

इधर राजा का अपनी पुत्री के साथ विवाह करने कारण प्रजापति नाम पड़ा। प्रजापति की रानी मृगावती ने एक समय रात्रि में चौदह महास्वप्न में से सात महास्वप्न देखे। कालान्तर में उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम त्रिपृष्ट रक्खा गया। त्रिपृष्ट युवा हुआ। उसने अपने प्रतिशत्रु अश्वग्रीव को मार कर तीन खण्ड का राज्य प्राप्त किया। अचलकुमार भी अपने भाई के पास पोतनपुर आ गया।

त्रिपृष्ट ने वासुदेव की और अचल ने बलदेव की उपाधि प्राप्त की। दोनों भाइयों में अगाध स्नेह था। चौरासी लाख वर्ष की आयु पूर्ण कर त्रिपृष्ट वासुदेव सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ।

भाई की मृत्यु से अचल बलदेव को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्हे धर्मघोष आचार्य के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे उनके पास दीक्षित हो गये। ८५ लाख वर्ष की अवस्था में जन्म जरा से मुक्त हो उन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया।

२. द्विपृष्ठ वासुदेव और विजय बलदेव

सौराष्ट्र देश की द्वारिका नगरी में ब्रह्म नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी उमा और सुभद्रा नाम की दो रानियाँ थी। सुभद्रा रानी ने चौदह महास्वप्न में से चार और उमा रानी ने सात महास्वप्न देखे। दोनों रानियाँ गर्भवती हुई। गर्भकाल के पूर्ण होने पर दोनों ने एक एक प्रतापी पुत्र को जन्म दिया। महारानी सुभद्रा से उत्पन्न बालक का नाम विजयकुमार रखा गया और उमा से उत्पन्न बालक का नाम 'द्विपृष्ठ'। दोनों युवा हुए। उनका श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह किया गया।

द्विपृष्ट कुमार ने तारक नाम के प्रति वासुदेव को मारकर वासुदेव पद प्राप्त किया और विजयकुमार ने बलदेव का। ये दोनों भरत के तीन खण्ड पर शासन करने लगे। कुल ७४ लाख वर्ष की आयु भोगकर द्विपृष्ट मरकर छठीं नरक में उत्पन्न हुए। भाई की मृत्यु से विजय बलदेव को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने विजयसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। कुल ७५ लाख वर्ष की आयु समाप्त कर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

ये भगवान वासुपूज्य के शासन काल में हुए थे।

३. स्वयंभू वासुदेव और भद्र बलदेव

भारतवर्ष में द्वारिका नाम की नगरी थी वहाँ रुद्र नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उसके रूप एव सौंदर्य से भरपूर सुप्रभा और पृथ्वी नाम की दो रानियाँ थीं। सुप्रभा रानी के गर्भ में नन्दिसुमित्र का जीव अनुत्तर विमान से चवकर अवतरित हुआ। महारानी ने चार महास्वप्न देखे। जन्म होनेपर पुत्र का नाम भद्र रखा।

धनमित्र का जीव महारानी पृथ्वी के गर्भ में अच्युत कल्प से चवकर सात महास्वप्न के साथ आया। नौमास और साढ़े सात रात्रि

के बीतने पर महारानी ने श्यामवर्णीय सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम स्वयंभू रखा गया। दोनों बालक दूज के चाँद की तरह बढ़ने लगे।

भरतक्षेत्र में नन्दनपुर नाम के नगर में समकेशरी राजा की सुन्दरी नाम की रानी से मेरक नाम का प्रतापी पुत्र हुआ। युवा होने पर मेरक ने भरतार्द्ध पर विजय प्राप्त की और अतुल बल पराक्रम से प्रतिवासुदेव का पद प्राप्त किया।

इधर स्वयंभू और भद्र भी तेजस्वी और वीर बालक थे। इन बालकों की पराक्रम गाथा सुनकर मेरक ने सोचा–कहीं ये ही बालक मेरे नाश के कारण न बन जाँय। उसने अपनी समस्त सेना के साथ रुद्र राजा पर आक्रमण कर दिया। स्वयंभू और भद्र ने बड़ी वीरता के साथ मेरक की वीर सेना को मार भगाया। अपनी सेना को हतोत्साह देखकर मेरक स्वयं लड़ने के लिये आगे आया। उसने स्वयंभू को मारने के लिये चक्र छोड़ा। चक्र स्वयंभू के पास आया। स्वयंभू ने उसी चक्र की सहायता से मेरक को मार डाला। स्वयंभू और भद्र विजयी हुए। देवों ने स्वयंभू को वासुदेव और भद्र को बलदेव घोषित किया। वासुदेव पद प्राप्त कर स्वयंभू राज्य एवं भोग में ग्रस्त हो गये। अन्त में आरंभ और परिग्रह में आसक्त स्वयंभू वासुदेव साठ लाख की आयु पूर्ण कर मरे और छठीं नरक में उत्पन्न हुए।

अपने भाई की मृत्यु से भद्र बलदेव को अत्यन्त दुःख हुआ। अन्ततः संसार से विरक्त हो कर भद्र बलदेव ने मुनिचन्द्र मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। ६५ लाख वर्ष की आयु समाप्त कर वे परम पद को प्राप्त हुए। ये वासुदेव और बलदेव विमलनाथ भगवान के शासन में हुए।

४. पुरुषोत्तम वासुदेव और सुप्रभ बलदेव

चौदहवे तीर्थङ्कर अनन्तनाथ के शासन काल में द्वारिका नगरी में सोम नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी सुदर्शना और सीता

नाम की दो पट्टरानियाँ थीं। सुदर्शना ने चार महास्वप्न देखकर एकपुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सुप्रभ रखा गया। कालान्तर में सीतादेवी ने भी सात महास्वप्न देखे और एक सुन्दर नीलवर्णीय पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम पुरुषोत्तम रखा गया। दोनों बालक युवा हुए। दोनों का श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। दोनों भाईयों के बीच प्रगाढ़ स्नेह था। पुरुषोत्तम ने अपने प्रतिशत्रु मधु को मारकर तीन खण्ड पर विजय प्राप्त की। पुरुषोत्तम वासुदेव और सुप्रभ बलदेव हुए। नील वस्त्र से वासुदेव और पीत वस्त्र से बलदेव चन्द्र सूर्य की तरह अत्यन्त सुन्दर लगते थे। पुरुषोत्तम वासुदेव तीसलाख वर्ष की अवस्था में मरकर छठीं नरक में गये। भाई की मृत्यु से सुप्रभ बलदेव को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने मृगांकुश नाम के मुनि के पास दीक्षा ली और घनघातीकर्मों को खपाकर केवलज्ञान प्राप्त किया। ५५ लाख वर्ष की अवस्था में वे मोक्ष को प्राप्त हुए।

५. पुरुषसिंह वासुदेव और सुदर्शन बलदेव

अश्वपुर नगर में शिव नाम के राजा को दो रानियाँ थीं। एक का नाम विजया और दूसरी का नाम अंमका। विजया रानी के गर्भ से सुदर्शन बलदेव का और अंमका रानी के गर्भ से पुरुषसिंह वासुदेव का जन्म हुआ। पुरुषसिंह वासुदेव ने निशुम्भ नामक प्रतिशत्रु को मारकर तीनखण्ड पर विजय प्र प्त की। पुरुषसिंह वासुदेव और सुदर्शन बलदेव कहलाये। दोनों भाई अर्धभरतक्षेत्र पर एक छत्र राज्य करने लगे। दस लाख वर्ष के लम्बे काल में पुरुषसिंह वासुदेव ने अनेक पापों का संचय किया और मरकर छठी नरक में उत्पन्न हुए। भ्रातृ वियोग से दुःखी होकर सुदर्शन बलदेव ने कीर्तिधर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त किया। कुल १७ लाख वर्ष की अवस्था भोगकर सुदर्शन बलदेव ने मोक्ष प्राप्त किया। सुदर्शन बलदेव धर्मनाथ तीर्थङ्कर के समय में हुए थे।

६. पुरुषपुण्डरीक वासुदेव और आनन्द बलदेव

अठारहवे तीर्थंङ्कर अरनाथ के समय चक्रपुर नाम का नगर था। वहाँ महाशिर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी दो रानियाँ थीं। एक का नाम वैजयन्ती और दूसरी का नाम लक्ष्मीवती था। वैजयन्ती रानी ने चार स्वप्न देखकर एक पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम 'आनन्द' कुमार रखा गया। लक्ष्मीवती ने सातस्वप्न देखकर एक वीर पुत्र को जन्म दिया उसका नाम पुरुषपुण्डरीक रखा गया। दोनों युवा हुए। दोनों के बीच प्रगाढ़ स्नेह था। युवावस्था में पुरुषपुण्डरीक ने बलि नामक प्रतिवासुदेव को मारकर वासुदेव पद प्राप्त किया। आनन्द बलदेव बने। दोनों भाई तीन खण्ड पर एक छत्र राज्य करने लगे।

पुरुषपुण्डरीक वासुदेव ने ६५ हजार वर्ष की लम्बी आयु में अनेक युद्ध कर पापों का संचय किया और मरकर छठीं नरक में गये।

भाई की मृत्यु के बाद आनन्द बलदेव ने सुमित्र मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में ८५ हजार वर्ष की अवस्था में मोक्ष प्राप्त किया।

७. दत्तवासुदेव और नन्दन बलदेव

वाराणसी नगर में अग्निसिंह नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी जयन्ती और शेषवती नाम की दो गुणवती रानियाँ थीं। जयन्ती रानी को चार महास्वप्न सूचित कर नन्दन बलदेव ने जन्म ग्रहण किया। कुछ काल के बाद रानी शेषवती ने भी सात महास्वप्न देखे और गर्भ काल के पूर्ण होने पर एक वीर पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम दत्त रखा गया। दोनों बालक युवा हुए। युवावस्था में उनका अनेक सुन्दर राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ। दत्त ने अपने पिता से प्राप्त राज्य को विस्तृत किया और अपने प्रतिशत्रु प्रह्लाद को मारकर वासुदेव पद प्राप्त किया। नन्दन बलदेव बने। दोनों

भ्राता प्रगाढ़ स्नेह के साथ भरत के तीन खण्ड पर शासन करने लगे।

दत्तवासुदेव ने ५६ हजार वर्ष तक अनेक पापों का उपार्जन किया और मरकर अन्त में पांचवीं नरक में उत्पन्न हुए।

भाई की मृत्यु का नन्दन बलदेव को बड़ा आघात लगा। लम्बे समय तक वे भाई के वियोग में संतप्त रहे। अन्त में मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर घातीकर्मों को नष्ट कर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और ६५ हजार वर्ष की अवस्था में मुक्त हुए। ये वासुदेव और बलदेव भगवान अरनाथ के तीर्थ में हुए।

८. लक्ष्मणवासुदेव और रामबलदेव

साकेत नगरी में अनरण्य नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पृथ्वीदेवी था। पृथ्वीदेवी के उदर से अनन्तरथ और दशरथ नामके दो पुत्र हुए।

राजा अनन्तरथ ने अपने छोटे पुत्र दशरथ को राज्यगद्दी पर बिठाकर अपने बड़े पुत्र अनन्तरथ के साथ दीक्षा ले ली। समय पाकर अनरण्य मुनि मोक्ष में गये और अनन्तरथ मुनि तीव्र तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विहार करने लगे।

दशरथ बाल्यावस्था में ही राजा बन गये। जब वे युवावस्था को प्राप्त हुए और राज्य का कार्य स्वयं संभालने लगे तब उनका ध्यान अपने राज्य की वृद्धि करने की ओर गया। अपने अपूर्व पराक्रम से उन्होंने कई राजाओं को अपने वश में कर लिया।

उस समय कुशस्थल नाम का रमणीय नगर था। वहाँ सुकोशल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम अमृतप्रभा था। कुछ समय के बाद रानी की कुक्षि से एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम अपराजिता रक्खा गया। रूप लावण्य में वह अद्भुत थी। उसका दूसरा नाम कौशल्या था। अनेक धाइयों के संरक्षण में वह युवा हुई। उसने स्त्रियों की सभी कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली।

एक समय राजा दशरथ ने कुशस्थल पर चढ़ाई कर दी। राजा दशरथ की सेना के सामने राजा सुकोशल की सेना न ठहर सकी। अन्त में सुकोशल हार गया। राजा सुकोशल ने अपनी कन्या कौशल्या का विवाह दशरथ के साथ कर दिया। इससे दोनों राजाओं का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गया। अयोध्या में आकर राजा दशरथ रानी कौशल्या के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इसके बाद राजा दशरथ ने कमलकुल के राजा सुबन्धुतिलक की मित्रादेवी रानी के गर्भ से जन्मी हुई सुमित्रा और अनिंदित सुन्दरी राजकुमारी सुप्रभा के साथ विवाह किया।

लंका के अधिपति रावण ने एक बार किसी नैमित्तिक से पूछा—मेरी मृत्यु स्वतः होगी या दूसरों के द्वारा? उसने कहा—दशरथ के पुत्र राम की पत्नी सीता के कारण तुम दशरथ पुत्र लक्ष्मण द्वारा मारे जाओगे।

रावण के भ्राता विभीषण ने नैमित्तिक की बात को मिथ्या करने के लिए दशरथ की हत्या करने का निश्चय किया।

सभा में बैठे हुए नारद ने यह सब वृत्तान्त सुना। वे तत्काल दशरथ के पास आये और उनसे कहने लगे "रावण के भ्राता विभीषण ने तुम्हें मार डालने की प्रतिज्ञा की है। अतः तुम सावधान रहना।"

दशरथ ने जब यह सुना तो उसने अपने मन्त्रियों को राज्य संभला दिया और अकेला ही वह वहाँ से जंगल की ओर निकल गया।

विभीषण को धोखे में डालने के लिये मन्त्रियों ने दशरथ की एक लेप्यमय मूर्ति बनाई और उसे महल की एक अन्धेरी जगह में रखवा दी।

क्रोधग्रस्त विभीषण अयोध्या में आया और अन्धकार में रखी हुई दशरथ की लेप्यमय मूर्ति का उसने खड्ग से सिर काट दिया। उस समय सारे नगर में कोलाहल मच गया। अन्तःपुर में चारों ओर रोना

कूटना शुरू हो गया । अंगरक्षकों सहित सामन्त राजा वहाँ दौड़ आये और राजा की उत्तर क्रिया की । दशरथ राजा को मरा समझ विभीषण लंका लौट आया ।

महाराज दशरथ गुप्त रूप से फिरते हुए उत्तरापथ में पहुँचे । वहाँ कौतुकमंगल नगर के राजा की शुभमती रानी के उदर से जन्मी हुई द्रोणमेघ की बहन, ६४ कला में कुशल कैकयी कन्या का स्वयंवर था । वे भी स्वयंवर मण्डप में जाकर बैठ गये । कैकयी दशरथ के सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हो गई । वह दशरथ के पास पहुँच गई और उसने उनके गले में वर माला डाल दी । यह देख कर अन्य राजाओं को बहुत बुरा लगा । वे दशरथ के साथ युद्ध के लिए तैयार हो गये । उस समय एकाकी दशरथ ने कैकयी से कहा—"प्रिये ! यदि तू सारथी बने तो मै इन शत्रुओं को मार डालूँ" । कैकयी ने स्वीकार कर लिया । उसने रथ की बागडोर अपने हाथ में ले ली । राजा दशरथ भी कवच पहिन भाता गले में डाल, धनुष हाथ में ले, रथ में सवार हो गया ।

कैकयी के उत्तम रथ संचालन से दशरथ ने एक एक शत्रु को युद्ध मैदान में परास्त कर भगा दिया । दशरथ के रण कौशल की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी । दशरथ ने कैकयी के साथ विवाह किया फिर वीर दशरथ ने कैकयी से कहा—"प्रिये ! मै तेरे सारथिपन से प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिये कुछ वरदान मांग ।"

कैकयी ने उत्तर दिया—"स्वामी ! अवसर आने पर वरदान मागूँगी । आप इसको धरोहर की भाँति अपने पास रखिए ।"

राजा ने स्वीकार किया । फिर शत्रुओं से जीती हुई सेनाओं को साथ ले वे राजगृह आये और वहाँ के राजा को जीत कर वहीं राज्य करने लगे । उन्होंने अपनी राजधानी साकेत से अन्य रानियों को भी बुला लिया । राजा का जीवन सुखमय बीतने लगा ।

एक बार अपराजिता रानी ने रात्रि के पिछले भाग में बलदेव के जन्म को सूचित करने वाले हाथी, सिंह, चन्द्र और सूर्य इन चार महास्वप्नों को देखा। उस समय कोई महर्द्धिक देव ब्रह्म देवलोक से चवकर अपराजिता के उदर में आया। महारानी गर्भवती हुई। गर्भकाल के पूर्ण होने पर श्वेत कमल जैसे सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम 'पद्म' रखा और लोगों में वे राम के नाम से प्रसिद्ध हुए।

उसके बाद रानी सुमित्रा ने रात्रि में सात महास्वप्न देख कर एक पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया और बालक का नाम 'नारायण' रखा किन्तु वे लोगों में लक्ष्मण नाम से प्रख्यात हुए।

महारानी कैकयी ने भरत नाम के पुत्र को एवं सुप्रभा ने शत्रुघ्न नाम के पुत्र को जन्म दिया। चारों बालक अपनी वीरता के कारण प्रतिदिन प्रसिद्धि पाने लगे। महाराज दशरथ अपने पुत्रों और रानियों के साथ पुनः अयोध्या लौट आये और वहीं राज्य करने लगे।

उस समय मिथिला नगरी में हरिवंशी राजा वासुकी का पुत्र राजा 'जनक' राज्य करता था। वह महाराज दशरथ का अनन्य मित्र था। उसका दूसरा नाम विदेह था। उसकी रानी का नाम विदेहा था।

एक समय रानी गर्भवती हुई। समय पूरा होने पर रानी की कुक्षि से एक युगल उत्पन्न हुआ। उसमें एक पुत्र और एक पुत्री थी। राजा को सन्तान होने से सारे नगर में आनन्द छा गया।

इसी समय सौधर्म देवलोक का पिंगलदेव अवधिज्ञान से अपना पूर्व भव देख रहा था। रानी विदेहा की कुक्षि से उत्पन्न होने वाले युगल सन्तान में से पुत्र रूप में उत्पन्न होनेवाले जीव के साथ उसे अपने पूर्वभव के वैर का स्मरण हो आया। अपने वैर का बदला लेने

के लिये वह बालक को उठाकर चल दिया । वह उसे मार डालना चाहता था किन्तु बालक की सुन्दर मुखाकृति देखकर उसे उस पर दया आ गई । इससे उसे वैताढ्य पर्वत पर ले जाकर एक वन में सुनसान जगह पर रख दिया । इस प्रकार अपने वैर का बदला चुका हुआ मानकर वह वापिस अपने स्थान पर लौट आया ।

वैताढ्य पर्वत पर रथनुपुर नाम का नगर था । वहाँ चन्द्रगति नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था । वनक्रीड़ा करता हुआ वह उधर से निकला । उसकी दृष्टि उस सुन्दर बालक पर पड़ी । उसने बालक को उठा लिया और अपनी रानी को दे दिया । राजा रानी ने उसे अपना पुत्र मानकर जन्मोत्सव किया और बालक का नाम 'भामण्डल' रखा । क्रमशः बढ़ता हुआ बालक युवावस्था को प्राप्त हुआ ।

अपने यहाँ पुत्र तथा पुत्री के उत्पन्न होने से राजा जनक खुश हो रहे थे इतने में पुत्र हरण की दुःखद घटना घटी । राजा की खुशी चिन्ता में बदल गई । राजा को बड़ा दुःख हुआ । पुत्री को ही पुत्र मानकर उन्होंने सन्तोष किया । जन्मोत्सव मनाकर पुत्री का नाम सीता रक्खा । योग्य वय होने पर स्त्री की चौसठ कलाओं में वह प्रवीण हो गई । अब राजा विदेह को उसके योग्य वर खोजने की चिन्ता हुई ।

एक बार म्लेच्छराजा अन्तरंग बड़ी भारी सेना लेकर मिथिला पर चढ़ आया और नाना प्रकार के उपद्रव करने लगा । राजा की सेना म्लेच्छ राजा की सेना के सामने बार बार परास्त होती थी । यह देख राजा विदेह ने अपने मित्र राजा दशरथ के पास सहायता के लिये दूत भेजा । पिता की आज्ञा प्राप्त कर राम और लक्ष्मण सेना के साथ मिथिला आये और उन्होंने युद्ध करके म्लेच्छ राजा को परास्त कर दिया । राम और लक्ष्मण के अद्भुत पराक्रम को देखकर राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने उनका उचित सत्कार करके उन्हें अयोध्या की ओर बिदा किया ।

इधर जब भामण्डल को सीता के रूप सौंदर्य का नारदजी द्वारा पता लगा तो वह उस पर मुग्ध होगया। उसने दूत को जनक के पास भेजा और सीता की माग की। राजा जनक ने कहा—"मैंने अपनी पुत्री सीता का विवाह स्वयंवर पद्धति से करने का निश्चय किया है। स्वयंवर के समय आपको भी आमंत्रण दिया जायगा। दूत ने भामण्डल को यह सन्देश सुनाया। भामण्डल सीता के स्वयंवर की प्रतीक्षा करने लगा।

राजा जनक ने कुशल कारीगरों से एक सुन्दर मण्डप बनवाया और विविध देशों के राजा को स्वयंवर में आने का निमंत्रण भेजा। निश्चित तिथि पर अनेक राजा और राजकुमार उपस्थित हुए। राजा दशरथ राम, लक्ष्मण आदि पुत्रों के साथ और विद्याधर चंद्रगति अपने पुत्र भामण्डल के साथ वहाँ आया। सभी राजाओं के यथा योग्य आसन पर बैठ जाने के बाद राजा जनक ने कहा—जो देवाधिष्ठित वज्रावर्त नाम के धनुष पर बाण चढ़ाने में समर्थ होगा उसी के साथ सीता का पाणिग्रहण होगा।" राजा की घोषणा के बाद सीता सुन्दर वस्त्रालंकारों से अलंकृत हो मण्डप में आई।

राजा जनक की प्रतिज्ञा सुनकर बैठे हुए राजकुमारों में से प्रत्येक बारी बारी से धनुष के पास आकर अपना बल आजमाने लगे किन्तु धनुष पर बाण चढ़ाना तो दूर रहा, उस धनुष को हिलाने में भी समर्थ नहीं हुए। इतने में दशरथनन्दन राम आसन से उठे। धनुष के पास आकर अनायास ही उन्होंने धनुष को उठाकर उस पर बाण चढ़ा दिया। यह देखकर राजा जनक की प्रसन्नता की सीमा न रही। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। सीता ने परम हर्ष के साथ अपने भाग्य को सराहते हुए राम के गले में वरमाला डाल दी।

राजा जनक ने विधिपूर्वक सीता का विवाह राम के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्रों और पुत्रवधू को साथ लेकर सानन्द अयोध्या लौट आये और सुख पूर्वक रहने लगे।

एक समय चार ज्ञान के धारक एक मुनिराज अयोध्या में पधारे। राजा दशरथ अपने परिवार के साथ धर्मोपदेश सुनने के लिये गया। भामंडल को साथ में लेकर आकाश मार्ग से गमन करता हुआ चन्द्रगति भी उधर से निकला। मुनिराज को देखकर वह नीचे उतर आया और भक्ति पूर्वक वन्दना नमस्कार कर वहाँ बैठ गया। भामण्डल अब भी सीता की अभिलाषा से संतप्त हो रहा है, यह बात अपने ज्ञान द्वारा जानकर मुनिराज ने समयोचित देशना दी। प्रसंगवश चन्द्रगति और उसकी रानी पुष्पवती के तथा भामण्डल और सीता के पूर्वभव कह सुनाये। उसी में भामण्डल और सीता का इस भव में एक साथ जन्म लेना और तत्काल पूर्वभवके वैरी एक देव द्वारा भामण्डल का हरा जाना आदि सारा वृतान्त भी कह सुनाया। इसे सुन कर भामण्डल को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। उसने अपने पूर्वभव का सारा वृतान्त जान लिया। सीता को अपनी बहन समझकर उसने प्रणाम किया। जन्म से बिछुड़े हुये अपने भाई को प्राप्त कर सीता को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। चन्द्रगति ने दूत भेजकर राजा जनक और उसकी रानी विदेहा को भी बुलवाया और जन्म से ही जिसका अपहरण हो गया था वह यह भामण्डल तुम्हारा ही पुत्र है आदि सारा वृतान्त उन्हें कह सुनाया। यह सुनकर उन्हे बड़ा हर्ष हुआ और भामण्डल को अपना पुत्र समझकर छाती से लगा लिया। अपने वास्तविक माता पिता को पहचानकर भामण्डल को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उसने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। अपना पूर्वभव सुनकर चन्द्रगति को वैराग्य उत्पन्न हो गया। भामण्डल को राज-सिंहासन पर बिठाकर उसने दीक्षा अंगीकार कर ली। राजा दशरथ ने भी मुनिराज से पूर्वभव के विषय में पूछा। अपने पूर्वभव का वृतान्त सुनकर राजा दशरथ को भी वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य देकर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

राम के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी। रानी कैकयी की दासी मन्थरा से यह सहन नहीं हो सका। उसने कैकयी को उकसाया और संग्राम के समय राजा दशरथ द्वारा दिये गये दो वर मांगने के लिये प्रेरित किया। दासी की बातों में आकर कैकयी ने राजा से दो वर मांगे-मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी मिले और राम को चौदह वर्ष का वनवास। अपने वचन का पालन करने के लिये राजा ने उसके दोनों वरदान स्वीकार कर लिये। पिता की आज्ञा से राम वन जाने के लिये तैयार हुए। जब यह बात सीता को मालूम हुई तो वह भी राम के साथ जाने को तैयार हो गईं। रानी कौशल्या के पास आकर वन जाने की अनुमति मागने लगीं। कौशल्या ने कहा -पुत्रि! राम पिता की आज्ञा से वन जारहे हैं। वह वीर पुरुष हैं। उनके लिये कुछ कठिन नहीं है किन्तु तू बहुत कोमलांगी है। तू सदा महलों में रही है। वन में शीत ताप आदि तथा पैदल चलने के कष्ट को तू कैसे सहन कर सकेगी? सीता ने कहा-माताजी! आपका कहना ठीक है किन्तु आपका आशीर्वाद मेरी सब कठिनाइयों को दूर करेगा। जिस प्रकार रोहिनी चन्द्रमा का एवं छाया पुरुष का अनुसरण करती है उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रियों को अपने पति का अनुसरण करना चाहिये। पति के सुख में सुखी और पति के दुःख में दुःखी रहना उनका परम धर्म है। इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर सीता ने कौशल्या से वन जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

राम के वन जाने की बात सुनकर लक्ष्मण भी राम के साथ वन जाने को तैयार हो गये। इसके बाद सीता और लक्ष्मण सहित राम वन की ओर रवाना हो गये।

एक समय एक सघन वन में एक झोपड़ी बनाकर सीता, लक्ष्मण और राम ठहरे हुए थे। सीता के अद्भुत रूप लावण्य की शोभा को सुनकर कामातुर बना हुआ रावण संन्यासी का वेष बनाकर वहाँ आया। राम और लक्ष्मण के बाहर चले जाने पर वह झोपड़ी के पास आया

और भिक्षा मांगने लगा। भिक्षा देने के लिये जब सीता बाहर निकलीं तो रावण ने उन्हें उठा लिया और पुष्पक विमान में बिठाकर लंका ले गया। वहाँ जाकर सीता को अशोक वाटिका में रख दिया। अब कामी रावण सीता को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर अपने जाल में फंसाने की की चेष्टा करने लगा। रावण ने साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारों नीतियों का प्रयोग सीता पर कर लिया किन्तु उसकी एक भी युक्ति सफल नहीं हुई। सीता को अपने अस्तित्व में मेरु के समान निश्चल और दृढ़ समझकर रावण निराश हो गया। अब वह रात दिन सीता को अपने वश में करने का उपाय सोचने लगा। अपने पति की यह दशा देखकर मन्दोदरी को बहुत दुःख हुआ। वह कहने लगी–हे स्वामिन्! सीता का हरण करके आपने बहुत अनुचित काम किया। आप जैसे उत्तम पुरुषों को यह कार्य शोभा नहीं देता। सीता महासती है। वह मन से भी परपुरुषों की कामना नहीं करती। सतियों को कष्ट देना ठीक नहीं है अतः आप इस दुष्ट वासना को हृदय से निकाल दीजिए और शीघ्र ही सीता को वापस राम के पास पहुँचा दीजिये। रावण के छोटे भाई विभीषण ने भी रावण को बहुत कुछ समझाया किन्तु रावण तो कामान्ध बना हुआ था। उसने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया।

राम लक्ष्मण जब वापस लौट कर झोपड़ी में आये तो उन्होंने वहाँ सीता को न देखा, इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे इधर उधर सीता की खोज करने लगे किन्तु सीता का कहीं पता न लगा। सीता की खोज में घूमते हुए राम लक्ष्मण की सुग्रीव से भेंट होगई। सीता की खोज के लिये सुग्रीव ने भी चारों दिशाओं में अपने दूत भेजे। हनुमान द्वारा सीता की खबर पाकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बहुत बड़ी सेना लेकर लंका को गये। अपनी सेना को सज्जित कर रावण भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। दोनों तरफ की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। कई वीर योद्धा मारे गये। अन्त में वासुदेव लक्ष्मण द्वारा प्रतिवासुदेव रावण मारा गया। राम की विजय हुई। रामने लंका का

राज्य विभीषण को दिया और सीता को लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्या को लौटे। माता कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी को तथा भरत को और सभी नगर निवासियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी ने मिलकर राम का राज्याभिषेक किया। अब लक्ष्मण तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव हुए और राम बलदेव। न्याय-नीति पूर्वक प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए बलदेव राम और वासुदेव लक्ष्मण सुख पूर्वक दिन बिताने लगे।

कौशल्या के हृदय में जितना स्नेह राम के लिये था उतना ही स्नेह लक्ष्मण और भरतादि के लिये भी था। रानी कौशल्या अपने परिवार को सुखी देखकर फूली नहीं समाती थी किन्तु अपने पुत्र के जीवन को देखकर उसके मन में नई चेतना उत्पन्न हुई। उसने राम को वन में जाते देखा और लंका पर विजय प्राप्तकर वापिस लौटते हुए देखा। राम को वनवासी तपस्वी वेष में भी देखा। कौशल्या ने पति सुख को भी देखा और पुत्र वियोग के दुःख को भी सहन किया। वह राजरानी भी बनी और राजमाता भी। उसने संसार के सारे रंग देख लिये किन्तु उसे कहीं भी आत्मिक शान्ति का अनुभव नहीं हुआ। संसार के प्रति उसे वैराग्य हो गया। सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर उसने दीक्षा अंगीकार कर ली। कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन कर सद्‌गति को प्राप्त किया।

एक समय रात्रि में सीता ने एक शुभ स्वप्न देखा। उसने अपना स्वप्न राम से कहा। स्वप्न सुनकर राम ने कहा—देवि! तुम्हारी कुक्षि से किसी वीर पुत्र का जन्म होगा। अपने पति के मुख से स्वप्न का फल सुनकर सीता बडी प्रसन्न हुई। वह अपने गर्भ का यत्नपूर्वक पालन करने लगी।

सीता के सिवाय राम के प्रभावती, रतनिभा, और श्रीदामा नाम की तीन रानियाँ और थीं। सीता को सगर्भा जानकर उनके मन

में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे उस पर कोई कलंक चढ़ाना चाहती थीं अतः एक दिन कपटपूर्वक उन्होंने सीता से पूछा—सखि! तुम लंका में बहुत समय तक रही थीं और रावण को भी देखा था। हमें भी बताओ कि रावण का रूप कैसा था? सीता की प्रकृति सरल थी। उसने कहा—बहिनो! मैंने रावण का रूप नहीं देखा किन्तु कभी कभी मुझे धमकाने के लिये वह अशोक वाटिका में आया करता था इसलिये उसके पैर मैंने देखे हैं। सौतों ने कहा—अच्छा, उसके पैर ही चित्रित करके हमें दिखाओ। उन्हें देखने की हमें बहुत इच्छा हो रही है। सरल प्रकृति वाली सीता उनके कपटभाव को न जान सकी। सरलभाव से उसने रावण के दोनों पैर चित्रित कर दिये। सौतों ने उन्हें अपने पास रख लिया। अब वे अपनी इच्छा को पूरी करने का उचित अवसर देखने लगीं। एक समय राम अकेले बैठे हुए थे। तब सब सौतें मिलकर उनके पास गईं। चित्र दिखाकर वे कहने लगीं—स्वामिन्! जिस सीता को आप पतिव्रता और सती कहते हैं उसके चरित्र पर जरा गौर कीजिए। वह अब भी रावण की ही इच्छा करती है। वह नित्य प्रति इन चरणों के दर्शन करती है। सौतों की बात सुन कर राम विचार में पड़ गये किन्तु 'किसी अनबन के कारण सौतों ने यह बात बनाई होगी' यह सोचकर राम ने उनकी बातों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अपना प्रयास असफल होते देख सौतों की ईर्ष्या और भी बढ़ गयी। उन्होंने अपनी दासियों द्वारा लोगों में धीरे-धीरे यह बात फैलानी शुरू की कि सीता का चरित्र शुद्ध नहीं है। इससे लोग भी सीता को सकलंक समझने लगे।

एक रात्रि के समय राम सादा वेष पहनकर लोगों का सुख दुःख जानने के लिये नगर में निकले। घूमते हुए वे एक धोबी के घर के पास पहुँचे। धोबिन रात में देरी से आई थी। वह दरवाजा खटखटा रही थी। धोबी उसे बुरी तरह से डांट रहा था और कह रहा था कि मैं राम थोड़े ही हूँ जिन्होंने रावण के पास रही हुई सीता को

वापस अपने घर रख लिया। धोबी के इन शब्दों ने राम के हृदय को भेद डाला। उन्होंने सीता को त्यागने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल राम ने सीता को वन के दृश्य देखने के बहाने रथ में बैठाकर जंगल में भेज दिया। एक भयंकर जंगल के अन्दर ले जाकर सारथी ने उसे छोड़ दिया और वापस अयोध्या लौट आया।

उस समय पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ वन में हाथी पकड़ने के लिए आया था। अपना कार्य करके वापिस लौटते हुए उसने विलाप करती हुई सीता को देखा। सीता के मुख से अपनी दुःख की कहानी सुनकर राजा ने उसे कहा—बहन! मै श्रावक हूँ। तुम मुझे अपना भाई समझकर मेरे घर को पावन करो और धर्मध्यान करती हुई सुख-पूर्वक अपना समय बिताओ। वज्रजंघ का शुद्ध हृदय जानकर सीता ने पुण्डरीकपुर में जाना स्वीकार कर लिया। राजा वज्रजंघ सीता को पालकी में बैठाकर अपने नगर में ले आया। सीता सुखपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी।

समय पूरा होने पर सीता ने एक युगलपुत्र को जन्म दिया। राजा वज्रजंघ ने उसका जन्मोत्सव मनाया। उनमें से एक का नाम 'लव' और दूसरे का नाम 'कुश' रखा। दोनों राजकुमार आनन्दपूर्वक बढ़ने लगे। योग्य वय होने पर उन दोनों को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दी। युवावस्था में राजा वज्रजंघ ने दूसरी बत्तीस राजकन्याओं का और अपनी पुत्री शशिकला का विवाह लव के साथ कर दिया। कुश का विवाह पृथुराज की कन्या के साथ हुआ।

सतीसाध्वी सीता पर कलंक चढ़ाना, गर्भवती अवस्था में निष्कारण-उसे भयंकर जंगल में छोड़ देना आदि सारा वृत्तान्त नारदजी के मुख से सुनकर लव और कुश राम पर बड़े क्रुद्ध हुए। वज्रजघ की सेना को साथ में लेकर लव और कुश ने अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। राम लक्ष्मण ने भी अपनी सेना के साथ उनका सामना किया। दोनों ओर से घमासान युद्ध शुरू हुआ। लव, कुश के बाण प्रहार से परास्त

होकर राम की सेना अपने प्राण लेकर भागने लगी। अपनी सेना को भागते देख लक्ष्मण स्वयं सामने आये और लव, कुश पर बाण वर्षा करने लगे। लव, कुश-लक्ष्मण के बाणों को बीच ही में काट देते थे। शत्रु पर फेंके सब शस्त्रों को निष्फल जाते देख कर लक्ष्मण ने शत्रु का सिर काटकर लाने के लिये चक्र फेंका। चक्र लव, कुश के पास आकर उनकी प्रदक्षिणा देकर वापस लौट आया। अब तो राम, लक्ष्मण की निराशा का ठिकाना न रहा। वे दोनों उदास होकर बैठ गये। उसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। राम, लक्ष्मण को उदास बैठे देखकर वे कहने लगे–राजन्! आप जिनके साथ युद्ध कर रहे हैं वे दोनों वीर बालक माता सीता के पुत्र हैं। चक्र ने भी इस बात की सूचना दी है क्योंकि वह स्वगोत्री पर नहीं चलता।

नारदजी की बात सुनकर राम, लक्ष्मण के हर्ष का पारावार न रहा। वे अपने वीर पुत्रों से भेंट करने के लिये आतुरता पूर्वक उनकी तरफ चले। लव कुश के पास आकर नारद जी ने यह सारा वृत्तान्त कहा। उन्होंने अपने अस्त्र–शस्त्र नीचे डाल दिये और आगे बढ़कर सामने आते हुए राम लक्ष्मण के चरणों में सिर नमाया। उन्होंने भी प्रेमालिंगन कर आशीर्वाद दिया। अपने वीर पुत्रों को देखकर उन्हें अति हर्ष हुआ। इसके बाद राम ने लक्ष्मण को सीता को लाने की आज्ञा दी। सीता के पास जाकर लक्ष्मण ने चरणों में नमस्कार किया और अयोध्या चलने की प्रार्थना की। सीता ने कहा–वत्स! अयोध्या चलने में मुझे कोई एतराज नहीं है किन्तु जिस लोक अपवाद से डर कर राम ने मेरा त्याग किया था वह तो ज्यों का त्यों बना रहेगा इसलिये मैने यह प्रतिज्ञा की है कि अपने सतीत्व की परीक्षा देकर ही मै अयोध्या में प्रवेश करूँगी।

राम के पास आकर लक्ष्मण ने सीता की प्रतिज्ञा कह सुनाई। सती सीता को निष्कारण वन में छोड़ देने के कारण होने वाले पश्चाताप

से राम पहले से ही खिन्न हो रहे थे । सीता की कठिन प्रतिज्ञा सुन कर वे और भी अधिक खिन्न हुए । राम के पास अन्य कोई उपाय नहीं था । वे विवश थे । उन्होंने एक अग्नि का कुण्ड बनवाया । इस दृश्य को देखने के लिये अनेक सुर नर वहाँ इकट्ठे हुए और उत्सुकता पूर्ण नेत्रों से सीता की ओर देखने लगे । अग्नि अपना प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी थी । उस समय सीता अग्नि कुण्ड के पास आकर बोली—"मन वचन काया से, जागते समय या स्वप्न में यदि रामचन्द्रजी को छोड़कर किसी दूसरे पुरुष में मेरा पतिभाव हुआ हो तो हे अग्नि ! तुम इस पापी शरीर को जला डालो । सदाचार और दुराचार के लिये इस समय तुम्हीं साक्षी हो ।"

ऐसा कहकर सीता उस अग्निकुण्ड में कूद पड़ी । तत्काल अग्नि बुझकर वह कुण्ड जल से भर गया । शीलरक्षक देवों ने जल में कमल पर सिंहासन बना दिया और सती सीता उस पर बैठी हुई दिखने लगी । यह दृश्य देखकर लोगों के हर्ष का ठिकाना न रहा । सती के जयनाद से आकाश गूँज उठा । देवताओं ने सती पर पुष्प वृष्टि की ।

उस समय चार ज्ञान के धारक मुनि पधारे । उन्होंने सती सीता का पूर्व जन्म कह सुनाया । अपने पूर्व भव का वृत्तान्त सुनकर सीता को संसार से विरक्ति होगई । उसी समय राम की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा अंगीकार कर ली । कई वर्षों तक संयम का पालन करती रही। अन्तिम समय में संथारा कर मरी और बारहवें देवलोक में इन्द्र बनी वहाँ से चवकर कई भव करके मोक्ष प्राप्त करेगी ।

कुछ काल के बाद लक्ष्मण वासुदेव की मृत्यु हो गई । लक्ष्मण की मृत्यु से राम को बड़ा आघात लगा । वे लम्बे समय तक लक्ष्मण के शोक में व्याकुल रहे । अन्त में देवद्वारा प्रतिबोधित हो उन्होंने सोलह हजार राजाओं के साथ मुनिसुव्रत के समीप दीक्षा ग्रहण की । गुरु के चरणों में रहकर पूर्वाङ्ग श्रुत का अभ्यास करते हुए राम ने

नाना प्रकार के अभिग्रहों सहित साठ वरस तक तपस्या की। उसके बाद राम एकाकी विहार करने लगे। विहार करते-करते राम मुनि कोटिशिला पहुँचे वहाँ माघ शुक्ला द्वादशी के दिन शुक्ल ध्यान की परमोच्च स्थिति में केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद राम केवली पच्चीस वर्ष तक पृथ्वी पर विचरण कर भव्य जीवों को प्रतिबोध देते रहे। १५ हजार वर्ष की अवस्था में राम मोक्ष में गये।

९. कृष्णवासुदेव और बलदेव

द्वारिकानगरी में वसुदेव और देवकी के पुत्र कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। बलदेव और जराकुमार उनके ज्येष्ठ भ्राता थे। बलदेव की माता का नाम रोहिणी था। इनका शस्त्र हल था इसलिये ये हलधर कहलाते थे। इन्हें बलराम या बलभद्र भी कहते थे। कृष्ण के दरबार में जो पांच महावीर थे उनमें ये प्रमुख थे। इनकी धारिणी आदि राणियाँ थी और सुमुख, दुर्मुख, कूपदारक आदि पुत्र थे। ये कृष्ण के साथ सदैव रहा करते थे। इन दोनों का एक दूसरे के प्रति अनन्यस्नेह था।

एक बार भगवान अरिष्टनेमि का द्वारिका में आगमन हुआ। भगवान का आगमन सुनकर कृष्ण वासुदेव, बलदेव तथा अन्य यादव गण दर्शन करने गये। भगवान ने उन सब को उपदेश दिया। उपदेश सुनने के बाद विनय पूर्वक कृष्ण वासुदेव ने पूछा—'भगवन्! बारह योजन लम्बी नौ योजन चौड़ी इस सुन्दर द्वारिका नगरी का नाश किस कारण से होगा?

भगवान ने कहा—"कृष्ण! शौर्यपुर नगर के पाराशर नामक तापस की नीच कुल की स्त्री से उत्पन्न द्वैपायनऋषि द्वारा धन-धान्य से समृद्ध इस द्वारिका का नाश होगा। शंब आदि कुमार मद्य पान कर ऋषि का अपमान करेंगे, जिसके फलस्वरूप द्वैपायन अपने तेजबल से इस नगरी को भस्मकर देगा, जिससे यादववंश का नाम निशान बाकी न रहेगा।"

भगवान अरिष्टनेमि के मुख से द्वारिका के विनाश का कारण जानकर कृष्णवासुदेव के हृदय में ऐसा विचार आया "जालि, मयालि आदि यादव धन्य हैं जो अपनी सम्पत्ति और स्वजनों का मोह छोड़ कर भगवान के पास प्रव्रजित हो गये हैं किन्तु मै मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में फँसा हुआ हूँ। क्या मै भगवान के पास दीक्षा नहीं ले सकता हूँ।"

भगवान कृष्ण के मन की बात जान गये और बोले–"कृष्ण! यह असंभव है। कारण निदान के फलस्वरूप वासुदेव अपने भव में सम्पत्ति को छोड़कर दीक्षा नहीं लेते हैं, न ली और न लेंगे।"

पुनः कृष्ण ने पूछा–"भगवन्! मेरी मृत्यु कैसी होगी?

भगवान–'हे कृष्ण! जराकुमार के बाण से आहत होकर तुम्हारी मृत्यु होगी।

भगवान के मुख से अपने आगामी भव की बात सुनकर कृष्ण उदास हो गये। कृष्ण की उदासी का कारण जानकर भगवान ने कहा "कृष्ण! तुम्हें उदास होने की आवश्यकता नहीं। कारण तुम आगामी उत्सर्पिणी काल में इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के पुण्ड्रजनपद के शतद्वार नगर में 'अमम' नामके बारहवें तीर्थङ्कर बनोगे और सिद्धि प्राप्त करोगे।

भगवान के मुख से अपना भविष्य सुनकर कृष्ण वासुदेव बड़े प्रसन्न हुए और हर्षावेश में सिंहनाद करने लगे। उसके बाद वे भगवान को वन्दन कर हस्तिरत्न पर बैठे और अपने महल चले आये। महल में आने के बाद अपने सेवकों से यह घोषणा करवाई "सुरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कारण इस द्वारिका का विनाश होनेवाला है, अतः जो भगवान के पास दीक्षा लेना चाहते हैं उन्हे कृष्ण वासुदेव दीक्षा लेने की आज्ञा देते हैं। दीक्षा लेने वाले के पीछे जो कोई बाल, वृद्ध, स्त्री, रोगी होंगे उनका पालन पोषण कृष्णवासुदेव अपनी तरफ से करेंगे और दीक्षा लेने वालों का दीक्षा महोत्सव भी

बड़े समारोह के साथ कृष्ण वासुदेव अपनी ओर से ही करेंगे।" इस प्रकार की धर्म प्रभावना से श्रीकृष्ण ने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। कृष्ण वासुदेव की इस घोषणा से पद्मावती आदि कई कृष्ण की रानियों ने, यादवकुमारों ने एवं नगर निवासियों ने दीक्षा ग्रहण की और आत्मकल्याण किया।

कृष्ण वासुदेव ने नगरी को विनाश से बचाने के लिये नगरी भर में यह घोषणा करा दी कि नगर की सब मदिरा कदंबवन की गुफा में फेंक दी जाय। जरा कुमार भी अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी सुनकर बहुत दुःखी हुआ और वह भाई के स्नेहवश अपना घर छोड़ कर वनवास के लिये चला गया।

छः महीने गुफा में पड़ी पड़ी सुरा खूब पककर सुस्वादु बन गई। संयोगवश शंबकुमार का शिकारी घूमता फिरता वहाँ आया और उस सुन्दर स्वच्छ सुरा का पान कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। उसने जाकर शंबकुमार को खबर दी। शंबकुमार अन्य कुमारों को साथ में लेकर वहाँ पहुँचा और सब ने जी भरकर सुरा का पान किया। सुरा-पान कर सब कुमार मत्त होकर नाचने गाने लगे और परस्पर आलिंगन करते हुए खेलते कूदते एक पर्वत पर पहुँचे। संयोगवश वहाँ द्वैपायन ऋषि अपनी तपश्चर्या में बैठे हुए थे। द्वैपायन को देखकर यादव कुमार बड़े क्रुद्ध हुए और उन्माद में बकने लगे-"अरे यह तो वही द्वैपायन है जो हमारी स्वर्गतुल्य नगरी का विनाश करने वाला है" क्यों न इसका ही नाश कर दिया जाय। 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बांसुरी'। वे ऋषि के पास आये और उन्हें लात और घूँसों से मार मारने लगे। ऋषि बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। ऋषि को मरा जानकर कुमार उसे वहीं छोड़कर द्वारका लौट आये।

यादवकुमारों के चले जाने पर द्वैपायन की मूर्छा दूर हुई। कुछ स्वस्थ होने के बाद द्वैपायन को कुमारों के इस दुष्कृत्य पर अत्यन्त

क्रोध आया। उसने अनशन कर यह निदान किया कि 'मेरी तपश्चर्या का कुछ फल है तो मै इस नगरी को जलाकर नष्ट कर दूँ।'

कृष्ण को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने कुमारों के इस दुर्व्यवहार की बड़ी निंदा की। वे वलदेव को साथ में लेकर द्वैपायन के पास आये और कुमारों के दुर्व्यवहार की क्षमा मांगने लगे। द्वैपायन क्रोध से अन्धा होकर काँप रहा था। कृष्ण और वलदेव ने ऋषि को वहुत समझाया परन्तु उस पर कोई असर नहीं हुआ। उसने कहा—"मै द्वारिका को भस्म करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। फिर भी तुम्हारी नम्रता से मै प्रसन्न हूँ। तुम्हें, वलदेव एवं अन्य जो भगवान के पास दीक्षा लेंगे उन्हें भस्म नहीं करूँगा।" इतना कहकर ऋषि ने अपना प्राण छोड़ दिया। द्वैपायन मरकर अग्निकुमार देव बना। दोनों भाइयों को ऋषि के वचन सुनकर अत्यन्त खेद हुआ। घर लौटकर कृष्ण द्वारिका को बचाने का उपाय सोचने लगे। उस समय भगवान अरिष्टनेमि का आगमन हुआ। कृष्ण वासुदेव आदि भगवान के पास पहुँचे। उन्होंने द्वारिका को द्वैपायन के क्रोध से वचाने का उपाय पूछा—"भगवन्! द्वारिका नगरी को मैं कबतक अच्छी हालत में देख सकूँगा?" भगवान ने कहा—"बारह वर्ष तक द्वारिका नगरी को सुरक्षित रूप से तुम देख सकोगे। साथ ही जब तक आयंबिल आदि धर्मध्यान नगरी में होता रहेगा तब तक द्वारिका को द्वैपायन जला नहीं सकेगा।"

भगवान के मुख से यह सुनकर कृष्ण आये और पुनः यह घोषणा करवाई—'द्वैपायन ऋषि द्वारिका को भस्म करने की प्रतिज्ञा कर चुका है अतएव भगवान की वाणी के अनुसार नगर-जन जप-तप पूर्वक समय बितायें और जिनको दीक्षा लेनी है वे दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण करें। यह घोषणा सुन कृष्ण के सारथी सिद्धार्थ ने, शम्ब प्रद्युम्न आदि कुमारों ने वहुत से लोगों के साथ दीक्षा ग्रहण की। भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया।

इधर द्वैपायन अग्निकुमार ने देखा कि नगरी के लोग आयंबिल तप, जप आदि में लीन हैं तो वह चुप हो गया, परन्तु वह अवसर देखता रहा। कुछ समय बाद द्वारिकावासियों ने समझा कि द्वैपायन देव निस्तेज हो गया है, अतएव लोग निर्भय होकर फिर आमोद-प्रमोद में समय बिताने लगे। द्वैपायन देव ने मौका पाकर बहुत से तृण, काष्ठ, वृक्ष, लता आदि का ढेर करके उनमें आग लगा दी। क्षण-भर में वह आग समस्त नगरी में फैल गई। बड़े-बड़े भवन टूट-टूट कर गिरने लगे, हाथी, घोड़े, बैल, गाय आदि पशु चिल्ला-चिल्लाकर इधर उधर भागने लगे तथा समस्त नगरी में दारुण हाहाकार मच गया। कृष्ण और बलदेव ने नगरी की जब यह दशा देखी तो वे अपनी माता रोहिणी, देवकी तथा पिता वसुदेव को रथ में बैठाकर जल्दी जल्दी भागने लगे परन्तु जब वे द्वार से बाहर निकलने लगे तो एकाएक रथ पर द्वार गिर गया। रोहिणी, देवकी एवं वसुदेव की वहीं मृत्यु हो गई। कृष्ण और बलदेव बाल बाल बच गये।

द्वैपायन की लगाई हुई आग छः महीने तक जलती रही, जिसमें कृष्ण की अनेक रानियाँ तथा सगे-सम्बन्धी जलकर भस्म हो गये। जो कोई आग से बचके निकलता द्वैपायन उसे पकड़ पकड़ कर आग में झोंक देता था। कृष्ण और बलदेव से यह दारुण दृश्य देखा नहीं गया। वे पाण्डवों द्वारा बसाई गई नगरी पण्डुमथुरा की ओर चल पड़े। दोनों भाई सौराष्ट्र पार कर हस्तिकल्प पहुँचे। उस समय धृत-राष्ट्र का पुत्र अच्छन्दक वहाँ राज्य करता था। कौरव पाण्डवों के युद्ध में कृष्ण ने पाण्डवों का जो साथ दिया था उसका रोष अभी भी अच्छन्दक के दिमाग में था। उसने कृष्ण और बलदेव को अकेला देखकर अपने वैर का बदला लेने के लिये भोजन लेने के लिये आते हुए बलदेव पर एक उन्मत्त हाथी छोड़ दिया। जब कृष्ण को इस बात का पता लगा तो उसने अच्छन्दक की खूब मरम्मत की। वे दोनों वहाँ से चलकर कोसुम्ब नामक अरण्य में गये। वहाँ पहुँचकर

कृष्ण को बहुत जोर की प्यास लगी और बलदेव पानी की खोज में चले। कृष्ण पीत वस्त्र ओढ़कर एक वृक्ष की शीतल छाया में पैर पर पैर चढ़ाकर सो गये। इतने में वहाँ जराकुमार जो वारह वर्ष भाई की रक्षा के लिये वन वन की खाक छान रहा था धनुष वाण लेकर आया। कृष्ण को सोते देख जराकुमार ने समझा कि कोई हिरण वैठा है। कृष्ण के पद्मकमल चिन्ह को हिरण की आँख मान कर उसने फौरन ताक कर उसके पैर में एक तीर मारा। कृष्ण एक-दम सोते सोते चिल्लाकर बोले—अरे! यह किसने मुझ निरापराधी पर वाण चलाया है? जराकुमार को अब मालूम हुआ कि यह हिरण नहीं बल्कि कोई पुरुष है। जराकुमार ने अपना परिचय देते हुए कहा कि अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी सुनकर अपने बन्धुजनों को छोड़-कर मैं घर से निकल गया और तभी से मै वन वन की धूल छानता फिरता हूँ। कृष्ण को जब मालूम कि वह उसका भाई जराकुमार है तो उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा-'मै वही अभागा तुम्हारा भाई हूँ जिसके खातिर तुम वन वन भटकते फिरते हो। जराकुमार ने कृष्ण को गले लगा लिया और जोर जोर से रुदन करने लगा। कृष्ण ने जराकुमार से कहा-"जराकुमार! तुम इस समय यहाँ से भाग जाओ कारण कि यदि वलराम देखेंगे तो तुम्हें जीता नहीं छोड़ेंगे। तुम मेरी कमर से रत्नों की पेटी खोल लो और जाकर कुन्ती बुआ को देकर कहना कि कृष्ण ससार से चला गया है।" भाई का आदेश शिरोधार्य कर जराकुमार रोते हुए वहाँ से चला गया।

कृष्ण कुछ समय तक स्थिर रहे बाद में उनके मन में जराकुमार के प्रति अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ। उन्हे वाण की चोट से मरणान्त वेदना हो रही थी। अन्त में उन्होंने जोर से पृथ्वी पर पादप्रहार किया और अपने प्राण छोड़ दिये।

कुछ समय के वाद बलदेव एक कमल के पत्ते का दोना वना-कर उसमें पानी ले आये। कृष्ण को लेटा देख उन्होंने समझा कि

कृष्ण सोये हुए हैं परन्तु जब काफी समय हो गया तो उन्होंने कपड़ा उठाकर देखा। मालूम हुआ कि कृष्ण तो अब इस संसार में नहीं हैं। बलदेव एकदम मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उन्होंने अपने भाई के वियोग में बहुत विलाप किया। छः महीने तक उनके मृत शरीर को कन्धे पर रखकर घूमते रहे। अन्त में मित्रदेव सिद्धार्थ के समझाने पर उन्होंने कृष्ण की मृत देह का अग्नि-संस्कार किया। भगवान अरिष्टनेमि ने एक विद्याधर श्रमण को बलदेव के पास भेजा। बलदेव ने उनके पास दीक्षा ग्रहण की। वे तुंगिया पर्वत पर जाकर तप करने लगे।

बलदेव अत्यन्त सुन्दर थे। जब वे नगर में आहार के लिये निकलते तो स्त्रियाँ उनकी ओर मुग्ध भाव से देखने लगती थीं। एक बार वे मास खमन के पारणे के लिये नगर में जा रहे थे। एक स्त्री कूएं पर पानी भर रही थी। उसकी दृष्टि मुनि बलदेव पर पड़ी। वह उनपर इतनी मुग्ध होगई कि उसने घड़े के गले में रस्सी बाधने के बदले अपने बच्चे के गले में रस्सी का फंदा डालकर उसे कुँए में छोड़ दिया। बलदेव मुनि ने तुरत उस स्त्री को सावधान कर दिया और मनमें विचार करने लगे—"मेरा शरीर भी अनर्थ का कारण है इसलिये अब मैं आहार के लिये नगर में नहीं जाऊँगा"। अब वे वन में ही रहने लगे और वहीं आने जाने वाले पथिकों से प्रासुक आहार ग्रहण कर अपना निर्वाह करने लगे।

एक बार बलभद्र मुनि एक रथकार (बढ़ई) से आहार ले रहे थे। एक हिरण भी रथाकार के उत्कृष्ट भावों को देखकर उसे मन ही मन धन्यवाद दे रहा था। उस समय सहसा पवन चला और एक वृक्ष की शाखा गिर पड़ी। इस शाखा के नीचे बलदेव मुनि की तथा हिरण की दबकर मृत्यु होगई। बलदेव मुनि मरकर ब्रह्म देवलोक के पद्मोत्तर विमान में देव बने। रथकार की भी शाखा के नीचे दब जाने से मृत्यु होगई। रथकार और हिरण भी ब्रह्मदेव लोक के पद्मोत्तर विमान में उत्पन्न हुए। बलभद्र ने सौ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया।

वासुदेव–बलदेव एक दृष्टि में

भारतवर्ष के इस अवसर्पिणी काल के बलदेव, वासुदेव और प्रति वासुदेवों का परिचय इस प्रकार है ।

	१ बलदेव के पूर्वभव	२ वासुदेव के पूर्वभव	पूर्वभव के धर्माचार्य
१	विश्वनंदी	विश्वभूति	संभूत
२	सुबन्धु	पर्वतक	सुभद्र
३	सागरदत्त	धनदत्त	सुदर्शन
४	अशोक	समुद्रदत्त	श्रेयास
५	ललित	ऋषिपाल	कृष्ण
६	वाराह	प्रियमित्र	गंगदत्त
७	धर्मसेन	ललितमित्र	आशाकर
८	अपराजित	पुनर्वसु	समुद्र
९	राजललित	गंगदत्त	द्रुमसेन

	४ पूर्वभव को निदान भूमि	५ निदान के कारण	६ बलदेव	७ वासुदेव
१	मथुरा	गाय	अचल	त्रिपृष्ठ
२	कनकवस्तु	द्यूत	विजय	द्विपृष्ठ
३	श्रावस्ती	संग्राम	भद्र	स्वयंभू
४	पोतन	स्त्री	सुप्रभ	पुरुषोत्तम
५	राजगृह	रंग में पराजय	सुदर्शन	पुरुषसिंह
६	काकंदी	भ्रातृराग	आनन्द	पुरुषपुंडरीक
७	कौशांबी	गोष्ठी	नन्दन	दत्त
८	मिथिला	परऋद्धि	पद्म	नारायण (लक्ष्मण
९	हस्तिनापुर	माता	राम	कृष्ण

	८ बलदेव वासुदेव के पिता	९ बलदेव की माता	१० वासुदेव की माता	११ प्रतिवासुदेव
१	प्रजापति	भद्रा	मृगावती	अश्वग्रीव
२	ब्रह्म	सुभद्रा	उमा	तारक

८ बलदेव वासुदेव के पिता	९ बलदेव की माता	१० वासुदेव की माता	११ प्रति वासुदेव
३ सोम	सुप्रभा	पृथ्वी	मेरक
४ रुद्र	सुदर्शना	सीता	मधुकैटभ
५ शिव	विजया	अमृत	निशुंभ
६ महाशिव	वैजयंती	लक्ष्मीमती	बलि
७ अग्निशिख	जयंती	शेषमती	प्रह्लाद
८ दशरथ	अपराजिता	सुमित्रा	रावण
९ वसुदेव	रोहिणी	देवकी	जरासंध

नौ नारदः—

प्रत्येक उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी में नौ नारद होते हैं। वे पहले मिथ्यात्वी तथा बाद में सम्यक्त्वी हो जाते हैं। सभी मोक्ष या स्वर्ग में जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार है—१ भीम २ महाभीम ३ रुद्र ४ महारुद्र ५ काल ६ महाकाल ७ चतुर्मुख ८ नवमुख ९ उन्मुख।

ग्यारह—गणधर

१. गौतमस्वामी

मगध देश में गोवर नामक गांव था। वहाँ वसुभूति नाम का गौतम गोत्रीय ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम पृथ्वी था। पृथ्वीदेवी ने वि. सं. पूर्व ५५१ में एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया। इस का जन्मनक्षत्र ज्येष्ठा और जन्मराशि वृश्चिक थी। माता-पिताने बालक का नाम इन्द्रभूति रखा। इन्द्रभूति बुद्धि में चतुर, स्वभाव में मधुर और रूप में सुन्दर था। माता का वात्सल्य और पिता का स्नेह उन्हे खूब मिला था। अपनी अलौकिक प्रतिभा और बुद्धि की विशेषता के कारण उन्होंने अल्पकाल में ही चौदह विद्याएँ सीखली थीं। अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के कारण सारे मगध में सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था। उन्हें अपनी विद्वत्ता का अभिमान था। उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से छात्र पढ़ने के लिये उनके

पास आते थे। उनके समीप पाचसौ बुद्धिमान् छात्र पढ़ते थे। वे विद्यार्थियों को पढ़ाने के साथ-साथ यज्ञ होम आदि ब्राह्मण क्रिया-काण्डों को भी करवाते थे।

उनके लघु भ्राता अग्निभूति और वायुभूति भी समर्थ विद्वान् थे। उनकी भी पाठशालाएँ चलती थीं, जिन में ५००-५०० छात्र अध्ययन करते थे।

उन दिनों मध्यमा पावापुरी में सोमिल नाम का एक धनाढ्य ब्राह्मण निवास करता था। उसने एक विशाल महायज्ञ का आयोजन किया। महायज्ञ में सम्मलित होने के लिये उसने देश देशान्तरों से बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मणों को आमंत्रित किया था।

सोमिल का आमंत्रण पाकर हजारों ब्राह्मगगण उस महायज्ञ में सम्मलित हुए। जिन में इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा मंडिक, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मैतार्य और प्रभास ये मुख्य थे। उन ग्यारह ब्राह्मण पंडितों का शिष्य परिवार विशाल था। उन ब्राह्मणों की विद्वत्ता की सर्वत्र प्रशंसा हो रही थी।

उस समय केवलज्ञान प्राप्त भगवान महावीर ने देखा कि मध्यमा नगरी का यह प्रसंग अपूर्व लाभ का कारण होगा। यज्ञ में आये हुए विद्वान् ब्राह्मग प्रतिबोध पायेंगे और धर्मतीर्थ के आधार-स्तंभ बनेंगे। यह सोच कर भगवान ने जंभिय गाँव की ऋजुवालिका नदी के तट से विहार कर दिया और बारह योजन (४८ कोस) चल कर मध्यम पावापुरी पहुँचे। वहाँ ग्राम के बाहर महासेन नामक उद्यान में ठहरे।

उस समय भगवान महावीर के द्वितीय समवशरण की रचना देवों ने महासेन उद्यान में की। वैशाख शुक्ला एकादशी को प्रात काल से ही महासेन उद्यान की तरफ नागरिकों के समूह उमड़ पड़े थे। अपने अपने वैभवानुसार सज-धज कर समवशरण में जाने के लिये मानों वे एक दूसरे से होड़ लगा रहे थे। थोड़े ही समय में देव दानवों और मनुष्य तिर्यञ्चों के समूहों से सारा वन भर गया। देवगण भी यज्ञमण्डप को लांघ लांघ कर भगवान के समवशरण में जाने लगे।

उस महती सभा में भगवान महावीर ने सर्वभाषानुगामिनी अर्ध-मागधी भाषा में एक प्रहर तक धर्मोपदेश दिया जिसमें लोक, अलोक, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष का अस्तित्व सिद्ध किया। नरक क्या है, नरक में दुःख क्या है, जीव नरक में क्यों जाते हैं, तिर्यञ्च गति में जीवों को किस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक कष्ट सहन करने पड़ते हैं, इसका वर्णन किया। देव-गति में पुण्य फलों को भोगकर अविरत जीव किस प्रकार फिर संसार की नाना गतियों में भ्रमण करते हैं, इस का भी आपने दिग्दर्शन कराया। अन्त में भगवान ने मनुष्यगति को अधिक महत्त्वपूर्ण और दुर्लभ बताते हुए उसे सफल बनाने के लिये पांच महाव्रत, पांच अनुव्रत, सात शिक्षाव्रत और सम्यक्त्व का उपदेश दिया। भगवान के इस उपदेश की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

उस समय देवगणों को आकाश से नीचे उतरते देख इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों के मन में विचार हुआ कि उनके यज्ञ के प्रभाव से देवगण वहाँ आये हैं। पर देवताओं को यज्ञ मण्डप छोड़कर–जिधर भगवान महावीर स्वामी थे–उधर जाते देखकर ब्राह्मणों को बड़ा दुःख हुआ।

इधर सारे नगर में भगवान महावीर के ज्ञान और लोकोत्तर उप-देश की खूब प्रशंसा होने लगी। मध्यमा पावापुरी के चौक और बाजारों में उन्हीं की चर्चा होने लगी। इस चर्चा को भी सोमिल के अतिथि विद्वान् ब्राह्मणों ने सुना। देवताओं के आगमन और लोगों के मुख से महावीर की प्रशंसा सुनकर वे चौकन्ने हो गये।

इन्द्रभूति ने देवताओं के झुण्ड और मानवों के समूह को अन्यत्र जाते हुए देख अपने छात्रों से पूछा–ये देवगण और मानव-समूह किधर जा रहा है? छात्रों ने कहा-"यहाँ महावीर नाम के सर्वज्ञ पुरुष आये हुए हैं। उनकी वाणी को सुनने के लिये ही ये सभी जा रहे हैं।" इन्द्रभूति को अपने रहते हुए किसी की यह महिमा सह्य नहीं

थी। वह सोचने लगा—"मेरे सर्वज्ञ होते हुए यह दूसरा कौन सर्वज्ञ यहाँ आ उपस्थित हुआ है। मूर्ख मनुष्य को तो ठगा जा सकता है। पर इसने तो देवताओं को भी ठग लिया। तभी तो ये देवगण मुझ जैसे सर्वज्ञ का त्याग करके उस नये सर्वज्ञ के पास जा रहे हैं परन्तु कुछ भी हो मुझे इस नये सर्वज्ञ की पोल खोलनी ही पड़ेगी।"

अब वह महासेन उद्यान की तरफ से आनेवालों से बार बार पूछता—"क्यों कैसा है वह सर्वज्ञ!" उत्तर मिलता—"कुछ न पूछिये ज्ञान और वाणी माधुर्य में उनका कोई समकक्ष नहीं है।" इस जन प्रवाद ने इन्द्रभूति को और भी उत्तेजित कर दिया। उन्होंने इस नूतन सर्वज्ञ से भिड़कर अपनी ताकत का परिचय देने का निश्चय किया और अपने ५०० छात्र संघ के साथ महासेन उद्यान की ओर चल दिये। अनेक विचार-विमर्श के अन्त में इन्द्रभूति भगवान महावीर की धर्मसभा के द्वार तक पहुँचे और वहीं स्तब्ध से होकर खड़े रह गये।

इन्द्रभूति ने अपने जीवनकाल में बहुत पण्डित देखे थे, बहुतों से टक्कर ली थी। बहुतों को वादसभा में निरुत्तर करके नीचा दिखाया था और यहाँ भी वे इसी विचार से आये थे, पर जब उन्होंने महावीर के समवशरण के द्वार पर पैर रखा तो महावीर के योगैश्वर्य और भामंडल को देखकर वे चौंधिया गये, उनकी विजय-कामना शान्त हो गई। वे अपनी अविचारित प्रवृत्ति पर अफसोस करने लगे। फिर सोचा—यदि ये मेरी शंकाओं को बिना पूछे ही निर्मूल कर दे तो इन्हे सर्वज्ञ मान सकता हूँ।

इन्द्रभूति इस उधेड़बुन में हो थे कि भगवान महावीर उन्हें सम्बोधित करते हुए बोले—हे गौतम, क्या तुम्हें पुरुष-आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में शंका है?"

इन्द्रभूति—"हाँ भगवन्! मुझे इस विषय में शंका है क्योंकि "विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति।" इत्यादि वेद वाक्य भी इसी बात का समर्थन करते हैं

कि भूत समुदाय से चेतन पदार्थ उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है, पर लोक की कोई संज्ञा नहीं। भूत समुदाय से ही विज्ञानमय आत्मा की उत्पत्ति का अर्थ तो यही है कि भूत समुदाय के अतिरिक्त पुरुष का अस्तित्व ही नहीं।"

भगवान महावीर--"और यह भी तो तुम जानते हो कि वेद से पुरुष का अस्तित्व भी सिद्ध होता है?"

इन्द्रभूति—"जी हाँ 'स वै अयमात्मा ज्ञानमयः' इत्यादि श्रुति-वाक्य आत्मा का अस्तित्व भी बता रहे हैं। इनसे शंका होना स्वाभाविक ही है कि 'विज्ञानघन' इत्यादि श्रुतिवाक्य को प्रमाण मान कर भूतशक्ति को ही आत्मा माना जाए अथवा आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व माना जाए।

भगवान महावीर-"हे इन्द्रभूति! 'विज्ञानघन' इत्यादि पदों का जैसा तुम अर्थ समझ रहे हो वास्तव में वैसा नहीं है। अगर इस श्रुति वाक्य का वास्तविक अर्थ समझ लिया होता तो तुम्हें कोई शंका ही नहीं होती।

इन्द्रभूति-"भगवन्! क्या इसका वास्तविक अर्थ कुछ और है!"

भगवान् महावीर- हाँ! 'विज्ञानघन' इस श्रुति का वास्तविक अर्थ तुम 'पृथिव्यादि भूत समुदाय से उत्पन्न 'चेतनापिण्ड' ऐसा करते हो पर वस्तुतः 'विज्ञानघन' का तात्पर्य विविधज्ञान पर्यायों से है। आत्मा में प्रतिक्षण नवीन ज्ञानपर्यायों का अविर्भाव तथा पूर्वकालीन ज्ञान पर्यायों का तिरोभाव होता रहता है। जब एक पुरुष घट को देखता है और उसका चिन्तन करता है तो उस समय उसकी आत्मा में घट विषयक ज्ञानोपयोग उत्पन्न होता है जिसे हम घट विषयक ज्ञान पर्याय कहते हैं। जब वही पुरुष घट के पश्चात् पटादि अन्य पदार्थों को देखेगा तब उसे पटादि का ज्ञान होगा और पूर्वकालीन घट ज्ञान तिरोहित (व्यवहित) हो जायगा। अन्यान्य पदार्थ विषयक ज्ञान के

पर्याय ही विज्ञानघन (विविध पर्यायों के पिण्ड) है जो भूतों से उत्पन्न होता है। यहाँ 'भूत' शब्द का अर्थ पृथिव्यादि पांच भूत नहीं है। यहाँ इसका अर्थ है 'प्रमेय' अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तथा आकाश हो नहीं परन्तु जड चेतन समस्त ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थ।

"सब ज्ञेय पदार्थ आत्मा मे अपने स्वरूप में भासमान होते हैं घट घट रूप में भासता है पट पट रूप में। ये भिन्न भिन्न प्रतिभास ही ज्ञान पर्याय हैं। ज्ञान और ज्ञानी में कथंचित् अभेद होने के कारण भूतों से अर्थात् भिन्न भिन्न ज्ञेयों से विज्ञानघन अर्थात् ज्ञान पर्यायों का उत्पन्न होना और उत्तर काल में उन पर्यायो का तिरोहित (व्यवहित) होना कहा है।"

"न प्रेत्य संज्ञास्ति" का अर्थ 'परलोक की संज्ञा नहीं' ऐसा नहीं है। वास्तव मे इसका अर्थ 'पूर्व पर्याय का उपयोग नहीं' ऐसा है। जब पुरुषों में नये नये ज्ञान पर्याय उत्पन्न होते हैं तब उसके पूर्व कालीन उपयोग व्यवहित हो जाने से उस समय स्मृति पट पर स्फुरित नहीं होते इसी अर्थ को लक्ष्य करके 'न प्रेत्य सज्ञास्ति' यह वचन कहा गया है।

भगवान महावीर के मुख से वेद वाक्य का समन्वय सुनते ही इन्द्रभूति के मन का अन्धकार विच्छिन्न हो गया। वे दोनों हाथ जोड़ कर बोले-"भगवन्! आपका कथन यथार्थ है। प्रभो! मै आपका प्रवचन सुनना चाहता हूँ।"

गौतम की प्रार्थना पर भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर वे संसार से विरक्त होकर निर्ग्रन्थ धर्म में प्रव्रजित हुए। उस समय वे पचास वर्ष के थे। गौतम के ५०० छात्र भी जो उनके साथ ही आये थे, महावीर के पास प्रव्रजित हुए और वे सभी इन्द्रभूति के शिष्य रहे।

इन्द्रभूति भगवान महावीर के प्रथम शिष्य और प्रथम गणधर थे। उन्होंने विविध वषय के हिजारों प्रश्न भगवान से किये थे जो आज

आगमों में विद्यमान हैं। आपका भगवान महावीर के प्रति बड़ा स्नेह भाव था । भगवान महावीर से एक क्षण भी अलग रहना उन्हें पसन्द न था ।

भगवान महावीर और गौतम की आत्माओं का मिलन इस जन्म से ही नहीं अनेक पूर्वजन्मों से चला आ रहा था। यही कारण था कि गौतम का महावीर के प्रति अनन्य अनुराग था । इसी अनुराग के कारण गौतम भगवान महावीर के रहते केवलज्ञान से वंचित रहे ।

महावीर के संघ में हजारों राजकुमार, सेठ, सेनापति, परिव्राजक, तथा अन्य महर्द्धिक लोग दीक्षित होते थे । गौतम उनके पूर्वजन्म पूछते और ये कब और कैसे निर्वाण को प्राप्त करेंगे, यह भी पूछते महावीर उन सब का समाधान करते थे । ऐसे हजारों प्रसंग आगमों में विद्यमान हैं। उन्होंने पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रुत स्थविर केशी के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें महावीर के संघ में सम्मलित कर लिया था । पार्श्व के चातुर्याम धर्म को महावीर के पंच महाव्रत धर्म के साथ समानता बताकर समन्वय बुद्धि का परिचय दिया था । खंदक के परिव्राजक होते हुए भी गौतम ने उनका आगे जाकर स्वागत किया था। तोसली तापस के साथ की चर्चा, कर्म विपाक के फल को प्रत्यक्ष देखने के लिये मृगापुत्र की मां के पास जाना, आनन्द श्रावक से चर्चा कर पुनः उससे क्षमा याचना करना आदि अनेकों प्रसंग गौतम स्वामी के विषय में आगमों में वर्णित हैं जो गौतमस्वामी की महानता का परिचय देते हैं ।

गौतम की प्रतिबोध देने की शक्ति भी विलक्षण थी । पृष्ठचम्पा के गांगील नरेश को प्रतिबोध देने के लिये भगवान महावीर ने उन्हें भेजा था। अष्टापद पर्वत से उतरते हुए उन्होंने पन्द्रहसौ तीन तापसों को सहज ही में श्रमण धर्म में दीक्षित किया था ।

भगवान महावीर का निर्वाण और गौतम का केवलज्ञान

गौतमस्वामी आदि विशाल शिष्य समूह के साथ भगवान महावीर राजगृह से विहार कर अपापापुरी पहुँचे। यहाँ देवताओं ने तीन वप्रों से विभूषित रमणीक समवशरण की रचना की। अपने आयुष्य का अन्त जानकर प्रभु अपना अन्तिम धर्मोपदेश देने बैठे।

उस दिन भगवान ने सोचा—"आज मैं मुक्त होने वाला हूँ। गौतम का मुझ पर बहुत अधिक स्नेह है। उस स्नेह ही के कारण गौतम अब तक केवलज्ञान से वंचित रहा है। इसलिए कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि उनका स्नेह नष्ट हो जाये। मेरे निर्वाण के प्रत्यक्ष दृश्य को देखकर उसकी आत्मा को जबरदस्त धक्का लगेगा। यह सोच भगवान ने गौतमस्वामी से कहा—गौतम! पास के गाँव में देवशर्मा नामक ब्राह्मण है। वह तुम्हारे उपदेश से प्रतिबोध पायेगा। इसलिये तुम उसे उपदेश देने जाओ।" भगवान महावीर की आज्ञा को शिराधार्य कर गौतम देवशर्मा को उपदेश देने चले गये। गौतमस्वामी के उपदेश से देवशर्मा ने प्रतिबोध प्राप्त किया।

इधर भगवान महावीर ने कार्तिक अमावस्या की मध्यरात्रि में निर्वाण प्राप्त किया।

गौतमस्वामी 'देवशर्मा ब्राह्मण' को प्रतिबोध कराके लौट रहे थे तो देवताओं की वार्ता से उन्होंने प्रभु के निर्वाण की खबर जानी। खबर सुनते ही वे मूर्छित होगये। मूर्च्छा के दूर होने पर वे चित्त में सोचने लगे—"प्रभु! निर्वाण के दिन आपने मुझे किस कारण दूर भेज दिया? हे जगत्पति! इतने काल तक मै आपकी सेवा करता रहा, पर अन्तिम समय में आपका दर्शन नहीं कर सका। उस समय जो लोग आपकी सेवा में उपस्थित थे, वे धन्य थे। हे गौतम! तू पूरी तरह वज्र से भी कठोर है? जो प्रभु के निर्वाण को सुनकर भी तेरा हृदय खण्ड-खण्ड नहीं हो जा रहा है। हे प्रभु! अबतक मै भ्रान्ति में

था, जो आप जैसे निरागी और निर्मम में राग और ममता रखता था। यह राग द्वेष आदि संसार के हेतु हैं उनका त्याग कराने के लिये ही भगवान ने हमारा त्याग किया है।"

इस प्रकार शुभ विचार करते हुए गौतमस्वामी को क्षपकश्रेणी प्राप्त हुई। जिससे तत्काल घातीकर्म के क्षय होने से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होगया।

भगवान महावीर के संघ का समग्र शासनभार गौतम के हाथों में था परन्तु केवलज्ञान होते ही उन्होंने संघ शासन पांचवे गणधर सुधर्मा को सौंप दिया। गौतमस्वामी केवली अवस्था में १२ वर्ष तक भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट एवं स्वयं द्वारा साक्षात् अनुभूत सत्य-धर्म का प्रचार करते रहे।

अन्त में वीर संवत् १२ में गौतमस्वामी राजगृह आये और वहाँ एक मास का अनशन कर के उन्होंने अक्षय सुखवाला मोक्षपद प्राप्त किया।

गौतमस्वामी ने ५० वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की। ३० वर्ष तक छद्मस्थ रहे और बारह वर्ष केवली अवस्था में। कुल आयु ९२ वर्ष की थी।

२. अग्निभूति

गणधर अग्निभूति इन्द्रभूति गणधर के मंझले भाई थे। ये गोबर-गांव के रहनेवाले थे। इनके पिता वसुदेव और माता पृथ्वी थी। अग्निभूति भी पांचसौ छात्रों के विद्वान् अध्यापक थे। ये भी अपने बड़े भ्राता इन्द्रभूति के साथ सोमिल ब्राह्मण के यज्ञोत्सव पर छात्र-गण के साथ मध्यमापावा आये थे।

इन्द्रभूति की प्रव्रज्या की बात पवनवेग से मध्यमापावा में पहुँची। नगर भर में यही चर्चा होने लगी। कोई कहता 'इन्द्रभूति' जैसे जिनके आगे शिष्य होगये उन महावीर का क्या कहना है।

सचमुच वे ज्ञान के अथाह समुद्र और धर्म के अवतार हैं। दूसरा कहता-अजी, वह पक्का इन्द्रजाली है उसने ऐसी करामात की है जिससे वह मोहित होकर अपने छात्रों के साथ साधु बन गया है।

उनका छोटा भाई अग्निभूति उनकी विद्वत्ता का इतना कायल था कि वह यह तो मानने को तैयार हो सकता था कि सूर्य का उदय पश्चिम में हो परन्तु यह नहीं कि इन्द्रभूति किसी से हार जाये और उसका शिष्य हो जाये। वह कुछ क्रोध कुछ आश्चर्य और कुछ अभिमान के भावों के साथ अपने छात्र-मण्डल सहित महासेन उद्यान की ओर चल पड़े। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि किसी भी तरह वे महावीर को परास्त करके बड़े भाई इन्द्रभूति को वापस ले आएंगे।

अग्निभूति जब नगर से निकले तो उसके शरीर में बड़ी तेजी थी पर ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ने लगे त्यों त्यों उसका शरीर भारी होने लगा। जब वे समवशरण के सोपानमार्ग तक पहुँचे तो उनके पैरों ने जवाब दे दिया। उनके मन का जोश बिलकुल ठंडा पड़ गया। वे सोचने लगा-"क्या सचमुच ये सर्वज्ञ ही हैं, क्या इसी कारण इन्द्रभूति ने अपनी हार मान ली है? यदि यही बात है तो मैं यहीं से एक प्रश्न पूछूंगा। यदि मुझे सही उत्तर मिल जायगा तो मैं भी उन्हें सर्वज्ञ मान लूँगा। अग्निभूति द्वार पर ही खडे थे कि महावीर ने उन्हें सम्बोधित किया-"प्रिय अग्निभूति! क्या तुम्हे कर्म के अस्तित्व के विषय में शंका है!"

अग्निभूति-"हाँ भगवन्! कर्म के अस्तित्व को मैं शंका की दृष्टि से देखता हूं। क्योंकि-"पुरुष एवेदं अग्नि सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदन्तिके। यदन्तरस्य सर्वस्य यद् सर्वस्यास्य बाह्यतः॥"

"अर्थात्-यह सारा संसार पुरुष अर्थात् आत्म रूप ही है। भूत और भविष्यत् दोनों आत्मा अर्थात् ब्रह्म ही हैं। मोक्ष का भी वही

स्वामी है जो अन्न से बढ़ता है, जो चलता है अथवा नहीं चलता। जो दूर है और समीप है। जो इस ब्रह्माण्ड के भीतर है या बाहर है वह सब ब्रह्म ही है। इन श्रुति वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि जो ब्रह्माण्ड के भीतर दृश्य अदृश्य बाह्य अभ्यन्तर, भूत भविष्यत् है वह सब कुछ ब्रह्म ही है ब्रह्म से अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं।

"युक्तिवाद भी कर्म का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सकता। कर्म-वादी कहते हैं–जीव पहले कर्म करता है फिर उसका फल भोगता है परन्तु यह सिद्धान्त तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। 'जीव' नित्य अरूपी और चेतन माना जाता है और 'कर्म' अनित्य रूपी और 'जड़'। इन परस्पर विरुद्ध प्रकृति वाले जीव और कर्म का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कैसा माना जायगा—सादि अथवा अनादि ?

"जीव और कर्म का सम्बन्ध 'सादि' मानने का अर्थ यह होगा कि पहले जीव कर्म रहित था और अमुक काल में उसका कर्म से संयोग हुआ परन्तु यह मान्यता कर्म–सिद्धान्त के अनुकूल नहीं। कर्म–सिद्धान्त के अनुसार जीव की मानसिक वाचिक और कायिक प्रवृत्तियाँ कर्मबन्ध का–जीव कर्म के संयोग का कारण होती है। मन, वचन और काय ये स्वयं कर्मफल हैं क्योंकि पूर्वबद्ध कर्म के उदय से ही मन आदि तत्त्व जीव को प्राप्त होते हैं। इस दशा में 'अबद्ध' जीव किसी भी प्रकार 'बद्ध' नहीं हो सकता, क्योंकि उसके पास बन्ध कारण नहीं है। यदि बिना कारण भी जीव 'कर्मबद्ध' मान लिया जाय, तो कर्ममुक्त सिद्धात्माओं को भी पुनः कर्मबद्ध, मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इस प्रकार कर्मवादियों का 'मोक्ष' तत्त्व नाम मात्र को रह जायगा। वस्तुतः कोई भी आत्मा मुक्त ठहरेगा ही नहीं। अतः 'अबद्ध' जीव का 'बन्ध' मानना दोषापत्तिपूर्ण है।

"जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध भी मानना युक्तिसंगत नहीं हो सकता कारण कि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि माना जायगा

तो वह आत्मस्वरूप की ही तरह नित्य होगा और नित्य पदार्थ का कभी विनाश न होने से जीव कभी कर्म मुक्त नहीं होगा। जब जीव की कर्म से मुक्ति ही नहीं हो तो वह उसके लिये प्रयत्न ही क्यों करेगा ?"

भगवान महावीर—"हे अग्निभूति ! तुम्हारे इस तर्क से यह मालूम होता है कि तुमने वेद वाक्य का असली अर्थ नहीं समझा। 'पुरुष एवेदं' यह स्तुति वाक्य है इससे पुरुषाद्वैत वाद सिद्ध नहीं होता।

अग्निभूति—"इस वाक्य को पुरुषाद्वैत साधक वाक्य क्यों न माना जाय ?"

महावीर—"पुरुषाद्वैतवाद दृष्टापलाप और अदृष्ट कल्पना दोषों से दूषित है।"

अग्निभूति—"यह कैसे ?"

महावीर—"पुरुषाद्वैत के स्वीकार में यह पृथ्वी पानी, अग्नि, वायु आदि प्रत्यक्ष दृश्य पदार्थों का अपलाप होता है और सत् असत् से विलक्षण 'अनिर्वचनीय' नामक एक अदृष्ट पदार्थ की कल्पना करनी पड़ेगी।"

अग्निभूति—"महाराज ! इसमें अपलाप की बात नहीं है। पुरुषाद्वैतवादी इस दृश्य जगत को पुरुष से अभिन्न मानते हैं। जड़चेतन का भेद व्यावहारिक कल्पनामात्र है। वस्तुतः जो कुछ दृश्यादृश्य और चराचर पदार्थ है सब पुरुष स्वरूप है।"

महावीर—"पुरुष दृश्य है या अदृश्य ?

अग्निभूति—"पुरुष रूप, रस, गन्ध और स्पर्शादि से रहित है। अदृश्य है। इसका इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता।"

महावीर—" ये पदार्थ क्या है जो आँखों से देखे जाते हैं, कानों से सुने जाते हैं, नाक से सूंघे जाते हैं, जीभ से चखे जाते हैं और त्वचा से स्पर्श किये जाते हैं ?"

अग्निभूति-"यह सब नामरूपात्मक जगत् है।"

महावीर-"यह पुरुष से भिन्न है या अभिन्न ?"

महावीर-"अभी तुमने कहा था कि 'पुरुष' अदृश्य है इन्द्रयातीत है। इस पुरुषाभिन्न नामरूपात्मक जगत् का इन्द्रियों से कैसे प्रत्यक्ष हो रहा है ?"

अग्निभूति—"इस नामरूपात्मक दृश्य जगत की उत्पत्ति माया से होती है। माया तथा इसका कार्य नाम रूप सत् नहीं है क्योंकि कालान्तर में उसका नाश हो जाता है।"

महावीर—"तो क्या दृश्य जगत असत् है ?"

अग्निभूति-"नहीं। जैसे ये सत् नहीं वैसे असत् भी नहीं, क्योंकि ज्ञानकाल में वह सत् रूप से प्रतिभासित होता है।"

महावीर-"सत् भी नहीं और असत् भी नहीं तब इसे क्या कहोगे ?"

अग्निभूति-"सत् असत से विलक्षण इस माया को हम अनिर्वचनीय कहते हैं।"

महावीर-"आखिर पुरुषातिरिक्त माया नामक एक विलक्षण पदार्थ मानना ही पड़ा। तब कहाँ रहा तुम्हारा पुरुषाद्वैतवाद ? हे अग्निभूति ! जरा सोचो ये दृश्य पदार्थ पुरुष से अभिन्न कैसे हो सकते हैं ? यह दृश्य जगत् यदि पुरुष ही होते तो 'पुरुष' की ही तरह यह भी इन्द्रियातीत होना चाहिए पर तुम प्रत्यक्ष देखते हो कि यह इन्द्रियगोचर है। प्रत्यक्ष दर्शन को तुम भ्रान्ति नहीं कह सकते।"

अग्निभूति-"इसे भ्रान्ति मानने में क्या आपत्ति है ?"

महावीर-"भ्रान्तिज्ञान उत्तरकाल में भ्रान्त सिद्ध होता है। जिसे तुम भ्रान्ति कहते हो वह कभी भ्रान्ति रूप सिद्ध नहीं होता, अतः यह निर्बाध ज्ञान है, भ्रान्ति नहीं।"

अग्निभूति-'यह माया पुरुष की ही शक्ति है और पुरुष विवर्त में नाम-रूपात्मक जगत् बनकर भासमान होता है। वस्तुतः माया 'पुरुष' से भिन्न वस्तु नहीं है।"

महावीर-"यदि माया पुरुष की शक्ति ही है तो यह भी पुरुष के ज्ञानादि गुणों की तरह अरूपी, अदृश्य होनी चाहिये परन्तु यह तो दृश्य है। अतः सिद्ध होता है कि माया पुरुष की शक्ति नहीं वरन् यह एक स्वतन्त्र पदार्थ है।"

"पुरुष विवर्त" मानने से भी पुरुषाद्वैत की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि पुरुष विवर्त का अर्थ है 'पुरुष के मूल स्वरूप की विकृति,' परन्तु पुरुष में विकृति मानने से उसे सकर्मक ही मानना पड़ेगा, अकर्मक नहीं। जिस प्रकार खालिस पानी में खमीर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार अकर्मक जीव में विवर्त नहीं हो सकता।

"पुरुषवादी जिस पदार्थ को माया अथवा अज्ञान का नाम देते हैं वह वस्तुतः आत्मातिरिक्त जड़ पदार्थ है। पुरुषवादी इसे सत् या असत् न कहकर अनिर्वचनीय कहते हैं जिससे सिद्ध होता है कि यह पुरुष से भिन्न पदार्थ है। इसीलिये तो वे इसे पुरुष की तरह 'सत्' नहीं मानते 'असत्' न मानने का तात्पर्य तो केवल यही है कि यह माया आकाशपुष्प की तरह कल्पित वस्तु नहीं है।"

अग्निभूति-"ठीक है दृश्य जगत् को पुरुष मात्र, मानने से प्रत्यक्ष अनुभव का निर्वाह नहीं हो सकता। यह मैं समझ गया हूँ परन्तु जड़ तथा रूपी कर्म-द्रव्य चेतन तथा अरूपी आत्मा के साथ कैसे सम्बद्ध हो सकता है और उस पर अच्छा-बुरा असर कैसे डाल सकता है?'

महावीर-"जिस प्रकार अरूपी आकाश के साथ रूपी द्रव्यों का संपर्क होता है उसी प्रकार अरूपी आत्मा का रूपी कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार ब्राह्मी औषधी और मदिरा आत्मा के अरूपी चैतन्य पर भला बुरा असर करते हैं उसी तरह अरूपी चेतन आत्मा पर रूपी जड़ कर्मों का भी भला बुरा असर हो सकता है।"

इस लम्बी चर्चा के बाद अग्निभूति ने भगवान महावीर का

सिद्धान्त स्वीकार किया। भगवान महावीर का उपदेश सुनकर अग्नि-भूति ने प्रतिबोध पाया और अपने छात्र-मण्डल के साथ भगवान महा-वीर के समीप दीक्षा ग्रहण की।

अग्निभूति ने छियालीस वर्ष की अवस्था में श्रामण्य धारण किया। बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था में तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया और सोलह वर्ष पर्यन्त केवली अवस्था में विचर कर श्रमण भगवान की जीवित अवस्था में ही उनके निर्वाण के करीब दो वर्ष पहले, राजगृह के गुण-शील चैत्य में मासिक अनशन के अन्त में ७४ वर्ष की अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया।

३. वायुभूति

वायुभूति इन्द्रभूति गणधर के लघुभ्राता थे। ये भी सोमिल ब्राह्मण के यज्ञोत्सव पर अपने पांच सौ छात्रों के साथ पावामध्यमा में आए हुए थे।

इन्द्रभूति और अग्निभूति को दीक्षित हुआ जानकर उनके छोटे भाई वायुभूति ने सोचा–"भगवान वास्तव में सर्वज्ञ हैं। तभी तो मेरे दोनों बड़े भाई उनके पास दीक्षित हो गए हैं। उनके सन्मुख जाकर वन्दना करने से मेरे समस्त पाप धुल जायेंगे और उनकी उपासना करके मैं अपनी समस्त शंकाओं का समाधान करा लूँगा।"

ऐसा विचार करके वायुभूति अपने पांच सौ छात्रों के साथ भग-वान महावीर के समीप पहुँचे और भगवान को भक्तिपूर्वक वन्दना कर उनके पास बैठ गये।

वायुभूति के दार्शनिक विचारों का झुकाव 'तज्जीवतच्छरीरवादी' नास्तिकों के मत की ओर था। 'विज्ञानघन०' इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतिवाक्य को वे अपने नास्तिक मत के विचारों का समर्थक मानते थे, परन्तु दूसरी ओर "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो

-यं पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मनः'' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों से देहातिरिक्त आत्मा का प्रतिपादन होता था। इस द्विविध वेदवाणी से वायुभूति इस विषय में शंकाशील बने हुए थे।

भगवान महावीर ने वायुभूति को अपने सन्मुख बैठा हुआ देख कर उसकी शंका का समाधान कर दिया और शरीरातिरिक्त आत्मतत्त्व का प्रतिपादन किया। भगवान महावीर से अपनी शंकाओं का समाधान पाकर वायुभूति ने अपने पांच सौ छात्रों के साथ भगवान के पास दीक्षा ग्रहण कर ली।

वायुभूति ने बयालीस वर्ष की अवस्था में गृहवास छोड़कर श्रमण-धर्म की दीक्षा ली। दस वर्ष छद्मस्थावस्था में रहने के उपरान्त उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ और अठारह वर्ष केवली अवस्था में विचरे।

भगवान महावीर के निर्वाण के दो वर्ष पहले वायुभूति भी ७० वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन के अन्त में गुणशील चैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।

४. आर्य व्यक्त

भगवान महावीर के चौथे गणधर का नाम आर्य व्यक्त था। ये कोल्लाग सन्निवेश के निवासी भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी माता वारुणी और पिता धनमित्र थे। आर्य व्यक्त भी पांच सौ छात्रों के अध्यापक थे और सोमिल ब्राह्मण के आमन्त्रण से यज्ञोत्सव पर पावा-मध्यमा में आये थे।

आर्य व्यक्त की विचार सरणी "स्वप्नोपमं वै सकल मित्येष ब्रह्म-विधि रञ्जसा विज्ञेयः" इत्यादि श्रुतिवाक्यों से ब्रह्मवाद की तरफ झुकी हुई थी। पर साथ ही "द्यावापृथिवी" तथा 'पृथिवी देवता आपो देवता' इत्यादि वैदिक वचनों को देखकर वे दृश्य जगत् को भी मिथ्या नहीं मान सकते थे। इस प्रकार व्यक्त संशयाकुल थे तथापि अपना संदेह किसी को प्रकट नहीं करते थे।

श्रमण भगवान महावीर की सर्वज्ञता की प्रशंसा सुनकर व्यक्त भी भगवान के समवशरण में गये जहाँ भगवान ने उनकी गुप्त शंकाओं को प्रकट किया और वेद वाक्यों के समन्वय पूर्वक द्वैत की सिद्धि कर उनका समाधान किया।

अन्त में भगवान ने निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश दिया और आर्य व्यक्त अपने पांच सौ छात्रों के साथ भगवान महावीर के शिष्य बन गये।

आर्य व्यक्त ने पचास वर्ष की अवस्था में श्रमण धर्म स्वीकार किया। बारह वर्ष तक तपस्या ध्यान आदि करके केवलज्ञान प्राप्त किया। ये अठारह वर्ष तक केवली अवस्था में रहकर भगवान के जीवन काल के अन्तिम वर्ष में अस्सी वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन के साथ गुणशील चैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।

५. आर्य सुधर्मा

भगवान महावीर के पांचवें गणधर का नाम आर्य सुधर्मा था। ये कोल्लाग संनिवेश के निवासी अग्निवेश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपका जन्म वि. सं. के ५५१ वर्ष पूर्व हुआ था। आपकी माता का नाम भद्दिला और पिता का नाम धम्मिल था। आप अपने युग के समर्थ विद्वान् थे। आपके पास ५०० छात्र अध्ययन करते थे। आप भी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति के साथ मध्यमपावा में सोमिल ब्राह्मण के यहाँ यज्ञ में भाग लेने गये थे।

"पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्" इत्यादि वैदिक वचनों में विश्वास रखते हुए आप जन्मान्तर सादृश्यवाद के सिद्धान्त को मानते थे। पर इसके विपरीत "शृगालो वै एषः जायते यः स पुरीषो दह्यते" इत्यादि श्रौत वाक्यों से वे जन्मान्तर के वैसादृश्य का भी निषेध नहीं कर सकते थे। इन द्विविध वचनों से विद्वान् सुधर्मा इस विषय में संशयग्रस्त थे।

भगवान महावीर ने उक्त वेद वाक्यों का समन्वय करके जन्मान्तर वैसादृश्य सिद्ध करने के साथ सुधर्मा की शंका का समाधान किया। और निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनाकर उन्हें छात्रगण सहित निर्ग्रन्थ मार्ग की दीक्षा दी और अपना पांचवाँ प्रधान शिष्य बनाया।

सुधर्मा ने पचास वर्ष की अवस्था में प्रव्रज्या ली। वीर सं. १३ में अर्थात् अपनी आयु के ९३वें वर्ष में कैवल्य प्राप्त किया। वीर संवत् २० में सौ वर्ष की आयु पूर्णकर राजगृह के वैभारगिरि पर मासिक अनशनपूर्वक मुक्त हुए।

गौतम स्वामी को केवल ज्ञान होने पर समग्र संघ के संचालन का नेतृत्व आप पर ही आया। ग्यारह गणधर में से अग्निभूति आदि नौ गणधर तो भगवान के सामने ही निर्वाण को प्राप्त हो गये थे। अतः आप पर ही समस्त संघ के नेतृत्व का भार आ पड़ा यही कारण है कि भगवान महावीर के पश्चात् जो गणधर परम्परा आरम्भ होती है उसमें आपका नाम ही सर्वप्रथम आता है।

६. आर्य मण्डिक

भगवान महावीर के छठे गणधर का नाम मंडिक था। मंडिक मौर्य सन्निवेश के रहने वाले वासिष्ठ गोत्रीय विद्वान ब्राह्मण थे। इनकी माता विजयदेवा और पिता धनदेव थे। वे तीन सौ पचास छात्रों के अध्यापक थे और सोमिल ब्राह्मण के आमंत्रण से उनके यज्ञोत्सव पर पावामध्यमा में आये थे।

विद्वान् मण्डिक के विचार सांख्यदर्शन के समर्थक थे और उसका कारण "स एव विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा न वा एष बाह्यमभ्यतरं वा वेद" इत्यादि श्रुति वाक्य थे। इसके विपरीत "न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसन्तं प्रियाऽप्रिये न स्पृशतः" इस श्रुति वाक्य से उन्हें

बन्धमोक्ष के अस्तित्व का भी विचार आ जाता था। इस विचार से आपका मन किसी एक निश्चय पर नहीं पहुँचता था।

श्रमण भगवान ने वैदिक वाक्यों का समन्वय करके आत्मा का का संसारित्व सिद्ध किया और निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश देकर ३५० छात्र-गण सहित मण्डिक को आर्हती प्रव्रज्या देकर अपना छठा गणधर बनाया।

आर्य मण्डिक ने ५३ वर्ष की अवस्था में प्रव्रज्या ली, ६७ वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया और भगवान के जीवनकाल के अन्तिम वर्ष में तिरासी वर्ष की अवस्था में राजगृह के वैभारगिरि पर निर्वाण प्राप्त किया।

७. मौर्य पुत्र

भगवान महावीर के सातवें गणधर का नाम मौर्यपुत्र था। मौर्यपुत्र काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मौर्य और माता का नाम विजयदेवा और गांव का नाम मौर्य संनिवेश था।

मौर्यपुत्र भी तीन सौ पचास छात्रों के अध्यापक थे और सोमिल ब्राह्मण के आमंत्रण से पावामध्यमा में आये थे।

मौर्यपुत्र को देवों और देवलोकों के अस्तित्व में संदेह था जो "को जानाति मायोपमान् गीर्वाणानिन्द्रियमवरुणकुवेरादीन्" इत्यादि श्रुति वचनों के पढ़ने से उत्पन्न हुआ था, परन्तु इसके विपरीत "सः एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति" तथा 'अपाम सोम ममृता अभूम, अगमन्। ज्योतिः अविदाम देवान्, किं नूनमस्मांस्तृण-वदरातिः किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य" इत्यादि वैदिक वाक्यों से देवों का अस्तित्व भी सिद्ध होता था। अतः पण्डित मौर्यपुत्र का चित्त इस विषय में शंकाशील था।

भगवान महावीर ने देवों का अस्तित्व सिद्ध करके मौर्यपुत्र के संशय का समाधान किया और निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश किया,

जिसे हृदयंगत कर मौर्यपुत्र अपने छात्रगण के साथ भगवान महावीर के शिष्य हो गये।

मौर्यपुत्र ने ६५ वर्ष की अवस्था में महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया। उन्यासी वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान के जीवन काल के अन्तिमवर्ष, पंचानवे वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन पूर्वक गुणशील चैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।

८. अकम्पित

भगवान् महावीर के अष्टम गणधर का नाम अकम्पित था। अकम्पित मिथिला के रहनेवाले गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम जयन्ती और पिता का नाम देव था।

विद्वान अकम्पित तीन सौ छात्रों के अध्यापक थे। ये भी अपनी मण्डली के साथ सौमिलार्य के यज्ञ महोत्सव पर पावामध्यमा आये हुए थे। इनको नरक लोक और नारक जीवों के अस्तित्व में शंका थी। इस शंका का कारण "न ह वै प्रेत्य नरके नारका· सन्ति" यह श्रुति वाक्य था, परन्तु इसके विपरीत "नारको वै एव जायते यः शूद्रान्न-मश्नाति" इत्यादि वाक्यों से नारकों का अस्तित्व भी सिद्ध होता था। इस प्रकार के द्विविध वेद वचनों से शंकाकुल बने हुए अकम्पित इस बात का कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते थे कि नरक लोक और नारकों का अस्तित्व माना जाय या नहीं।

भगवान महावीर ने श्रुति वाक्यों का समन्वय करके अकम्पित का सन्देह दूर किया। अकम्पित भी निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त हुए और छात्र गण सहित आर्हती प्रव्रज्या स्वीकार की और भगवान महावीर के आठवे गणधर हो गये।

अकम्पित ने अड़तालीस वर्ष की अवस्था में गृहत्याग किया। सत्तावन वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया और श्रमण भगवान की जीवित अवस्था के अन्तिम वर्ष में राजगृह के वैभारगिरि पर मासिक अनशन पूरा करके अठहत्तर वर्ष की अवस्था मे निर्वाण प्राप्त किया।

९. अचल भ्राता

भगवान महावीर के नौवे गणधर अचलभ्राता कोशला के निवासी हारित गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपकी माता का नाम नंदा और पिता का नाम वसु था। ये तीन सौ छात्रों के विद्वान अध्यापक थे। ये सोमिल ब्राह्मण के यज्ञोत्सव में पावा मध्यमा आये थे।

पण्डित अचलभ्राता को पुण्य पाप के अस्तित्व में शंका थी इनका तर्क यह था कि "पुरुष एवेदं ०" इत्यादि श्रुतिपदों से जब केवल पुरुष का ही अस्तित्व सिद्ध किया जाता है तब पुण्य पाप के अस्तित्व की शक्यता ही कहाँ रहती है परन्तु दूसरी तरफ "पुण्यः पुण्येन०" इत्यादि वेद वाक्यों से पुण्य पाप का अस्तित्व भी सूचित होता था। इसलिये इस विषय का वास्तविक सिद्धान्त क्या होना चाहिये, इस बात का अचलभ्राता कुछ भी निर्णय कर नहीं सके थे।

अचलभ्राता जब महावीर के समवशरण में गये तो भगवान महावीर ने वेद वचनों का समन्वय करके पुण्यपाप का अस्तित्व प्रमाणित कर उनकी शंका का समाधान किया और निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनाकर उन्हें छात्र सहित अपना शिष्य बना लिया।

अचलभ्राता ने छियालीस वर्ष की अवस्था में गार्हस्थ्य का त्याग कर श्रामण्य धारण किया, बारह वर्ष तक तप ध्यान कर केवलज्ञान प्राप्त किया और चौदह वर्ष केवली दशा में विचरकर बहत्तर वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन कर राजगृह के वैभारगिरि पर निर्वाण प्राप्त किया।

१०. मैतार्य

श्रमण भगवान महावीर के दसवे गणधर का नाम मैतार्य था। ये वत्सदेशान्तर्गत तुंगिक संनिवेश के रहनेवाले कौडिन्य गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी माता वरुणदेवा और पिता 'दत्त' थे। मैतार्य तीन सौ छात्रों के आचार्य थे। ये सोमिल ब्राह्मण के आमंत्रण पर अपने तीन सौ छात्रों के साथ पावामध्यमा गये थे।

विद्वान मैतार्य "विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय ०" इत्यादि वेदवाक्यों से पुनर्जन्म के विषय में शंकाशील थे परन्तु

"नित्यं ज्योतिर्मयो०" इत्यादि श्रुतिपदों से आत्मा का अस्तित्व और "श्रृगालो वै एष जायते" इत्यादि श्रुतिपदों से उसका पुनर्जन्म ध्वनित होने से इस विषय में वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पाते थे।

श्रमण भगवान महावीर ने मैतार्य को वेद पदों का तात्पर्य समझाने के साथ पुनर्जन्म की सत्ता प्रमाणित की और निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश करके उनको उनके छात्रों सहित निर्ग्रन्थ श्रमण पथ का पथिक बनाया।

मैतार्य ने छत्तीस वर्ष की अवस्था में महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया। दस वर्ष तक तप जप-ध्यान कर केवलज्ञान प्राप्त किया और सोलह वर्ष केवली जीवन में विचरे। अन्त में भगवान के निर्वाण से चार वर्ष पहले बासठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने राजगृह के वैभारगिरि पर निर्वाण प्राप्त किया।

११. प्रभास

श्रमण भगवान महावीर के ग्यारहवें गणधर का नाम प्रभास था। पण्डित प्रभास कौण्डिन्य गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम अतिभद्रा और पिता का नाम बल था। ये राजगृह में रहते थे। सोमिल ब्राह्मण के आमंत्रण पर उनके यज्ञमहोत्सव में अपने तीन सौ छात्रों के साथ पावा मध्यमा में आये थे।

विद्वान प्रभास को आत्मा की मुक्ति के विषय में सन्देह था। "जरामर्यं वा एतद्सर्वं यदग्निहोत्रम्" इस श्रुति ने उनके संशय को पुष्ट किया था परन्तु कुछ वेदपद ऐसे भी थे जो आत्मा की मुक्तदशा का सूचन करते थे। "द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च, तत्र परं सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म" इस श्रुति वाक्य से आत्मा की बद्ध और मुक्त दोनों अवस्थाओं का प्रतिपादन होता था। इस द्विविध वेदवाणी से प्रभास सन्देहशील रहते थे कि आत्मनिर्वाण जैसी कोई चीज है भी या नहीं?

पंडित प्रभास को सम्बोन्धन कर भगवान महावीर ने कहा— "आर्य प्रभास! तुमने श्रुति वाक्यों को ठीक नहीं समझा। "जरामर्यं०" इत्यादि श्रुति से तुम आत्म निर्वाण के अभाव का अनुमान करते हो,

यह ठीक नहीं। यह वेद वाक्य गृहाश्रमी की जीवनचर्या का सूचक है न कि निर्वाणाभाव का प्रतिपादक। भगवान के स्पष्टीकरण से प्रभास का संशय दूर हो गया और निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश सुनकर वे भगवान महावीर के अपने छात्रगण के साथ शिष्य हो गये।

वे वय की अपेक्षा से भगवान महावीर के सब से छोटे गणधर थे। इन्होंने सोलहवर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की। आठवर्ष तक तप जप ध्यान कर इन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। सोलहवर्ष तक केवली अवस्था में विचरे। श्रमण भगवान महावीर के केवली जीवन के पचीसवें वर्ष राजगृह के वैभारगिरि पर मासिक अनशन पूर्वक चालीस वर्ष की अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया।

एकादश गणधर कोष्ठक (दर्शक यन्त्र)

	१	२	३
गणधर का नाम	इन्द्रभूति	अग्निभूति	वायुभूति
गोत्र नाम	गौतम	गौतम	गौतम
गाँव नाम	गोबर गाँव	गोबर गाँव	गोबर गाँव
गार्हस्थ्यपर्याय	५०	४६	४२
छद्मस्थ पर्याय	३०	१२	१०
केवली पर्याय	१२	१६	१८
श्रमण पर्याय	४२	२८	२८
सर्वायु	९२	७४	७०
वीर निर्वाण से	४२	२८	२८
निर्वाण स्थल	राजगृह	राजगृह	राजगृह

	४	५	६
गणधर का नाम	व्यक्त	सुधर्मा	मण्डिक
गोत्र नाम	भरद्वाज	अग्नि वैश्यायन	वसिष्ठ
गाँव नाम	कोल्लाग	कोल्लाग	मौर्य

ग्राहस्थ्य पर्याय	५०	५०	५३
छद्मस्थ पर्याय	१२	४२	१४
केवली पर्याय	१८	८	१६
श्रमण पर्याय	३०	५०	३०
सर्वायु	८०	१००	८३
वीर निर्वाण से	३०	५०	३०
निर्वाण स्थल	राजगृह	राजगृह	राजगृह

	७	८	९
गणधर का नाम	मौर्य पुत्र	अकम्पित	अचल भ्राता
गोत्र नाम	काश्यप	गौतम	हारित
गाँव नाम	मौर्य	मिथिला	कोशला
ग्राहस्थ्यपर्याय	६५	४८	४६
छद्मस्थ पर्याय	१४	९	१२
केवली पर्याय	१६	२१	१४
श्रमण पर्याय	३०	३०	२६
सर्वायु	९५	७८	७२
वीर निर्वाण से	३०	३०	२६
निर्वाण स्थल	राजगृह	राजगृह	राजगृह

	१०	११
गणधर का नाम	मैतार्य	प्रभास
गोत्र नाम	कौडिन्य	कौडिन्य
गाँव नाम	तुंगिक	राजगृह
ग्राहस्थ्यपर्याय	३६	१६
छद्मस्थ पर्याय	१०	८
केवली पर्याय	१६	१६
श्रमण पर्याय	२६	२४

गणधरनाम	मेतार्य	प्रभास
सर्वायु	६२	४०
वीर निर्वाण से	२६	२४
निर्वाण स्थल	राजगृह	राजगृह

गणधर सिद्धान्त

१	इन्द्रभूति	जीव है या नहीं ।
२	अग्निभूति	ज्ञानावरण आदि कर्म हैं या नहीं ।
३	वायुभूति	शरीर और जीव एक है या भिन्न भिन्न ।
४	व्यक्तस्वामी	पृथ्वी आदि भूत हैं या नहीं ।
५	सुधर्मा	इस लोक में जो जैसा है, परलोक में भी वह वैसा ही रहता है ।
६	मण्डिक	बन्ध और मोक्ष हैं या नहीं ।
७	मौर्यपुत्र	देवता हैं या नहीं ।
८	अकम्पित	नारकी हैं या नहीं ।
९	अचल भ्राता	पुण्य ही बढ़ने पर सुख और घटने पर दुःख का कारण हो जाता है, या दुःख का कारण पाप पुण्य से अलग है ।
१०	मेतार्य	आत्मा की सत्ता होने पर भी परलोक है या नहीं।
११	प्रभास	मोक्ष है या नहीं ।
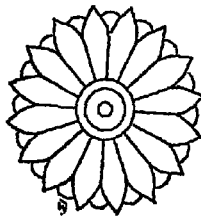
आगम के अनमोल रत्न

१. जम्बूस्वामी

मगध देश में सुग्राम नाम का रम्य नगर था। वहाँ राष्ट्रकूट नाम का किसान रहता था। उसकी स्त्री का नाम रेवती था। उसके भवदत्त और भावदेव नाम के दो पुत्र थे। सुस्थित आचार्य का उपदेश सुनकर भवदत्त ने दीक्षा ग्रहण की और गीतार्थ बना।

एक बार भवदत्त मुनि विहार करते करते सुग्राम आये। वहाँ अपने कुटुम्बीजनों को प्रतिबोध देने के लिए गुरु की आज्ञा ले अपने घर गये। उस समय भावदेव का तत्काल विवाह हुआ था। भावदेव की पत्नी नागिला अत्यन्त रूपवती रमणी थी। भावदेव उस पर अत्यन्त आसक्त था। भाई ने उसे उपदेश दिया। यद्यपि उसके मन पर भाई मुनि के उपदेश का किंचित् मात्र भी असर नहीं था, किन्तु भाई के स्नेह-वश वह नव विवाहिता पत्नी को छोड़कर साधु बन गया। भाई के साथ उसने अन्यत्र विहार कर दिया किन्तु उसका मन पत्नी में ही लगा रहता था। वह दिन रात अपनी पत्नी नागिला का ही विचार करता रहता था।

कुछ समय के बाद भवदत्त मुनि का स्वर्गवास हो गया। भाई के स्वर्गवास के बाद उसने सोचा--"जिस भाई के कहने से मैंने संयम लिया है वह तो अब संसार में नहीं रहा" यह सोच वह रात्रि में ही अन्य मुनिवरों को सोता छोड़ सुग्राम की ओर चल पड़ा। चलते चलते वह सुग्राम नगर के यक्ष मन्दिर में ठहरा।

नागिला को जब यह समाचार मिला तो वह एक वृद्धा स्त्री को साथ लेकर मुनि दर्शन के लिए आई। उसने नागिला को पहचान लिया और पुनः गृहस्थाश्रम में आने की इच्छा प्रकट की। नागिला सती और अत्यन्त धर्मनिष्ठा थी। उसने भावदेव को समझाया। नागिला के उपदेश से भावदेव का मन पुनः संयम में स्थिर हो गया। उसने

उत्कृष्ट चारित्र का पालन किया और मर कर वीतशोका नगरी के राजा पद्मरथ की रानी वनमाला के उदर में पुत्र रूप से जन्म लिया। बालक का नाम शिवकुमार रखा गया। शिवकुमार युवा हुआ। उसने सागरदत्त मुनि का उपदेश सुना और माता पिता को पूछ कर दीक्षा ले ली। साधु बनकर कठोर तप किया और समाधि पूर्वक मरकर ब्रह्म देव लोक में विद्युन्माली देव हुआ।

वहाँ की आयु पूर्णकर भावदेव का जीव राजगृह के धनाढ्यश्रेणी ऋषभदत्त की धारिणी नामक पत्नी के उदर में आया। धारिणी रानी ने जम्बूवृक्ष का स्वप्न देखा। गर्भकाल के पूर्ण होने पर धारिणी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। स्वप्न दर्शन के अनुसार उसका नाम जम्बूकुमार रखा गया। जम्बूकुमार युवा हुआ। उसका विवाह इभ्य की आठ कन्याओं के साथ होना तय हुआ।

उस समय सुधर्मास्वामी अपने शिष्य परिवार के साथ राजगृह पधारे। जम्बूकुमार उपदेश सुनने सुधर्मा स्वामी के पास पहुँचा। सुधर्मा स्वामी की वैराग्यपूर्ण वाणी सुनकर उसने दीक्षा लेने का निश्चय किया। घर आकर उसने माता पिता से दीक्षा की आज्ञा माँगी। माता पिता ने इकलौती सन्तान, अपार धनराशि होने से एवं पुत्र-स्नेहवश उसे आज्ञा नहीं दी, किन्तु आठ सुन्दर कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह के अवसर पर कन्याओं के माता पिताओं ने ९९ करोड़ का दहेज दिया था। घर आकर जम्बूकुमार ने रात्रि में अपनी आठों स्त्रियों को उपदेश दिया और उन्हें वैराग्य-रंग में रंग दिया। जब वह अपनी स्त्रियों को संसार की असारता समझा रहा था, उसी समय प्रभव नामक चोर अपने पांच सौ साथियों के साथ चोरी करने वहाँ आया। जम्बूकुमार ने उन्हें भी प्रतिबोध दिया। जम्बूकुमार के त्याग, वैराग्य और ज्ञान से प्रभावित हो उसने भी अपने साथियों के साथ दीक्षा लेने का विचार किया।

दूसरे दिन आठ स्त्रियाँ, प्रभव और उसके पांचसौ साथी, इन सब को लेकर वह अपने माता पिता के पास आया और उन्हें भी

उपदेश देने लगा। अपने पुत्र की वैराग्य भरी वाणी को सुनकर, उन्होंने भी प्रव्रज्या ग्रहण करने का निश्चय किया। इस प्रकार जम्बुकुमार, उनके मातापिता, आठ स्त्रियाँ, उनके माता पिता, प्रभव और उसके पांचसौ साथियों सहित ५२७ जनों ने आर्य सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की।

जम्बुस्वामी ने वीर संवत् १ में सोलह वर्ष की खिलती हुई तरुणाई में दीक्षा धारण की। बारह वर्ष तक सुधर्मा स्वामी से गंभीर अध्ययन किया और आगमवाचना ग्रहण की। वीर संवत् १३ में सुधर्मा स्वामी के केवली होने के बाद आचार्य बने। आठ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। वीर संवत् २० में केवलज्ञान पाया और ४४ वर्ष केवली अवस्था में धर्म प्रचार करते रहे। वीर संवत् ६४ में ८० वर्ष की आयु पूर्णकर मथुरा नगरी में वे निर्वाण को प्राप्त हुए। आपके पट्ट पर आर्य प्रभव विराजे।

२. प्रभवस्वामी

जम्बूस्वामी के पट्टधर शिष्य। ये विंध्याचल की पर्वत श्रृङ्खला के निकट जयपुर नगर के निवासी थे। ये विन्ध्यराजा के पुत्र, कात्यायन गोत्रीय क्षत्रीय थे। इनका जन्म वीर सं. ३० के पूर्व (वि. सं. ५०० वर्ष पूर्व) हुआ था। पिता से अनबन होने के कारण अपने ४९९ साथियों के साथ राज्य छोड़कर लूट मार का धंधा करने लगे। अपने साथियों के साथ घूमता घामता प्रभव मगध आ पहुँचा। जम्बू कुमार के घर, उनके विवाह के दिन, डाका डालने आया लेकिन जम्बू के वैराग्य रस से परिप्लावित प्रवचन सुन कर अपने साथियों के साथ जम्बूकुमार के नेतृत्व में सुधर्मा स्वामी के चरणों वि. सं. ४७० (वीर सं. १) में तीस वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की। ५० वर्ष की अवस्था में वि. सं. ४०६ वर्ष पूर्व (वीर सं. ६४) में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और १०५ वर्ष की आयुपूर्ण कर वि. सं. ३९५ पूर्व (वीर सं. ७५) में अनशन कर समाधि पूर्वक स्वर्गवासी हुए। इनके पट्ट पर शय्यंभव आचार्य प्रतिष्ठित हुए।

दूसरी मान्यतानुसार जम्बूस्वामी की दीक्षा के बीस वर्ष बाद प्रभवस्वामी ने दीक्षा ग्रहण की। ४४ वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर ८४ वर्ष की अवस्था में वीर सं. ७५ में स्वर्गवासी हुए।

३. शय्यंभवाचार्य

भगवान महावीर के चतुर्थ पट्टधर आचार्य। आप राजगृह के निवासी वत्सगोत्री ब्राह्मण थे। ये वैदिक साहित्य के धुरन्धर विद्वान थे। एक बार यज्ञ के अवसर पर प्रभवस्वामी के उपदेश से प्रभावित होकर ये जैन मुनि बन गये। आप जब दीक्षित हुए तब पत्नी गर्भवती थी। पश्चात् अवतरित हुए मनकपुत्र ने बचपन में ही चंपा नगरी में आपसे भेंट की और मुनि होगया। अपने ज्ञान में पुत्र को केवल-छह महिने का अल्पजीवी जानकर आत्मप्रवाद आदि पूर्व से दशवैकालिक सूत्र का संकलन कर उसे पढ़ाया। इस सूत्र का रचना काल वीर. सं. ८२ के आस पास है।

शय्यंभवस्वामी ने २८ वर्ष की वय में दीक्षा ग्रहण की। ३४ वर्ष तक मुनि जीवन में रहे। जिनमें २३ वर्ष तक युगप्रधान पद पर अधिष्ठित रहे। कुल ६२ वर्ण की आयु में वीर सं. ९८ में स्वर्गस्थ हो गये। आपके पट्टपर आचार्य यशोभद्र बैठे।

४. भद्रबाहुस्वामी

भगवान महावीर के सातवें पट्टधर आचार्य। आर्य यशोभद्र के शिष्य। संभूतिविजय के पश्चात् आप आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए। आप प्राचीन गोत्री ब्राह्मण थे। आपका जन्म प्रतिष्ठानपुर का माना जाता है। वराहमिहिर संहिता का निर्माता वराहमिहिर आपका छोटा भाई था। वराहमिहिर पहले साधु था आचार्यपद न मिलने से वह गृहस्थ होगया और भद्रबाहु की प्रतिद्वन्दिता करने लगा। विद्वानों का मत है कि वर्तमान में उपलब्ध वराहमिहिर संहिता भद्रबाहु के समय की नहीं है।

भद्रबाहु प्रभव से प्रारंभ होनेवाली श्रुतकेवली परम्परा में पंचम श्रुतकेवली हैं। चतुर्दश पूर्वधर हैं। दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि में आपको दशाश्रुत, बृहद्कल्प और व्यवहार सूत्र का निर्माता बताया है। कल्प सूत्र के नाम से प्रसिद्ध पर्युषणकल्पसूत्र भी आपके द्वारा ही रचित है।

उपसर्गहर स्तोत्र के कर्ता भी आप ही माने जाते हैं। सपादलक्ष, सवा-लक्ष गाथा में प्राकृत में वसुदेव चरित्र की भी आपने रचना की थी जो इस समय अनुपलब्ध है। अनुश्रुति है कि भद्रबाहु ने प्राकृत भाषा में भद्रवाहु संहिता नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ भी लिखा था। जिसके आधार पर उत्तरकालीन द्वितीय भद्रबाहु ने संस्कृत में भद्रवाहु संहिता का निर्माण किया।

पाटलीपुत्र में आगमों की प्रथम वाचना आपके समय ही पूर्ण हुई। उस समय में १२ वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा। साधु संघ समुद्र तट पर चला गया। दुष्काल के समाप्त होने पर साधुसंघ पाट-लिपुत्र में एकत्र हुआ और एकादश अंगों का व्यवस्थित रूप से संक-लन किया। दुष्काल का समय वीर सं. १५४ के आसपास बताते हैं क्योंकि इसी समय नन्द साम्राज्य का उन्मूलन होकर मौर्य चन्द्रगुप्त का साम्राज्य स्थापित हुआ। दुष्काल की समाप्ति पर वीर संवत् १६० के लगभग पाटलीपुत्र में श्रमणसंघ की परिषद् हुई। स्थूलिभद्र के नेतृत्व में इस परिषद् ने यथास्मृति ११ अंगों का संकलन तो कर लिया परन्तु १२वें दृष्टिवाद का ज्ञाता कोई मुनि न होने से उसके संकलन का कार्य अटक गया। दृष्टिवाद के पूर्णज्ञाता आचार्य भद्रबाहु थे परन्तु वे दुष्काल पड़ने पर ध्यान साधना के लिए नेपाल चले गये थे। उनसे दृष्टिवाद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्थूलिभद्र आदि पांचसौ साधु नेपाल गये। स्थूलिभद्र ने १०पूर्व तक तो अर्थ सहित अध्ययन किया और अग्रिम चार पूर्व मात्र मूल ही पढ़ पाये, अर्थ नहीं। भद्रबाहु प्रति-दिन मुनियों को सात वाचनाएँ देते थे। शेष समय महाप्राण के ध्यान में व्यतीत करते थे।

कल्पसूत्र की स्थविरावली में भद्रवाहु स्वामी के चार शिष्यों का उल्लेख है—स्थविर गोदास, अग्निदत्त, यज्ञदत्त, और सोमदत्त। उक्त शिष्यों में से गोदास की क्रमश: चार शाखाएँ प्रारंभ हुईं। १ ताम्र-लिप्तिका २ कोटिवर्षिका ३ पाण्डुवर्द्धनिका, ४ और दासी कर्वटिका।

भद्रबाहु ने अपने जीवन के ४५वे वर्ष में दीक्षा ग्रहण की। ६२वें वर्ष में युगप्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुए। कुल ७६ वर्ष की आयु में वीर सं. १७० वर्ष में स्वर्गवासी हुए।

एक मान्यता के अनुसार इन्होंने दस सूत्रों पर निर्युक्तियाँ लिखी हैं। वे इस प्रकार हैं—

आवश्यक	निर्युक्ति	ऋषिभाषित
दशवैकालिक	,,	व्यवहारसूत्र मूल
उत्तराध्ययन	,,	दशाश्रुतस्कन्ध मूल
आचाराङ्ग	,,	पंचकल्प मूल
सूत्रकृताङ्ग	,,	बृहद्कल्प मूल
दशाश्रुतस्कन्ध	,,	पिण्डनिर्युक्ति
बृहद्कल्पसूत्र	,,	ओघनिर्युक्ति
व्यवहार सूत्र	,,	पर्युषणा कल्पनिर्युक्ति
सूर्यप्रज्ञप्ति	,,	संसक्त निर्युक्ति
		उवसग्गहरस्तोत्र

वसुदेवचरियम्	(अनुपलब्ध)
भद्रबाहु संहिता	,,

५. स्थूलिभद्राचार्य

मंगलं भगवानवीरो मंगलं गौतमः प्रभुः।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

ऊपरलिखे मंगलाचरण में भगवान महावीर और गौतम के बाद तृतीय मंगल के रूप में आचार्य स्थूलिभद्र का उल्लेख किया है इसीसे उनकी प्रतिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। ये जैन जगत के उज्ज्वल नक्षत्र थे जिसकी प्रभा से जनजीवन आज भी आलोकित है। ये आचार्य भद्रबाहु के पट्टधर थे। जिनकी परिचय गाथा इस प्रकार है—

गंगा और शौन नदी का निर्मलनीर मिलकर पीछे हटता है ऐसे पाटलीपुत्र नगर में महापद्म नाम का नौवाँ नन्द राज्य करता था।

नन्द साम्राज्य का वैभव अन्तिम कोटि पर था। इसकी विपुल समृद्धि अन्य राज्यों के लिए ईर्षा का विषय थी। कल्पक वश में उत्पन्न गौतम गोत्रीय ब्राह्मण शकडाल इसी नन्द साम्राज्य का महामंत्री था। यह चतुर, मेधावी और सुदक्ष राजनीतिज्ञ था। जबतक रहा नन्द साम्राज्य की विजय पताका काशी, कौशल, अवंती, वत्स, अंग और लिच्छवीगण आदि राज्यों तथा सुदूर एवं सुदीर्घ भूमण्डलपर फहराती रही। इसकी पत्नी का नाम लांछनदेवी था। इसके दो पुत्र और सात पुत्रियाँ थी। बड़े पुत्र का नाम स्थूलिभद्र था। इनका जन्म वीर संवत् ११६ में हुआ था। ये बड़े बुद्धिमान थे। इन्होंने अल्पकाल में अस्त्रशस्त्रों को चलाने में निपुणता प्राप्त करली थी। ये नृत्य, नाट्य काव्य और साहित्य के विद्वान बन गये थे। इन्हे महामन्त्री शकडाल ने विशिष्ट कला और चातुर्य प्राप्त करने के लिए पाटलीपुत्र की सुप्रसिद्ध गणिका कोशा के घर भेजा था। ये कोशा के रूप यौवन में अनुरक्त हो गये और वहीं रहने लगे। शकडाल के द्वितीयपुत्र श्रीयक नन्दराजा के अंग-रक्षक के पद पर नियुक्त थे। ये राजा के अत्यन्त विश्वासपात्र थे। महामन्त्री शकडाल की यक्षणी, यक्षदत्ता, भूतिनी, भूतदत्ता, सेना, रेणा और वेणा ये सात पुत्रियाँ अत्यन्त मेधावी थीं। इनकी स्मरण शक्ति अपूर्व थी। इनमें से पहली लड़की किसी बात को एकबार सुनकर याद कर लेती थी और दूसरी लड़की को दो बार सुनने से, तीसरी को तीनबार सुनने से चौथी को चार बार सुनने से, पांचवी को पांच बार सुनने से, छठी को छ. बार सुनने से, और सातवीं को सात बार सुनने से, सब कुछ याद हो जाता था।

पाटलीपुत्र में वररुचि नामक एक ब्राह्मण रहता था जो प्रतिदिन आठ सौ नये-नये श्लोकों से नन्दराजा की स्तुति करता था। वर-रुचि के श्लोकों से प्रसन्न होकर राजा शकडाल मन्त्री की ओर देखता परन्तु वह उदासीनता दिखाता अतएव वररुचि राजदान से वंचित रहता था।

एक दिन वररुचि फल फूल लेकर शकडाल की स्त्री के पास पहुँचा और कहने लगा कि भाभी, तुम्हारे पति द्वारा मेरे श्लोकों की प्रशंसा न होने के कारण मै दान से वंचित रहता हूँ । शकडाल की स्त्री ने अपने पति से कहा । उसने उत्तर दिया, कि मै झूठी प्रशंसा कैसे करूँ ? लेकिन बहुत कहने-सुनने पर शकडाल वररुचि के श्लोकों की प्रशंसा करने लगा; और उसे प्रतिदिन आठ सौ दिनारे मिलने लगीं ।

एक दिन शकडाल ने सोचा, इस तरह तो राजकोष बहुत जल्दी खाली हो जायगा ।' उसने नन्द राजा से कहा—राजन्, आप इसे इतना द्रव्य क्यों देते हैं ? नन्द ने उत्तर दिया—तुम्हीं ने तो कहा है कि उसके श्लोक बहुत सुन्दर हैं। शकडाल ने कहा, महाराज ! यह लौकिक काव्य को अच्छी तरह पढ़ता है, अतएव मैं इसके श्लोकों की प्रशंसा करता हूँ । राजा ने कहा—"क्या इसके श्लोक लौकिक हैं !" शकडाल ने उत्तर दिया "इन श्लोकों को मेरी लड़कियाँ तक जानती हैं ।" तब महाराज ने शकडाल से कहा अगर यह बात सच है तो इसका निर्णय कल ही राजसभा में होना चाहिये ।

दूसरे दिन नियमानुसार वररुचि राजा की प्रशंसा में नये श्लोक बनाकर लाया । शकडाल की सातों कन्यायें परदे के भीतर बैठ गईं, वररुचि ने श्लोक पढ़ना शुरू कर दिया और सातों कन्याओं ने उन्हें सुनकर ज्यों का त्यों याद कर लिया । वररुचि के श्लोक पढ़ लेने के बाद शकडाल मंत्री ने वररुचि से कहा, ब्राह्मण तुम्हारे काव्य पुराने हैं । पुराने काव्य राजसभा में बार-बार न पढ़े जायें । वररुचि ने कहा—कौन कहता है कि मेरे काव्य पुराने हैं ? शकडाल ने कहा—पंडितवर वररुचि ! मैं कहता हूँ । ये काव्य मेरे सुने हुए हैं और पुराने हैं ।

मैं तो क्या, मेरी सातों पुत्रियाँ भी आपके पढ़े हुए काव्य को अच्छी तरह सुना सकती हैं। मंत्रीराज शकडाल ने मानो कोई गम्भीर बात न हो इस ढंग से उत्तर दिया ।

वररुचि बोला—"अगर यही बात है तो बुलाइए अपनी पुत्रियों को मुझे इसी समय सत्यासत्य का निर्णय करना है।"

"बहुत अच्छा, तराजू तैयार है।" यह कहकर महामन्त्री स्वयं अपनी पुत्रियों को बुलाने के लिए चले गये। सभागृह स्तब्ध था। थोड़ी ही देर में सातों पुत्रियाँ आकर खड़ी हो गईं। एक को देखिये और दूसरे को भूलिये! मानो सूर्य और चन्द्र की किरणों से बनी हुई हों। ये पुत्रियाँ सभा भवन के एक मंच पर आकर बैठ गईं। वररुचि एक हाथ से शिखा बांधते हुए गम्भीर स्वर से श्लोक पंक्तियाँ सुनने लगा। सातों पुत्रियों ने एक के बाद एक सुनी हुई श्लोक पंक्तियों को दुहराना प्रारम्भ कर दिया। सभाजनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वररुचि को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आकाश और पाताल एक हो रहे हों। वररुचि ने दूसरी नई रचना उपस्थित की उसकी रचनाओं में अपूर्व पाण्डित्य झलक रहा था किन्तु यह क्या! महामात्य की कन्याएँ सभी श्लोक इस ढंग से दोहरा गईं मानो उन्हें कण्ठस्थ हों। आकाश विहारी गरुड़राज जैसे व्याध के तीर से बिंध जाता है और तड़फता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ता है उसी प्रकार विद्वान वररुचि अपने आसन से गिर पड़े। हवा की दिशा बदलते जितना समय लगता है उतना ही समय प्रजा का अभिप्राय बदलते लगता है। वररुचि का गुणगाण करनेवाली सभा अब विपरीत आलोचना करने लगी। महाराजा भी वररुचि की निंदा करने लगे। शकडाल के इस कृत्य से वररुचि को राजा की ओर से मिलने वाला पुरस्कार सदा के लिये बंद होगया।

वररुचि ने अब दूसरा उपाय सोचा। वह रात को गंगा में दीनारें छिपाकर रख देता, और दिन में आकर गंगा की स्तुति करता उसके बाद वह जोर से लात मारकर गंगा में से दिनारें निकाल लेता और कहता कि गंगा देवी उससे बहुत प्रसन्न हैं। राजा के कानों

में यह बात पड़ी। उसने शकडाल से कहा—"देखो, वररुचि को गंगा दीनारें देती हैं।" शकडाल ने कहा—"यदि मेरे सामने गंगा उसे कुछ दें, तो मैं जानू।"

अगले दिन शकडाल ने एक आदमी को छिपाकर बैठा दिया और उससे कह दिया कि जो कोई वस्तु वररुचि छिपाकर गंगा में रखे उसे चुपचाप उठाकर ले आना। थोड़ी देर बाद वररुचि दिनारों की पोटली गंगा में रख चला गया। उस आदमी ने वह पोटली वहाँ से लाकर शकडाल को दे दी। नन्द शकडाल को लेकर गंगा के किनारे पहुँचा। वररुचि ने प्रतिदिन की तरह गंगा मैया की स्तुति कर पानी में डुबकी लगाई और हाथों और पैरों से पोटली टटोलना शुरु किया। पोटली न मिलने पर वररुचि अत्यन्त लज्जित हुआ। इसी समय शकडाल ने राजा को वह पोटली दिखाई। वररुचि लज्जित होकर वहाँ से चला गया।

वररुचि को शकडाल के ऊपर बहुत क्रोध आया और वह उससे बदला लेने का अवसर खोजने लगा। एक बार की बात है, शकडाल के पुत्र श्रीयक का विवाह होने वाला था। शकडाल ने राजा को निमंत्रित किया और उसके स्वागत के लिये बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ कीं। शकडाल की दासी द्वारा वररुचि को उसके घर का सब हाल मालूम होता रहता था। उसने सोचा कि शकडाल से बदला लेने का यह बहुत अच्छा अवसर है। उसने बहुत से बालक इकट्ठे किये और उन्हें लड्डू बाँटता हुआ जोर-जोर से गाने लगा—नन्दराजा को मालूम नहीं शकडाल क्या कर रहा हैं। राजा को मार कर वह अपने पुत्र श्रीयक को राजगद्दी पर बैठाना चाहता है। राजा को यह सुन कर बहुत क्रोध आया। उसे मालूम हुआ कि सचमुच शकडाल के घर बड़े जोरों की तैयारियाँ हो रही हैं। यद्यपि महामात्य शकडाल छत्र-चंवर, आभूषण, मुकुट एवं शस्त्रों को तैयार करवाकर विवाह के अवसर पर राजा को भेंट देना चाहता था किन्तु राजा ने वररुचि

के कहने से इसका विपरीत अर्थ लगाया । बात यहाँ तक बढ़ी कि महाराज नन्द स्वयं अपने हाथों से महामात्य शकडाल का वध करने के लिए तैयार हो गये । बात इससे भी आगे बढ़ी महामात्य के साथ ही उसके कुल के सभी सदस्यों के वध की योजना तैयार की गई ।

एक दिन शकडाल राजा के पैर छूने आया तो राजा ने क्रोध से अपना मुंह फेर लिया और उसके प्रति अत्यन्त उपेक्षा दिखलाई । शकडाल समझ गया कि अब खैर नहीं । उसने घर आ कर श्रीयक को सब हाल सुनाया, और कहा कि "यदि तुम कुटुम्ब को सुरक्षित रखना चाहते हो तो मुझे नन्द राजा के सामने मार डालो । पिता की यह वात सुन कर उसे वड़ा दुःख हुआ । उसने कानों पर हाथ रख-कर कहा—"पिताजी, यह आप क्या कह रहे हैं ?" शकडाल के वहुत समझाने पर भी जब श्रीयक न माना तो शकडाल ने कहा—"कोई बात नहीं, मै तालपुट विष खाकर राजा के पैर छूने जाऊँगा, उस समय तुम मुझे मार देना ।" वहुत कहने पर श्रीयक यह बात मान गया और अपने कुटुम्ब की रक्षा के लिये उसने दूसरे दिन नन्द-राजा के पैर छूने के लिये आये हुए अपने पिता को तलवार के वार से मौत के घाट उतार दिया । राजसभा में हाहाकार मच गया । महाराज नन्द ने उठ कर हत्यारे का हाथ पकड़ लिया किन्तु दूसरे ही क्षण आश्चर्य से चिल्ला उठे—"कौन ? श्रीयक तू ने पितृहत्या की ?"

"पितृ हत्या नहीं कर्तव्य-धर्म का पालन !" जो मेरे स्वामी का बुरा चाहता है, वह चाहे कोई भी क्यों न हो मेरा शत्रु है, और उसको मारना ही ठीक है । श्रीयक की स्वामिभक्ति से नन्द-राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे मंत्री का पद स्वीकार करने का आग्रह किया इस पर श्रीयक ने राजा से निवेदन किया कि उसका बड़ा भाई स्थूलिभद्र बारह वर्ष से कोशा गणिका के घर रहता है उसे बुलाकर मंत्री बनाना चाहिये । श्रीयक की इस प्रार्थना पर महाराजा

नन्द ने स्थूलिभद्र को मंत्री पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। राजा के आमन्त्रण से स्थूलिभद्र राजसभा में पहुँचे तो उन्हें जब पता लगा कि पिताजी वररुचि के षड़यन्त्र से मारे गये हैं तो वे बड़े खिन्न हुये और सोचने लगे-मै कितना अभागा हूँ कि वैश्या के मोह के कारण मुझे पिता की मृत्यु की घटना तक का पता नहीं चला ! उनकी सेवा सुश्रूषा करना तो दूर रहा, अन्तिम समय में मैं उनके दर्शन तक नहीं कर सका। धिक्कार है मेरे जीवन को !" इस प्रकार शोक करते-करते स्थूलिभद्र का हृदय संसार से उदासीन हो गया। मन्त्रीपद के स्थान पर साधुपद उन्हें अधिक निराकुल लगा। अन्त में सब कुछ छोड़ कर वे आचार्य संभूतविजय के समीप पहुँचे और मुनित्व धारण कर लिया। तत्पश्चात् श्रीयक मन्त्री बने।

कोशा गणिका के पास जब यह खबर पहुँची तो उसका हृदय दुःख से भग्न हो गया। अब उसके लिए धीरज के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं था।

वररुचि से बदला लेने के लिए अब श्रीयक भी कोशा के घर जाने लगा। कोशा की छोटी बहन उपकोशा थी जो वररुचि से प्रेम करती थी। एक दिन श्रीयक ने कोशा के घर जाकर कहा—"भाभी, देखो वररुचि कितना अधम है ? इसके कारण पिताजी को प्राण त्याग करना पड़ा और हम लोगों को स्थूलिभद्र का वियोग सहना पड़ा। तुम अपनी बहन से कह कर किसी तरह इसे मदिरा-पान कराओ।" कोशा ने अपनी बहन से जा कर कहा—"बहन, तुम सुरापान करती हो और वररुचि नहीं करता ?" एक दिन उपकोशा के बहुत कहने पर वररुचि ने चन्द्रप्रभा नामक सुरा का पान किया और तत्पश्चात् धीरे धीरे उसे उसका चसका लग गया।

एक दिन नन्द श्रीयक के साथ बैठा हुआ था। राजा ने श्रीयक से कहा—"देखो, तुम्हारा पिता मेरा कितना हितैषी था।" श्रीयक ने

कहा—"महाराज आप ठीक कहते हैं, परन्तु इस शराबी वररुचि ने उस निर्दोष को धोखे से मरवा डाला।" राजा ने पूछा क्या यह शराब भी पीता है ? मालूम करने पर यह बात सच निकली। राजा ने उसे गरम-गरम रांगा पिला कर मरवा डाला।

एक बार वर्षाकाल के समीप आने पर शिष्यगण आचार्य संभूति के पास आकर चातुर्मास की आज्ञा मांगने लगे। एक ने कहा-मैं सिंह की गुफा में जाकर चातुर्मास बिताऊँगा। दूसरे ने दृष्टि विष-सर्प की बांबी पर चातुर्मास बिताने की आज्ञा मांगी। तीसरे ने कुएँ की डोली पर चार महिने खड़े रहने की आज्ञा मांगी। जब मुनि स्थूलिभद्र के आज्ञा लेने का अवसर आया तो उन्होंने नाना कामोद्दीपक चित्रों से चित्रित, अपनी पूर्व परिचिता सुन्दरी नायिका कोशा गणिका की चित्रशाला में षड्रस युक्त भोजन करते हुए चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। आचार्य ने सब को आज्ञा प्रदान की सब साधुओं ने अपने अपने चातुर्मास के स्थान की ओर विहार किया। मुनि स्थूलिभद्र कोशा गणिका के घर पहुँचे।

कोशा का स्थूलिभद्र पर हार्दिक अनुराग था। उनके चले जाने के बाद वह बहुत उदास रहने लगी थी। उनके वियोग में वह जर्जरित हो गई थी। चिरकाल के बाद उन्हें मुनिवेष में उपस्थित हुए देख वह बहुत दुःखित हुई किन्तु इस बात से सन्तोष भी हुआ कि वे चार महिने उसी की चित्रशाला में रहेंगे। साथ ही उसने सोचा-मेरे यहाँ चातुर्मास करने का और क्या अभिप्राय हो सकता है ? इसका कारण उनके हृदय में मेरे प्रति रहा हुआ सूक्ष्म मोह भाव ही है। चित्रशाला में स्थूलिभद्र को रहने के लिए आज्ञा मिल-गई।

कोशा वैश्या की चित्रशाला साक्षात् कामदेव की मधुशाला थी। सब ओर कण कण में मादकता एवं वासना का उद्दाम प्रवाह बहता

था । एक से एक बढ़ कर कामोत्तेजक चित्रों की शृङ्खला; कोशा स्वर्ग-लोक से उतरी हुई मानो अप्सरा ! नील गगन, उमड़तीघुमड़ती काली घटाएँ, वर्षा की झमाझम, शीतल बयार, कोशा का संगीत कला की चिर साधना से मँजा निखरा गान और नृत्य, ऐसा कि एक बार तो जड़ पत्थर भी द्रवित हो जाए परन्तु स्थूलिभद्र पद्मासन लगाये ध्यानमुद्रा में सदा लीन रहते । गणिका की नाना प्रकार की चेष्टाओं से वे किंचित् भी विचलित नहीं हुए ।

इधर कोशा उन्हें विचलित करना चाहती थी और उधर मुनिवर स्थूलिभद्र उसे प्रतिबोधित करना चाहते थे । जब जब वह उनके पास जाती वे उसे संसार की असारता और काम भोग के कटु फल का उपदेश देते । मुनि स्थूलिभद्र के उपदेश से कोशा को अन्तर प्रकाश मिला । उनकी अद्भुत जितेन्द्रियता को देखकर उसका हृदय पवित्र भावनाओं से भर गया । अपने भोगासक्त जीवन के प्रति उसे बड़ी घृणा हुई । वह महान अनुताप करने लगी । उसने मुनि से विनयपूर्वक क्षमा मांगी तथा सम्यक्त्व और बारह व्रत अंगीकार कर वह श्राविका हुई । उसने नियम किया–"राजा के हुक्म से आये हुए पुरुष के सिवाय मैं अन्य किसी पुरुष से शरीर सम्बन्ध नहीं करूँगी ।"

इस प्रकार व्रत और प्रत्याख्यान कर कोशा गणिका उत्तम श्राविका जीवन व्यतीत करने लगी । चातुर्मास समाप्त होने पर मुनिवर स्थूलिभद्र ने वहाँ से विहार किया ।

एक समय राजा ने कोशा के पास एक रथिक को भेजा । वह बाण–सन्धान विद्या में बड़ा निपुण था । अपनी कुशलता दिखलाने के लिए उसने झरोखे में बैठे ही बैठे बाण चलाने शुरू किये और उनका एक ऐसा ताँता लगा दिया कि उनके सहारे से उसने दूर के आम्र-वृक्ष की फल सहित डालियों को तोड़–तोड़ कर कोशा के घर तक खींच लिया ।

इधर कोशा ने भी अपनी कला दिखलाने के लिए आंगन में सरसों का ढेर करवाया उस पर एक सुई टिकाई और एक पुष्प रख-कर नयनाभिराम नृत्य करना शुरू किया। नृत्य को देखकर रथिक चकित हो गया। उसने प्रशंसा करते हुए कोशा से कहा—"तुमने बड़ा अनोखा काम किया है।"

यह सुनकर कोशा बोली-"न तो विद्या से दूर बैठे आप का लूम्ब तोड़ लाना ही कोई अनोखा काम है और न सरसों के ढेर पर सुई रखकर और उस पर पुष्प रखकर नाचना ही। वास्तव में अनोखा काम तो वह है जो महाश्रमण स्थूलिभद्र मुनि ने किया। वे प्रमदा--रूपी बन में निशंक विहार करते रहे फिर भी मोह प्राप्त होकर भटके नहीं।

भोग के अनुकूल साधन प्राप्त थे। पूर्व परिचित वेश्या और वह भी अनुकूल चलने वाली, षट्रस युक्त भोजन, सुन्दर महल, युवावस्था, सुन्दर शरीर और बर्षाऋतु-इनके योग होने पर भी जिन्होंने असीम मनोवल का परिचय देते हुए काम राग को पूर्ण रूप से जीता और भोग रूपी कीचड़ में फँसी हुई मुझ जैसी अधम गणिका को अपने उच्चादर्श और उपदेश के प्रभाव से प्रतिबोधित किया; उन कुशल महान आत्मा स्थूलिभद्र मुनि को मै नमस्कार करती हूँ। पर्वत पर, गुफाओं में, वन में, या इसी प्रकार के किसी एकान्त में रहकर इन्द्रियों को वश में करने वाले हजारों हैं परन्तु अत्यन्त विलासपूर्ण भवन में लावण्यवती युवती के समीप में रहकर इन्द्रियों को वश में रखनेवाले तो शकडाल-नन्दन स्थूलिभद्र एक ही हुए।"

इस प्रकार स्तुति कर कोशा ने स्थूलिभद्र मुनि की सारी कथा रथिक को सुनाई। स्तुति वचनों से रथिक को प्रतिबोध प्राप्त हुआ और स्थूलिभद्र के पास जा उसने मुनिव्रत धारण किया।

वर्षाकाल की मर्यादा होने पर मुनि अपने गुरु के समीप लौट आये। गुरु ने प्रथम तीनों का 'दुश्करकारक' तपस्वी के रूप में स्वागत

किया परन्तु जब स्थूलिभद्रमुनि लौटे तो गुरुदेव खड़े हो गये, सात आठ कदम सन्मुख गये, हर्ष गद्‌गद् वाचा में "दुष्कर-दुष्कर कारक" तपस्वी कहकर उनका भावभीना स्वागत किया । यह देखकर दूसरे शिष्यों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई । वे सोचने लगे—हमने इतना लम्बा तप किया और सिंह की गुफा में अथवा सांप की बांबी पर चार महिने बिताए । स्थूलिभद्र वैश्या की चित्रशाला में आनन्द से रहे, षड्रस भोजन किया फिर भी गुरु ने हमसे भी ज्यादा सत्कार किया । ऐसा सोच वे मन ही मन मन जलने लगे ।

दूसरे वर्ष जब चातुर्मास का समय आया तो सिंह की गुफा में चातुर्मास रहने वाले मुनि ने कोशा की चित्रशाला में रहने की अनुमति मांगी । गुरु ने समझाया—"यह कार्य तुम से नहीं हो सकता । अशक्या-नुष्ठान का आग्रह छोड़ दो ।" किन्तु वह नहीं माना और कोशा के घर चला गया । वहाँ पहुँचने पर पहली रात को ही वह विचलित हो उठा और कोशा से भोग की प्रार्थना करने लगा । उसे व्रतभंग से बचाने के लिए कोशा ने कहा—"मुझे रत्नकम्बल की आवश्यकता है । नेपाल के राजा के पास जाकर उसे ला दो तो मैं तुम्हारी प्रार्थना पर विचार करूँगी । साधु काम में अन्धा हो चुका था । चातुर्मास की परवाह न करके नेपाल पहुँचा और वहाँ से रत्नकम्बल लाया । मार्ग में उसे लुटेरों ने पकड़ लिया । उनसे किसी प्रकार छुटकारा पाकर वह कोशा के पास पहुँचा । कोशा ने बड़े प्रेम से उसे ग्रहण किया । मुनि की हिम्मत की बड़ी प्रशंसा की और रत्नकम्बल की भी बड़ी सराहना की किन्तु दूसरे ही क्षण कोशा ने अपना रुख बदला । मुनि के प्रति अत्यन्त उपेक्षा दिखाते हुए कोशा ने कम्बल से अपने गन्दे पैर पोंछे और उसे गन्दे पानी की नाली में डाल दिया । यह सब देखकर मुनि को बड़ा आश्चर्य हुआ । वह क्रोध की भाषा में गरजता हुआ बोला—"कठोर परिश्रम से प्राप्त बहुमूल्य रत्नकम्बल को कहीं यों नाली में फेंका जाता है ?" कोशा

ने उत्तर दिया—"क्या आपके सयम रूपी अनमोल चिन्तामणि रत्न से भी यह कपड़े का चिथड़ा रत्नकम्बल अधिक मूल्यवान है ? काम वासना की क्षणिक तृप्ति के लिये ब्रह्मचर्य का भंग ? क्या यह अनमोल ब्रह्म-चर्य रत्न को गंदी नाली में डालना नहीं है ? कोशा की यह गम्भीर वाणी मुनिपर असर कर गई । सिंह गुफा वासी मुनि सिंह से श्रृगाल बनके रह गए । हृदय में दिव्य आलोक हुआ । कोशा के प्रति मुनि का हृदय कृतज्ञता से भर आया । वह बोला—कोशा तू धन्य है । तूने मुझे भवकूप से बचा लिया । अब मै पाप से अपनी आत्मा को हटाता हूँ । तुमसे क्षमा चाहता हूँ ।

कोशा बोली—मुनि ! मैने आपको संयम में स्थिर करने के लिए ही यह सब किया है । मै श्राविका हूँ । हे मुनि ! अब आचार्य के पास शीघ्र पहुँच कर अपने दुष्कृत्य का प्रायश्चित करें और भविष्य में गुणवान के प्रति ईर्षा-भाव न रखें ।

मुनि आचार्य के पास पहुँचे । अवज्ञा के लिए क्षमा याचना की । अपने दुष्कृत्य की निन्दा करते हुए प्रायश्चित लेकर शुद्ध हुए ।

पाटलीपुत्र की आगम वाचना के कर्णधार—

स्थूलिभद्र एक ऊँचे साधक ही नहीं किन्तु बहुत बड़े प्रभावशाली ज्ञानी भी थे । पाटलीपुत्र की प्रथम आगमवाचना में आचारांग आदि ११ अंगों का संकलन इनकी ही अध्यक्षता में हुआ था ।

एक बार मगध में १२ वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा । साधुओं को भिक्षा मिलनी कठिन हो गई और वे शास्त्र को भूल गये । दुष्काल के अन्त में समस्त संघ ने एकत्र होकर शास्त्रोद्धार के विषय में विचार विनिमय किया । ग्यारह अंगों के ज्ञाता साधु तो मिले, किन्तु बारवें अंग **दृष्टिवाद** का ज्ञाता कोई नहीं था । केवल भद्रबाहु ही उस अंग के ज्ञाता थे और वे नेपाल की पहाड़ियों में महाप्राण नामक ध्यान कर रहे थे इसलिये पाटलिपुत्र नहीं आ सकते थे । संघ ने स्थूलिभद्र के नेतृत्व में ५०० साधुओं को उनके पास दृष्टिवाद का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा

भद्रबाहु को बहुत कम समय मिलता था, वैसे दृष्टिवाद का अध्ययन सरल नहीं था। इसलिये दूसरे साधु तो घबराकर वापस चले आये किन्तु स्थूलिभद्र वहीं रहे। व्रत पूरा होने के बाद भद्रबाहु ने १४ पूर्वों में १० पूर्व स्थूलिभद्र को अर्थ सहित सिखा दिये और वे विहार करते हुए पाटलीपुत्र पहुँच गये।

स्थूलिभद्र योगविद्या के भी आचार्य थे। अनुश्रुति है कि स्थूलिभद्र ने एक दिन अपनी विद्या की शक्ति देखने के लिए रूप परिवर्तन कर लिया और सिंह का रूप बना कर एक जीर्णोद्यान में बैठ गये। इतने में उनकी सातों बहनें जो साध्वी हो चुकी थीं, दर्शनार्थ जीर्णोद्यान में पहुँचीं। स्थूलिभद्र को सिंह के रूप में देख कर वे डर गईं और लौट आईं। जब भद्रबाहु को इस घटना का पता चला तो उन्होंने स्थूलिभद्र को आगे पढ़ाना बन्द कर दिया। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने स्थूलिभद्र को शेष चार पूर्व मात्र सिखाए और उन्हें भी भविष्य में सिखाने की मनाही कर दी। इस प्रकार स्थूलिभद्र के के पश्चात् पूर्वों का ज्ञान उत्तरोत्तर विलुप्त होता गया।

भद्रबाहु के पट्ट पर स्थूलिभद्रमुनि वीर संवत १७० में आसीन हुए और युग प्रधान बने। आचार्य स्थूलिभद्र की यक्षा आदि बहनों द्वारा चूलिका सूत्रों के रूप में आगम साहित्य की वृद्धि हुई थी। चार चूलिकाओं में से भावना और विमुक्ति, आचारांग सूत्र के तथा रति वाक्य और विविक्तचर्या दशवैकालिक सूत्र के परिशिष्ट रूप में वीर सं. १६८ के आसपास जोड़ दी गईं जो आज भी साधना-जीवन में प्रकाश-किरणें विकीर्ण कर रही हैं। स्थूलिभद्रमुनि ने श्रावस्ती के धनदेव श्रेष्ठी को जैनधर्म में दीक्षित किया था। आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती आपके प्रधान शिष्य थे। स्थूलिभद्र दीर्घायु थे। आपके समय में मगध में राज्यक्रान्ति हुई थी तथा नन्द साम्राज्य का उच्छेद और मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई थी। मौर्यसम्राट चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक और कुणाल भी आपके समक्ष थे। कौटिल्य अर्थशास्त्र का निर्माता

महामंत्री चाणक्य भी आपके दर्शन से लाभान्वित हुआ था। वीर सं. २१४ में होने वाले आषाढभूति के शिष्य तीसरे अव्यक्तवादी निह्नव भी आपके ही समय में हुए थे। आपके लघुभ्राता श्रीयक ने भी चारित्र ग्रहण कर उत्तमगति प्राप्त की।

वीर संवत २१५ में वैभारगिरि पर्वत पर १५ दिन का अनशन करके आपने स्वर्गारोहण किया।

८. वज्रस्वामी

गौतमगोत्री आर्यवज्र, आर्य समित के भानजे होते हैं। आर्य समित की बहन सुनन्दा का धनगिरि से विवाह हुआ था। सुनन्दा गर्भवती थी कि धनगिरि अपने साले समित के साथ आर्य सिंहगिरि के पास दीक्षित हो गये। सुनन्दा ने पुत्र को जन्म दिया। यही वज्र हुए। वज्र छ महिने के ही थे तब भिक्षार्थ आये, धनगिरि के पात्र में सुनन्दा ने बालक को डाल दिया। वज्र को पात्र में लिए धनगिरि मुनि सिंह-गिरि के पास पहुँचे। वज्र का श्रावकों के यहाँ पालन-पोषण होने लगा। आपको जातिस्मरण ज्ञान-भी हो गया था। दीक्षा योग्य होने पर आर्य सिंहगिरि ने वज्र को मुनि दीक्षा दे दी। आर्य सिंहगिरि ने इन्हें वाचनाचार्य पद से विभूषित किया। आर्य वज्र ने दशपुर में भद्र-गुप्त के पास दश पूर्वक का अध्ययन किया। वज्रस्वामी अन्तिम दशपूर्व-धर थे। अवन्ती में जृंभग देवों ने आहार शुद्धि के लिये परीक्षा ली। वज्र खरे उतरे। पाटलीपुत्र के धनकुबेर धनदेव की पुत्री रुक्मिणी आपके रूप सौन्दर्य से मुग्ध होकर आपसे विवाह करना चाहती थी। धनदेव श्रेष्ठी करोड़ों की सम्पत्ति के साथ पुत्री भी देना चाहता था किन्तु वज्रस्वामी ने इसका त्याग कर रुक्मिणी को साध्वी बनाया। आप आकाशगामिनी विद्या के भी ज्ञाता थे। एक बार उत्तर भारत में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। तो आप श्रमण संघ को विद्या के बल से कलिंग प्रदेश में ले गये।

उत्तर भारत में वीर संवत ५८० में भयंकर दुष्काल पड़ा। उस समय आपने अपने प्रमुख शिष्य वज्रसेन को साधु संघ के साथ सुभिक्ष प्रधान सोपारक एवं कोंकण देश में भेज दिया और साथ में यह भी भविष्यवाणी की कि एक लाख सुवर्ण मुद्रा की कीमत का विष मिश्रित चावल जिस दिन आहार में तुम्हें मिलेगा उसके दूसरे ही दिन सुभिक्ष प्रारम्भ हो जायगा। स्वयं अपने साधु समूह के साथ रथावर्त पर्वत पर अनशन कर दिवङ्गत हुए। इनके चार मुख्य शिष्य थे—आर्य वज्रसेन, आर्य पद्म, आर्यरथ, और आर्य तापस। वज्रस्वामी से वीर सं. ५८४ में वज्रीशाखा निकली। आपका जन्म वीर सं. ४९६, दीक्षा वीर सं. ५०४, आचार्यपद वीर सं. ५४८ एवं स्वर्गवास वीर सं. ५८४ हुआ।

६. रक्षितसूरि

आर्य वज्रसेन के समकालीन आचार्य। आप मालव प्रदेश के दशपुर (मन्दसौर) नगर के निवासी रुद्रसोम पुरोहित के पुत्र थे। माता की प्रेरणा से दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिये वहीं इक्षुवन में विराजित आचार्य तोसलिपुत्र के पास पहुँचे और मुनि बन गये। आगमिक साहित्य का प्रारंभिक अभ्यास तोसलिपुत्र से किया और ९॥ पूर्व तक दृष्टिवाद का अध्ययन आर्य वज्रस्वामी से किया। आपने सूत्रों को द्रव्य; चरण–करण, गणित, एवं धर्मकथा इस प्रकार के चार अनुयोगों में विभक्त किया। चारों अनुयोग सम्बन्धी अर्थ को गौण रखकर आपने एक प्रधान अर्थ को कायम रखा।

यह सब कार्य द्वादशवर्षी दुष्काल के बाद दशपुर में हुआ। इस आगमवाचना का समय वीर सं. ५९२ के लगभग है। इस आगम वाचना में वाचनाचार्य आर्य नन्दिल, युगप्रधान आर्य रक्षित और गणाचार्य आर्य वज्रसेन ने प्रमुख भाग लिया था।

आर्य रक्षित के दुर्बलिका पुष्यमित्र, आर्य फल्गुरक्षित, विन्ध्य और निह्नव गोष्ठमाहिल्ल आदि शासन प्रभावक शिष्य थे।

कुछ ही वर्षों के बाद वीर सं. ५९७ में मंदसौर नगर में आर्य रक्षित का स्वर्गवास हो गया। वीर सं. ५२२ में जन्म, वीर सं.५४४ में दीक्षा, वीर सं. ५८४ में युगप्रधानपद। कुल आयु ७५ वर्ष की थी। आप १९वें युगप्रधान थे। इन्होंने युगप्रधान आचार्य भद्रगुप्तसूरि की निर्यामणा वीर सं. ५३३ में कराई थी। इस दृष्टि से इनका जन्म वी. स. ५०२, वी सं. ५२४ में दीक्षा, इस प्रकार कुल आयु ९५ वर्ष की मानना युक्तिसंगत लगता है।

धर्मरुचि अनगार

चंपा नाम की नगरी थी। वह धन-धान्य से समृद्ध थी। उस चम्पा नगरी के ईशान कोण मे सुभूमि नाम का उद्यान था।

उस चम्पा नगरी, में सोम, सोमदत्त और सोमभूति नाम के तीन धनाढय ब्राह्मणबन्धु निवास करते थे। वे ऋग्वेदादि ब्राह्मण शास्त्रों के ज्ञाता थे।

उन तीनों की पत्नियाँ थी–नागश्री, भूतश्री, यक्षश्री। वे रूपवती थीं और ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय थीं।

एक बार तीनों ब्राह्मणबन्धुओं ने मिलकर विचार किया "हमारे पास बहुत धन है। सात पीढ़ियों तक खूब दिया जाय, खूब खाया जाय और खूब बाँटा जाय तो भी नहीं खुट सकता। अत. हमलोगों को एक दूसरे के घरों में प्रतिदिन बारी-बारी से उत्तमोत्तम भोजन बनवा-कर एक साथ बैठकर खाना चाहिये।" यह बात सबने स्वीकार की। वे प्रतिदिन एक दूसरे के घरों में भोजन बनवाते और साथ में बैठ-कर खाते।

एक दिन नागश्री के घर भोजन की बारी आई। उस दिन नागश्री ने उत्तम प्रकार का भोजन बनाया। शाक के लिये उसने एक

रसदार बड़ा तुम्बा पसन्द किया। तुम्बे को खुरनी पर घिसकर उसका चूरा बनाया और फिर उसमें विविध मसाले डाल कर तेल में छौका। शाक बन जाने के बाद उसने एक कौर मुँह में डाला तो पता चला कि तुम्बा अत्यन्त कड़ुआ और विषैला है। एक ही कौर खाकर नागश्री घबरा उठी।

भोजन करने का समय सन्निकट था। अतएव विलम्ब न करके नागश्री ने कड़ुवे तुम्बे के शाक को एक ओर छिपाकर रख दिया और उसके बदले दूसरे मीठे तुम्बे का शाक तैयार कर लिया।

उसके बाद तीनों ब्राह्मणों ने और उनकी पत्नियों ने साथ में बैठकर भोजन किया और वे अपने अपने घर चले गये।

उस समय धर्मघोष नामक स्थविर बहुत बड़े शिष्य परिवार के साथ चम्पा नगरी के सुभूमिभाग उद्यान में पधारे। उन्होंने साधु के योग्य उपाश्रय की याचना की और वहाँ धर्मध्यान करते हुए रहने लगे। उन्हें वन्दना करने के लिये परिषद् निकली। स्थविर मुनिराज ने धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

धर्मघोष स्थविर के एक शिष्य थे जिनका नाम था धर्मरुचि अनगार। ये तेजोलेश्या से सम्पन्न थे और घोर तपस्वी थे। मास मास खमण का तप करते थे।

उस दिन उनका मास खमण का पारणा था। उन्होंने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। दूसरे प्रहर में ध्यान किया। तीसरे प्रहर में पात्रों का प्रतिलेखन कर उसे ग्रहण किया और धर्मघोष स्थविर से आज्ञा प्राप्त कर आहार के लिए चम्पा नगरी की ओर चले गये। ऊँच नीच और मध्यम कुलों में आहार की गवेषणा करते हुए नागश्री के घर जा पहुँचे। परिजनों की निंदा के भय से नागश्री ने कड़ुवे तुम्बे के शाक को छिपा कर रखा था वह उसकी व्यवस्था का विचार कर ही रही थी कि इतने में तपस्वी को अपने घर में भिक्षा के लिए आते देखा। खड़े होकर उसने तपस्वी का स्वागत किया और उस कड़ुवे तुम्बे के शाक को धर्मरुचि अनगार के पात्र में उँडेल दिया।

मुनि ने सोचा-इस बहिन के मन में भक्ति भाव की उग्रता है। उन्हें क्या पता था कि मै इसके लिये उकरड़ा बन रहा हूँ। आहार पर्याप्त समझ कर मुनि अपने स्थान की ओर चले।

नागश्री जानती थी कि कडुवा तुम्बा प्राणघातक विष बन गया है। फिर भी अपनी भूल को छिपाने के लिये उसने महान तपस्वी के प्राणों की परवाह नहीं की। उन्हें विष बहरा दिया। अपनी झूठी मान प्रतिष्ठा की खातिर नागश्री ने महामुनि के जीवन का अन्त करने का साहस कर लिया। उसने सोचा—रद्दी चीजें डालने के लिये दूसरों को उकरड़े पर जाना पड़ता है। मै भाग्यशालिनी हूँ कि उकरड़ा मेरे घर आ गया। इन्हीं अधम विचारों के कारण नागश्री ने घोर नरकायु का बन्ध कर लिया।

आहार लेकर धर्मरुचि अनगार अपने गुरुदेव धर्मघोष स्थविर के पास आये। स्थविर को वन्दन किया और लाया हुआ आहार दिखलाया। शाक को देखते ही उसकी गन्ध से उसकी कटुता का आभास उन्हें मिल गया। जब उसे चखा तो वह अत्यन्त कडुवा और विषैला लगा। धर्मघोष स्थविर ने कहा—मुने! इस आहार के सेवन से तुम्हारी अकाल में ही मृत्यु हो जावेगी। अत. इसे एकान्त में जीव रहित स्थान में डाल आवो और दूसरा एषणीय आहार लाकर पारणा करो।

गुरुदेव का आदेश पाकर धर्मरुचि अनगार तुम्बे के शाक को एकान्त और जीवरहित स्थान् में डालने के लिये चले। उद्यान से कुछ दूरी पर वे पहुँचे। वहाँ जीवरहित स्थल को देखकर शाक की एक बूँद डाल दी। उन्होंने परखना चाहा कि इसकी गन्ध से कोई जीव जन्तु तो नहीं आते? मुनि जी की कल्पना ठीक निकली। शाक की गन्ध से हजारों चीटियाँ वहाँ आ गईं। उनमें से जिस चीटी ने वह शाक खाया तत्काल वह मर गई। चीटियों को मरते देख धर्मरुचि अनगार का हृदय अनुकम्पा से भर गया। वह सोचने

लगे—अरे यह क्या ? इतना विष इस आहार में, जिसको कि मैं यहाँ फेंकना चाहता हूँ। इस आहार से इतनी हिंसा! लाखों जीवों का नाश! आहार की एक बूँद से इतने जीवों के प्राण पखेरू उड़ गये तो इस सम्पूर्ण आहार से कितने प्राणियों का नाश हो जायगा! नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मै केवल अपनी रक्षा के लिये इतने जीवों की हिंसा का निमित्त नहीं बनूँगा।

फिर विचार आया-मगर गुरुदेव का आदेश है कि इसे निरवद्य भूमि में डाल दिया जाय। न डालने से आज्ञा भंग का दोष होगा।

मगर अन्तः करण की करुणा की लहरों ने तत्काल समाधान कर दिया-गुरुदेव ने निरवद्य स्थान में डालने का आदेश दिया है। वह निरवद्य स्थान मेरे उदर के सिवाय और क्या हो सकता है?

बस, दयाधन मुनि ने जीव-जन्तुओं की अनुकंपा के निमित्त उस विषैले तुम्बे के शाक को अपने उदर में डालने का निश्चय कर लिया। इसके लिए पहले उन्होंने मुख वस्त्रिका की प्रतिलेखना कर मस्तक सहित ऊपर के भाग का भी प्रतिलेखन किया। उसके बाद जिस तरह सर्प बिल में प्रवेश कर जाता है मुनिने भी अनासक्त भाव से उस आहार को अपने पेट में उंडेल दिया। जीवों की रक्षा भी होगई और गुरुदेव के आदेश का भी पालन हो गया।

विषैले शाक से तत्काल मुनि के शरीर पर असर होने लगा। उठने बैठने की शक्ति भी क्षीण होने लगी। अपनी मृत्यु का समय नजदीक जानकर उन्होंने आचार के भाण्ड-पात्र एक जगह रख दिये। स्थंडिल का प्रतिलेखन किया। दर्भ-घास का बिछौना बिछाया और उस पर आसीन होगये। पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंक आसन से बैठकर दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर आवर्तन करके अंजलि बद्ध हो इस प्रकार कहने लगे—

"अरिहंतों यावत् सिद्धगति को प्राप्त भगवंतों को नमस्कार हो। पहले भी मैं ने धर्मघोष स्थविर के पास सम्पूर्ण प्राणातिपात से परि-

ग्रह तक का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान किया था। इस समय भी मै उन्हीं भगवन्तों के समीप सम्पूर्ण प्राणातिपात से परिग्रह तक का प्रत्याख्यान करता हूँ। जीवनपर्यन्त के लिये साथ ही अन्तिम श्वासोच्छवास के साथ अपने इस शरीर का तथा अठारह पापस्थानों का भी परित्याग करता हूँ। इस प्रकार आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि पूर्वक अनगार ने देह का परित्याग किया।

चिरकाल तक धर्मरुचि अनगार को वापस न आया देख धर्मघोष स्थविर ने श्रमणों को बुलाकर कहा-श्रमणों! धर्मरुचि अनगार कटु तुंबे का शाक परठने (डालने) के लिए स्थंडिलभूमि में गया हुआ है किन्तु बहुत समय होगया है वह वापस नहीं लौटा अतः तुम जाओ और उसकी खोज कर आओ।

गुरुदेव का आदेश पाकर कुछ श्रमण धर्मरुचि की खोज करने के लिए स्थंडिल भूमि पर गये। वहाँ उन्होंने धर्मरुचि के निष्प्राण देह को देखा। उनके मुख से सहसा यह शब्द निकला-हा! हा! यह बड़ा बुरा हुआ। इस महातपस्वी ने जीव रक्षा के लिए अपने प्राण को बलि वेदी पर चढ़ा दिया। धन्य है मुनिवर! मृत्यु तुमको न जीत सकी किन्तु तुमने तो देखते ही देखते मृत्यु को जीत लिया?

मुनियों ने धर्मरुचि अनगार के कालधर्म के निमित्त कायोत्सर्ग किया। उनके पात्र आदि को लेकर वे धर्मघोष स्थविर के पास आये और विनय पूर्वक बोले—धर्मरुचि अनगार की मृत्यु हो गई है। यह हैं उनके पात्र और चीवर। उस तपस्वी ने जीवों की रक्षा के लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया।

धर्मरुचि अनगार की मृत्यु सुनकर धर्मघोष स्थविर ने अपने पूर्व ज्ञान का उपयोग लगाया और उन्होंने अपने पूर्वज्ञान में धर्मरुचि की मृत्यु के बाद का भव जान लिया। उन्होंने श्रमणों से कहा-श्रमणों! धर्मरुचि अनगार स्वभाव से भद्र और विनीत प्रकृति का था। उसने जीवन रक्षा के लिये कडुवे तुम्बे का शाक खा कर अपने देह का उत्सर्ग

कर दिया। वह मरकर के सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ तेतीस सागरोपम तक रहकर पश्चात् महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा।

हे आर्यो! "उस जघन्य, अपुण्य और निंबोली के समान कड़वी नागश्री को धिक्कार है। उसनें मासोपवासी धर्मरूचि को विषमय तुम्बा वहरा कर मार डाला है।"

धर्मघोष स्थविर के मुख से यह वृत्तान्त सुन कर श्रमण निर्ग्रन्थ चम्पा के राजमार्ग पर आये और लोगों से इस प्रकार कहने लगे- धिक्कार है उस नागश्री ब्राह्मणी को, जिसने धर्मरुचि अनगार को विषमय तुम्बा खिलाकर असमय में मार डाला है।

श्रमणों के मुख से यह सुनकर नगरी के अन्य लोग भी नागश्री को धिक्कारने लगे। धीरे धीरे यह बात ब्राह्मणों के कानों तक पहुँची। नागश्री के इस भयानक कृत्य से तीनों ब्राह्मण अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने नागश्री को खूब धिक्कारा और उसे ताड़ना, तर्जना कर घर से बाहर निकाल दिया।

घर छोड़ने में नागश्री को अतिशय पीड़ा हुई। अभीतक वह एक प्रतिष्ठित परिवार की संभ्रान्त कुलवधू थी, अब दर-दर भटकने लगी। घर पर मिलने वाले सुखों का स्मरण करके वह संताप और पश्चाताप की ज्वालाओं में झुलसने लगी, वह जहाँ कहीं जाती, घृणापूर्वक दुरदुराई जाती। लोग उसका मुँह देखने में भी अमंगल समझने लगे। सड़ी कुतिया को जैसे कोई विश्राम नहीं लेने देता, उसी प्रकार नागश्री को भी कोई अपने घर के सामने नहीं ठहरने देता था। भूख-प्यास तिरस्कार और लांछना से पीड़ित नागश्री दिनों-दिन निर्बल और कृश होने लगी। अन्त में उसे खांसी, दाह, योनिशूल आदि भयंकर रोगों ने ग्रस लिया। मिट्टी के ठीकरे में भीख मांगने पर भी उसे भरपेट भीख न मिलती थी। इन सब दुस्सह दुःखों के कारण नागश्री की

व्यथा की सीमा न रही। वह बुरी तरह छटपटाने लगी। जीते जी मृत्यु की दारुण यातनाएँ भुगतने लगी।

अन्त में मलिन और कलुषित परिणामों से आर्तध्यान से पीड़ित होकर नागश्री ने शरीर का परित्याग किया और मरकर छठें नरक में उत्पन्न हुई। वहाँ उसने बाइस सागरोपम तक दारुण वेदनाएँ सहन कीं।

बाईस सागरोपम तक नारकीय यंत्रणाएँ सहन करने के बाद नागश्री का जीव मत्स्य योनि में उत्पन्न हुआ। वहाँ शस्त्र और दाह पीड़ा से मरकर सांतवीं नरक में उत्पन्न हुई। वहाँ की आयु पूरी कर वह पुनः मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। वहाँ भी वह शस्त्र द्वारा मारी गई और पुनः छठीं नरक में उसने जन्म ग्रहण किया। इस प्रकार सातवे से लेकर पहले नरक तक बीच बीच में एक एक बार तिर्यञ्च योनि में जन्म लेकर दो दो बार प्रत्येक नरक में उत्पन्न हुई।

स्थावर और द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय जीवों की योनि में अनेकानेक जन्म ग्रहण किये और जन्म मरण की यातनाएँ सहन कीं।

(नागश्री के आगे के भव के लिए देखिये साध्वी सुकुमालिका)

थावच्चा पुत्र अनगार

प्राचीन काल में द्वारवती नाम की नगरी थी। वह पूर्व पश्चिम में बारह योजन लम्बी और उत्तर दक्षिण में नौ योजन चौड़ी थी। वह कुबेर की बुद्धि से निर्मित हुई थी। सुवर्ण के श्रेष्ठ प्राकार से और पंचरंगी नाना मणियों के बने कगूरों से शोभित थी। वह अलकापुरी के समान जान पड़ती थी। वहाँ के लोग बड़े सुखी और समृद्ध थे। इस नगरी के ईशान कोण में रैवतक पर्वत था। इस पर्वत के समीप ही नन्दनवन नाम का उद्यान था। वह फल फूलों और विविध वृक्ष लताओं से सुशोभित था। नगर की जनता वहाँ आकर आमोद प्रमोद करती थी।

तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव कृष्ण वहाँ निवास करते थे। समुद्रविजय आदि दश दशारों, बलदेव आदि पांच महावीरों, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं, प्रद्युम्न आदि साढ़ेतीन करोड़ कुमारों,

शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओं, वीरसेन आदि इक्कीस हजार पुरुषों, महासेन आदि छप्पन हजार योद्धाओं, रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानियों, अनंग सेना आदि अनेक सहस्त्र गणिकाओं, ईश्वरों, एवं तलवरों सार्थवाहों आदि बहुसंख्यक लोग सुखपूर्वक वहाँ रहते थे।

उस नगरी में थावच्चा नाम की एक गाथापत्नी निवास करती थी। वह बुद्धिमती, सुन्दरी तथा व्यवहार दक्षा थी। उसके पास अपार धनराशि थी। पति का अभाव होने पर भी पति की विरासत के रूप में थावच्चा की गोद में एक सुन्दर, सुकोमल एवं प्रिय दर्शनीय आत्मज था थावच्चा पुत्र। थावच्चा का वह एक मात्र आधार था। मां अपने पुत्र को प्राण से भी अधिक चाहती थी। जब थावच्चापुत्र आठ वर्ष का हुआ तो उसे कलाचार्य के पास भेज दिया गया। उसने अल्प समय में पुरुष की सभी कलाएँ सीखलीं। युवा होते ही बत्तीस सुन्दरी एवं गुणवती इभ्य कन्याओं के साथ थावच्चापुत्र का विवाह होगया। उसे बत्तीस बत्तीस दहेज मिले। थावच्चा गाथा-पत्नी ने अपनी पुत्रवधुओं के लिए बत्तीस सुन्दर प्रासाद बनवाये जो विशाल और ऊंचे थे। उनके मध्य में थावच्चापुत्र के लिए एक विशाल महल बनवाया। वह उसमें अपनी बत्तीस सुन्दरियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी के नन्दनवन उद्यान में पधारे। भगवान के आगमन के समाचार मिलते ही नगरी की जनता दर्शनार्थ उद्यान की ओर प्रस्थित हुई। कृष्णवासुदेव को जब भगवान के आगमन की सूचना मिली तो वे भी राजोचित महान वैभव के साथ विजय नामक गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर उद्यान की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँच उनकी पर्यूपासना करने लगे। थावच्चापुत्र भी पूरे वैभव के साथ भगवान को वन्दन करने तथा उनका उपदेश सुनने के लिए वहाँ पहुँचा। सारी जनता के उचित स्थान पर बैठ जाने के बाद भगवान ने उपदेश देना आरम्भ किया। उपदेश क्या था मानो

जीवन के धार्मिक विकास का शाश्वत् मार्ग दिखाया जा रहा था। भगवान के उपदेश का थावच्चापुत्र पर गहरा असर पड़ा। उसके हृदय सरोवर में वैराग्य की तरंगे निरन्तर उठने लगीं। उसके मन पर से मानवोचित सांसारिक वैभव की भावना इस तरह से उतर गई जैसे साँप के शरीर पर से पुरानी काँचली उतर जाती है। अब उसे संसार की विषय वासना से घृणा होने लगी।

सबके चले जाने पर थावच्चापुत्र भगवान के सन्मुख उपस्थित होकर नम्रभाव से बोला–भगवन्! आपका प्रवचन मुझे अत्यन्त प्रिय और यथार्थ लगा। मेरी इच्छा है कि मैं आपके चरणों में मुण्डित होकर प्रव्रजित हो जाऊँ। एकमात्र माता से पूछना ही शेष है उनसे पूछ कर शीघ्र ही प्रव्रज्या के लिए आपकी सेवा में उपस्थित होता हूँ। भगवान ने उत्तर में कहा–जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु ऐसे काम में विलम्ब मत करो। यह सुन थावच्चापुत्र भगवान को नमस्कार कर घर पहुँचा। माता को प्रणाम कर कहने लगा—

मैंने आज भगवान का उपदेश श्रवण किया। उनके उपदेश से मेरा मन संसार से ऊब गया है। मेरी इच्छा है कि मैं भगवान के चरणों में उपस्थित होकर दीक्षा ग्रहण कर लूं। थावच्चापुत्र ने बड़ी नम्रता से माता के सामने अपना मनोभाव व्यक्त किया और स्वीकृति मांगी।

अपने प्रिय और एकलौते पुत्र की यह बात सुन गाथापत्नी आवाक् सी रह गई। उसे स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि मेरा यह सुकुमार युवापुत्र अपनी बत्तीस अनिद्य सुन्दरियों का एव अपार धन-राशि का परित्याग कर इतना जल्दी अनगार बनने के लिए उद्यत हो जायगा। वह बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब दासियों के उपचार से कुछ सचेत हुई तो वह स्नेह पूर्ण हृदय से व मीठे शब्दों से थावच्चापुत्र को दीक्षा न लेने के लिए समझाने लगी। वह कहने लगी—पुत्र! तुम अभी युवा हो, तुम्हारा शरीर भी अत्यन्त कोमल

है । जब तुम भुक्तभोगी हो जावो तब संयम ग्रहण करना । साथ ही मेरी वृद्धावस्था का तू ही एकमात्र आधार है । इन बत्तीस वधुओं का सहारा है । अगर तू हमें छोड़कर संयम ग्रहण करेगा तो हम सब निस्सहाय हो जायेगें ।

माता के इस प्रकार के वचनों का थावच्चापुत्र पर कोई असर नहीं हुआ प्रत्युत वह और भी कठोर हो गया और दृढ़तापूर्वक आज्ञा मांगने लगा । पुत्र के उत्कट वैराग्य के सामने माता को नत मस्तक होना पड़ा और उसने दीक्षा की स्वीकृति दे दी ।

थावच्चा गाथापत्नी पुत्र के दीक्षा महोत्सव के लिए छत्र चँवर और मुकुट प्राप्त करने के लिए कृष्ण वासुदेव के पास पहुँची । उपहार भेंट कर उसने वासुदेव कृष्ण से कहा-मेरा पुत्र संसार के भय से उद्विग्न होकर अरिहन्त अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है । मैं उसका निष्क्रमण सत्कार करना चाहती हूँ । अतः आप उसके लिए छत्र चँवर एवं मुकुट प्रदान करें ऐसी मेरी इच्छा है । यह सुन कृष्ण वासुदेव बोले--देवी तुम निश्चिन्त रहो । मै स्वयं तेरे पुत्र का दीक्षा महोत्सव करूँगा ।

उसके बाद कृष्ण वासुदेव विजय हस्तीरत्न पर आरूढ़ हो थावच्चा-पुत्र के घर गये और थावच्चापुत्र से कहने लगे---वत्स ! मेरी भुजाओं की छाया के नीचे रहकर मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम भोग का उपभोग करो । मेरी छत्रछाया में तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा । तुम इस समय दीक्षा का विचार छोड़ दो । इस पर थाव-च्चापुत्र ने वासुदेव कृष्ण ने कहा--स्वामी ! अगर आप मुझे जन्म मरण के दुःख से मुक्त कर सकते हो तो मैं आपकी आज्ञा के अनुसार आपकी छत्रछाया में रहने के लिए तैयार हूँ । इस पर कृष्ण ने कहा-यह मेरी शक्ति के बाहर की वस्तु है । जब मै स्वयं ही जन्म मरण के दुःख से युक्त हूँ तो तुझे इससे मुक्त कैसे कर सकता हूँ ? जन्म मरण के दुःख से मुक्ति पाने का मार्ग तो संयम ही है । थावच्चापुत्र के तीव्र वैराग्यभाव से कृष्ण वासुदेव बड़े प्रभावित हुए । उन्होंने

उसी क्षण अपने सेवकों से इस प्रकार की घोषणा करवाई कि थावच्चापुत्र अपनी अपार धनराशि का परित्याग कर जन्म मरण के भय से भयभीत बनकर अर्हत अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा ग्रहण कर रहा है। राजा, युवराज, रानी, कुमार, ईश्वर, तलवर, कौटुम्बिक, मांडलिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति आदि जो भी व्यक्ति थावच्चा पुत्र के साथ दीक्षा ग्रहण करेगा उसके समस्त परिवार का भरण पोषण कृष्ण वासुदेव करेंगे। इस घोषणा को सुनकर एक हजार व्यक्ति दीक्षा के लिए तैयार हो गये।

एक हजार पुरुषों के साथ थावच्चापुत्र शिविका में बैठकर भगवान अरिष्टनेमि के समीप पहुँचे और उन्होंने चार महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार किया। थावच्चापुत्र अनगार बन गये। अंगसूत्रों का अध्ययन करने के बाद थावच्चापुत्र अनगार को उनके एक हजार साथी, शिष्य के रूप में मिल गये। थावच्चापुत्र अनगार भगवान की आज्ञा लेकर हजार अनगारों के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

विचरण करते करते थावच्चापुत्र अनगार हजार शिष्यों के साथ शैलकपुर पधारे और नगर के बाहर सुभूमिभाग उद्यान में जा विराजे। वहाँ शैलक नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती और पुत्र का नाम मण्डुक था। उनके पंथक आदि पाँच सौ मन्त्री थे। वे चारों बुद्धि के निधान एवं राज्यधुरा के चिंतक थे। थावच्चापुत्र अनगार के आगमन का समाचार सुनकर नगर की जनता दर्शन करने गई। महाराजा शैलक भी अपने पाँच सौ मन्त्रियों के साथ दर्शन करने गया। अनगार का उपदेश सुन उसने पाँच सौ मन्त्रियों के साथ श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। थावच्चापुत्र अनगार ने वहाँ से बाहर जनपद में विहार कर दिया।

शुक अनगार

उस समय सौगन्धिका नाम की नगरी थी। उस नगरी के बाहर नीलाशोक नामक उद्यान था। वहाँ सुदर्शन नाम का नगर सेठ रहता था। उसके पास अपार धनराशि थी।

उस समय शुक नाम का एक परिव्राजक था। वह ऋग्वेद आदि चार वेदों तथा षष्टितंत्र आदि सांख्य शास्त्रों में कुशल था। पांच यमों और पांच नियमों से युक्त दश प्रकार के शौच मूलक परिव्राजक धर्म का, दान धर्म का, शौच धर्म का और तीर्थ स्नान का उपदेश देता था और उसका प्रचार करता था। वह गेरुआ वस्त्र पहनता था। अपने हाथ में त्रिदंड, कुण्डिका-कमण्डल, मयूरपुच्छ का छत्र, छन्नालिक (काष्ठ का एक उपकरण) अंकुश, पवित्री और केसरी ये सात उपकरण रखता था। एक हजार परिव्राजकों के साथ वह सौगन्धिका नगरी में आया और परिव्राजकों के मठ में ठहरा।

शुक परिव्राजक के आने के समाचार सुन नगरी की जनता धर्मोपदेश सुनने उसके पास गई। सुदर्शन सेठ भी गया। शुक परिव्राजक ने शौच धर्म का उपदेश देते हुए कहा-हमारे धर्म का मूल शौच है। शौच दो प्रकार का है। एक द्रव्य शौच और दूसरा भाव शौच। द्रव्य शौच जल और मिट्टी से होता है और भाव शौच दर्भ और मंत्र से होता है। जो हमारे शौच धर्म का पालन करता है वह अवश्य स्वर्ग में जाता है।

शुक परिव्राजक के उपदेश से सुदर्शन सेठ बड़ा प्रभावित हुआ और उसने परिव्राजक से शौच धर्म को ग्रहण किया। वह परिव्राजकों की भोजन पान आदि से खूब सेवा करने लगा। कुछ दिन सोगन्धिका में रहकर शुक परिव्राजक ने वहाँ से विहार कर दिया।

थावच्चा अनगार ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपने हजार शिष्यों के साथ सौगन्धिका नगरी में पधारे और नीलाशोक उद्यान में ठहरे।

थावच्चापुत्र अनगार का आगमन जानकर परिषद् निकली। सुदर्शन सेठ भी निकला। उसने थावच्चापुत्र अनगार को विनयपूर्वक वन्दन नमस्कार कर पूछा-भन्ते! आपके धर्म का मूल क्या है? थावच्चापुत्र अनगार ने उत्तर में कहा-सुदर्शन! हमारे धर्म का मूल विनय है।

वह विनय दो प्रकार का है-एक अगार विनय अर्थात् गृहस्थ का आचार दूसरा अनगार विनय अर्थात् मुनि का आचार। इनमें जो अगार विनय है वह पांच अनुव्रत, सात शिक्षाव्रत और ग्यारह उपासक प्रतिमा रूप है। जो अनगार विनय है—वह पाच महाव्रत रूप यथा-समस्त प्राणातिपाल से विरति, समस्त मृषावाद से विरति, समस्त अदत्तादान से विरति, समस्त मैथुन से विरति, समस्त परिग्रह से विरति, तथा समस्त रात्रिभोजन से विरति, समस्त मिथ्यादर्शन शल्य से विरति, दश प्रकार का प्रत्याख्यान और वारह भिक्षु प्रतिमाएँ। इस प्रकार के विनय मूलधर्म का आचरण करने से यह जीव क्रमशः आठ कर्मप्रकृतियों का क्षय कर लोक के अग्रभाग में मोक्ष में प्रतिष्ठित होता है। वह पुनः जन्म मरण नहीं करता।

थावच्चापुत्र अनगार ने सुदर्शन से पूछा—सुदर्शन! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है? सुदर्शन ने उत्तर दिया-भगवन्! हमारा धर्म शौचमूलक कहा गया है। इस धर्म के आचरण से जीव स्वर्ग में जाते हैं।

थावच्चा पुत्र अनगार ने कहा—सुदर्शन! रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से धोने पर क्या उसकी शुद्धि हो सकती है? इस पर सुदर्शन ने कहा—'नहीं" तब थावच्चा अनगार ने कहा-इसी प्रकार हिंसा से, मिथ्यादर्शन शल्य से, पाप स्थानों की शुद्धि नहीं हो सकती। जैसे रुधिर से सना हुआ वस्त्र क्षार से शुद्ध होता है वैसे ही हिंसा; असत्य; चोरी; मैथुन एव परिग्रहादि से विरमन होने से ही पापस्थानों की शुद्धि होती है आत्मा निर्मल और पावन बनती है।

थावच्चापुत्र अनगार का यह कथन उस पर असर कर गया। उसने शौच मूल धर्म का परित्याग कर विनय मूल धर्म को स्वीकार किया। वह श्रमणों की आहार पानी आदि से खूब सेवा करने लगा।

इधर शुक परिव्राजक को समाचार मिला कि सुदर्शन सेठ ने शौच धर्म का परित्याग कर विनय धर्म स्वीकार कर लिया है तो वह

सुदर्शन सेठ को शौच धर्म में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए परिव्राजकों के साथ सौगन्धिका आया और मठ में ठहरा। वहाँ से वह थोड़े परि-व्राजकों को साथ में ले सुदर्शन के घर पहुँचा। शुक परिव्राजक को अपने घर आता देख वह उनके सम्माम में न खड़ा हुआ न आगे गया और न वन्दना ही की किन्तु जहाँ था वहीं बैठा रहा। शुक परिव्राजक सुदर्शन के पास पहुँचा और बोला-सुदर्शन! मै जब भी तुम्हारे पास आता था उस समय तुम खड़े होकर मेरा आदर करते थे, सम्मान करते थे, वन्दन नमस्कार कर विविध शंकायें करते थे किन्तु आज मैं तुम्हें अत्यन्त बदला हुआ देखता हूँ। क्या मैं इसका कारण जान सकता हूँ?

शुक परिव्राजक के यह कहने पर सुदर्शन अपने स्थान से खड़ा हुआ और शुक को नम्रता पूर्वक बोला-भदन्त! अरिहन्त अरिष्टनेमि के अन्तेवासी थावच्चा पुत्र अनगार यहाँ आये हैं और यहीं नीलाशोक उद्यान में ठहरे है। उनके पास से मैने विनय मूल धर्म को स्वीकार किया है।

शुक परिव्राजक ने कहा-सुदर्शन हम तुम्हारे धर्माचार्य थावच्चा-पुत्र अनगार के पास चलेंगे। उनसे मै प्रश्न करूँगा। अगर उनसे मेरे प्रश्नों का समाधान हुआ तो मै उन्हे वन्दना करूँगा, अगर ऐसा न हुआ तो मै उन्हें निरुत्तर कर दूँगा।

सुदर्शन ने यह बात स्वीकार की और ये दोनों ही थावच्चा पुत्र अनगार के पास पहुँचे। थावच्चा पुत्र अनगार के समीप था शुक परिव्रा-जक बोला-भर्गवन्! तुम्हारी यात्रा चल रही है? यापनीय है? तुम्हारे अव्याबाध है? और तुम्हारा प्रासुक विहार हो रहा है? थावच्चा अनगार ने उत्तर में कहा—हे शुक! मेरी यात्रा भी हो रही है। यापनीय भी वर्त रहा है। अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी हो रहा है।

पुनः शुक ने कहा—भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है ?

थावच्चापुत्र—हे शुक ! ज्ञानदर्शन, तप संयम आदि योगोंसे षट्काय के जीवों की यतना (रक्षा) करना ही हमारी यात्रा है ।

शुक—भगवन् ! यापनीय क्या है ?

अनगार—शुक ! यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिय यापनीय ।

शुक—इन्द्रिय यापनीय किसे कहते हैं ?

अनगार—शुक ! हमारी श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय विना किसी उपद्रव के वशीभूत रहती है, यही हमारा इन्द्रिय यापनीय है ।

शुक—नो इन्द्रिय यापनीय क्या है ?

अनगार—शुक ! क्रोध, मान, माया, लोभरूप कषाय क्षीण हो गये हों, उपशान्त हो गये हों, उदय में नहीं आ रहे हों, वही हमारा नो इन्द्रिय यापनीय है ।

शुक—भगवन् ! अव्याबाध क्या है ?

अनगार—हे शुक ! रोग उदय में न आवे यही हमारा अव्याबाध है।

शुक—भगवान् ! प्रासुक विहार क्या है ?

अनगार—हे शुक ! निर्दोष स्थान में निर्दोष वस्तु को ग्रहण कर ठहरना ही हमारा प्रासुक विहार है ।

शुक—भगवन् ! आपके लिये सरिसवया भक्ष्य है या अभक्ष्य है ?

अनगार—हे शुक ! 'सरिसवया' हमारे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी

शुक—भगवन् किस अभिप्राय से आप ऐसा कहते हो कि सरिसवया भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ?

थावच्चापुत्र अनगार—हे शुक ! 'सरिसवया' दो प्रकार का है—एक मित्र सरिसवया और दूसरा धान्य सरिसवया (सरसों) उनमें जो धान्य सरिसवया है वह यदि शस्त्र परिणत, प्रासुक, याचित, एषणीय, लब्ध है

तो भक्ष्य है और इससे विपरीत अभक्ष्य है तथा 'मित्र सरिसवया' है वह अभक्ष्य है।

शुक--भगवन् कुलत्था आपके लिए भक्ष्य है या अभक्ष्य है।

अनगार-हे शुक ! कुलत्था के दो भेद हैं—स्त्री कुलत्था और धान्य कुलत्था (कुलक)। स्त्री कुलत्था अभक्ष्य है। धान्य कुलत्था अगर शस्त्र परिणत, प्रासुक, याचित, एषणीय, लब्ध है तो वह भक्ष्य है ?

शुक–भगवान् ! मास भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

अनगार–हे शुक ! काल मास, अर्थमास और धान्य मास से, मास तीन प्रकार का है। उनमें काल मास (महिना) और अर्थमास (माशा) अभक्ष्य है और धान्य मास (उड़द) अगर शस्त्र परिणत, प्रासुक, याचित, एषणीय लब्ध है तो वह भक्ष्य है।

शुक–भगवान् ! आप एक हैं ? दो हैं ? अनेक हैं ? अक्षय है ? अव्यय हैं ? अवस्थित हैं ? भूत, भाव और भावी वाले हैं ?

यह प्रश्न करने का परिव्राजक का अभिप्राय यह है कि अगर थावच्चापुत्र अनगार आत्मा को एक कहेंगे तो श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञान और शरीर के अवयव अनेक होने से आत्मा की अनेकता का प्रतिपादन करके एकता का खण्डन करूँगा। अगर वे आत्मा का द्वित्व स्वीकार करेंगे तो 'अहम्' 'मै' प्रत्यय से होने वाली एकता की प्रतीति से विरोध बतलाऊँगा। इसी प्रकार आत्मा की नित्यता स्वीकार करेंगे तो मै अनित्यता का प्रतिपादन करके खण्डन करूँगा। यदि अनित्यता स्वीकार करेगे तो उसके विरोधी पक्ष को अंगीकार करके नित्यता का समर्थन करूँगा। किन्तु परिव्राजक के अभिप्राय को असफल बनाते हुए, अनेकान्तवाद का आश्रय लेकर थावच्चापुत्र अनगार उत्तर देते हैं—

हे शुक ! मैं द्रव्य की अपेक्षा से एक हूँ क्योंकि जीव द्रव्य एक ही है। (यहाँ द्रव्य से एकत्व स्वीकार करने से पर्यायकी अपेक्षा अनेकत्व मानने में विरोध नहीं रहता।) ज्ञान, दर्शन की अपेक्षा मै दो

भी हूँ। प्रदेशों की अपेक्षा से मैं अक्षय भी हूँ, अव्यय भी हूँ, अवस्थित भी हूँ। उपयोग की अपेक्षा से अनेक भूत (अतीतकालीन) भाव (वर्तमान) कालीन और भावी-भविष्यत् कालीन भी हूँ। अर्थात् अनित्य भी हूँ। तात्पर्य यह है कि आत्मा का गुण उपयोग है यह गुण आत्मा से कंथचित् अभिन्न है और वह भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालीन विषयों को जानता है और सदैव परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार उपयोग अनित्य होने से आत्मा भी कन्थंचित् अनित्य है।

थावच्चापुत्र अनगार के उत्तर से शुक परिव्राजक को बड़ा सन्तोष हुआ। उसने खड़े हो कर थावच्चापुत्र अनगार को विनय पूर्वक वन्दन किया और धर्म का श्रवण किया। धर्म श्रवण कर बोला-भगवन् ! आपका निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे अत्यन्त रुचिकर लगा। मेरी निर्ग्रन्थ प्रवचन में अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। मै अपने हजार शिष्य परिव्राजकों के साथ आप के समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। यह कहकर शुक परिव्राजक ने अपने हजार परिव्राजकों के साथ एकान्त में जाकर परिव्राजकों का वेश त्याग दिया और अपने हाथों से शिखा उखाड़ ली। उखाड़ कर अपने हजार शिष्यों के साथ थावच्चा पुत्र अनगार के पास प्रव्रज्या अगीकार कर ली। तत्पश्चात् सामायिक से आरंभ करके चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। उसके बाद शुक अनगार अपने एक हजार शिष्यों के साथ निर्ग्रन्थ धर्म का प्रचार करते हुए अलग विहार करने लगे।

थावच्चापुत्र अनगार अपना अन्तिम समय सन्निकट जानकर हजार साधुओं के साथ जहाँ पुण्डरीक-शत्रुंजय पर्वत था वहाँ आये और धीरे धीरे पुण्डरीक पर्वत पर चढ़े। वहाँ श्याम वर्णीय शिलापट्ट पर आरूढ़ हो कर पादोपगमन अनशन ग्रहण किया। एक मास का

अनशन पूरा करके केवलज्ञान प्राप्त किया और देह का त्याग कर समस्त दुःखों का अन्त किया–सिद्धत्व प्राप्त किया।

किसी समय शुक अनगार अपने सहस्र शिष्यपरिवार के साथ शैलकपुर पधारे। महाराज शैलक भी अपने पांचसौ मन्त्रियों के साथ उनका उपदेश सुनने गया। उपदेश सुनने के बाद शैलक महाराजा शुक अनगार से बोला–भगवान् ! मै अपने पुत्र मण्डूक को राजगद्दी पर स्थापित कर आप के पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। अन-गार ने कहा–राजन् ! तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो। महाराजा घर आये और अपने पांचसौ मन्त्रियों को बुला कर प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की। मन्त्रियों ने भी महाराजा शैलक के साथ दीक्षा लेने का निश्चय प्रगट किया। पश्चात् महाराजा शैलक ने अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर एवं मन्त्रियों ने अपने अपने पुत्रों को मन्त्री पद देकर, पांचसौ मन्त्रियों के साथ शुक अनगार के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। शैलक राजर्षि ने स्थविरों से सामायिकादि अंग सूत्रों का अध्ययन किया। शुक अनगार ने शैलकराजर्षि को सब तरह से योग्य जानकर उन्हें पन्थक आदि पांचसौ अनगारों के साथ स्वतन्त्र विचरण करने की आज्ञा दे दी। शैलकराजर्षि स्वतन्त्र बिहार करते हुए निर्ग्रन्थ धर्म का प्रचार करने लगे।

शुक अनगार ने अपने हजार शिष्यों के साथ लम्बे समय तक संयम का पालन किया। अन्त में इन्होंने पुण्डरगिरि पर्वत पर एक मास का पादोपगमन अनशन किया और केवलज्ञान प्राप्त कर ये मोक्ष में गये।

शैलक राजर्षि तपमय जीवन व्यतीत करने लगे। नित्य नीरस अत्यन्त रूक्ष तथा कालातिक्रान्त आहार के सेवन से एक समय उनके शरीर में दाहज्वर और खुजली जैसी व्याधि उत्पन्न हो गई। इससे उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया।

वे ग्रामानुग्राम विचरण करते शैलकपुर नगर के बाहर सुभूमि-भाग उद्यान में पधारे । महाराजा मण्डूक भी अनगार के दर्शन करने उद्यान में गया । वहाँ उन्हें वन्दना कर उनकी पर्युपासना करने लगा।

महाराजा मण्डूक ने शैलक राजर्षि को रोग पीड़ित एवं अत्यन्त दुर्वल अवस्था में देखा । उसने राजर्षि से कहा-भगवन् ! मै आपके शरीर को सरोग देख रहा हूँ । रोग के कारण आपका शरीर अत्यन्त दुर्वल हो गया है अतः मै आप की योग्य चिकित्सकों द्वारा एवं उचित खान पान द्वारा चिकित्सा करवाना चाहता हूँ । आप मेरी यानशाला में पधारे । वहाँ कुछ दिन तक ठहरे । राजर्षि ने राजा की प्रार्थना स्वीकार करली और वे अपने पाचसौ अनगारों के साथ दूसरे दिन राजा की यानशाला में पधार गये ।

राजा मण्डूक ने चिकित्सकों को बुलाकर शैलक राजर्षि की चिकित्सा करने की आज्ञा दी । चिकित्सकों ने विविध प्रकार की चिकित्सा की। योग्य चिकित्सा और अच्छे खान पान से राजर्षि का रोग शान्त हो गया । वे अल्प समय में ही पूर्ण स्वस्थ और पूर्ववत् हृष्ट पुष्ट हो गये ।

रोग के शान्त होने पर भी उन्होंने मुनियों के साथ विहार नहीं किया । वे राजा के द्वारा प्राप्त उत्तम भोजन तथा मादक पदार्थों का नित्य सेवन करने लगे । वे आचार में शिथिल पड़ गये । यहाँ तक कि प्रतिदिन की मुनिचर्या भी उन्होंने छोड़ दी। प्रतिक्रमण, ध्यान, स्वाध्याय आदि सब छोड़ दिया । शैलक राजर्षि के इस शिथिलाचार से पन्थक को छोड़ शेष ४९९ अनगार एकत्र हो यह सोचने लगे-निश्चय ही शैलक राजर्षि ने राज्य का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की है। हम लोग भी आत्म कल्याण के लिए अपने विशाल परिवार, धन, वैभव; का त्याग कर इनके साथ प्रव्रजित हो गये हैं किन्तु शैलक राजर्षि इस समय प्रमादी और आचार में अत्यन्त शिथिल हो गये हैं । उत्तम भोजन और मादक पदार्थों के सेवन में अत्यन्त आसक्त

हैं। वे अब बाहर जनपद में भी विचरण करना नहीं चाहते। संयमी के लिए यह सब वर्ज्य है। अतः हम लोगों को चाहिये कि प्रातः होते ही शैलक राजर्षि की आज्ञा ले प्रातिहारिक पीठ, फलक आदि को वापिस कर पन्थक अनगार को उनकी सेवा में रख विहार कर दिया जाय। इस प्रकार विचार कर दूसरे दिन प्रातः ४९९ अनगारों ने बाहर जनपद में विहार कर दिया। पन्थक शैलक राजर्षि की सेवा में रह गया।

एक बार शैलक राजर्षि कार्तिक चातुर्मास के दिन विपुल अशन, पान, खाद्य स्वाद्य और मादकपदार्थ का सेवन कर पूर्वाह्न के समय सुख पूर्वक सोगये।

पन्थक अनगार ने चातुर्मासिक कायोत्सर्ग कर दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण कर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की इच्छा से उनकी आज्ञा प्राप्त करने उनके पास आये और चरण स्पर्श कर वन्दन करने लगे।

पन्थक मुनि के चरण स्पर्श से शैलक राजर्षि की निद्रा भंग हो गई। वे तत्काल रुष्ट हो कर बोल उठे। अरे दुष्ट, मेरी निद्रा को भङ्ग करने वाला तू कौन है? क्या तुझे अपनी जान प्यारी नहीं है? पन्थक क्रुद्ध गुरुदेव को शान्त करते हुए बोले—भगवन्! और कोई नहीं है, मैं आपका शिष्य पन्थक हूँ। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने मैं आपके पास आया था और मैंने ही आपके चरण स्पर्श करने की धृष्टता की है। मेरे इस अपराध के लिए आप क्षमा करें।

पन्थक की यह बात सुन शैलक राजर्षि चौंक गये। बोले—पन्थक! क्या आज कार्तिकी चातुर्मास है? पन्थक—हाँ भगवन्, शैलक राजर्षि उसी क्षण उठे और अपने आपको कोसने लगे। मुझे धिक्कार है। मैंने विशाल राज्य का परित्याग कर संयम ग्रहण किया है। मुझे इस प्रकार शिथिल होकर रहना नहीं कल्पता। शैलक राजर्षि ने अपने

शिथिलाचार का प्रायश्चित किया और पीठ फलक आदि को वापिस कर पन्थक के साथ शैलकपुर से विहार कर दिया।

अन्य मुनियों को जब पता चला कि शैलक राजर्षि ने शिथिलाचार का परित्याग कर पन्थक के साथ विहार कर दिया है तब वे भी शैलक राजर्षि से आ मिले और उनकी सेवा करने लगे।

शैलक राजर्षि ने वर्षों तक उत्कृष्ट संयम का पालन किया अन्तिम समय में पुण्डरिगिरि पर पादोपगमन अनशन कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देह का परित्याग कर वे अविचल सिद्ध गति में गये।

गौतमकुमार

द्वारवती नाम की अत्यन्त रमणीय नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। वह धनपति के अत्यन्त बुद्धि कौशल द्वारा निर्मित की गई थी। उसके स्वर्ण के परकोटे थे। इन्द्रमणि, नीलमणि, वैडूर्यमणि आदि नाना प्रकार के पांचवर्ण के मणियों से जड़े हुए कपिशीर्षक से सुसज्जित एवं शोभनीय थी। उस नगरी के निवासी बड़े सुखी थे। उस नगरी के बाहर ईशान कोण में रैवतक पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दनवन नामका उद्यान था। उसमें सुरप्रिय नामके यक्ष का यक्षायतन था। वह बड़ा प्राचीन और लोकमान्य था।

उस नगरी में कृष्णवासुदेव राज्य करते थे। वे लोक मर्यादा को बान्धने वाले व प्रजा के पालक थे। वे भरत के तीन खण्ड पर शासन करते थे। उनके आधीन समुद्रविजय आदि दस दशार्ह और बलदेव आदि पांच महावीर थे। प्रद्युम्न आदि साढ़ेतीन करोड़ कुमार थे। शत्रुओं से कभी पराजित न हो सकने वाले साम्ब आदि आठ हजार शूरवीर थे। महासेन आदि छप्पन हजार शक्तिशाली योद्धा थे। वीरसेन आदि कार्यकुशल इक्कीस हजार वीर थे। उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा थे। रुक्मणी आदि सोलह हजार रानियाँ एवं अनङ्गसेना आदि चौसठ कला में निपुण अनेक गणिकाएँ थी। आज्ञा में रहने

वाले और भी बहुत से ऐश्वर्यशाली नागरिक, नगररक्षक, सामन्त राजा, सेठ, सेनापति और सार्थवाह उस नगरी में रहते थे।

वहाँ अन्धकवृष्णि नाम के शक्तिशाली राजा रहते थे। स्त्रियों के सभी लक्षणों से युक्त धारिणी नाम की उसकी रानी थी। वह धारिणी रानी एक समय कोमल शय्या पर सोई हुई थी। उस समय उसने सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न देखकर रानी जागृत हुई। फिर राजा के पास जाकर उसने अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाया। राजा ने स्वप्न का फल बताते हुए कहा कि तुम एक नररत्न को जन्म दोगी। यथा-समय रानी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया और उसका नाम गौतम कुमार रखा। उसने गणित, लेख आदि बहत्तर कलाओं को सीखा। युवा होने पर आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। विवाह में आठ हिरण्यकोटी, आठ सुवर्ण कोटि आदि आठ-आठ वस्तुएँ इन्हें दहेज में मिलीं।

एक बार भगवान अरिष्टनेमि अपने विशाल परिवार के साथ द्वारवती के बाहर नन्दनवन उद्यान में पधारे। कृष्ण वासुदेव आदि अनेक यादव उनके दर्शन के लिए गये। गौतमकुमार भी भगवान की सेवा में पहुँचा। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। भगवान का उपदेश गौतम कुमार पर असर कर गया। उसने भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवन्! मैं अपने माता पिता से पूछ कर आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ इसके बाद वह घर आया और माता पिता को समझाकर उसने भगवान अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। स्थविरों के पास रहकर उसने ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। इसके बाद भगवान की आज्ञा प्राप्त कर उसने भिक्षु की बारह प्रतिमाओं का सम्यक् पालन किया तथा गुणरत्न संवत्सर आदि कठोर तप किये। बारह वर्ष तक संयम का पालन कर अन्तिम समय में शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना की और अन्तिम श्वास में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

गौतमकुमार की तरह समुद्रकुमार, सागरकुमार, अक्षोभकुमार, प्रसेनजित्‌कुमार और विष्णुकुमार ने भी भगवान अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। अंगसूत्रों का अध्ययन किया और गुणरत्न संवत्सर एवं भिक्षु प्रतिमाओं का सम्यक् आराधन किया। बारह वर्ष का संयम पालन कर एक-एक मास की संलेखना के साथ शत्रुंजय-पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की। ये नौ ही कुमार अंधकवृष्णि के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारिणी था।

इसके सिवाय अंधकवृष्णि और धारिणी देवी के और भी आठ पुत्र थे जिनके नाम ये हैं—अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवान, अचल, धरण, पूरण और अभिचन्द। इन आठों कुमारों ने विवाह किया और गौतमकुमार की तरह भगवान अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। गुणरत्न सवत्सर तप किया। सोलह वर्षतक संयम पालन कर शत्रुंजयपर्वत पर इन्होंने एक मास की संलेखना की और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये। ये अठारह कुमार सगे भाई थे।

अनिकसेन आदि कुमार

भद्दिलपुर नगर में जितशत्रु राजा राज्य करते थे। वहाँ नाग नाम का गाथापति रहता था। उसकी सुलसा नामकी गुणवती पत्नी थी। इसके अनिकसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनहितरिपु, देवसेन और शत्रुसेन नामके छ पुत्र थे। ये अत्यन्त सुकुमार थे। कलाचार्य के पास रहकर इन कुमारों ने अपनी तीव्र प्रतिभा से समस्त कलाएँ और विद्याएँ सीख लीं। युवा होने पर इनके माता पिता ने समान वय, समान वर्ण और लावण्य, रूप-यौवन मे एकसी सुशील उच्च घराने की बत्तीस इभ्य की कन्याओं के साथ इनका विवाह कर दिया। प्रत्येक कुमार को अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ साथ बत्तीस बत्तीस करोड़ का दहेज भी मिला। इन कुमारों में यह विशेषता थी कि ये समान रूप लावण्य और वय वाले लगते थे। अलसी के पुष्प के

समान इनका नीलवर्ण था । इनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था । इनके मस्तक के केश कोमल और घुँघराले थे । ये नलकुबेर के समान रूपवान थे । इनके एक समान रूप और आकृति को देख कर जनता भ्रम में पड़ जाती थी और आश्चर्य चकित हो जाती थी। विवाह होने के बाद ये कुमार विषयसुख में निमग्न हो गये ।

मोहनिद्रा को भंग करने वाले करुणासागर भगवान अरिष्टनेमि का भद्दिलपुर नगर में आगमन हुआ । वे श्रीवन उद्यान में विराजे । नगर के हजारों जन दर्शन और अमृत वाणी का महालाभ लेने भगवान की सेवा में पहुँचे । अनिक्सेन आदि कुमार भी कथा सुनने के लिये अपने महल से निकले। धर्मकथा सुनकर अनिकसेन आदि छ कुमारों ने भगवान से प्रार्थना की—"हे भगवन् ! हम अपने माता पिता से पूछ कर आपके पास दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं । उसके बाद छहों कुमार घर आये और माता पिता से दीक्षा के लिये आज्ञा मांगी। माता पिता के बहुत समझाने पर भी भोग विलास की समस्त सामग्री को छोड़ कर ये अनगार बन गये । अनगार बनने के बाद ईर्या समिति, भाषा समिति आदि से लेकर भगवान के कहे हुए प्रवचनों का पालन करते हुए विचरने लगे । इन्होंने गीतार्थ स्थविरों के पास रह कर चौदह पूर्व का अध्ययन किया और यावज्जीवन बेले बेले का तप करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की ।

एक समय बेले के पारने के दिन इन छहों अनगारों ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया और तीसरे प्रहर में भगवान के पास आकर इस प्रकार बोले—"हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो आज बेले के पारने में हम छहों मुनि तीन संघाड़ों में विभक्त होकर मुनियों के कल्पानुसार सामुदायिक भिक्षा के लिये द्वारवती में जाने की इच्छा रखते हैं ।" भगवान ने फरमाया—"देवानुप्रियो ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा ही तुम करो ।" भगवान की आज्ञा प्राप्त

कर ये मुनि दो दो के तीन संघाड़े बनाकर आहार के लिए द्वारवती की ओर निकल पड़े ।

इनमें से एक संघाड़ा द्वारवती में ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए घूमता हुआ राजा वसुदेव और रानी देवकी के घर पहुँचा । मुनियों को आहार के लिए आता देख देवकी रानी अपने आसन से उठी और सात आठ कदम उनके सामने गई और बोली- "मैं धन्य हूँ" जो मेरे घर अनगार पधारे । मुनियों के पधारने से उसके मन में अत्यन्त हर्ष उत्पन्न हुआ । विधिपूर्वक वन्दना नमस्कार करके वह मुनियों को रसोई घर में ले गई । वहाँ 'सिंहकेसरी' मोदक का थाल भर कर लाई और अनगारों को प्रतिलाभित कर वन्दना नमस्कार किया और उनको विसर्जित किया ।

उसके बाद दूसरा संघाड़ा भी देवकी के घर आहार के लिए पहुँचा और देवकी ने पूर्ववत् मुनियों का विनयकर उन्हें 'सिंहकेसरी' मोदक से प्रतिलाभित कर विसर्जित किया ।

इसके बाद तीसरा संघाड़ा भी उसी तरह देवकी महारानी के घर आया । देवकी महारानी ने उसे भी उसी आदर भाव से 'सिंहकेसरी' मोदक वहराया । मुनियों को पुनः पुनः आहार के लिए आता देख देवकी के मन में शंका उत्पन्न हुई और वह विनयपूर्वक पूछने लगी—"भगवन् ! कृष्णवासुदेव जैसे महाप्रतापी राजा की नौ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी स्वर्गलोक के सदृश इस द्वारवती नगरी में आहार के लिए घूमते हुए श्रमणों, निर्ग्रन्थों को क्या आहारपानी नहीं मिलता जिससे एक ही कुल में बार बार आना पड़ता है ?"

महारानी देवकी की यह बात सुनते ही मुनि समझ गये कि महारानी को हमारे रूप-सादृश्य के कारण ही एक संघाडे का बार बार आने का भ्रम हो गया है । मुनियों ने कहा—

"महारानी, हम सब एक नहीं हैं । अलग अलग हैं जो पहले आये थे वे हम नहीं । जो दूसरी बार आये थे, वे पहले वाले नहीं

थे । पहले वाले पहली ही बार आये हैं तीसरी बार नहीं । वैसे हम छहों सहोदर भाई हैं । भद्दिलपुर नगर के नाग गाथापति हमारे पिता हैं और सुलसा हमारी माता है । हम छहों ने भगवान अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा ग्रहण की है । आज हम सभी मुनियों के बेले का पारणा था । इसलिए आहार के लिए दो दो संघाडों में निकले हैं । संयोग-वशात् आप ही के घर में छहों मुनियों का आगमन हो जाने से आप को ऐसा भ्रम हो गया है ।''

मुनियों से समाधान पाकर महारानी ने उन्हें वन्दन किया और सात आठ कदम साथ चलकर मुनियों को विदा किया ।

मुनियों के चले जाने पर देवकी सोचने लगी—

''जब मैं छोटी थी तब पोलासपुर नगर में अतिमुक्तक श्रमण ने मुझ से कहा था—'देवकी, तुम नल कुबेर जैसे सुन्दर कान्त और समान रूप और आकृति वाले आठ पुत्रों को जन्म दोगी । भरतक्षेत्र में अन्य किसी माता को इतने सुन्दर पुत्रों को जन्म देने का सौभाग्य नहीं मिलेगा ।' किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि भरतक्षेत्र में समान रूप आकृति वाले पुत्रों को जन्म देने वाली अन्य भी मातायें मौजूद हैं । तो क्या मुनि की वह वाणी मिथ्या थी ? मुझे भगवान के समीप पहुँचकर यह सन्देह दूर करना चाहिये । ऐसा सोचकर उसने अपने सेवकों को धार्मिक रथ तैयार करने का आदेश दिया । सेवकों ने तुरंत धार्मिक रथ को सजाकर उसके सामने उपस्थित किया । महारानी रथ पर बैठ गई और अरिष्टनेमि भगवान के पास पहुँचकर उनकी पर्युपासना करने लगी ।

भगवान ज्ञानी थे । वे देवकी के आगमन का कारण समझ गये । वे बोले—''देवकी ! तुम अतिमुक्तक अनगार की भविष्य वाणी के विषय में शंकाशील हो उसका समाधान पाने के लिये ही यहाँ उपस्थित हुई हो न !''

उत्तर में देवकी ने कहा—"हाँ, भगवन् ! आपने जो फरमाया वह सब सत्य है, अब कृपाकर उसका समाधान फरमायें।"

भगवान ने कहा—"हे देवानुप्रिये ! इसका समाधान यह है—भद्दिलपुर नाम का नगर है। वहाँ धन धान्य से समृद्ध नाग नाम का गाथापति रहता है। उसकी पत्नी का नाम सुलसा है। वह सुलसा जब बाल्यावस्था में थी उस समय किसी भविष्यवक्ता नैमित्तिक ने उसे इस प्रकार कहा था कि तुम मृत वन्ध्या होगी। उसके बाद वह सुलसा अपने बाल्यकाल से ही हरिणैगमेषी देवता की भक्त बन गई। उसने हरिणैगमेषी देव की प्रतिमा बनाई। फिर प्रतिदिन स्नान आदि करके, भीगी साड़ी पहने हुए ही वह उस प्रतिमा के सामने फूलों का ढेर करती थी फिर अपने दोनों घुटनों को पृथ्वी पर टेक कर उसे नमस्कार करती थी और बाद में आहार आदि किया करती थी।

सुलसा गाथापत्नी की इस सेवा अर्चना से हरिणैगमेषीदेव प्रसन्न हुआ। उसने सुलसा गाथापत्नी की अनुकम्पा के लिए तुम दोनों को एक साथ ऋतुमती किया। जिसके कारण तुम दोनों साथ ही गर्भ धारण करने लगीं। एक साथ गर्भ का पालन करने लगीं और एक ही साथ बालकों को जन्म देने लगीं। परन्तु सुलसा गाथापत्नी के बालक मरे हुए जन्मते थे। हरिणैगमेषी देव सुलसा की अनुकम्पा के लिये उन मरे हुए बालकों को अपने हाथों में उठाकर तुम्हारे पास ले आता। उसी समय तू भी पुत्रों को जन्म देती। तुम्हारे इन पुत्रों को उठाकर हरणैगमेषी देव सुलसा गाथापत्नी के पास रख देता था। इसलिये हे देवकी ! अतिमुक्तक अनगार के वचन सत्य हैं। ये सभी तुम्हारे पुत्र हैं सुलसा गाथापत्नी के नहीं। इन सबको तुमने ही जन्म दिया है, सुलसा गाथापत्नी ने नहीं।"

देवकी महारानी भगवान के मुख से अपनी शंका का समाधान सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान को वन्दन कर वह वहाँ गई जहाँ

छहों अनगार थे। उन अनगारों को देखकर पुत्रप्रेम के कारण उसके स्तनों में से दूध झरने लगा। हर्ष के कारण उसकी आँखों में आँसू भर आये एवं अत्यन्त हर्ष के कारण शरीर फूलने से उसकी कंचुकी की कसें टूट गई और भुजाओं के आभूषण तथा हाथ की चूड़ियाँ तंग हो गई। वर्षा की धारा पड़ने से जिस प्रकार कदम्ब पुष्प एक साथ सबके सब विकसित हो जाते हैं उसी प्रकार शरीर के सभी रोम पुलकित हो गये। उन छहों अनगारों को अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक निरखती रही। बाद में उन्हें वन्दना नमस्कार करके भगवान अरिष्टनेमि के पास आई और भगवान को तीन बार नमस्कार कर वह अपने धार्मिक रथ पर चढ़ गई। घर आकर अपने भवन में सुकोमल शय्या पर बैठ गई और इस प्रकार सोचने लगी—"मैंने आकृति वय और कान्ति में एक जैसे सात–सात पुत्रों को जन्म दिया किन्तु उन पुत्रों में से किसी भी पुत्र की बाल क्रीडा के आनन्द का अनुभव नहीं किया। यह कृष्ण भी मेरे पास चरण वन्दन के लिये छ–छ महीने में आता है। वे माताएँ कितनी भाग्यशालिनी हैं जिनकी गोद में बच्चा खेलता है। अपनी मनोहर तोतली बोली से मां को आकर्षित करता है। फिर वह मुग्ध बालक अपने मां के द्वारा कमल के समान कोमल हाथों से उठाकर गोदी में बिठाये जाने पर दूध पीते हुए अपनी मां से तुतले शब्दों में बाते करता हैं और मीठी बोली बोलता है।"

"मैं अधन्य हूँ। अपुण्य हूँ। इसलिये मैं अपनी सन्तान की बालक्रीडा के आनन्द का अनुभव नहीं कर सकी।" इस प्रकार खिन्न हृदया देवकी चिन्ता में डूब गई।

इतने में कृष्ण वासुदेव अपनी माता देवकी को वन्दन करने के लिए वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी माता को उदास एवं चिन्तित देखा। उनके चरणों में नमस्कार कर पूछा--' माताजी ! जब मैं तुम्हारे वंदन करने के लिये आता था तब तुम मुझे देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती थीं परन्तु आज तुम्हारा मुख अत्यन्त उदास और चिन्तामय दिखाई देता है। क्या मै तुम्हारी चिन्ता का कारण जान सकता हूँ?"

देवकी ने कहा–"पुत्र ! मैंने आकृति वय और कान्ति में एक जैसे सात–सात पुत्रों को जन्म दिया परन्तु मैंने एक भी पुत्र की बालक्रीड़ा के आनन्द का अनुभव नहीं किया। हे पुत्र ! तुम भी मेरे पास चरणवन्दन करने के लिये छः-छः महीने में आते हो। अतः वह माता धन्य है जो अपने बालक की बालक्रीड़ा के आनन्द का अनुभव करती है। मै अधन्या हूँ।" मां की खिन्नता का कारण जान कर कृष्ण ने कहा—

"मा तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। मेरा आठवाँ भाई होगा। उसको तुम लाड़ प्यार और दुलार करना।" मां को इस प्रकार के मधुर वचनों से आश्वासित कर कृष्ण वासुदेव पौषधशाला में आये और तीन दिन का तेला कर हरिणैगमेषी देव की आराधना करने लगे।

कृष्ण की उपासना से देव प्रसन्न हुआ और बोला—"कृष्ण ! आपने मुझे क्यों याद किया है ? आप क्या चाहते हैं ?"

कृष्ण ने कहा—"देव मुझे छोटा भाई चाहिये।" देवने कहा–कृष्ण ? आपकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी। एक देव देवलोक से च्युत होकर देवकी के उदर में उत्पन्न होगा। जन्म लेगा और तरुण अवस्था में जब आयगा तब वह भगवान अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा लेगा। देव इतना कहकर स्वस्थान चला गया। उसके बाद वे अपनी मां देवकी के पास आये और बोले–मां ! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी।"

एक रात्रि में देवकी ने सिंह का स्वप्न देखा। रानी अपनी शैया से तुरंत उठ बैठी और अपने पति वसुदेव के शयन-कक्ष में जाकर सविनय बोली–

"प्राणनाथ मैंने अभी–अभी सिंह का स्वप्न देखा है। यह शुभ है या अशुभ। इसका फल क्या है ?"

वसुदेव ने मधुर स्वर में कहा--"प्रिये ! तुम्हारा यह स्वप्न अत्यन्त शुभ है। इस स्वप्न से तुम्हें पुत्रलाभ राज्यलाभ और अर्थलाभ होगा। स्वप्न का फल सुनकर रानी राजा के वचनों का स्वागत करती हुई वापिस अपने शयन कक्ष में लौट आई।

योग्य समय पर महारानी ने सुन्दर दर्शनीय और कान्त पुत्र को जन्म दिया। उसके शरीर के अवयव गजतालु से भी कोमल थे। इसलिए उसका नाम गजसुकुमाल रखा गया। कलाचार्य के पास रहकर गजसुकुमाल ने अपनी तीव्र प्रतिभा से समस्त कलाएँ और विद्याएँ सीख लीं। उसने युवावस्था में प्रवेश किया।

द्वारिका नगरी में सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था वह धन धान्य से समृद्ध था और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व वेदों का सांगोपाङ्ग ज्ञाता था। उसकी पत्नी का नाम सोमश्री था। सोमिल ब्राह्मण की एक रूपवती कन्या थी जिसका नाम सोमा था। वह एक दिन अपनी दासियों एवं बाल सहेलियों के साथ राजमार्ग पर कन्दुक (गेंद) खेल रही थी।

उस समय भगवान नेमिनाथ द्वारिका के सहस्राम्र उद्यान में पधारे थे। नगरी की विशाल जनता भगवान की वाणी का लाभ लेने सहस्राम्र उद्यान में पहुँच गई। कृष्ण वासुदेव ने भी जब भगवान के आगमन का समाचार सुना तो वे भी अपने लघु भ्राता गजसुकुमाल के साथ गंध हस्तीपर आरूढ़ होकर भगवान के दर्शन के लिये चल पड़े। मार्ग पर कन्दुक क्रीड़ा में लीन सोमा पर कृष्ण की दृष्टि पड़ी। सोमा के रूप लावण्य और उभरते हुए यौवन को देखकर वे मुग्ध हो गये। उन्होंने सोमा के साथ गजसुकुमाल का विवाह करने का निश्चय किया। तत्काल अपने सेवकों को बुलाकर यह आज्ञा दी "जाओ! सोमिल ब्राह्मण की इस कन्या की याचना करो। यह सोमा राजकुमार गजसुकुमाल की भार्या होगी। इसे अन्तःपुर में पहुँचा दो।" इस आज्ञा

को लेकर राजसेवक सोमिल ब्राह्मण के पास गये और उससे कन्या की याचना की। राजपुरुषों की बात सुनकर सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या सोम को ले जाने की स्वीकृति दे दी। उसके बाद राजपुरुषों ने सोमा कन्या को लेजाकर कन्याओं के अंतःपुर में रख दिया और कृष्णवासुदेव को इस बात की सूचना दे दी।

भगवान के दर्शन, वन्दन और उपदेश सुनकर कृष्ण लौटे। साथ ही गजसुकुमाल भी लौटा, किन्तु त्याग और वैराग्य की ज्योति के साथ। भगवान की वाणी से उसका हृदय वैराग्य रस में ओत प्रोत हो गया। उसे संसार की हर वस्तु नीरस लगने लगी। संसार के भोग विलास उसे कांटे की तरह चुभने लगे। घर आते ही गज सुकुमाल ने अपने माता पिता के सामने प्रव्रज्या का प्रस्ताव रख दिया। माता पिता ने उसकी दीक्षा की बात सुनकर उससे कहा—"वत्स! तुम हमें बहुत इष्ट एवं प्रिय हो। हम तुम्हारा एक क्षण भी वियोग नहीं सह सकते। अभी तुम्हारा विवाह भी नहीं हुआ है इसलिए पहले तुम विवाह करो। कुल की वृद्धि करके अर्थात् तुम्हारे पुत्रादि हो जाने पर तथा हमारा स्वर्गवास होने पर फिर तुम दीक्षा ग्रहण करना।"

जब गज सुकुमाल के वैराग्य का समाचार कृष्ण वासुदेव ने सुना तो वे तुरंत दौड़कर गजसुकुमाल के पास आये और उसे अपनी गोद में बिठला कर अत्यन्त स्नेह पूर्ण वाणी से बोले—"सहोदर! अभी तुम दीक्षा मत लो। तुम्हारी युवावस्था है। सोमा के साथ तुम्हारे विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं, ऐसी अवस्था में घर छोड़ना उचित नहीं है। मै बड़े ठाठबाट के साथ तुम्हारा राज्याभिषेक करके तुम्हें इस द्वारिका का राजा बनाना चाहता हूँ। देवकी देवी और वसुदेव का वात्सल्य, कृष्ण का स्नेहभाव और विशाल राज्य का प्रलोभन और सोमा का सौंदर्य, यह सब कुछ गजसुकुमाल को त्याग मार्ग से विचलित नहीं कर सका किन्तु भाई के स्नेहवश एक दिन के लिए द्वारवती का राजा बनना उसने स्वीकार कर लिया।

कृष्ण वासुदेव ने बड़े समारोह के साथ गजसुकुमाल का राज्याभिषेक किया। राजा बनने के बाद माता पिता ने गजसुकुमाल से पूछा–"पुत्र! अब तुम क्या चाहते हो!" गजसुकुमाल ने उत्तर दिया "मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।" तब गजसुकुमाल की आज्ञानुसार दीक्षा की सभी सामग्री मंगाई गई। गजसुकुमाल बड़े ठाठ के साथ भगवान अरिष्टनेमि के समीप पहुँच गये, और दीक्षा स्वीकार कर ली। ये अनगार बन गये।

एक तरुण तपस्वी, जिसने आज ही त्याग मार्ग पर अपना फौलादी कदम रखा था, वह आज ही जीवन की चरमकोटि को छू लेने के प्रयत्न में लग गया। प्रव्रज्या के दिन ही वह तरुण तपस्वी भगवान अरिष्टनेमि के पास आया और विधिपूर्वक वन्दन कर बोला–"भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं आज ही महाकाल स्मशान में जाकर एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करूँ अर्थात् स्मशान में सम्पूर्ण रात्रि ध्यानस्थ होकर खड़ा रहूँ।"

भगवान ज्ञानी थे। वे इस तरुण तपस्वी की त्याग भावना व उत्कट वैराग्य से परिचित थे। उन्होंने मुनि गजसुकुमाल को महाकाल स्मशान में ध्यान करने की आज्ञा दे दी। भगवान की आज्ञा पाकर गजसुकुमाल मुनि भगवान को वन्दन कर सहस्राम्र उद्यान से निकले और महाकाल स्मशान में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने कायोत्सर्ग के लिये निर्दोष भूमि का निरीक्षण किया तथा लघुनीत, बड़ीनीत के लिए योग्य भूमि की प्रतिलेखना की। उसके बाद शरीर को कुछ झुकाकर चार अंगुल के अंतर से दोनों पैरों को सिकोड़ कर एक पदार्थ पर दृष्टि रखते हुए एक रात्रि की महाप्रतिमा स्वीकार कर ध्यानस्थ खड़े होगये।

सूर्य धीरे धीरे अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था। संध्या की गुलाबी प्रभा चारों दिशा में व्याप्त हो रही थी। अंधकार की काली

घटा धीरे धीरे पृथ्वी पर अपना साम्राज्य जमाने लगी। पक्षी आकाश से उतरकर अपने अपने घौसलों में लौट रहे थे।

उसी समय सोमिल ब्राह्मण समिधा कुश डाभ आदि हवन की सामग्री को लेकर घर की ओर आ रहा था। उसने गजसुकुमाल मुनि को महाकाल स्मशान में ध्यान करते हुए देखा। मुनि पर दृष्टि पड़ते ही उसे पहचानने में देर नहीं लगी और वह सोचने लगा-"यही वह कुमार है, जिसके लिये मेरी सोमा की याचना की गई थी। यदि इसे मुनि ही बनना था तो इसने मेरी कन्या की जिन्दगी को क्यों बरबाद किया ? अब उस बेचारी का क्या होगा ? ऐसा विचारते-विचारते सोमिल के हृदय में प्रतिशोधाग्नि भड़क उठी। क्रोध के आवेश में वह उन्मत्त हो मानवता भूल बैठा। पूर्वजन्म के वैरभाव ने जलती आग में घी का काम किया। उसने चारों ओर देखा कि कहीं कोई आता तो नहीं है। जब उसने एकान्त देखा तो वह तालाब से गीली मिट्टी ले आया और गजसुकुमाल मुनि के मुण्डित मस्तक पर चारों ओर से पाल बाध दी और जलती हुई चिता में से फूले हुए टेसू के समान लाल-लाल खैर की लकड़ी के अगारों को एक फूटे हुए मिट्टी के ठीकरे में भरकर ले आया और गजसुकुमाल के मस्तक पर रख दिया। इस अमानुषिक कृत्य को करके दबे पैरों से चोर की तरह अपने घर भागा कि कहीं उसे कोई देख न ले।

मुनि गजसुकुमाल का मस्तक खिचड़ी की तरह पक रहा था। चमड़ी मज्जा और मांस सभी जल रहे थे। भयंकर महादारुण वेदना हो रही थी। आँखे बाहर आगई किन्तु वे अपनी ध्यानमुद्रा में लीन थे। वे अब आत्मा और शरीर की भिन्नता को समझ गये थे। उनके मन में वैर के लिये किंचित् भी स्थान नहीं था। आत्मा की विभाव परिणति से वे तपस्वी स्वभाव परिणति में रम गये। सोमिल को उन्होंने शत्रु नहीं किन्तु अपना सच्चा मित्र सहायक माना। सम-

भाव से आत्म चिन्तन करते करते वे क्षपक श्रेणी चढ़े और घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। जिस शाश्वत सुख और आनन्द के लिये उन्होंने अनगारत्व लिया था वह उन्हें मिल गया। उन्होंने देह को छोड़ दिया और अजर अमर और शाश्वत स्थान को प्राप्त कर लिया।

समीपवर्ती देवों ने केवली गजसुकुमाल पर अचित्त फूलों की वर्षा की और मधुर गायन तथा वाद्यों की ध्वनि से आकाश को गुंजित कर दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल कृष्णवासुदेव हाथी पर आरूढ़ हो कोरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र को सिर पर धारण किये हुए अपने विशाल सुभट परिवारों के साथ भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन करने के लिये चल पड़े। मार्ग में उन्होंने जराजर्जरित वृद्ध पुरुष को ईंटों की विशाल राशि में से एक-एक ईंट को उठाकर अपने घर ले जाते हुए देखा। कृष्ण के हृदय में उस वृद्ध के प्रति अनुकम्पा जाग उठी। दयावान् कृष्ण ने अपने हाथी को ईंटों के ढेर की ओर बढ़ाया। उसके पास पहुँचकर श्री कृष्ण ने अपने हाथ में ईंट ली और वृद्ध के घर पहुँचा आये। वापस मुड़कर देखा तो वहाँ एक भी ईंट नहीं थी, सब की सब वृद्ध के घर पहुँच गईं। बात यह हुई कि कृष्ण को हाथ में ईंट उठाते देख उनके पीछे आनी वाली सेना ने समस्त ईंटें उठाकर हाथोंहाथ वृद्ध के घर पहुँचा दीं। कृष्ण की इस महानता पर वृद्ध ने अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की।

कृष्ण भगवान की सेवा में पहुँचे और भगवान को वन्दन कर वे गजसुकुमाल को वन्दन करने के लिये इधर उधर देखने लगे। जब गजसुकुमाल को न देखा तो वे भगवान से पूछने लगे—भगवन्! मुनि गजसुकुमाल कहाँ हैं? भगवान ने कहा—"एक व्यक्ति की सहायता से वे मुक्त हो गये हैं। जिस प्रकार तू ने मार्ग में एक वृद्ध की सहायता कर उसे श्रममुक्त किया उसी प्रकार एक व्यक्ति की सहायता से

वे जन्म जरा और मृत्यु के श्रम से मुक्त हो गये हैं । पुनः कृष्ण ने पूछा—"भगवन्? मैं उस व्यक्ति को कैसे जान सकता हूँ ।" भगवान ने कहा—"जो तुझे देखते ही जमीन पर गिर कर मर जायगा वही गजसुकुमाल का सहायक है ।"

भगवान का दर्शन कर कृष्ण वासुदेव वापस महल की ओर लौटे । भाई के शोक से व्याकुल कृष्ण ने राजमार्ग पर जाना उचित नहीं समझा । उन्होंने गली का रास्ता लिया । इधर कृष्ण से बचने के लिये सोमिल गली के रास्ते से भागा जा रहा था अचानक उसकी दृष्टि सामने आते हुए कृष्ण पर पड़ी । वह घबरा गया । भय के कारण वह जमीन पर गिर पड़ा और उसके प्राणपखेरू उड़ गये ।

कृष्ण ने उसे भ्रातृ हत्यारा जान नगर के बाहर फिकवा दिया । चाण्डाल जिस मार्ग से शव को घसीट कर ले गये थे लोगों ने जल से उसे सींच कर पवित्र कर दिया ।

अणीयसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनहितरिपु, देवसेन और शत्रुसेन इन छहों अनगारों ने बीस-बीस वर्ष तक संयम का पालन किया । चौदह पूर्व का अध्ययन किया । अन्तमें एक मास की संलेखणा करके शत्रुजय पर्वत पर सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए ।

अतिमुक्तकअनगार

एक बार मथुरा के राजा उग्रसेन बाहर क्रीड़ा के लिये जा रहे थे । मार्ग में एक तपस्वी को तप करते हुए देखा और उन्हें पारणे का निमंत्रण दिया । पारणे के दिन विशेष राजकारण से तपस्वी को भोजन कराना भूल गये । इस प्रकार दो तीन बार निमंत्रण देने पर भी तापस को भोजन न करा सके जिसके कारण तापस ने आमरणांत उपवास कर निदान किया कि—"मैं दूसरे जन्म में इसके लिए दुःख दायक बनूँ ।" तापस मर कर उग्रसेन की पत्नि धारिणी के गर्भ में आया उसे तीन माह के बाद पति के हृदय का मास खाने का दोहद हुआ ।

मन्त्री ने उग्रसेन को बचाकर चतुरता से धारिणी का दोहद पूर्ण किया। नौ माह के बाद धारिणी ने पुत्र को जन्म दिया। राजा ने अपने नाम की मुद्रा पहनाकर एक कांस्य पेटी में उसे बन्द कर यमुना में बहा दिया। वह पेटी पानी में बहते बहते शौर्यपुर पहुँची। वहाँ शौचार्थ आये हुए सुभद्र नाम के श्रेष्ठी ने उस पेटी को निकाला। श्रेष्ठी पेटी को घर ले आया। उसमें वह बालक मिला। बालक कांस्य पेटी में प्राप्त होने से उसका नाम कंस रखा। कंस स्वाभाव से उद्दण्ड था। माता पिता ने कंस को वसुदेव के कुमारों की सेवा के लिये वसुदेव राजा को सौंप दिया। कंस ने अपने वीरत्व का परिचय दे राजगृह के राजा जरासंध की पुत्री जीवयशा के साथ विवाह किया। बाद में जरासन्ध की सैन्य सहायता से उसने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। पिता को कैद में डालकर वह मथुरा पर राज्य करने लगा।

उसका छोटा भाई अतिमुक्तक कुमार था। उसने पिता के दुःख से दुःखी हो प्रव्रज्या धारण कर ली।

एक समय जीवयशा के बहुत सताने पर अतिमुक्तक अनगार ने वसुदेव की पत्नी देवकी के सातवें पुत्र से कंस के मारे जाने का भविष्य कथन किया था। कंस ने यह जानकर वसुदेव को देवकी के साथ कारागार में डाल दिया। देवकी की छहों मृत संतानों को कंस ने मार डाला। सातवें पुत्र को वसुदेव अपने मित्र नन्द के यहाँ रख आये। सातवाँ पुत्र कृष्ण था जिसने कंस का वध कर अपने माता पिता और उग्रसेन को मुक्त किया।

अतिमुक्तक मुनि ने कठोरतम तप किया और अन्त में सिद्धि प्राप्त की

सुमुखकुमार

द्वारिका नगरी में बलदेव नाम के राजा थे। उनकी धारिणी रानी थी। वह सुन्दर थी उसने एक दिन सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न देखते ही जागृत होकर उसने अपने पति के समीप जाकर स्वप्न का

वृत्तान्त कहा । गर्भकाल पूर्ण होने पर स्वप्न के अनुसार उसने एक पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया । बालक का नाम सुमुख रखा गया । यौवन अवस्था प्राप्त होने पर उस कुमार का विवाह पचास कन्याओं के साथ हुआ और विवाह में कन्याओं के माता पिता की तरफ से पचास पचास करोड़ सौनेया आदि दहेज मिला ।

एक समय अरिष्टनेमि द्वारिका पधारे । उस समय उनका उपदेश सुनकर सुमुखकुमार ने दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा लेकर चौदह पूर्व का अध्ययन किया और बीस वर्ष पर्यन्त चारित्र पर्याय का पालन किया। अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर संथारा करके सिद्धपद प्राप्त किया ।

सारणकुमार

द्वारवती नगरी में कृष्णवासुदेव राज्य करते थे । वहाँ वसुदेव नाम के राजा रहते थे । उन की धारिणी नामकी रानी थी । एक दिन उसने रात्रि में सिंह का स्वप्न देखा । गर्भ का समय पूर्ण होने पर उसने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया । जिसका नाम सारणकुमार रखा गया । सारणकुमार ने बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया । युवावस्था में उसका विवाह पचास राजकन्याओं के साथ हुआ । पचास करोड़ सोनैया आदि का दहेज मिला । भगवान अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर सारण कुमार ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की । उसने चौदह पूर्व का अध्ययन किया, कठोर तप किया और बीस वर्ष दीक्षा पर्याय पाला। अन्त में शत्रुञ्जय पर्वत पर जाकर एक मास की सलेखना की । चरम उश्वास में केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुए ।

दुर्मुख, कूपदारक, दारुक और अनादृष्टि

दुर्मुख और कूपदारक ये दोनों कुमार सुमुख कुमार के सहोदर भाई थे । इनके पिता बलदेव और माता धारिणी थी । इन दोनों कुमारों का पचास पचास राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ । भगवान अरिष्टनेमि का उपदेश सुनकर इन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की । चौदह पूर्व

का अध्ययन किया और बीस बीस वर्ष तक चारित्र का पालन कर एक मास के संथारे के साथ शत्रुंजय पर्वत पर सिद्धपद प्राप्त किया।

दारुक कुमार और अनादृष्टि का भी सारा वर्णन सुमुखकुमार के समान ही जानना चाहिये। केवल इतना अन्तर है कि ये दोनों कुमार सहोदर भाई थे। इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। दीक्षा लेकर ये भी मोक्ष में गये।

जालि मयालीआदिकुमार—

कृष्ण वासुदेव की द्वारिका नगरी में वसुदेव राजा रहते थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। महारानी धारिणी ने सिंह का स्वप्न देखकर दारुक जालि, मयालि, उवयाली, पुरुषसेन, और वारिसेन नामक पुण्यवान पुत्रों को जन्म दिया। युवावस्था में इनका पचास-पचास सुन्दर राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ। उन्हें श्वसुर पक्ष की ओर से पचास पचास करोड़ दहेज मिला।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। उनकी वाणी सुन-कर उपरोक्त कुमारों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। माता पिता की आज्ञा लेकर इन कुमारों ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा लेकर इन्होंने बारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। इनमें दारुककुमार ने चौदह पूर्व का अध्ययन किया और बीस वर्ष पर्यन्त संयम का पालन किया और अन्त में एक मास का संथारा करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध पद प्राप्त किया। शेष जालि आदिकुमारों ने सोलह वर्ष संयम पालन कर एक मास का संथारा लेकर शत्रुंजय पर्वत पर जाकर मोक्ष प्राप्त किया।

प्रद्युम्न शाम्ब आदि कुमार

प्रद्युम्नकुमार कृष्ण वासुदेव के पुत्र थे। इनकी माता का नाम रुक्मिणी था। ये द्वारिका रहते थे।

शाम्बकुमार भी कृष्णवसुदेव के ही पुत्र थे किन्तु इनकी माता का नाम जाम्बवती था।

सत्यनेमि-दृढ़नेमि

सत्यनेमि और दृढ़नेमि समुद्रविजय के पुत्र थे और इनकी माता का नाम शिवादेवी था ।

इन सब कुमारों का विवाह पचास पचास राजकुमारियों के साथ हुआ था । इन्हें श्वसुर पक्ष की ओर से पचास पचास करोड़ सोनैया आदि दहेज मिला ।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि पधारे । उनकी वाणी सुनकर उपरोक्त कुमारों को वैराग्य उत्पन्न हो गया । माता पिता को पूछकर इन्होंने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की । बारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया और सोलह वर्ष पर्यन्त दीक्षा पर्याय पाला । पश्चात् गौतम अनगार की तरह इन्होंने भी एक एक मास का संथारा किया और सर्वकर्मों से मुक्त होकर शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए ।

ढंढण मुनि

द्वारिका नगरी के महाराजा श्री कृष्ण के सत्यभामा रुक्मिणी प्रभृति अनेक रानियाँ थी । उनमें ढंढणा नाम की भी एक रानी थी । उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ढंढणकुमार रखा गया । राजसी ठाठ के साथ कुमार का लालन पालन होने लगा । कलाचार्य के पास रहकर ढंढणकुमार ने ७२ कलाओं में कुशलता प्राप्त कर ली । वह कुमार से यौवन में आया ।

एक बार बाइसवें तीर्थङ्कर भगवान अरिष्टनेमि का द्वारवती में आगमन हुआ । महाराज कृष्ण के साथ ढंढणकुमार भी भगवान के दर्शन के के लिये गया और भगवान की वाणी सुनकर वह भोग से विमुख हो गया और माता से आज्ञा प्राप्त उसने दीक्षा धारण कर ली । अल्पकाल में ही उग्रतप और कठोर साधना से ढंढण मुनि ने भगवान के शिष्य परिवार में सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया ।

तेले के पारने में ढंढणमुनि द्वारिका नगरी में गोचरी के लिये गये । अनेक घरों में घूमने के बाद भी ढंढणमुनि को कहीं भी निर्दोष आहार का योग नहीं मिला । मुनिवर अपने स्थान पर लौट आये ।

तीन दिन तप के साथ चौथा दिन भी तप में गुजरा। पाँचवें दिन फिर वे गोचरी के लिये गये। पूर्व दिन की तरह सर्वत्र घूमे पर योग नहीं मिला। इसी प्रकार छठां दिन भी बीता। ढंढणमुनि सोचने लगे श्रीकृष्ण की इतनी बड़ी नगरी में मुझे आहार का योग क्यों नहीं मिलता ? अवश्य इसमें पूर्वकृत अन्तराय कर्म बाधक होना चाहिए।

जिज्ञासा लिये मुनि ढंढण भगवान अरिष्टनेमि के समीप आये और वन्दन कर विनय पूर्वक पूछने लगे—भगवन् ! द्वारिका जैसी विशाल नगरी में मैं बहुत घूमता हूँ किन्तु मुझे आहार नहीं मिलता। इसका क्या कारण है ?

भगवान ने कहा—ढंढण ! पूर्व जन्म के निकाचित अन्तराय कर्म के कारण ही तुझे आहार नही मिल रहा है। आज से ९९९९९९वे भव में तू विन्ध्याचल प्रदेश में हुण्डक ग्राम में सौवीर नाम का समृद्ध किसान था। तेरे पर राजा की महती कृपा थी। एक बार तुझे महाराज गिरिसेन ने राज्य की तमाम जमीन जोतने की आज्ञा दी। महाराज की आज्ञा पाकर तू अपने पाँच सौ हलवाहकों के साथ खेतों में गया और हलों में बैलों को जोड़कर उन्हें चलाना आरम्भ कर दिया। खेत जोतते जोतते बैल थक गये और बीच-बीच में खड़े भी होने लगे। मध्याह्न का समय हो गया था। सूर्य का भयंकर ताप सबको संतप्त कर रहा था। तेरे साथी किसान व बैल भूख और प्यास से व्याकुल होने लगे। इधर भोजन का भी समय आ गया। किसानों के लिये भोजन और बैलों के लिए चारा भी आ गया था। भोजन आजाने पर सभी ने अपने अपने बैलों के जूड़े खोल दिये। जब तुझे इस बात का पता लगा तो उन पर तू बड़ा क्रुद्ध हुआ और गरजते हुए बोला—अभी भोजन नहीं करना है। पूरा एक एक चक्कर और लगावो फिर खाना खाओ।

वे गरीब किसान तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना कैसे कर सकते थे। मजबूर होकर उन्होंने अपने अपने हलों में पुनः बैलों को जोड़ा

और खेत का चक्कर लगाने लगे। पाँच सौ हलवाहक और पाँच हजार बैल तेरे इस आदेश से भूखे रह गये। उन जीवों को तूने आहार पानी की अन्तराय दी जिसके परिणाम स्वरूप तूने प्रबल अन्तराय कर्म का बन्धन किया। अनेक जन्मों के बाद एक वार मुनि के उपदेश से तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई और तूने उसके पास प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। विशुद्ध चारित्र का पालन कर अनशन पूर्वक तूने देह छोड़ा और मरकर सौधर्म देवलोक में देव बना। वहाँ से च्युत होकर तू महारानी ढंढणा के गर्भ में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। हे ढंढण! तेरे वे अन्तराय कर्म अब उदय में आये हैं इसीलिए तुझे आहार पानी का इस समय योग नहीं मिल रहा है।

अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर ढंढण राजर्षि विचार में पड़ गये। उन्हें अपने पापों का पश्चाताप होने लगा। उन्होंने अपने पूर्वोपार्जित कर्मों को नष्ट करने का दृढ़ निश्चय किया। भगवान को वन्दन कर उन्होंने निवेदन किया—भगवन्! पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा करने के लिये अभिग्रह करता हूँ कि पर निमित्त से होनेवाले लाभ को मै ग्रहण नहीं करूंगा। इस कठोर अभिग्रह को ग्रहणकर ढंढण राजर्षि आहार के लिये नगरी में जाते और बिना कुछ पाये लौट आ जाते। इस प्रकार छ महीने बीत गये। राजर्षि ढंढण का शरीर अत्यन्त कृश होगया। केवल अस्थिपजर ही शेष रह गया फिर भी वे उद्विग्न नहीं हुए। शान्तिपूर्वक वे साधुचर्या का पालन करने लगे। शरीर के प्रति अब उनके मन में कोई ममता नहीं थी।

एक वार श्रीकृष्ण, भगवान के समीप वन्दन करने के लिये आये। उन्होंने भगवान से प्रश्न किया। भगवन्! आपके अठारह हजार शिष्यों में सब से उग्रतपस्वी और साधक कौन हैं और वे अभी कहा हैं?

भगवान ने कहा—कृष्ण! मेरे इन साधुओं में दुष्कर क्रिया करने वाला और सबसे पहले मोक्षगामो तेरापुत्र ढंढण है। वह अभी गोचरी गया हुआ है और तुझे रास्ते में मिलेगा।

भगवान के मुख से ढंढणकुमार मुनि की बात सुनकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और हाथी पर सवार होकर महल की ओर चल पड़े । मार्ग में कृशशरीर एवं शान्त चित्त ढंढणमुनि को आहार के लिए भ्रमण करते हुए देखा । उसी समय कृष्ण गजराज से नीचे उतरे और ढंढणमुनि के समीप जाकर वन्दन करने लगे और उनके उच्चतम तप की प्रशंसा करने लगे । ढंढण मुनि को कृष्णवासुदेव को वन्दना करते हुए किसी सेठ ने देख लिया । देखते ही उसने विचार किया जिस महात्मा को ये कृष्णवासुदेव वन्दन कर रहे हैं वह सामान्य साधु नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर ही रहा था कि इतने में ढंढणमुनि ने उसी सेठ के घर में प्रवेश किया । सेठ ने ढंढणमुनि को वन्दन कर आदर पूर्वक मोदक बहराया । मुनि ने सोचा–आज मेरा अन्तराय कर्म नष्ट हो गया है आज मुझे अपने अभिग्रह के अनुरूप आहार मिल गया है । वे भगवान के पास आये और उन्हें वन्दन कर प्राप्त आहार दिखाकर बोले–भगवन् ! मेरा लाभान्तराय कर्म क्षीण हो गया है ? मुझे जो आहार मिला है वह मेरी लब्धि से प्राप्त हुआ है ?

भगवान ने उत्तर दिया–ढंढण ! यह आहार तेरी लब्धि से प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु श्रीकृष्ण की लब्धि का है। कृष्ण के वन्दन से प्रभावित होकर ही सेठ ने तुझे मोदक वहराये है । अतः इस आहार लाभ के निमित्त श्री कृष्ण हैं ।

भगवान के मुख से उक्त वचन सुनकर ढण्ढणमुनि विचारने लगे। मेरे अब भी अन्तराय कर्म शेष हैं । मुझे अपने अभिग्रह के अनुसार परनिमित्त से प्राप्त आहार करना नहीं कल्पता । अतः इन मोदकों को प्रासुक स्थल पर डाल देना चाहिये । मुनि उसी क्षण खड़े हो गये और भगवान को वन्दन कर आहार डालने के लिये चले ।

शहरके बाहर आकर प्रासुक भूमि में उस आहार को परठ दिया और अपने पूर्वकृत अन्तराय कर्म पर विचार करने लगे । विचार करते–करते वे शुक्ल ध्यान की उच्चतम स्थिति में पहुँच गये।

विचारों की उच्चतम अवस्था के कारण उन्होंने चार घनघाती कर्मों को नष्ट कर दिया। केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर वे भगवान के समवशरण में पहुँच गये। बहुत वर्षों तक केवली पर्याय में रहकर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

पुण्डरीक-कण्डरीक

पूर्व महाविदेह के पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिनी नामक नगरी थी। उस नगरी में महापद्म नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। महापद्म राजा के पुत्र और पद्मावती देवी के आत्मज पुण्डरीक और कण्डरीक नामके दो कुमार थे। वे बड़े सुन्दर थे। उनमें पुण्डरीक युवराज था।

एक समय धर्मघोष स्थविर पांचसौ अनगारों के साथ परिवृत होकर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पुण्डरीकिनी नगरी के नलिनीवन नामके उद्यान में पधारे। महापद्मराजा स्थविरमुनि को वन्दन करने निकला। उपदेश सुनकर उसने पुण्डरीक को राज्य पर स्थापित करके दीक्षा अंगीकार करली। अब पुण्डरीक राजा और कण्डरीक युवराज होगया। महापद्म अनगार ने चौदह पूर्व का अध्ययन किया और बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्धि प्राप्त की।

एक बार स्थविर मुनि पुन पुण्डरीकिनी राजधानी के नलिनीवन उद्यान में पधारे। महाराजा पुण्डरीक और युवराज कण्डरीक स्थविर मुनि के उपदेश सुनने के लिये उनके पास गये। वाणी श्रवणकर पुण्डरीक राजा ने श्रावक के बारह व्रत धारण किये और युवराज कण्डरीक ने दीक्षा ग्रहण करली। कण्डरीक मुनि स्थविरों के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने लगे। स्थविरों के पास रहकर कण्डरीकमुनि ने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। कण्डरीक अनगार अंत, प्रांत, तुच्छ, अरस, विरस, शीत, उष्ण एवं कालातिक्रान्त आहार करते, जिससे उनके शरीर में सूखी खुजली और दाहज्वर होगया। इससे उनका शरीर सूख गया।

वे ग्रामानुग्राम विचरण करते पुण्डरीकिनी नगरी के बाहर नलिनीवन उद्यान में पधारे। महाराजापुण्डरीक भी अनगारों के दर्शन के लिए उद्यान में गया। वहाँ उन्हें वन्दना कर उनकी पर्युपासना करने लगा। पुण्डरीक महाराजा ने कण्डरीकअनगार के शरीर को अत्यंत सूखा हुआ एवं रोग से पीड़ित देखा। यह देखकर वह बोला—भगवन्! मैं आपके शरीर को सरोग देख रहा हूँ। आपका सारा शरीर सूख गया है। अतः मै आपकी योग्य चिकित्सकों से, साधु के योग्य औषध, भेषज तथा उचित खान-पान द्वारा चिकित्सा करवाना चाहता हूँ। आप मेरी यान शाला में पधारें। वहाँ प्रासुक, एषणीय पीठ, फलक आदि ग्रहण कर, ठहरे। स्थविर ने राजा की प्रार्थना स्वीकार की और दूसरे दिन कण्डरीक अनगार स्थविरों के साथ राजा की यान शाला में पधारे।

राजा पुण्डरीक ने योग्य चिकित्सकों को बुलाकर कण्डरीक अनगार की चिकित्सा करने की आज्ञा दी। चिकित्सकों ने विविध प्रकार की चिकित्सा की। चिकित्सा और अच्छे खानपान से उनका रोग शान्त हुआ और शरीर पूर्ववत् हृष्टपुष्ट हो गया। उनके स्वस्थ हो जाने पर साथ वाले मुनि तो विहार कर गये किन्तु कण्डरीक वहीं रह गये। उनके आचार विचार में शिथिलता आ गई। यह देखकर पुण्डरीक राजा ने मुनि को बहुत समझाया। उनके समझाने से मुनि वहाँ से विहार कर गये। कुछ समय तक स्थविरों के साथ विहार करते रहे किन्तु बाद में शिथिल हो कर पुनः अकेले हो गये और विहार करते हुए पुण्डरीकिनी नगरी आ गये। राजा ने मुनि को पुनः समझाया किन्तु उन्होंने एक भी न सुनी और राजगद्दी लेकर भोग भोगने की इच्छा प्रगट की। पुण्डरीक ने कण्डरीक के लिए राजगद्दी छोड़ दी और स्वयं पंचमुष्टि लोचकर प्रव्रज्या ग्रहण की। "स्थविर भगवान को वन्दना नमस्कार करके एवं उनसे 'चातुर्याम' धर्म स्वीकार करने के बाद ही मुझे आहार करना कल्पता है।" ऐसा कठोर अभिग्रह लेकर पुण्डरीक ने कण्डरीक के वस्त्र-पात्र ग्रहण कर

वहाँ से विहार किया । ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वे स्थविर भगवान की सेवा में पहुँचे । उनके पास पहुँच उन्होंने चातुर्याम धर्म ग्रहण किया । स्वाध्याय, ध्यान से निवृत्त हो कर पुण्डरीकमुनि आहार के लिए निकले । ऊँच नीच-मध्यम कुलों में पर्यटन करते हुए निर्दोष आहार प्राप्त किया । लौट कर वे स्थविर के पास आये और उन्हें लाया हुआ भोजन-पानी दिखलाया । फिर स्थविर भगवान की आज्ञा होने पर मूर्छा रहित हो कर जैसे सर्प बिल में प्रवेश करता है उसी प्रकार स्वाद न लेते हुए नीरस आहार के कवल को पेट में उतार दिया ।

पुण्डरीक अनगार उस कालातिक्रान्त, रसहीन रूक्ष आहार करके मध्यरात्री के समय धर्म-जागरण कर रहे थे अतः वह आहार उन्हें नहीं पचा । उसका शरीर में विपरीत असर होने लगा । पेट में असह्य वेदना उत्पन्न हो गई । शरीर पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में दाह होने लगा । शरीर प्रतिक्षण निस्तेज और निर्बल होने लगा । अपना अन्तिम समय जान उन्होंने आत्मआलोचना तथा प्रतिक्रमण किया और यावज्जीवन का अनशन ग्रहण कर लिया । इस तरह उत्कृष्ट और शान्त भाव से देह छोड़ा और मरकर वे सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । कालान्तर में वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे ।

उधर राजगद्दी पर बैठ कर कण्डरीक काम भोगों में आसक्त हो कर अतिपुष्ट और कामोत्तेजक पदार्थों का अतिमात्रा में सेवन करने लगा । वह आहार उसे पचा नहीं । अर्धरात्रि के समय उसके शरीर में तीव्र वेदना उत्पन्न हुई । उसका शरीर पित्त ज्वर से व्याप्त हो गया । उसने अनेक प्रकार की चिकित्सा करवाई लेकिन् वह बच नहीं सका । अन्त में आर्त और रौद्र ध्यान के वशीभूत बना कण्डरीक भोगासक्ति में ही मरा और मर कर सातवीं नरक में उत्कृष्ट स्थितिवाला नैरयिक बना । वहाँ से च्युत हो कर वह अनन्त संसार में परिभ्रमण करेगा ।

उपनय—जो साधु चिरकाल पर्यन्त उग्र संयम का पालन करके अन्त में प्रतिपाती हो जाता है, संयम से भ्रष्ट हो जाता है, वह कण्डरीक की तरह दुःख पाता है। इसके विपरीत जो महानुभाव साधु गृहीत संयम का अन्तिम श्वास तक यथावत् पालन करते हैं, वे पुण्डरीक की भाँति अल्पकाल में ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

सुबुद्धि

चम्पा नाम की नगरी में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम धारिणी था और पुत्र का नाम युवराज अदीनशत्रु। उसकी राज्य की धुरा श्रमणोपासक सुबुद्धि मंत्री के हाथ में थी।

चम्पा नगरी के बाहर ईशान कोण में गन्दे पानी की एक बहुत बड़ी खाई थी। उसमें अनेक पशु पक्षियों के मृतक कलेवर सड़ रहे थे। कीड़े किलबिला रहे थे। सारे शहर की अशुचि एवं कूड़ा कर्कट उसी में आकर गिरता था। असह्य दुर्गन्ध के कारण उस खाई के पास से कोई निकलने की हिम्मत नहीं करता था।

एक बार जितशत्रु राजा, अनेक राजाओं एवं धनाढ्यों के साथ भोजन करने के बाद सुखासन पर बैठा हुआ आज के भोजन की प्रशंसा करते हुए कहने लगा—

हे देवानुप्रियो! आज के भोजन का स्वाद, रूप, गन्ध और स्पर्श श्रेष्ठ था, अत्यन्त स्वादु था, पुष्टिकारक था, बलवर्धक था और समस्त इन्द्रियों के लिये बड़ा आह्लाददायक था। राजा के इस कथन का सबने अनुमोदन किया और राजा की हाँ में हाँ मिलाते हुए भोजन की खूब खूब प्रशंसा करने लगे किन्तु राजा के इस कथन पर मन्त्री सुबुद्धि मौन थे। उन्होंने दूसरे दरबारियों की तरह हाँ में हाँ नहीं मिलाई। सुबुद्धि को मौन देख राजा सुबुद्धि से बोला—सुबुद्धि! क्या मेरा कथन तुझे रुचिकर नहीं लगा? क्या आज का भोजन प्रशंसा के योग्य नहीं था?

इस पर सुबुद्धि ने कहा—स्वामी ! इसमें क्या नवीनता थी । यह तो पुद्गलों का स्वभाव ठहरा । जो पुद्गल इस समय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से अच्छे लगते हैं वे ही पुद्गल कुछ समय के बाद बुरे लगने लगते हैं । जो आवाज हमें एक समय कर्णप्रिय लगती है वही आवाज दूसरे समय कर्णकटु प्रतीत होने लगती है एवं जो पदार्थ इस समय स्वादिष्ट और रुचकर लगते हैं वे ही दूसरे समय अरुचिकर लगने लगते हैं । अतः अमुक पदार्थों के अच्छे या बुरे स्वाभाव में आश्चर्य करने जैसा क्या है !

कई बार अच्छी चीजें भी संयोगवश बिगड़ जाती हैं और बिगड़ी हुई कई चीजें अच्छी भी हो जाती हैं । यह तो मात्र परमाणुओं के स्वभाव और संयोग की विचित्रता ही है ।

सुबुद्धि की यह बात राजा के गले नहीं उतरी । राजा मौन रहा ।

एक बार जितशत्रु राजा सुबुद्धि मन्त्री के साथ घोड़े पर बैठ कर बड़े परिवार के साथ नगर के बाहर गन्दे पानी से भरी खाई के पास से घूमने के लिये निकला । पानी की असह्य दुर्गन्ध से राजा ने अपनी नाक को वस्त्र से ढँक लिया । कुछ आगे बढ़ जाने के बाद राजा ने अपने साथियों से कहा—यह पानी कितना गंदा है ? सड़े हुए शव से भी इसकी दुर्गन्ध भयानक है । राजा के इस कथन का सुबुद्धि के सिवाय सब ने समर्थन किया किन्तु सुबुद्धि मौन रहा । सुबुद्धि को मौन देखकर राजा सुबुद्धि से बोला—मंत्री ! तुम मौन क्यों हो ? क्या मेरा यह कथन समर्थन के योग्य नहीं है ?

सुबुद्धि विनीत भाव से बोला—स्वामी ! इसमें समर्थन करने जैसी क्या बात थी । यह तो वस्तु का स्वभाव है, कि उसमें परिणमन होता ही रहता है । जो जो 'वस्तुएँ वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से अच्छी नहीं हैं वह कल उपाय से अच्छी भी बन सकती हैं ।' राजा ने यह सुनकर फिर कहा—

अमात्य ! तुम्हारा यह अभिप्राय बराबर नहीं है । यह तो तुम्हारा दुराग्रह मात्र है । जो अच्छा है वह अच्छा ही रहेगा और जो बुरा है वह बुरा ही रहेगा । क्या यह गन्दा पानी भी कभी अच्छा बन सकता है ? तुम अपने आप को बहुत अधिक चतुर समझने लगे हो ।

राजा के इस कथन से सुबुद्धि को लगा कि वस्तु मात्र परिवर्तन शील है यह बात राजा नहीं जानता । अतः प्रत्यक्ष प्रयोग के द्वारा ही राजा को भगवान महावीर का यह सिद्धान्त समझाना होगा ।

भगवान महावीर ने कहा है–"प्रत्येक पदार्थ द्रव्य और पर्यायरूप है । द्रव्य रहित पर्याय और पर्याय रहित द्रव्य हो ही नहीं सकता । 'पर्याय का अर्थ ही परिवर्तन है'–यह बात राजा के ध्यान में आ जाय इसलिये इसी खाई के गन्दे पानी को स्वच्छ बना कर बताना होगा ।"

ऐसा विचार कर वह घर आया और उसने कुम्भार की दुकान से बहुत से नये घड़े मंगवाये । उन घड़ों में गन्दी खाई का पानी छनवाकर भरवाया । उनमें राख डालकर उनका मुह बन्द करवा दिया । उन घड़ों को घर पर लाकर सात दिन तक उन्हें रखा । सात दिन के बाद पुनः उस पानी को छनवाकर नये घड़ों में डाल दिया । राख आदि डालकर फिर सात दिन तक उसे रखा । इस प्रकार सात सप्ताह तक वह नये नये घड़ों में पानी डालकर रखता था और उसमें राख डाल कर उसे स्वच्छ बनाता रहा । इस प्रकार की क्रिया करने से वह जल अत्यन्त स्वच्छ और पीने योग्य वन गया । उसका रंग स्फटिक जैसा निर्मल हो गया । स्वाद में स्वादिष्ट और पाचन में हल्का हो गया । उसमें और भी सुगन्धित पदार्थ डालकर जल को अधिक अच्छा बना डाला ।

एक वार राजा अपने परिजनों के साथ भोजन कर रहा था अमात्य ने जल भरने वाले के हाथ वह पानी भेज दिया । जल पीकर

राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोला—यह पानी बड़ा शीतल है, मधुर है और सुगन्धित है । राजा जल की खूब प्रशंसा करने लगा । वस्तुतः मै तो इसे उदकरत्न ही कहता हूँ ।" राजा की इस बात का अन्य जन भी समर्थन करने लगे और वे राजा की हाँ में हाँ मिलाते हुए जल की प्रशंसा करने लगे । राजा ने कहा—यह पानी कहाँ से आया है ? कौन ले के आया है ? सेवक ने नम्रभाव से कहा—स्वामी ! यह पानी अमात्य सुबुद्धि ने आपके लिये ही भेजा है ।

सुबुद्धि मंत्री को बुलाकर जितशत्रु राजा ने पूछा—इतना शीतल और मधुर एवं सुगन्धित जल कहाँ से आया ? सुबुद्धि ने जवाब दिया-स्वामी ! यह पानी उसी गन्दी खाई का है । राजा आश्चर्य चकित होकर बोला—क्या सचमुच यह पानी उसी गन्दी खाई का है । मन्त्री ने जवाब दिया—"हाँ राजन् ! यह पानी उसी गन्दी खाई का है । प्रयोग करके मैने इसको इतना श्रेष्ठ और सुगन्धित बनाया है ।" राजा को मन्त्री की इस बात पर विश्वास नहीं हुआ । उसने स्वयं भी उसी प्रक्रिया से जल का शोधन करके देखा तो अमात्य की बात सच निकली । अब उसे अमात्य की 'वस्तु मात्र परिणमन शील है' इस बात पर सम्पूर्ण विश्वास हो गया ।

जितशत्रु ने अमात्य से पूछा—सुबुद्धि ! तुमने यह सत्य सिद्धान्त किससे सीखा ?

मन्त्री ने कहा—स्वामी ! जिन भगवान के वचन से ही मै इस सत्य सिद्धान्त को समझ सका हूँ । इसीलिये स्वामी ! मैं अच्छी वस्तु को देखकर कभी फूलता नहीं और बुरी वस्तु से कभी घबराता नहीं । वस्तु के पर्याय का यथार्थ भान हो जाने से मनुष्य प्रत्येक अवस्था में अपने समभाव को स्थिर रख सकता है । उसकी पदार्थ के प्रति आसक्ति नहीं बढ़ती ।

सुबुद्धि मन्त्री से जितशत्रु राजाने निर्ग्रन्थ प्रवचन को सुना और उसने पांच अनुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। अब वह निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुसार अपनी आत्मा को पवित्र करता हुआ रहने लगा।

एक बार चंपा नगरी में स्थविर मुनि का आगमन हुआ। राजा और मन्त्री दोनों ने स्थविर का उपदेश श्रवण किया। स्थविर के उपदेश से दोनों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। राजाने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर सुबुद्धि मन्त्री के साथ दीक्षा अंगीकार कर ली।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् जितशत्रु मुनि ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक दीक्षापर्याय पालकर अन्त में एक मास की संलेखना करके सिद्धि प्राप्त की।

तेतलीपुत्र

तेतलीपुर नामक नगर था। उस नगर के बाहर ईशान दिशा में प्रमदवन नाम का उद्यान था। उस नगर में कनकरथ नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। तेतलीपुत्र नाम का उनका अमात्य था। वह साम-दाम दण्ड और भेद इन चारों प्रकार की राजनीति में कुशल था।

उस नगर में कलाद नाम का एक मूषिकारदारक (स्वर्णकार) रहता था। वह धनाढ्य था और किसी से पराभूत होनेवाला नहीं था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। रूप यौवन और लावण्य में उत्कृष्ट पोट्टिला नाम की उसकी पुत्री थी।

एक बार पोट्टिला स्नान करके और सब अलंकारों से विभूषित होकर दासियों के समूह से परिवृत होकर प्रासाद के उपर रही हुई अगासी की भूमि में सोने की गेंद से क्रीड़ा कर रही थी। उस समय

बड़े सुभटों के साथ तेतलीपुत्र घुड़सवारी के लिए निकला । उसने दूर से पोट्टिला को देखा । पोट्टिला के रूप पर मुग्ध होकर उसने पोट्टिला सम्बन्धी सभी वातों की जानकारी अपने आदमियों से प्राप्त की और घर आने के वाद अपने विश्वस्त आदमियों को पोट्टिला की मांग करने के लिये स्वर्णकार के घर भेजा । उसने कहलाया कि चाहे जो शुल्क लो लेकिन अपनी कन्या का विवाह मुझ से कर दो ।

तेतलीपुत्र के विश्वस्त आदमी कलाद स्वर्णकार के घर पहुँचे । स्वर्णकार ने आये मनुष्यों का स्वागत सत्कार किया और आने का कारण पूछा, उत्तरमें उन्होंने कहा—हम तुम्हारी पुत्री पोट्टिला की अमात्य तेतलीपुत्र की पत्नी के रूप में मंगनी करते हैं । यदि तुम समझते हो कि यह सम्बन्ध उचित और प्रशंसनीय है तो तेतलीपुत्र को पोट्टिला प्रदान करो। अगर आप चाहेंगे तो इसके वदले में वे आपको मनमाना धन देंगे !

कलादने कहा–यही मेरे लिये शुल्क है जो तेतलीपुत्र मेरी पुत्री का पाणिग्रहण कर मेरे पर अनुग्रह कर रहे हैं। मै बिना किसी शुल्क के अपनी प्यारी पुत्री पोट्टिला का विवाह तेतलीपुत्र के साथ करने के लिए सहर्ष तैयार हूँ । इसके वाद कलाद ने आगन्तुक अतिथियों का भोजनादि से सत्कार किया और उन्हें सम्मान पूर्वक विदा किया ।

कलाद स्वर्णकार ने शुभ तिथि नक्षत्र और मुहुर्त में पोट्टिला को स्नान कराकर और समस्त अलंकारों से विभूषित करके शिविका में वैठा दिया और वह अपने सगे सम्बधियों तथा मित्रजनों को साथ लिये तेतलीपुत्र के घर गया और अपनी पुत्री को तेतलीपुत्र की पत्नी बनाने के लिये उसे सौंप दिया ।

इधर तेतलीपुत्र ने भी विवाह की तैयारी करली थी । पोट्टिला के आने पर उस समय की विधि के अनुसार उसके साथ तेतलीपुत्र ने विवाह कर लिया । तेतलीपुत्र ने आगन्तुक महमानों का भोजन आदि

से सत्कार किया और उन्हें विदा कर दिया । विवाह के पश्चात् तेतली-पुत्र पोट्टिला के साथ सुख पूर्वक रहने लगा ।

कनकरथ राजा राज्य में अत्यन्त आसक्त एवं गृद्ध होने के कारण अपने उत्पन्न होनेवाले सब पुत्रों के अंगों को विकृत करके उनको राज्यपद के अयोग्य बना देता था । इस बात से रानी अत्यन्त दुःखित थी ।

एक बार मध्यरात्रि के समय पद्मावती देवी को इस प्रकार अध्यव-साय हुआ–"सचमुच कनकरथ राजा राज्य में आसक्त हो गया है और उसकी आसक्ति इतनी अधिक हो गई है कि वह अपने पुत्रों को विकलांग बना डालता है । अगर यही स्थिति रही तो राज्य का भावी अंधकारमय हो जायगा । अतः राज्य की भावी सुरक्षा की दृष्टि से उत्तराधिकारी की अवश्यकता है । अब मुझे जो पुत्र होगा उसे कनकरथ राजा से छिपाकर उसका रक्षण करना होगा ।" ऐसा विचार कर उसने तेतली-पुत्र अमात्य को बुलाया और कहा–हे देवानुप्रिय ! यदि मुझे पुत्र हो तो उसे कनकरथ राजा से छिपाकर उसका लालन पालन करो । जब तक वह बाल्यावस्था पार कर यौवन न प्राप्त करले तब तक आप उसका पालन पोषण करें । तेतलीपुत्र ने रानी की बात स्वीकार कर ली ।

इसके बाद पद्मावती देवी ने तथा पोट्टिला अमात्यी ने एक ही साथ गर्भ धारण किया । नौ मास और साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर पद्मावती ने एक सुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दिया । जिस रात्रि में पद्मावती ने पुत्र को जन्म दिया, उसी रात्रि में पोट्टिला अमात्य पत्नी ने एक मरी हुई बालिका को जन्म दिया ।

पद्मावती ने उसी समय धायमाता के द्वारा तेतलीपुत्र को बुलाया । तेतलीपुत्र गुप्त मार्ग से महारानी के पास पहुँचा । महरानी ने अपने नवजात शिशु को मंत्री के हाथों में सौंप दिया । तेतलीपुत्र उस बच्चे को लेकर घर आया तथा सारी बाते अपनी पत्नी को समझाकर उसने बच्चे का लालन पालन करने के लिये उसे सौंप दिया और अपनी मृत पुत्री को रानी पद्मावती को दे आया ।

तेतलीपुत्र ने घर लौटकर अपने नोकरों को बुलाया और उन्हें पुत्र के जन्म के उपलक्ष में सारे नगर में उत्सव मनाने का आदेश दिया। जेलखानों से बन्दी जनों को मुक्त किया और याचक जनों को खूब दान दिया। दस दिन तक पुत्र जन्म के उपलक्ष में उत्सव मनाया गया। ग्यारवें दिन अपने मित्र ज्ञातिजनों के बीच तेतलीपुत्र ने कहा–कनकरथ राजा के राज्य में मुझे पुत्र हुआ है अतः इसका नाम कनकध्वज होगा। सबने यह बात स्वीकार कर ली। अब कनकध्वज राजोचित ढंग से अपना बाल्यकाल व्यतीत करने लगा।

इधर एक दासी ने महाराज कनकरथ से निवेदन किया कि महारानी पद्मावती ने एक मृत बालिका को जन्म दिया है। महाराज मन ही मन में प्रसन्न हुए। उन्होंने मृतबालिका का नीहरण किया और स्मशान में उसे दफना दिया। कुछ समय के बाद राजा शोक रहित हो गया।

कनकध्वज कुमार ने कलाचार्य के पास रहकर समस्त कलाएँ सीख लीं। वह युवा हो गया।

कुछकाल के बाद तेतलीपुत्र अमात्य का पोट्टिला पर से स्नेह हट गया। यहाँ तक कि पोट्टिला का नाम, गोत्र भी सुनना उसे अच्छा नहीं लगता था। पति के औदासिन्य से वह अत्यन्त चिन्तामग्न रहने लगी।

एक दिन पोट्टिला को शोक संतप्त देखकर तेतलीपुत्र ने उसे कहा–प्रिये! खेद मत करो। मेरी भोजनशाला में विपुल मात्रा में भोजन तैयार करावो और उसे श्रमण ब्राह्मणों को दो। भिक्षु आदि को दान देने से तुम्हारा शोक संतप्त हृदय कुछ शान्त बनेगा।

पति की आज्ञा पाकर वह दान शाला में विपुल मात्रा में भोजन बनाने लगी और प्रतिदिन दान में देने लगी। सैकड़ों भिक्षुगण उनकी दान शाला में आकर भिक्षा ग्रहण करने लगे।

उस समय सुव्रता नाम की आर्या अनेक शिष्याओं के साथ विहार करती हुई तेतलीपुर पधारी ।

सुव्रता आर्या का एक संघाटक (दो साध्वियाँ) पहली पोरसी में स्वाध्याय कर, द्वितीय पोरसी में ध्यान कर, तृतीय पोरसी में अपनी गुरु-आनी की आज्ञा प्राप्त कर आहार के लिए निकलीं । ऊँच नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाटन करती हुई तेतलीपुत्र के घर गईं । उन्हें आते देख पोट्टिला खड़ी हो गई और वन्दना करने के बाद नाना प्रकार के भोजन देकर बोली-हे आर्याओ ! पहले मै तेतलीपुत्र की इष्ट थी; अब अनिष्ट हो गई हूँ । आप लोग बहु शिक्षिता हैं और बहुत से ग्राम नगर, आकर आदि में विचरण करती रहती हैं, बहुत से राजा सेठ साहुकारों के घर में जाती रहती हैं । तो हे आर्याओ ! क्या कोई चूर्णयोग, कार्माणयोग, कर्मयोग, वशीकरण औषधि आदि प्रयोग आपने प्राप्त किया है ? आप मुझे भी ऐसा कोई प्रयोग बतावें जिससे मैं पुनः तेतलीपुत्र की इष्ट हो जाऊँ ।

यह सुनते ही उन आर्याओं ने अपने कान ढँक लिये और बोलीं-हम साध्वियाँ हैं । निर्ग्रन्थ प्रवचनानुसार चलने वाली ब्रह्मचारिणियाँ हैं अतएव ऐसे वचन हमें कानों से सुनना भी नहीं कल्पता तो इस विषय का आदेश उपदेश देना या आचरण करना तो कल्प ही कैसे सकता है ? हाँ, देवानुप्रिये ! हम तुम्हें अद्‌भुत या अनेक प्रकार के केवली प्ररूपित धर्म का भलीभांति उपदेश दे सकती हैं ।

इस पर पोट्टिला ने कहा-आर्ये ! मेरी केवलिप्ररूपित धर्म को सुनने की इच्छा है । आप मुझे अपना धर्म सुनाएँ । तब आर्याओं ने उसे श्रावक धर्म और साधु धर्म का उपदेश दिया । उपदेश सुनने के बाद पोट्टिलाने पांच अनुव्रत और तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत रूप धर्म को ग्रहण किया । थोड़े ही समय में वह जीवादि तत्त्वों की जान-कार श्राविका बन गई । साधु साध्वियों को आहारादि से प्रतिलाभित कर अपनी आत्मा को भावित करने लगी ।

एक दिन पोट्टिला रात को जग रही थी तो उसे विचार हुआ— "सुव्रता आर्या के पास दीक्षा लेना ही कल्याणकारक है।"

दूसरे दिन पोट्टिला तेतलीपुत्र के पास पहुँची और हाथ जोड़कर बोली—स्वामी ! मैं सुव्रता आर्या के पास दीक्षा लेना चाहती हूँ। इसके लिये मुझे आप आज्ञा दें।'

तेतलीपुत्र ने कहा—देवी चारित्र पालन करके जब तुम स्वर्ग में जाओ तब वहाँ से आकर मुझे केवली प्ररूपित धर्म का उपदेश देकर धर्म मार्ग में प्रवृत करो तो मैं तुम्हे आज्ञा दे सकता हूँ। पोट्टिला ने इस बात को स्वीकार कर लिया। तब तेतलीपुत्र ने पोट्टिला का दीक्षा महोत्सव किया। उसे हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका पर आरुढ़ करके सुव्रता के पास उपाश्रय में ले आया। साध्वी को वन्दन कर बोला—आर्ये ! मैं अपनी पत्नी पोट्टिला को आपकी शिष्या के रूप में भिक्षा देता हूँ। उसे स्वीकार करें। सुव्रता साध्वी ने पोट्टिला को दीक्षा दे दी। इसके बाद साध्वी पोट्टिला ने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक चारित्र का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना करके अपने कर्मों को क्षीणकर साठ भक्तों का अनशन कर पापकर्म की आलोचना तथा प्रतिक्रमण करके समाधि पूर्वक काल करके देवलोक में उत्पन्न हुई।

इधर कनकरथ राजा की मृत्यु हो गई। राजा का लौकिक कृत्य करने के बाद प्रश्न उठा कि अब गद्दी पर कौन बैठेगा। तब सब लोग मिलकर तेतलीपुत्र अमात्य के पास पहुँचे और राज्य के उत्तराधिकारी की व्यवस्था करने के लिए कहने लगे।

तेतलीपुत्र ने रहस्य खोल दिया और कहा—कनकध्वज ही वास्तव में इस गद्दी का मालिक है। यह पुत्र मेरा नहीं है किन्तु महाराज कनकरथ का ही पुत्र है। अमात्य के मुख से यह सुनकर लोग बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कनकध्वज का राज्याभिषेक किया और उसे राजा बना दिया।

कनकध्वज के राजा बनने के बाद पद्मावती ने उससे कहा–पुत्र ! तेतलीपुत्र अमात्य को तुम पिता तुल्य मानना । उसी के प्रताप से तुम्हें गद्दी मिली है। कनकध्वज ने माता की बात स्वीकार कर ली । कनकध्वज राजा तेतलीपुत्र अमात्य का बहुत आदर सत्कार करने लगा तथा उसके अधिकार में वृद्धि कर दी इससे तेतलीपुत्र मन्त्री काम भोगों में अधिक गृद्ध एवं आसक्त हो गया।

अपने वचन के अनुसार पोट्टिल देव ने तेतलीपुत्र को धर्म का बोध दिया किन्तु उसे धर्म की ओर रुचि न हुई ।

एक बार पोट्टिल देव को इस प्रकार अध्यवसाय हुआ–"कनकध्वज राजा तेतलीपुत्र का आदर करता है इसलिये वह प्रतिबोध नहीं प्राप्त करता है" ऐसा विचार कर उसने कनकध्वज राजा को तेतलीपुत्र से विमुख कर दिया ।

एक बार तेतलीपुत्र राजा के पास आया । मन्त्री को आया देखकर भी राजा ने उसका आदर नहीं किया । तेतलीपुत्र ने राजा कनकध्वज को प्रणाम किया तो भी राजा ने आदर नहीं किया और चुप रहा ।

राजा की यह स्थिति देखकर अमात्य तेतलीपुत्र भयभीत हो गया और घोड़े पर सवार होकर वह अपने घर वापस चला आया । केवल राजा ही नहीं किन्तु नगर के बड़े बड़े रईस, सेठ, साहूकार भी इससे घृणा करत लगे । तेतलीपुत्र जहाँ भी जाता, अनादर पाता था । उससे बात करना दूर रहा किन्तु उसका मुख भी कोई देखना पसन्द नहीं करता था । सर्वत्र इस अनादर से तेतलीपुत्र घबरा उठा । उसने अपने जीवन का अन्त करने का निश्चय किया । आत्महत्या करने के लिये वह वन की ओर चल पड़ा । वन में जाकर उसने तालपुट खा लिया लेकिन उसका भी उस पर कोई असर नहीं हुआ । तब उसने अपनी गर्दन पर तेज तलवार चलाई लेकिन वह भी प्रभाव

हीन हो गई। उसने फाँसी लगाई तो रस्सी टूट गई। मृत्यु भी उसका अनादर करने लगी। उसने मरने के कई उपाय किये किन्तु वे सबके सब निष्फल गये।

वह इन परिस्थितियों पर विचार कर ही रहा था कि उस समय पोट्टिलदेव उसके सन्मुख उपस्थित होकर बोला–हे तेतलीपुत्र ! आगे प्रपात है और पीछे हाथी का भय है। दोनों बगलों में ऐसा घोर अंध-है कि आँखों से दिखाई नहीं देता। मध्यभाग में बाणों की वर्षा हो रही ही। गाँव में आग लगी है और वन धधक रहा है तो हे आयुष्मान् तेतलीपुत्र ! हम कहाँ जाएँ ? कहाँ शरण लें। ऐसे सर्वत्र भय के वातावरण में हमें किसकी शरण में जाना चाहिये ?

तब तेतलीपुत्र ने कहा–देव ! भयग्रस्त पुरुष के लिये प्रव्रज्या ही शरणभूत है। कारण वीतराग अवस्था ही निर्भयता का कारण है।

सर्वत्र भयग्रस्त प्राणियों को दीक्षा क्यों शरणभूत है। उसका स्पष्टीकरण यह है कि क्रोध का निग्रह करने वाले क्षमाशील इन्द्रिय और मन का दमन करने वाले जितेंद्रिय पुरुष को इनमें से एक का भी भय नहीं है। भय काया और माया का ही होता है। जिसने दोनों की ममता त्याग दी वह सदैव और सर्वत्र निर्भय है।

तब पोट्टिल देव ने कहा—जब तुम इस परमार्थ को समझते हो तो फिर दीक्षा क्यों नहीं ग्रहण कर लेते। अपने जीवन को निर्भय क्यों नहीं बना लेते। पोट्टिलदेव की बात का असर तेतलीपुत्र पर पड़ गया। वह विचार में डूब गया। शुभ परिणामों के कारण उसे जातिस्मरण हो गया। उसने अपना पूर्व जन्म देखा—

जम्बूद्वीप में महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नामके विजय में पुंडरिकिणी नामकी राजधानी में मै महापद्म नाम का राजा था। उस भव में स्थविरों के पास मुण्डित होकर चौदह पूर्व पढ़कर वर्षों तक चारित्र पालकर एक मास का अनशन कर महाशुक्र नामक देवलोक में उत्पन्न हुआ था।

वहाँ से च्युत होकर मैं तेतलीपुर नगर में तेतली नामक अमात्य की भद्रा नाम की पत्नी की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। अब मुझे चारित्र ग्रहण करना ही उचित है।

उसने पूर्व जन्म में स्वीकार किये गये महाव्रतों को पुनः स्वीकार कर लिया। प्रमदवन में अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशीला पट्टक पर रहते हुए उसे चौदह पूर्व स्मरण आ गये तथा घनघाती कर्मों को खपाकर वह केवली हो गया। देवों ने केवली का उत्सव किया।

उधर कनकध्वज राजा को विचार हुआ कि मैंने तेतलीपुत्र का बड़ा अनादर किया। अतः वह क्षमा याचना मांगने तेतलीपुत्र केवली के पास गया। तेतलीपुत्र ने धर्मोपदेश दिया और राजा ने श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया। अन्त में तेतलीपुत्र ने सिद्धि प्राप्त कर ली।

दशार्णभद्र

दशार्ण देश में दशार्णपुर नाम का नगर था। नगर के समीप दशार्णकूट नाम का उद्यान था। वहाँ दशार्णभद्र नाम के समृद्धिशाली राजा राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम मंगलावती था। दशार्णभद्र अपने समय का एक शक्तिशाली राजा था।

एक बार भगवान महावीर दशार्णपुर के बाहर नन्दनवन में पधारे। उद्यान पालक ने भगवान महावीर के आगमन की सूचना राजा को दी। उद्यान पालक से भगवान की बात सुनकर दशार्णभद्र बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने भगवान को भाव वन्दन कर अपने सभासदों से कहा—"कल प्रातः मैं भगवान के दर्शन के लिये बड़े वैभव के साथ जाना चाहता हूँ। आप लोग सब राजसी ठाठ के साथ कल यहाँ उपस्थित हों।" उपस्थित सभासदों ने राजाज्ञा स्वीकार की।

सभा भवन से निकल कर राजा अन्तःपुर में गया। अपनी रानियों से भी प्रभु की वन्दना करने की बात कही। राजा सारी रात प्रातःकाल के आयोजन की चिन्ता में पड़ा रहा। प्रातः होते ही उसने नगर अध्यक्ष को समस्त नगर सजाने की आज्ञा दी।

नगर ऐसा सजा जैसे स्वर्ग का एक खण्ड हो । नगर सज जाने की सूचना मिलने के बाद राजा ने स्नान किया । उत्तम वस्त्र पहने और अलंकारों से अपने शरीर को अलंकृत किया । उसके बाद वह अपने हाथी पर बैठा और पूरे वैभव के साथ भगवान के दर्शन के लिये चल पड़ा । मार्ग में वह सोचने लगा--"मै जिस राजसी ठाठ से भगवान का दर्शन कर रहा हूँ वैसा आजतक किसी ने भी नहीं किया होगा ।" राजा के इस मनोगत भाव को भगवान की वन्दना के लिए आये हुए शक्र ने अवधिज्ञान द्वारा जानकर विचार किया "राजा के मन में भगवान के प्रति अपूर्व भक्ति और श्रद्धा है किन्तु इसे अपने वैभव का अभिमान है। उसके अभिमान को चूर करना चाहिये।" इस भाव से इन्द्र ने वैक्रिय शक्ति से चौंसठ हजार हाथी बनाये । प्रत्येक हाथी के पाँच सौ बारह मुख, एक एक मुख में आठ आठ दाँत, एक एक दाँत में आठ आठ मनोहर पुष्कर एवं लाख पत्तेवाले आठ आठ कमल इन्द्र ने विकुर्वित किये । प्रत्येक पत्ते में बत्तीस प्रकार के नाटक को करने वाले देवनटों को एवं कमल की प्रत्येक कर्णिका में चार मुखवाले प्रासाद बनवाये। उन प्रसादों में बैठकर इन्द्र अपनी आठ आठ अग्रमहिषियों के साथ बत्तीस प्रकार के नाटक देखने लगा । इस प्रकार के वैभव को वैक्रिय शक्ति से बनाकर इन्द्र भगवान की सेवा में बैठ गया । इन्द्र की अपूर्व ऋद्धि को देखकर दशार्णभद्र राजा को अपना वैभव तुच्छ लगने लगा। इन्द्र के वैभव के सामने अपना वैभव उसे ऐसा ही लगा जैसे सूर्य के सामने जुगनू लगता हो। राजा को अपनी भूल का भान हुआ । उसने सोचा--देवों को जो वैभव मिला है वह धर्माचरण से ही मिला है अतः मै भी प्रव्रज्या ग्रहण कर आत्म वैभव प्राप्त करूँ । उसने भगवान के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर ली । वह भगवान का शिष्य हो गया ।

दशार्णभद्र के दीक्षित होने पर इन्द्र उनके पास आया और वन्दनकर बोला-राजर्षि ! मै हार गया हूँ और आप जीत गये हैं । आपके

आत्म वैभव के सामने मेरा वैभव तुच्छ है। इन्द्र दशार्णमुनि को वन्दन कर चला गया।

दीक्षित बन दशार्णमुनि ने कर्मों का उन्मूलन किया और अमर-पद प्राप्त किया।

नन्दिषेण मुनि

राजगृह नगर के राजा श्रेणिक के पुत्र का नाम नन्दिषेन था। भगवान महावीर का उपदेश सुनकर उसने दीक्षा लेने का निश्चय किया। राजकुमार के इस निश्चय को जानकर एक देव ने नन्दिषेण से कहा— "राजकुमार! तुम्हारे भोगावली कर्म अभी शेष हैं। वे निकाचित हैं। तुम्हें भोगने ही पड़ेगे। तुम्हारा विचार अच्छा है पर उन भोगा-वली कर्मों की तुम उपेक्षा नहीं कर सकोगे।"

राजकुमार नन्दिषेण वैराग्य रंग में रंग चुका था। देवता की इस भविष्यवाणी की उपेक्षा कर उसने भगवान महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण करली। राजकुमार नन्दिषेण अब महाव्रती मुनि बन गया। दीक्षित बनने के बाद नन्दिषेण कठोर तप करने लगा कठोर तप के कारण नन्दिषेणमुनि को अनेक लब्धियाँ प्राप्त होगईं। जिनके बल पर वह अनेक चमत्कार पूर्ण कार्य कर सकते थे।

एक बार नन्दिषेणमुनि गोचरी के लिये नगर में आया। संयोग-वश वह गणिका के घर पहुँच गया। घर में उसे एक सुन्दर स्त्री मिली। उस स्त्री को देखकर मुनि ने पूछा—क्या मुझे यहाँ आहार मिल सकता है? गणिका ने उत्तर दिया—"जिसके पास सम्पत्ति है उसे यहाँ सब कुछ मिल सकता है किन्तु जो दरिद्र है उसे यहाँ एक तिनका भी नहीं मिल सकता। वेश्या का यह शब्द-बाण नन्दि-षेण के हृदय में चुभ गया। उसकी अहं भावना जागृत हो गई उसके मन में आया कि इसने मुझे अबतक नहीं पहचाना है। यह मेरे तप प्रभाव को नहीं जानती इसीलिये इतनी बकवास कर रही है।" इसे कुछ चमत्कार बताना ही चाहिये। यह सोच, नन्दि-

षेण ने भूमि पर पड़ा एक तिनका उठाया और उसे तोड़ा । तत्काल सुवर्णमुहरों का ढेर लग गया । नन्दिषेण के इस चमत्कार को देखकर वेश्या आश्चर्यचकित हो गयी । वह तत्काल दौड़ी हुई आई और मुनि के चरणों में पड़कर क्षमा याचना करने लगी और उन्हें अपने वश में करने के लिये विविध हाव-भाव करने लगी । वेश्या के हाव-भाव से नन्दिषेण अपनी साधना को भूल गया । उसने वेश्या की बात मानली और वह वहीं रहने लगा । उस समय उसने एक प्रतिज्ञा की कि "जबतक प्रतिदिन दस व्यक्तियों को प्रतिबोध देकर भगवान महावीर के समवशरण में नहीं भेजूँगा तबतक मै भोजन नहीं करूँगा ।"

नन्दिषेण अब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार प्रतिदिन दस-दस व्यक्तियों को प्रतिबोधित कर भगवान के समवशरण में पहुँचाता । प्रतिज्ञा के पूर्ण होने पर ही वह भोजन करता । ऐसा करते हुए उसके पांच वर्ष बीत गये । इसके बीच उसके एक पुत्र भी हुआ ।

एक दिन नन्दिषेण नौ व्यक्तियों को समझा चुका था किन्तु दसवाँ व्यक्ति अनेक प्रयत्न करने पर भी प्रतिबुद्ध नहीं हो रहा था। वह था एक सुवर्णकार । जब नन्दिषेण ने सुवर्णकार को धर्म की बातें कहीं तो उसने नन्दिषेण से कहा-भाई ! तुम धर्म सम्बन्धी इतनी लम्बी-लम्बी बातें करते हो और धर्म को जीव के लिये आवश्यक मानते हो तो उसका स्वयं क्यों नहीं आचरण करते । दूसरों को उपदेश देने में ही वीरता बता रहे हो । स्वयं वेश्या के घर रहते हो और हमें मोक्ष का मार्ग बताते हो । पहले तुम स्वयं अपना आचरण सुधारो फिर हमें आचरण सुधारने का उपदेश दो । इधर वेश्या मजाक में बोल उठी-"यदि सुवर्णकार स्वयं नहीं समझता है तो आप स्वयं क्यों नहीं समझ जाते ।" वेश्या के इन शब्दों ने नन्दिषेण को झकझोर कर डाला । उसका मन वैराग्य की ओर पुनः झुका । वह तत्काल बोल उठा-लो, मै भी समझ गया । आज से तुम्हारा और मेरा मार्ग

भिन्न है । मै आज भगवान के पास दीक्षित हो जाऊँगा ।" नन्दि-षेण के मुख से यह बात सुन वेश्या अवाक् होगई । उसने क्षमा याचना की और घर रहने के लिये आग्रह करने लगी । पिता के घर छोड़ चले जाने की बात सुनते ही कुमार नन्दिषेण के पास आया और उन्हें कच्चे धागों में बांध दिया । कुमार ने सात आंटे लगाये । अपने पुत्र की ममता के सामने नन्दिषेण को झुकना पड़ा । पुत्र के स्नेह वश उसने पुनः सात वर्ष गृहस्थ अवस्था में रहना स्वीकार किया ।

नन्दिषेण के बारह वर्ष समाप्त हो गये । साथ ही उसके भोगा-वली कर्म भी । नन्दिषेण पुनः साधु हो गया और कठोर तप करने लगा । कठोर तप करते हुए उसने घनघाती कर्मों को नष्ट कर दिया और केवलज्ञानी होकर मोक्ष में गया ।

अरणक मुनि

तगरा नाम की नगरी में दत्त नाम का वणिक रहता था । उसकी भद्रा नाम की पत्नी थी और अरणक नाम का पुत्र था ।

एक समय अर्हन्मित्राचार्य अपनी शिष्य मण्डली के साथ तगरा नगरी पधारे । आचार्य का आगमन सुनकर दत्त परिवार सहित आचार्य की सेवामें पहुँचा । आचार्य ने उसे उपदेश दिया । आचार्य का उप-देश सुनकर पिता पुत्र एवं माता तीनों ने दीक्षा ग्रहण कर ली । पिता पुत्र ने स्थविरों की सेवामें रहकर सूत्रों का अध्ययन किया । कुछ समय के बाद आचार्य की आज्ञा से पिता पुत्र स्वतंत्र रूप से विहार करने लगे । पिता का अपने पुत्र अरणक पर बड़ा स्नेह था । पुत्र को किसी भी बात का कष्ट न हो इस बात का पूरा ध्यान रखता था । पुत्र को कष्ट से बचाने के लिये पिता कभी भी अरणक को गोचरी के लिये बाहर नहीं भेजता था । वह स्वतः गोचरी लाकर अरणक को खिला दिया करता था । पिता की छत्र छाया में रहकर अरणकमुनि ने कभी भी कष्ट का अनुभव नहीं किया ।

एक दिन पिता मुनि का स्वर्गवास होगया। बाल मुनि अरणक अब एकाकी बन गया। पिता की चिन्ता में एक दो दिन निकल गये। लेकिन भूख ने जोर पकड़ा। अरणक मुनि पात्र लेकर आहार के लिए चले पड़े।

ग्रीष्म का ताप तप रहा था। सूर्य की प्रचण्ड किरणों से धरती तप रही थी। गरम लू चल रही थी। अरणक आज पहली बार भिक्षा के लिये निकला था। गरमी भूख और प्यास से अरणक अधीर हो उठा। कोमलांग अरणक को पहली बार परिषह का पता लगने लगा। अरणक धूप से घबरा गया और विश्राम के लिये एक भव्य प्रासाद की छाया में खड़ा हो गया। प्यास के कारण गला सूख रहा था। उस प्रासाद की खिड़की में एक युवा स्त्री बैठी थी। उसके अंग अंग से यौवन व मादकता फूट रही थी। उसका पति परदेश गया हुआ था इसलिये वह काम बाण से पीड़ित थी। अरणक मुनि की अलौकिक सुन्दरता को देखकर वह मुग्ध होगई। उसने दासी के द्वारा मुनि को अपने महल में बुला लिया और हाव-भाव व नयन-कटाक्षों से मुनि को अपने वश में कर लिया। मुनि उस सुन्दरी के यहाँ रहने लगे।

अरणक मुनि गृहस्थ बन गया और उसके साथ सुखोपभोग करते हुए जीवन यापन करने लगा। इधर साधुओं में अरणक की खोज होने लगी लेकिन उसका कहीं भी पता न लगा। अरणक के गायब होने की खबर उसकी माता तक पहुँची। माता घबड़ा गई और अपने पुत्र की खोज के लिए निकल पड़ी। वह गांव-गांव की धूल छानने लगी। जगह-जगह पूछती फिरती कि कहीं किसी ने उसके प्यारे पुत्र को देखा है? बुढ़ापे के कारण शरीर शिथिल हो रहा था। आंखों से कम दिखाई देता था। फिर भी दिल में उत्साह था कि कहीं मेरा अरणक मिल जायगा। अतः व मातृ-स्नेह के कारण वह पागल सी हो चली थी। 'अरणक' 'अरणक' पुकारती वह एक विशाल भवन के नीचे

धूप से घबड़ा कर खड़ी हो गई। ऊपर खिड़की में अरणक अपनी प्रेयसी से बातें कर रहा था। 'अरणक' 'अरणक' की आवाज अचानक उसके कानों में पड़ी। आवाज चिर परिचित सी मालूम दे रही थी। उसने नीचे की ओर झाँक कर देखा तो आश्चर्य चकित हो गया। वह आवाज और किसी की न होकर उसकी माता की ही थी। उसे अचानक महल के नीचे देखकर वह बाहर आया और स्नेह से उसके चरणों में गिर पड़ा। पुत्र को देखकर माता के हर्ष का कोई ठिकाना न रहा। उसने कहा-"बेटा! तू यहाँ कैसे आ पहुँचा? यों कहते-कहते उस वृद्धा की आँखों से आँसू बहने लगे। अरणक घबड़ा उठा। वह सोचने लगा "माता के प्रश्नों का क्या उत्तर दिया जाय? चेहरे का रंग उड़ गया। दिल अपराधी की तरह छटपटाने लगा। अन्त में उसने लड़खड़ाती हुई आवाज में कहा-"माँ! अपराध हो गया है। क्षमा करो। अरणक की आँखों से आँसू बहने लगे। माता ने सान्त्वना देते हुए कहा-बेटा! मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि चारित्र का पालन करना तलवार की धार पर चलने के समान है। चारित्र कीमती रत्न है। तूने उसे भोग विलास में पड़कर गवाँ दिया है।"

माता के वचन अरणक के हृदय में असर कर गये उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह मन ही मन अपने आपको धिक्कारने लगा। माता ने पुत्र को पश्चाताप करते देखकर कहा-"पुत्र! जो होना था सो हो गया। अब पाप के बदले प्रायश्चित करो ताकि तुम्हारी आत्मा पुनः उज्ज्वल बन सके।" माता ने पुत्र को पुनः गुरुदेव की सेवा में उपस्थित किया। गुरुदेव ने उसे फिर से दीक्षित किया। अरणक ने पुनः दीक्षा लेकर अपने जीवन को धन्य बना दिया।

एक दिन अरणक ने गुरुदेव से कहा-"भगवन्! जिस धूप ने मेरा पतन किया, उसीसे मै आत्मा का उत्थान करना चाहता हूँ।" ऐसा कहकर उसने ग्रीष्म ऋतु की कड़कड़ाती धूप में जलती हुई शिला पट्ट पर अपनी देह रख अनशन कर लिया और समभाव से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ समाधि-मरण कर देवलोक को प्राप्त हुआ।

धन्य सार्थवाह

राजगृह नगर में धन्य नाम का एक धनवान सार्थवाह रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। भद्रा ने सुषुमा नाम की अत्यन्त रूपवती कन्या को एवं धन, धनपाल, धनदेव धनगोप और धनरक्षित नाम के पुत्रों को जन्म दिया।

धन्य के चिलात नाम का एक सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट नौकर (दास-चेट) था, जो बच्चों के खिलाने में बड़ा कुशल था। भद्रा अपनी लाड़ली पुत्री सुषुमा को नहलाती, धुलाती, नजर से बचाने के लिए मसि आदि का टीका करती और अलंकार आभूषण आदि से सजाकर उसे चिलात को सौंप देती।

चिलात भी प्रतिदिन सुषमा को अपनी गोद में उठाकर खिलाने के लिये ले जाता था। सुषुमा को वह खूब प्यार करता था किन्तु साथ खेलनेवाले दूसरे बच्चों को वह अनेक प्रकार से कष्ट देता था। वह किसी बालक का गेंद चुरा लेता था तो किसी बालक की कौड़ियाँ। किसी के पास से खाने की चीज छीन लेता था तो किसी के गहने निकाल लेता था। किसी को वह खूब पीटता था। चिलात के इस व्यवहार से तग आकर लड़के और लड़कियाँ अपने मां बाप के पास पहुँचते और उसकी शिकायत करते थे। लड़के और लड़कियों के माँ बाप धन्य के पास पहुँचते और चिलात के उद्दण्ड व्यवहार की शिकायत करते। धन्य चिलात को बार-बार समझाता किन्तु चिलात अपने स्वभाव को नहीं बदलता था। एक दिन धन्य ने क्रुद्ध होकर चिलात को अपने घर से निकाल दिया।

घर से निकाले जाने पर वह चिलात राजगृह के गली-कूचों में, जुआरियों के अड्डों में, वेश्याओं के घरों में तथा मद्यपान-गृहों में स्वच्छन्द होकर घूमने लगा। अब उसे कोई टोकने वाला नहीं था। वह

धीरे-धीरे सभी दुर्व्यसनों में आसक्त हो गया। अब चोरी करना तो उसके बायें हाथ का काम था।

राजगृह से कुछ दूरी पर आग्नेय कोण में एक बड़ी चोरपल्ली थी। वह चोरपल्ली पर्वत की एक विषम कन्दरा के किनारे पर अवस्थित थी। वह बाँसों की झाड़ियों से घिरी हुई और पहाड़ों की खाइयों से सुरक्षित थी। उसके भीतर जल का उत्तम प्रबन्ध था परन्तु उसके बाहर जल का अभाव था। भागने या भागकर छिपने वालों के लिये उसमें अनेक गुप्त मार्ग थे। उस चोरपल्ली में परिचितों को ही आने और जाने दिया जाता था। वह चोर पल्ली चोरों को पकड़ने वाली सेना के लिये भी दुष्प्रवेश थी।

इस चोरपल्ली में विजय नाम का चोर सेनापति रहता था। वह बड़ा क्रूर था। उसके हाथ सदा खून से रंगे रहते थे। उसके अत्याचारों से पीड़ित सारा प्रांत उसके नाम से काँप रहा था। वह बड़ा निर्भय, निर्दय, बहादुर और सब प्रकार की परिस्थितिओं का डटकर सामना करने वाला था। उसका प्रहार अमोघ था। शब्दवेधी बाण के प्रयोग में वह बड़ा कुशल था। पांच सौ चोर उसके शासन में रहते थे। उसकी टोली में सभी प्रकार के अपराधी शामिल थे। वह अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये चोरों, गाठकतरों, पर-स्त्रीलंपटों, जुआरियों और धूर्तों को आश्रय देता था। नागरिकों को लूटना, ग्रामों को जलाना, मार्ग में चलते हुए मनुष्यों का सब कुछ खोंस लेना एवं नगर के प्रतिष्ठित लोगों को अपहरण कर उनसे धन वसूल करना उसका प्रतिदिन का कार्य था।

इधर चिलात के भी अपराध बढ़ने लगे। लोग भी उसका तिरस्कार करने लगे। कई अपराधों के कारण कोतवाल चिलात की तलाशी में लगा हुआ था। वह पुलिस से अपने आपको बचाता हुआ विजय चोर की सिंहपल्ली में पहुँच गया। विजय ने उसे अपने पास रख लिया और उसे सारी चोर विद्याएँ सिखा दीं। वह भी थोड़े ही समय

में चोर विद्या में निपुण हो गया। उसने चिलात को चोर सेनापति नियुक्त किया। कुछ समय के बाद विजय चोर की मृत्यु हो गई।

एक समय उस चिलात चोर सेनापति ने अपने पांच सौ चोरों से कहा कि चलो–राजगृह नगर में चल कर धन्ना (धन्य) सार्थवाह के घर को लूटें। लूट में जो धन आवे वह सब तुम रख लेना और सेठ की पुत्री सुषुमा वालिका को मै रखूँगा। ऐसा विचार कर उन्होंने धन्ना-सार्थवाह के घर डाका डाला। वहुत सा धन और सुषुमा वालिका को लेकर वे चोर भाग गये।

चोरों के चले जानेके वाद धना कोतवाल के पास पहुँचा और वहुत सा धन देकर वोला–चिलात चोर ने मेरा घर लूट लिया है और मेरी पुत्री सुषुमा को भी उठाकर ले गया है। तब उस कोतवाल ने अपने चुने हुए साथियों को लेकर धन्नासार्थवाह और उसके पुत्रों के साथ चिलात चोर का पीछा पकड़ा। भागते हुए चोर सेनापति चिलात को कोतवाल ने मार्ग में ही घेर लिया और उसके साथ युद्ध करने लगा। कोतवाल के भयंकर आक्रमण से पराजित होकर चोर धन दौलत छोड़कर भाग गये। अपने साथी चोरों को इधर उधर भागते हुए देखकर वह घवरा गया व युद्ध का मैदान छोड़कर सुषुमा को कन्धे पर उठाये वन की भयंकर झाड़ी में भाग गया।

कोतवाल धन सोना चाँदी आदि एकत्र कर अपने साथियों के साथ राजगृह की ओर चल पड़ा।

धन्ना ने चिलात को सुषुमा के साथ जंगल की ओर भागते हुए देख लिया था। उसने अपने पुत्रों के साथ शस्त्र सज्ज होकर चिलात का पीछा पकड़ा। चिलात सुषुमा को उठाये हुए आगे आगे जा रहा था और धन्ना उसके पीछे पीछे।

कुछ दूर पहुँचने के बाद चिलात अत्यन्त थक गया। जोरों की प्यास लग रही थी। शरीर लड़खड़ाता था। धन्ना सार्थवाह अपने पुत्रों के साथ वड़ी तेजी के साथ भागता हुआ आ रहा था।

उसने सोचा अब मैं सुषुमा को उठाकर जल्दी-जल्दी नहीं चल सकता अगर मेरी चलने की यही स्थिति रही तो मैं अवश्य पकड़ा जाऊँगा। उसने उसी क्षण तलवार हाथ में ले ली और एक झटका में सुषुमा का सिर उसके धड़ से अलग कर दिया। सिर को हाथ में लिये चिलात बड़ी तेजीसे भागा और एक झाड़ी में जाकर छिप गया। वहाँ पानी नहीं मिलने से उसकी मृत्यु होगई।

धन्ना सार्थवाह और उसके पांच पुत्र चिलात चोर के पीछे दौड़ते-दौड़ते थक गये और भूख प्यास से व्याकुल होकर वापिस लौटे। रास्ते में पड़े हुए सुषुमा के मृत शरीर को देखकर वे अत्यन्त शोक करने लगे। वे सब लोग भूख और प्यास से घबराने लगे तब धन्नासार्थवाह ने अपने पांचों पुत्रों से कहा कि मुझे मार डालो और मेरे मांस से भूख को और खून से तृषा को शान्त कर राजगृह नगर में पहुँच जाओ। यह बात उन पुत्रों ने स्वीकार नहीं की। वे कहने लगे-आप हमारे पिता हैं। हम आपको कैसे मार सकते है? तब कोई दूसरा उपाय न देख कर पिता ने कहा कि सुषुमा तो मर चुकी है। क्यों नहीं इसी के मांस और रुधिर से भूख और प्यास को शान्त किया जाय। सभी पुत्रों को पिता की यह राय अच्छी लगी। उन्होंने मृत पुत्री के मांस और रक्त से अपनी भूख और प्यास शान्त की।* इसके बाद दुःख से संतप्त हृदयवाले वे सब लोग राजगृह लौट आये।

एक समय श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में पधारे। धर्मोपदेश सुनकर धन्नासार्थवाह को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की। कई वर्ष तक संयम पालन कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से चवकर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और सिद्धपद प्राप्त करेगा।

---

*इस कथन से प्रकट होता है कि धन्नासार्थवाह जैन नहीं था। फिर भगवान महावीर के उपदेश से जैन साधु बनकर सुगति को प्राप्त हुआ।

माकन्दीपुत्र–जिनरक्षित–जिनपालित

चंपा नगरी में माकन्दी नाम का सार्थवाह रहता था। उसकी भद्रा नाम की भार्या थी। उसके जिनपालित और जिनरक्षित नाम के दो पुत्र थे। ये दोनों पुत्र बड़े साहसी और चतुर थे, उन्होंने लवण समुद्र की ग्यारहबार यात्रा की थी और बहुत सा धन संचित किया था।

एक वार जिनरक्षित और जिनपालित ने सोचा कि फिर से लवण समुद्र की यात्रा कर बहुत सा धन संचित किया जाय। दोनों भाई मिलकर अपने माता पिता के पास गये और अपनी यात्रा का प्रस्ताव उनके सामने रखा। पुत्रों का यह प्रस्ताव माता पिता को पसन्द न आया। वे बोले–"पुत्र! हमारे पास बाप दादाओं द्वारा उपार्जित सम्पत्ति की कमी नहीं है। तुम बिना कमाये भी आजीवन इसका उपभोग कर सकते हो तो फिर लवण समुद्र की संकटमय यात्रा कर अपने प्राणों को क्यों जोखिम में डालते हो? लवण समुद्र की यात्रा करके कुशलता पूर्वक लौटना कोई आसान काम नहीं, अतएव तुम लोग समुद्र यात्रा का विचार बिलकुल छोड़दो"। परन्तु माकन्दी पुत्रों ने अपने माता पिता की बात न मानी और विविध द्रव्यों से अपनी नाव को भर-कर वे लवण समुद्र में बारहवीं वार यात्रा के लिए रवाना हुए।

दोनों भाई जब बहुत दूर निकल गये तो एक दम आकाश में बादल घिर आये और गरजने लगे। बिजली कड़कने लगी और जोरों की हवा चलने लगी। देखते देखते नाव डगमगाने लगी, लहरों से टक-राकर गेंद की तरह वह ऊपर नीचे उछलने लगी उसके तख्ते टूट–टूट कर गिरने लगे, नाव की रस्सियाँ टूट गईं पतवारें जाती रहीं। ध्वजदण्ड नष्ट होगये तथा नावपर काम करने वाले नाविक, कर्णधार तथा व्यापारी लोग घबरा उठे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। थोड़ी देर में नाव जल के अन्तर्गत एक पहाड़ी से जाकर टकरा गई और क्षण भर में चकनाचूर होगई। सैकड़ों लोग अपने कीमती माल सामान

के साथ विशाल समुद्र में सदा के लिए विलीन हो गये किन्तु माक-न्दीपुत्र बड़े साहसी और दक्ष थे ऐसे संकट का उन्होंने कई बार सामना किया था। वे उसी क्षण समुद्र में कूद पड़े और जहाज के एक टूटे हुए तख्ते पर चढ़ गये और उसी के सहारे से समुद्र पर तैरने लगे। तैरते तैरते वे समीप के एक द्वीप में पहुँचे। उस द्वीप का नाम था रत्नद्वीप। वह द्वीप बड़ा रमणीय था। नानावृक्षों से सुशोभित अत्यन्त विशाल और मनोहर था। इस द्वीप के बीच एक सुन्दर प्रासाद था, जिसमें अधम और साहसी रत्नद्वीप देवता नाम की देवी रहती थी। उस प्रासाद की चारों दिशाओं में चार वनखण्ड थे। वे प्रासाद की शोभा को बढ़ा रहे थे।

माकन्दीपुत्रों ने थोड़ा विश्राम किया और कुछ फलफूल खाकर अपना पेट भरा। उन्होंने नारियल को फोड़कर उसका तेल निकाला और उसकी शरीर पर मालिश की। उसके बाद माकन्दीपुत्रों ने पुष्क-रणी में उतर कर स्नान किया और एक शिला पर बैठकर विश्राम करने लगे एवं बीती हुई बातों को सोचने लगे—माता पिता से झगड़ कर उन्होंने किस प्रकार उनकी अनुमति प्राप्त की ? चंपा से कैसे विदा हुए ? समुद्र के बीच का भयंकर तूफान, अपने साथियों का समुद्र में डूब जाना और असबाब के साथ नाव के नष्ट होने आदि की घटनाओं को याद कर वे अत्यन्त दुःखी होने लगे।

उधर ज्योंही रत्नद्वीप की देवी को माकन्दीपुत्रों के आने का अवधिज्ञान से पता लगा त्यों ही वह वायुवेग से दौड़ी हुई वहाँ आई और लाल-लाल आँखे दिखाकर निष्ठुर वचनों से कहने लगी—हे माकन्दीपुत्रो ! अगर तुम्हें अपना जीवन प्रिय है तो तुम मेरे साथ आकर मेरे महल में रहो और मेरे साथ यथेष्ट कामसुख का उपभोग करो, अन्यथा याद रखना, इस तीक्ष्ण चमकती हुई नंगी तलवार से तुम्हारे मस्तक को ताड़फल की तरह काटकर समुद्र में फेक दूँगी। देवी के क्रोधयुक्त निष्ठुर वचनों को सुनकर दोनों भाई भय से कांपने लगे

और हाथ जोड़कर बोले—देवी आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आप जैसा कहेगीं वैसा ही करेंगे । देवी माकन्दीपुत्रों को अपने महल में ले आई और उनके साथ यथेष्ट काम भोगों को सेवन करने लगी । वह देवी माकन्दीपुत्रों के लिए अमृत जैसे मीठे फल लाने लगी।

एक बार रत्नद्वीप की देवी को शक्रेन्द्र से आदेश मिला कि वह लवण समुद्र को कूड़े-कचरे से इक्कीस बार साफ करे । देवी ने माकन्दी-पुत्रों को बुलाकर कहा—"माकन्दीपुत्रो ! मैं इन्द्र के आदेश से लवण समुद्र को साफ करने जा रही हूँ। जबतक मैं वापिस न आऊँ तबतक तुम इस महल में आराम से रहना, कहीं इधर-उधर मत जाना। यदि तुम इस बीच में ऊब जाओ तो अपने दिल बहलाव के लिए पूर्व दिशा के वनखण्ड में चले जाना । वहाँ सदा वर्षा और शरदऋतुएँ रहती हैं और वह स्थान अनेक लतामण्डपों, विविध फल और फूलों के वृक्षों एवं पुष्करणी तालाब आदि से सुशोभित है । वहाँ विविध पशु पक्षी एवं मयूर के नृत्य देखने को मिलेंगे । यदि तुम्हारा वहाँ भी मन न लगे तो तुम उत्तर की ओर के वनखण्ड में जा सकते हो। वहाँ सदा शरद और हेमन्त ऋतुएँ रहती हैं, वहाँ तुम्हें अनेक फल-फूलवाटि-काएँ तथा विविध पक्षी दृष्टिगोचर होंगे । वहाँ और भी कई मनोहर दृश्य दिखाई देंगे कदाचित् वहाँ भी मेरी याद आ जाये तो तुम पश्चिम की ओर के वनखण्ड में चले जाना । वहाँ सदा वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ रहती है, और वहाँ तुम आम, केसू, कनेर, अशोक आदि वृक्षों का आनन्द ले सकोगे । यदि वहाँ भी तुम्हारा मन न लगे तो तुम वापिस महल में आजाना, परन्तु याद रखना, भूलकर भी दक्षिण दिशा के वनखण्ड में न जाना कारण उस वनखण्ड मे भयंकर विष-धर सर्प है । उसकी फूत्कार मात्र से ही मनुष्य की मृत्यु हो जाती है अगर तुम वहाँ चले गये तो तुम जीते जी वापिस नहीं आसकोगे" इतना कहकर देवी अपने कार्य के लिए वहाँ से चलदी ।

देवी के चले जाने के बाद माकन्दीपुत्र थोड़ी देर महल में रहने के बाद पूर्वदिशा के वनखण्ड में गये। वहाँ कुछ समय तक रहकर वे उत्तर के वनखण्ड में गये और वहाँ से वे पश्चिम के वनखण्ड में पहुँचे। उसके बाद माकन्दीपुत्रों ने सोचा कि देवी ने हमें दक्षिण दिशा के वनखण्ड में जाने से क्यों मना किया है। अवश्य ही इस में कोई न कोई रहस्य होना चाहिए। हमलोग क्यों न जाकर देखें कि वहाँ क्या है ?

दक्षिण दिशा के वनखण्ड के रहस्य का पता लगाने के लिए दोनों कुमारों ने निश्चय किया। साहस बटोर कर वे दोनों कुमार दक्षिण दिशा की ओर रवाना हुए। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें बड़ी असह्य दुर्गन्ध आई; उन्होंने उत्तरीय वस्त्र से अपने मुँह ढँक लिये और बड़ी कठिनता से आगे बढ़े। आगे जानेपर उन्हें एक बड़ा वधस्थल मिला जहाँ हड्डियों के ढेर और मृत पुरुषों के देह इधर उधर पड़े हुए दिखाई दिये। वहाँ शूलीपर लटका हुआ एक पुरुष करुण स्वर में चीख रहा था। दोनों भाई डरते डरते उस पुरुष के पास पहुँचे। उसे पूछा—भाई! यह वधस्थल किसका है? तुम कौन हो? किसलिए यहाँ आये थे? तुम्हारी यह अवस्था किसने की? पुरुषने अपना परिचय देते हुए कहा—यह रत्नद्वीप की देवी का वधस्थान है। मै काकन्दी नगरी का निवासी अश्वों का व्यापारी हूँ। नाव में घोड़े और कीमती माल भरकर मैं लवणसमुद्र से परदेश जा रहा था। इतने में समुद्र में एक बड़ा तूफान आया और मेरी नाव समुद्री पर्वत से टकराकर चकनाचूर हो गई। एक टूटे हुए पटिये के सहारे तैरता हुआ मैं रत्नद्वीप में आकर रहने लगा। वहाँ से रत्न द्वीप की देवी मुझे अपने महल में ले गई जहाँ मैं उसके साथ सुखभोग भोगता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा। एक दिन मुझ से छोटा सा अपराध होगया जिससे क्रुद्ध होकर देवी ने मेरी यह दुर्दशा की।

पुरुष के मुख से हृदय विदारक करुण कहानी सुन कर वे माकन्दीपुत्र अत्यन्त भयभीत होगये और उससे देवी के पंजे से छूटकर जाने का मार्ग पूछने लगे। शूली पर लटके हुए पुरुष ने कहा-सुनो, पूर्व वनखण्ड में शैलक नाम का एक अश्वरूप धारी यक्ष रहता है। वह प्रत्येक चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस और पूर्णिमा के दिन बड़े जोर जोर से चिल्लाकर कहता है-"मै किसकी रक्षा करूँ? किसे पार उतारूँ?" उस समय तुम लोग उसके पास जाना और उसकी पूजा अर्चना करके उससे विनय पूर्वक प्रार्थना करना-"हे यक्ष! कृपाकर हमारी रक्षा कर, हमें पार उतार।"

यह सुनकर माकन्दी पुत्र बड़े प्रसन्न हुए और बड़ी तीव्र गति से पूर्व दिशा के वनखण्ड में जहाँ पुष्करणी वाव थी वहाँ आये और पुष्करणी में उतर कर स्नान किया। कमल पुष्पों को ग्रहण कर वे शैलक यक्ष के यक्षायतन में आये और भक्ति पूर्वक पूजा करने लगे। यक्ष संतुष्ट होकर बोला-पुत्रो! वर माँगो। माकन्दी पुत्र वोले-देव! हमारी रत्नद्वीप की देवी से रक्षा करो। हमारे प्राण बचाओ। शैलक यक्ष ने माकन्दी पुत्रों से कहा-पुत्रो, मै तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ किन्तु तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी। वह यह कि जब मै तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर चलूँ तो उस समय रत्नद्वीप की देवी तुम्हें नाना प्रकार के हाव भाव प्रदर्शित कर लुभाने का प्रयत्न करेगी, तथा भयंकर विकराल रूप बनाकर तुम्हें डारायेगी धमकायेगी, उस समय तुम लोग जरा भी विचलित न होना। यदि तुमने अस्थिर होकर जरा भी मोह भाव से देवी की ओर देखा तो मै उसी क्षण तुम्हें पीठ पर से उतार कर समुद्र में फेक दूँगा और देवी तुम्हारा तत्काल वध कर डालेगी। यदि तुम दृढ़ रहे तो मै तुम्हें देवी के जाल से अवश्य मुक्त कर दूंगा। माकन्दी पुत्रों ने शैलक यक्ष की बात मान ली। यक्ष ने अश्व का रूप बनाया और दोनों को अपनी पीठ पर चढ़ाकर बड़े वेग से चम्पा की ओर चल दिया।

जब देवी वापस आई तो दोनों माकन्दीपुत्रों को महल में नहीं पाया। तब वह उन्हें खोजने के लिए पूर्व, पश्चिम और उत्तर के वनखण्ड में गई वहाँ जब वे न मिले तो वह समझ गई कि माकन्दी पुत्र मेरे हाथ से निकल भागे हैं। उसने अवधिज्ञान से देखा कि दोनों भाई शैलक यक्ष की पीठ पर सवार होकर चम्पा की ओर भागे जा रहे हैं। उसी क्षण उसने विकराल और भयंकर रूप बनाया और तीक्ष्ण तलवार हाथ में ले बड़े वेग से माकन्दीपुत्रो के पास आई और अत्यन्त क्रुद्ध वचनों से बोलने लगी-हे माकन्दीपुत्रो! तुम लोग मुझे छोड़ कर कहाँ भागे जा रहे हो यदि तुम्हे अपनी जिन्दगी प्रिय है तो तुम मेरे साथ वापस लौट चलो अन्यथा इस तीक्ष्ण तलवार से मैं तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर दूँगी। देवी के इन वचनों का माकन्दीपुत्रों पर कुछ भी असर नहीं हुआ उन्होंने देवी की ओर मुड़कर भी नहीं देखा।

जब देवी ने देखा कि उसके वचनों का कोई असर नहीं हो रहा है तो उसने दूसरी चाल चली। उसने अत्यन्त रूपवती नारी का रूप बनाया। विविध शृङ्गार किये और अत्यन्त हावभाव से माकन्दीपुत्रों को लुभाने का प्रयत्न करने लगी। वह अत्यन्त करुण और विलाप भरे स्वर में बोली-हे प्राणनाथ! आपलोग मेरे साथ किस प्रकार हँसते बोलते थे और चौपड़ आदि खेल खेलते थे। उद्यान में घूमते थे और रतिक्रीड़ा करते थे। क्या ये सब बातें आप लोग भूल गये। आपने इतना निष्ठुर हृदय क्यों बना लिया है? मैं आपलोगों के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। देवी के प्रेम भरे शब्दों का असर जिनरक्षित पर होने लगा। यह देख, वह उसी को लक्ष्य कर कहने लगी-हे जिनरक्षित! तुम मुझे कितना चाहते हो, तुम मुझे एक क्षण भी हृदय से अलग नहीं रखते थे अब तुम्हें क्या हो गया? प्रियतम! तुम मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले? तुम इतने निर्दय कैसे हो गये। जिनपाल तो पहले भी मुझ से भेद भाव रखता था। वह अगर छोड़कर जाता है तो उसे

जाने दो किन्तु मुझे तुम निःसहाय बनाकर मत जाओ। अगर तुम इस प्रकार निष्ठुर होकर चले गये तो मैं अवश्य ही प्राण त्याग दूँगी।

देवी के हृदयस्पर्शी मीठे वचन सुनकर जिनरक्षित का हृदय पिघल गया और ज्योंही उसने प्यार भरे नेत्रों से उसकी ओर देखा, त्योंही शैलक यक्ष ने झट से उसे अपनी पीठ के ऊपर से समुद्र में पटक दिया और देवी ने लाल लाल आखें निकाल कर उसी क्षण तीक्ष्ण तलवार से उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले।

जिनरक्षित का काम तमाम करके वह अट्टहास करती हुई जिनपालित के पास पहुँची और विविध हावभाव से उसे लुभाने लगी। उसने जिनपालित को अपनी ओर आकर्षित करने के अनेक प्रयत्न किये किन्तु जिनपालित ने उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया और अपने मन को अत्यन्त दृढ़ रखा। देवी अन्त में थक कर चली गई।

जिनपालित निर्विघ्न कुशलता पूर्वक चम्पा पहुँच गया और अपने माता पिता से जा मिला। उसने घर आकर सब बातें अपने कुटुम्बियों को कह सुनाई। जिनपालित ने भगवान महावीर का उपदेश सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। अंगसूत्रों का अध्ययन किया। अन्तिम समय में मासिक अनशन कर सौधर्मकल्प मे देव बना। वहाँ से वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध बनेगा।

(१) स्कन्धक मुनि

श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु नाम का राजा था। उसकी रानी धारिणी थी और स्कंधक नाम का पुत्र था। उसकी बहन का नाम पुरंदरयशा था। वह कुम्भकारवड नगर के राजा दंडकी के साथ व्याही गई थी।

दण्डकी राजा का पालक नाम का मंत्री था। एक बार भगवान मुनिसुव्रतस्वामी का उपदेश सुन स्कन्धकुमार श्रावक बना। किसी समय पालक मंत्री श्रावस्ती आया था। स्कंधक कुमार के साथ धार्मिक चर्चा में हार गया। इससे पालक को स्कन्धक के प्रति रोष हो गया।

स्कन्धककुमार पाँच सौ के साथ दीक्षित हो भगवान मुनिसुव्रत के साथ रहने लगा। वह बहुत शीघ्र बहुश्रुत बन गया।

एक बार भगवान से अपनी बहन पुरंदरजसा को दर्शन देने के लिये कुंभकारकड नगर जाने की आज्ञा मांगी। भगवान ने कहा— वहाँ मरणांत कष्ट होगा अतः तुम न जावो। स्कन्धक ने भगवान से पूछा—हम पांच सौ में कौन आराधक और कौन विराधक है? भगवान ने कहा—तुझे छोड़कर सभी आराधक हैं।

स्कन्धक भगवान की आज्ञा न होने पर भी पाँचसौ साधुओं के साथ कुम्भकारकड नगर पहुँचा और एक उद्यान में ठहरा। पालक मन्त्री को स्कन्धक मुनि के आने का सामाचार मिला। उसने बदला लेने का सुन्दर अवसर पाया। अपने गुप्तचरों द्वारा उसने उद्यान में पहले ही शस्त्रों को जमीन में गड़वा दिया था। पालक राजा के पास पहुँचा और बोला—स्वामी! स्कन्धक पांचसौ सुभटों के साथ साधुवेश में आपकी हत्या करने और आपके राज्य पर अधिकार करने आया है। उन्होंने बगीचे में जमीन के भीतर शस्त्र गाड़कर रखे हैं। राजा ने गुप्त रूप से पता लगाया तो उद्यान में सचमुच शस्त्र मिल गये। राजा को मंत्री की बात पर विश्वास हो गया। वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने पांच सौ साधुओं को पालक को सौंप दिया और कहा कि तुम इन साधुओं को इच्छानुसार दण्ड दे सकते हो। पालक मन्त्री ने सभी साधुओं को घानी में पिलवा दिया। केवल एक छोटा साधु बचा तो स्कन्धक ने पालक से कहा—"मेरे सामने इसे मत पीलो। पहले मुझे पील डालो।" स्कन्धक की बात पालक ने नहीं मानी और उसे उनके सामने घानी में पील दिया। स्कन्धक को पालक की इस क्रूरता पर बड़ा क्रोध आया और उसने निदान किया कि 'मैं मरने के बाद इस नगर का राजा सहित विनाश करूँ।' स्कन्धक भी पील दिया गया। स्कन्धक मरकर अग्निकुमार देव बना। पुरंदरयशा को जब भाई के घानी में पीले जाने के समाचार मिले तो वह साध्वी बन गई। स्कन्धक अग्निकुमार ने राजा सहित

नगर को भस्म कर दिया । ४९९ मुनियों ने समता भाव से मोक्ष प्राप्त किया ।

(२) स्कन्धकमुनि

श्रावस्ती नगरी में कनककेतु नामक राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम मलयसुन्दरी और पुत्र का नाम स्कन्धक कुमार तथा पुत्री का नाम सुनन्दा था । सुनन्दा का विवाह कांचीनगर के राजा पुरुषसिंह के साथ हुआ था । स्कन्धक कुमार अपने गुणों से राजा प्रजा और कुटुम्बीजनों को अत्यन्त प्रिय था ।

एक समय विजयसेन नाम के आचार्य का आगमन हुआ । उनका उपदेश सुनकर स्कन्धककुमार को वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने अपने माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर आचार्य के पास दीक्षा ले ली । 'मेरे संयमी पुत्र को कोई कष्ट न दे इस उद्देश्य से राजा ने अनेक सुभटों को गुप्त रूप से उसके साथ कर दिया ।' स्कन्धकमुनि गुरु के पास रहकर शास्त्र का अध्ययन करने लगे । ये बड़े मेधावी थे अतः अल्प समय में ही गीतार्थ हो गये । गुरु की आज्ञा प्राप्त कर अब ये एकाकी विचरने लगे ।

विहार करते हुए वे कांचीपुर नगर पधारे । वहाँ इनकी बहन रहती थी । दिन के तृतीय पहर में मुनि आहार के लिये निकले । वे परिभ्रमण करते करते राजमहल के पास से जा रहे थे। उस समय महा-रानी 'सुनन्दा' और महाराज 'पुरुषसिंह' गवाक्ष में बैठे हुए नगर निरीक्षण कर रहे थे । महारानी सुनन्दा की दृष्टि आहार के लिये परिभ्रमण करते स्कन्धक मुनि पर पड़ी । मुनि को देखकर वह सोचने लगी—"मेरा भाई भी इसी प्रकार इतने उष्ण ताप में भिक्षा के लिए घर घर परिभ्रमण करता होगा ।" इस विचार से वह अनिमेष दृष्टि से मुनि की ओर देखने लगी। तप से मुनि का शरीर कृश हो गया था । अतः सुनन्दा अपने भाई को न पहचान सकी । वह मुनि को देखते

देखते अपने भाई की याद में रो पड़ी। रानी को रोता देख राजा ने बाजार की ओर देखा तो उनकी दृष्टि मुनि पर पड़ी। राजा संशय-ग्रस्त हो गया। वह सोचने लगा—"यह भिक्षुक अवश्य मेरी रानी का पूर्व प्रेमी होगा। इसीलिये रानी इसे देखकर रो रही है। राजा उसी क्षण कुछ बहाना बनाकर वहाँ से उठा और अपने महल में आकर अपने चाण्डालों को बुलवाया और कहा कि "इस भिक्षुक की एड़ी से चोटी तक की खाल उतार कर मार डालो।"

राजाज्ञा को पाकर चाण्डाल मुनि के पास आये और उन्हें पकड़ कर वध भूमि में ले गये। वहाँ राजाज्ञा सुनाकर उन्होंने तीक्ष्ण शस्त्रों से मुनि के शरीर की चमड़ी उतारनी शुरू की। मुनि इस मरणान्त संकट में भी अत्यन्त धैर्य धारण किये हुए थे। वे शरीर और आत्मा की भिन्नता का विचार करते हुए समता रस का पान करने लगे। अपूर्व क्षमा और धैर्य के कारण मुनि ने समस्त कर्म खपा डाले। वे अन्त में सिद्ध बुद्ध और मुक्त गये।

मुनि को मारकर चाण्डाल वहाँ से चले गये। उस समय मुनि के रक्त से सनी हुई मुखवस्त्रिका को मांस समझ कर चील उठाकर ले गई। अधिक भार होने से वह रानी के महल की अगासी पर चील की चोंच से गिर पड़ी। रानी रक्त से सनी मुखवस्त्रिका को देखकर विचार में पड़ गई। उसने सोचा अवश्य ही आज मुनि की हत्या किसी ने की है। तलाश करने पर पता चला कि उसके भाई स्कन्धक को राजा ने चमड़ी उतरवा कर मार डाला है। वह भाई की मृत्यु से दुःखी हुई। राजा को भी जब पता चला कि "मैंने जिस मुनि की हत्या करवाई है वह मेरा साला ही था तो राजा को भी अपने दुष्कृत्य का अत्यन्त खेद हुआ।"

एक बार कोई ज्ञानी मुनिराज कांचीनगर आये। राजा और रानी मुनि दर्शन के लिए गये। मुनि का प्रवचन सुनने के बाद राजा ने कहा–भगवन्! मेरे द्वारा किस पाप के उदय से मुनि हत्या हुई है?

मुनि ने राजा का पूर्व भव सुनाते हुए कहा—राजन्! आज से हजार भव पूर्व स्कन्धककुमार राजकुमार थे। वे एक वार घूमते हुए एक कुएँ के किनारे पर बैठे। उस समय राजकुमार ने काचरे का फल लेकर उसे अत्यन्त कुशलता पूर्वक अखण्ड छाल रख अन्दर का शेष काढ़ लिया था। वह काचरे का फल तुम्हारा ही जीव था। काचरे को छीलकर जो राजकुमार को प्रसन्नता हुई उसी से उसने निकाचित कर्म का वन्धन किया। उसी के परिमाण स्वरूप तुमने अपने वैर का बदला इस रूप में लिया।

अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया उसने अपने को पुत्र राज्य देकर रानी सुनन्दा के साथ दीक्षा धारण कर ली और आत्म कल्याण किया।

मुनि के साथ रहने वाले गुप्तचरों को जब मुनि के खाल उतार कर मारे जाने का समाचार मिला तो वे बड़े दुःखी हुए और विलाप करते हुए काचीपुर पहुँचे। उन्होंने मुनि के मारे जाने का समाचार राजा को सुनाया। मुनि के मरने का वृत्तान्त सुन उसके माता पिता को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने भी संसार को असार समझ कर दीक्षा ली को और आत्मकल्याण किया।

मुनि आर्द्रककुमार

आर्द्रपुर नगर में आर्द्र नाम का राजा राज्य करता था उसकी रानी का नाम आर्द्रा था। उसके आर्द्रक नाम का पुत्र था। एक बार राजगृहके राजा श्रेणिक ने व्यापारियों के साथ आर्द्र राजा को मैत्री सूचक उपहार भेजा। उपहार को देख आर्द्रक कुमार ने भी राजा श्रेणिक के पुत्र अभय कुमार को एक पत्र और बहुमूल्य उपहार भेजा। अभयकुमार ने भी प्रत्युत्तर में जैन मुनियों की वेषभूषा का उपहार भेजा। मुनियों की वेषभूषा देखकर आर्द्रकुमार को अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया।

उसने पूर्वभव को देखा–'मैं पूर्वभव में वसन्तपुर नगर में सामायिक नामक गृहस्थ था। मेरी पत्नी का नाम बन्धुमती था। हम दोनों ने दीक्षा ली। अलग अलग विहार किया। पुनः एक दिन हम दोनों एक ही नगर में आये। भिक्षा के समय परिभ्रमण करते हुए मुझे साध्वी बन्धुमती दिखाई दी। मेरे मन में उसके प्रति आसक्तिभाव जागृत हुआ। यह बन्धुमती को मालूम हो गया। उसने अपने संयम की रक्षा करते हुए संथारा कर देह त्याग दिया। वह मरकर आठवें देवलोक में गई। जब मुझे मालूम हुआ तो मैंने भी भक्त प्रत्याख्यान कर समाधि पूर्वक देह छोड़ा और मरकर देव बना। देवलोकसे च्युत होकर मैं आर्द्र राजा का पुत्र बना हूँ। मेरी पत्नी बन्धुमती वसन्तपुर के श्रेष्ठी की श्रीमती नाम की पुत्री बनी है।'

इस प्रकार पूर्वभव का वृत्तान्त जान उसने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। पिता से आज्ञा मांगी। पिता ने जब आज्ञा न दी तो वह चुपचाप मुनिवेष पहनकर निकल गया। राजा को जब इस बात का पता चला तो उसने उसकी सुरक्षा के लिये पांचसौ सुभटों को भेज दिया। वे सुभट गुप्त वेश में आर्द्रक मुनि के साथ साथ घूमने लगे।

आर्द्रक मुनि चलते चलते वसन्तपुर आये और एक यक्षमन्दिर में ध्यान करने लगे। उस अवसर पर श्रीमती अपनी सहेलियों के के साथ यक्षमन्दिर में आई और खेल खेलने लगी। खेल खेलते खेलते श्रीमती ने आर्द्रकमुनि को थम्भा समझकर पकड़ लिया। जब उसे स्थंभ के स्थान पर पुरुष होने का पता लगा तो उसने सचमुच ही इसी पुरुष के साथ विवाह करने का निश्चय किया। श्रेष्ठी के समझाने पर आर्द्रक कुमार कन्या के साथ विवाह कर वहीं रहने लगे। बारह वर्ष रहने के बाद पुनः प्रव्रज्या लेने के लिये चल पड़े किन्तु पुत्रस्नेह ने उन्हें पुनः बारह वर्ष रोक दिया। इस प्रकार

२४ वर्ष गृहस्थ जीवन में रहने के बाद पुन: दीक्षा के लिये राज-गृह पहुँचे। मार्ग में पांचसौ सुभट भी आकर मिल गये आर्द्रक ने उन्हें भी प्रव्रजित कर लिया। राजगृह पहुँचने के बाद वहाँ के अन्य मतावलम्बी धर्माचार्यों से चर्चा की। बुद्ध से भी चर्चा की। उसने सब को उत्तर देकर चुप कर दिया।

जब आर्द्रक कुमार भगवान के समवशरण में जा रहे थे तब मार्ग में एक उन्मत्त हाथी मिला। आर्द्रककुमार के तेज से वह शान्त हो गया। जब इस घटना का पता राजा श्रेणिक को चला तो वह भी आर्द्रक मुनि के पास आया और वन्दना कर उनके तप तेज की प्रशंसा की।

आर्द्रक मुनि अपने पांचसौ साथियों के साथ भगवान के पास आये और विधिपूर्वक चारित्र ग्रहण कर आत्म साधना करने लगे। अन्ततः इन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

कपिल मुनि

कोशाबी नगरी में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। काश्यप ब्राह्मण उसका पुरोहित था। वह चतुर्दश विद्याओं में पारंगत था। राजा उसका सम्मान करता था। पुरोहित की पत्नी का नाम यशा था। उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम कपिल रखा। कपिल जब छोटा था तो उसका पिता परलोक सिधार गया। काश्यप का पद किसी अन्य ब्राह्मण को मिल गया। जब यह ब्राह्मण घोड़े पर बैठ कर छत्र लगाकर अपने नौकरों चाकरों के साथ निकलता तो कपिल की मां यशा को बड़ा दुःख लगता और वह अपने बीते हुए दिनों की याद कर रोने लगती। कपिल पूछता तो वह कहती, "बेटा! कभी तेरे पिता भी इसी तरह घोड़े पर सवार हो कर जाते थे। उस समय मैं गर्व से फूली नहीं समाती थी।" कपिल ने कहा, "मां, क्या मैं अपने पिता की पदवी को नहीं पा सकता?" उसकी मां ने कहा–"बेटा, तू अवश्य उस पदवी को पा सकता है, परन्तु

तू पढ़ा लिखा नहीं है ।" कपिल ने कहा, "मां मैं अब अवश्य पढ़ूँगा ।" यशा ने कहा–'पुत्र ! यहाँ तो यह नया पुरोहित हम से ईर्ष्या करता है इसलिये वह तुझे पढ़ने नहीं देगा । यदि तू पढ़ना ही चाहता है तो श्रावस्ती जा । वहाँ तेरे पिता के मित्र इन्द्रदत्त उपाध्याय रहते हैं, वे तुझे अवश्य पढ़ा देंगे ।"

मां की प्रेरणा से कपिल श्रावस्ती गया । वहाँ इन्द्रदत्त उपाध्याय के घर पहुँचा । अपना परिचय देकर कपिल ने उपाध्याय इन्द्रदत्त को प्रणाम किया और पढ़ने की इच्छा व्यक्त की । पण्डित इन्द्रदत्त ने अपने मित्र पुत्र से मिल कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, और उसे पढ़ने की स्वीकृति दी ।

इन्द्रदत्त ने शालिभद्र नामक एक धनी के घर उसके भोजन की व्यवस्था कर दी । शालिभद्र के घर की एक दासी कपिल की देख-रेख करती थी । धीरे धीरे दोनों में प्रेम हो गया । उसके साथ भोग भोगते उस दासी को गर्भ रह गया । कपिल अब पढ़ना लिखना भूल गया । अब उसके सामने आजीविका का सब से बड़ा प्रश्न उपस्थित हुआ । ज्यों ज्यों समय बीतता त्यों त्यों दासी का प्रसव काल समीप आता जाता था । एक दिन दासी ने कहा–"कपिल ! अब मेरा प्रसवकाल समीप आ रहा है कुछ धन की व्यवस्था करो । कपिल ने कहा–"मै धन कहाँ से लाऊँ ?" दासी ने कहा–"यहाँ के राजा को जो प्रातः प्रथम आशीवाद देता है उसे वह दो मासे सोना देता है । यदि तुम वहाँ जा सको तो तुम्हें भी दो मासे सोना मिल सकता है । यह बात कपिल की समझ में आ गई ।"

दूसरे दिन कपिल आधी रात को ही उठा और राजा को आशीर्वाद देने चल पड़ा । मार्ग में कोतवाल ने चोर समझ कर उसे पकड़ लिया । प्रातः राजा की सभा में उसे उपस्थित किया । कपिल ने सब बातें सच सच कह दीं । कपिल की सत्यवादिता पर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—'कपिल ! तुम जो चाहो, मुझसे मांगलो !" मैं तुम पर अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूँ ।'

कपिल ने कहा-"राजन् ! मुझे सोचने के लिये कुछ समय दो ।" कपिल अशोक वाटिका में आया और एक शिला खण्ड पर बैठ कर विचार करने लगा । उसने सोचा-"क्या मागूँ ? दो मासे सोने से क्या होगा ? यह तो कपड़े गहने बनाने के लिये भी काफी नहीं है अतएव मै क्यों न सौ मोहरें मांगूँ ?" फिर सोचा कि-"यह मकान आदि बनाने के लिये काफी नहीं होगा, अतएव क्यों न हजार मोहरें मागूँ ?" ऐसा विचार करते करते वह लाख से करोड़ पर करोड़ से राजा के समस्त राज्य पर पहुँच गया । अचानक वृक्ष का एक जीर्ण पत्ता उसके सामने गिरा । पत्ते पर दृष्टि डालते ही कपिल के विचारों की दिशा बदल गई । पत्र की जीर्ण अवस्था देख कर उसे सारा ससार जीर्ण और विनाश शील लगने लगा । वह सोचने लगा-"यह भी खूब रहा ! दो मासे सोने से मै कहाँ पहुँच गया और फिर भी सन्तोष नहीं । इस प्रकार विचार करते करते कपिल को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । मुनि बनकर वह राजा के पास उपस्थित हुआ । मुनिवेश में कपिल को देख कर राजा ने पूछा-"कपिल तुमने यह क्या किया ?"

मुनि कपिल ने कहा-"राजन् !

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो विवड्ढई ।
दो मास कयं कज्जं कोडिए वि न निट्ठियं ॥

हे राजन् ! क्या कहूँ-जैसे जैसे लाभ होता है वैसे वैसे लोभ बढ़ता जाता है, जैसे मै दो मासे सोने की इच्छा से आया, किन्तु वह मेरी इच्छा आज करोड़ सोनैयो से भी शान्त नहीं हुई । इन्हीं सब विचारों से तृष्णा का परित्याग कर संयमी बन गया हूँ ।"

राजा ने सयमी कपिल को बहुत समझाया उसे राज्य का लोभ दिया किन्तु कपिल मोह ममता का परित्याग कर वहाँ से चल दिये ।

छ महिने की कठोर साधना के बाद कपिल मुनि ने केवल-ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे स्वयं बुद्ध केवली बने।

एक बार श्रावस्ती के अन्तराल में बसने वाले ५०० चोरों को प्रतिबोध देने के लिए उन्होंने चोरपल्ली की ओर विहार कर दिया। वे चोर-पल्ली में पहुँचे। चोरों ने कपिल केवली को घेर लिया और उन्हें त्रास पहुँचाने लगे। चोरों के सरदार का नाम बलभद्र था। उसने कपिल केवली से कहा—"क्या तुम नाचना जानते हो?" कपिल ने कहा—"नृत्य तो हम नहीं करते।" "तो गीत गाना जानते हो?" बलभद्र ने पूछा। कपिल मुनि ने कहा—"हाँ!" चोरों ने कहा—"तो गाओ"। चोरों को प्रतिबोध देने के लिये मुनि उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्ययन को ध्रुपद राग में गाने लगे। गाथाओं के भावों को सुन कर ५०० चोरों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। इन चोरों ने कपिल केवली से दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये। कपिल केवली ने भी निर्वाण प्राप्त किया।

चार प्रत्येक बुद्ध

१. नमिराजर्षि

मालवदेश में सुदर्शन नाम का नगर था। वहाँ मणिरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसके लघुभ्राता का नाम युगबाहु था। वह युवराज पद से विभूषित था। युगबाहु की पत्नी का नाम मदन-रेखा था। वह अनुपम सुन्दरी थी और जिनधर्म में अत्यन्त श्रद्धा-शील थी। उसके चन्द्रयश नाम का एक पुत्र था।

एक बार उसने चन्द्रका स्वप्न देखा। स्वप्न देखकर वह जागृत हुई। उसने पति से स्वप्न का फल पूछा। पति ने कहा—"प्रिये! तुम चन्द्रमा के समान दिव्य प्रभा वाले पुत्र को जन्म दोगी।" युवराज्ञी गर्भवती हुई। वह अपने गर्भ का प्रयत्नपूर्वक पालन करने लगी।

एक समय मदनरेखा महल के छत पर खड़ी खड़ी नगर के दृश्य देख रही थी। उस समय महाराज मणिरथ उसी मार्ग से जा रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि महल पर खड़ी मदनरेखा पर पड़ी। उसके अनुपम सौंदर्य को देखकर वे मुग्ध हो गये।

वह अपने महल में आया और मदनरेखा को अपनी भार्या बनाने की युक्ति सोचने लगा। वह रात दिन इसी उधेड़बुन में रहता कि किस प्रकार इस परम सुन्दरी को फसाऊँ और अपनी कामना को पूर्ण करूँ। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसने मदनरेखा की प्रधान दासी के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किया। उसे भी लालच में फँसा लिया। अब वह प्रतिदिन मूल्यवान चीजें दासी के साथ मदनरेखा को भेजने लगा। मदनरेखा भी अपने जेठ के उपहार को पवित्र भावना से लेने लगी।

एक दिन उपहार के साथ राजा मणिरथ ने मदनरेखा को प्रेम पत्र दिया। प्रेम पत्र पढ़ते ही राजा के द्वारा प्रतिदिन भेजे जाने वाले उपहार का रहस्य उसकी समझ में आया। उसने क्रुद्ध होकर पत्र फाड दिया और दासी को अपमानित कर कहा—"दुष्टे! अब से तू मेरे महल में पाँव तक मत रखना और अपने राजा से जाकर कह देना कि जबतक मदनरेखा जीवित है तबतक तुम्हारी नीच कामना पूरी नहीं हो सकती।"

अपमानित दासी ने मणिरथ को सारी बातें आकर कह दीं। मणिरथ ने सोचा—जबतक युगबाहु जीवित रहेगा तबतक मदनरेखा मेरी नहीं हो सकती। वह युगबाहु को मारने का उपाय सोचने लगा। एक दिन युगबाहु युद्ध से लौटकर वसन्तोत्सव के अवसर पर मदनरेखा के साथ वनक्रीड़ा करने गया। रात्रि हो जाने से उसने वन ही में अपना डेरा डाल दिया। मणिरथ को जब इस बात का पता चला तो वह अर्धरात्रि में नंगीतलवार लेकर युगबाहु के तम्बू में घुस गया। उसने उसी क्षण सोते हुए युगबाहु पर तलवार

से प्रहार कर दिया। कोई देख न ले इस भय से घबराकर वह वहाँ से भागा। भागते हुए उस का पैर एक विषधर सर्प पर पड़ा। सर्प ने उसे डस लिया और वह तत्काल मर गया। मरकर वह नरक में पैदा हुआ।

इधर मदनरेखा अपने पति को घायल देख कर और मृत्यु समीप जानकर उन्हें धर्म का शरण देने लगी। चार प्रकार का आहार और अठारह प्रकार के पाप स्थान का त्याग करवाया। इस प्रकार आहार तथा अठारह पापों का त्याग कर समाधिपूर्वक युगबाहु ने देह छोड़ा और मर कर वह देवलोक में देव बना।

मदनरेखा ने सोचा—"यदि मैं वापस अपने महल चली जाऊँगी तो मणिरथ जबरन मुझे अपनी रानी बनायेगा। यह सोचकर वह वन की ओर चल पड़ी। चलते चलते एक अटवी में पहुँची। उसने वहीं पुत्र को जन्म दिया। अपने पति के नाम की मुद्रा नवजात शिशु के हाथ में पहनाकर उसे एक वृक्ष की शाखा में झोली पर लटका दिया और वह शरीर शुद्धि के लिये समीप के तालाब पर चली गई। वहाँ एक उन्मत्त हाथी ने उसे सूंढ़ में पकड़ कर आकाश में उछाल दिया। उसी समय मणिप्रभ नाम का विद्याधर आकाश में जा रहा था। उसने उसे झेल दिया और विमान में बैठा लिया। मदनरेखा ने विद्याधर से पूछा—"आप कौन हैं? और किधर जा रहे हैं?" विद्याधर ने कहा—"मेरा नाम मणिप्रभ है। मै अपने पिता के दर्शन के लिए जा रहा था किन्तु मार्ग में ही तुम जैसी सुन्दरी मिल गई अब वापस नगर जाऊँगा।" मदनरेखा ने कहा—"मणिप्रभ! मैं भी मुनि दर्शन करना चाहती हूँ। आप मुझे वहाँ ले चले।" मदनरेखा की इच्छा के वश हो मणिप्रभ मुनि दर्शन के लिये चला। मुनि के पास जाकर उन दोनों ने वन्दना की। मुनि ने मदनरेखा के प्रति मणिप्रभ के भाव को जान लिया। मुनि ने मणिप्रभ को उपदेश देना प्रारम्भ किया।

उस समय आकाश में सहसा दिव्य प्रकाश हुआ। एक देवता मुनि के पास आया। उसने प्रथम मदनरेखा को वन्दन किया और उसके बाद मुनि को। यह देख मणिप्रभ ने मुनि से पूछा—"भगवन्! इस देव ने प्रथम मदनरेखा को क्यों प्रणाम किया?" मुनि ने कहा—"मणिप्रभ! यह देव मदनरेखा का पति है। मदनरेखा के कारण ही यह देव बना है।" मुनि ने मदनरेखा का सारा परिचय दिया। मदनरेखा की जीवनी सुनकर मणिप्रभ बड़ा प्रभावित हुआ। उसने सती को प्रणाम किया और कहा—"देवी! मुझे क्षमा करो। सचमुच तुम धन्य हो।"

उस समय मदनरेखा ने मुनि से पूछा—"मुनिवर! मेरे पुत्र का क्या हुआ?" मुनि ने कहा—"देवी! तुम्हारे पुत्र को मिथिला का राजा पद्मरथ ले गया है। वह उसे पुत्रवत् पाल रहा है।" मुनि को वन्दन कर मणिप्रभ घर जाने लगा तब मदनरेखा ने मणिप्रभ से कहा—"भाई! अगर आप ठीक समझो तो मुझे मिथिला पहुँचा दो।" मणिप्रभ ने मदनरेखा को मिथिला पहुँचा दिया। मिथिला में पहुँचने के बाद मदनरेखा ने 'दृढ़व्रता' साध्वी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। और धर्मध्यान में अपना समय बिताने लगी।

इधर मणिरथ की मृत्यु के बाद चन्द्रयश न्याय नीति से राज्य का संचालन करने लगा।

मिथिला के राजा पद्मरथ के घर जब से बालक आया तब से उसके पुण्य प्रभाव से पद्मरथ के शत्रु नम्र होकर उसको आकर नमने लगे। पद्मरथ ने यह सब प्रभाव बालक का समझ कर उस बालक का नाम 'नमि' ऐसा रख दिया। नमि बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने अल्पकाल में ही सब कलाएँ सीखलीं। वे बड़े विचारक एवं तत्वज्ञ बने। पद्म-रथ ने सब प्रकार से नमि को योग्य मानकर उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं विद्वान् आचार्य के पास दीक्षित हो गये।

नमि बड़ी योग्यता से राज्य का संचालन करने लगे ।

मिथिलापति नमि और अवन्ती पति चन्द्रयश यद्यपि दोनों सगे भाई थे, किन्तु यह बात वे दोनों नहीं जानते थे । दोनों में राज-कारण को लेकर वैमनस्य चल रहा था । घी का एक छींटा जैसे अग्नि को भड़का देता है वैसे ही इन दोनों राजाओं के बीच छोटे से कारण से ज्वाला मुखी फट उठता था । एक दिन ऐसा हुआ कि मिथिला-पति नमि का हाथी उन्मत्त होकर भागता भागता अवन्ती की सीमा में पहुँच गया । अवन्ती के राजा ने उसे युक्ति से पकड़ कर अपने पास रख लिया । मिथिलापति ने हाथी वापस सौंप देने के लिए दूत द्वारा संदेशा भेजा किन्तु बिना युद्ध के हाथी को सौंप देने में अवं-तिराज चन्द्रयश को अपमान महसूस हुआ । युद्ध के लिये इतना सा निमित्त काफी था ।

अवन्ती और मिथिला की सेना युद्ध के लिये आमने सामने खड़ी होगई । भेरी और शंख के नाद से रणभूमि गरज उठी । अवन्तीपति चन्द्रयश और मिथिलापति नमिराज भी सेना के आगे खड़े थे । युद्ध के आरंभ की अब मात्र घड़ियाँ ही बाकी थीं । इतने में एक साध्वी बड़ी तेजी के साथ चलती हुई आयी और दोनों राजाओं की सेना के बीच खड़ी होगई । रण भूमि के बीच साध्वी को देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये । रण भूमि के बीच साध्वी गरज कर बोली–'बेटा चन्द्रयश ? जरा नीचे आ और यह युद्ध किसके बीच हो रहा है इसे जानले । तू नमि से दो वर्ष बड़ा है इसलिये तुझसे मैं पहले आग्रह करती हूँ।"

"नमिराज ! तू भी जरा नीचे आ ।" साध्वी का आदेश पाकर नमिराज तथा चन्द्रयश दोनों हाथियों से नीचे उतर कर साध्वी के पास आकर खड़े हो गये । साध्वी ने वात्सल्य भरी दृष्टि से दोनों को निहारा । दोनों पुत्रों को सामने देख साध्वी बोली—"तुम दोनों सगे भाई हो । तुम्हारी माँ एक ही है । तुम दोनों की माता आज तुम्हारे सामने खड़ी है ।" मदनरेखा साध्वी ने अपना सारा इतिहास अथ से

इति तक कह सुनाया और कहा—"अवन्तीपति चन्द्रयश और मिथिला पति नमि एक ही माता की सन्तान होने के नाते परस्पर भ्रातृभाव से आलिङ्गन करें, मेरी यही इच्छा है।" इतना कहकर साध्वी मदन-रेखा वहाँ से उपाश्रय की ओर चल पड़ी। दोनों पुत्र उसकी ओर टकटकी लगाये देखते रहे।

युद्ध बन्द हुआ। सैनिक बिखरे और नमिराज ने चन्द्रयश के साथ जीवन में पहलीवार अवन्ती में प्रवेश किया।

अवन्ती और मिथिला के बीच भीषण रूप से गरजते हुए विरोध का सागर सूख गया और दोनों राज्य सौहार्द के बन्धन में बँध गए। दोनों राज्य एक हो गए।

चन्द्रयश ने नमि को अपना सारा राज्य दे दिया और संसार के समस्त स्नेह-बन्धनों को तोड़ वे साधु बन गये। नमि ने भी अवन्ती का राज सभाल लिया।

नमिराज जितना युद्धवीर था उतना ही शृङ्गारप्रिय था। कभी तो वह सेना का संचालन करता और कभी ७०० रमणियों के बीच उद्यान के कुंज में रसप्रमत्त मृग की भाँति पड़ा रहता था। इसके सिवाय जीवन के अन्य आनन्द और उल्लास से वह बिलकुल अन-भिज्ञ था।

इतना होते हुए भी उसके प्रबल प्रताप ने आस-पास के छोटे-मोटे सामन्तों और प्रतिस्पर्धियों को निष्प्रभ बना दिया। नमिराज कोई महान सम्राट् होने के लिये पैदा हुआ है, इस प्रकार उसकी कीर्ति-कथा दूर-दूर देशों में फैल गई थी।

राग और वैराग्य के बीच सगी बहनों के समान सम्बन्ध होता है, इस बात को समय बीतने पर नमिराज ने अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर के दिखा दिया—

महाराज नमि की सातसौ रानियाँ थी। उनके नूपुरों से सारा महल झंकृत था। एक बार नमिराज के देह में दाहज्वर उत्पन्न हो

गया । वैद्योंने अनेक उपाय किये किन्तु नमि की दाह-पीड़ा शान्त नहीं हुई । अन्त में किसी अनुभवी वैद्य ने कहा कि बावना गोशीर्ष चन्दन का लेप करने से यह ज्वर शान्त होगा । रानियाँ उसी समय चन्दन घिसने लगीं। रानियों के हाथ में पहनी हुई चूड़ियों की आवाज से नमिराज की व्यथा और भी बढ़ गई । उन्होंने मन्त्री को बुलाकर कहा-"चूड़ियों की आवाज से मेरी व्यथा बढ़ रही है ! इसे बन्द करो ।" रानियाँ चतुर थी । वे सब की सब पति की शान्ति के लिये ही चन्दन घिस रही थीं । उन्होंने उसी क्षण सौभाग्य के चिह्न रूप एक-एक रख कर शेष तमाम चूड़ियाँ उतार दीं। वे पुनः चन्दन घिसने लगीं किन्तु सारे महल में नीरव शान्ति छा गई ।

सहसा शान्ति छा जाने से थोड़ी देर के बाद नमिराज ने मन्त्री से पूछा-"क्या चन्दन घिसा जा चुका ?" मन्त्री ने कहा-"नहीं महाराज ! घिसा जा रहा है ।" नमिराज ने प्रश्न किया-"तो अब उनका शब्द क्यों नहीं होता है ?"

मन्त्री ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा-"महाराज ! सौभाग्य सूचक एक-एक चूड़ी को हाथ में रखकर शेष तमाम चूड़ियों को रानियों ने निकाल दिया है। अब अकेली चूड़ी खनके तो किसके साथ खनके ।"

इस बात को सुनते ही नमिराज का सुषुप्त मानस जाग उठा । वे सोचने लगे—"जहाँ अनेकत्व है वहीं कोलाहल और अशान्ति है। एकत्व में ही सच्ची शान्ति और आनन्द है ।" यह सोचते-सोचते उन्हे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । अपने पूर्वजन्म का निरीक्षण करने के बाद नमिराज का मानस वैराग्य रंग में रंग गया । अब उन्हें रमणियों की नुपूर झंकार और कंकण ध्वनि काँटे की तरह चुभने लगी । शान्ति प्राप्ति के लिये समस्त बाह्य बन्धनों का त्याग कर एकाकी विचरने की उन्हें तीव्र इच्छा जागृत हुई । व्याधि शान्त होते ही वे योगिराज राजपाट एवं बिलखती हुई रानियों के स्नेह बन्धन को तोड़कर, मुनि बनकर एकाकी विचरने लगे ।

उस समय इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण के रूप में नमिराज के त्याग की कसौटी करने, उनके पास आया और उनसे कहने लगा—

"हे नमिराज ! आज मिथिला के महलों और घरों में कोलाहल से भरे हुए ये दारुण शब्द क्यों सुनाई देते हैं ?"

नमि ने कहा—"विप्र ! मिथिला नगरी के उद्यान में पत्र पुष्प और फलों से युक्त शीतल छाया वाला बहुत से प्राणियों का आश्रय दाता और मनको प्रसन्न करने वाला मनोरम वृक्ष सहसा उखड़ जाने से ये पक्षीगण दुःखी, अशरण और पीड़ित होकर आक्रंद कर रहे हैं।"

"हे नराधिप ! यह आग और वायु आपके अन्त:पुर को जला रही है आप उस ओर क्यों नहीं देखते ?"

"हे विप्र ! मैं सुख पूर्वक सोता हूँ और सुख पूर्वक रहता हूँ। मेरा अब इस नगरी के साथ किंचित् भी सम्बंध नहीं है। मिथिला के जलने से मेरा कुछ भी नहीं जलता।"

जिस भिक्षु ने पुत्र कलत्रादि का सम्बन्ध तोड़ दिया है और जो सब व्यापार से रहित है उसको संसार का कोई भी पदार्थ प्रिय या अप्रिय नहीं है।

समस्त बन्धनों से मुक्त होकर एकत्वभाव में रहने वाले अनगार मुनि को निश्चय में ही बहुत सुख है।

"नमिराज ! किले, दरवाजे, मोर्चे, खाई, शतघ्नी आदि नगर-रक्षा के साधन बनवाकर फिर आप दीक्षा लें।"

"हे विप्र ! श्रद्धा रूप नगर की सुरक्षा के लिये मैंने क्षमा रूपी कोट, तप और संवर रूपी अर्गला और त्रिगुप्ति रूप खाई बनाली है। जिससे दुर्जय कर्मरूपी शत्रु का कुछ भी बस चल नहीं सकता।"

"मैंने पराक्रम रूपी धनुष की ईर्यासमिति रूप डोरी बनाकर धैर्य रूपी केतन से सत्य के द्वारा उसे बांध दिया है।"

"उस धनुष पर तप रूपी बाण चढ़ाकर कर्म रूपी कवच का भेदन करता हूँ। इस प्रकार के संग्राम से निवृत्त होकर मुनि भव-भ्रमण से मुक्त हो जाते हैं।"

"हे क्षत्रिय! महल तथा अनेक प्रकार के घर तथा क्रीड़ास्थलों का निर्माण करवा कर फिर मुनि बनें।"

"हे विप्र? जिसके हृदय में संशय हैं, वही मार्ग में घर बनाता है, किन्तु बुद्धिमान् तो वही है, जो इच्छित स्थान में पहुँच कर शाश्वत घर बनाता है।"

"हे क्षत्रिय! डाकुओं, प्राण हरनेवालों, गांठ कतरों और चोरों को वश में करके और नगर में शान्ति स्थापित करके फिर त्यागी बनें।"

"हे विप्र! अज्ञान के कारण मनुष्यों को अनेक बार मिथ्यादण्ड दिया जाता है। जिससे निरापराधी दण्डित हो जाते हैं और अपराधी छूट जाते हैं।"

"हे क्षत्रिय! जो राजा लोग आप को प्रणाम नहीं करते उन्हें पहले वश में करें, फिर आप दीक्षा लें।"

"हे विप्र! एक पुरुष, दुर्जय संग्राम में दस लाख सुभटों पर विजय पाता है और एक महात्मा अपनी आत्मा को ही जीतता है। इन दोनों में आत्मविजयी ही श्रेष्ठ है।"

"आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। बाहर के युद्ध से क्या लाभ है? आत्मा से ही आत्मा को जीतने में सच्चा सुख मिलता है।"

"पांच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ, ये सब एक दुर्जेय आत्मा के जीतने से स्वतः जीत लिये जाते हैं।"

"हे राजन्! बड़े बड़े महायज्ञ करके श्रमण ब्राह्मणों को भोजन कराकर तथा दान, भोग, और यज्ञ करके फिर प्रव्रज्या ग्रहण करें।"

"हे विप्र ! जो मनुष्य प्रतिमास दसलाख गायों का दान करता है उसकी अपेक्षा कुछ भी दान नहीं करने वाले मुनि का संयम श्रेष्ठ है ।"

"हे नराधिप ! आप घोर गृहस्थाश्रम का त्याग करके संन्यास आश्रम की इच्छा करते हैं, किन्तु आपको संसार में ही रहकर उपोषध में रत रहना चाहिये ।"

"हे विप्र ! जो अज्ञानी मास मास खमण तप करते हैं और कुशाग्र जितना आहार ग्रहण करते हैं वे तीर्थङ्कर प्ररूपित धर्म की सोलहवीं कला* के बराबर भी नहीं हैं ।"

"हे क्षत्रिय ! सोना, चांदी, मणिमुक्ता, कांसा, वस्त्र, वाहन तथा कोष की अभिवृद्धि कर फिर आप संसार छोड़ें ।"

"हे विप्र ! यदि कैलास पर्वत के समान सोने चांदी के असंख्य पर्वत हो जायें तो भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होता क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है ।"

"हे विप्र ! चावल, जौ, स्वर्ण तथा पशुओं से परिपूर्ण पृथ्वी किसी एक मनुष्य को दी जाय तो भी उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती । यह जानकर बुद्धिमान् तप का आचरण करते हैं ।"

---

*सोलह कलाएँ निम्न हैं—(१) चेतन की चेतना-का अनन्तवें भाग को प्रगट करना । (२) यथाप्रवृत्तिकरण-की स्थिति को प्राप्त करना । (३) अपूर्वकरण-ग्रन्थि भेद करना । (४) अनिवृत्ति करण-मिथ्यात्व से निवृत्त होना । (५) शुद्ध श्रद्धा-सम्यक्त्व की प्राप्ति करना । (६) देशविरतित्व-श्रावकपन प्राप्त करना । (७) सर्व विरति-रूप चारित्र ग्रहण करना । (८) धर्म ध्यान अप्रमत्त अवस्था को प्राप्त करना । (९) गुणश्रेणि क्षपक-श्रेणी पर चढ़ना । (१०) अवेदी हो कर शुक्ल ध्यान की अवस्था में आना । (११) सर्वथा लोभ का क्षय कर आत्म ज्योति प्रगट करना । (१२) घनघाती कर्म का क्षय करना । (१३) केवलज्ञान प्राप्त करना । (१४) शैलेसी अवस्था को प्राप्त करना । (१५) भाव अयोगी बन सकल कर्म का क्षय करना । (१६) सिद्ध पद को प्राप्ति करना ।

"हे राजन् । आश्चर्य है कि आप प्राप्त भोगों को छोड़कर अप्राप्त भोगों की इच्छा कर रहे हैं, किन्तु अन्त में संकल्प विकल्प में पड़कर आपको पश्चाताप करना पड़ेगा ।"

"हे विप्र ! काम भोग शल्य रूप हैं, विषरूप हैं, आशीविष सर्प के समान हैं । काम भोगों की अभिलाषा करने वाले प्राणी अंत में दुर्गति में जाते हैं ।"

"हे विप्र ! क्रोध करने से जीव नरक में जाता है । मान से नीच गति होती है । माया से शुभ गति का नाश होता है, और लोभ से दोनों लोकों में भय होता है ।"

यह सुन कर देवेन्द्र ने विप्र का रूप त्याग दिया और असली रूप प्रकट हो कर बोला--"हे ऋषे ! आप धन्य हैं । आपने सब कुछ जीत लिया है । हे ऋषे ! आपकी सरलता, कोमलता, क्षमा, और निर्लोभता श्रेष्ठ है । यह बड़े आश्चर्य और हर्ष की बात है ।"

इस प्रकार उत्तम श्रद्धा से नमिराजर्षि की स्तुति करता हुआ बार बार बन्दना कर वह अपने स्थान चला गया ।

नमिराज राजा से राजर्षि हो गये । अन्त में मोक्ष प्राप्त किया ।

२. प्रत्येक बुद्ध करकण्डू

चंपा नगरी में दधिवाहन नाम का राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम पद्मावती था । एक बार रानी गर्भवती हुई और उसे पुरुष के वेश में राजा के साथ हाथी पर बैठकर उद्यान में विहार करने का दोहद उत्पन्न हुआ । रास्ते में राजा का हाथी बिगड़ गया और उन दोनों को लेकर जंगल की ओर भागा । रास्ते में एक वट वृक्ष दिखाई दिया राजा ने उसकी शाखा पकड़ कर अपनी जान बचाई, परन्तु रानी गर्भवती होने से वट की शाखा नहीं पकड़ सकी वह हाथी पर ही रह गई । हाथी रानी को लेकर जंगल की ओर भाग गया ।

हाथी दौड़ता-दौड़ता घने जंगल में पहुँचा। उसे प्यास लगी। वह पानी पीने के लिये एक जलाशय में उतरा। उस समय हाथी का होदा एक वृक्ष की शाखा के साथ लग गया। रानी उसे पकड़ कर नीचे उतर आई। हाथी पानी पीकर आगे चलता बना और पद्मावती वहीं रह गई। अब वह अकेली और असहाय इधर उधर भटकने लगी। चारों ओर से सिंह व्याघ्र वगैरह जंगली प्राणियों के भयंकर शब्द सुनाई दे रहे थे। उस निर्जन वन में एक अबला के लिये अपने प्राणों को बचाना बहुत कठिन था। पद्मावती ने अपने जीवन को सन्देह में पड़ा जानकर सागारी संथारा कर लिया। और अपने पापों के लिये आलोचना करने लगी—

यदि मैंने मन वचन काया से इस भव में या पर भव में पृथ्वी पानी, अग्नि, वायु, आदि छ कायों के जीवों की विराधना की हो तो मेरा पाप मिथ्या होवे। यदि मैंने किसी से मर्म भेदी वचन कहे हों, किसी की गुप्त बात प्रकट की हो, धरोहर रखी हो, तथा किसी को कष्ट दिया हो तो मेरा पाप निष्फल होवे।

हिंसा, झूठ, चोरी, अदत्त, कुशील, आदि अठारह पाप स्थानों का सेवन किया हो, कराया हो तथा करते हुए का अनुमोदन किया हो तो मेरा पाप निष्फल होवे। इत्यादि आलोचना से पद्मावती का दुःख कुछ हलका हो गया। सूर्य वहीं अस्त हो गया।

प्रात होने पर वह आगे चली। चलते चलते उसे एक तापसों का आश्रम मिला। आश्रम वासियों ने उसका आतिथ्य किया। स्वस्थ होने पर उसे एक तापस ने दंतपुर का मार्ग बता दिया।

दंतपुर पहुँच कर उसने एक आर्या के पास दीक्षा ले ली। पहले तो रानी ने अपना गर्भ गुप्त रखा, परन्तु जब सब को मालूम होने लगा तो उसने प्रकट कर दिया। समय पूरा होने पर पद्मावती

ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। लोक-निन्दा से बचने के लिये वह बालक को अपने नाम की अंगूठी पहना एवं एक सुन्दर कम्बल में लपेट कर स्मशान में छोड़ आई। स्मशान पालक ने बालक को उठाकर अपने स्त्री को सौंप दिया। चांडाल की स्त्री उस सुन्दर बालक को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और वह बालक का लाड़ प्यार से पालन करने लगी।

चाण्डाल ने बालक का नाम अवकीर्णपुत्र रखा। अवकीर्ण को शरीर में सूखी खाज आती थी। वह अपने साथी बालकों से खाज खुजलाने को कहता था। अतः उसका नाम करकण्डू पड़ गया। करकण्डू बड़ा होकर स्मशान की रक्षा करने लगा।

एक बार करकण्डू स्मशान में पहरा दे रहा था। उसी समय उधर से दो साधु निकले। आपस में बातचीत करते समय एक साधु के मुँह से निकला -'बाँस की इस झाड़ी में एक सात गांठ वाली लकड़ी है। वह जिसे प्राप्त होगी उसे राज्य मिलेगा।"

इस बात को करकण्डू तथा रास्ते में चलते ब्राह्मण ने सुना। दोनों लकड़ी लेने चले। दोनों ने उसे एक साथ छुआ। ब्राह्मण कहने लगा-इस लकड़ी पर मेरा अधिकार है और करकण्डू कहने लगा मेरा। दोनों मे झगड़ा खड़ा हो गया। कोई अपने अधिकार को छोड़ना नहीं चाहता था। करकण्डू बलवान था उसने ब्राह्मण से लकड़ी छीन ली तब ब्राह्मण न्यायालय में गया और उसने करकण्डू की शिकायत की। न्यायाधीश ने करकण्डू को बुलाकर उसे लकड़ी वापस कर देने को कहा। करकण्डू ने कहा, "मुझे इस लकड़ी के प्रभाव से राज्य मिलने वाला है अतः मैं लकड़ी को नहीं दूंगा। न्यायाधीश करकण्डू की इस बात पर हंस पड़ा और बोला—"अगर तुझे राज्य मिल जायगा तो इस ब्राह्मण को एक गाव इनाम में दे देना।"

करकण्डू ने न्यायाधीश की बात मानली। ब्राह्मण घर आया और उसने करकण्डू की बात कही। सभी ब्राह्मण करकण्डू को मारने के लिये आये। करकण्डू वहाँ से भाग कर कलिंग देश की राजधानी कंचनपुर पहुँचा और थक कर एक वृक्ष के नीचे सोगया। संयोग वश वहाँ का राजा अपुत्र ही मर गया। मंत्रियों ने राजा की खोज में हाथी छोड़ा। यह हाथी जहाँ करकण्डू पड़ा सो रहा था, वहाँ आया और उसकी प्रदक्षिणा करके उसके सामने खड़ा हो गया। करकण्डू के शरीर पर राजा के लक्षण देख कर नागरिकों ने जयघोष किया और नन्दि वाद्य की घोषणा की। करकण्डू जंभाई लेता हुआ उठा। नागरिकों ने उसे हाथी पर बैठाया और राजमहल में ले गये। जब ब्राह्मणों के पास यह खबर पहुँची कि एक चाण्डाल के पुत्र को राजगद्दी दी जारही है तो उन्होंने इसका विरोध किया, परन्तु किसी की कुछ न चली। उसने अपने प्रताप से सबको वश में कर लिया और बाटधानक के चाण्डालों को शुद्ध करके ब्राह्मण बनाया

करकण्डू के राजा बनने का पता जब ब्राह्मण को लगा तो वह करकण्डू के पास आया और पूर्व शर्त के अनुसार एक गांव मांगने लगा। करकण्डू ने चंपा के राजा दधिवाहन के नाम एक आज्ञापत्र लिखा कि इस ब्राह्मण को एक गाव जागीरी में दिया जाय।

ब्राह्मण पत्र लेकर दधिवाहन के पास पहुँचा और उसने कंचनपुर के राजा करकण्डू का आज्ञा पत्र दिखाया। उसे देख कर दधिवाहन बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने ब्राह्मण से कहा–"जाओ! चाण्डाल पुत्र करकण्डू से कह दो कि मै तुम्हारा राज्य छीन कर ब्राह्मण को गांव दूँगा।" राजा दधिवाहन ने सेना लेकर कंचनपुर पर चढ़ाई कर दी। करकण्डू ने उसका डट कर मुकाबला करने की पूरी तैयारी करली। दोनों बाप बेटे रण क्षेत्र में आ डटे।

पद्मावती साध्वी को इस बात का पता चला। पिता पुत्र के युद्ध और उसके द्वारा होने वाले नर संहार की कल्पना से उसे बड़ा दुःख हुआ। वह करकण्डू के पास गई और बोली—करकण्डू! मै तुम्हारी मां हूँ। दधिवाहन तुम्हारे पिता हैं। ऐसा कहकर पद्मावती ने आदि से अन्त तक सारा हाल सुनाया उसे माता मान कर करकण्डू ने भक्तिपूर्वक वन्दन किया। युद्ध का विचार छोड़ कर वह पिता से मिलने चला।

साध्वी पद्मावती वहाँ से शीघ्र ही दधिवाहन की छावनी में पहुँची। वह दधिवाहन से मिली और उसने अपना परिचय देते हुए कहा—"राजन्! करकण्डू तुम्हारा ही पुत्र है। 'करकण्डू मेरा ही पुत्र है।' यह जानकर दधिवाहन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसी समय वह करकण्डू से मिलने चला। मार्ग में दोनों मिल गए। करकण्डू दधिवाहन के पैरों में गिर पड़ा। दधिवाहन ने उसे छाती से लगा लिया। पिता को बिछड़ा हुआ पुत्र मिला और पुत्र को पिता। दोनों सेनाएँ जो परस्पर शत्रु बन कर आई थी परस्पर मित्र बन गई। चम्पा कंचनपुर दोनों का राज्य एक हो गया। दधिवाहन अपने पुत्र करकण्डू को राज्य दे कर दीक्षित हो गया।

तपस्वध्याय ध्यान में लीन होकर पद्मावती महासती ने आत्म-कल्याण किया।

सती पद्मावती महाराजा चेटक की पुत्री थीं।

करकण्डू बड़ा गो प्रेमी था उसने अपनी गोशाला का एक गोवत्स संरक्षण करने के लिये किसी गोपालक को दिया। उसे अच्छा खानपान मिलने से वहबड़ा हृष्ट पुष्ट और सुन्दर लगने लगा। युवा बैल को देखकर करकण्डू बड़ा प्रसन्न हुआ।

कालान्तर में वह सांढ बूढ़ा हो गया। वृद्ध अवस्था से उसका शरीर बहुत जीर्ण नजर आता था। उसे एक बार करकण्डू ने देखा। वह सोचने लगा—'मेरी भी यही अवस्था होगी। उसने बैल

की बाल युवा और वृद्ध इन तीनों अवस्था को देखा था । परिवर्तन-शील संसार का विचार करते करते करकण्डु को जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ । उसने समस्त राज्य का त्याग कर दिया और केश लुंचन कर साधु बन गया । कालान्तर में प्रत्येकबुद्ध अवस्था को प्राप्त कर पृथ्वी पर विचरने लगे । विहार करते करते एक बार वे क्षितिप्रतिष्ठित नगर में द्विमुख आदि प्रत्येकबुद्ध से मिले और धर्मालाप किया । अन्त में करकण्डु मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये ।

३. दुम्मुह (द्विमुख)

पांचाल जनपद में काम्पिल्यपुर नाम का नगर था । वहाँ 'जव' नाम का राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नाम गुणमाला था । राजा के सात पुत्र और मदनमंजरी नाम की एक पुत्री इस प्रकार कुल आठ सन्तानें थीं ।

एक बार अन्य देश से आये हुए किसी राजदूत से राजा ने पूछा— 'मेरी राजधानी में किस बात की कमी है ? दूत ने उत्तर में कहा-"राजन् ! इस स्वर्ग तुल्य नगरी में एक चित्रशाला की ही कमी है ।" राजाने उसी समय कारीगरों को चित्रशाला निर्माण करने का आदेश दिया । चित्रशाला के लिये जमीन की खुदाई करते समय राजा को एक बहुमूल्य रत्नमय मुकुट मिला । राजा ने बड़े उत्सव के साथ वह मुकुट पहना । मुकुट में राजा के मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता था, इसलिए लोग राजा को दुम्मुह (द्विमुख) कहते थे ।

उज्जयनी, के राजा प्रद्योत ने द्विमुख से मुकुट की मांग की । इस पर द्विमुख राजा ने दूत के साथ कहला भेजा—"अगर चण्डप्रद्योत द्विमुख राजा को अलनगिरि हाथी, अग्निभीरु रथ, शिवादेवी और लोहजंघ नामक लेखाचार्य ये चार चीजें देना स्वीकार करें तो उन्हें मुकुट मिल सकता है ।" इस पर चण्डप्रद्योत अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने विशाल सेना के साथ काम्पिल्यपुर पर चढ़ाई कर दी । घमासान युद्ध के

बाद चंड प्रद्योत हार गया दुम्मुह राजा ने उसे कैद कर लिया । कुछ समय के बाद द्विमुख ने अपनी पुत्री मदनमंजरी का विवाह प्रद्योत के साथ कर उसे सम्मान पूर्वक मुक्त कर दिया ।

किसी समय इन्द्रकेतु महोत्सव के अवसर पर राजा ने एक स्तम्भ खड़ा किया । उसे विविध वस्त्रों और पताकाओं से सुसज्जित किया । सात दिन तक लगातार इन्द्रकेतु स्तम्भ का गीत नृत्य आदि से खूब सम्मान किया । उत्सव की समाप्ति पर स्तम्भ नीचे गिरा दिया गया । अब वह स्तम्भ मिट्टी में पड़ा था । बच्चे स्तम्भपर बैठकर पेशाब टट्टी करते थे । राजा किसी समय उसी रास्ते से निकला । उसने मलमूत्र से भरे हुए स्तम्भ को देखा । राजा को विचार आया—"इस स्तम्भ की तरह ही यह जीवन है।" राजा को सारा संसार असार लगने लगा । उसने अपने पुत्र को राज्य देकर प्रव्रज्या ले ली ।

द्विमुख ने प्रत्येकबुद्ध बन विहार करते-करते क्षितिप्रतिष्ठित नगर के चर्तुद्वार वाले यक्ष मन्दिर में दक्षिण द्वार से प्रवेश किया । प्रत्येक बुद्ध करकण्डू ने पूर्वद्वार से, नमिराजर्षि ने पश्चिम द्वार से और नग्गई (नग्गति) ने उत्तर द्वार से प्रवेश किया ।

चारों प्रत्येक बुद्ध एक स्थान पर एकत्र होगये और धार्मिक वार्तालाप करने लगे । करकण्डु को बचपन से ही खुजली आती थी इसलिये उसने खुजलाने के लिये अपने पास एक शलाका रख छोड़ी थी । द्विमुख ने यह देख लिया और करकण्डू से बोला-"जिसने राज्य, राष्ट्र अन्तःपुर आदि का त्याग कर दिया हो, क्या उसे शलाका का पास में रखना उचित है ?" करकण्डू ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया परन्तु नमिराजर्षि से रहा नहीं गया । उसने उत्तर में कहा-"जब आप राजा थे तब दोषों को देखने के लिये आपने अधिकारी नियुक्त किये थे परन्तु अब जब आपने सर्वसंग का त्याग किया है तो आपको किसी का दोष देखने का क्या अधिकार है ?" इस पर तीसरे प्रत्येक बुद्ध नग्गई ने कहा—"केवल मोक्ष की ही इच्छा करने वाले नमि को

पर निंदा का क्या अधिकार है ? आत्म-निश्रेयस मुनि को किसी की गर्हा नहीं करनी चाहिये ।"

इस प्रकार विवाद को बढ़ता देख नमि ने सब का समाधान करते हुए कहा —"हित की भावना से अगर कोई सच्ची बात कहता हो तो उसे दोष-दर्शन या निंदा नहीं माननी चाहिये ।

अन्त में चारों प्रत्येकबुद्ध केवलज्ञान प्राप्त कर अलग-अलग विचरण करने लगे ।

इन चारों प्रत्येक बुद्धों के जीवों ने पुष्पोत्तर नामक विमान से एक साथ च्यवन किया था । चारों ने पृथक्-पृथक् स्थानों में दीक्षा अवश्य ग्रहण की थी पर चारों की दीक्षा एक ही समय में हुई और एक ही साथ मोक्ष प्राप्त किया ।

नग्गति

गांधार जनपद में पुण्ड्र-वर्धन नाम का नगर था । उस नगर में सिंहरथ नाम का राजा राज्य करता था । एक बार उत्तरापथ के किसी राजा ने सिंहरथ को दो घोड़े भेंट किये । उनमें एक घोड़ा वक्र शिक्षा वाला था । राजा उस वक्र शिक्षा वाले घोड़े पर बैठा । राजा ने ज्यों ही लगाम खींची त्यों ही घोड़ा पवन वेग से भागने लगा । राजा ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया । राजा ज्यों-ज्यों रोकने के लिये उसकी लगाम खींचते त्यों-त्यों वह तेजी से भागने लगता था । अन्त में वह राजा को १२ योजन के एक निर्जन प्रदेश में ले गया । राजा ने थक कर घोड़े की रास ढीली कर दी । रास के ढीली होते ही घोड़ा वहीं रुक गया । राजा घोड़े से नीचे उतरा । उसने सामने सात मंजिल ऊँचा एक महल देखा । राजा उस महल में गया । उसमें प्रवेश करते ही राजा को एक सुन्दर कन्या दिखाई दी । वह कन्या तोरणपुर नगर के राजा दृढशक्ति की पुत्री कनकमाला थी । कनक-

माला का परिचय प्राप्त कर राजा ने उसके साथ विवाह कर लिया। वह बहुत समय तक पहाड़ी स्थान में रहा इसलिये उसका नाम नग्गति पड़ा।

कुछ समय वहाँ रहने के बाद नग्गति वापस नगर लौट आया। कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन नग्गति राजा सेना सहित घूमने लगा। वहाँ नगर के बाहर एक आम्रवृक्ष देखा। राजा ने उस में से एक मंजरी तोड़ ली। पीछे आते लोगों ने भी उस पेड़ में से मञ्जरी पल्लव आदि तोड़े। लौटकर आते हुए राजा ने देखा कि वह वृक्ष ठूँठ मात्र रह गया है।

कारण जानने पर राजा को विचार हुआ, "अहो! लक्ष्मी कितनी चंचल है।" इस विचार से राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने दीक्षा लेली और प्रत्येकबुद्ध बन क्षितिप्रतिष्ठित नगर के यक्ष मन्दिर मे अन्य तीन प्रत्येक बुद्धों के साथ उसने प्रवेश किया।

(शेष वर्णन के लिये देखिये 'दुम्मुह प्रत्येक बुद्ध।')

मुनि हरिकेशबल

मथुरा नगरी में 'शंख' नामका राजा राज्य करता था। वह त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की साधना करने वाला श्रावक था।

शंख को वैराग्य हुआ और उसने दीक्षा ले ली। कालान्तर में वह गीतार्थ (शास्त्र का ज्ञाता) हुआ।

एक बार विहार करते हुए शंखमुनि हस्तिनापुर गये और गोचरी के लिये उन्होंने नगर में प्रवेश किया। वहाँ एक ऐसा मार्ग था जो सूर्य की गर्मी से इतना उत्तप्त रहता था कि उसमें चलने वाला व्यक्ति भुनकर मर जाता था। अतः लोग उस मार्ग को 'हुतावह' कहते थे। मुनिराज शंख जब उस मार्ग के पास आये तो उन्होंने अपने महल के गवाक्ष में बैठे हुए सोमदेव पुरोहित से पूछा—"क्या मैं इस मार्ग से जा सकता हूँ?" सोमदेव जैन मुनियों से द्वेष रखता था।

उसने मुनि को दु:खी करने के इरादे से कहा—आप इस मार्ग से जा सकते हैं। मुनि सोमदेव की बात पर विश्वास रखकर उस मार्ग पर चलने लगे। शंख मुनि लब्धि सम्पन्न थे। उनके चरण स्पर्श से हुतावह मार्ग बर्फ जैसा ठंडा हो गया।" मुनि को शान्तभाव से मार्ग को पार करते हुए देख पुरोहित को बड़ा आश्चर्य हुआ।

वह भी घर से निकला और हुतावह मार्ग पर चला मार्ग को बर्फ जैसी ठंडा पाकर उसे अपने कुकर्म पर पश्चाताप होने लगा और वह विचारने लगा –"मै कितना पापी हूँ कि अग्नि-सरीखे उत्तप्त मार्ग पर चलने के लिये मैंने इस महात्मा से कहा। यह निश्चय ही कोई बड़े महात्मा मालूम होते हैं।" ऐसा विचार करता हुआ वह मुनि के पास आया और उनके चरणों मे गिर पड़ा। शंख मुनि ने उसे उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुन सोमशर्मा ने दीक्षा ग्रहण की और कठोर तप करने लगा। किन्तु उसे अपने जाति कुल और रूप का अभिमान था। जिसकी वजह से उसने नीच गोत्र का बन्धन किया। वहाँ से मर कर वह देवलोक में देव बना।

गंगा नदी के तीर पर बलकोट नामक चण्डालों की बस्ती थी। वहाँ हरिकेश नामक चण्डालों का मुखिया रहता था। उसकी दो स्त्रियाँ थी। एक का नाम गोरी और दूसरी का गान्धारी था। सोमदेव का जीव देवलोक से चवकर गौरी के उदर मे आया। गर्भ काल के पूर्ण होने पर गौरी ने एक कुरूप पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम हरिकेशबल रखा। हरिकेशबल स्वभावसे ही उद्दण्ड प्रकृति का था। वह अपने साथी बालकों को मारता पीटता था। उसके उद्दण्ड स्वभाव से सभी लोग परेशान थे। उसकी कुरूपता और उदण्ड–स्वभाव के कारण माता पिता भी उसका तिरस्कार करने लगे।

एक बार वसन्तोत्सव के अवसर पर सभी लोग एकत्र होकर उत्सव मना रहे थे। उस समय यह हरिकेशबल भी उनके साथ था।

बालकों को खेलता देख वह भी उनके साथ खेल खेलने लगा था। किसी बात को लेकर हरिकेशबल का बालकों के साथ झगड़ा हो गया। वह उन्हें मारने लगा। बालकों को मारता देख हरिकेश का पिता वहाँ आया और उसे पकड़ कर वहाँ से मार पीट कर निकाल दिया

अपने पिता से तिरस्कृत हरिकेशबल वहाँ से चल पड़ा और एक धूल की टेकरी पर जाकर बैठ गया।

सभी लोग उत्सवमग्न थे। इतने में एक काला विषधर सर्प निकला। लोग भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। कुछ लोगों ने साहस कर के पत्थरों और लाठियों के प्रहार से सर्प को मार डाला। लोग पुनः उत्सव में मग्न हो गये।

थोड़े समय के बाद दुमुँही सर्प निकला। सर्प को देखकर एक दो आदमी चिल्ला उठे। मारो, मारो, सर्प निकला है। इतने में एक ने कहा—अरे ! यह जहरीला सांप नहीं है इसे मारने से क्या लाभ ? लोगों ने उसे मारा नहीं। वे पुनः उत्सव में मग्न हो गये।

यह सब दृश्य टेकरी पर बैठा हरिकेशबल देख रहा था। वह मन में सोचने लगा—जिसमें जहर हैं उसी की ही यह दुर्दशा होती है। और जिसमें विष नहीं है उसको कोई भी नहीं सताता। मेरा स्वभाव विषधर की तरह है इसलिये मेरा सब तिरस्कार करते हैं। अगर मै भी विष रहित सद्गुणी होता तो मेरी यह दुर्दशा नहीं होती। अब मुझे ऐसा मार्ग अपनाना चाहिये जिससे मैं भी सद्गुणी और लोक-पूज्य बनूँ।" ऐसा सोचकर वह वहाँ से चला। मार्ग में उसे एक सन्त मिले। सन्त का उपदेश सुनकर उसने कहा—भगवन् ! आपका मार्ग श्रेष्ठ है और मेरी इच्छा भी आपके मार्ग पर चलने की है, किन्तु मैं जाति का चाण्डाल हूँ। मुनि ने कहा—चाण्डाल होने से क्या हुआ ? भगवान महावीर के शासन में सभी प्राणियों को धर्म करने का अधिकार है। मुनि का वचन सुनकर हरिकेशबल ने दीक्षा ले ली। मुनि के पास रहकर उन्होंने श्रुत का अध्ययन किया। वे अल्प

समय में पंडित बन गये । अब वे गुरु की आज्ञा लेकर एकाकी विच-रने लगे और कठोर तप करने लगे ।

हरिकेशबल मुनि विहार करते करते एक बार वाराणसी नगरी के तिंदुग उद्यान में पधारे और वहाँ ध्यान करने लगे । वहाँ तिंदुग नाम का यक्ष रहता था । हरिकेशबल मुनि की कठिन तपस्या को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और मुनि की सेवा करने लगा ।

एक बार वाराणसी नगरी के राजा कोशलिक की पुत्री 'भद्रा' अपनी दास दासियों के साथ उद्यान में घूमने आई । घूमकर जब वह वापस लौट रही थी तब उसकी दृष्टि वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुनि हरिकेशबल पर पड़ी । मुनि के मलीन वस्त्र व उनकी कुरूपता को देखकर उसने उनपर थूक दिया । राजकुमारी का मुनि के प्रति इस घृणित व्यव-हार से तिंदुक यक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । उसने राजकुमारी को शिक्षा देने के लिये तत्काल उसका मुख वक्र कर दिया । राजकुमारी की इस दुर्दशा का समाचार राजा के पास पहुँचा । राजा घबरा कर राजकु-मारी के पास आया । अपनी पुत्री की इस दुर्दशा को देखकर वह अत्यन्त चिन्तित हुआ । उसने अच्छे-अच्छे वैद्यों से उसकी चिकित्सा करवाई किन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ ।

उस समय तिंदुग यक्ष मुनि के शरीर में प्रवेश कर बोला-राजन् ! तुम्हारी कन्या ने मेरा अपमान किया है । अगर यह मुझसे विवाह करने को तैयार हो तो मै इसे ठीक कर सकता हूँ । राजा ने यह बात स्वीकार कर ली । "भद्रा" पहले की तरह स्वस्थ हो गई । इसके बाद राजा ने उस कन्या को नानाविध अलंकारों से अलंकृत करके और विवाह के योग्य बहुमूल्य उपकरणों के साथ कन्या को लेकर मुनि के पास आया और कन्या के साथ विवाह करने की प्रार्थना करने लगा । उस समय तिंदुग यक्ष मुनि के शरीर में से निकल गया । मुनि को जब चेतना आई तो सामने राजा को प्रार्थना की मुद्रा में खड़ा पाया । राजा की प्रार्थना सुनकर मुनि बोले-राजन् !

मैं आजीवन ब्रह्मचारी हूँ । हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का मैं आजीवन त्यागी हूँ । हे राजन् ! इस कन्या के साथ जो कुछ भी व्यवहार हुआ है यह सब कुछ यक्ष की चेष्टा का ही फल है । मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं हैं । मुनि के इन वचनों को सुनकर राजा और राजकन्या दोनों खिन्नचित्त होकर अपने राजभवन में वापिस चले आये । तब राजा से रुद्रदेव नामक पुरोहित ने कहा–राजन् ! यह ऋषि पत्नी, जो कि उस मुनि ने त्याग दी है अब किसी ब्राह्मण को देनी चाहिये । राजा ने पुरोहित को अपनी कन्या दे दी। पुरोहित ने राजा से कहा–राजन् ! इस ऋषि पत्नी को यज्ञपत्नी बनाने के लिये एक विशाल यज्ञ का आयोजन होना चाहिये । राजा ने यज्ञ करने की आज्ञा दे दी । राजाज्ञा प्राप्त कर रुद्रदेव ने विशाल यज्ञ मण्डप बनवाया और दूर-दूर से विद्वान ब्राह्मणों को यज्ञ में सम्मलित होने के लिये आमन्त्रित किया और वे सब आगये । यज्ञ में सम्मलित होनेवाले ब्राह्मणों के लिये रुद्रदेव ने अनेक प्रकार की भोजन सामग्री तैयार करवाई ।

इस अवसर पर हरिकेशबल मुनि अपने मासोपवास के पारणे के लिए उस यज्ञ मण्डप में आये और आहार की याचना करने लगे ।

यज्ञ वाटिका में खड़े हरिकेशबल मुनि को देख ब्राह्मण लोग अनार्यों की भाँति उस मुनि का उपहास करते हुए कहने लगे—

घृणित रूप का, काले रंग का, चपटी नाक वाला, पिशाच जैसा अदर्शनीय तथा अत्यन्त जीर्ण और गन्दे वस्त्र पहने हुए तू कौन है और यहाँ किस लिए आया है ?

मुनि के शरीर में छुपा हुआ यक्ष बोला–मै *श्रमण* हूँ, संयती व ब्रह्मचारी हूँ । धन परिग्रह और पचन पाचन से निवृत्त हूँ । इस भिक्षा वेला में दूसरों के द्वारा अपने लिये बनाये गये भोजन को लेने के लिये यहाँ आया हूँ । यहाँ बहुत सा अन्न बाँटा जा रहा है । खाया और भोगा

जा रहा है। आप जानते हैं कि मै भिक्षा से ही आजीविका करने वाला हूँ इसलिये मुझ तपस्वी को आहार देकर लाभ प्राप्त करो।

ब्राह्मणों ने कहा—यह आहार केवल ब्राह्मणों के लिये ही बनाया गया है। अतः यह अन्न तुझे नहीं देंगे। तू व्यर्थ में यहाँ क्यों खड़ा है?

मुनि ने कहा-विप्रो! जिस प्रकार फल की आशा से कृषक ऊँची और नीची भूमि में खेती करते हैं उसी प्रकार आप भी मुझे श्रद्धा से भिक्षा देकर पुण्य उपार्जन करो।

ब्राह्मण—लोक में जो पुण्य क्षेत्र हैं, उन्हे हम जानते हैं जिनमें बहुत ही पुण्य होता है। जो जाति और विद्या से सम्पन्न ब्राह्मण हैं वे निश्चय ही उत्तम क्षेत्र हैं।

मुनि०— जिनमें क्रोध मानादि और हिंसा मृषा अदत्त तथा परिग्रह है वे ब्राह्मण जाति और विद्या से हीन हैं। ऐसे क्षेत्र निश्चय ही पापकारी हैं। आप लोग तो शब्द के भारवाहक हो। आप वेद सीख करके भी उसका अर्थ नहीं जानते। जो मुनि ऊँच नीच कुल में से भिक्षा लेते हैं, वे ही दान के सुन्दर क्षेत्र हैं।

मुनि के वचन सुनकर वहाँ उपस्थित छात्र बोले—'तू हमारे सामने अध्यापकों के विरुद्ध क्या बक रहा है? हे निर्ग्रन्थ! यह आहार पानी भले ही नष्ट हो जाय, पर हम तुझे नहीं देंगे।'

यक्षाविष्ट मुनि बोले-हे आर्यो! मुझ जैसे सुसमाधिवंत एवं जितेन्द्रिय को यह एषणीय आहार नहीं दोगे तो तुम यज्ञों का फल क्या पा सकोगे?

मुनि के वचन सुनकर अध्यापक बड़े क्रुद्ध हुए और वे चिल्ला चिल्ला कर बोले-अरे! यहाँ कोई क्षत्रिय यज्ञ रक्षक क्षात्र या अध्यापक हैं? इस साधु को दण्ड या मुष्टि से मारकर और गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दो। अध्यापक की बात सुनकर बहुत से क्षात्रगण दौड़ आये और मुनि को लाठी बेंत और चाबुक से मारने लगे।

उन संयती को मारते हुए कुमारों को देखकर कोशल नरेश की राजकुमारी भद्रा उन्हें शान्त करती हुई बोली-अरे! आप लोग यह

क्या कर रहे हैं। देवाभियोग से प्रेरित हुए राजा द्वारा मैं मुनि को दी गई थी, किन्तु उन मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा। नरेन्द्र और देवेन्द्र से पूजित ये वे ही ऋषि हैं जिन्होंने मुझे त्याग दिया था।

ये उग्र तपस्वी जितेन्द्रिय संयती और ब्रह्मचारी हैं और महा यशस्वी महात्मा हैं। ये अनिन्दनीय पुरुष है इनकी निन्दा मत करो। कहीं अपने तप तेज से ये आप सबको भस्म नहीं कर दें।

इधर कुमारों की उद्दण्डता देखकर यक्ष कुमारों पर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने आकाश में रहकर रौद्र रूप धारण किया और कुमारों को मारने लगा। यक्ष की मार से कुमारों के मुख पीठ की ओर झुक गये थे। भुजाएँ फैल गई थीं। आँखे फटी हुई और मुँह ऊपर की तरफ हो गये थे। उनकी जीभ बाहर निकल आई और मुँह से खून बहने लगा।

कुमारों की यह स्थित देखकर ब्राह्मण घबरा गये। वे अपनी अपनी भार्याओं के साथ आ कर मुनि को प्रसन्न करने के लिये कहने लगे—हे भगवन्! हमने आपकी अवज्ञा की है, निन्दा की है अत. क्षमा प्रदान करें। इन मूढ़ अज्ञानी बालकों ने आपकी जो अवहेलना की है इसके लिये आप क्षमा करें। ऋषि तो महाकृपालु होते हैं वे कोप नहीं करते।

मुनि ने कहा—मेरे मन में न तो पहले द्वेश था न है, और न आगे होगा किन्तु मेरी सेवा में रहने वाले यक्ष ने ही इन कुमारों को मारा है।

मुनि ने ब्राह्मणों को क्षमा कर दिया। उसके बाद उन्होंने यज्ञ-मण्डप में आहार को ग्रहण कर मास खमण का पारणा किया।

मुनि के आहार ग्रहण करने पर समीपस्थ देवताओं ने वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट किये।

इसके बाद ब्राह्मणों को धर्मका स्वरूप समझाते हुए मुनि कहने लगे—हे ब्राह्मणो! तुम अग्नि का आरंभ क्यों करते हो। जलसे ऊपरी

शुद्धि क्यों चाहते हो ? बाह्यशुद्धि की खोज इष्ट नहीं है, ऐसा तत्वज्ञों ने कहा है ।

कुश, यूप, तृण, काष्ठ, और अग्नि तथा सायं-प्रात. जल का स्पर्श करते हुए और प्राणियों की हिंसा करते हुए मन्दबुद्धि लोग पुनः पुनः पाप का संचय करते हैं ।

यह सुनकर ब्राह्मणों ने कहा हे मुने ! हमें क्या करना चाहिये, कैसा यज्ञ करें जिससे कर्मों को दूर कर सकें । हे यज्ञ पूजित संयती ! तत्वज्ञ पुरुषों ने सुन्दर यज्ञ का प्रतिपादन किस प्रकार किया है ?

मुनि ने उत्तर देते हुए कहा—इन्द्रियों का दमन करने वाले साधु पुरुष छ काय के जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचाते, मृषावाद और अदत्त का सेवन नहीं करते तथा परिग्रह, स्त्री, मान और माया को त्याग करके विचरते हैं ।

जो पाच महाव्रतों से हिंसादि आश्रव के रोधक हैं, जो ऐहिक-जीवन की आकाक्षा नहीं करते, जो काया की ममता छोड़ चुके हैं और जो देह की सार-संचार वृत्ति से पर हैं, वे ही महाविजय के-लिये श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं ।

हे भिक्षो ! आपकी अग्नि कौनसी है, अग्निकुण्ड कौनसा है, कुडछी कण्डा, लकड़ियाँ कौनसी हैं ? शान्ति पाठ कौनसा है और किस होम से अग्नि को प्रसन्न करते हैं ?

हे आर्यो ! तप रूप अग्नि, जीव अग्नि का स्थान, और मन वचन काया के शुभ व्यापार कुडछी रूप हैं । शरीर कण्डा रूप और आठ कर्म लकड़ी रूप हैं । सयमचर्या शान्ति पाठ रूप है । मैं ऐसा यज्ञ करता हूँ जो ऋषियों द्वारा प्रशंसित है ।

हे यज्ञ पूजित ! आपका जलाशय कौनसा है ? शान्तितीर्थ कौनसा है ? मल त्यागने के लिए आप स्नान कहाँ करते हैं ? यह हम जानना चाहते हैं आप बताइये ।

हे आर्यो ! मिथ्यात्व आदि दोषों से रहित और आत्म प्रसन्न लेश्या से युक्त धर्म एक जलाशय है और ब्रह्मचर्य एक प्रकार का शान्ति-तीर्थ । इसमें स्नान करके मै विमल, विशुद्ध और सुशीतल होता हूँ और ठीक वैसे ही कर्मो का नाश करता हूँ ।

तत्त्वज्ञानियों ने यह स्नान देखा है । यही वह महास्नान है जिसकी ऋषियों ने प्रशंसा की है । जिस स्नान से महर्षिलोग विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ।

इस प्रकार हरिकेशबल मुनि ब्राह्मणों को प्रतिबोधित करके अपने स्थान पर चले गये और वहाँ विशिष्ट तपस्या की आराधना से कर्मों का क्षय कर उन्होंने मुक्ति प्राप्त की तथा ब्राह्मणों ने भी प्रतिबोधित होकर आत्म कल्याण का मार्ग ग्रहण किया ।

चित्र संभूति मुनि

साकेतपुर नाम के नगर में चन्द्रावतंसक राजा के पुत्र मुनिचन्द्र ने सागरचन्द्र नाम के मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा के बाद विहार करते करते किसी वन में मार्ग भूल जाने से वे वहीं ही इधर उधर भ्रमण करने लगे । भटकते हुए वे गोपालों की की बस्ती में पहुँचे । वहाँ चार गोपालों ने उनकी बड़ी भक्ति की और दूध आदि बहराया । मुनि ने उन गोपालों को उपदेश दिया । मुनि के उपदेश से उन्होंने दीक्षा ग्रहण की । इन चारों में से दो ने शुद्ध संयम का पालन किया और दो ने घृणापूर्वक संयम पाला । वे चारों मर कर देवलोक में उत्पन्न हुए । जिन दो ने घृणापूर्वक संयम का पालन किया था वे दोनों देवलोक से चवकर शंखपुर नगर में शाडिल विप्र की यशोमती नाम की दासी के वहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न हुए । वहाँ से फिर वे दोनो भाई सर्प के दंश से मर कर कालिंजर पर्वत में मृग रूप से उत्पन्न हुए । वहाँ पर भी किसी व्याध के द्वारा मारे जाने

पर गङ्गा नदी के किनारे हंस रूप से उत्पन्न हुए। कुछ समय के बाद अपने आयु कर्म को समाप्त करके वे दोनों वाराणसी नगरी में भूदत्त नामक चांडाल के घर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुए। उनमें एक का नाम चित्त और दूसरे का नाम संभूति रखा गया। उस समय वाराणसी में शंख नाम का राजा राज्य करता था। उसका नमुचि नाम का मन्त्री था। उस मन्त्री ने एक समय राजा की रानी के साथ विषय सेवन किया। राजा को जब उसके इस दुष्कृत्य का पता लगा तो उसने चाण्डालों के मुखिया भूदत्त को बुलाकर गुप्त रूप से नमुचि के वध करने की आज्ञा दी। भूदत्त नमुचि को अपने घर ले आया और कहा-"यदि तुम मेरे पुत्रों को पढ़ाना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ।" मन्त्री ने यह स्वीकार कर लिया, और वह भोंयरे (भूमिगृह) में रह कर चाण्डाल के पुत्र चित्त और संभूति को पढ़ाने लगा। यहाँ पर भी मन्त्री नमुचि ने चाण्डाल की पत्नी से व्यभिचार किया। भूदत्त चाण्डाल ने व्यभिचारी नमुचि का वध करने का निश्चय किया किन्तु दोनों चाण्डाल पुत्रों ने अपना विद्यागुरु जानकर उसे गुप्त रूप से भगा दिया। वह हस्तिनापुर पहुँच कर चक्रवर्ती सनत्कुमार का मन्त्री बन गया।

चित्र और सम्भूति नृत्य, गीत आदि कलाओं में निष्णात हो गये थे। वे वेणु, वीणा आदि बजाते और गंधर्व गाते हुए इधर उधर घूमने लगे। एक बार वाराणसी में मदन महोत्सव आया और लोग अपनी-अपनी टोलियाँ लेकर नाचते गाते हुए निकले। चित्र और संभूति भी अपनी टोली लेकर चले। दोनों का कण्ठ इतना मधुर था कि उन्हें सुनकर नगरी के सब लोग विशेषकर तरुण स्त्रियाँ इकट्ठी हो जातीं और मन्त्रमुग्ध की तरह उनका गान सुनतीं। यह खबर जब नगर के ब्राह्मणों के पास पहुँची तो उन्होंने राजा से जाकर कहा-"राजन्, इन चाण्डालपुत्रों ने नगरी के समस्त लोगों को भ्रष्ट कर दिया है, अतएव इन्हें नगर से बाहर निकाल दिया जाय।" राजा

ने आदेश जारी कर उन चाण्डाल पुत्रों का नगर प्रवेश निषिद्ध कर दिया ।

कुछ समय के बाद कौमुदी महोत्सव आया और नगरी के लोग बड़ी धूम धाम से उत्सव की तैयारियाँ करने लगे। चित्र और सम्भुति राजाज्ञा की परवाह न कर अपनी नगरी लौटे, और दूसरों को गाते देख कर वस्त्र से अपना मुँह ढँक कर उन्होंने गाना आरम्भ कर दिया। चाण्डाल पुत्रों का गाना सुनते ही चारों ओर से लोग आ आकर एकत्रित होने लगे । जब मालूम हुआ कि ये वही मातंगकुमार हैं तो लोगों ने उन्हें लात घूंसा थप्पड़ आदि से बुरी तरह पीटकर बाहर निकाल दिया ।

चाण्डाल पुत्रों को बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने सोचा, "हमारे रूप, यौवन, कला, कौशल आदि को धिक्कार है जो चाण्डालकुल में उत्पन्न होने के कारण हमारे सब गुणों पर पानी फिर गया ? ऐसे जीने से तो मरना अच्छा है ?" ऐसा सोचकर दोनों भाई मरने का निश्चय कर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। चलते-चलते वे एक पहाड़ पर पहुँचे और वहाँ से गिर कर प्राण त्याग करने का विचार करने लगे । संयोग वश उस पहाड़ पर एक मुनि ध्यानावस्था में बैठे थे । मुनि ने आत्म हत्या के लिये उद्यत दोनों मातंग-पुत्रों को देखा। उन्हें बुलाकर मुनि ने उपदेश दिया। मुनि के उपदेश से प्रभावित हो कर चित्त-सम्भूति ने भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। अब वे मुनि बन कर श्रुत का अध्ययन करते हुए कठोर तप करने लगे। तपस्या के कारण उन्हें अनेक प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त हुईं ।

चित्र-संभूति अब स्वतंत्र रूप से विहार करने लगे । एक समय वे विहार करते-करते हस्तिनापुर पहुँचे और नगर के बाहर उद्यान मे ठहरे । संभूत मुनि पारणा के लिये नगर में गये वहाँ नमुचि ने सम्भूत को पहचान लिया । मंत्री ने सोचा—यह साधु मेरे विषय में

दूसरों से कहेगा, अतएव उसने आदमियों से उसे खूब पिटवाया। नमुचि के इस नीच व्यवहार से संभूत मुनि को बडा क्रोध आया। वे नगर के वाहर आये और सारे नगर को भस्मसात् करने के लिये उन्होंने अपने मुख से तेजोलेश्या निकाली। पहले उन्होंने अपने मुख से भयंकर धूम निकाला और उसके वाद आग उगलना प्रारंभ किया। यह देख चित्त ने सभूत मुनि को वहुत समझाया और उसके मुख पर अपना हाथ रख दिया। उससे अग्नि तो रुक गई परन्तु धूम तो सारे नगर में फैल गया। यह देख सनत्कुमार चक्रवर्ती बहुत भयभीत हुआ। वह अपनी रानी श्रीदेवी के साथ सम्भूत मुनि के पास आया और उन्हें वन्दन कर क्षमा याचना करने लगा। नमस्कार करते समय रानी के केशों में लगे हुए गोशीर्ष चन्दन के तैल की एक बूँद सम्भूति मुनि के चरणों पर गिर पड़ी जिससे सम्भूति मुनि का क्रोध शांत होगया। मुनि ने जब आंखें खोलीं तो अपने सामने अपूर्व सुन्दरी को पाया। उसे देख सम्भूति का मन चंचल हो उठा। उसने अपने तप का निदान किया "मै भी अपने तप के फलस्वरूप चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त करूँ।" चित्त मुनि ने उसे वहुत समझाया किन्तु सम्भूत मुनि ने निदान पूर्वक अपनी देह का त्याग किया और मरकर काम्पिल्यपुर नगर के राजा ब्रह्मभूति की रानी चूलनी की कुक्षि में चतुर्दश स्वप्न के साथ पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम ब्रह्मदत्त रखा।

चित्तमुनि ने अन्तिम समय मे शुद्धभाव से संलेखना संथारा कर देह का त्याग किया। मरकर वे प्रथम स्वर्ग में देव बने। वहाँ की आयु पूरी कर चित्तमुनि का जीव पुरिमताल नगर के एक इभ्य-श्रेष्ठी के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। युवा होने पर चित्त ने दीक्षा ग्रहण की एवं कठोर तप करते हुए उसे अवधिज्ञान उत्पन्न होगया। वह पृथ्वी पर विचरने लगा।

राजा ब्रह्मभूति की अचानक मृत्यु होगई। ब्रह्मदत्त उम्र में छोटा होने से दीर्घपृष्ठ नामक सामन्त ब्रह्मभूति के राज्य का संचालन करने

लगा। रानी चुलनी का दीर्घपृष्ठ के साथ प्रेम होगया। दोनों ने कुमार ब्रह्मदत्त को प्रेम में बाधक समझकर उसे मार डालने के लिये षड्यंत्र किया। तदनुसार रानी ने एक लाक्षागृह तैयार कराया, कुमार का विवाह किया और दम्पति को सोने के लिये लाक्षागृह में भेजा। कुमार के साथ मंत्रीपुत्र वरधनु भी लाक्षागृह में गया। अर्द्ध रात्रि के समय दीर्घपृष्ठ और रानी के सेवकों ने लाक्षागृह में आग लगा दी। उसी समय मंत्री द्वारा बनवाई हुई गुप्त सुरंग से ब्रह्मदत्तकुमार और मंत्री वरधनु बाहर निकलकर भाग गये।

इधर जब दीर्घपृष्ठ को मालूम हुआ कि कुमार ब्रह्मदत्त और वर-धनु लाक्षागृह से जीवित निकलकर भाग गये हैं तो उसने चारों तरफ अपने आदमियों को दौड़ाया, किन्तु ब्रह्मदत्त का कहीं पता नहीं लगा।

ब्रह्मदत्त ने वरधनु के साथ अनेक नगरों को जीता और अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह किया। छ खण्ड पृथ्वी को जीत करके वापिस काम्पिल्यपुर लौटा। दीर्घपृष्ठ राजा को मारकर वहाँ का राज्य प्राप्त किया। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की ऋद्धि भोगता हुआ अपना समय सुख-पूर्वक व्यतीत करने लगा।

किसी समय ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को नाटक देखते हुए देवलोक के नाटक का स्मरण हो आया। उससे उसको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। जाति स्मरण में अपने पूर्व जन्म के भ्राता चित्त को पांच भव तक तो साथ ही में देखा परन्तु छठें भव में वह उसको अपने साथ न देख सका। तब अपने भाई को मिलने के लिये और उसकी खोज के लिये उसने **"गोपदासो मृगो हंसः मांतग भ्रामरो यथा"** यह पद बनाकर लोगों को सिखला दिया और साथ में यह भी कहा कि जो कोई पुरुष इस श्लोक का उत्तरार्द्ध बनाकर लावेगा उसे आधा राज्य दिया जावेगा।

इधर चित्तमुनि अवधिज्ञान से अपने पूर्वजन्म के भ्राता ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को उपदेश देने के लिये उग्र विहार कर काम्पिल्यपुर पधारे और उद्यान में ठहरे।

उस समय उद्यान का माली आधा श्लोक गाता हुआ वृक्षों को पानी पिला रहा था। मुनि ने यह श्लोक सुना और उसकी पूर्ति कर दी "एषां षष्ठयो जातिरन्यान्य भाव युक्तयोः" श्लोक की पूर्ति होने पर माली राजा के पास पहुँचा और उसने अपूर्ण श्लोक को पूरा कर सुनाया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि इस श्लोक को उद्यान में ठहरेहुए एक मुनि ने पूर्ण किया है। राजा ने माली को इनाम देकर विदा किया। ब्रह्मदत्त अपने विशाल वैभव के साथ अपने पूर्वजन्म के भ्राता चित्त मुनि के दर्शन करने आया। दोनों मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। चित्तमुनि ने ब्रह्मदत्त को अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाया, स्वर्ग-नरक के सुख-दुःख बताये और भोगों से विरक्त होने के लिये उपदेश दिया। ब्रह्मदत्त ने मुनि को राज्य ग्रहण करने का प्रलोभन दिया। चित्तमुनि ने ब्रह्मदत्त को कई तरह से समझाया* किन्तु पूर्व-जन्म के निदान के कारण वह चक्रवर्ती की ऋद्धि नहीं त्याग सका। अन्त में मर कर वह सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ।

चित्तमुनि ने शुद्ध सयम का पालन कर घनघाती कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त में जन्म जरा और मरण से मुक्ति पाकर सिद्धत्व प्राप्त किया।

इषुकार आदि छ मुनि

सागरचन्द्रमुनि के पास चार गोपालों ने दीक्षा ग्रहण की। उनमें दो चित्त और सम्भूति बने जिनका वर्णन चित्त और सम्भूति की जीवनी में आगया है। दो मुनियों ने शुद्ध भाव से संयम का पालन किया और अन्त में समाधि पूर्वक मरकर देवलोक में गये। देवलोक की आयु पूरी कर वे क्षितप्रतिष्ठित नगर के एक धनाढ्य श्रेष्ठी के घर जन्मे। दोनों युवा हुए उनकी अन्य चार व्यापारियों के साथ मित्रता हुई। छहों ने एक स्थविर के उपदेश से दीक्षा ग्रहण की। इनमें से चार ने निष्कपट भाव से चारित्र का पालन किया और दो ने कपटपूर्वक। अन्त

---

* चित्त और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के बीच जो वार्तालाप हुआ उसके लिये देखिये उत्तराध्ययन सूत्र का तेरहवाँ अध्ययन।

में छहों ने अन्तिम समय में संथारा किया और मरकर प्रथम देवलोक के नलिनीगुल्म विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए ।

गोपालों के जीव को छोड़कर अन्य चार जीवों में से एक देवलोक से चवकर इषुकार नगर का राजा बना। दूसरा इषुकार राजा की कमलावती नाम की रानी बना। तीसरा भृगु नाम का राजा का पुरोहित बना, और चौथा पुरोहित की पत्नी यशा बना ।

भृगु पुरोहित धनाढ्य थे । उसके पास धन वैभव की कमी नहीं थी किन्तु पुत्र का अभाव दोनों पति पत्नी को खटकता था। पुत्र न होने के कारण दोनों शोकाकुल रहते थे ।

इधर दोनों गोपालक देव ने अपनी आयु के केवह छ ही महिने शेष जान और अपने आगे के भव को देख वे जैन मुनि के वेश में भृग पुरोहित के यहाँ आहार के लिये आये। उन्होंने भृगु पुरोहित को उपदेश दिया। सन्तान के विषय में पुरोहित के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो पुत्र होंगे और वे साधु वृति को धारण करेंगे । अतः आप उनकी दीक्षा में बाधक न बनना किन्तु उन्हें धार्मिक प्रेरणा देते रहना । मुनियों के उपदेश से पुरोहित ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये । मुनि वहाँ से चले गये ।

कुछ काल के बाद गोपालक के जीव देवलोक से चवकर यशा के गर्भ में आये । गर्भकाल के पूर्ण होने पर यशा ने दो सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। दोनों बालकों का लाड़ प्यार से लालन पालन होने लगा।

एक दिन भृगु पुरोहित ने सोचा, "यदि मैं शहर में रहूँगा तो मेरे दोनों ही पुत्र साधुओं के सम्पर्क में आकर दीक्षित हो जायेंगे। अतः मुझे ऐसे स्थान में जाकर रहना चाहिये जहाँ साधुओं का आवागमन न हो।" यह सोच वह जंगल और झाड़ियों से घिरे 'कर्पट' नामक गांव में आया और वहीं मकान बनाकर परिवार के साथ रहने लगा।

एक दिन साधुओं से भयभीत करने के लिये पुत्रों को बुलाकर कहा—"पुत्रों ! जो जैन भिक्षु होते हैं। जिनके मुख पर मुखवस्त्रिका बंधी हुई होती है और जिनके पास रजोहरण होता है और जो भूमि को देखकर चलते हैं। वे बड़े खतरनाक होते हैं। यद्यपि देखने में बड़े सीधे-साधे लगते हैं किन्तु उनकी झोली में घातक शस्त्र होते हैं। वे बच्चों को पकड़कर ले जाते हैं और जंगल में ले जाकर मार डालते है। अतः उनसे सावधान रहना। उन्हें कहीं देखो तो तत्काल दौड़कर सुरक्षित स्थल में जाकर छुप जाना।"

एक समय दोनों बालक गांव के बाहर खेल रहे थे। उधर से अचानक दो मुनि मार्ग भूलने से आ निकले। वे गांव में गये और भृगु पुरोहित के यहाँ से आहार ग्रहण किया। आहार देने के बाद भृगु ने मुनिराज से कहा—"मुनिराज ! मेरे दो बालक बड़े उद्दण्ड हैं। कहीं आपको देखकर उपद्रव न कर बैठें अत. आप आहार गाँव के बाहर जाकर एकान्त में करलें और वहाँ से आगे विहार कर जाये। मुनियों ने भृगु की बात सुनी और वे आहार लेकर वन की ओर चले। उधर से दोनों बालक खेलते खेलते गाव को ओर आरहे थे। उनकी दृष्टि मुनिराजों पर पड़ी। मुनिराजों को सामने आते देख वे घबरा गये और वहाँ से भाग कर एक बड़े वृक्ष पर चढ़कर छुप गये। संयोगवश मुनि भी आहार करने के लिये उसी वृक्ष के नीचे आये। प्रथम उन्होंने भूमि का रजोहरण से परिमार्जन किया। इसके बाद कायोत्सर्ग किया और झोली खोलकर आहार करने लगे।

यह सब दृश्य वृक्ष पर चढ़े हुए दोनों बालक ध्यानपूर्वक देख रहे थे। मुनि का प्रथम भूमि परिमार्जन, जीवों का यत्नपूर्वक रक्षण तथा अपने ही घर का भोजन मुनियों के पात्र में देखकर विचार करने लगे--पिताजी ने जैन मुनियों के बारे में जो भय-जनक बातें बताई थीं वे सब विपरीत थीं। यहाँ तो मुनिराज का बालकों को मारना तो दूर रहा किन्तु ये तो एक जीव को भी कष्ट नहीं देते।

झोली में घातक शस्त्र नहीं किन्तु हमारे घर का ही आहार है। साथ ही हमने ऐसे मुनिराजों को कहीं न कहीं अवश्य देखा है। इस प्रकार विचार करते करते उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उन्होंने अपने पूर्वजन्म को देखा और उनका मन वैराग्य रङ्ग में रङ्ग गया। वे वृक्ष से नीचे उतरे और मुनिराजों को वन्दन कर उनका उपदेश सुनने लगे। उपदेश सुनकर बालकों ने कहा—"गुरुदेव! हम आपके पास माता पिता को पूछ कर प्रव्रज्या लेना चाहते हैं। आप थोड़े समय के लिये इषुकार नगर में ही विराजें।" मुनियों ने बालकों को निकट मोक्षवर्ती जान उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। मुनियों ने इषुकार नगर की ओर विहार कर दिया। दोनों बालक पिता के पास आये और प्रव्रज्या की आज्ञा मांगते हुए कहने लगे—

"पिता जी! यह जीवन अनित्य है। आयु थोड़ी और उसमें विघ्न बहुत हैं इसलिये हमें गृहवास में आनन्द नहीं आता। अतः हमें दीक्षा की अनुमति दीजिये।"

"पुत्रो! वेदविद् कहते हैं कि पुत्ररहित मनुष्य की उत्तम गति नहीं होती। अतः तुम वेदों को पढ़कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर संसार के भोग-भोगकर तथा अपने पुत्र को गृहभार सौंपने के बाद फिर साधु बन जाना।"

"पिताजी! वेद पढने से वे शरण भूत नहीं होते। ब्राह्मणों को भोजन कराने मात्र से ही आत्मा की सद्गति नहीं होती तथा पुत्र भी शरणभूत नहीं होते। काम भोग क्षण भर के लिये सुख देते हैं, किन्तु वे चिरकाल तक दुःख का कारण बनते हैं। ये काम भोग संसार-वर्धक और मोक्ष के बाधक हैं और अनर्थों की खान हैं।

पिता ने कहा "पुत्रों यहाँ स्त्रियों के साथ बहुत धन है, स्वजन तथा कामगुण भी पर्याप्त हैं। जिसके लिए लोग तप करते हैं, वह सब घर में ही तुम्हारे स्वाधीन है।"

'पिताजी! धर्माचरण में धन, स्वजन और काम भोगों का क्या प्रयोजन है? हम गुणवन्त श्रमण एवं भिक्षु बन कर अप्रतिबद्ध विहारी होंगे।"

पुत्रों के उपदेशों का असर भृगु तथा उसकी पत्नी यशा पर पड़ा। उन्होंने सोचा, "कामभोग भोगने का समय होते हुए भी तथा भोग उपभोग की समस्त सामग्री के होते हुए भी ये बालक इन सब का परित्याग कर श्रमण बन रहे हैं तो हम जैसे भुक्त-भोगियों को संसार में रहना उचित नहीं है। यह सोच वे भी धन वैभव का परित्याग कर पुत्रों के साथ दीक्षा ग्रहण करने के लिये इषुकार नगर की ओर चल पड़े और मुनि के पास आकर चारों दीक्षित होगये।

इधर जब पुरोहित के समस्त परिवार के साथ दीक्षित होने के समाचार राजा को मिले तो उसने पुरोहित के समस्त धन वैभव को राजकोष में रख लेने का विचार किया। राजा के इस विचार का पता जब महारानी कमलावती को लगा तो वह राजा के पास आई और कहने लगी—

"नाथ! वमन किए हुए पदार्थ को खाने वाला प्रशंसा का पात्र नहीं होता। आप ब्राह्मण द्वारा त्यागे हुए धन को ग्रहण करना चाते हैं, यह उचित नहीं।"

"राजन्! यदि यह सारा जगत आपका होजाय, सारे धनादि पदार्थ भी हमारे पास आजायँ तो भी वे सब अपर्याप्त ही हैं। वे सब पदार्थ मरणादि कष्टों के समय हमारी किसी प्रकार की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं।"

"हे राजन्! जब मृत्यु का समय आवेगा तब हम इस विशाल वैभव का परित्याग कर अवश्य मरेंगे। हे नरदेव! इसलोक में मृत्यु के समय केवल धर्म ही हमारा रक्षक एवं त्राता है। अत. राजन्! हमें इन सब बन्धनों से मुक्त होकर प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिये।" कमलवती रानी के उपदेश से राजा ने राज्य वैभव का परित्याग कर दिया। वह भी रानी कमलावती के साथ दीक्षित हो गया।

इस प्रकार इषुकार नगर के छहों जनों ने दीक्षा ग्रहण कर कठोर तप किया। घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त में अनशन कर मोक्ष में गये।

संजय राजर्षि

कांपिल्यपुर नगर में संजय नाम का राजा राज्य करता था। पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से उसके यहाँ सेना हाथी, घोड़े और वाहनादि सभी कुछ विद्यमान थे। वह एक दिन शिकार खेलने के लिये नगर से बाहर निकला। साथ में घोड़े, हाथी, रथ और पैदल सेना भी थी। वह केशर उद्यान में पहुँचा और वहाँ रहे हुए मृगों का शिकार खेलने लगा।

उसी उद्यान में गर्दभाली नाम के तपस्वी वृक्ष के नीचे बैठे हुए ध्यान कर रहे थे। राजा के बाणों से घायल मृग मुनिराज के पास आ आकर गिरने लगे। कुछ मृग वहीं मर गये।

रस लोलुप राजा घोड़े पर चढ़कर मृत मृगों के पास आया। उसने एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुनि को देखा। उन्हें देखकर वह भयभीत हुआ और सोचने लगा, "ये मृग मुनि के ही लगते हैं। मैंने मुनि के मृगों को मार कर अच्छा नहीं किया।"

वह तत्काल घोड़े से नीचे उतरा और मुनि के पास गया और उन्हें वन्दन कर बोला "हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।

मुनि ध्यान मग्न थे। उन्हें बाहरी वातावरण का कुछ भी पता नहीं था। राजा के दो तीन बार क्षमा मांगने पर भी मुनि ने उसका कुछ जवाब नहीं दिया। मुनि को मौनस्थ देखकर राजा और भी भयभीत हो गया। उसने पुनः नम्रभाव से कहा—

"हे भगवन्! मैं कांपिल्यपुर का राजा संजय हूँ। मैं अपने अपराध की क्षमा मांग रहा हूँ। आप मेरी क्षमा याचना का प्रत्युत्तर दें क्योंकि कुपित तपस्वी अपने तप-तेज से हजारों प्राणियों को जलाकर भस्म कर देने का सामर्थ्य रखते हैं।"

मुनि ने अपना ध्यान खोलकर जवाब देते हुए कहा–"राजन् ! मैं तुझे अभयदान देता हूँ, तू भी मेरी तरह अन्य प्राणियों को अभयदान दे । इस क्षणभंगुर जीवलोक के लिये तू प्राणियों की हिंसा नकर ।

"जब सब कुछ यहीं छोड़कर कर्मों के वश होकर परलोक में जाना है तो इस अनित्य संसार और राज्य में क्यों लुब्ध हो रहा है ?

"राजन् ! तुझे परलोक का बोध नहीं है । अरे तू जिस पर मोहित हो रहा है, वे भोग बिजली के चमत्कार की तरह चंचल है, नाशवान है ।"

"राजन् ! स्त्री, पुत्र, मित्र कलत्र बांधवादि जीते जागते के ही साथी है । मरने पर ये कोई साथ नहीं चलते ।"

इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर राजा संयति को वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने राज्य को छोड़कर वहीं गर्दभाली मुनीश्वर के पास दीक्षा ले ली । दीक्षा लेकर संयति मुनि ने गुरु के समीप श्रुत का अध्ययन किया । श्रुत में पारगंत होने के बाद संयति अपने मुनि गुरु की आज्ञा प्राप्त कर एकाकी विचरन लगा ।

एक बार वे विहार करते हुए कहीं जारहे थे । मार्ग में क्षत्रिय राजर्षि मिले । सुन्दर रूप और प्रसन्नमन संयति मुनि को देखकर क्षत्रिय राजर्षि बड़े प्रसन्न हुए और बोले—

"हे मुने । आपका नाम क्या है ? गोत्र क्या है ? आप किस लिये महान हुए ? आप गुरुजनों की सेवा किस प्रकार करते हैं ? और किस प्रकार विनयवान् कहलाते हैं ?"

संयती—"हे मुनिवर ! संयति मेरा नाम और गौतम मेरा गोत्र है । गर्दभाली मेरे आचार्य हैं, जो विद्या और चारित्र के पारगामी हैं ।"

इसके बाद संयति और क्षत्रिय राजर्षि के बीच क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञान वादियों के सिद्धान्त विषयक

चर्चा हुई। अपने से अनेक पूर्व पुरुषों, राजा महाराजाओं के त्याग, संयम विषयक चर्चा भी हुई।

अन्त में एक दूसरे की चर्चा से दोनों राजर्षि बड़े प्रसन्न हुए। दोनों ने सिद्धि प्राप्त कर जीवन को सफल बनाया। ये दोनों मुनि महावीर के शासन काल में हुए थे।

मृगापुत्र

सुग्रीव नाम का रमणीय नगर था। वहाँ बलभद्र नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'मृगा' था। उनको एक पुत्र था। उसका नाम मृगापुत्र था। वह युवराज था।

एकबार मृगापुत्र प्रासाद के गवाक्ष से नगर के चतुष्पथ त्रिपथ और बहुपथों को कुतुहल से देख रहा था कि उसकी दृष्टि एक संयम-शील साधु पर पड़ी। उसे देखकर मृगापुत्र को ध्यान आया कि उसने उसे कहीं देखा है। विचार करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ-'मै देवलोक से च्युत होकर मनुष्य भव में आ गया हूँ' ऐसा संज्ञिज्ञान हो जाने पर मृगापुत्र पूर्वजन्म का स्मरण करने लगा और फिर उसे पूर्वकृत संयम का स्मरण हुआ। अतः उसने अपने पिता के पास जाकर दीक्षित होने की अनुमति मांगी। उसने अपने माता पिता को समझाते हुए कहा-हे माता पिताओ! कौन किसका सगा सम्बन्धी और रिस्तेदार है? ये सभी संयोग क्षणभंगुर हैं। यहाँ तक कि यह शरीर भी अपना नहीं है फिर दूसरे पदार्थ तो अपने हो ही कैसे सकते हैं? काम भोग किंपाक फल के सदृश हैं। यदि जीव इन्हें नहीं छोड़ता तो ये कामभोग स्वयं इसे छोड़ देंगे। जब छोड़ना निश्चित है तो फिर इन्हें स्वेच्छापूर्वक क्यों न छोड़ दिया जाय। स्वेच्छा से छोड़े हुए कामभोग दुःखप्रद नहीं होते। इस प्रकार माता पिता को समझा कर और उनकी अनुमति प्राप्त कर मृगापुत्र दीक्षित हो गया। यथावत् संयम का पालन कर अन्त में मोक्ष में गया।

अनाथि मुनि

एक समय मगध के सम्राट् श्रेणिक विहारयात्रा के लिये मंडिकुक्षि नामक उद्यान में आ पहुँचा। वहाँ एक वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाए हुए एक ध्यानस्थ मुनि को देखा। मुनि की प्रसन्न मुख मुद्रा, कान्तिमय देदीप्यमान विशाल भाल और सुन्दर रूप को देखकर राजाश्रेणिक आश्चर्य चकित हो गया। वह विचार करने लगा–"अहा कैसी इनकी कान्ति है? कैसा इनका अनुपम रूप है। अहा! इस योगीश्वर की कैसी अपूर्व सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता तथा भोगों से निवृत्ति है!" वह उनके निकट पहुँचा और हाथ जोड़कर विनय पूर्वकपूछने लगा—

"हे आर्य! आपने युवावस्था में दीक्षा क्यों ग्रहण की क्योंकि यह अवस्था तो संसार के विषय भोगोंमें रमण करने की है। आपने इस तरुण अवस्था में सांसारिक विषय भोगों का परित्याग करके जो श्रमण धर्म को स्वीकार किया है इसका कारण क्या है, यह मै जानना चाहता हूँ?"

राजा के प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनि ने कहा—"हे राजन्! मै अनाथ हूँ। मेरा कोई नाथ नहीं है। मेरा रक्षक कोई नहीं है और न मेरा कोई कृपालु मित्र ही है। इसीलिए मैने संयम ग्रहण किया है।"

मुनीश्वर का उत्तर सुनकर मगध सम्राट् हंसने लगा। वह कहने लगा–"मुनिश्रेष्ठ! क्या आप जैसे प्रभावशाली तथा समृद्धशाली पुरुष को अभी तक कोई स्वामी नहीं मिल सका है? हे मुनिवर! यदि सचमुच आपका कोई नाथ नहीं है, आप अनाथ ही हैं तो हे भगवन्! मैं आपका नाथ बन जाता हूँ। मेरे नाथ बन जाने पर आपको मित्र, ज्ञाति तथा अन्य सम्बन्धिजन सुखपूर्वक मिल सकेंगे। उनके सहवास में सुखपूर्वक रहते हुए आप पर्याप्त रूप से सांसारिक विषयभोगों का उपभोग करें। यह मनुष्य जन्म बार बार नहीं मिलता। इसको प्राप्त करके सासारिक सुखों से वंचित रहना उचित नहीं है। अतः

अनाथ होने के कारण आपने जो भिक्षुवृत्ति को अङ्गीकार किया है उसका परित्याग कर दें, क्योंकि आज से मैं आपका नाथ हो गया हूँ।"

उत्तर में मुनि कहने लगे, "हे मगधाधिप! तुम जब कि स्वयं ही अनाथ हो तो दूसरे के नाथ कैसे हो सकते हो? क्योंकि जो पुरुष स्वयं अनाथ है वह दूसरों का नाथ कभी नहीं बन सकता।"

मुनिराज का उत्तर सुनकर श्रेणिक सहसा व्याकुल हो उठा और मन में विचार करने लगा-"मैंने आज तक किसी के मुख से यह नहीं सुना था कि तू अनाथ है। यह तपस्वी मेरी शक्ति, सामर्थ्य तथा सम्पत्ति को नहीं जानता है इसीलिये ऐसा कहता है। राजा अपना परिचय देता हुआ मुनि से कहने लगा कि मेरे पास नाना प्रकार की ऋद्धि मौजूद हैं। मेरा सारे राज्य में अखण्ड शासन है। मनुष्योचित सर्वोत्तम विषय भोग मुझको अनायास ही प्राप्त हैं। अनेक हाथी, घोड़े करोड़ों मनुष्यों, शहरों एवं देशों का मै स्वामी हूँ। मेरा श्रेष्ठ अन्तःपुर भी है। इतनी विपुल सम्पत्ति होने पर भी मैं अनाथ कैसे हूँ? अनाथ तो वही है जिसके पास कुछ न हो तथा जिसका कोई सहायक न हो और जिसका किसी पर भी शासन न हो। हे मुनीश्वर! कहीं आपका कथन असत्य तो नहीं है? कारण मुनि कभी असत्य नहीं बोलते।"

मुनि कहने लगे 'हे राजन! वास्तव में तू अनाथ शब्द के अर्थ और परमार्थ को नहीं समझता। मैने जिस आशय को लेकर तुझको अनाथ कहा है वह तेरे ध्यान में नहीं आया है। इसीसे तुझे सन्देह हो रहा है। मुझे अनाथता का ज्ञान कहाँ और कैसे हुआ, यह मै सुनाता हूँ। तू ध्यान पूर्वक सुन—

"कोशाम्बी नाम की प्राचीन नगरी में प्रभूतधनसंचय नाम के मेरे धनाढ्य पिता रहते थे। एक समय युवा अवस्था में मेरी आंखें दुखने आगई और उनमें असह्य पीड़ा होने लगी तथा आँखों की वेदना के साथ साथ शरीर के प्रत्येक अवयव में असह्य दाह उत्पन्न हो

गया। जैसे कुपित हुआ शत्रु मर्मस्थानों पर अति तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा प्रहार कर घोर पीड़ा पहुँचाता है वैसी ही तीव्र मेरी आंखों की पीड़ा थी। वह दाहज्वर की दारुण पीड़ा इन्द्र के वज्र की तरह मेरी कमर मस्तक तथा हृदय को पीड़ित करती थी। उस समय वैद्यक शास्त्र में अति प्रवीण जड़ी बूटी तथा मन्त्र तन्त्र आदि विद्या में पारंगत, शास्त्र-विचक्षण तथा औषधि करनेमें अतिदक्ष अनेक वैद्याचार्य मेरे इलाज के लिए आए। उन्होंने अनेक प्रकार से मेरी चिकित्सा की किन्तु मेरी पीड़ा को शान्त करने में वे समर्थ न हुए। मेरे पिता मेरे लिए सब सम्पत्ति लगा देने को तैयार थे किन्तु उस दुःख से छुड़ाने में तो वे भी असमर्थ ही रहे। मेरी माता भी मेरी पीड़ा को देखकर अत्यन्त दुखित एवं व्याकुल रहती थी किन्तु वह भी मेरे दुख को दूर करने में असमर्थ थी, मेरी अनाथता का यह भी कारण था। मेरे सगे छोटे भाई और बड़े भाई तथा सगी बहन भी मुझे उस दुःख से न बचा सके। मुझ पर अत्यन्त स्नेह रखने वाली पतिपरायण मेरी पत्नी ने सब श्रृङ्गारों का त्याग कर दिया था। रात दिन वह मेरी सेवा में लगी रहती थी, एक क्षण के लिये भी वह मेरे से दूर न होती थी, किन्तु अपने आँसुओं से से मेरे हृदय को सिंचन करने के सिवाय वह कुछ न कर सकी। मेरे सज्जन स्नेही और कुटुम्बी जन भी मुझे उस दुःख से न छुड़ा सके। यही मेरी अनाथता थी।"

मुनि के कथन को सुनकर राजा ने कहा, "हे मुनि! तो फिर आप इस दुःख से कैसे मुक्त हुए?' उत्तर में मुनिवर ने कहा—

"हे राजन्! इस प्रकार चारों तरफ से असहायता और अनाथता का अनुभव होने से मैने सोचा कि इस अनन्त संसार में इस प्रकार की वेदना का बार बार सहन करना अत्यन्त कठिन है। अतः यदि मुझे इस घोर वेदना से किसी प्रकार भी छुटकारा मिल जाय तो मैं इस वेदना के मूल कारण का विनाश करने के लिये, जिससे कि फिर इस प्रकार की वेदना को सहन करने का अवसर ही प्राप्त

न हो सके, क्षान्त दान्त तथा निरारम्भी होकर तत्क्षण ही प्रव्रजित हो जाऊँ।"

"हे राजन् ! रात्रि को ऐसा निश्चय करके मै सो गया। ज्यों ज्यों रात्रि व्यतीत होती गई त्यो त्यों वह मेरी दारुण वेदना भी क्षीण हो गई। प्रात.काल तो मैं बिलकुल नीरोग हो गया। अपने माता पिता से आज्ञा लेकर क्षान्त दान्त और निरारम्भी होकर संयमी बन गया। संयम धारण करने के बाद मैं अपने आपका तथा समस्त त्रस तथा स्थावर जीवों का नाथ हो गया हूँ।

"हे राजन् ! यह आत्मा ही आत्मा के लिए वैतरणी नदी तथा कूट शाल्मली वृक्ष के समान दुःखदायी है; और यही कामधेनु तथा नन्दन वन के समान सुखदायी है।

"यह आत्मा ही दुःखों और सुखों का कर्ता है तथा विकर्ता है एवं आत्मा ही आत्मा का शत्रु और मित्र है। यदि सुमार्ग पर चले तो यह आत्मा ही अपना सबसे बड़ा मित्र है और यदि कुमार्ग पर चले तो आत्मा ही अपना सब से बड़ा शत्रु है।

"हे राजन् ! अनाथता के अन्य भी कई कारण हैं, जिन्हें मै तुम्हें कहूँगा। तुम उसे एकाग्रभाव से सुनो—

कई एक ऐसे सत्त्वहीन कायर पुरुष भी इस संसार में विद्यमान हैं जो कि निर्ग्रन्थ धर्म को प्राप्त करके उसमें शिथिल हो जाते हैं। वे सनाथ होकर के भी अनाथ हो जाते हैं।

जो प्रव्रजित होकर प्रमादवश महाव्रतों का भली प्रकार सेवन नहीं करता तथा इन्द्रियों के अधीन और रसों में मूर्च्छित है, वह राग, द्वेष, जन्म, कर्म, बन्धन का मूल से उच्छेदन नहीं कर सकता। यह भी उसकी अनाथता है।

जिसकी ईर्या, भाषा एषणा, आदान, निक्षेप और उत्सर्ग समिति में किंचित् मात्र भी यतना नहीं है, वह वीर सेवित मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता।

जैसे पोली मुट्ठी असार होती है और खोटी मोहर में भी कोई सार नहीं होता इसी प्रकार वह द्रव्य लिंगी–वेषधारी मुनि भी असार है। जैसे वैडूर्यमणि के सामने कांच का टुकड़ा निरर्थक है वैसे ही ज्ञानी पुरुषों के सामने वह साधु निर्मूल्य हो जाता है अर्थात् गुण-वानों में उसका आदर नहीं होता।

वह वेशधारी मुनि कुशीलवृत्ति को धारण करके और ऋषिध्वज से जीवन को बढ़ाकर तथा असंयत होने पर भी 'मै संयत हूँ' इस प्रकार बोलता हुआ इस संसार में चिरकाल पर्यन्त दुःख पाता है।

जैसे तालपुट विष खाने से, उलटी रीति से शस्त्र ग्रहण करने से, तथा अविधिपूर्वक मन्त्र जाप करने से स्वयं का ही विनाश हो जाता है वैसे ही चारित्र धर्म को ग्रहण करके जो साधु विषय वासनाओं की आसक्ति में फंसकर इन्द्रिय लोलुप हो जाता है वह अपने आपका विनाश कर डालता है।

सामुद्रिक शास्त्र, स्वप्न विद्या, ज्योतिष तथा विविध कौतूहल आदि विद्याओं को सीखकर उनके द्वारा आजीविका चलाने वाले कुसाधु को अन्त समय में वे कुविद्याएँ शरणभूत नहीं होतीं।

असाधु रूप वह कुशील अत्यन्त अज्ञानता से संयमवृत्ति का विरा-धन करके सदा दुःखी और विपरीत भाव को प्राप्त होकर निरन्तर नरक और तिर्यञ्च में आवागमन करता रहता है।

जो साधु अग्नि की तरह सर्वभक्षी बनकर, अपने निमित्त बनाई गई; मोल ली गई अथवा केवल एक ही घर से प्राप्त सदोष भिक्षा ग्रहण किया करता है वह कुसाधु अपने पापों के कारण दुर्गति में जाता है।

दुराचार में प्रवृत हुआ यह आत्मा जिस प्रकार अपना अनर्थ करता है वैसा अनर्थ तो कंठ छेदन करने वाला शत्रु भी नहीं करता। जब यह आत्मा कुमार्ग पर चलता है तब अपना भान भी भूल जाता

है। जब मृत्यु आकर गला दबाती है तब उसको अपना भूतकाल याद आता है और फिर उसे पश्चाताप करना पड़ता है।

ऐसे वेशधारी की संयम रुचि भी व्यर्थ है, जो उत्तम मार्ग में भी विपरीत भाव रखता है। ऐसी आत्मा के लिये दोनों लोक नहीं हैं। वह दोनों लोक से भ्रष्ट होता है।

इसी प्रकार स्वेच्छाचारी कुशील साधु जिनेश्वर भगवान के मार्ग की विराधना करके भोग रस में गृद्ध होकर निरर्थक शोक करने वाली पक्षिणी की तरह त्रिताप पाता है।

ज्ञान तथा गुण से युक्त हित शिक्षा को सुनकर बुद्धिमान् पुरुष दुराचारियों के मार्ग को छोड़कर महातपस्वी मुनियों के मार्ग पर गमन करें।

इस प्रकार चारित्र के गुणों से युक्त बुद्धिमान साधक श्रेष्ठ संयम का पालन कर निष्पाप हो जाते हैं तथा वे पूर्व संचित कर्मों का नाश करके अन्त में अक्षय मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार कर्म शत्रुओं के शत्रु, दान्त, महातपस्वी, विपुल यशस्वी, दृढव्रती महामुनि अनाथि ने अनाथता का सच्चा अर्थ श्रेणिक को सुनाया। इसे सुनकर राजा श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दोनों हाथ जोड़कर राजा श्रेणिक मुनीश्वर से इस प्रकार कहने लगा—

हे भगवन्! आपने मुझे अनाथता का सच्चा स्वरूप बड़ी ही सुन्दरता के साथ समझा दिया। आपका मानव-जन्म सफल है। आपकी यह दिव्य कान्ति, दिव्य प्रभाव, शान्तमुखमुद्रा, उज्वल सौम्यता धन्य है। जिनेश्वर भगवान के सत्यमार्ग में चलने वाले आप वास्तव में सनाथ है, सबांधव हैं। संयमिन्! अनाथ जीवों के आप ही नाथ हैं। सब प्राणियों के आप ही रक्षक हैं। हे क्षमा सागर महापुरुष! मैंने आपके ध्यान में विघ्न डालकर और भोग भोगने के लिये आमं-त्रित करके आपका जो अपराध किया है उसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक राजा ने श्रमण-सिंह अनाथि मुनि की परम भक्ति पूर्वक स्तुति की। मुनि का धर्मोपदेश सुनकर राजा श्रेणिक दूसरे दिन अपने विशाल परिवार के साथ मुनिदर्शन के लिये आया और वह मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध धर्मानुयायी बन गया। परम भक्ति पूर्वक मुनिवर को वन्दना नमस्कार करके अपने स्थान को चला गया। मुनि ने भी अन्यत्र विहार कर दिया। संयम की विशुद्ध आराधना करते हुए उन्होंने अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

समुद्रपाल

चम्पा नाम की नगरी में पालित नाम का एक व्यापारी रहता था। वह श्रमण भगवान महावीर का श्रावक था। वह जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचनों में बहुत कुशल था।

एक बार व्यापार करने के लिये के लिये जहाज द्वारा पिहुण्ड नामक नगर में आया। पिहुण्ड नगर में आकर उसने अपना व्यापार शुरू किया। न्याय, नीति, सचाई और ईमानदारी के साथ व्यापार करने से उसका व्यापार चमक उठा। सारे शहर में उसका यश और कीर्ति फैल गई। पिहुण्ड नगर में रहते हुए उसे कई वर्ष बीत गये। उसके गुणों से आकृष्ट होकर पिण्हुड नगर के निवासी एक महाजन ने रूप लावण्य सम्पन्न अपनी कन्या का विवाह पालित के साथ कर दिया। अब वे दोनों दम्पती आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय पश्चात् वह कन्या गर्भवती हुई। अपनी गर्भवती पत्नी को साथ लेकर पालित श्रावक जहाज द्वारा अपने घर चम्पा नगरी आने के लिए रवाना हुआ। आसन्नप्रसवा होने से पालित की पत्नी ने समुद्र में ही पुत्र को जन्म दिया। समुद्र में पैदा होने के कारण उस बालक का नाम समुद्रपाल रखा गया। अपने नवजात पुत्र और स्त्री के

साथ वह सकुशल चम्पा नगरी में अपने घर पहुँच गया। सब को प्रिय लगने वाला, सौम्यकान्तिधारी वह बालक वहाँ सुख पूर्वक बढ़ने लगा। योग्य वय होने पर उसे शिक्षागुरु के पास भेजा गया। विलक्षण बुद्धि के कारण शीघ्र ही वह बहत्तर कलाओं तथा नीति शास्त्र में पारंगत हो गया। जब वह यौवन को प्राप्त हुआ तब उसके पिता ने अप्सरा जैसी सुन्दर एक महारूपवती कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह होने के पश्चात् समुद्रपाल उस कन्या के साथ रमणीय महल में रहने लगा और दोगुन्दक देव के समान कामभोग भोगता हुआ सुखपूर्वक समय बिताने लगा।

एक दिन वह अपने महल की खिड़की में से नगरचर्या देख रहा था कि इतने में फाँसी पर चढ़ाने के लिये वध्यभूमि की तरफ मृत्यु दण्ड के चिह्न सहित ले जाते हुए एक चोर पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस चोर को देखकर उसके हृदय में कई तरह के विचार उठने लगे। वह सोचने लगा--"अशुभ कर्मों के कैसे कड़वे फल भोगने पड़ते हैं। इस चोर के अशुभ कर्मों का उदय है इसी से इसको यह कड़ुआ फल भोगना पड़ रहा है। यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। जो जैसा करता है वह वैसा भोगता है, यह अटल सिद्धान्त समुद्रपाल के प्रत्येक अंग में व्याप्त हो गया। कर्मों के इस अटल नियम ने उसके हृदय को कंपा दिया। वह विचारने लगा, मेरे लिये इन भोग जन्य सुखों के कैसे दुःखदायी परिणाम होंगे ? मैं क्या कर रहा हूँ ? यहाँ आने का क्या कारण है ?" इत्यादि अनेक प्रकार के तर्क वितर्क उसके मन में पैदा होने लगे। इस प्रकार गहरे चिन्तन के परिणाम स्वरूप उसको जातिस्मरण ज्ञान पैदा हो गया। अपने पूर्वभव को देखकर उसे वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। अपने माता पिता के पास जाकर दीक्षा लेने की आज्ञा मांगने लगा। माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर उसने दीक्षा अङ्गीकार की और संयम धारण कर साधु बन गया। महाक्लेष, महाभय, महामोह तथा आसक्ति के मूल कारण रूपी धन

वैभव तथा कुटुम्बी जनों के मोह सम्बन्ध को छोड कर रुचि पूर्वक त्याग धर्म स्वीकार कर लिया । वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह रूप पांच महाव्रतों का तथा रात्रि भोजन आदि सदाचारों का पालन करने लगा और आने वाले परिषहों को जीतने लगा । इस प्रकार वह विद्वान मुनिवर जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित धर्म पर दृढ़ बनकर साधु के उद्दिष्ट मार्ग पर गमन करने लगा । इस प्रकार उत्तम संयम धर्म का पालन कर अन्त में केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी का स्वामी हुआ जिस प्रकार प्रकाश मण्डल में सूर्य शोभित होता है उसी प्रकार वह मुनिश्वर भी इस महिमण्डल पर अपने आत्म प्रकाश से दीप्त होने लगा ।

पुण्य और पाप इन दोनों प्रकार के कर्मों का सर्वथा नाश कर वह समुद्रपाल मुनि शरीर के मोह से सर्वथा छूट गया। शैलेशी अवस्था को प्राप्त हुआ और संसार रूपी समुद्र से तिर कर वह महामुनि मोक्ष गति को प्राप्त हुआ ।

प्रथम केशीकुमार श्रमण

भगवान पार्श्व की परम्परा के आचार्य । ये चार ज्ञान से सम्पन्न और चौदह पूर्व के ज्ञाता थे । एक समय पान्च सौ शिष्य समूह के साथ श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान में ठहरे हुए थे । उस समय श्वेताम्बिका नगरी के राजा प्रदेशी का चित्त नामक सारथी जितशत्रु राजा को भेंट पहुँचाने के लिये आया था । वह केशीकुमार श्रमण के पास गया और उपदेश सुन उनका उपासक बन गया । उसने श्रावक के व्रत ग्रहण किये ।

एक दिन चित्त ने केशी श्रमण से निवेदन किया—"भगवन् ! श्वेताम्बिका नगरी का राजा प्रदेशी नास्तिक है ! वह आत्मा और परलोक के अस्तित्व को नहीं मानता, अत. आप उसे समझाने के लिये श्वेताम्बिका पधारें । केशी ने चित्त की बात मान ली । वे विहार

करते हुए श्वेताम्बिका नगरी के मृगवन उद्यान में ठहरे। उद्यान पालक ने केशीश्रमण के आने की सूचना चित्त सारथी को दी। चित्त केशीश्रमण के पास जाने लगा।

एक दिन चित्त घुड़सवारी के बहाने प्रदेशी राजा को मृगवन उद्यान में ले आया। वहाँ प्रदेशी ने केशीश्रमण को महती सभा में उपदेश देते हुए देखा और चित्त से बोला—"यह कौन मूर्ख मूर्खों के बीच बकवास कर रहा है?" चित्त ने कहा—'ये केशीकुमार श्रमण हैं। आत्मा और शरीर को भिन्न भिन्न मानते हैं।' प्रदेशी को आत्मा और शरीर का विभिन्नत्व कैसे है यह जानने की जिज्ञासा हुई। वह केशी के पास गया। उसने अनेक प्रश्न किये। केशीश्रमण ने अनेक व्यवहारिक तर्कों से आत्मा को शरीर से भिन्न सिद्ध किया। प्रदेशी केशीश्रमण का उपासक बन गया। उसने हिंसा त्याग दी। श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये। अपने राज्य की आय के चार हिस्से किये। एक हिस्से में उसने दानशाला खोली। जिससे अनेक श्रमण ब्राह्मण अतिथि और भिक्षुक लाभ उठाने लगे। केशीश्रमण वहाँ से विहार कर गये।

२. द्वितीय केशी श्रमण

भगवान पार्श्व की परम्परा को मानने वाले तीन ज्ञान के धारक केशी श्रमण पार्श्व द्वारा उपदेशित चार याम, अहिंसा सत्य, अचौर्य और अपरिग्रहण को मानते थे। वे एक बार अपने पांचसौ शिष्यों के साथ श्रावस्ती आये और तिन्दुक उद्यान में ठहरे। उसी समय भगवान महावीर के प्रधान शिष्य द्वादशांग के धारक गौतम स्वामी भी शिष्य मण्डली के साथ श्रावस्ती के कोष्ठक उद्यान में ठहरे थे। एक दूसरे को देखकर दोनों के शिष्यों को यह चिन्ता हुई कि भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याम धर्म क्यों कहा और महावीर ने पांच महाव्रत और अचेलक धर्म का विधान क्यों किया? शिष्यों के ये विचार जान कर केशी और गौतम ने मिल कर परामर्श कर लेना उचित समझा और

गौतम स्वामी शिष्य मण्डली सहित केशी कुमार श्रमण के पास गये। केशी श्रमण ने गौतमस्वामी का सम्मान किया। उन्हें बैठने के लिये दर्भ का आसन किया। उस समय उन दोनों का वार्तालाप सुनने के लिए अनेक देवता और श्रोता गण उपस्थित हुए। दोनों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

केशी–"महाभाग ! मै आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ।"

गौतम–"भदन्त ! इच्छानुसार पूछिये।"

केशी–"चार प्रकार के चारित्र–रूप धर्म को महावीर ने पांच प्रकार का क्यों बताया ? जब दोनों का एक ही ध्येय है तब इस अन्तर का कारण क्या है ?"

गौतम–पार्श्वनाथ के समय में लोग सरल प्रकृति के थे, इसलिये वे चार में पांच का अर्थ कर लेते थे। अब कुटिल प्रकृति के लोग हैं। उनको स्पष्ट समझाने के लिए ब्रह्मचर्य के विधान की अलग आवश्यकता हुई।

केशी श्रमण—महावीर भगवान ने अचेलक धर्म का विधान क्यों किया ?

गौतम–विज्ञान से जानकर ही धर्म साधनों ही आज्ञा दी गई है। लोक में प्रतीति के लिये, संयम–निर्वाह के लिये, ज्ञानादि ग्रहण के लिए और वर्षा कल्प आदि में संयम पालने के लिए उपकरण और लिंग की आवश्यकता है। वास्तव में तो ज्ञान–दर्शन–चारित्र ही मोक्ष के साधक हैं, लिंग नहीं।

केशी–आपके उत्तरों से मुझे सन्तोष हुआ। अब यह बताइये कि हजारों शत्रुओं के बीच रह कर आपने उन्हें कैसे जीता ?

गौतम–एक अशुद्धात्मा को जीत लेने पर पांचों (अशुद्धात्मा और चार कषाय) जीत लिये जाते हैं और इन पाचों के जीत लेने पर दस जीत लिये जाते हैं और दस के जीतने पर हजारों जीत लिये जाते हैं।

केशी—सभी लोग बन्धनों में बन्धे हुए हैं। तब आप इन बन्धनों से कैसे छूट गये?

गौतम–राग द्वेष आदि को चारों तरफ से नष्ट करके मैं स्वतंत्र हो गया हूँ।

केशी–हृदय में एक लता है जिसमें विष फल लगा करते हैं। आपने वह लता कैसे उखाड़ी?

गौतम–तृष्णा को दूर करके मैंने वह लता नष्ट कर दी है।

केशी–आत्मा में एक तरह की ज्वालाएँ उठा करती हैं आपने इन्हें कैसे शान्त किया?

गौतम–ये कषायरूपी ज्वालाएँ हैं। मैंने भगवान महावीर द्वारा बताये गये श्रुत शील और तप रूपी जल से इन्हे शान्त किया है।

केशी–इस दुष्ट घोड़े को कैसे वश करते हैं?

गौतम–दुष्ट घोड़ा मन है; उसे धर्म शिक्षा से वश करता हूँ।

केशी–लोक में बहुत से कुमार्ग है। आप उनसे कैसे बचते हैं?

गौतम–मुझे कुमार्ग और सुमार्ग का ज्ञान है, इसलिये मैं उनसे बचा रहता हूँ।

केशी–प्रवाह में बहते हुए प्राणियों का आश्रय स्थान कहाँ है?

गौतम–पानी में एक द्वीप है। जहाँ प्रवाह नहीं पहुँचता। वह धर्म है।

केशी—यह नौका तो इधर उधर जाती है। आप समुद्र पार कैसे करेंगे?

गौतम—शरीर नौका है जिसमें आश्रव लगे हुए हैं। वह पार न पहुँचायगी, परन्तु आश्रव रहित नौका पार पहुँचायगी।

केशी—सब प्राणी अँधेरे में टटोल रहे हैं। इस अन्धकार को कौन दूर करेगा?

गौतम सूर्य के समान जिनेन्द्र महावीर का उदय हो गया है।

केशी—दुःख रहित स्थान कौन है ?

गौतम—लोकाग्र में स्थित निर्वाण।

केशी—हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा अच्छी है। मेरे सन्देह नष्ट हो गये हैं। अतः हे संशयातीत ! हे समस्त श्रुत समुद्र के पारगामी ! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार शंकाएँ दूर हो जाने पर घोर पराक्रमी केशी श्रमण ने महायशस्वी श्री गौतम स्वामी को सिर झुका कर वन्दना की और पांच महाव्रत धर्म को भाव से ग्रहण किया।

भगवान महावीर के संघ में प्रवेश कर केशी श्रमण ने कठोर तप कर घनघाती कर्मों का क्षय किया और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये।

जयघोष और विजयघोष

जयघोष और विजयघोष दोनों भाई थे। जाति से ये काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे और वाराणसी के रहने वाले थे। ये वेद शास्त्रों के पारगामी विद्वान थे और यज्ञ याग आदि ब्राह्मण क्रिया में विशेष श्रद्धा रखते थे।

एक वार जयघोष स्नान करने के लिये गंगा नदी पर गया। वहाँ उन्होंने एक मण्डूक को साँप से, साप को कुरर (पक्षी विशेष) से ग्रसित देख कर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अवसर पाकर एक ज्ञानी श्रमण के पास दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर जयघोष मुनि ने श्रुत का अध्ययन किया और वे गुरु की आज्ञा लेकर एकाकी विचरने लगे।

वे विहार करते-करते वाराणसी नगर के बाहर मनोरम उद्यान में आये और निर्दोष शय्या संस्तारक लेकर रहने लगे।

उसी नगर में उनका भ्राता विजयघोष नामक ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था। उस समय अनगार जयघोष मासोपवास के पारणा के लिये विजयघोष के यज्ञ में भिक्षार्थ उपस्थित हुए। भिक्षा मांगने पर विजयघोष ने भिक्षा देने से इनकार करते हुए कहा—"हे भिक्षो! सर्वकामनाओं को पूर्ण करनेवाला यह भोजन, उन्हीं विप्रों को देने का है, जो वेदों के ज्ञाता, यज्ञार्थी, ज्योतिषांग के ज्ञाता और धर्म के पारगामी द्विज हैं तथा अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं।

ऐसा सुनकर भी जयघोष मुनि किंचित् मात्र भी रुष्ट नहीं हुए। सुमार्ग बताने के लिये जयघोष मुनि ने कहा-"न तो तुम वेदों के मुख को जानते हो, न यज्ञ के मुख को। नक्षत्रों तथा धर्म को भी तुम नहीं समझते। जो अपने तथा पर के आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं उनको भी तुम नहीं जानते। यदि जानते हो तोकहो?

मुनि के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ विजयघोष बोला-महामुने! आप ही इन प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

यह सुनकर जयघोष मुनि कहने लगे-हे विप्र! अग्निहोत्र वेदों का मुख है। तप के द्वारा कर्मा का क्षय करना यज्ञ का मुख है। चन्द्रमा नक्षत्र का मुख है और धर्मों के मुख काश्यप गोत्रीय भगवान ऋषभदेव हैं।

जिस प्रकार चन्द्रमा के आगे ग्रह नक्षत्रादि हाथ जोडकर वन्दना और मनोहरस्तुति करते हैं उसी प्रकार उन उत्तम भगवान ऋषभ की इन्द्रादि देव स्तुति करते हैं। तुम यज्ञवादी विप्र राख से ढँकी अग्नि की तरह तत्त्व से अनभिज्ञ हो। विद्या और ब्राह्मग की सम्पदा से भी अनजान हो तथा स्वाध्याय और तप के विषय में भी मूढ़ हो। जिन्हें कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है और जो सदा अग्नि के समान पूजनीय है, उन्हीं को मैं ब्राह्मण कहता हूँ। जो स्वजनादि में आसक्त

नहीं होता और प्रव्रजित होने में सोच नहीं करता किन्तु आर्य वचनों में रमण करता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

हे विप्र! जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निर्मल होता है, उसी प्रकार जो राग द्वेष और भयादि से रहित है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ। जो तपस्वी, सुव्रतों के पालन से निर्वाण प्राप्त करने वाला, कृशकाय, त्रस और स्थावर प्राणियों की तीन करण, तीन योग से हिंसा न करने वाला, क्रोध, मान, लोभ, हास्य तथा भय से भी असत्य नहीं बोलनेवाला, अदत्त को ग्रहण नहीं करनेवाला, तथा शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला है उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जलकमल की तरह काम भोगों में अनासक्त, अलोलुप, भिक्षाजीवी, अनगार अकिंचन तथा गृहस्थों में जो अनासक्त हैं उन्हीं को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

हे विप्र! सभी वेद, पशुओं के वध के लिये हैं और यज्ञ, पापकर्म का हेतु है। ये वेद और यज्ञ, यज्ञकर्ता दुराचारी का रक्षण नहीं कर सकते क्योंकि कर्म अपना फल देने में बलवान है। केवल सिर मुण्डाने से कोई श्रमण नहीं होता न ॐकार के रटने से ब्राह्मण होता है। अरण्य में वसने मात्र से कोई मुनि नहीं हो जाता और न वल्कलादि पहिनने से कोई तापस हो सकता है।

समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये सब कर्म से होते हैं। हे ब्राह्मण! इस धर्म को सर्वज्ञ ने प्रकट किया है जिसके आचरण से विशुद्ध होकर सभी कर्म से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे उत्तम धर्म का पालन करनेवाले को ही हम ब्राह्मण कहते हैं। उपर्युक्त गुणों से युक्त द्विजोत्तम ही स्वपर का कल्याण करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार कहने के बाद उन्होंने श्रमण-धर्म का प्रतिपादन किया। संशय के छेदन हो जाने पर विजयघोष ने विचार करके जयघोष मुनि को पहिचान लिया कि जयघोष मुनि उनके भाई हैं। विजयघोष ने

जयघोष की प्रशंसा की। जयघोष ने उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनाया। उनका उपदेश सुनकर विजयघोष ने दीक्षा लेली और अन्त में दोनों श्रमणों ने सिद्धि प्राप्त की।

जालिकुमार

राजगृह नाम का नगर था। वह धन धान्य से समृद्ध था। वहाँ गुणशील नामक चैत्य था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम धारिणी था। धारिणी रानी ने स्वप्न में सिंह को देखा। कुछ काल के बाद रानी ने जाली नामक कुमार को जन्म दिया। युवावस्था में जालीकुमार का आठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ और आठ दहेज मिले। उत्तङ्ग प्रासाद में निवास करता हुआ जाली कुमार भोग-विलास में रत रहने लगा।

भगवान महावीर राजगृह नगर में पधारे। राजा श्रेणिक यह जान कर भगवान के दर्शन के लिये चला। जाली कुमार ने भी भगवान के दर्शन के लिये प्रस्थान किया। दर्शन करने के पश्चात् जाली कुमार ने माता पिता की अनुमति लेकर प्रव्रज्या स्वीकार कर ली और उसने स्थविरों की सेवा में रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

अध्ययन के बाद उसके गुणरत्न नामक तप किया। और भी कई प्रकार के विभिन्न तप किये। तप से उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया और उसने संथारा करने का निश्चय किया। भगवान की आज्ञा प्राप्त कर वह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर गया। वहाँ एक शिलापट्ट पर यावज्जीवन का संथारा किया। आयुष्य के अन्त में मरण करके वह विजय विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। जाली कुमार ने सोलह वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया। देवलोक से च्युत होकर जाली कुमार महाविदेह क्षेत्र में सिद्धत्व प्राप्त करेंगे।

अनन्तर स्थविरों ने जाली अनगार को दिवंगत जानकर उसका परिनिर्वाण-निमित्तक कायोत्सर्ग किया। इसके बाद उन्होंने जाली कुमार

के पात्र एवं चीवरों को ग्रहण किया और फिर विपुलगिरि से नीचे उतर आये। भगवान की सेवा में आकर स्थविरों ने जाली कुमार के वस्त्र पात्र बताये और उसके स्वर्गवास के समाचार कहे।

मयालिकुमार

राजगृह नाम का नगर था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करते थे उसकी रानी का नाम धारिणी था। मयालिकुमार, उपजालिकुमार, पुरुषसेनकुमार, वारिषेणकुमार, दीर्घदन्तकुमार और लष्टदन्तकुमार इन छ कुमारों का आठ आठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ और इन्हें आठ २ दहेज मिले। ये अपने अपने महलों में भोग विलास में रत रहने लगे।

भगवान महावीर का राजगृह में आगमन हुआ। इन छहों कुमारों ने महावीर के दर्शन किये। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर इन राजकुमारों ने भगवान महावीर के समीप चारित्र ग्रहण किया। सोलह वर्ष तक चारित्र का पालन कर इन्होंने विपुलगिरि पर अनशन किया और क्रमशः इन कुमारों ने विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सवार्थ सिद्ध विमान में देवत्व प्राप्त किया। दीर्घदन्त कुमार ने सर्वार्थ-सिद्धविमान प्राप्त किया। ये कुमार देवलोक का आयुष्य पूर्णकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे। दीर्घदन्त का दीक्षा पर्याय बारह वर्ष का था।

वेहल्ल और वेहायस

ये महारानी चेलना के पुत्र थे। इनके पिता का नाम श्रेणिक था। इन्होंने महावीर के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। पाचवर्ष तक संयम पालन कर उत्क्रम से जयन्त और अपराजित विमान में देवत्व प्राप्त किया। ये महाविदेह में सिद्ध बनेंगे।

अभयकुमार

राजगृह नगर के महाराजा श्रेणिक के ये बुद्धिमान और चतुर पुत्र थे। इनकी माता का नाम नन्दा देवी था। अभयकुमार महाराजा श्रेणिक

के मंत्रीपद पर नियुक्त थे। इन्होंने भगवान महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण की। कठोर तप किया। पांच वर्ष तक संयम का पालन कर विपुलगिरि पर इन्होंने अनशन किया। मृत्यु के बाद ये विजय विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ का आयुष्य पूरा कर ये महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

धन्य अनगार

काकन्दी नाम की नगरी थी। उस नगर के बाहर सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था। जिसमें समस्त ऋतुओं के फल और फूल सदा रहते थे। वहाँ जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था।

उस नगरी में भद्रा नाम की सार्थवाही रहती थी। उसके पास बहुत बड़ी सम्पत्ति थी। उस सार्थवाही के धन्यकुमार नाम का पुत्र था। उसने बहत्तर कलाओं का अध्ययन किया। भद्रा सार्थवाही ने अपने पुत्र धन्य के लिए बत्तीस सुन्दर प्रासाद बनवाये जो विशाल और उत्तुंग थे उनके मध्य में अनेक स्तंभों पर आधारित एक भवन बनवाया। धन्यकुमार का बत्तीस इभ्यकन्याओं के साथ विवाह हुआ। उसे बत्तीस दहेज मिले। वह ऊँचे प्रासादों में अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ सुखभोग में लीन हो गया।

उस समय भगवान महावीर काकन्दी नगरी में पधारे। परिषद निकली। जितशत्रु राजा भी दर्शनार्थ निकला। धन्यकुमार भी साज सज्जा के साथ पैदल चलकर ही भगवान की सेवा में पहुँचा। भगवान का उपदेश सुनने के बाद धन्यकुमार ने भगवान से कहा—मैं माता भद्रासार्थवाही से पूछकर देवानुप्रिय के पास प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा।

घर आकर धन्यकुमार ने अपनी माँ से अनुमति प्राप्त कर ली। भद्रासार्थवाही ने एवं राजा जितशत्रु ने धन्यकुमार का दीक्षा महोत्सव किया। धन्यकुमार प्रव्रजित होकर अनगार बन गये। इर्यासमिति से युक्त गुप्त ब्रह्मचारी हो गये।

धन्यकुमार जिस दिन प्रव्रजित हुए उसी दिन भगवान महावीर को वन्दन कर इस प्रकार बोले-"भन्ते! आज से जीवन पर्यन्त निरंतर षष्ठ तप से तथा आयंबिल के पारणे से मैं अपनी आत्मा को भावित पवित्र करते हुए विचरण करना चाहता हूँ। षष्ठ तप के पारणे में रूक्ष आहार करूँगा। वह रूक्षाहार भी ऐसा हो जिसमें घृतादि किसी प्रकार का लेप न लगा हो, घरवालों के खा लेने के पश्चात् बचा हुआ, बाहर फेंकने योग्य तथा बाबा जोगी, कृपण, भिखारी आदि जिसकी वांछा न करें ऐसे तुच्छ आहार की गवेषणा करता हुआ विचरण करूँगा।" भगवान ने धन्यमुनि को आज्ञा प्रदान कर दी। इस प्रकार का कठोर अभिग्रह धारण कर महादुष्कर तपस्या करते हुए धन्यमुनि विचरने लगे। उत्कृष्ट अभिग्रह के कारण धन्यमुनि को कभी आहार मिलता तो पानी नहीं मिलता और कभी पानी मिलता तो आहार नहीं मिलता। जो कुछ भी आहार मिल जाता था वे उसी में सन्तोष का अनुभव करते थे किन्तु मन में जरा भी दीन भावना नहीं लाते। धन्यमुनि अदीनअविमन, अकलुष विषाद रहित अपरिश्रान्त व सदा समाधियुक्त रहते थे। धन्यमुनि गवेषणा से प्राप्त आहार को इस प्रकार ग्रहण करते थे जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करता है अर्थात् मुख के दोनों पार्श्व भागों को स्पर्श किये बिना स्वाद की आसक्ति से रहित कवल को सीधा निगल जाते थे।

इस प्रकार उग्रतपस्या के कारण धन्यमुनि का शरीर अत्यन्त कृश हो गया। उनके पैर, पैरों की अंगुलियाँ, घुटने, कमर, छाती, हाथ, हाथ की उंगलियाँ, गरदन, नाक, कान, आख आदि शरीर का प्रत्येक अवयव कृष और शुष्क हो गया। शरीर की हड्डियाँ दिखाई देने लग गईं। जिसप्रकार कोयलों से भरी हुई गाड़ी के चलने से शब्द होता है उसी प्रकार चलते समय और उठते समय धन्यमुनि की हड्डियाँ करड करड शब्द करती थीं। उनका शरीर इतना क्षीण हो गया था कि उठते बैठते, चलते फिरते और बोलते समय भी उन्हें

बड़ी ग्लानि होती थी। यद्यपि धन्य अनगार का शरीर सूख गया था किन्तु राख के ढेर से ढकी आग के समान वह अन्दर ही अन्दर आत्म तेज से प्रदीप्त हो रहा था। वे तपस्तेज से अत्यन्त सुशोभित लगते थे।

एक समय ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान महावीर राजगृह पधारे। भगवान का आगमन सुन श्रेणिक महाराजा एवं नगर की विशाल जनता भगवान के दर्शनार्थ गई। भगवान ने महती परिषद् को उपदेश दिया। परिषद् वापिस चली गई वन्दना नमस्कार करने के बाद श्रेणिकराजा ने भगवान से प्रश्न किया कि हे भगवन्! आपके पास इन्द्रभूति आदि सभी साधुओं में कौन सा साधु महा दुष्कर क्रिया और महा निर्जरा का करने वाला है? भगवान ने फरमाया कि हे श्रेणिक! इन सभी साधुओं में धन्य अनगार महा दुष्कर क्रिया और महानिर्जरा करने वाला है। भगवान से ऐसा सुनकर श्रेणिक राजा धन्यमुनि के पास आया, हाथ जोड़, तीन बार वन्दना नमस्कार कर यों कहने लगा–हे मुने! आप धन्य हो, पुण्यशाली हो, कृतार्थ हो। आपने मनुष्य जन्म को सफल किया। आपके कठोर तप और साधना की भगवान तक ने प्रशंसा की है।

एकबार अर्धरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए धन्य मुनि को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मेरा शरीर तपस्या से सूख गया है। अब शरीर से विशेष तपस्या नहीं हो सकती, इसलिए प्रातःकाल भगवान से पूछकर संलेखना संथारा करना ठीक है। ऐसा विचार कर दूसरे दिन प्रातःकाल धन्यमुनि भगवान के पास आये और संथारा करने की आज्ञा मांगी। भगवान ने अनुमति दे दी। भगवान से अनुमति प्राप्त कर स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर चढ़े। वहाँ एक शिलापट्ट पर एक महिने का संथारा करके नौ मास तक संयम पालन कर यथासमय काल कर गये। धन्य अनगार काल कर गये हैं यह जान कर स्थविरों ने कायोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् धन्य अनगार के भाण्डो-

पकरण लेकर भगवान के पास आये और भाण्डोपकरण रख दिये। धन्य अनगार के स्वर्गगमन के समाचार सुनकर गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा- भगवन्! धन्य अनगार ने मृत्यु के बाद कहाँ जन्म ग्रहण किया। उत्तर में भगवान ने कहा-धन्य अनगार मृत्यु के बाद सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयु वाले महर्द्धिक देव बने हैं। वहाँ से आयु पूर्णकर वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध बनेंगे।

सुनक्षत्र अनगार

काकन्दी नाम की नगरी थी। वहाँ का राजा जितशत्रु था। वहाँ भद्रा नाम की एक सार्थवाही रहती थी। उसके पास अपरिमित धन था। उस सार्थवाही के सुनक्षत्र नाम का पुत्र था। उसका बत्तीस इभ्य कन्याओं के साथ विवाह हुआ। भगवान महावीर की दिव्यवाणी सुनकर उसके मन में वैराग्य का भावना जागृत होगई और वह अपने विपुल वैभव को छोड़कर मुनि बन गया। मुनि बन जाने के बाद सुनक्षत्र अनगार ने अगसूत्रों का अध्ययन कर कठोर तप किया। अन्तिम दिनों में विपुलगिरि पर अनशन कर सवार्थसिद्ध विमान में देवत्त्व प्राप्त किया। देवलोक से च्युत होकर सुनक्षत्र अनगार महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

ऋषिदास और पेल्लख अनगार

ये दोनों श्रेष्ठी पुत्र राजगृह नगर के रहने वाले थे। इन दोनों की माता का नाम भद्रा सार्थवाही था। दोनों का बत्तीस बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ। दोनों ने भगवान महावीर के समीप चारित्र ग्रहण कर सर्वार्थ सिद्धि विमान मे देवत्व प्राप्त किया। भविष्य में ये दोनों अनगार महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

रामपुत्र और चन्द्रिक अनगार

ये दोनों अनगार साकेत नगर के भद्रा सार्थवाही के पुत्र थे। दोनों का बत्तीस बत्तीस कन्याओं के साथ विवाह हुआ। दोनों ने भग-

वान महावीर के समीप चारित्र ग्रहण किया कठोर तप कर विपुलगिरि पर्वत पर संलेखना की। मृत्यु के बाद सर्वार्थ सिद्धि विमान में देवत्व प्राप्त किया। देवलोक से च्युत होने के बाद ये महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

पुष्टिमातृक और पेढालपुत्र अनगार

इन अनगारों की माता का नाम भद्रा सार्थवाही था। ये दोनों वाणिज्य ग्राम के निवासी थे। दोनों का ३२ कन्याओं के साथ विवाह हुआ। महावीर के पास चारित्र ग्रहण कर इन्होंने कठोर तप किया अन्तिम दिनों में विपुलगिरि पर अनशन कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवत्व प्राप्त किया। भविष्य में ये महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

पोष्टिल्ल अनगार

हस्तिनापुर नगर में भद्रा नाम की सार्थवाही रहती थी। उसका पोष्टिल नाम का पुत्र था। युवावस्था में पोष्ठिलकुमार का बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं के साथ विवाह हुआ। भगवान महावीर का उपदेश सुन-कर पोष्टिलकुमार ने दीक्षा ग्रहण की अंगसूत्रों का अध्ययन कर इन्होंने कठोर तप किया। अन्तिम समय में विपुलगिरि पर अनशन कर सर्वार्थसिद्ध विमान में ये देव बने। देवलोक का आयुष्य पूर्ण करने के बाद ये महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

वेहल्ल कुमार

ये राजगृह नगर के रहने वाले थे। इनका दीक्षा महोत्सव इनके पिता ने किया था। महावीर के समीप चारित्र ग्रहण कर इन्होंने कठोर तप किया। छ माह का चारित्र पालन कर इन्होंने विपुलगिरि पर अनशन किया और मृत्यु के बाद सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवत्व प्राप्त किया। देवलोक का आयुष्य पूर्ण करने के बाद ये महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

धन्य शालिभद्र

राजगृह के धनाढ्य श्रेष्ठी गोभद्र के पुत्र का नाम शालिभद्र था। भद्रा इसकी माता थी। इसका बत्तीस श्रेष्ठी कन्याओं के साथ विवाह हुआ था। गोभद्र सेठ मर कर देव बना। पुत्रस्नेह वश वह देवलोक से दिव्य वस्त्राभूषण, भोजन आदि भोगोपभोग की सामग्री सदा देवलोक से भेजा करता था। शालिभद्र अपने सप्तखण्डी प्रासाद में रहकर देवता की तरह आनन्द करता था। यह दिव्य समृद्धि इसे पूर्व जन्म में संगम नामक वत्सपाल के भव में एक तपस्वी को 'पायस' (खीर) दान के कारण मिली थी।

एक बार राजगृह में एक व्यापारी बहुमूल्य कम्बलों को बेचने आया था। उसके एक-एक कम्बल की कीमत लाख-लाख रुपये थी। उसके पास ऐसी सोलह कम्बल थीं। राजगृह के सम्राट् श्रेणिक ने स्वयं इन कम्बलों को अधिक मूल्य के कारण खरीदने से इनकार कर दिया। व्यापारी निराश होकर लौट रहा था। भद्रा सार्थवाही को इस बात का पता चला। उसने दासी द्वारा व्यापारी को बुलाया और उससे सोलह कम्बल खरीद लीं। भद्रा सेठानी की बत्तीस बहुएँ थी। उसने एक-एक कम्बल के दो-दो टुकड़े कर बहुओं में बाट दिये। बहुओं ने उन कम्बलों से पैर पोंछकर उन्हें फेंक दिया।

उन फेंकी गई रत्नकम्बलों के टुकड़ों को सफाई करने वाली महतराणी उठाकर ले गई। वह उसे ओढ़कर राजमहल में सफाई करने गई। सफाई करने वाली के शरीर पर बहुमूल्य कम्बल को देखकर रानी चेलना ने उसे पूछा—यह कम्बल कहाँ से आई? उसने कहा—गोभद्र सेठ की बहुओं ने पैर पोंछ कर कम्बल के टुकड़ों को फेंक दिया था। मैं उन्हें उठाकर ले आई हूँ। गोभद्र सेठ की इस भव्य ऋद्धि से चेलना को बड़ा आश्चर्य हुआ।

दूसरे दिन चेलणा ने राजा श्रेणिक से अपने लिये रत्नकम्बल खरीदने को कहा। राजा ने व्यापारी को बुलाया तो व्यापारी ने भद्रा सेठानी द्वारा सारे कम्बल खरीदे जाने की बात कह दी। राजा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने शालिभद्र को अपने यहाँ बुलवाया; पर शालिभद्र को भेजने के बजाय भद्रा ने श्रेणिक को अपने यहाँ आमन्त्रित किया।

भद्रा ने राजा के स्वागत-सत्कार की पूरी व्यवस्था कर दी। राजा शालिभद्र के घर पहुँचा। सप्तखण्ड प्रासाद की एक एक मंजिल की भव्य रचना देखकर राजा चकित रह गया। राजा चौथे मंजिल पर जाकर ठहर गया।

शालिभद्र की माता श्रेणिक के आगमन की सूचना देने शालिभद्र के पास पहुँची और बोली-'पुत्र! मगध के सम्राट् महाराजा श्रेणिक अपने घर तुझे देखने के लिये आये हैं। उन्हें मिलने के लिये चलो।" शालिभद्र ने कहा-"माताजी! इसमें मुझे आने की क्या आवश्यकता है। जो योग्य मूल्य हो उसे खजांची से दिलवा कर भण्डार में उसे रख दो।" पुत्र की इस बात पर माता हँसी। वह बोली-"पुत्र! श्रेणिक कोई खरीदने की वस्तु नहीं हैं। वह हमारे नाथ हैं। मगध के सम्राट् हैं। और तुम्हारे भी स्वामी हैं। तुम्हें उनसे मिलने के लिये चलना होगा।" माता की आज्ञा सुन कर शालिभद्र खड़ा हुआ और राजा से मिलने के लिये महल से नीचे उतरने लगा। सीढ़ी से नीचे उतरते हुए सोचने लगा-"मैं मानता था कि अब मेरा कोई स्वामी नहीं है किन्तु मेरी यह धारणा असत्य थी। यहाँ के राजा मेरे स्वामी हैं और मै उनका आधीनस्थ प्रजा-जन हूँ। यह मुझे अब पता चला। अब मुझे ऐसा काम करना चाहिये जिससे मेरा कोई स्वामी ही न रहे।" उसने भगवान महावीर से प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया।

शालिभद्र माता के अनुरोध से श्रेणिक के पास आया और उन्हें विनय पूर्वक प्रणाम किया। राजा ने उसे स्नेह पूर्वक अपनी गोद में

बैठा लिया। सुकुमार शालिभद्र को राजा की गोद भी कठोर लगी। वह गोद में बैठे बैठे ही व्याकुल हो गया। अपने पुत्र की इस अवस्था को देख कर भद्रा विनय पूर्वक बोली—"सम्राट्! आप इसे छोड़ दें। यह सदा से फूलों की कोमल शय्या पर बैठा है। आपकी कठोर जांघ इसे व्याकुल बना रही है। इसे मनुष्य की गन्ध से कष्ट हो रहा है। इसके पिता देवता हो गये हैं और वे अपने पुत्र और पुत्रवधुओं को दिव्यवेश और भोजनादि प्रतिदिन भेजते हैं।" यह सुनकर राजा ने शालिभद्र को विदा किया और वह सातवीं मंजिल पर चला गया।

शालिभद्र अब दीक्षा लेने की भावना से प्रतिदिन एक पत्नी और एक शय्या का त्याग करने लगा।

उसी नगर में शालिभद्र की छोटी बहन सुभद्रा का विवाह धनसार श्रेष्ठी व माता शीलवती के पुत्र 'धन्य' के साथ हुआ था। सुभद्रा को अपने भाई शालिभद्र के वैराग्य का समाचार मिला तो वह बहुत दुःखित हुई। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उस समय वह अपने पति धन्य को स्नान करा रही थी। धन्य की अन्य सात पत्नियाँ भी स्नान कराने मे सम्मलित थीं। सुभद्रा के आंसू पति के शरीर पर गिरने लगे। उष्ण पानी के बिन्दुओं का स्पर्श पाकर धन्य बोला—आज ये उष्ण बिन्दु कैसे? जब उसने ऊँचा देखा तो सुभद्रा के आँखों से अविरल आँसू बह रहे थे। पत्नी की आँखों में आँसू देखकर धन्य ने पूछा—प्रिये! तुम क्यों रो रही हो? उसने जवाब दिया—"नाथ! मेरा भाई शालिभद्र दीक्षा लेने के विचार से प्रतिदिन एक-एक पत्नी और एक एक शय्या का त्याग कर रहा है।" यह सुनकर धन्य ने कहा—"तुम्हारा भाई कायर है। अगर त्याग ही करना है तो यह कायरता क्यों? इस पर सुभद्रा ने कहा—"यदि दीक्षा लेना सहज है तो आप क्यों नहीं ले लेते।"

सुभद्रा का यह वाक्-बाण धन्य के ठीक मर्मस्थान को बींध गया। वह तत्काल खड़ा हो गया और बोला-सुभद्रे! आज से ही मैंने तुम सब का परित्याग कर दिया है और मैंने भी दीक्षा लेने का विचार कर लिया है। यह बात पति के मुख से सुनकर सुभद्रा चौंक उठी। उसे यह मजाक भारी पड़ गया। वह अत्यन्त दुःखी हृदय से कहने लगी-"नाथ! मैंने तो मजाक में कहा था। आप मुझे क्षमा कीजिये।"

पर धन्य अपने वचन पर दृढ रहा। वह शालिभद्र के पास आया और बोला-"शालिभद्र! यह क्या कायरों की तरह त्याग कर रहा है? अगर त्याग ही करना है तो क्यों नहीं वीरों की तरह किया जाय।" मै आज ही दीक्षा लेने जा रहा हूँ। अपने बहनोई के इस आह्वान पर शालिभद्र ने अपनी समस्त ऋद्धि का परित्याग कर धन्य के साथ भगवान महावीर के समीप दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर दोनों ने कठोर तप किये और अन्त में नालन्दा के पास वैभारगिरि के समीप एक शिला पर पादोपगमन संथारा कर देह त्याग दिया और मरकर धन्य अनगार ने मोक्ष प्राप्त किया और शालिभद्र अनुत्तरदेव विमान में देव बने। भद्रा ने भी दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण किया।

सुबाहुकुमार

हस्तीशीर्ष नाम का एक बड़ा समृद्धिपूर्ण नगर था। वहाँ अदीन-शत्रु नाम के परम प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे प्रजा हितैषी और न्यायशील थे। उनके शासन में प्रजा बड़ी सुखी थी।

महाराज अदीन शत्रु के धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं। जिनमें धारिणी प्रधान महारानी थी। धारिणीदेवी सौंदर्य की जीती जागती मूर्ति थी। एक बार धारिणीदेवी रात्रि के समय जबकि अपने राजोचित शयन भवन में सुखशय्या पर सुखपूर्वक सो रही थी तब अर्द्धजागृत अवस्था में उसने एक सिंह को मुख में प्रवेश करते

हुए स्वप्न में देखा । इस स्वप्न के बाद जब धारिणी रानी जागी तो उसका फल जानने की उत्कण्ठा से वह उसी समय अपने पति महाराज अदीनशत्रु के पास पहुँची और मधुर तथा कोमल शब्दों से उन्हें जगा कर अपने स्वप्न को कह सुनाया । स्वप्न सुनाने के बाद वह बोली— प्राणनाथ ! इस स्वप्न का फल बतलाने की कृपा करें ।

महारानी धारिणी से स्वप्न सुनने के बाद महाराजा अदीनशत्रु ने कहा–प्रिये ! तुम्हारा यह स्वप्न बहुत उत्तम और मंगलकारी है । इसका फल अर्थलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा । तुम्हें एक सुयोग्य पुत्र की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा । स्वप्न का फल सुनकर धारिणी प्रसन्न हुई और उन्हें प्रणाम कर अपने शयनस्थान पर लौट आई । किसी अन्य दुःस्वप्न से उक्त स्वप्न का फल नष्ट न हो जाय इस विचार से फिर वह नहीं सोई किन्तु शेष रात्रि धर्म जागरण में ही व्यतीत की ।

अपने गर्भकाल में महारानी बड़ी सचेत रहती थी । खान, पान का पूरा ध्यान रखती थी । अधिक उष्ण, अधिक ठंडा, अधिक तीखा या अधिक खारा भोजन करना उसने त्याग दिया था । हित और मित भोजन तथा गर्भ को पुष्ट करने वाले अन्य पदार्थों के यथाविधि सेवन से वह अपने गर्भ का पोषण करने लगी ।

नवमास के पूर्ण होने पर उसने एक सर्वांग सुन्दर पुत्ररत्न को जन्म दिया । जातकर्मादि संस्कारों के कराने के बाद उस नवजात शिशु का 'सुबाहुकुमार' ऐसा गुणनिष्पन्न नाम रखा । उसके बाद क्षीरधात्री, मण्डनधात्री, क्रीडापनधात्री, अङ्कधात्री और मज्जनधात्री इन पाँच धाय माताओं की देखरेख में वह गिरिकंदरागत लता तथा द्वितीया के चन्द्र की भाँति बढ़ने लगा । जब वह आठ वर्ष का हुआ तब माता पिता ने शुभ मुहूर्त में उसे कलाचार्य के पास सुयोग्य शिक्षा के लिये भेज दिया । कलाचार्य ने अल्प समय में ही उसे पुरुष की ७२ कलाओं में निपुण कर दिया और उसे महाराज को समर्पित किया । अब

सुबाहुकुमार सामान्य बालक न रहकर विद्या, विनय, रूप और यौवन सम्पन्न एक आदर्श राजकुमार बन गया तथा मानवोचित भोगों के उपभोग करने के सर्वथा योग्य हो गया। माता पिता ने उसके लिये पांचसौ भव्य प्रासाद और एक विशाल भवन तैयार कराया और पुष्पचूला आदि प्रमुख पांचसौ राजकुमारियों के साथ उसका विवाह कर दिया। दहेज में उसे सुवर्णकोटि आदि प्रत्येक वस्तु ५०० की संख्या में मिली। अब सुबाहुकुमार अपनी ५०० रानियों के साथ मानवोचित विषय भोगों का उपभोग करता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा।

एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी अपनी शिष्य मण्डली के साथ हस्तिशीर्ष नगर के बाहर पुष्पकरण्डक उद्यान में पधारे। भगवान के आगमन का समाचार सारे नगर में बिजली की तरह फैल गया। नगर की जनता बड़ी संख्या में महावीर के उपदेश श्रवण करने के लिये उनके समवशरण में पहुँची। महाराजा अदीनशत्रु भी भगवान के आगमन को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और प्रभुदर्शनार्थ पुष्पकरण्डक उद्यान में जाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने अपने हस्तिरत्न और चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित हो तैयार रहने का आदेश दिया और स्वयं स्नानादि आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त हो वस्त्राभूषण पहनकर हस्तिरत्न पर सवार हो महारानी धारिणी देवी को तथा सुबाहुकुमार को साथ ले चतुरंगिणी सेना के साथ बड़ी सजधज से भगवान के दर्शनार्थ उद्यान की ओर चल पड़े। उद्यान के समीप पहुँच कर जहाँ से भगवान महावीर को देखा वहाँ से ही वे हस्तिरत्न के नीचे उतर गये एवं पांच अभिगमों के साथ वे भगवान के चरणों में उपस्थित होने के लिये पैदल चल पड़े। भगवान के चरणों में उपस्थित होकर यथाविधि वन्दना नमस्कार करने के बाद वे उचित स्थान पर बैठ गये। भगवान ने अपने सामने उपस्थित महती परिषद् को उपदेश दिया।

भगवान की देशना का सुबाहुकुमार पर बहुत असर पड़ा। वह उनके सन्मुख खड़े होकर नम्र भाव से बोला—भगवन्! आप के पास अनेकों राजा महाराजा धनाढ्य सेठ साहूकार अपने विशाल वैभव का परित्याग कर प्रव्रजित होते हैं परन्तु मुझ में सम्पूर्ण चारित्र ग्रहण करने की शक्ति नहीं है, इसलिये मुझे तो गृहस्थोचित देशविरति धर्म के पालन का ही नियम कराने की कृपा करें। भगवान ने उत्तर में कहा—राजकुमार! जैसा सुख हो वैसा करो। तदन्तर सुबाहुकुमार ने पांच अनुव्रत और सात शिक्षा व्रतों के पालन का नियम करते हुए देश-विरति धर्म को अङ्गीकार किया और भगवान को यथाविधि वन्दन कर अपने रथ पर सवार होकर अपने स्थान को वापिस चला आया।

सुबाहुकुमार की रूपलावण्यपूर्ण भद्र और मनोहर आकृति तथा सौम्य स्वभाव एवं मृदुवाणी आदि को देखकर गौतमस्वामी विचारने लगे कि सुबाहुकुमार ने ऐसा कौन सा पुण्य किया है जिसके प्रभाव से इसको इस तरह की लोकोत्तर मानवी ऋद्धि संप्राप्त हुई है। इन विचारों से प्रेरित होकर वे भगवान के पास आये और विनय पूर्वक पूछने लगे—भगवन्! सुबाहुकुमार इष्ट है, इष्टरूप वाला है, कान्त है, कान्त रूपवाला है। प्रिय है, प्रियरूप वाला है। सौम्य है, सौम्यरूप वाला है। भगवन्! सुबाहुकुमार को यह मनुष्य ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई? यह पूर्वभव में कौन था, उसका नाम क्या था? गोत्र क्या था? इसने क्या दान दिया? कौनसा भोजन खाया था? किस वीतरागी श्रमण या ब्राह्मण की वाणी सुनकर इसके जीवन का निर्माण हुआ था?

गौतम की उपरोक्त शंका का समाधान करते हुए भगवान ने कहा—गौतम! सुन, मैं तुझे सुबाहुकुमार के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूँ—

हस्तिनापुर नाम का एक नगर था। वह धन धान्य से समृद्ध था। वहाँ सुमुख नाम का एक धनाढ्य गाथापति रहता था। वह नगर का

मुखिया था। एक बार धर्मघोष नाम के जाति सम्पन्न आचार्य अपने पांच सौ शिष्यों के साथ नगर के बाहर सहस्राम्र उद्यान में पधारे। धर्मघोष आचार्य के एक शिष्य का नाम 'सुदत्त अनगार' था।

सुदत्त अनगार जितेन्द्रिय और तपस्वी थे। तपोमय जीवन से उन्हें तेजोलेश्या प्राप्त थी। वे मासखमन की तपश्चर्या करते थे अर्थात् वे महिने में केवल एक दिन ही आहार करते थे।

एक समय उनके मासखमन के पारणे का दिन था। उन्होंने उस दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया दूसरे प्रहर में ध्यान किया और तीसरे प्रहर में वस्त्र पात्रादि तथा मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर वे अपने धर्माचार्य की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने सविधि सविनय वन्दन कर पारणे के निमित्त भिक्षार्थ जाने की आज्ञा मांगी। गुरु की ओर से आज्ञा मिल जाने के बाद वे नगर में आहार के लिये चले।

नगर में वे ऊँच नीच और मध्यम कुलों में आहार की गवेषणा करने लगे। उन्होंने नगर के बीच एक विशाल भवन देखा और सहज भाव से आहार के लिये उसमें प्रवेश किया। वह विशाल भवन सुमुख गृहपति का था।

सुदत्त अनगार को घर में प्रवेश करते देख सुमुख गृहपति बड़ा प्रसन्न हुआ। उसका मन विकसित सूर्य कमल की भाति हर्ष के मारे खिल उठा। वह अपने आसन से उठकर, नंगे पाव सुदत्त अनगार के स्वागत के लिए सात आठ कदम आगे गया और उसने तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण पूर्वक प्रदक्षिणा करके मुनि को भक्ति भाव से वन्दन नमस्कार किया एवं तदन्तर सुदत्त अनगार का स्वागत करता हुआ बोला—प्रभो! आज मेरा अहोभाग्य है। आज आपके पधारने से मेरा घर और मेरा जीवन पावन हो गया है। इस प्रकार कहते हुए वह सुदत्त अनगार को अपनी भोजन शाला में ले गया वहाँ अत्यन्त पवित्र और उत्कृष्ट भाव से अनगार को चार प्रकार का एषणीय आहार वहराया।

आहार देते समय उसके भाव इतने शुद्ध थे कि उनके प्रभाव से उसने उसी समय मनुष्य सम्बन्धी आयु का पुण्य बन्ध कर लिया। संसार को संक्षिप्त किया। उस समय उसके घर में देवों ने सुवर्ण की वृष्टि की। पांच वर्ण के फूल और बहुमूल्य वस्त्र बरसाये। देवदुंदुभियाँ बज उठीं। आकाश में रहकर देवतागण अहोदान महोदान की घोषणा करनें लगे।

हस्तिनापुर के नगरवासी भी कहने लगे–सुमुख गाथापति धन्य है, कृतपुण्य है, इसने मनुष्य जन्म को तथा जीवन को सफल कर लिया है।

हे गौतम ! इस सुमुख गृहपति का पुण्यशाली जीव ही धारिणी देवी के गर्भ में आकर सुबाहुकुमार के रूप में जन्म ग्रहण किया है। उसने पूर्वजन्म में सुपात्र को दान देकर ही यह मनुष्य सम्बधी दिव्य-ऋद्धि और इष्ट मनोहर एवं सौम्य रूप प्राप्त किया है।

पुनः गौतम ने भगवान से प्रश्न किया- भगवन् ! यह सुबाहु-कुमार क्या आपके पास दीक्षा ग्रहण करेगा। उत्तर में भगवान ने कहा–अवश्य यह दीक्षा ग्रहण कर देवगति प्राप्त करेगा और देवगति से च्युत होकर वह महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेगा।

इसके बाद भगवान महावीर ने अपनी शिष्य मण्डली के साथ पुष्पकरण्डक उद्यान के कृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहार कर अन्य देश में भ्रमण करना आरम्भ कर दिया।

अब सुबाहुकुमार भी भगवान के द्वारा प्रतिपादित जीवादि तत्त्वों का जानकर हो गया। वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा आदि तिथियों में पौषध करता हुआ अधिक से अधिक अपने जीवन को संयमी बनाने लगा।

एक समय पौषध व्रत में रात्रि के समय धार्मिक जागरण करता हुआ सोचने लगा–धन्य हैं वे ग्राम, नगर, देश और सन्निवेश आदि स्थान जहाँ पर श्रमण महावीर स्वामी का विचरण होता है। वे राजा, महाराजा और सेठ साहूकार भी बड़े पुण्यशाली है जो श्रमण महावीर के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करते हैं और उनके चरणों

में उपस्थित होकर पंचाणुव्रतिक गृहस्थ धर्म को अंगीकार करते हैं, वे भी धन्य है । उनके धर्म को श्रवण करने वाले भी भाग्यशाली हैं। यदि अबकी बार भगवान यहाँ पधारेंगे तो मै भी उनके पावन चरणों में उपस्थित होकर संयम व्रत को अंगीकार करूँगा ।

भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे । वे भक्त सुबाहुकुमार के भाव को जान गये । भगवान भक्त के अधीन होते हैं । इसी उक्ति के अनुसार सुबाहुकुमार के उद्धार की इच्छा से भगवान ने हस्तिशीर्ष नगर की ओर प्रस्थान कर दिया । ग्रामानुग्राम विचरते हुए भगवान हस्तिशीर्ष नगर में पधारे और पुष्पकरण्डक उद्यान में कृतवनमालप्रिय यक्ष के मन्दिर में विराजमान हो गये । तदन्तर उद्यानपाल के द्वारा भगवान के पधारने की सूचना मिलते ही नगर निवासी जनता भगवान के दर्शन के लिए बड़ी संख्या में उद्यान में गई । इधर नगर नरेश भी सुबाहु कुमार को साथ लेकर बड़े समारोह के साथ उद्यान में उपस्थित हुए और भगवान की वाणी सुनी ।

भगवान की वाणी सुनकर सुबाहुकुमार का मन वैराग्य के रंग से रंग गया । उसने अपने पूर्वविचारों को साकार करने का निश्चय किया । वह भगवान के सन्मुख खड़ा होकर बोला—भगवन् ! मैंने आपसे पहले श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये थे कारण कि उस समय मैं मुनिव्रत ग्रहण करने में असमर्थ था किन्तु इस समय मै मुनिव्रत के योग्य अपने आपको मानता हूँ । मै अपने माता पिता को पूछकर आपके पास दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ । भगवान ने उत्तर में कहा–जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो ।

उसके बाद सुबाहुकुमार घर आया और उसने माता पिता से स्वीकृति प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करली । सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान महावीर के समीप साधुधर्म ग्रहण कर लिया । अब सुबाहु अनगार स्थविरों के पास रहकर अंगसूत्रों का अध्ययन करने लगे ।

अध्ययन समाप्त होने पर इन्होंने अत्यन्त कठोर तप प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपना सारा जीवन तपोमय बना डाला। अन्त में एक मास की संलेखना--२९ दिन का संथारा करके आलोचना तथा प्रतिक्रमण के साथ समाधिपूर्वक सुबाहु अनगार ने देह का त्याग किया और मर कर वे प्रथम देवलोक सौधर्म में देव बने। वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर वे आगामी भव में मनुष्य का भव करके पुनः दीक्षित होकर पांचवे देवलोक में देव बनेंगे। फिर मनुष्य भव प्राप्तकर सातवें देवलोक में पुनः मनुष्य भवकर नौवें देवलोक में, पुनः मनुष्य भवकर ग्यारहवें देवलोक में तथा पुनः मनुष्य भव में आकर सर्वार्थसिद्ध विमान मे देव बन कर महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

भद्रनन्दी

ऋषभपुर नाम का एक समृद्धिशाली नगर था। उसके ईशान कोण मे स्तूप करण्डक नाम का एक रमणीय उद्यान था, उसमें धन्य नाम के यक्ष का एक विशाल मन्दिर था। वहाँ धनावह नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी सरस्वतीदेवी नाम की रानी थी। किसी समय शयन भवन में सुख शय्या पर सोई हुई महारानी सरस्वती ने स्वप्न में एक सिंह को देखा जो कि आकाश से उतरकर उसके मुख में प्रवेश कर गया। वह तुरत जागी और उसने अपने पति के पास आकर अपने स्वप्न को कह सुनाया। स्वप्न को सुनकर महाराज धनावह ने कहा कि इस स्वप्न के फलस्वरूप तुम्हारे एक सुयोग्य पुत्र होगा।

समय आने पर महारानी सरस्वती देवी ने एक रूप गुण संपन्न बालक को जन्म दिया। माता पिता ने उसका नाम भद्रनन्दी रक्खा। योग्य लालन पालन से वह चन्द्रकला की भाँति बढ़ने लगा। कलाचार्य के पास रहकर उसने ७२ कलाएँ सीखलीं। युवा होने पर माता पिता ने उसका एक साथ श्रीदेवी आदि प्रमुख पाचसौ राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया और सबको अलग अलग दहेज मिला। अब वह

उन राजकन्याओं के साथ उन्नत प्रासादों में रहकर यथेष्ट भोगोपभोग करता हुआ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

एक समय ऋषभपुर में भगवान महावीर का पधारना हुआ। नगर की जनता भगवान के दर्शन करने उद्यान में गई। महाराजा धनावह व राजकुमार भद्रनन्दी भी भगवान के दर्शनार्थ गये। भगवान ने धर्म श्रवणार्थ आई हुई परिषद् को धर्म सुनाया। भगवान की वाणी सुनकर भद्रनन्दी कुमार ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। भद्रनन्दी के घर जाने के बाद उसके रूप, लावण्य, गुण, संपत्ति आदि की प्रशंसा करते हुए गौतम स्वामी ने उसके पूर्व भव के सम्बन्ध में पूछा कि हे भगवन्! भद्रनन्दी पूर्वभव में कौन था तथा किस पुण्य के आचरण से इसने इस प्रकार की मानवी गुण समृद्धि प्राप्त की है। इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा—गौतम! तुम्हारे प्रश्न के समाधान में मैं इस कुमार का पूर्वजन्म का वृत्तांत सुनाता हूँ—

महाविदेह में पुण्डरिकिनी नाम की एक सुप्रसिद्ध नगरी थी। वहाँ के शासक के पुत्र का नाम विजयकुमार था। एक बार उस नगरी में युगबाहु नाम के तीर्थङ्कर भगवान पधारे। विजयकुमार ने बड़ी विशुद्ध भावना से उन्हें आहार दिया। आहार का दान करने से उसने उसी समय मनुष्य की आयु का बन्ध किया। वहाँ की भव स्थिति पूरी करने के बाद उस सुपात्र दान के प्रभाव से वह यहाँ आकर भद्रनन्दी के रूप में अवतरित हुआ। हे गौतम! भद्रनन्दी को इस समय जो मानवी ऋद्धि प्राप्त हुई है, वह विशुद्ध भावों से किये गये उसी आहार दान रूप पुण्याचरण का विशिष्ट फल है। इसके बाद गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया-भगवन्! भद्रनन्दी कुमार आपके पास दीक्षा ग्रहण करेगा? उत्तर में भगवान ने फरमाया—हाँ गौतम! लेगा। उसके बाद श्रमण भगवान महावीर ने अन्यत्र विहार कर दिया।

एक दिन भद्रनन्दी पौषधशाला में जाकर पौषध व्रत करता है। वहाँ तेले की तपस्या से आत्म चिन्तन करते हुए भद्रनन्दी को

विचार उत्पन्न हुआ कि धन्य हैं वे ग्राम नगर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हैं । अगर भगवान यहाँ पधारेंगे तो मैं भी उनके पास दीक्षा ग्रहण करूँगा । भगवान अपने विशिष्ठ ज्ञान से भद्रनन्दी कुमार के विचार को जान गये और वे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए ऋषभपुर पधारे भगवान की सेवा में पहुँचकर भद्रनन्दी कुमार ने मुनि दीक्षा ग्रहण की । मुनि दीक्षा के बाद अगसूत्रों का अध्ययन किया । उसके बाद उन्होंने कठोरतप किया । अन्त में मासिक सलेखना करके उन्होंने देह का त्याग किया । वे मरकर देवलोक में गये । वहाँ से सुबाहुकुमार की तरह ही देव भव और मनुष्य भव को ग्रहण करता हुआ अन्त में महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा ।

सुजातकुमार

वीरपुर नामका नगर था । वहाँ मनोरम नाम का उद्यान था । वहाँ महाराज वीरकृष्ण का राज्य था । उनकी रानी का नाम श्रीदेवी था । सुजातकुमार उनका पुत्र था । वलश्री आदि प्रमुख पाचसौ कन्याओं से सुजातकुमार का विवाह हुआ था ।

श्रमण भगवान महावीर का नगर में आगमन हुआ । सुजातकुमार ने भगवान की वाणी सुनकर श्रावक के व्रत ग्रहण किये । सुजातकुमार के पुनर्जन्म के विषय में गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से प्रश्न किया । उत्तर में भगवान ने फरमाया कि–सुजातकुमार पूर्वजन्म मे इक्षुसार नगर में ऋषभदत्त नाम का संपन्न गृहपति था । इसने पुष्पदंत नाम के तपस्वी अनगार को श्रद्धापूर्वक आहार दान दिया । इसीसे सुजात-कुमार को इस जन्म मे दिव्य ऋद्धि तथा सौम्य आकृति प्राप्त हुई है । भगवान महावीर ने वहाँ से जनपद में विहार कर दिया ।

पुन भगवान महावीर का वीरपुर में आगमन हुआ । नगर की जनता के साथ सुजातकुमार भी भगवान के दर्शन के लिए गया । भगवान के उपदेश सुनकर सुजातकुमार ने अपने माता पिता से पूछ-प्रव्रज्या ग्रहण कर ली । अनेक वर्ष तक चारित्र का पालन कर अन्त में

मासिक संलेखना करके उन्होंने देह का त्याग किया वे मरकर देवलोक में गये। भविष्य में वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

सुवासव कुमार

विजयपुर नाम का नगर था। वहाँ नन्दनवन नाम का उद्यान था। वहाँ अशोक नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ के राजा का नाम वासवदत्त था। उसकी कृष्णदेवी नाम की रानी थी और सुवासव नाम का राजकुमार था। उसका भद्रा आदि प्रमुख पांचसौ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ।

एक बार भगवान का नगर में आगमन हुआ। उपदेश श्रवणकर सुवासव-कुमार ने भगवान से श्रावक व्रत ग्रहण किया। गौतम स्वामी ने सुवासव-कुमार का पूर्वभव पूछा। उत्तर में भगवान ने फरमाया—गौतम! कोशाम्बी नाम की एक विशाल नगरी थी। वहाँ धनपाल नाम का धार्मिक राजा रहता था। एक दिन उसने वैश्रमण नाम के तपस्वी को श्रद्धा पूर्वक आहार दान किया। उसके प्रभाव से उसने मनुष्य आयु का बन्धकर के एवं उस भव की आयु पूर्ण कर यहाँ आकर सुवासव के रूप में जन्म ग्रहण किया। भगवान महावीर ने उसके बाद अन्यत्र विहार कर दिया।

भगवान महावीर का पुनः नगर में आगमन हुआ। सुवासव-कुमार ने भगवान की वाणी श्रवण कर दीक्षा ग्रहण की। स्थविरों के पास रहकर सूत्रों का अध्ययन किया। अन्त में मासिक संलेखना करके उन्होंने देह का त्याग किया। वे मरकर देवलोक में गये। भविष्य में वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जिनदास कुमार

सौगन्धिका नाम की नगरी थी। वहाँ नीलाशोक नाम का उद्यान था। उसमें सुकाल नामक यक्ष का यक्षायतन था। नगरी में महाराज अप्रतिहत राज्य किया करते थे। उनकी रानी का नाम सुकृष्णा देवी था और पुत्र का नाम महाचन्द्र कुमार था। उसकी अर्हदत्ता भार्या थी। इनका जिनदास नाम का एक पुत्र था।

उस समय भगवान महावीर का नगरी में पदार्पण हुआ। भगवान की वाणी सुनकर जिनदास कुमार ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये जिनदास के पूर्वजन्म वृत्तान्त बताते हुए भगवान महावीर ने कहा—मेघरथ नाम का राजा था। इसकी राजधानी का नाम माध्यमिका था। एक दिन उसने सुधर्मा नाम के एक तपस्वी अनगार को अत्यन्त उत्कृष्ट भाव से आहार दिया। इसी आहार दान से इसने मनुष्य की आयु बान्धी। मरकर यह इसी सौगन्धिका नगरी में जिनदास के रूप में उत्पन्न हुआ।

किसी समय नीलाशोक उद्यान में भगवान का पुनः आगमन हुआ। जनता के साथ जिनदास कुमार भी धर्म श्रमण के लिए भगवान के पास पहुँचा। धर्म श्रमण कर इसे संसार से उपरति हो गई और उसने प्रवज्या ग्रहण कर ली। प्रवज्या के बाद इसने कठोर तप किया और अन्त में मासिक सलेखना करके उन्होंने देह का त्याग किया। वे मरकर देवलोक में गये। भविष्य में वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

धनपति कुमार

कनकपुर नाम का नगर था। वहाँ श्वेताशोक नाम का उद्यान था और उसमें वीरभद्र नाम के यक्ष का मन्दिर था। वहाँ प्रियचन्द्र नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम सुभद्रा था। उसका वैश्रमण नाम का युवराज पुत्र था। उसने श्रीदेवी आदि प्रमुख पाँच सौ राजकन्याओं के साथ विवाह किया था। युवराज वैश्रमण कुमार के पुत्र धनपति कुमार ने भगवान महावीर के नगर आगमन के बाद श्रावक के व्रत ग्रहण किये।

धनपति कुमार के पूर्वजन्म का वृत्तान्त गौतम स्वामी के पूछने के बाद महावीर भगवान ने बताया कि धनपति कुमार पूर्वजन्म में मणिचयनिका नगरी का राजा मित्र था। उसने संभूतिविजय नाम के मुनिराज को आहार से प्रतिलाभित किया था इसीसे उसे यह दिव्य ऋद्धि और कान्ति मिली है।

धनपति कुमार ने भगवान महवीर के पुनः नगरागमन पर प्रवज्या ग्रहण की। इसने स्थविरों के पास रह कर सूत्रों का अध्ययन किया। अन्त में कठोर तप कर मासिक संलेखना करके उन्होंने देह का त्याग किया। वे मरकर देवलोक में गये। भविष्य में वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

महाबलकुमार

महापुर नाम का नगर था। वहाँ रक्ताशोक नाम का उद्यान था। उसमें रक्तपाद यक्ष का विशाल मन्दिर था। नगर में महाराजा बल का राज्य था। उसकी रानी का नाम सुभद्रा देवी था। इनके महाबल नाम का कुमार था। उसका ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ। उनमें रत्नवती रानी प्रधान थी।

उस समय भगवान महावीर नगर के रक्ताशोक उद्यान में पधारे। नगर की जनता, वहाँ के राजा और राजकुमार महाबल भी भगवान के दर्शनार्थ गये। उपदेश सुनकर राजकुमार ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये।

राजकुमार के दिव्य रूप से आकर्षित हो गौतम स्वामी ने भगवान से उसके पूर्वजन्म के विषय में प्रश्न किया। उत्तर में भगवान ने फरमाया कि-गौतम! यह राजकुमार पूर्वभव में मणिपुर नगर का गृहपति था। उसका नाम नागदत्त था। इसने इन्द्रदत्त नाम के अनगार को अत्यन्त निर्मल भाव से आहार का दान दिया था जिससे उसे यह मानव भव व उच्चकोटि की ऋद्धि और सौन्दर्य प्राप्त हुआ है।

इसके बाद महावीर ने ग्रामान्तर में विहार कर दिया पुनः कालान्तर में जब महावीर भगवान महापुर नगर पधारे तो वह भी भगवान के दर्शन के लिये गया और वाणी सुनकर दीक्षित होगया। दीक्षा के बाद लम्बे समय तक उसने चारित्र का पालन किया। अन्त में मासिक संलेखना करके उन्होंने देह त्याग किया। वे मरकर देवलोक में गये। भविष्य में वे महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

कुमार भद्रनन्दी

सुघोष नाम का नगर था। वहाँ देवरमण नाम का उद्यान था। उसमें वीरसेन नामक यक्ष का स्थान था। नगर में अर्जुन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी तत्त्ववती रानी और भद्रनंदी नामक युवराज कुमार था। उसका श्रीदेवी आदि प्रमुख ५०० श्रेष्ठी राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ।

एक वार भगवान महावीर का नगर के देवरमण उद्यान में आगमन हुआ। उसने भगवान का उपदेश सुनकर श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। भद्रनन्दीकुमार के घर जाने के वाद गौतमस्वामी ने कुमार की दिव्यऋद्धि, सौम्य आकृति और विनीत प्रकृति से प्रभावित होकर उसके पूर्वजन्म विषयक प्रश्न भगवान से पूछा। भगवान ने उत्तर में कहा—गौतम! पूर्वभव में यह महाघोष नगर का प्रतिष्ठित गृहपति था। इसका नाम धर्मघोष था। इसने धर्मसिंह नाम के अनगार को श्रद्धा पूर्वक आहार दान दिया था जिससे उसे यह दिव्य ऋद्धि और सौम्य आकृति प्राप्त हुई है। भगवान ने वहाँ से अन्यत्र जनपद में विहार कर दिया।

पुनः भगवान महावीर का आगमन हुआ। भद्रनन्दी कुमार भगवान की सेवा में पहुँचा और प्रवचन सुनकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या के वाद अगसूत्रों का अध्ययन किया। कठोर तप भी किया। अन्त में सम्पूर्ण कर्म का क्षय कर मोक्षगामी बना।

महाचन्द्र कुमार

चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नामक उद्यान था। उसमें पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ के राजा का नाम दत्त था और रानी का नाम रक्तवती था। उनके महाचन्द्र नाम का युवराज पुत्र था। उसका श्रीकान्ता आदि प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ था।

एक दिन पूर्णभद्र उद्यान में भगवान महावीर स्वामी पधारे। महाचन्द्रकुमार ने उनसे श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। गौतम स्वामी ने महाचन्द्र कुमार का पूर्वभव पूछा। उत्तर में भगवान ने फरमाया कि–चिकित्सिका नाम की नगरी थी। महाराज जितशत्रु वहाँ का राजा था। उसने धर्मवीर्य अनगार को प्रतिलाभित किया। जिससे उसे मानव भव, सुख, समृद्धि, रूप तथा लावण्य आदि प्राप्त हुए।

उसने भगवान के आगमन पर उनसे दीक्षा ग्रहण की। अंगसूत्रों का अध्ययन किया। तप किया और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष में गया।

वरदत्त कुमार

साकेत नाम का नगर था। वहाँ उत्तरकुरु नाम का उद्यान था। उसमें पाशामृग नाम के यक्ष का यक्षायतन था। साकेत नगर में मित्रनन्दी नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम श्रीकान्ता और पुत्र का नाम वरदत्त था। वरदत्तकुमार का वरसेना आदि प्रमुख ५०० राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ था।

किसी समय उत्तरकुरु उद्यान में भगवान महावीर का आगमन हुआ। वरदत्त ने भगवान की वाणी सुनकर उनसे श्रावक धर्म ग्रहण किया। गौतमस्वामी के पूछने पर भगवान महावीर वरदत्तकुमार के पूर्व भव का वर्णन करते हुए कहने लगे कि हे गौतम! शतद्वार नाम का नगर था। उसमें विमलवाहन नाम का राजा राज्य करता था। उसने धर्मरुचि अनगार को आहार दान दिया था जिससे मनुष्य की आयु उसने बांधी। वहाँ की भव स्थिति को पूर्णकर वह इसी साकेत नगर के महाराजा मित्रनन्दी की रानी श्रीकान्ता के उदर से वरदत्त के रूप में उत्पन्न हुआ।

एक बार पौषधशाला में धर्मध्यान करते हुए उसने भगवान के पुनः नगर में आगमन के बाद प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। भग-

वान का आगमन हुआ और उसने उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण की। स्थविरों के पास रहकर अंगसूत्रों का अध्ययन किया। अन्त में मासिक संलेखना पूर्वक देवलोक प्राप्त किया। वरदत्तकुमार का जीव देव और मानव भव प्राप्त करता हुआ सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न होगा। वहाँ से चवकर वह महाविदेह क्षेत्र में दृढप्रतिज्ञ कुमार की तरह सिद्धि प्राप्त करेगा।

स्कन्धक अनगार

भगवान महावीर के समय में कृतंगला नामकी नगरी थी। इस नगरी के बाहर ईशान कोण में छत्रपलाशक नाम का उद्यान था। एक समय केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर का वहाँ आगमन हुआ। जनता धर्मोपदेश सुनने के लिये गई।

उस कृतङ्गला नगरी के पास ही में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। उस श्रावस्ती नगरी में कात्यायन गोत्री गर्दभाली परिव्राजक का शिष्य स्कंधक नाम का परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद, इन चारों का तथा इतिहास पुराण और निघन्टु नामक कोष का ज्ञाता था। षष्ठितंत्र में वह विशारद था। गणित शास्त्र, शिक्षा शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, व्याकरण, छन्द, व्युत्पत्ति, आचार इन सब शास्त्रों में तथा दूसरे बहुत से ब्राह्मण और परिव्राजक सम्बन्धी नीति शास्त्रों में वह बड़ा निपुण था।

श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक पिंगल नाम का निर्ग्रन्थ था। एक समय वह कात्यायन गोत्री स्कंधक परिव्राजक के पास पहुँचा और उनसे पूछने लगा–हे मागध! क्या लोक सान्त है? (अन्त वाला) है? या अनन्त, (अन्त रहित) है? क्या जीव सांत है? या अनन्त है? किस मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है और किस मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है?

पिंगल निर्ग्रन्थ के प्रश्नों को सुनते ही स्कन्धक स्तंभित रह गया। उसके सामने ये प्रश्न नये ही थे। इस विषय में उसने कभी विचार

किया ही नहीं था। अतः पिंगल के प्रश्नों का जवाब देना उसके लिये असंभव हो गया। वह स्वयं सन्देहशील बन गया। इन प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व वह स्वयं इस बात का निर्णय कर लेना चाहता था। अतः उस समय स्कन्धक चुप रह गया। उसने पिंगल के प्रश्नों का कुछ भी जवाब नहीं दिया।

स्कन्धक के मन में उन प्रश्नों का समाधान पाने की उत्कट इच्छा थी। जब उन्होंने सुना कि भगवान महावीर स्वामी कृतङ्गला नगरी के बाहर छत्रसाल उद्यान में विराज रहे हैं, तो उसके मन में बहुत प्रसन्नता हुई। लोगों के मुँह से भगवान के ज्ञान दर्शन की प्रशंसा सुन कर उसके मन में भगवान के प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई। उसे विश्वास हो गया कि मेरे प्रश्नों का सही समाधान भगवान महावीर से ही हो सकता है। उसने अपने भण्डोपकरण लिये और भगवान के निकट पहुँचने के लिये रवाना हुआ।

इधर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति अनगार से इस प्रकार कहा—हे गौतम! आज तू अपने पूर्वभव के के साथी को देखेगा। तब गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन्! मै आज अपने किस पूर्वभव के साथी को देखूँगा? तब भगवान ने कहा—स्कन्धक परिव्राजक को। कत्यायन गोत्री स्कन्धक परिव्राजक गर्दभाली परिव्राजक का शिष्य है और वह श्रावस्ती में रहता है। अपने प्रश्नों का समाधान पाने के लिये वह मेरे पास आ रहा है। यह बात चल ही रही थी कि इतने में स्कन्धक परिव्राजक भगवान के पास आ पहुँचा।

स्कन्धक परिव्राजक को आता देख गौतम स्वामी अपने आसन से उठे और स्कन्धक के सामने गये। स्कन्धक का सम्मान करते हुए गौतमस्वामी बोले—हे स्कन्धक! स्वागत है सुस्वागत है, तुम्हारा आना स्वागतार्ह है। पुनश्च गौतमस्वामी ने कहा—हे स्कन्धक! श्रावस्ती में वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने तुम से पांच प्रश्न किये थे उन्हीं का समाधान प्राप्त करने के लिये ही तुम यहाँ आये

हो न ? क्या यह बात सच है ? स्कन्धक ने कहा—हाँ, गौतम ! यह बात सच है परन्तु हे गौतम ! मुझे यह बतलाओ कि कौन ऐसा ज्ञानी या तपस्वी पुरुष है जिसने मेरे मन की गुप्त बात तुम से कह दी और तुम मेरे मन की गुप्त बात जान गये।

तब गौतमस्वामी ने उत्तर दिया—हे स्कन्धक ! मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीरस्वामी सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं। उन्होंने ही तुम्हारे मन की गुप्त बात मुझ से कही और मैने जान ली।

हे गौतम ! मै ऐसे ज्ञानी भगवान के दर्शन करना चाहता हूँ। बताइये वे कहाँ हैं ? इसके बाद स्कन्धक परिव्राजक गौतमस्वामी के साथ जहाँ श्रमण भगवान थे वहाँ आया और भगवान के दिव्य शरीर वैभव को देख कर चमत्कृत हो गया। उसने तीन वार भगवान को वन्दन किया और विनय पूर्वक भगवान की सेवा में बैठ गया।

भगवान ने कहा—स्कन्धक ! पिंगल श्रावक के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का समाधान पाने के लिये ही तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है न ? स्कन्धक ने कहा—हाँ भगवन् ! इन्हीं का समाधान पाने के लिये ही यहाँ आया हूँ। भगवान ने कहा—सुनो इनका समाधान इस प्रकार है—हे स्कन्धक ! लोक चार प्रकार का है—द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, और भावलोक, द्रव्य से लोक एक है, अन्त सहित है। क्षेत्र से लोक असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन लम्बा चौड़ा है अतः अन्त सहित है। काल से लोक भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्यत् काल में रहेगा। ऐसा कोई काल न था, न है और न रहेगा जिसमें लोक न हो। लोक था, है, और रहेगा। वह ध्रुव है, नियत शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है, अन्त-रहित है। भाव से लोक अनन्त वर्ण पर्यायरूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्यायरूप है, अनन्त गुरु लघु-स्थूल स्कन्ध आठ स्पर्श वाले शरीरादि पर्याय रूप है और अनन्त लघु धर्मास्तिकायादि अरूपी तथा चौस्पर्शी सूक्ष्म स्कन्धादि पर्याय रूप है।

इसी प्रकार जीव अनन्त होते हुए भी प्रत्येक जीव अपने अपने द्रव्य की अपेक्षा सान्त सभी समान रूप से असंख्य प्रदेशवाले एवं असंख्य प्रदेशावगाढ़ है। इस प्रकार जीव अन्त सहित है। कालापेक्षा वह अनादि अनन्त है। सदा सर्वदा रहनेवाला है और भाव की अपेक्षा ज्ञानादि अनन्त पर्याय युक्त है। अतएव अनन्त है।

हे स्कन्धक ! तुम्हें यह विकल्प हुआ कि सिद्धि (सिद्धशिला) अंतवाली है या बिना अंतवाली है। इसका उत्तर यह है---द्रव्य से सिद्धि एक है और अंत सहित है। क्षेत्र से सिद्धि ४५ लाख योजन की लम्बी चौड़ी है। १४२३०२४९ योजन झाझेरी परिधि है, यह भी अन्तसहित है। काल से सिद्धि नित्य है, अंत रहित है। भाव से सिद्धि अनन्त वर्ण पर्यायवाली है, अनन्त गन्ध, रस और स्पर्श पर्यायवाली है। अनन्त गुरु लघु पर्याय रूप है, और अनन्त अगुरु लघु पर्याय रूप है, अन्तरहित है। द्रव्यसिद्धि और क्षेत्र सिद्धि अन्तवाली है तथा कालसिद्धि और भाव सिद्धि अन्त रहित है। इसलिए हे स्कन्धक ! सिद्धि अन्त सहित भी है और अन्तरहित भी है।

हे स्कन्धक ! तुम्हें शंका हुई थी कि सिद्ध अन्तवाला है या बिना अन्तवाला है। द्रव्य सिद्ध एक है और अन्तवाला है, क्षेत्रसिद्ध असंख्य प्रदेश में अवगाढ़ होने पर भी अन्तवाला है। कालसिद्ध आदिवाला तो है पर बिना अन्तवाला है। भावसिद्ध ज्ञान, दर्शन पर्याय रूप है और उसका अन्त नहीं है।

हे स्कन्धक ! तुम्हे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ था कि कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार को बढ़ाता है और कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है। हे स्कन्धक ! उसका उत्तर इस प्रकार है--मरण दो प्रकार का है--१. बालमरण और २. पंडित मरण। इनमें बालमरण बारह प्रकार का कहा गया है—

(१) वलन्मरण–तड़फते हुए मरना ।
(२) वशार्त–मरण–पराधीनतापूर्वक मरना ।
(३) अन्तशल्य–मरण–शरीर में शस्त्रादि जाने से अथवा सन्मार्ग से पथभ्रष्ट होकर मरना ।
(४) तद्भवमरण–जिस गति में मरे फिर उसी में आयुष्य बांधना ।
(५) गिरिपतन–पहाड़ से गिरकर मरना ।
(६) तरुपतन–वृक्ष आदि से गिरकर मरना ।
(७) जलप्रवेश–पानी में डूबकर मरना ।
(८) ज्वलनप्रवेश–मरण–अग्नि में गिर कर मरना ।
(९) विषभक्षण–मरण–जहर आदि प्राण घातक पदार्थ खाकर मरना ।
(१०) शस्त्रावपाटनमरण–छुरी, तलवार आदि शस्त्र द्वारा होने वाला मरण ।
(११) वैहाणस–मरण–फाँसी लगाकर मरना ।
(१२) गृद्धपृष्ठ–मरण–गिद्ध आदि पक्षियों द्वारा खाया जाने पर होने वाला मरण ।

हे स्कन्धक ! इन बारह प्रकार के बालमरण से मरने वाले जीव का संसार बढ़ता है और वह बहुत काल तक नरक तिर्यंचादि योनियों में परिभ्रमण करता है ।

हे स्कंधक ! पंडितमरण दो प्रकार का है–प्रथम प्रायोपगमन और दूसरा भक्तप्रत्याख्यान । प्रायोपगमन के दो भेद हैं–निर्हारिम–जो संथारा ग्राम नगर आदि बस्ती में किया जाय, जिससे मृत कलेवर को ग्रामादि से बाहर ले जाकर अग्निदाहादि संस्कार करना पड़े और उसका उलटा अनिर्हारिम पादोपगमन है । इन दोनों प्रकार का पादोपगमन प्रतिकर्म रहित है । इन दो मरण से मरणवाला जीव का संसार परिभ्रमण अल्प हो जाता है । इसी प्रकार भक्तप्रत्याख्यान मरण भी दो प्रकार का है–एक निर्हारिम और दूसरा अनिर्हारिम । इन दोनों प्रकारों का भक्तप्रत्याख्यान मरण प्रतिकर्मवाला है । इन मरणों से मरण वाले जीवों का भी ससार भ्रमण अल्प हो जाता है ।

भगवान के वचन सुनकर स्कन्धक परिव्राजक को बोध होगया। उसने भगवान से विशिष्ट धर्मोपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। भगवान ने विशाल परिषद् के समक्ष स्कन्धक को धर्मोपदेश सुनाया। भगवान का धर्मोपदेश सुनकर स्कन्धक ने परिव्राजक वेश का परित्याग कर दिया और महावीर से पंच महाव्रतरूप धर्म को स्वीकार कर अनगार बन गया।

अनगार बनने के बाद स्कन्धक मुनि भगवान के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने लगे। इन्होंने स्थविरों के पास रहकर ग्यारह अंग-सूत्रों का अध्ययन किया। बारह वर्ष तक मुनिधर्म का पालन कर स्कन्धक ने बारह भिक्षु प्रतिमा और गुणरत्न संवत्सर आदि विविध तप किये। अन्त में विपुलाचल पर्वत पर जाकर समाधि पूर्वक एक मास का अनशन करके देह छोड़ अच्युतकल्प में देवत्व प्राप्त किया। स्कन्धक देव की आयु बाईस सागरोपम की हुई।

स्कन्धक मुनि के देवत्व प्राप्त करने के बाद गौतमस्वामी ने भगवान से पूछा—भगवन्! स्कन्धक देव अपनी देव आयु पूर्ण करने के बाद कहाँ उत्पन्न होगा?

भगवान ने कहा—गौतम! स्कन्धक देव, देवायु को पूर्णकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और वहाँ सिद्धत्व प्राप्त करेगा। जन्म जरा और मरण के बन्धनों से सदा के लिये छूट जायगा।

ऋषभदत्त और देवानन्दा

ऋषभदत्त ब्राह्मणकुण्ड के प्रतिष्ठित कोडाल गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनकी धर्मपत्नी देवानन्दा जालंधर गोत्रीया ब्राह्मणी थीं। ऋषभदत्त और देवानन्दा ब्राह्मण होते हुए भी जीव, अजीव, पुण्य, पाप आदि तत्त्वों के ज्ञाता श्रमणोपासक थे। बहुसाल उद्यान में भगवान महावीर का आगमन सुनकर ऋषभदत्त बहुत खुश हुए। यह खुशखबरी देवानन्दा को सुनाते हुए वे बोले—देवानुप्रिये! सर्वज्ञ भगवान महावीर स्वामी आज अपने नगर के बहुसाल उद्यान में पधारे हैं। ऐसे ज्ञानी और तपस्वी अर्हन्तों का नाम श्रवण भी फलदायक होता है तो सामने

जाकर विनय, वन्दन नमस्कार सेवा और धार्मिक चर्चा करने का तो कहना ही क्या ? प्रिये ! चलें हम भी भगवान महावीर का वन्दन नमस्कार और सेवा भक्ति करें। यही कार्य हमारे ऐहिक तथा पारलौकिक हित और कल्याण के लिये होगा।

स्वामी के मुख से उक्त प्रस्ताव सुनकर देवानन्दा को बड़ा संतोष हुआ और उसने सहर्ष पति के वचनों का समर्थन किया।

ऋषभदत्त ने सेवकजनों को रथ तैयार करने को कहा। वे स्वामी की आज्ञा पाते ही धार्मिक रथ को तैयार करके तुरन्त उपस्थान शाला में ले आए।

ऋषभदत्त और देवानन्दा ने स्नान किया। अच्छे अच्छे वस्त्र पहने और दास दासियों के परिकर के साथ रथ में बैठे। रथ बहुसाल उद्यान में पहुँचा। भगवान की धर्मसभा दृष्टिगोचर होते ही रथ ठहरा लिया गया और दोनों पतिपत्नी आगे पैदल चले। विधि पूर्वक सभा में जाकर वन्दन नमस्कार करके बैठ गये।

देवानन्दा निर्निमेष नेत्रों से भगवान महावीर को देख रही थी। उसके नेत्र विकसित हो रहे थे, स्तनों से दूध का स्राव हो रहा था। रोमाञ्च से उसका सारा शरीर पुलकित हो उठा था। देवानन्दा के इन शारीरिक भावों को देख कर गौतम ने भगवान से प्रश्न किया— भगवन् ! आपके दर्शन से देवानन्दा का शरीर पुलकित क्यों हो गया ? इनके नेत्रों में इस प्रकार की प्रफुल्लता कैसे आ गई और इनके स्तनों से दूध-स्राव क्यों होने लगा ?

भगवान ने उत्तर दिया—गौतम ! देवानन्दा मेरी माता है और मैं इनका पुत्र हूँ। देवानन्दा के शरीर में जो भाव प्रकट हुआ है उनका कारण पुत्रस्नेह ही है।

इसके बाद भगवान ने उस महती सभा के सामने धर्मोपदेश किया। सभा के विसर्जित होने के बाद ऋषभदत्त उठा और बोला—भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है। मै आपके धर्म में प्रव्रजित होना

चाहता हूँ। भगवान ने कहा-जैसा सुख। उसके बाद ऋषभदत्त ने समस्त वस्त्रालंकार उतार कर भगवान के पास दीक्षा ले ली। भगवान ने उसे श्रमणसंघ में प्रविष्ट कर लिया। स्थविरों के पास रह कर ऋषभदत्त मुनि ने ग्यारह अङ्गसूत्रों का अध्ययन किया और अन्त में मासिक संलेखना कर निर्वाण प्राप्त किया।

देवानन्दा ने भी आर्या चन्दना के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और कठोर तप से कर्मों का क्षय कर निर्वाण प्राप्त किया।

महाबल और सुदर्शन

हस्तिनापुर के बल राजा के पुत्र महाबल थे। इसकी माता का नाम प्रभावती था। इसका आठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ था। इसने विमल अर्हत् की परम्परा के आचार्य धर्मघोष के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और चौदह पूर्व का अध्ययन किया। बारह वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्त में एक मास का संथारा कर देह का त्याग किया और मर कर ब्रह्मदेवलोक में महर्द्धिक देव बना। वहाँ से दस सागरोपम की आयु पूरी कर वाणिज्यग्राम में सुदर्शन श्रेष्ठी बना।

एक बार भगवान महावीर वाणिज्यग्राम में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर जन समुदाय भगवान का दर्शन करने चला। सुदर्शन श्रेष्ठी भी सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित हो पांव पांव द्विपलास उद्यान की ओर चला। भगवान के पास पहुँच कर वन्दना की और परिषद् के चली जाने पर उसने विनय पूर्वक पूछा—

भगवन्! काल कितने प्रकार है?

भगवान ने उत्तर दिया-सुदर्शन! काल के चार प्रकार हैं। प्रमाणकाल, यथायुर्निवृत्तिकाल, मरणकाल और अद्धाकाल। भगवान ने चारों कालों की विषद व्याख्या करते हुए उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया। (जो ऊपर आ गया है।)

भगवान के मुख से पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने भगवान के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। बारह वर्ष तक संयम का पालन कर अन्त में सिद्धि प्राप्त की।

शिवराजर्षि

हस्तिनापुर नगर में शिव नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था और पुत्र का नाम शिवभद्र।

एक दिन राजा के मन में रात्रि के पिछले प्रहर में विचार हुआ कि हमारे पास जो इतना सारा धन है वह हमारे पूर्वजन्म के पुण्य का ही फल है। अतः पुनः पुण्य संचय करना चाहिये। इस विचार से उसने दूसरे दिन अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया और अपने सगे सम्बन्धियों से पूछकर गङ्गा के किनारे दिशाप्रोक्षक तापस हो गया और छठ-छठ की तपस्या करने लगा। तापसी विधि के अनुसार दिग्चक्रवाल तप करने से शिवराजर्षि के आवरण-भूत कर्म नष्ट हो गये और विभंगज्ञान उत्पन्न हो गया। उससे शिवराजर्षि को इस लोक में ७ द्वीप और सात समुद्र दिखलायी पड़े। अपने ज्ञान को पूर्ण ज्ञान समझकर वह यह प्ररूपणा करने लगा कि 'ससार में सात द्वीप और सात समुद्र हैं इसके आगे कुछ नहीं है'।

यह बात हस्तिनापुर में फैल गई।

उसी समय भगवान महावीर का वहाँ आगमन हुआ। उनके शिष्य गौतम स्वामी ने भिक्षाचर्या के समय शिवराजर्षि की यह बात सुनी। आहार से लौटने पर उन्होंने भगवान महावीर से पूछा—भगवन्! शिवराजर्षि कहता है कि सातद्वीप और सात समुद्र ही है। यह बात कैसे सम्भव है?

उत्तर में भगवान ने कहा—गौतम? यह बात असत्य है। इस तिर्यग्लोक में स्वयभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्य द्वीप और समुद्र हैं।

यह बात शिवराजर्षि तक पहुँची । शिवराजर्षि को अपने ज्ञान में शंका उत्पन्न हो गयी। विचार करते-करते उसका विभंगज्ञान नष्ट हो गया। उसको भगवान की बात सत्य लगी । वह भगवान के पास आया और धर्मोपदेश सुनकर उसने तापसोचित भण्डोपकरणों को त्याग कर भगवान के पास दीक्षा अंगीकार करली । 'द्वीप और समुद्र असंख्यात हैं' भगवान की इस प्ररूपणा पर उसे दृढ़ विश्वास हो गया। इसका निरन्तर ध्यान, मनन और चिन्तन करने से तथा उत्कृष्ट तप का आराधन करने से शिवराजर्षि को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया और अन्त में उसने मोक्ष पद प्राप्त किया ।

गांगेय अनगार

एक बार भगवान वाणिज्यग्राम के दूतिपलास उद्यान में ठहरे हुए थे । उस समय पार्श्वपरम्परा के साधु गांगेय भगवान के पास आये और थोड़ी दूर खड़े रह कर पूछने लगे-

हे भगवन् ! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?"

भगवान- गांगेय ! नारक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी ।

इस प्रकार गांगेय अनगार ने नरक से लगाकर चारों गति के जीवों के विषय में पूछा और भगवान ने उसका समाधान किया ।

भगवान से अन्य भी कई प्रकार के प्रश्न गांगेय अनगार ने किये और भगवान ने उनका उत्तर दिया ।

भगवान के प्रत्युत्तरों से गागेय अनगार को विश्वास हो गया कि भगवान सचमुच सर्वज्ञ हैं और सर्वदर्शी है ।

इसके बाद गांगेय ने महावीर को त्रिप्रदक्षिणा पूर्वक वन्दन नमस्कार किया और पार्श्वनाथ की चातुर्यामिक धर्मपरम्परा से निकल कर वे महावीर की पांच महाव्रतिक परम्परा में प्रविष्ट हुए ।

अनगार गांगेय ने दीर्घकाल पर्यन्त श्रमण धर्म का आराधन कर अन्त में निर्वाण प्राप्त किया ।

पोग्गल अनगार

काशी देश में आलभिया नाम की नगरी थी। उस नगरी के बाहर शखवन नामक उद्यान था। भगवान महावीर एक वार शंखवन उद्यान में पधारे।

शंखवन के पास पोग्गल नामक एक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेदादि वैदिक धर्मशास्त्रों का ज्ञाता और प्रसिद्ध तपस्वी था। निरन्तर षष्ठतप के साथ सूर्य के सन्मुख ऊर्ध्वबाहु खड़ा होकर आतापना किया करता था। इस कठिन तप, तीव्र आतापना और स्वभाव की भद्रता के कारण पोग्गल को विभंगज्ञान प्राप्त हुआ, जिससे वह ब्रह्मदेवलोक तक के देवों की गति स्थिति को प्रत्यक्ष देखने लगा।

इस प्रत्यक्षज्ञान की प्राप्ति से वह आलभिया के चौक बाजारों में अपने ज्ञान का प्रचार करने लगा। वह कहता कि देवों की कम से कम स्थिति दस हजार वर्ष की और अधिक से अधिक स्थिति दस सागरोपम की है। बाजारों में पोग्गल परिव्राजक के ज्ञान की चर्चा होने लगी। कुछ लोग उनके ज्ञान की प्रशंसा करते थे और कुछ लोग उसमें शंका उठाते थे। उस समय गौतम स्वामी ने भिक्षाचर्या के समय पोग्गल परिव्राजक के ज्ञान की चर्चा सुनी। वे भगवान के पास आये और पोग्गल परिव्राजक के ज्ञान की चर्चा की। उत्तर में भगवार ने बताया—"पोग्गल परिव्राजक का सिद्धान्त मिथ्या है। कारण देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की है। उसके उपरान्त देव और देवलोक का अभाव है।"

भगवान महावीर का यह कथन पोग्गल के कानों तक पहुँचा। वह अपने ज्ञान के विषय में शंकित हो उठा। महावीर सर्वज्ञ है, तीर्थङ्कर है, महातपस्वी है, यह तो पोग्गल पहले ही सुन चुका था। अब उसे अपने ज्ञान पर विश्वास नहीं रहा, वह ज्यों-ज्यों ऊहापोह करता था त्यों-त्यों उसका विभंगज्ञान लुप्त होता जाता था।

थोड़े ही समय में उसे ज्ञान हो गया कि उसका ज्ञान भ्रान्तिपूर्ण था। अब उसने भगवान महावीर की शरण में जाने के लिये शंख-वन की ओर प्रस्थान कर दिया। समवशरण में पहुँच कर विधिपूर्वक वन्दन नमस्कार कर वह उचित स्थान में बैठ गया।

भगवान का उपदेश सुनकर पोग्गल भगवान के पास दीक्षित हो गया। स्थविरों के पास उन्होंने एकादशांग का अध्ययन किया तथा विविध तपों द्वारा कर्ममुक्त हो निर्वाण प्राप्त किया।

कार्तिक सेठ

हस्तिनापुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। वहाँ एक हजार आठ वणिकों का नायक कार्तिक नाम का श्रेष्ठी रहता था। वह श्रमणोपासक था।

एक समय मासोपवासी एक तापस वहाँ आया। कार्तिक सेठ को छोड़ सभी नगर निवासी तापस के भक्त हो गये थे। तापस को यह पता लग गया कि कार्तिक मेरी भक्ति नहीं करता। उसने कार्तिक को झुकाने का निश्चय किया।

एक बार राजाने तापस को भोजन का निमंत्रण दिया। तापस ने, कहा—"अगर कार्तिक सेठ अपने हाथों से मुझे भोजन परोसेगा तो मैं तेरे यहाँ भोजन करूँगा।" राजा ने यह बात मानली। तापस भोजन के लिये आया। राजा ने कार्तिक सेठ को बुलाकर तापस को भोजन परोसने की आज्ञा दी। राजाज्ञा को ध्यान में रख कार्तिक सेठ तापस को भोजन परोसने लगा। भोजन खाते खाते तापस "मैंने तेरी नाक को काट लिया है" इस बात को सूचित करने के लिये बार बार उंगली से नाक को रगड़ता जाता था। तापस की इस कुचेष्टा को देख कार्तिक सेठ मन में सोचने लगा—'अगर मैं पहले ही दीक्षा ले लेता तो ऐसी विडम्बना' नहीं सहन करनी पड़ती। ऐसा विचार कर वह अपने घर

आया और एक हजार आठ वणिकों के साथ भगवान मुनिसुव्रत के पास दीक्षित हो गया।*

प्रव्रज्या ग्रहण कर उसने बारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। बारह वर्ष तक संयम का पालन कर वह अनशन पूर्वक काल धर्म को प्राप्त हुआ। मरकर सौधर्म कल्प का शक्र नामक इन्द्र बना। तापस मरकर उसी इन्द्र का ऐरावत हाथी बना। ऐरावत हाथी ने अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव देखा। उसमें कार्तिक सेठ को इन्द्र बना जान वह इधर उधर भागने लगा। तब इन्द्र ने उसे पकड़ लिया। हाथी ने इन्द्र को डराने के लिये दो रूप बनाये तब इन्द्र भी अपने दो रूप बनाकर हाथी पर चढ़ बैठा। हाथी ने चार रूप बनाये तो इन्द्र ने भी चार रूप बनाये। अन्त में इन्द्र की शक्ति के सामने उसे झुकना पड़ा। उसे मजबूर होकर इन्द्र का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

मुनि उदायन

उदायण–सिन्धुसौवीर देश का राजा था इसका निवास स्थान वीतिभय नगर में था। इसने वैशाली के राजा चेटक की पुत्री प्रभावती के साथ विवाह किया था। उसके (अभीची) अभीतिकुमार नामक

*[ऐसी भी एक परम्परा है कि तापस ने राजा से कहा–अगर कार्तिक सेठ अपनी पीठ पर थाली रखकर मुझे भोजन करने देगा तो मै तुम्हारे यहाँ पारणा करूँगा। राजा ने तापस की बात स्वीकार करली। राजा ने सेठ को बुलाया और उसे तापस की आज्ञानुसार वर्तने का आदेश दिया। तापस आया। कार्तिक सेठ राजाज्ञा के अनुसार नीचे झुका। तापस ने उसकी पीठ पर उष्ण खीर की थाली रखकर खीर खाई। तापस के इस अपमान जनक व्यवहार से कार्तिक सेठ बड़ा दुःखी हुआ। उसने उसी समय दीक्षा लेने का निश्चय किया और घर आकर १००८ वणिकों के साथ भगवान मुनिसुव्रत के समीप प्रव्रजित होगया।]

पुत्र और केशीकुमार नामक भाणेज था। उदायण राजा सिन्धुसौवीर आदि सोलह प्रान्तों (देशों), एवं वीतिभय आदि ३६३ नगरों का अधिपति था। महासेन (अपर नाम चण्ड प्रद्योतन) जैसे दस मुकुट बद्ध राजा तथा अनेक छोटे छोटे नृपतिगण उसकी आज्ञा में रहते थे। इसका राज्य बहुत समृद्धशाली था। यह भगवान महावीर का परम उपासक और अन्तिम मुकुटबद्ध प्रव्रजित राजा था।

एक बार उज्जैणी के राजा चण्ड प्रद्योतन उदायण राजा की सुवर्णगुटिका नामक दासी का अपहरण करके ले गया। जब उदायण को इस बात का पता लगा तो उसने दस राजाओं की सहायता से उज्जैणी पर चढ़ाई करदी और चण्डप्रद्योतन को युद्ध में हरा कर उसे कैद कर लिया। उदायण ने चण्ड प्रद्योतन के कपाल पर दासीपति शब्द अंकित किया।

चण्डप्रद्योतन को लेकर उदायन सिन्धुसौवीर की ओर चला। मार्ग में पर्युषण पर्व आया। एक स्थानपर (दशपुर नगर वर्तमान मन्दसौर) छावनी डालकर उदायण पर्युषण पर्व की आराधना करने लगा। संवत्सरी के दिन उदायण ने पौषध युक्त उपवास किया। यह देख चण्डप्रद्योतन ने भी उपवास किया। दूसरे दिन उदायण ने चण्डप्रद्योतन से सांवत्सरिक क्षमा याचना की परन्तु चण्डप्रद्योतन ने क्षमा देने से इनकार कर दिया। तब उदायण ने उसे कैद से मुक्त कर दिया और उसका राज्य उसे वापस लौटा दिया तथा सुवर्णगुटिका दासी को भी उसके कहने से दे दिया। दासीपति शब्द के स्थान पर सुवर्णपट्ट बांध दिया और अपना मित्र राजा घोषित किया।

उदायण अपने नगर वीतिभय लौट आया।

एक समय उदायण पर्वदिन का पौषध ग्रहण कर अपनी पौषधशाला में धर्म जागरण कर रहा था। आत्म चिन्तन करते हुए उसने सोचा—"धन्य हैं वे ग्राम, नगर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विचरते हैं। भाग्यशाली हैं वे राजा और सेठ साहूकार जो इनकी वन्दना तथा

पर्युपासना करते हैं। यदि भगवान मेरे पर अनुग्रह कर वीतिभय के मृगवन उद्यान में पधारें तो मै भी उनकी वन्दना–पर्युपासना और सेवा करके भाग्यशाली बनूँ।

उस समय भगवान चंपा नगरी के पूर्णभद्र उद्यान में विराजमान थे। उन्होंने उदायण के मनोगत भावों को जान लिया और वीतिभय की ओर विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान वीतिभय के मृगवन उद्यान में पधारे।

भगवान महावीर का आगमन सुन उदायन भगवान के दर्शन के लिये गया। भगवान का उपदेश सुन इसने भगवान के पास प्रव्रज्या लेने की इच्छा प्रगट की। भगवान के दर्शन से वापस लौटते समय इसे मार्ग में विचार आया– "मै अपने प्रियपुत्र को राज्यारूढ़ कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ परन्तु वह राज्यारूढ़ हो जाने पर मनुष्य सम्बन्धी अनेक कामभोगों में लुब्ध होगा परिणाम स्वरूप अनेक भवों तक ससार सागर मे भटकता रहेगा।" यह विचार कर उसने पुत्र को राज्यारूढ़ न कर अपने भानेज केशि को राज्यगद्दी पर बैठाकर आप स्वयं प्रव्रजित होगया।

यह अभीतिकुमार को अच्छा नहीं लगा। उसने वीतिभय को छोड़ दिया और चम्पा के राजा कोणिक के पास आ रहने लगा। वहाँ उसे सभी सुख वैभव प्राप्त हुए। यह कुछ समय के बाद श्रमणोपासक होगया किन्तु पिता के प्रति वैर भावना होने से वह मरकर असुरकुमार देव बना।

एक समय उदायणमुनि भगवान की आज्ञा लेकर वीतिभय नगर आये। केशी को लगा– "उदायणमुनि मुझ से पुन. राज्य प्राप्त करने की आशा से आये हैं। यह सोच उसने सारे नगर निवासियों को उदायणमुनि को आश्रय न देने की आज्ञा दी। उदायण मुनि के पूर्व भक्त एक कुम्भकार ने अपनी शाला में उन्हें आश्रय दिया। केशि ने

एक वैद्य की सहायता से उदायण मुनि को आहार में जहर दे दिया। जब उदायण मुनि को आहार में जहर खा जाने का पता लगा तो उन्होंने यावज्जीवन का संथारा ले लिया। समाधि पूर्वक रहने कारण उन्हे केवलज्ञान होगया और वे मोक्ष में गये। भगवान महावीर के शासन के ये अन्तिम मुकुटबद्ध राजा प्रव्रजित हुए थे। इनके बाद कोई मुकुटबद्ध राजा दीक्षित नहीं हुआ।

उदायणमुनि के देहोत्सर्ग के बाद देवों ने वीतिभय को एक कुम्भकार के घर को छोड़ कर सारे नगर को धूल धूसरित कर दिया। वह स्थान बाद में कुम्भकाराकड नगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गंगदत्त अनगार

हस्तिनापुर नामक एक प्रसिद्ध नगर था उसके बाहर ईशान कोण में सहस्रबन नाम का उद्यान था। वहाँ गंगदत्त नाम का गाथापति रहता था। वह ऋद्धि सम्पन्न था। एक बार हस्तिनापुर के सहस्र वन में तीर्थङ्कर भगवान मुनिसुव्रत स्वामी पधारे। भगवान के आगमन की सूचना पाकर गंगदत्त गाथापति भगवान के दर्शन के लिये गया। भगवान का उपदेश सुन गंगदत्त गाथापति को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने पुत्र को घर का भार सौंप दिया और महत् ऋद्धि के साथ वह भगवान के पास प्रव्रजित हो गया। दीक्षा लेकर गंगदत्त मुनि ने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। सूत्रों का ज्ञाता बनने के बाद कठोर तप कर अन्तिम समय में एक मास का संथारा किया। समाधि पूर्वक मर कर वह सातवें देवलोक में महर्द्धिक देव बना।

देव बनने के बाद गंगदत्त देव जब भगवान महावीर उल्लुकातीर नाम के नगर में विराजमान थे तब उनके दर्शन के लिये आया और बत्तीस प्रकार के नाटक दिखाकर अपना भक्ति भाव प्रकट किया। इसके बाद गंगदत्तदेव ने भगवान से पूछा—भगवन्! मै भवसिद्धिक हूँ या अभवसिद्धिक? भगवान ने उत्तर दिया—गंगदत्त? तू भव्यसि-

द्धिक है। भगवान से समाधान पाकर गंगदत्तदेव अपने स्थान चला गया।

गंगदत्तदेव के चले जाने के बाद गौतम स्वामी ने गंगदत्त की ऋद्धि सम्पदा विषयक प्रश्न पूछा। भगवान ने गंगदत्त का पूर्व जन्म बताया और कहा—गंगदत्त महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध बुद्ध होगा। परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा।

रोहा अनगार

रोहा अनगार भगवान महावीर के विनीत एवं भद्र प्रकृति के शिष्यों में से एक थे। एक बार भगवान राजगृह पधारे। रोहा अनगार भी भगवान के साथ थे। वे एक बार भगवान से कुछ दूर बैठे तत्त्व चिन्तन कर रहे थे। लोक विषयक चिन्तन करते हुए उन्हे कुछ शका उत्पन्न हुई। वे तुरन्त उठकर भगवान के पास आये और वन्दन कर बोले– भगवान्! पहले 'लोक' और पीछे 'अलोक' या पहले अलोक और पीछे 'लोक' ?

भगवान ने उत्तर दिया–रोह! लोक और अलोक दोनों पहले भी कहे जासकते हैं और पीछे भी। ये शाश्वत भाव हैं। इनमें पहले पीछे का क्रम नहीं।

इस प्रकार रोहा अनगार ने जीव, अजीव, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, सिद्धि, असिद्धि, सिद्ध, असिद्ध, अण्डा या मुर्गी, लोकान्त और अलोकान्त, लोक सप्तम अवकाशान्तर, लोकान्त सप्तम तनुवात, लोकान्त घनवात लोकान्त घनोदधि लोकान्त सप्तम, पृथ्वी पहले या पीछे का क्रम पूछा। भगवान ने सबका उत्तर देते हुए कहा—ये दोनों शात भाव हैं। इनमें पहले पीछे का कोई क्रम नहीं है। भगवान के उत्तरों से रोहा अनगार बड़े संतुष्ट हुए और संयत की साधना कर मुक्त हुए।

मेघकुमार

राजगृह नगर में महाराज श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी बड़ी रानी का नाम नन्दा था। श्रेणिक का पुत्र और नन्दादेवी का आत्मज

अभय नामक कुमार था। अभय कुमार श्रेणिक का मंत्री था। विकट से विकट समस्या को भी अभय अपनी विलक्षण बुद्धि से सहज ही सुलझा देता था। अभय कुमार विनीत, विनम्र और शिष्ट था। वह राजा को अत्यन्त प्रिय था। कोई भी राज्य का काम बिना अभय की अनुमति के नहीं हो पाता था। अभय बुद्धिमान था, भक्तिवान था और व्यवहार में मधुर तथा चतुर भी था। प्रजाजन भी अभय को प्रेम भरी दृष्टि से देखते थे।

श्रेणिक राजा की दूसरी रानी का नाम धारिणीदेवी था। धारिणी अत्यन्त रूपवती थी और राजा का उसपर अत्यन्त प्रेम था। एक समय धारिणी अपने उत्तम भवन में शय्या पर सो रही थी। अर्द्ध रात्रि के समय अर्द्ध जागृत अवस्था में उसने एक उत्तम स्वप्न देखा। अपने स्वप्न में उसने सात हाथ ऊँचा रजतकूट के सदृश श्वेत सौम्य लीला करते हुए जंभाई लेते हुए हाथी को आकाशतल से अपने मुख में आते देखा। देखकर वह जाग उठी। अपनी शय्या से उठकर वह राजा के पास पहुँची और उसने अपने स्वप्न का वृत्तांत कह सुनाया। राजा रानी का स्वप्न सुनकर बड़ा हर्षित हुआ और बोला—हे देवानुप्रिये! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है। इस स्वप्न को देखने से तुम्हें अर्थ की, राज्य की, सुख की एवं पुत्र की प्राप्ति होगी। तुम एक कुलदीपक पुत्र रत्न को जन्म दोगी। राजा के मुख से स्वप्न का फल सुनकर वह अत्यन्त हर्षित हुई और राजा को नमस्कार कर अपनी शय्या पर चली आई। कहीं यह उत्तम स्वप्न अन्य अशुभ स्वप्नों से नष्ट न हो जाय यह सोच वह देवगुरु एवं धर्म सम्बन्धी प्रशस्त धार्मिक कथाओं द्वारा अपने शुभ स्वप्न की रक्षा करने के लिये जागरण करने लगी।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्वप्नपाठकों को बुलाकर राजाने स्वप्न का अर्थ पूछा। उन्होंने बतलाया कि यह स्वप्न बहुत शुभ है। रानी की कुक्षि से किसी पुण्यशाली प्रतापी बालक का जन्म होगा। यह सुनकर राजाने स्वप्न पाठकों को प्रीतदान दिया और उन्हें सम्मान पूर्वक विदा किया।

धारिणीदेवी अपने स्वप्न का फल सुनकर हर्षित हुई और यत्न पूर्वक गर्भ का पालन करने लगी। दो मास के बीत जाने पर और तीसरे मास के गर्भ काल में धारिणी रानी को अकाल मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी-बिजली सहित गर्जता हुए मेघ से छोटी छोटी बूंदे पड़ रही हों, सर्वत्र हरियाली छाई हुई हो, वैभार गिरि के प्रपात, तट और कटक से निर्झर निकल कर बह रहे हों, मेघ गर्जना के कारण हृदय तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्ष के कारण मुक्त कण्ठ से केकारव कर रहे हों—ऐसे वर्षा काल में जो माताएँ स्नान करके, सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो करके वैभारगिरि के प्रदेशों में अपने पति के साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं। यदि मुझे भी ऐसा योग मिले तो वैभारपर्वत के समीप क्रीड़ा करती हुई मैं अपना दोहद पूर्ण करूँ।

धारिणी रानी की इच्छा पूरी न होने से वह प्रतिदिन दुर्बलहोने लगी। अंगपरिचारिकाओंने राजा को इस बात की सूचना दी। अंग-परिचरिकाओं द्वारा रानी के दुर्बल होने का समाचार सुनकर राजा शीघ्र गति से रानी के पास आया और बोला—देवानुप्रिये! तुम्हारे दुर्बल होने का क्या कारण है? तुम इस प्रकार चिन्तामग्न क्यों बैठी हो? राजा के अत्यन्त आग्रह पर रानी ने अपने दोहद की बात कही। राजा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा–प्रिये! मै ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी। इस प्रकार राजा रानी को आश्वस्त कर वापस अपने महल में चला आया। रानी के दोहद को पूरा करने का वह उपाय सोचने लगा किन्तु उसे कोई उपाय न मिला। इसी समय अभयकुमार अपने पिता को वन्दन करने के लिए वहाँ आया। पिता को चिन्तामग्न देखकर अभयकुमार ने पूछा—पिताजी! आप चिन्तामग्न क्यों दिखाई दे रहे हो? क्या मै आपकी चिन्ता का कारण जान सकता हूँ? इस पर श्रेणिक बोला—पुत्र! तुम्हारी माता धारिणी को अकाल मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ है उसे पूर्ण

करने का उपाय सोच रहा हूँ। वह बोला—पिताजी आप चिन्ता मत कीजिये। मैं शीघ्र ही ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे मेरी लघु माता का दोहद पूरा होगा।

अपने स्थान पर आकर अभय कुमार ने विचार किया कि अकाल में मेघ का दोहद देवता की सहायता के बिना पूरा नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर अभयकुमार पौषधशाला में आ, अट्ठमतप स्वीकार करके अपने पूर्वभव के मित्र देव का स्मरण करने लगा। तीसरे दिन अभय कुमार का पूर्वभव का मित्र सौधर्मकल्पवासी एक देव उसके सामने प्रकट हुआ और अभय कुमार से बोला—देवानुप्रिय! मैं तुम्हारा पूर्व-भव का मित्र सौधर्मकल्पवासी देव हूँ। बताओ मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ? देव को अपने समक्ष उपस्थित देख उसने पौषध व्रत को परिपूर्ण किया और दोनों हाथ जोड़कर बोला–देव! मेरी छोटी माता धारिणी के अकाल मेघ के दोहद को पूर्ण कर मुझे अनुगृहीत करो। इस पर देव बोला—देवानुप्रिय! तुम निश्चित रहो मैं तुम्हारी लघुमाता धारिणी देवी के दोहद की पूर्ति किये देता हूँ। ऐसा कहकर वह अभय कुमार के पास से निकला और उसने अपनी उत्कृष्ट वैक्रिय शक्ति से वर्षा ऋतु का दृष्य उपस्थित किया। आकाश में मेघ छा गये। बिजली और गरजना के साथ बादलों से बूँदे पड़ने लगीं। सर्वत्र हरियाली छा गई और मयूर प्रसन्न होकर नाचते हुए मुक्त कण्ठ से केकारव करने लगे।

वर्षा ऋतु का रमणीय दृष्य देखकर महारानी धारिणी पुलकित हो उठी उसने स्नान किया और सोलह शृङ्गार किये। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित हो वह महाराजा श्रेणिक के साथ गंधहस्ति पर आरूढ़ हुई और दास दासी और अपने सगे परिजनों से घिरी हुई चतुरंगी सेना के साथ वैभारगिरि की तलेहटी में वर्षा ऋतु का मनोहर दृष्य देखती हुई अपने दोहद को पूर्ण करने लगी। इस प्रकार दोहद के पूर्ण होने पर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और अपने गर्भ का परिपालन करने लगी।

नौ मास के पूर्ण होने पर महारानी धारिणी ने अत्यन्त रूपवान सर्व इन्द्रिय संपन्न एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। दासियों द्वारा पुत्र जन्म की सूचना पा कर महाराजा श्रेणिक बड़े प्रसन्न हुए। उसने पुत्र जन्म की खुशाली में बहुत से बन्दीजनों को मुक्त किया और बहुत सा दान दिया। गर्भावस्था में रानी को मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ था इसलिए बालक का नाम मेघकुमार रखा गया।

योग्य वय होने पर मेघकुमार को पुरुष की ७२ कलाओं की शिक्षा दी गई। युवावस्था के प्राप्त होने पर मेघकुमार का विवाह सुन्दर सुशील और स्त्री की ६४ कलाओं में प्रवीण आठ राजकन्याओं के साथ किया गया।

एक समय भगवान महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशील नाम के उद्यान में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर नगर के हजारों जन दर्शन और अमृतवाणी का महालाभ लेने आने लगे। महाराजा श्रेणिक ने भी भगवान के दर्शन किये। नगर का विशाल जन समूह भगवान के दर्शन के लिये उमड़ता देख मेघकुमार की भी मोह निद्रा भङ्ग हुई। वह भी परमप्रभु के पावन चरणों में पहुँच गया। भगवान ने मेघकुमार को उपदेश दिया। उपदेश सुन कर मेघकुमार को संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। जो संसार अभी तक मधुर और सुखद लगता था वह अब खारा और दुखद लगने लगा। मनहर महल मेघकुमार के लिए कारागृह हो गये। प्राणप्रिया वनिताएँ पैर की बेडी बन गईं। मेघकुमार के आध्यात्मिक जागरण ने एक झटके में इन सब बन्धनों को तोड कर दूर फेंक दिया। अब यदि कोई बन्धन शेष था तो जन्म देने वाली माता की सहज ममता थी। मनुष्य सब कुछ छोड़ सकता है किन्तु जन्म देने वाली माता की ममता को छोड़ना सहज नहीं किन्तु धीरे धीरे अनुनय विनय से माता पिता की ममता पर भी विजय प्राप्त कर ली। मेघकुमार के तीव्र वैराग्य भाव को देखकर माता पिता ने उसे दीक्षा ग्रहण करने

की आज्ञा प्रदान कर दी। महाराजा श्रेणिक ने उसका राज्याभिषेक किया और सहस्रवाहिणी शिविका पर बैठाकर अत्यन्त उत्सव पूर्वक उसे महावीर के पावन चरणों में उपस्थित किया।

भगवान महावीर के चरणों में उपस्थित हो कर मेघकुमार ने विनीत भाव से कहना प्रारंभ किया—

भन्ते ! यह संसार विषय कषाय की आग से जल रहा है। घर में आग लग जाने पर गृह स्वामी जैसे बहुमूल्य वस्तु को लेकर बाहर निकल आता है वैसे ही मै भी अपनी प्रिय वस्तु आत्मा को जरा मरण से प्रज्वलित इस संसार रूप गृह से निकाल लेने की भावना से प्रव्रजित होना चाहता हूँ अतएव आप स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करें, मुण्डित करें और ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक चरणसत्तरी, करणसत्तरी, संयम यात्रा और मात्रा आदि रूप धर्म का प्ररूपण करें।

मेघकुमार की माता धारिणी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से भगवान की ओर देखते हुए विनम्र भाव से निवेदन किया—

भन्ते ! यह मेघकुमार मेरा पुत्र है। मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। कान्त है, इष्ट है। जिस प्रकार कमल कीचड़ में पैदा हो कर भी कीचड़ और जल से अभिलिप्त नहीं होता, उसी प्रकार यह मेरा मेघ भी काम-भोगमय जीवन व्यतीत करके अब काम भोगों से निर्लिप्त होने की भावना रखता है। भन्ते ! मैं आपको यह शिष्य भिक्षा दे रही हूँ। स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिए। मेरी प्रार्थना अंगीकार कीजिए।

तत्पश्चात् भगवान महावीर ने मेघकुमार को स्वयं ही प्रव्रज्या प्रदान की और आचार की शिक्षा देते हुए कहा—मेघ ! आज से तुम्हें यतना पूर्वक चलना, बैठना, खड़ा होना, बोलना, सोना और भोजनादि क्रियाएँ करनी चाहिये। संयम के परिपालन में एक क्षण का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये और सभी प्राण, भूत जीव और

सत्व की रक्षा करने के लिए सतत सावधान रहना चाहिये । मेघकुमार भगवान की शिक्षा को शिरोधार्य कर संयमी बन गया ।

मेघकुमार के प्रव्रजित होते ही माता धारिणी ने गद् गद् स्वर में कहा-पुत्र ! तुम अब आगार से अनगार बन गये हो । संयम साधना में प्रयत्न करना, पराक्रम करना, मनोवृत्तियों का निरोध करना, राग और द्वेष पर विजय पाना और शुक्ल ध्यान के बल से सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनना । मेरी तरह किसी अन्य मातृ हृदय के रोदन का निमत्त मत बनना ।

मेघकुमार अब आत्मसाधक भिक्षु बन गया और अन्य मुनियों की तरह भगवान के आदेशों का परिपालन करने को तत्पर हो गया ।

सयमी जीवन की प्रथम रात्रि थी । सब साधुओं ने क्रमानुसार अपने बिस्तर बिछाए । मेघकुमारमुनि लघु होने के कारण इनका बिस्तर दरवाजे के पास आया । सभी साधु रात को लघुशंका आदि कारणों के लिए उसी दरवाजे से आते जाते थे । उनकी चरण रज से और ठोकरों से सारा बिस्तर धूल से भर गया । आने जाने की खटखट से, मुनियों की ठोकरों से और धूल तथा रेती भरे बिस्तर में मेघमुनि एक क्षण भी नहीं सो सके । सारी रात बिस्तर पर बैठ कर व्यतीत की । वह सोचने लगा-जब मै घर में रहता था तब श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे। जीवादि पदार्थों को, उन्हें सिद्ध करने वाले हेतुओं को, प्रश्नों को एवं कारणों के व्याकरणों को कहते थे किन्तु जब से मैने दीक्षा अंगीकार की है तब से ये लोग मेरा आदर करना तो दूर रहा किन्तु बात तक नहीं करते । ये श्रमण अपने कार्य के लिए आते जाते मेरे सस्तारक को लांघते हैं, ठोकरें मारते हैं और मेरे बिस्तर को धूल से भर देते हैं । इनकी इस अनादर वृत्ति से मै इतनी लम्बी रात में आँख भी नहीं मींच सका । अतः कल प्रातः भगवान की आज्ञा प्राप्त कर में पुनः गृहवास में चला जाऊँगा । मेघ-

कुमार ने इसी चिन्ता में सारी रात व्यतीत की। प्रातः होते ही मेघ महावीर के चरणों में अपने भाव व्यक्त करने पहुँचा। मेघकुमार को आते देख कर भगवान ने कहा–मेघ! रात में तुम्हें बड़ी वेदना रही। सुख से निद्रा नहीं आ सकी। आते-जाते भिक्षुओं के पैरों की ठोकरों से तुम अधीर हो उठे और संयमत्याग का संकल्प किया। मेघकुमार ने विनयपूर्वक यह सब स्वीकार किया।

भगवान ने सांत्वना भरे स्वर में कहा–मेघ! इस भव से पूर्व तीसरे भव में और दूसरे भव में तुम हाथी की योनि में थे। वहाँ एक शशक पर दया करने के लिए तुमने कितना कष्ट उठाया था। आज तुम मनुष्य हो कर भी, उसमें भी भिक्षु हो कर रात्रि के साधारण कष्ट से घबरा गये। मेघ! सावधान हो कर अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन—

आज से तीसरे भव में वैताढ्य पर्वत की तलहटी में तुम 'सुमेरु-प्रभ' नाम के श्वेतवर्ण गजराज थे। तुम्हारा सात हाथ ऊँचा और नौ हाथ लम्बा विशालकाय शरीर था। तुम्हारे छ दाँत थे और तुम अपने विशाल हथिनी समूह के अधिनायक थे। अपने विशाल हाथी समूह के साथ तुम विन्ध्याचल की बीहड़ अटवी में घूमा करते थे।

एक समय की बात है। जंगल में खूब हवा बहने लगी पहाड़ फटने लगे और बांस आपस में टकराने लगे। इनसे आग की चिन-गारियाँ निकलीं और बन में भयंकर दावानल फूट निकला। बड़े बड़े वृक्ष भी आग की लपटों से जल कर नीचे गिरने लगे। आग की लपटे आकाश से बातें करने लगीं। पक्षी चहचहाट करते हुए आकाश में उड़ने लगे और आग की भयंकर ज्वाला से झुलस कर कर नीचे गिरने लगे। बेचारे चौपायों का तो पूछना ही क्या? वे अपनी प्राणों की रक्षा के लिए इधर उधर भागते फिरते दृष्टिगोचर होते थे। चारों तरफ आग दीख रही थी मानों यमराज हजार हाथों

से भक्षण करने आ पहुँचा हो। ग्रीष्म काल के सूर्य के प्रचण्डताप से व दावानल की उष्णता से नदियों तालावों व निर्झरों का जल सूख गया था। सर्वत्र पशु पक्षियों के सड़े हुए मृत देह ही दिखाई देते थे।

इस अवसर पर हे मेघ! तुम्हारा (अर्थात् समेरुप्रभ हाथी का) मुखविवर फट गया। तुम दावनल से घबरा उठे।

इस भयकर दावानल से परित्राण पाने के लिये तुम्हारा सारा-परिवार इधर उधर भागने लगा। तुम अपने यूथ से अलग पड़ गये। तृषा के कारण तुम्हारा मुखविवर फट गया। जिह्वा बाहर निकल आई। सूँड सिकुड़ गई। हाथियों की भयंकर चीत्कार से आकाश प्रदेश गूँज उठा और उनके पाद प्रहार से पृथ्वी काँप उठी।

हे मेघ! तुम वहाँ जीर्ण जरा जर्जरित देहवाले व्याकुल भूखे, दुर्बल थके माँदे एवं दिग्विमूढ़ होकर अपने यूथ से बिछुड़ गये। इसी समय अल्पजल और कीचड़ की अधिकता वाला एक बड़ा सरोवर तुम्हें दिखाई दिया। उसमें पानी पीने के लिये तुम बेखटके उतर गये। वहाँ तुम किनारे से दूर चले गये, परन्तु पानी तक न पहुँच पाये और बीच ही में कीचड में फँस गये। तुमने पानी पीने के लिए दूर तक सूँड़ फैलाई किन्तु पानी तक तुम्हारी सूँड नहीं पहुँच पाई और तुम अधिक कीचड़ में फँस गये। अनेक प्रयत्न किये लेकिन तुम कीचड़ से अपने आप को नहीं निकाल सके।

किसी समय तुमने एक हाथी को मारकर अपने यूथ से निकाल दिया था वह पानी पीने के लिये उसी सरोवर में उतरा। तुम्हें देख कर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और भयंकर आवेश में आकर दंत प्रहारों से तुम्हें बींधने लगा। तुम्हें अर्ध मृतक कर वह भाग गया। उस समय तुम्हारे शरीर में भयंकर वेदना उत्पन्न हुई सात दिन तक दाह

ज्वर से पीड़ित होकर उसी तालाब में एक सौ बीस वर्ष की आयु में मर गये। मृत्यु के बाद पुन. विंध्याचल की अटवी में तुमने हाथी के रूप में जन्म ग्रहण किया। तुम्हारे चार दांत थे और वनचरों ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रखा। युवावस्था में तुम अपने यूथपति की मृत्यु के बाद यूथपति बने। तुमने एक बार जंगल में दावानल देखा और जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्वजन्म के दावानल के अनुभव से तुमने दावानल की ज्वाला से अपने यूथ को बचाने के लिये एक विशाल मण्डल बनाने का निश्चय किया। तदनुसार तुमने वन में सुन्दर नदी नाले और सरोवर वाले स्थल को ढूँढ निकाला। अपने सात सौ साथियों के साथ एक योजन का विशाल मैदान बनाया। वहाँ के पेड़ों को सूँड़ से उखाड़ कर दूर ले जाकर फेंक दिया। सूखो घास तो क्या हरी घास की पत्ती को भी रहने नहीं दिया। अपने पैरों से रौंदकर जमीन को अत्यन्त कठिन बना दिया। अब तुम अपने परिवार के साथ वनश्री का आनन्द लूटते हुए आनन्द से दिन काटने लगे।

कुछ समय बीतने के बाद पुनः जंगल में दावानल फूट निकला। सर्वत्र भय का वातावरण फैल गया। जगह जगह से हाथी आकर उस मण्डल में आश्रय लेने लगे। तुम भी अपने यूथ के साथ वहाँ आ पहुँचे। सारा जगल आग की ज्वाला से भभक रहा था। उस समय तुम्हारा मण्डल एकदम निरापद था। वहाँ अग्नि नहीं आ सकती थी। ऐसा सुरक्षित स्थान देखकर शेर, बाघ, रीछ, शशक, हिरण आदि जानवर भी वहाँ आश्रय लेने आ पहुँचे। सन्मुख मौत खड़ी देखकर जातिगत वैर भाव भूल गये और सारा ही मैदान प्राणियों से खचाखच भर गया। जिसको जहाँ स्थान मिला वह वहाँ बैठ गया। कुछ समय के बाद अपने शरीर को खुजलाने के लिये तुमने अपना पैर उठाया इतने में दूसरे बलवान प्राणियों द्वारा धकेला हुआ एक खरगोश उस जगह आ पहुँचा। शरीर को खुजलाकर जब तुम अपना पैर नीचे रखने

लगे तो एक शशक को उस स्थान में बैठा हुआ देखा । उस समय तुम्हारे मन में विचार आया कि मेरी ही तरह इस खरगोश के भी प्राण हैं। इसे भी अपना प्राण उतना ही प्रिय है जितना मुझे अपने प्राण प्यारे हैं। किसे मरना अच्छा लगता है। इस प्रकार तुम्हारे मन में दया जाग उठी तुमने खरगोश की रक्षा के हेतु अपना ऊँचा किया हुआ पैर ज्यों का त्यों ऊँचा उठाये रखा।

हे मेघ ! तब उस प्राणानुकम्पा से, सत्त्वानुकम्पा से तुमने संसार परित किया और मनुष्य आयु का बन्ध किया ।

जंगल का वह दावानल ढाई दिन तक एकसा जलता रहा। जब दावानल शात हुआ तो सभी प्राणी इधर उधर बिखर गये। भूख से पीड़ित हाथी समुदाय भी दूर दूर जंगलों में घास चारे की फिक्र में तत्काल ही रवाना हो गया। वह खरगोश भी खुश होता हुआ किलकारियाँ मारता हुआ दौड गया। तुमने चलने के लिये अपना पैर लम्बा किया किन्तु तुम्हारा पैर अकड़ गया जिससे तुम एकदम पृथ्वी पर गिर पड़े। तुम्हारी वजनदार काया चूर चूर हो गई। तुम्हारी देख भाल करने वाला वहाँ कोई नहीं था। भूख और प्यास से तड़-पते हुए तीन दिन तक तुम वहीं पड़े रहे। अन्त में तुम वहीं सौ वर्ष की अवस्था में मर गये और यहाँ तुम धारिणी रानी के गर्भ में आये।

हे मेघ! तिर्यञ्च के भव में प्राणभुत जीव और सत्त्वों पर अनु-कम्पा कर तुमने पहले कभी नहीं प्राप्त हुए सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति की। हे मेघ! अब तुम विशाल कुल में उत्पन्न होकर गृहस्थावास को छोड़ कर साधु बने हो तो क्या साधुओं के पादस्पर्श से होनेवाले जरा से कष्ट से घबड़ाना तुम्हें उचित है ?

भगवान के मुख से उपरोक्त वचन सुनकर मेघकुमार को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपने हाथी के दोनों भवों को देखा। भगवान के सत्य वचनों पर उसकी श्रद्धा बढ़ गई। उसकी सोई हुई आत्मा जागृत हो गई। वह उसी क्षण भगवान को नमस्कार कर बोला—भगवन् ! आज से इन दो आँखों के सिवाय यह समस्त

देह मुनियों की सेवा में अर्पण करता हूँ। आप मुझे पुनः दीक्षित करें। भगवान ने वैसा ही किया। उसने स्थविरों के पास अंगसूत्रों का अध्ययन किया और भगवान की आज्ञा प्राप्त कर गुणरत्न संवत्सर एवं बारह भिक्षु प्रतिमा आदि कठोर तप किये। विभिन्न तपश्चर्याओं के कारण मेघकुमार का शरीर अत्यन्त क्षीण बन गया यहाँ तक कि चलने फिरने की शक्ति भी नहीं रही।

एक दिन रात्रि में धर्म जागरण करते हुए उसने यावज्जीवन का अनशन करने का निश्चय किया। प्रातः भगवान की आज्ञा प्राप्त कर मेघमुनि स्थविर मुनियों के साथ शनैः शनैः विपुलाचल पर चढ़े। वहाँ एक बड़े शिलापट्ट की प्रतिलेखनाकर उस पर अपना देह रख दिया। पुनः पंचमहाव्रत स्वीकार कर उसने पादोपगमन संथारा कर लिया। एक मास तक मेघ कुमार का अनशन चला अन्त में शुद्ध भावना से मेघ कुमार ने अपना देहोत्सर्ग किया। मरकर वे विजय नामक अनुत्तर विमान में उत्कृष्ट ऋद्धिधारक देव बने। मेघकुमार ने बारह वर्ष तक संयम का पालन किया। देवलोक से च्युत होकर मेघकुमार महा विदेह में उच्चकुल में जन्म लेंगे और वहाँ चारित्र ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

धन्यसार्थवाह

चम्पा नाम की नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। वहाँ जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उस नगरी में धन्य नाम का एक समृद्ध श्रेष्ठी रहता था।

एक बार उसने व्यापारार्थ अहिच्छत्रा जाने का विचार किया। उसके लिये उसने नगर में यह घोषणा करवाई कि धन्य सार्थवाह व्यापारार्थ अहिच्छत्रा जा रहा है। जिस किसी को व्यापारार्थ अहिच्छत्रा चलना हो वे चलें। उन्हें सब प्रकार की सहायता दी जावेगी। उनका मार्ग में चोर लुटेरों से संरक्षण किया जावेगा तथा व्यापार के लिये धन के इच्छुक को धन भी दिया जायगा। उनके वस्त्र

भोजन आदि की भी व्यवस्था की जावेगी । इस घोषणा को सुनकर सैकड़ों चम्पा निवासी व्यक्ति अपने-अपने वाहनों में माल सामान भर कर धन्य के पास आ पहुँचे । धन्य ने भी अपनी गाड़ीगाड़ों में कई प्रकार की अलभ्य कीमती उपयोगी चीजें भरीं और शुभ मुहूर्त में अपने साथी व्यापारियों के साथ अहिच्छत्रा के लिये चल पड़ा ।

वह अपने विशाल काफिले के साथ अंग देश की सीमा पर पहुँचा । वहाँ पहुँच कर उसने गाड़ी-गाड़े खोले । पड़ाव डाला । फिर अपने नौकर को बुलाकर धन्य सार्थवाह ने कहा-देवानुप्रियो ! तुम लोग सारे काफिले में ऊँचे ऊँचे शब्दों में यह घोषणा करो कि आगे आनेवाली अटवी में मनुष्यों का आवागमन नहीं होता और वह बहुत लम्बी है । उस अटवी के बीच नन्दीफल नाम के वृक्ष हैं । वे दिखने में बड़े सुन्दर व सुहावने हैं । उसके पत्र, पुष्प, फल बड़े मनोहर व आकर्षक हैं । उनकी छाया अत्यन्त शीतल है किन्तु जो उस वृक्ष के फलों को खायगा उसके फूलों को सूँघेगा या उसकी शीतल छाया में विश्राम करेगा उसकी थोड़ी देर के बाद निश्चित मृत्यु होगी । यद्यपि वे फल खाने में मीठे लगेंगे, उसके फूलों की मोहक सुगन्ध मन को अच्छी लगेगी और उसकी शीतल छाया भी सुखमय लगेगी किन्तु थोड़ी देर के बाद उसका विष सारे शरीर में फैल जायगा और वह मर जायगा । अतः कोई भी उस नन्दी वृक्ष के पास न जाये । इस प्रकार की घोषणा सेठ के नोकरों ने सारे काफिले में बार-बार की।

कुछ समय तक अग देश की सीमा पर सेठ ने विश्राम किया उसके बाद श्रेष्ठी ने गाड़ी गाड़े जुतवाये और अपने काफिले के साथ विशाल अटवी प्रदेश में प्रवेश किया । उस अटवी में स्थान स्थान पर नन्दी वृक्ष अपनी विशालकाय पंक्ति में खड़े थे । वे अपने आकर्षक रूप से पथिकों को आकर्षित कर रहे थे । श्रेष्ठी ने कुछ मार्ग तय करने के बाद अटवी में नन्दी वृक्ष से कुछ दूरी पर अपना पड़ाव डाला और वहीं विश्राम किया ।

कुछ व्यक्ति घूमते-घूमते नन्दी वृक्ष के पास पहुँचे। उसके सुन्दर व अच्छी सुगन्धवाले फलों को देखकर एक दूसरे से कहने लगे- ये फल कितने अच्छे हैं। इतने सुन्दर व मधुर फल प्राण हरण करने वाले भी हो सकते हैं? उनको श्रेष्ठी की बात पर विश्वास नहीं हुआ। वे वृक्ष के नीचे पहुँचे। उसकी शीतल छाया का स्पर्शानुभव कर बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने उन फलों को तोड़कर चखा तो वे बड़े सुस्वादु लगे। उन्होंने जी भर कर फलों को खाया और उसकी शीतल छाया में सो गये। थोड़ी देर के बाद उन फलों का तथा नन्दी वृक्ष की छाया का उनके शरीर पर असर होने लगा। धीरे-धीरे उनके शरीर में जहर व्याप्त हो गया। वे जहर के कारण छट-पटाने लगे। अन्ततः उनकी वहीं मृत्यु हो गई।

जिन व्यक्तियों ने श्रेष्ठी की बात पर विश्वास कर फल नहीं खाया वे सुख पूर्वक अटवी को पारकर श्रेष्ठी के साथ अहिच्छत्रा पहुँचे। अहिच्छत्रा पहुँचने के बाद धन्य श्रेष्ठी अपने साथियों के साथ वहाँ के शासक कनककेतु राजा के पास पहुँचा और उसने बहुमूल्य उपहार राजा को भेंट किया। राजा ने चंपा निवासियों का सम्मान किया और उनकी जकात माफ कर दी।

इसके बाद धन्यसार्थवाह ने व उनके साथियों ने व्यापार किया और बहुत धन कमाया कुछ दिन रह कर धन्यसार्थवाह ने अहिच्छत्रा से दूसरा माल खरीदा। अन्य व्यापारियों ने भी माल सामान खरीद किया और अपने वाहनों में उसे भर लिया। धन्यसार्थवाह अपने काफिले के साथ चंपा के लिये रवाना हुआ। वह चलते हुए चम्पा पहुँच गया और आनन्द पूर्वक अपने मित्र ज्ञाति जनों के साथ रहने लगा।

एक बार स्थविरों का आगमन हुआ। धन्य सार्थवाह उन्हें वन्दना करने के लिये निकला। धर्म देशना सुनकर और ज्येष्ठपुत्र को अपने कुटुम्ब में स्थापित कर दीक्षित होगया। सामायिक से लेकर

ग्यारह अंगों का अध्ययन करके और बहुत वर्षों तक संयम का पालन करके एकमास की संलेखना एवं साठ भक्त का अनशन करके वह देव-लोक में देव रूप से उत्पन्न हुआ। वह देव उस देवलोक से आयु का क्षय होने पर च्युत होकर महाविदेह में सिद्धि प्राप्त करेगा।

उपनय–चंपा नगरी के समान यह मनुष्यगति है। धन्य सार्थवाह के समान परम कारुणिक तीर्थङ्कर भगवान हैं। घोषणा के समान प्रभु की देशना है। अहिच्छत्रा नगरी के समान मुक्ति है। अन्य व्यापारियों के समान मुमुक्षुजीव है। इन्द्रियों के विषय भोग नंदी फल हैं जो तात्कालिक सुख प्रदान करते हैं परन्तु परिणाम उनका मृत्यु है। विषय भोगों के सेवन से पुनः पुनः जन्म मरण करना पड़ता है। जैसे नंदी फलों से दूर रहने से सार्थ के लोग सकुशल अहिच्छत्रा नगरी में पहुँचे उसी प्रकार विषयों से दूर रहने वाले मुमुक्षु मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

धन्यसार्थवाह

राजगृह नाम का नगर था। वहाँ श्रेणिक नाम के राजा राज्य करते थे। इस नगर के ईशान कोण में गुणशीलक नामक उद्यान था। वह अत्यन्त रमणीय था। इस उद्यान से कुछ दूरी पर एक गिरा हुआ जीर्ण उद्यान था। उस उद्यान के देवकुल विनष्ट हो चुके थे। द्वारों के तोरण और गृह भग्न हो गये थे। यह नाना प्रकार के गुच्छों गुल्मों (बाँस आदि की झाड़ियाँ), अशोक, आम्र आदि वृक्षों से तथा विभिन्न वन लताओं से व्याप्त था। वह जंगली जानवरों का निवास बन गया था। इस उद्यान के बीच एक पड़ा हुआ कुआँ था। इस कुएँ के पास ही एक बड़ा मालुकाकच्छ था। वह सघन था, वृक्षों गुल्मों, लताओं और ठूठों से व्याप्त था। उसमें अनेक हिंसक पशु रहते थे जिसके कारण उसमें जाने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी।

उस नगर में धन्य नाम का सार्थवाह रहता था। वह समृद्धिशाली था। तेजस्वी था और उसके घर बहुतसा भोजन तैयार होता था। उसकी भद्रा नाम की पत्नी थी। उसके अंग उपाङ्ग अत्यन्त सुन्दर थे। उसका मुख चन्द्रमा के समान सौम्य था। देखने में वह बड़ी आकर्षक लगती थी। अतुल धन सम्पत्ति होते हुए भी उसके कोई सन्तान न थी, जिससे वह अत्यन्त दुःखी थी।

उस धन्यसार्थवाह का पंथक नामक दास चेटक (दासी पुत्र) था। वह सर्वाङ्ग–सुन्दर था। शरीर से पुष्ट था और बालकों को खिलाने में कुशल था।

वह धन्यसार्थवाह राजगृह नगर का मान्य श्रेष्ठी था तथा अठारह श्रेणियों(जातियों) और प्रश्रेणियों(उपजातियों) का सलाहकार था।

इस नगर में विजय नाम का चोर था। वह अत्यन्त क्रूर था। क्रूरता के कारण उसकी आंखें सदा लाल रहती थीं। उसका चेहरा बड़ा बीभत्स लगता था। उसके दिल में अनुकम्पा के लिये कोई स्थान नहीं था। वह जुआ, शराब, परस्त्री, एवं जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनों में सदा रचा पचा रहता था। वह दिन में छिपा रहता था और रात्रि में चोरी करता था। वह चोरी करने में अत्यन्त कुशल था। घोर और जघन्य कृत्य करने वाला निष्ठुर हृदय वह चोर अनेक अत्याचार और अनर्थ करने में जरा भी संकोच नहीं करता था। वह सर्प के समान वक्रदृष्टि वाला और द्रव्य हरण में तलवार की धार के समान तेज था। वह राजगृह के अनेक गुप्त मार्गों को जानता था। टूटे फूटे मकान पर्वत की गुफाएँ व सघन वन उसके निवास स्थान थे।

एक रात्रि में धन्ना सार्थवाह की पत्नी भद्रा के मन में विचार आया–"वह माता धन्य है जिसकी गोद में सुन्दर बालक किलकारी करता है, क्रीड़ा करता है और अपने निर्विकार बाल सुलभ हाव भाव से

माता के नेत्र को शीतल करता है। मै कितनी पुण्यहीना हूँ! कितनी मन्दभाग्या हूँ कि मेरे एक भी पुत्र नहीं है। यह अपार धन राशि और सुन्दर महल पुत्र के अभाव में किस काम के हैं। अतः प्रातः काल होते ही मै पति की आज्ञा लेकर नाग, भूत, यक्ष के देवालय में जाकर उनकी पूजा करूँगी और उनसे पुत्र की याचना करूँगी।"

प्रातः काल होते ही भद्रा ने स्नान किया। सुन्दर वस्त्राभूषण पहनकर पति की आज्ञा ले पूजन की सामग्री सहित अनेक सौभाग्यशालिनी स्त्रियों के साथ नगर के बाहर पुष्करिणी बावडी के किनारे पहुँची। वहाँ पुष्प की मालाएँ और अलंकार रख दिये। उसके बाद वह पुष्करणी में उतरी और स्नान किया। गीले वस्त्र को पहने हुए उसने कमल पुष्पों को ग्रहण किया और वैश्रमणगृह में प्रवेश किया। वहाँ नाग प्रतिमा को प्रणाम कर भक्ति पूर्वक उसका पूजन किया। धूप दीप करने के बाद नाग देवता से विनय पूर्वक कहने लगी–

"अगर मै पुत्र या पुत्री को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूंगी और अक्षय निधि की वृद्धि करूंगी।" इस प्रकार मनौती कर वह वैश्रमणगृह से निकली और अपने साथ आई हुई बहनों के साथ भोजन किया और अपने घर आगई। इस प्रकार वह चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन उत्तम भोजन तैयार करती और सौभाग्यवती बहनों के साथ नाग आदि देवताओं का पूजन करती और लौट आती। भद्रा सार्थवाही का अब यही क्रम चलने लगा।

संतोष और सेवा का फल कभी व्यर्थ नहीं जाता। आखिर देवी देवताओं की अनेक मनौती के बाद भद्रा ने गर्भ धारण किया। गर्भ के तीसरे मास में उसे नाग देवताओं का पूजन करने का दोहद उत्पन्न हुआ और उसे पति की आज्ञा प्राप्त कर पूर्ण किया। यथासमय उसे पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र प्राप्त कर भद्रा बड़ी प्रसन्न हुई। उसके घर बड़ी खुशियाँ मनाई गई। शिशु के जातकर्म

आदि संस्कार सम्पन्न हुए और देव कृपा से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम देवदत्त रक्खा गया। भद्रा ने अपनी मनौती के अनुसार नाग आदि देवताओं का पूजन किया और देवनिधि की वृद्धि की।

देवदत्त बालक को खिलाने के लिये पंथक दास चेटक को नियुक्त किया। भद्रा अपने पुत्र को नहलाती धुलाती, नजर से बचाने के लिये मसि आदि का तिलक करती और अलंकार, आभूषण आदि से सजाकर उसे पंथक को सौंप देती। पंथक प्रतिदिन बहुत से बालक-बालिकाओं के साथ देवदत्त को खिलाया करता था। तरह तरह के खेल द्वारा बच्चों का अच्छा मनोरंजन करता था।

एक दिन भद्रा ने बालक देवदत्त को नहलाया और सुन्दर वस्त्र एवं कीमती आभूषण पहनाये और खेलने के लिये पंथक के साथ उसे भेज दिया। पंथक बालक को ले राजमार्ग पर आया और उसे एक तरफ बैठा कर अन्य बालक बालिकाओं के साथ खेल खेलने में मशगूल हो गया। इतने में विजय नामक चोर वहाँ आया। पंथक को अन्य बालकों के साथ खेलता देख, झट से देवदत्त को गोदी में उठाकर अपने वस्त्र में छिपा लिया और शीघ्रता से राजगृह से निकल कर जीर्ण उद्यान की ओर भाग गया। टेढ़े मेढे चक्करदार रास्तों से होता हुआ मालुकाकच्छ के भग्न कूप के पास पहुँचा। बालक के आभूषण उतार कर, उसे मारकर कुएँ में फेंक दिया और स्वयं जंगल में छिप-कर बैठ गया।

थोड़ी देर के बाद जब पंथक ने उधर देखा तो बच्चा गायब। उसने इधर उधर बहुत देखा-भाला किन्तु बच्चे का कहीं भी पता नहीं लगा। अन्त में वह रोता-पीटता धन्य सार्थवाह के घर पहुँचा। उसने धन्ना सार्थवाह के पांव पकड़कर सब हाल कह सुनाया। धन्य यह दारुण समाचार सुनते ही एकदम बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा। होश आने पर दोनों पति पत्नी हृदय विदारक विलाप करने लगे।

पर विलाप से बिछुड़ा हुआ देवदत्त क्या पुनः मिल सकता था ? अतः उसने अपने समस्त नौकर चाकरों को पुत्र की खोज के लिये चारों ओर नगर में भेजा और स्वयं भी निकल पड़ा। नगर का कोना-कोना खोज डाला लेकिन देवदत्त का कहीं भी पता नहीं लगा। अन्त में वह कीमती भेंट लेकर नगर रक्षक कोतवाल के पास पहुँचा और पुत्र के खो जाने का सारा हाल कह सुनाया।

कोतवाल बच्चे का पता लगाने के लिये तैयार हुआ। उसने कवच धारण किया। धनुषबाण आदि हथियार सम्हाले और कुछ सिपाहियों को साथ में लेकर बच्चे की खोज में चल पड़ा। साथ में धन्ना सार्थवाह भी हो गया।

ढूँढ़ते ढूंढ़ते वे लोग जीर्ण उद्यान में पहुँचे और वहाँ उन्होंने एक पुराने कुएँ में बच्चे की लाश को पड़ा पाया। कोतवाल ने लाश कुएँ से निकाल कर धन्य सार्थवाह को दे दी और कोतवाल और उसके अन्य सीपाहि चोर के पद चिह्नों का अनुसरण करते हुए मालुकावन में पहुँचे और वहाँ अत्यन्त सावधानी के साथ शस्त्रास्त्र सम्भाले हुए चोर की इधर-उधर तलाश करने लगे। चोर मालुकाकच्छ के एक कोने में छिपा हुआ था। कोतवाल ने उसे पकड़ लिया और मजबूत बन्धनों से बाँधकर उसे खूब पीटा। चोर की तलाशी लेने के बाद बालक के गहने भी उसके पास मिल गये। उन आभरणों को उसी के गले में पहना कर नगर के सभी राजमार्गों पर उसे घुमाया, कोड़े, बेंत आदि से खूब पीटा और उसके ऊपर राख, धूल, कूड़ा, कचड़ा डालते हुए तेज आवाज से इस प्रकार की घोषणा करने लगे। हे नगर जनों ! यह विजय चोर मांस लोलुपी, बालघातक और हत्यारा है। इसे यह सजा निष्कारण नहीं दी जा रही है किन्तु यह अपने ही किये हुए दुष्कृत्यों को भोग रहा है। इस प्रकार की बार बार घोषणा करते कोतवाल ने चोर को ले जाकर उसे काठ की बेड़ियों में जकड़ दिया। उसका खाना पीना बन्द करवा दिया और तीनों समय कोड़ों से पीटा जाने लगा।

किसी समय धन्य सार्थवाह से राज्य का एक छोटा सा अपराध हो गया। राजा ने उसे गिरफ्तार करवा कर विजय चोर के साथ कारागार में डाल दिया। विजय चोर को बेड़ियों के साथ उसे भी जकड़ दिया।

धन्य सार्थवाह की स्त्री भद्रा अपने पति के लिये उत्तम-उत्तम भोजन बनाती और उसे भोजनडिब्बे (टिफन) में बन्द करती और उस पर मुहर लगाती, लोटे में सुगंधित जल भरती और उसे पंथक के हाथ जेल में भेजती। पंथक जेल में जाकर पहले जल से अपने स्वामी का हाथ धुलवाता, और फिर डब्बा खोलकर भोजन परोसता और उन्हें भोजल खिलाकर घर लौट आता।

एक दिन धन्य सार्थवाह के उत्तम भोजन को देखकर विजय चोर धन्य सार्थवाह से बोला—धन्य! अपने भोजन में से मुझे भी थोड़ा खाने को दो। धन्य बोला—विजय! मेरा बचा हुआ भोजन भले कुत्ते या कौवे खा जाँय, या मै इसे उकरड़ी (कूड़ा घर) पर फिकवा दूँ, किंतु किसी हालत में तुझ जैसे पुत्र हत्यारे को, पापी को कभी भी यह भोजन नहीं दूँगा। विजय चोर ने सेठ से बहुत अनुनय विनय की लेकिन धन्य ने उसे भोजन का एक कण भी नहीं दिया।

भोजन करने के बाद धन्य को शौच जाने की इच्छा हुई। उसने विजय से कहा-विजय! मुझे शौच जाना है। अतः हम दोनों एकान्त में चलें। सेठ के कथन पर विजय ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। दूसरी बार सेठ ने पुनः विजय चोर से यही बात कही फिर भी उसने उत्तर नहीं दिया। सेठ को शौच इतनी तीव्र लगी थी कि वे उसे रोक नहीं सके। उन्होंने पुनः विजय चोर से अत्यन्त नम्र भाव से साथ में चलने की विनती की। बार बार सेठ की प्रार्थना पर विजय बोला—सेठ! आप भोजन करते हैं इसलिए आपको शौच जाना होता है। लेकिन मै तो कई दिनों का भूखा हूँ। अतः मुझे शौच नहीं जाना है। जब मैंने आपसे भोजन का कुछ हिस्सा मांगा

था तब आपने मुझे देने से इनकार कर दिया। अतः 'जो खायगा वह शौच जायगा' इस उक्ति के अनुसार आप अकेले ही प्रसन्नता पूर्वक जा सकते हैं। मै तुम्हारे साथ नहीं आऊँगा।

सेठ लाचार थे। उनके पैर विजय के साथ काष्ठ के खोड़े में बन्धे थे। वे अकेले नहीं जा सकते थे। अतः कुछ समय तक चुप रहे। पर शरीर में शौच बाधा बढ़ती गई वे उसे सह नहीं सके अन्त में लाचार होकर पुनः विजय से साथ में आने की प्रार्थना करने लगे। धन्य को बहुत अनुनय विनय करता देख विजय बोला—श्रेष्ठी ! मैं एक ही शर्त पर तुम्हारे साथ आ सकता हूँ वह यह कि कल जो आपके लिये भोजन आयगा उसमें से मुझे थोड़ा खाने के लिये देना पड़ेगा। क्या यह शर्त आपको मंजूर है ? विवश होकर धन्य अपने भोजन में से कुछ हिस्सा विजय को देने के लिये राजी हो गया। अब विजय को प्रतिदिन भोजन मिलने लगा।

पंथक ने सेठ को विजय चोर को भोजन देते हुए देख लिया। सेठ के इस व्यवहार से दास क्रुद्ध गया। उसने घर पहुँच कर भद्रा से सारी बात कह दी। अपने पति के इस व्यवहार से भद्रा अत्यन्त क्रुद्ध हो गई और वह मन ही मन में जलने लगी। पति के प्रति जो उसके मन में प्रेम था वह कम हो गया।

कुछ काल के बाद अपने सम्बन्धियों की सिफारिश से तथा अपने धन के जोर से धन्य सार्थवाह जेल से छूट गया। जेल से छूट कर वह नाई की दूकान पर गया और वहाँ हजामत बनवाई, पुष्करणी में स्नान किया, गृहदेवताओं की पूजा की और उसके बाद वह अपने घर की ओर चला। नगर के सेठ, सार्थवाह आदि ने धन्य का बड़ा स्वागत किया और कुशल समाचार पूछे। धन्य अपने घर पहुँचा। धन्य का घर के सब लोगों ने बड़ा स्वागत किया। माता, पिता, भाई आदि परिवार धन्य को देखकर आनन्दातिरेक से गद्गद हो गले मिले और खूब रुदन किया।

धन्य घर के सब लोगों से मिला परन्तु उसे भद्रा कहीं दिखाई नहीं दी। वह घर के अन्दर गया तो भद्रा एक तरफ में उदास होकर बैठी थी। सेठ को आता देख उसने अपना मुँह फेर लिया। पत्नी के इस व्यवहार से धन्य को बड़ा दुःख हुआ। वह बोला "प्रिये! क्या बात है? क्या तुम्हें मेरे जेल से छूट आने की खुशी नहीं है?" भद्रा ने कहा—प्राणनाथ! अपने पुत्र के घातक को भोजन देने वाले के प्रति खुशी कैसे हो सकती है? मैं आपके लिये कितने प्रेम से बढ़िया से बढ़िया भोजन बनाकर भेजती थी और आप उस पुत्र-घातक विजय चोर को भोजन देकर उसका पोषण करते थे। आपका यह व्यवहार क्या जले पर पर नमक छिड़कने के समान नहीं है? ऐसी अवस्था में मैं आप पर कैसे प्रसन्न रह सकती हूँ।

पत्नी की यह बात सुन धन्यसार्थवाह बोला—प्रिये! तुम जो कहती हो वह सत्य है लेकिन मैने विजय को भोजन देना किस परि-स्थिति में स्वीकार किया था उसे भी अगर जान लेतीं तो तुम इस प्रकार कदापि नहीं रूठतीं। अगर मैं उस हत्यारे को सहायक और मित्र समझकर भोजन देता तो निस्संदेह मै तुम्हारा अपराधी था पर ऐसा नहीं है। शारीरिक बाधा से मजबूर होकर ही मैने उसे भोजन दिया है। वह मेरी मजबूरी थी। अगर मै ऐसा नहीं करता तो जीवित नहीं रह सकता। भद्रा ने जब पति के मुख से सब सुना तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसने खड़े होकर पति के चरण छुए और अपने व्यवहार की बार बार क्षमा माँगी।

इधर विजयचोर कारागार में वध, बन्धन और चाबुकों के प्रहारों तथा भूख प्यास से तड़फता हुआ मरा और नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ अनन्त वेदनाएँ सह रहा है। कलान्तर में वह नरक से निकल कर संसार में अनन्त काल तक परिभ्रमण करेगा।

श्री सुधर्मा स्वामी इस कथा का उपसंहार करते हुए जम्बू स्वामी से कहते हैं—हे जम्बू! जो साधु या साध्वी गृह को त्याग कर साधुत्व

स्वीकार करते हैं और पुनः परिग्रह में फँसते हैं उनकी गति विजय चोर की तरह ही होती है ।

उस समय धर्मघोष नाम के स्थविर राजगृह के गुणशील नामक उद्यान में पधारे । उनका उपदेश सुनने नगरी की जनता गई । धन्यसार्थवाह भी स्थविर का उपदेश सुनने उद्यान में गया । स्थविर ने आगन्तुक जनता को धर्मोपदेश दिया । धर्मोपदेश को सुनकर धन्यसार्थवाह के हृदय में धर्म के आचरण की अभिरुचि उत्पन्न हुई और उसने स्थविर से मुनि धर्म की दीक्षा प्रदान करने की अभ्यर्थना की। स्थविर ने उसे दीक्षा प्रदान कर दी । धन्य अनगार बन गया । इसने बहुत काल तक चारित्र का पालन किया । अन्तिम समय में एक मास का संथारा लिया और मर कर सौधर्म देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुआ । धन्य देव की आयु चार पल्योपम की हुई । देवभव को पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म पाकर सर्व दुःखों का अन्त करेगा । मोक्ष पद को प्राप्त करेगा ।

इस कथा का उपनय करते हुए सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं–हे जम्बू ! जिस प्रकार धन्यसार्थवाह ने धर्म के लिये या उपकार के लिये अपने पुत्र–घातक विजय चोर को भोजन नहीं दिया किन्तु मलमूत्र को रोकने से होने वाली शारीरिक बाधा को टालने के लिये ही उसने विजय चोर को भोजन दिया था । उसी प्रकार गृहस्थ वैभव का परित्याग करने वाले साधु या साध्वी को शरीर के पोषण या विषय की वृद्धि के लिए भोजन नहीं करना चाहिये किन्तु ज्ञान दर्शन और चारित्र की वृद्धि के लिए व संयम की रक्षा के लिए ही भोजन करना चाहिये ।

अर्जुनमालाकार

राजगृह नाम का नगर था । वहाँ श्रेणिकराजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चेलना था । इस नगर में अर्जुन नाम का एक

माली रहता था । उसकी स्त्री का नाम बंधुमती था । वह रूप की रानी थी । नगर के बाहर अर्जुनमाली का फूलों का एक बगीचा था जिसमें भाँति-भाँति के पंचवर्णीय पुष्प खिलते थे । उस बगीचे के पास ही मुद्गरपाणि नाम के यक्ष का एक यक्षायतन था जिसमें हाथ में हजार फल की लोहे की एक मुद्गर लिये हुए यक्ष की एक सुन्दर प्रतिमा थी । अर्जुनमाली के पिता, दादा, परदादा इसकी पूजा करते थे । अर्जुन मालो बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था। वह प्रतिदिन अपनी बाँस की बनी टोकरियाँ लेकर बगीचे में जाता और फूल चुनता था । इन फूलों में जो फूल सब से सुन्दर होते उन्हें वह यक्ष को चढ़ाता । दोनों दम्पति मिलकर उसकी पूजा भक्ति करते और उसके बाद राजमार्ग पर फूल बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे ।

इसी नगर में ललिता नाम की गोष्ठी (मित्रमण्डली) रहती थी। जिसमें स्वच्छंदी आवारा, क्रूर व्यभिचारी लोग मिले हुए थे । यह उद्दण्ड टोली अपना मनमाना काम करती थी । एक बार इस टोली ने राजा का कोई खास काम किया था जिससे प्रसन्न होकर राजा ने इन्हें सब प्रकार की स्वतन्त्रता दे रखी थी । ये किसी भी अपराध पर दण्डित नहीं किये जाते थे । अतः ये मनमाना करने में स्वतंत्र थे।

एक बार राजगृह नगर में बड़ा उत्सव था । अर्जुनमाली ने सोचा कि इस अवसर पर फूलों की बहुत बिक्री होगी । वह सुबह जल्दी उठा और अपनी पत्नी बंधुमती को साथ लेकर बगीचे में पहुँचा। वहाँ उसने पत्नी के साथ चुन-चुन कर फूल एकत्रित किये । प्रतिदिन की तरह आज भी वह अच्छे अच्छे पुष्प लिये और बंधुमती के साथ यक्ष की पूजा करने चल दिया ।

उस समय ललिता गोष्ठी के छः गुण्डे अर्जुनमाली की पुष्पवाटिका में आमोद-प्रमोद कर रहे थे । उन्होंने देखा कि अर्जुनमाली अपनी औरत के साथ यक्ष मन्दिर में आ रहा है । यह देख वे सोचने

लगे 'अर्जुनमाली अपनी पत्नी के साथ यहाँ आ रहा है इसलिए हमलोगों को उचित है कि इस अर्जुनमालाकार को, दोनों हाथों को पीछे बलपूर्वक बाँधकर, लुढ़का दिया जाय। बस ये लोग चुपचाप जाकर मंदिर के किवाड़ों के पीछे छिप गये और जब अर्जुनमाली और उसकी औरत यक्ष की पूजा कर रहे थे, चुपके से किवाड़ों के पीछे से निकले और अर्जुनमाली को रस्सी से बांधकर उसकी स्त्री के साथ अपनी भोग-लिप्सा शान्त करने लगे।

अर्जुनमाली बंधन में जकड़ा पड़ा था। वह सोचने लगा-मैं बचपन से ही इस यक्ष की पूजा करता आ रहा हूँ। इसकी पूजा करने के बाद ही आजीविका के लिये राजमार्ग पर फूल बेचने के लिये जाता हूँ और फूल बेचकर निर्वाह करता हूँ। वह यक्ष की भर्त्सना करते हुए बोल उठा-क्या जीवन भर तेरी पूजा करने का यही फल मिला। तू यक्ष है या केवल लकड़ी का ही ठूंठ है। अर्जुनमाली के रोष भरे शब्दों को सुनकर यक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ उसने अर्जुनमाली के शरीर में प्रवेश किया और तड़ातड़ बन्धनों को तोड़ डाला। उसके बाद यक्ष से आविष्ट अर्जुनमाली ने एक हजार पलवाला लोहे का मुद्‌गर उठाया और उसने सब से पहले टोली के छः गुण्डों को और अपनी स्त्री बंधुमती को मार डाला। अब वह नियमित रूप से प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री को मारने लगा। लगातार ५ महीने और १३ दिनों तक अर्जुनमाली का यही क्रम रहा। इस बीच उसने ९७८ पुरुष एवं १६३ स्त्रियों को यों कुल ११४१ मनुष्यों की हत्या कर दी। वह अपने आप में बेभान था। हिंसा करना उसका नित्य कर्म बन गया।

नगर भर में यह बात सब जगह फैल गई कि अर्जुनमाली यक्ष से आविष्ट होकर प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करता है। यह बात राजा श्रेणिक के पास पहुँची। राजा ने अपने सेवकों द्वारा सारे नगर में घोषणा करवाई कि अर्जुनमाली यक्ष से आविष्ट होकर लोगों की हत्या कर रहा है अतः कोई भी व्यक्ति लकड़ी, घास, पानी, फल एवं फूल आदि लेने के लिए नगर के बाहर न जाये।

उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी का आगमन हुआ। वे नगर के बाहर उद्यान में ठहरे। भगवान महावीर के पधारने की सूचना राजा को और नगर की जनता को भी मिली परन्तु किसी का साहस नहीं हो सका कि वह भगवान के दर्शन के लिए नगर के बाहर जाय। सबको अपने-अपने प्राण प्रिय थे।

उस समय राजगृह नगर में सुदर्शन नाम का श्रेष्ठी रहता था। यह श्रमणोपासक था, वह जीवादि नव तत्त्वों का ज्ञाता था। भगवान के आगमन का समाचार सुनकर सुदर्शन का विचार भगवान की वन्दना करने के लिये जाने का हुआ। वह अपने माता पिता के पास आया और भगवान के दर्शन के लिये जाने की अनुमति मांगने लगा। माता पिता ने कहा-पुत्र! यह समय बाहर जाने का नहीं है। अर्जुनमाली नगर के बाहर मनुष्यों को मारता हुआ घूम रहा है। वहाँ जाने पर तुम्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। तुम यहीं पर रह कर भगवान की वन्दना और उनकी स्तुति करलो। वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं। जीवन की अपेक्षा सुदर्शन को भगवान के दर्शन अधिक प्रिय थे। माता पिता आदि सभी के समझाने पर भी वह शुद्ध वस्त्र पहन भगवान के दर्शन के लिए पैदल ही चला। मार्ग में अर्जुन ने देखा कि सुदर्शन उसके पास से होकर जा रहा है; वह अपनी मुद्गर उठाकर उसे मारने दौड़ा। अर्जुनमाली को सामने आता देख वह जरा भी भयभीत नहीं हुआ। वह उसी धैर्य के साथ अपने उत्तरीय वस्त्र से भूमि का परिमार्जन कर और मुख पर उत्तरासंग धारण कर पूर्व दिशा की तरफ मुँह कर दोनों हाथों और मस्तक को नमा भगवान को वन्दना करने लगा। वन्दना कर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मै संकट से बचगया तो प्रभु के दर्शन करूँगा, नहीं बच सका तो मुझे सम्पूर्ण पापस्थान, भोजन-पान और इस देह का भी त्याग है। यह प्रतिज्ञा कर वह ध्यान में लीन हो गया।

अर्जुनमाली ने अपनी पूरी शक्ति से सुदर्शन सेठ पर मुद्गर का प्रहार किया किन्तु वह असफल रहा। तब उसने दूसरी बार बड़ी ताकत से मुद्गर उठाया और सुदर्शन पर फेंकने के लिए उसे चारों ओर घुमाने लगा। चारों ओर घुमाने पर भी जब किसी प्रकार से उसके ऊपर अपना मुद्गर नहीं चला सका तब वह यक्ष सुदर्शन के सामने आकर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। इसके बाद वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर को छोड़कर चला गया। शरीर से यक्ष के निकल जाने पर वह निःसत्त्व होकर धरणी तल पर गिर पड़ा। यह आसुरी शक्ति पर आध्यात्मिक शक्ति की महान विजय थी। निस्तेज अर्जुनमाली सेठ सुदर्शन के चरणों में अचेत अवस्था में पड़ा हुआ था। कुछ क्षण के बाद अर्जुनमाली सचेत हुआ और अत्यन्त शान्त मुद्रा में श्रेष्ठी के सामने देखने लगा। उपसर्ग शान्त हुआ जान सेठ सुदर्शन ने ध्यान समाप्त किया। अर्जुनमाली ने सुदर्शन से कहा—देवानुप्रिय ! आप कौन हो, और कहाँ जाना चाहते हो ? सुदर्शन ने कहा—मेरा नाम सुदर्शन है। मैं भगवान महावीर का उपासक हूँ। भगवान महावीर गुणशील उद्यान में ठहरे हुए हैं। मैं उन्हीं के दर्शन करने जा रहा हूँ।

अर्जुनमाली बोला—क्या मै भी भगवान के दर्शन के लिए आ सकता हूँ। सुदर्शन ने कहा—क्यों नहीं, अवश्य आ सकते हो। भगवान का दरबार सब के लिए खुला है। वहाँ अपावन व्यक्ति भी पावन बन जाता है। अर्जुन सुदर्शन के साथ चल पड़ा। भगवान महावीर की सेवा में पहुँच दोनों भगवान का धर्मोपदेश सुनने लगे। कथा के अन्त में अर्जुनमाली ने भगवान से कहा—भगवन् ! आपका उपदेश मुझे अत्यन्त रुचिकर लगा। जन्म मरण की व्याधि से मुक्ति पाने की औषधि आपका उपदेश ही है। मै आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ। भगवान ने उसे दीक्षा का मन्त्र सुना दिया। वह भगवान का शिष्य बन गया।

अर्जुनमाली जिस दिन से श्रमण बना उसी दिन से उसने बेले बेले का पारणा करने का अभिग्रह स्वीकार किया ।

प्रथम बेले के पारने के दिन अर्जुन अनगार ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। द्वितीय प्रहर में ध्यान किया और तृतीय प्रहर में वे आहार के लिए भगवान की आज्ञा लेकर राजगृह नगर की ओर चले। राजगृह में जाकर ऊँच नीच और मध्यम कुलों में आहार की गवेषणा करने लगे ।

अर्जुन अनगार को भिक्षा के लिए आता देख लोग उन्हें आहार दान की बजाय गालियाँ प्रदान करते । उन्हें एकान्त में लेजाकर खूब मार मारते । कोई कहता—इसने मेरे पिता को मार डाला है। कोई कहता इसने मेरी स्त्री की हत्या करदी है तो कोई कहता यह मेरे पुत्र का, भाई का हत्यारा है। कोई उन्हें दिल खोलकर गालियाँ देता और चाँटे लगाता। कोई धक्का मार कर घर से निकाल देता। उनके पात्र में आहार के स्थान में पत्थर, कूड़ा, कर्कट धूल मिलती थी। कदाचित् कोई सहृदय आहार दे भी देता तो दूसरा उसमें मिट्टी डालकर उसे अखाद्य बना देता। अर्जुन अनगार इस सारी स्थिति को अत्यन्त शान्त भाव से सहन करते । किंचित् मात्र भी मन में किसी के प्रति रोष नहीं आने देते। वे सोचते—यह सब मेरे कर्मों का ही फल है। मेरी क्रूरता से ये सभी पीड़ित थे। मैंने तो इनके परिवार के सदस्यों को जान से मारा है किन्तु ये बेचारे कितने भले हैं जो मुझे जीते जी छोड़ देते हैं। अर्जुन अनगार अपने किये पाप को खूब कोसते।

इस तरह छ मास तक लगातार लोगों के ताड़न, तर्जन को शान्त भाव से सहन किया। जिस भावना से संयम ग्रहण किया था उसी उत्कृष्ट भावना से वे जीवन के अन्तिम क्षण तक संयम की साधना करते रहे। अन्तिम समय में उन्होंने १५ दिन तक अनशन किया। शुद्ध भाव से केवलज्ञान प्राप्त कर वे सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए।

मंकाई गृहपति

राजगृह नगर में श्रेणिक महाराजा राज्य करते थे। उस नगर में एक समृद्धशाली मंकाई नाम का गृहपति रहता था।

एक बार भगवान महावीर राजगृह के गुणशील उद्यान में पधारे। भगवान का आगमन सुनकर परिषद् दर्शन करने के लिये निकली। मंकाई गाथापति बड़े वैभव के साथ भगवान के दर्शनार्थ घर से निकला। भगवान के पास पहुँच कर उसने भगवान को वन्दना की और एक ओर बैठ गया।

भगवान ने महती परिषद् के बीच मंकाई गृहपति को उपदेश दिया। जिसको सुनकर मंकाई गृहपति के हृदय में वैराग्य भाव उत्पन्न होगया। अपने घर आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर हजार मनुष्यों से उठाई जाने वाली शिविका पर बैठ कर दीक्षा लेने के लिये भगवान के पास आये और अनगार बन गये।

दीक्षा लेने के बाद मंकाई अनगार ने श्रमण महावीरस्वामी के तथारूप स्थविरों के पास सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कन्धकजी के समान संथारा करके विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

किंकिम गृहपति

ये राजगृह के निवासी थे। इन्होंने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंप कर भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। अन्त में विपुल पर्वत पर अन-शन कर सिद्धगामी हुए।

काश्यप गृहपति

राजगृह नगर में महाराज श्रेणिक राज्य करते थे। वहाँ काश्यप नाम का एक धनाढ्य गृहपति रहता था। उसने भगवान महावीर के समीप मंकाई गृहपति की तरह दीक्षा ग्रहण की। सोलह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन कर अन्त में विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध हुआ।

क्षेमक गृहपति

क्षेमक गृहपति काकन्दी नगरी के रहने वाले थे। इन्होंने भगवान महावीर के समीप दीक्षा लेकर सोलहवर्ष तक चारित्र का पालन किया और अन्त में विपुल गिरि पर सिद्ध हुए।

धृतिधर गृहपति

ये गृहपति भी काकन्दी के ही निवासी थे। इन्होंने भी भगवान के पास दीक्षा ग्रहण कर सोलह वर्ष तक चारित्र का पालन किया और अन्त में विपुल पर्वत पर सिद्ध गति प्राप्त की।

कैलास गृहपति

साकेत नाम के नगर में कैलास नामक धनाढ्य गृहपति रहता था। उसने भगवान महावीर का उपदेश श्रवण कर प्रव्रज्या ग्रहण की और बारह वर्ष तक चारित्र का पालन कर अन्त में विपुल गिरि पर सिद्धत्व किया।

हरिचन्दन गृहपति

ये साकेत नगरी के रहनेवाले थे। भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष तक चारित्र का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

बारवत्तक गृहपति

ये राजगृह के निवासी थे। इन्होंने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण कर बारह वर्ष तक चारित्र का पालन किया और अन्त में विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

सुदर्शन गृहपति

ये वाणिज्यग्राम के निवासी थे। इन्होंने भगवान महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण की और पांच वर्ष तक चारित्र का पालन किया। अन्त में विपुल पर्वत पर सिद्धत्व प्राप्त किया।

पूर्णभद्र गृहपति

ये वाणिज्यग्राम के रहनेवाले थे। भगवान के पास दीक्षा लेकर इन्होंने पाच वर्ष तक चारित्र का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

सुमनभद्र गृहपति

ये श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे। भगवान के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक इन्होंने श्रमणपर्याय का पालन किया और अन्त में विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

सुप्रतिष्ठ गृहपति

ये श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे। भगवान के पास दीक्षा लेकर बहुत वर्षों तक इन्होंने श्रमण पर्याय का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

मेघ गृहपति

ये राजगृह के रहनेवाले थे। भगवान के पास दीक्षा लेकर इन्होंने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और अन्तिम समय में एक मास का अनशन कर विपुल पर्वत पर मोक्ष गामी हुए।

अलक्ष

वाराणसी नाम की नगरी थी। वहाँ काममहावन नाम का उद्यान था। उस नगरी में अलक्ष नाम का राजा राज्य करता था।

भगवान महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वाराणसी के काममहावन उद्यान मे ठहरे। परिषद् उनके दर्शनों के लिये निकली। महाराजा अलक्ष भी राजसी ठाट से भगवान के दर्शन करने के लिये गया। वहाँ जाकर वन्दना नमस्कार कर भगवान की सेवा करने लगा। भगवान ने उपदेश फरमाया। उपदेश सुनकर राजा अलक्ष के हृदय में

वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया । भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर अलक्ष गृहस्थ जीवन का परित्याग करने का निश्चय कर और अपने ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी पर बैठाकर साधु होगया । साधु होने के बाद इसने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया तथा बहुत वर्षों तक चारित्र पर्याय का पालन किया । अन्त में अनशन और संलेखना पूर्वक विपुलगिरि पर्वत पर देहोत्सर्ग कर मोक्ष प्राप्त किया ।

अतिमुक्तककुमार

पोलासपुर नाम का एक अत्यन्त रमणीय नगर था। वहाँ विजय नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। श्रीदेवी से उत्पन्न विजयराजा के अतिमुक्तक नाम का पुत्र था । पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन नाम का उद्यान था । वह सर्व ऋतुओं के फल फूलों से समृद्ध था।

एक बार भगवान महावीर स्वामी अपने श्रमण परिवार के साथ पोलासपुर आये और श्रीवन उद्यान में ठहरे । गौतम इन्द्रभूति पोलास-पुर नगर में आहार के लिए गये । उस समय स्नान करके एवं वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर के आठवर्षीय कुमार अतिमुक्तक लड़के लड़कियों, बच्चे-बच्चियों के साथ इन्द्रस्थान पर खेल रहा था।

कुमार अतिमुक्तक ने जब इन्द्रभूति गौतम को भिक्षार्थ अटन करते हुए देखा तो उनके पास जाकर उसने पूछा -" आप कौन हैं ? इस प्रश्न पर इन्द्रभूति ने उत्तर दिया- 'मैं निर्ग्रन्थ साधु हूँ और आहार के लिये निकला हूँ। यह उत्तर सुन अतिमुक्तक बोला-भन्ते! मै आपको भिक्षा दूँगा। यह कहकर उसने गौतम स्वामी की उँगली पकड़ी और उन्हे अपने घर ले गया ।

गौतम इन्द्रभूति को अपने घर भिक्षार्थ आते देख अतिमुक्तक की माता श्रीदेवी अत्यन्त प्रसन्न हुई और तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दना कर उन्हें पर्याप्त भोजन पान दिया । अतिमुक्तक ने गौतमस्वामी से

पूछा-भगवान्! आप कहां ठहरे हैं? उत्तर में इन्द्रभूति ने ; कहा- मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक भगवान महावीर पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन में ठहरे हैं। वहीं पर मै भी ठहरा हूँ। इस पर अतिमुक्तक ने कहा- भगवन्! मै भी भगवान के पादवन्दन के लिए आपके साथ आना चहता हूँ। अतिमुक्तक कुमार गौतमस्वामी के साथ भगवान के दर्शनार्थ श्रीवन उद्यान में पहुँचा। भगवान ने उसे उपदेश दिया। भगवान के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर उसने अपने माता पिता से पूछकर दीक्षा लेने का निश्चय भगवान के सामने प्रकट किया।

वहाँ से लौट कर अतिमुक्तक कुमार घर आया और उसने अपने माता पिता से अपना निश्चय प्रकट किया। इस पर उसके माता पिता ने कहा-पुत्र! तुम अभी बच्चे हो। तुम धर्म के सम्बन्ध में क्या जानते हो? इस पर अतिमुक्तक ने कहा-"मैं जो जानता हूँ, उसे मैं नहीं जानता और जिसे मैं नहीं जानता उसे मै जाना हूँ।" इस पर उसके माता-पिता ने पूछा--पुत्र! "तुम यह कैसे कहते हो कि जो तुम जानते हो, उसे नहीं जानते और तुम जिसे नहीं जानते उसे तुम जाने हो?" माता पिता के प्रश्न पर अतिमुक्तक ने जवाब दिया- "मै जानता हू कि जिसका जन्म होता है वह अवश्य ही मरता है। पर वह कैसे कब और कितने समय बाद मरेगा, यह मैं नहीं जानता। मैं यह नहीं जानता कि किन आधारभूत कर्मों से जीव, नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देवयोनि में उत्पन्न होते हैं पर मैं जानता हूँ कि अपने ही कर्मों से जीव इन गतियों को प्राप्त होता है। इस प्रकार मैं सही सही नहीं बता सकता कि मै क्या जानता हूँ और मैं क्या नहीं जानता हूँ। उसे मै जानना चाहता हूँ इसलिए गृह त्याग करना चाहता हूँ और इसके लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ।"

पुत्र की ऐसी प्रबल इच्छा देख कर माता पिता ने कहा—"पर हम कम से-कम एक दिन के लिए अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठा देखना चाहते हैं।"

माता पिता की इच्छा रखने के लिए अतिमुक्तक एक दिन लिए गद्दी पर बैठा और उसके बाद बड़े धूमधाम से भगवान के पास जा कर दीक्षा ग्रहण की। अतिमुक्तक ८ वर्ष की अवस्था में मुनि बन गया।

एक बार खूब वृष्टि हो रही थी। बड़ीशंका निवारण के लिए अन्य मुनियों के साथ वृष्टि के थम जाने पर बगल में रजोहरण और हाथ में पात्र की झोली लेकर अतिमुक्तक मुनि निकला। जाते हुए उसने पानी देखा। उसने मिट्टी से पाल बान्धी और अपने काष्ट पात्र को डोंगी की तरह चलाना आरंभ किया और कहने लगा-यह मेरी नाव है। इस नाव के साथ में भी तिर रहा हूँ। इस प्रकार खेल खेलने लगा। उसे इस प्रकार खेलते देख स्थविर उसकी इस बालक्रीडा पर हँसने लगे भगवानके पास आये और भगवान से पूछने लगे-भगवन्! अतिमुक्तक कितने भवों के बाद सिद्ध होगा और सब दुःखों का अन्त करेगा?

इस पर भगवान ने कहा—मेरा शिष्य अतिमुक्तक इसी भव में सिद्ध होगा। तुम लोग उसकी निन्दा मत करो और उस पर मत हँसो। कुमार अतिमुक्तक इसी भव में सब दुःखों का नाश करने वाला है और इस बार शरीर त्यागने के बाद पुनः शरीर धारण नहीं करेगा।

भगवान की बात सुन कर सब स्थविर अतिमुक्तक मुनि की सार-संभाल रखने लगे और उनकी सेवा करने लगे। अपने साधु जीवन में अतिमुक्तक ने सामायिक आदि अंगसूत्रों का अध्ययन किया। कई वर्ष तक साधुजीवन में व्यतीत करने के पश्चात् इन्होंने गुणरत्न संवत्सर आदि कठोर तप किया। अन्त समय में मासिक संलेखना करके विपुलगिरि पर सिद्ध पद प्राप्त किया।

नंदिषेण

मगध देश में नन्दि नामक ग्राम था। यहाँ नंदिषेण नाम का एक

ब्राह्मण रहता था। इसकी माता का नाम वारुणि था। जब यह गर्भ में था तब ही इसके पिता की मृत्यु हो गई थी। यह अपने मामा यहाँ के ही बड़ा हुआ। मामा इसका विवाह अपनी पुत्री के साथ करना चाहता था। पुत्रियों ने नंदिषेण से विवाह करने से साफ इनकार कर दिया। मातुल दुहिताओं के इस अपमान से दुःखी हो कर नदिषेण ने नंदिवर्द्धन नाम के आचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। इसने यावज्जीवन तक षष्ठ भक्त तप करने का और ग्लान रोगी साधु की परिचर्या करने का अभिग्रह ग्रहण किया। इसकी परिचर्या की प्रशंसा सौधर्मेन्द्र ने देव सभा में की। एक देव को इन्द्र की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने नंदिषेण की परीक्षा करने का विचार किया। उसने दो श्रमणों का रूप बनाया। एक अतिसार रोगी का और दूसरा ग्लान का। अतिसार रोगी श्रमण एक वृक्ष के नीचे पड़ा रहा। दूसरा ग्लान श्रमण जहाँ नंदिषेण था वहाँ आया और बोला-नंदिषेण! एक अतिसार रोग से पीड़ित साधु वृक्ष के नीचे पड़ा है। उस समय नंदिषेण षष्ठ के पारणे की तैयारी में था। ग्लान साधु की यह बात सुनते ही वह अतिसार रोग से पीड़ित साधु को कंधे पर चढ़ा कर ले आया। मार्ग में रोगी साधु ने उसके सारे अग मलमूत्र से भर दिये। कहीं पैर ऊँचा नीचा पड़ता तो यह मुट्ठी से प्रहार करता था और गाली गलौज भी देता था। मुनि ने समभाव पूर्वक सब सहन किया। नंदिषेण साधु को उपाश्रय में रख पानी लाने के लिये निकला। देव ने सभी घर अनैषणीय कर दिये। दिन भर भूखे प्यासे घूमने पर भी पानी नहीं मिल सका। जब वापस लौट आया तो रोगी साधु ने उसका घोर अपमान किया। इतना होने पर भी नन्दिषेण जरा भी क्रुद्ध नहीं हुआ। देव नंदिषेण की इस परिचर्या पर प्रसन्न हुआ और खूब प्रशंसा कर चला गया। नंदिषेण शुद्ध संयम का पालन कर देवलोक गया और वहाँ से चवकर वसुदेव हो गया। ये वसुदेव कृष्ण वासुदेव के पिता थे।

मुनि कृतपुण्य

एक गरीब गोवालिन के पुत्र ने उत्सव के अवसर पर अन्य बालकों को खीर खाते हुए देखा और इसकी भी इच्छा खीर खाने की हुई। बालक की इच्छा देख मां ने अड़ोसी पड़ोसियों से चीज इकट्ठी कर खीर बनाई। बच्चे ने मासोपवासी मुनि को अत्यन्त भक्ति के साथ प्रथम बार परोसी गई खीर दे दी। जिससे इसने देव आयुष्य का बन्धन किया। मां ने पुनः बच्चे को खीर परोस दी। बालक ने इतनी अधिक खा ली कि वह उसी रात्रि में विशूचिका रोग से मर गया। मर कर देव बना।

वहाँ से आयुष्य पूरा कर राजगृह के प्रधान श्रेष्ठी धनेश्वर की पत्नी सुभद्रा के उदर से इसने जन्म लिया। बालक का नाम कृतपुण्य रखा गया। इसने कलाचार्य से कला पढ़ी। कृतपुण्य युवा हुआ। इसका श्रीद नामक श्रेष्ठी की धन्या नामक योग्य कन्या से विवाह हुआ। विशेष कुशलता प्राप्त करने के लिये इसे एक गणिका के घर रक्खा गया। इसने बारह वर्ष तक गणिका के घर रह कर अपने सारे घर को निर्धन बना दिया। इसके माता पिता मर गये। स्त्री के पास जो कुछ भी गहने आदि के रूप में धन बचा था वह भी उससे छीन कर वेश्या को दे दिया। अन्त में वेश्या ने कृतपुण्य को निर्धन जान उसे घर से निकाल दिया। कृतपुण्य गणिका के घर से निकल अपने घर पहुँचा और अपने घर को निर्धन देखकर बहुत दुःखी हुआ। कुछ काल के बाद कृतपुण्य धन कमाने के लिए एक सार्थवाह के साथ व्यापार करने के लिए रवाना हुआ। चलते चलते वह एक शहर के पास रात्रि में किसी देव मन्दिर में खाट बिछा कर सो गया।

उसी गाँव की एक वृद्धा का पुत्र अपनी चार पत्नियों को छोड़ कमाने के लिए परदेश गया था। वहाँ से वापस आते समय समुद्र

में वाहन के डूब जाने से मर गया। वृद्धा को इस बात का पता लगा। उसने सोचा कहीं राजा को मेरे अपुत्र होने की खबर मिल जाएगी तो मेरा सारा धन राजा ले जायगा। वृद्धा ने चारों बहुओं से कहा- देवमन्दिर के पास खटिये पर मेरा लड़का सोया हुआ है। तुम उसे उठा कर ले आवो। बहुओं ने वैसा ही किया। वह उस स्थविरा के घर बारह वर्ष तक रहा। उन चारों बहुओं के कृतपुण्य से चार-चार सतानें हुईं। वृद्धा ने अब कृतपुण्य का घर में रहना अनावश्यक समझ रात्रि के समय जब यह खटिये पर सोया हुआ था उस समय वृद्धा के कहने पर चारों स्त्रियों ने खाट उठा कर उसे पूर्व स्थान पर ले जाके रख दिया। साथ में रत्नों से भरे हुए लड्डू भी उस के खटिये पर रख दिये थे।

प्रातः काल जब कृतपुण्य की आँखे खुलीं तो वह अपने आपको एक मन्दिर में पड़ा पाया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा- वृद्धा अब मुझे अपने घर नहीं रखना चाहती इसीलिये उसने रात्रि में चुपके से उठाकर खटिया के साथ यहाँ लाकर रख दिया है। अब उस वृद्धा के घर जाना बेकार है। यह सोच ही रहा था कि कुछ आदमी कृतपुण्य को खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। बात यह हुई कि जिन व्यापारियों के साथ कृतपुण्य धन कमाने के लिये गया था वह व्यापारियों का काफिला उसी दिन राजगृह पहुँचा। कृतपुण्य की स्त्री ने जब अपने पति को उसमें नहीं पाया तो उसे बहुत चिन्ता हुई। उसने अपने पति की खोज में चारों ओर आदमी दौड़ाये। वे आदमी कृतपुण्य को खोजते-खोजते उसी मन्दिर में पहुँचे। वहाँ कृतपुण्य को खाट पर बैठा हुआ पाया। उसे समझा बुझा कर घर ले आये। कृतपुण्य अपनी पत्नी के साथ रहने लगा। कृतपुण्य का एक ग्यारह वर्षीय लड़का था। वह पाठशाला से पढ़कर आया और भूख के मारे रोने लगा। वह अपनी मां से बोला-"मां खाने को दो। मां ने उसे अपने पति के लाये हुए लड्डुओं में से एक लड्डू दे दिया। वह

लड्डू लेकर बाहर चला आया । उसे खाते समय उसमें से एक रत्न मिला । उस रत्न को उसने पाठशाला के अपने अन्य साथी विद्यार्थियों को बताया । उस रत्न को लेकर वे एक पूआ बेचने वाले के पास गये और उसे देकर बोले तुम हमें इसके बदले में प्रतिदिन पूए दिया करो उसने बात मंजूर कर अब वे प्रतिदिन पूएं वाले से पूआ पाने लगे । यह बात कृतपुण्य को मालूम हुई तो उसने सभी लड्डुओं में रत्न निकाल लिये उन रत्नों की सहायता से वह पुनः धनिक बन गया ।

एक बार राजा श्रेणिक का हस्तिरत्न सेंचनक नहाने के लिये नदी में गया और वहाँ उसे मगर ने पकड़ लिया । राजा ने हाथी को मगर से बचाने के लिये बहुत प्रयत्न किये किन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ । तब उसने अभयकुमार मन्त्री को बुलाकर कहा– अभयकुमार ! सेंचनक को किसी भी उपाय से बचाओ । मंत्री ने कहा— राजन् ! यदि कहीं जलकान्त मणि मिल जाय तो हाथी बच सकता है । राजा ने नगर भर में घोषणा करवाई कि जो कोई जलकान्तमणि को लाकर देगा उसे राजा अपना आधा राज्य और राजकन्या देगा ।

पूए बेचने वाले ने जब यह घोषणा सुनी तो वह रत्न लेकर राजा के पास उपस्थित हुआ । वह रत्न जलकान्तमणि ही था । राजा जलकान्तमणि को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने नदी में जलकान्त मणि को रख दिया । उस मणि के रखते ही सब जगह प्रकाश ही प्रकाश फैल गया । मगर मणि के प्रकाश से चौंधिया गया । जल को थल समझकर वह घबरा गया और उसने हाथी को छोड़ दिया ।

राजा ने पूएं बेचने वाले से पूछा–यह मणिरत्न तुझे कहा से मिला है । उसने कहा यह मणि मुझे कृतपुण्य के लड़के से मिली है। राजा ने कृतपुण्य को बुलाया और उसका बहुत सन्मान किया । राजा

ने अपने वचन के अनुसार कृतपुण्य को अपनी कन्या और आधा राज्य दे दिया । कृतपुण्य आनन्द के साथ रहने लगा । कृतपुण्य के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर उसकी चार बहुयें व गणिका भी आकर मिल गई और उसके साथ रहने लगीं ।

एक बार भगवान महावीर का राजगृह में आगमन हुआ । वहाँ उनका समवशरण हुआ । राजा श्रेणिक, मन्त्री अभयकुमार व नगर की जनता ने भगवान के दर्शन किये और उनका उपदेश सुना ।

भगवान के आने की बात जब कृतपुण्य को ज्ञात हुई तो वह भी बड़े ठाठ के साथ भगवान के समवशरण में पहुँचा । भगवान का उपदेश सुनने के बाद उसने अपनी विपत्ति और सम्पत्ति का कारण पूछा । उत्तर में भगवान ने उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त बताते हुए कहा—कृतपुण्य ! तू पूर्व जन्म में गोपालक बालक था । तू ने मासोप-वासी अनगार को खीर का दान दिया था जिसके प्रभाव से ही तुझे यह वैभव मिला है । भगवान के मुख से अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न होगया । उसने समस्त वैभव का परित्याग कर भगवान के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली । दीक्षित बनकर उसने सामायिकादि ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया । श्रमणधर्म का यावज्जीवन तक उत्तम रीति से पालन कर अन्त समय में एक मास का अनशन कर देवलोक में महर्द्धिक देव बना । वहाँ से चवकर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा ।

पद्मावती आदि कृष्ण की आठ पटरानियाँ

पद्मावती

द्वारिका नाम की नगरी थी। वहाँ कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम पद्मावती था। वह अत्यन्त सुकुमार और सुरूप थी।

उस समय में भगवान अरिष्टनेमि तीर्थङ्कर परम्परा से विचरते हुए वहाँ पधारे। भगवान का आगमन सुनकर कृष्ण वासुदेव उनके दर्शन के लिये गये और पर्युपासना करने लगे। भगवान का आगमन सुन कर पद्मावती रानी भी अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह धार्मिक रथ पर चढ़ कर भगवान के दर्शन करने के लिये गई। भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव तथा पद्मावती रानी को लक्ष्य कर परिषद् को धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर परिषद् अपने अपने घर लौट गई।

पद्मावती रानी भगवान अरिष्टनेमि के पास धर्म सुनकर और उसे अपने हृदय में धारण कर संतुष्ट और भावपूर्ण हृदय से भगवान को नमस्कार कर बोली–हे भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मेरी श्रद्धा है। आपका उपदेश यथार्थ है, जैसा आप फरमाते हैं वह तत्त्व वैसा ही है। इसलिये मैं कृष्ण वासुदेव को पूछकर आपके पास दीक्षा लेना चाहती हूँ। भगवान ने कहा–हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हारी आत्मा को सुख हो, वैसा करो किन्तु धर्मकार्य में प्रमाद न करो।

भगवान को वन्दन कर पद्मावती रानी धार्मिक रथ पर बैठी और अपने महल चली आई। वहाँ से वह कृष्ण वासुदेव के पास गई और हाथ जोड़कर विनम्र शब्दों में बोली–प्राणनाथ! मैं भगवान अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ इसलिये आप मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करें। पद्मावती के दृढ़ वैराग्य भाव को देखकर कृष्ण वासुदेव ने कहा–हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा कार्य करो।

उसके बाद कृष्णवासुदेव ने अपने सेवकों को बुलाया और उन्हें पद्मावती देवी के दीक्षा महोत्सव की तैयारी करने को कहा। कृष्ण वासुदेव की आज्ञा पर सेवकों ने दीक्षा महोत्सव की सम्पूर्ण तैयारी की और इसकी सूचना कृष्णवासुदेव को दी।

इसके बाद कृष्णवासुदेव ने पद्मावती को पाट पर बैठाकर एक-सौ आठ स्वर्णकलशों से स्नान करवाया और दीक्षा का अभिषेक किया। उसे सम्पूर्ण वस्त्र अलंकारों से अलंकृत करके हजार पुरुषों द्वारा उठाई जानेवाली पालखी पर बैठाया और द्वारिका नगरी के बीचोबीच होते हुए रैवत पर्वत के समीपस्थ सहस्राम्र उद्यान में उसे उत्सव पूर्वक ले आये। वहाँ आने के बाद पद्मावती पालखी से नीचे उतरी। कृष्ण वासुदेव पद्मावती को आगे करके जहाँ भगवान अरिष्टनेमि थे वहाँ आये और भगवान को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण करके वन्दन और नमस्कार किया और बोले-हे भगवन्! यह पद्मावती देवी मेरी पट-रानी है। यह मेरे लिये इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनाम है और मन के अनुकूल कार्य करने वाली है। मेरे जीवन में श्वासो-च्छ्वास के समान प्रिय है एवं मेरे हृदय को आनन्दित करने वाली है। अत· हे भगवन्! ऐसी पद्मावती देवी को मैं आपको शिष्या रूप भिक्षा देता हूँ। आप कृपाकर इस शिष्या रूप भिक्षा को स्वीकार करें। भगवान ने कृष्णवासुदेव की प्रार्थना को स्वीकार किया।

इसके बाद पद्मावती रानी ने ईशान दिशा की ओर जाकर अपने हाथों से अपने शरीर पर के सभी आभूषण उतार दिये और स्वय-मेव अपने केशों का पंचमुष्टक लुंचन करके भगवान के पास आई और वन्दन कर बोली-भगवन्! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुःख रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। अतः इस दु.ख समूह से छुट-कारा पाने के लिये मै आपके पास दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ। अतः आप कृपा करके मुझे प्रव्रजित कीजिए।

पद्मावती की प्रार्थना को सुनकर भगवान अरिष्टनेमि ने प्रव्रज्या दी और यक्षिणी आर्या के सुपुर्द कर दी। इसके बाद यक्षिणी आर्या ने पद्मावती देवी को प्रव्रजित किया और संयम में सावधान रहने की शिक्षा दी। संयम लेने के बाद पद्मावती साध्वी ने सामायिकादि ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया और साथ ही साथ उपवास बेला, तेला, चोला, पंचोला, पन्द्रह-पन्द्रह दिन की तपस्या करती हुई विचरने लगी। पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्र का पालन किया। अंत में एक मास की संलेखना की और साठ भक्त का अनशन करके जिस कार्य के लिये संयम ग्रहण किया था उसका अन्तिम श्वास तक आराधन किया और अन्तिमश्वास में केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुई।

महारानी पद्मावती की तरह कृष्ण की दूसरी पटरानी गौरी ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की और सिद्धि प्राप्त की।

इसी प्रकार कृष्णवासुदेव की गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी इन छ रानियों ने भी पद्मावती की तरह दीक्षा ग्रहण की और अन्तिम श्वास में केवली बन कर मोक्ष में गईं।

मूलश्री और मूलदत्ता

द्वारिका नगर के अधिपति कृष्णवासुदेव के पुत्र एवं जाम्बवती के आत्मज शाम्बकुमार थे। उनकी रानी का नाम मूलश्री था। मूलश्री अत्यन्त सुन्दरी और कोमलांगी युवती थी। उसने भगवान अरिष्टनेमि का उपदेश सुना। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और कृष्णवासुदेव से आज्ञा प्राप्त कर पद्मावती रानी की तरह इसने भी प्रव्रज्या ग्रहण की और सिद्धपद प्राप्त किया। शाम्बकुमार की दूसरी रानी मूलदत्ता ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की और मूलश्री की तरह सिद्धि प्राप्तकी।

दमयन्ती

विदर्भ देश की राजधानी का नाम था कुण्डिनपुर। वहाँ भीम नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम था पुष्प-

वती । वह सचमुच ही यथा नाम तथा गुणवाली थी । रानी पुष्प-वती ने एक रात्रि में दावानल से डरकर आते हुए दन्ती (हाथी) का स्वप्न देखा । वह गर्भवती हुई । यथा समय रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया । स्वप्न दर्शन के अनुसार बालिका का नाम दवदन्ती रक्खा । लाड़ प्यार से माता पिता उसे दमयन्ती कहने लगे । दम-यन्ती राजा की एक मात्र संतान थी जिससे उसका पालन-पोषण बड़े लाड़ चाव से हुआ था । दमयन्ती रूप और सौन्दर्य में अनुपम थी । उसका स्वभाव अत्यन्त विनम्र था और बुद्धि भी तीव्र थी । उसने थोड़े ही समय में स्त्री की चौंसठ कलाएँ सीख ली थीं ।

दमयन्ती का विवाह उसकी प्रकृति, रूप, गुण आदि के अनु-रूप वर के साथ हो , ऐसा सोचकर राजा भीम ने स्वयंवर द्वारा उसका विवाह करने का निश्चय किया । विविध देशों के राजाओं के पास आमन्त्रण भेजे । निश्चित तिथि पर अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में एकत्रित हो गये । कोशल देश (अयोध्या) का राजा निषध भी अपने पुत्र नल और कुबेर के साथ वहाँ आया ।

दमयन्ती के स्वयंवर के कारण राज सभा में बड़ी चहल पहल थी । विदर्भ के राजा भीम की राजकन्या दमयन्ती अपने हाथो में वरमाला लेकर स्वयंवर में घूम रही थी । दासी ने आगे बढ़ते हुए कहा--राजकुमारी ! ये कुसुमायुध के पुत्र महाराजा मुकुटेश हैं । अपनी वीरता के लिए बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं । दमयन्ती ने मुस्कुराकर देखा तो महाराजा मुकुटेश का सीना फूल उठा । पर दूसरे ही क्षण दम-यन्ती वहाँ से आगे बढ़ गई । यह जयकेशरी राजा के पुत्र चन्द्रराज हैं । यह धरणेन्द्र राजा के पुत्र एवं चम्पा के स्वामी भोगवंशी सुबाहु राजा हैं । दमयन्ती मुस्कुराती हुई आगे बढ़ती गई । पुन दासी ने कहा--देवी ! यह सुंसुमारपुर के स्वामी दधिपर्ण हैं । इस प्रकार वह बंग, मरुधर, कच्छ, द्रविड आदि अनेक देशों के अनेक महाराजाओं, राजकुमारों के सन्मुख होती हुई बराबर आगे बढ़ती गई । आगे अयोध्या

के राजा निषध के बड़े पुत्र नल बैठे हुए थे । दमयन्ती उसके पास आकर खड़ी हो गई । दासी ने परिचय देते हुए कहा—राजकुमारी ! ये महाराज निषध के जेष्ठ पुत्र नल हैं । ये अपने बल और पराक्रम में अद्वितीय हैं । दमयन्ती ने दर्पण में पड़नेवाले उनके शरीर का प्रतिबिम्ब देखा । रूप और गुण में नल अद्वितीय था । दमयन्ती ने उसे सर्व प्रकार से अपने योग्य वर समझा । नत मस्तक होकर लजीली आँखों से मुस्कुराते हुए अपनी वरमाला नल के गले में डाल दी । अन्य राजा गण देखते ही रह गये । जिस वरमाला के लिये अनेकों राजागण आश लगाये बैठे हुए थे अब वह नल के गले में पड़कर उनकी बन चुकी थी । दमयन्ती के योग्य चुनाव की सभी राजाओं ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की । राजा भीम ने अपनी पुत्री का विवाह बड़ी धूमधाम से किया तथा दहेज में हाथी, घोड़े, रथ, दास, दासी, सोना, चांदी, मणि, मुक्ता, वस्त्र, आभूषण आदि के रूप में बहुत सारा द्रव्य दिया ।

राजा निषध नव वर वधू के साथ आनन्द पूर्वक अपनी राजधानी अयोध्या में पहुँच गये । पुत्र के विवाह की खुशी में राजा निषध ने गरीबों को दान दिया और कैदियों को मुक्त किया । अपनी वार्धक्य अवस्था देखकर महाराज निषध को संसार से विरक्ति हो गई । अपने जेष्ठ पुत्र नल को राज्य का भार सौंप कर उन्होंने दीक्षा अंगीकार कर ली । मुनि बन कर वे कठोर तपस्या करते हुए आत्म कल्याण करने लगे ।

नल राजा बना और न्याय पूर्वक राज्य करने लगा । इन्होंने थोड़े समय में ही राज्य की सीमा का विशेष विस्तार किया । बड़े बड़े देशों को जीतकर उन देशों के राजाओं को अपना अनुचर बना लिया । प्रजा में संतोष था । वह प्रजा को पुत्रवत् प्यार करता था । दमयन्ती का भी स्त्री समाज पर अच्छा प्रभाव था । अपने ऊँचे विचार व विनम्र स्वभाव के कारण स्त्री समाज में उसका ऊँचा मान था । नल

और दमयन्ती की कीर्ति चारों ओर फैल गई । दुर्जनों का यह स्वभाव सा रहा है कि वे सज्जनों की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को कभी सहन नहीं करते । नल के छोटे भाई कुबेर को नल की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा से क्षोभ होने लगा । वह रात दिन यही सोचा करता था कि किसी भी प्रकार से नल को नीचा दिखाया जाय और अयोध्या का राज्य उससे छीन लिया जाय । नल इतना कुशल प्रशासक था कि कुबेर को अपनी मनमानी करने का अवसर ही नहीं मिलता था ।

मनुष्य जब तक असर्वज्ञ है तब तक उसमें कुछ न कुछ न्यूनता रहती है । न्यूनता के कारण मनुष्य का पतन सरलता से हो ही जाता है । नल में यद्यपि सभी गुण मौजूद थे किन्तु एक ऐसा दुर्गुण भी उनमें था जिसके कारण उनके विरोधी उनसे लाभ उठाने में सफल हो गये । नल को जुआ खेलने का व्यसन था । कुबेर ने इसका लाभ उठाया । कुबेर सोचने लगा—सैन्य बल और धन बल के अभाव में नल का मुकाबला करना तो मूर्खता होगी । जिस उपाय से दुर्योधन पाण्डवों से राज्य प्राप्त किया था उसी उपाय से मैं भी राजा नल से राज्य प्राप्त करूँगा ।

नल विशाल और उदार हृदय वाले थे । वह अपने लघुभ्राता कुबेर पर अतिशय प्रेम रखते थे अतएव कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि भाई कुबेर का हृदय अन्यथा भी हो सकता है ।

कुबेर पूर्व की अपेक्षा नल के प्रति अधिक प्रेम भाव दर्शाने लगा । अब दोनों भाइयों ने विश्राम के समय शतरंज खेलना शुरू कर दिया । धीरे धीरे यह व्यसन इतना अधिक बढ़ गया कि नल अपना अधिक समय इसी में बिताने लगा । अवसर पाकर एक दिन कुबेर ने नल से कहा—भाई ! आज तक हम शतरंज मनोरंजन के लिए खेला करते थे किन्तु इस तरह की हाथ घिसाई में क्या रखा है ? जब तक दाँव नहीं लगाया जाय खेलने में आनन्द नहीं आता । अब अगर शतरंज खेलना ही है तो हार जीत की शर्त पर ही खेला जाय अन्यथा

यह खेल बन्द कर दिया जाय । भाई की यह चुनौती नल ने स्वीकार कर ली ।

हार जीत के आधार पर जुआ खेलने का एक दिन निश्चित हुआ । राज्य के प्रतिष्ठित प्रजा जनों के सामने नल और कुबेर का शतरंज प्रारम्भ हो गया । पासे फिकने लगे । खेल ही खेल में खेल बढ़ता गया । नल खेलने में इतना तल्लीन हो रहा था कि वह आगे की सारी बाते भूल गया और राज्य के भागों को दाव में रखने लगा। कुबेर सावधान था । वह अपनी चालें बराबर चलता जाता था और उसमें सफल होता जा रहा था । उसने एक एक कर राज्य के सारे बड़े बड़े नगर और शेष सभी गाँव जीत लिये । नल अब राजा न रहकर एक सामान्य नागरिक बन गया ।

खेल समाप्त होगया । कुबेर जो चाहता था वह उसे मिल गया । नल को भिखारी बना देख कुबेर अब नल की हंसी उड़ाने लगा । जब मनुष्य अपनी ही मूर्खता से सब कुछ खो देता है तब उसके पास पश्चाताप और अनुताप के सिवाय और कुछ भी नहीं रहता । नल को अपनी गल्ती का भान होगया लेकिन "अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत"। अस्तु कुबेर ने अपने राजा होने व नल के वनवासी होने की एक साथ ही घोषणा करदी । नगर में हा हा कार मच गया । जिसने भी सुना उनके इस दुःखद घटना से हृदय रो उठे ।

नल को अपने पुरुषार्थ पर विश्वास था । वे बोल उठे-कुबेर ! चलो ठीक हुआ । अब मै अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करूंगा। राज्य के इस बन्धन को तुम संभालो । महापुरुष वही है जो सम्पत्ति और विपत्ति में एक रूप ही रहते हैं । नल तत्काल महल में आये और अपनी प्रियतमा दमयंती से विदाई मांगने लगे। नल के मुख से समस्त राज्य जूऐ में हार जाने की बात सुनकर दमयंती चौंक उठी

और दिल पर जबरदस्त धक्का लगा किन्तु नल के दृढ़ निश्चय के समक्ष एक सच्ची सहधर्मिणी के रूप में उसे अपने वास्तविक कर्तव्य का भान हो आया। वह बोली–प्राणनाथ! अब हमारा इस राज्य पर कोई अधिकार नहीं। हमें यह राज्य छोड़ कर अन्यत्र चला जाना चाहिये।

नल ने कहा–दमयन्ती! मै भी यही कह रहा हूँ कि अब हमें यहाँ नहीं रहना चाहिये। तुम अपने पिता के घर चली जाओ और मैं वनवास की ओर प्रस्थान करूँगा। समय पलटने पर मैं तुम्हें फिर से मिलूंगा।

दमयन्ती बोली–प्राणनाथ! हमारी राह अब दो नहीं हो सकतीं। पति का शरीर जिस तरफ जायगा उसकी छाया भी उसी के पीछे रहेगी। आप के सुख मे मैने साथ दिया है तो दुःख में भी आप की सहभागिनी बन कर रहूँगी। आपकी सेवा करना ही मेरा सब से बड़ा सुख है, कर्तव्य है। आप वन में कष्ट सहें और मैं पीहर में आनन्द करूँ यह कैसे होसकता है? आप विश्वास रखिए कि मैं आपका बोझ नहीं बनूँगी किन्तु सच्ची सहायिका के रूप में आपका साथ दूँगी। आप मुझे अपने से अलग न रखे। विवश होकर नल ने दमयन्ती की बात मानली और साथ में रखने के लिये राजी हो गया।

नल और दमयन्ती दोनों ही वन की ओर चल पड़े। स्वामि-भक्त प्रजा ने आँखों में आँसू बहाते हुए अपने प्रिय राजा नल को व रानी दमयन्ती को विदा दी। पुरवासी दूर तक नल को पहुँचाने आये। प्रजा न्यायी राजा नल को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी। अपने राजा के प्रति उसका अनुराग अनूठा था और वह उनका वियोग सह न सकी तो रो दी। प्रजा जनों से विदाई लेते हुए नल ने कहा–जो अनुराग आप लोगों का मेरे प्रति रहा है वैसा ही आप लोग कुबेर के प्रति रखना। उसके अनुशासन का तनिक भी उल्लंघन

मत करना। अगर अवसर आया तो मैं आप से पुनः मिलने का प्रयत्न करूँगा। जनता लौट आई और नल तथा दमयन्ती आगे बढ़े।

नल आगे बढ़ रहे थे और दमयन्ती उनके पीछे पीछे चल रही थी। कहां जाना है, कहां बसना है और क्या करना है यह उन्हें स्वयं मालूम नहीं था। कंटकों पत्थरों की राह चलते हुए दुर्गम घाटियों और भयानक वन्य पशुओं से घिरी अटवी को वे पार करते जारहे थे। धीरे धीरे सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ा और रात्रि का आगमन हुआ। दोनों ने एक वृक्ष के नीचे विश्राम लिया। नल ने वृक्षों के पत्तों को इकट्ठा किया और जमीन पर बिछा दिया। दमयन्ती खूब थकी हुई थी वह उस पर लेट गई और थोड़े ही क्षण में गहरी नींद में डूब गई। नल को नींद नहीं आई। वह दमयन्ती के सिरहाने बैठा बैठा सोचने लगा–फूल की शय्या पर सोनेवाली यह राजदुलारी पत्तों की शय्या पर भी उसी चैन से सोरही है। उसने दमयन्ती के पैर सहलाये। पत्थरों व कांटों से उसके पैर घायल थे। मुख की तरफ देखा तो कोमल मुख मुर्झाया हुआ था। वह फिर विचारों में डूब गया, दमयंती स्त्री है, स्वभाव से ही कोमल, फिर राजपुत्री और राजरानी। यह मार्ग के कष्टों को सह न सकेगी। दमयन्ती एक आदर्श पतिव्रता है। पति के सुख दुःख में अपना सुख दुःख मानने वाली भारतीय ललना है। यह मुझे इस स्थिति में हरगिज छोड़ने के लिये राजी नहीं होगी किन्तु इसके सुख के लिये इसे छोड़ देना ही उचित रहेगा। यदि मैं इसे छोड़ चला जाऊँ तो इसे विवश होकर पीहर जाना पड़ेगा। यही सोच नल खड़े होगये और अपनी सोई हुई प्रियतमा दमयन्ती को छोड़ चल पड़े। कुछ दूर जाने पर नल के पैर फिर रुक गये मन में सोचने लगे–दमयंती अकेली है, भूखी प्यासी है और यह भयानक हिंस्र पशुओं से भरा जंगल! मैं इस स्थिति में दमयन्ती को अकेला छोड़ उसके साथ विश्वासघात तो नहीं कर रहा हूँ? नल लौट आया और दमयंती के सिरहाने बैठ गया। दूसरे ही क्षण नल

पुनः सोचने लगा। दमयन्ती को सुखी करने के लिये उसका परित्याग आवश्यक है। कभी नल के मन में दमयन्ती के प्रति ममता उभर आती तो कभी वह वज्रतुल्य कठोर हो जाता। अन्ततः कठोरता ने कोमलता पर विजय पाली। नल ने दमयंती की साड़ी के एक छोर पर अन्तिम आदेश लिख ही दिया और पत्थर का कलेजा करके दमयन्ती को जंगल में निराधार छोड़ कर चल दिया। उस भयानक अटवी में दमयन्ती अब अकेली ही पड़ी हुई थी। नल तीव्रता से आगे बढ़ने लगा और एक बीहड़ अटवी में घुस गया।

दिन भर की थकी मादी दमयन्ती ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक भयानक स्वप्न देखा–फलों से लदे हुए एक आम्र वृक्ष पर वह फल खाने के लिये चढ़ी। उसी समय एक उन्मत्त हाथी आया। उसने आम्रवृक्ष को उखाड़ कर फेंक दिया। वह भूमि पर गिर पड़ी। हाथी उसकी ओर लपका और उसे अपनी सूंड में उठाकर भूमि पर पटका। इस भयंकर स्वप्न को देखकर वह चौक उठी। उठकर उसने देखा तो नल का कहीं पता नहीं था। नल को न देख दमयन्ती भयभीत हो उठी हृदय कांपने लगा। वह सहसा उठ बैठी और नल को आस पास की झाड़ियों में खोजने लगी। आवाज दे दे कर नल को बुलाने लगी किन्तु नल कहीं नजर नहीं आये। निराश, निरुपाय एवं किंकर्तव्यविमूढ़ दमयन्ती एक झाड़ के नीचे बैठ गई। उसने अपनी साड़ी का एक छोर बिछा कर जरा लेटना चाहा तो उस पर लिखा नल का सन्देश दिखाई पड़ा। दमयन्ती ने उसे पढ़ा और बेसुध होकर वहीं गिर पड़ी। धीरे धीरे जब उसे होश आया तो वह उठ खड़ी हुई और आँसुओं को अपने अञ्चल से पोंछती हुई नल द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चल पड़ी। पति के आदेश का पालन ही पत्नी का परम कर्तव्य है और उसका उसने पालन किया।

नल उस भयानक अटवी के एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा। अचानक उसके कानों में एक भयंकर चीत्कार सुनाई दी।

कोई कह रहा था—"नल ! आओ, शीघ्र बचाओ मैं आग में जल रहा हूँ । मुझे बचाओ ।" नल ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, किन्तु दूर से उसे कोई दिखाई नहीं दिया । नल आवाज को लक्ष्य करके चल पड़ा । ज्यों ही वह कुछ आगे बढ़ा तो उसने देखा कि एक झाड़ी में बैठा काला सर्प अपनी रक्षा के लिये पुकार रहा था । झाड़ी के चारों ओर भयंकर आग लग रही थी । सर्प की यह स्थिति देखकर नल का दयार्द्र हृदय पसीज गया । बिना किसी विलम्ब के नल ने एक बड़ी लकड़ी का सहारा देकर उसे बचा लिया किन्तु दूसरे ही क्षण फुत्कार करते हुए सर्प ने नल को काट लिया । नल उसी समय कूबड़ा और भील की तरह काला हो गया । अपने इस रूप को देखकर सहसा उसके मुँह से निकला–परोपकार का यह बदला ? सांप उसी समय अदृश्य हो गया और उसके स्थान पर एक दिव्य देव प्रकट हुआ । नल यह माया देखकर चकित हो गया । देव बोला–वत्स ! चिन्ता मत कर मैं तेरा पिता निषध हूँ और मरकर देव बना हूँ। मैने यह जो कुछ भी किया है वह तेरी भलाई के लिये ही किया है। पूर्व सचित पाप के उदय से ही तेरी यह अवस्था हुई है । तेरा यह संकट काल बारह वर्ष तक रहेगा ऐसी स्थिति में तेरा ,जीवन अधिक दुखी न बने इसलिये मैने तुझे काला और कूबड़ा बना डाला है । मैं तुझे श्रीफल और एक करंडिया देता हूँ जब तुझे अपना असली रूप बनाना हो तब इस श्रीफल से आभूषण और करंडिये से वस्त्र निकालकर पहन लेना । जिससे तू असली नल बन जावेगा । बारह वर्ष के बाद तू पुनः अयोध्या का राजा बनेगा और दमयन्ती भी तुझे मिल जायगी । इतना कहने के बाद देव ने नल को वहाँ से उठाया और सुंसुमारपुर के समीप लाकर छोड़ दिया । नल ने परोपकारी पितृदेव निषध को प्रणाम किया । देव पुत्र नल को मंगलकारी आशिर्वाद दे अदृश्य हो गया ।

कुब्जनल सुंसुमारपुर की ओर चल पड़ा । नगर के समीप पहुँचा तो वहाँ हाहाकार मचा हुआ था । लोग अपने प्राण बचाने के लिये इधर उधर

भाग रहे थे। एक उन्मत्त हाथी गजशाला से निकलकर सारे नगर में उत्पात मचा रहा था। उसके विकराल रूप से सारा नगर आतंकित था। राजा ने हाथी पकड़ने के लिये भारी पुरस्कार की घोषणा की थी किन्तु मौत के मुख में जाने की कोई भी हिम्मत नहीं कर सकता था। राजा दधिपर्ण भी हाथी के उत्पात से चिन्तित थे। नल हाथी को दमन करने की कला में प्रवीण था। वह हाथी की ओर बढ़ा। नल को सामने आता देख हाथी का उन्माद और भी बढ़ गया। वह प्रबल वेग से नल की तरफ झपटा। नल हाथी को सामने आता देख सावधान हो गया और एक तरफ हट गया। अब नल कभी हाथी के आगे और कभी उसके पीछे दौड़ने लगा। थोड़ी देर तक वह उसे इसी प्रकार इधर उधर भगाता रहा फिर मौका पाकर वह हाथी की पीठ पर उछलकर चढ़ गया और दूसरे क्षण अंकुश से हाथी के गंडस्थल पर प्रहार करने लगा। अंकुश के प्रहार से हाथी के का उन्माद उतर गया और वह नल का आज्ञांकित हो गया। सारा नगर इस रोमांचक दृष्य को देखकर अवाक् हो गया। हाथी को शान्त देखकर लोग हर्ष से नाच उठे और बोने का आभार मानने लगे।

कूबड़े को लेकर राजपुरुष महाराज दधिपर्ण के पास आये और उन्होंने कूबड़े के पराक्रम की कथा कह सुनाई। आगन्तुक कूबड़े के पराक्रम को सुनकर महाराज दधिपर्ण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने नल का जनसमूह के समक्ष खूब सम्मान किया और अपनी घोषणा के अनुसार इनाम दिया। इसके बाद राजा ने नल से पूछा—सज्जन ! आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं ? नल ने अपना वास्तविक परिचय देना उचित नहीं समझा वह अपने आपको छिपाता हुआ बोला—स्वामी ! मै अयोध्या के राजा नल का रसोइया हूँ। नल जुए में अपना सारा राज्य हार गये हैं। वे अपनी पत्नी दमयन्ती के साथ अन्यत्र चले गये हैं। नल के चले जाने से मुझे बड़ा दुःख हुआ और

मैं यहाँ चला आया हूँ । स्वामी ! आप मुझे अपने आश्रय में रखें । मैं आपको उत्तम से उत्तम भोजन बना कर खिलाऊंगा। महाराज ने उसे अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया । समय समय पर नल महाराज को सूर्यपाक आदि विविध भोजन बनाकर खिलाता। नल के व्यवहार से महाराज दधिपर्ण उसपर बड़े खुश रहने लगे ।

पति की आज्ञा को शिरोधार्य करती हुई दमयन्ती पिता के घर की ओर चल पड़ी। वह अकेली थी सुनसान जंगल था । हिंस्र पशुओं की आवाज आ रही थी फिर भी वह धीरज के साथ कदम बढ़ा रही थी । मार्ग में एक सार्थवाह से भेंट हुई। सार्थवाह सदाचारी व धर्म-निष्ठ था । उधर कुछ डाकुओं ने सार्थवाह को लूटना चाहा । दम-यन्ती ने उन्हें ललकारा । सती दमयन्ती के सतीत्व के प्रभाव से डाकू डर गये और भाग खड़े हुए । सार्थवाह का माल और प्राण बच गये। सार्थवाह ने सती को खूब धन्यवाद दिया और उसे साथ में आने की प्रार्थना करने लगे । दमयन्ती ने सार्थवाह के साथ जाना उचित नहीं समझा । नम्रभाव से सार्थ की प्रार्थना को अस्वीकृत कर दिया ।

दमयन्ती गंतव्य मार्ग की तरफ अकेली ही आगे बढ़ रही थी। मार्ग में एक भयानक राक्षस मिला । वह तीन दिन से भूखा था । सती को देखते ही वह उसे खाने के लिये झपटा। दमयन्ती राक्षस को सामने आता देख नमस्कार मंत्र का जप करने लगी। वह जरा भी नहीं घबराई । अत्यन्त शान्त मुद्रा में राक्षस से बोली-राक्षस ! तू मुझे खाना चाहता है । अगर मेरे देह से तेरी भूख शान्त होती है तो मुझे जरा भी दुःख नहीं होगा किन्तु यह याद रख कि हिंसा के फल सदा कड़वे होते हैं । हिंसा के कारण ही जीव अनन्त संसार में परिभ्रमण करता है । राक्षस से देव बनने का सब से अच्छा उपाय अहिंसा दया और प्रेम ही है । सती के इस उपदेश से राक्षस प्रभावित हो गया और वह सदा के लिये अहिंसक बनगया। उसने अपना

दिव्य देवरूप प्रकट किया और सती को प्रणाम कर उसकी प्रशंसा करने लगा। सती ने देव से पूछा—देव! पतिदेव के दर्शन कब होंगे? देव ने कहा-सती! आपको बारह वर्ष तक कष्ट सहन करना पड़ेगा उसके बाद पति का मिलाप होगा और पुनः राजरानी बनोगी।

दमयन्ती आगे चली। मार्ग में सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि हिंसक प्राणी मिले किन्तु उसपर किसी ने भी आक्रमण नहीं किया। वर्षा आरम्भ होगई थी अत चलना कठिन होगया। पहाड़ों के बीच एक सुन्दर गुफा थी। वह गुफा में पहुँची। उसने वहीं वर्षा काल व्यतीत करने का निश्चय किया। स्वाध्याय, ध्यान और तप में अपना समय विताने लगी। वह सार्थ भी दमयन्ती को खोजते खोजते गुफा में आ पहुँचा। उस गुफा के आस पास अनेक तापस गण रहते थे। वे भी वर्षा से त्राण पाने के लिये गुफा में आ पहुँचे। सभी दमयन्ती के विशुद्ध चरित्र व तत्वज्ञान से प्रभावित थे। दमयन्ती सभी को निर्ग्रन्थ प्रवचन के रहस्य को समझाती। दमयन्ती के प्रवचनों से सभी आर्हत् भक्त हो गये।

एक रात्रि में समीप के एक पर्वत में दिव्य प्रकाश दिखाई दिया। उस प्रकाश में देवी देवताओं का आगमन स्पष्ट रूप से दिखाई देनेलगा। उस पर्वत में क्या है यह देखने से लिये दमयन्ती, सार्थ और तापस प्रकाश की दिशा की ओर गये। वहाँ एक पर्वत की गुफा में सहकेशर नाम के मुनिवर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। देवतागण सहकेशर केवली को वन्दन करने वहाँ आरहे थे। वह वहाँ पहुँची और मुनि को वन्दना कर उसने अपना पूर्व भव पूछा। मुनिने कहा—"देवी! सुनो—

जम्बूद्वीपमें भरत क्षेत्र के अन्तर्गत संगर नाम का नगर था। वहाँ ममन नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी स्त्री का नाम वीरमती था। एक समय राजा और रानी दोनों कहीं बाहर जाने के लिये तैयार हुए इतने में सामने एक मुनि आते हुए दिखाई दिये। राजा

रानी ने इसे अपशकुन समझा और अपने सिपाहियों द्वारा मुनि को पकड़वा लिया और बारह घंटे तक उन्हें वहाँ रोक रखा। मुनि के चरित्र और तप को देखकर राजा और रानी का क्रोध शान्त होगया। उन्हें सद्बुद्धि आई। मुनि के पास आकर वे अपने अपराध के लिये बार बार क्षमा मांगने लगे। मुनि ने उन्हे धर्मोपदेश दिया जिससे राजा और रानी दोनों ने जैन धर्म स्वीकार किया और वे दोनों शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करते हुए समय विताने लगे। आयुष्य पूर्ण होने पर ममन का जीव राजा नल हुआ और रानी वीरमती का जीव तू दमयन्ती हुई। निष्कारण मुनिराज को बारह घंटे तक रोक रखने के कारण इस जन्म में तुम पति पत्नी का बारह वर्ष तक वियोग रहेगा। यह फरमाने बाद केवली भगवान के शेष चार अघात कर्म नष्ट हो गये और वे उसी समय मोक्ष पधार गये।

केवली भगवान द्वारा अपने पूर्वभव का वृतांत सुनकर दमयन्ती कर्मों की विचित्रता पर बार बार विचार करने लगी। अशुभ कर्म बांधते समय प्राणी खुश होता है किन्तु जब उनका अशुभ फल उदय में आता है तब वह महान् दुखी होता है।

ये सिंहकेशर मुनि दमयन्ती के देवर कुबेर के ही पुत्र थे। इन्होंने यशोभद्र मुनि के समीप अयोध्या में दीक्षा ग्रहण की थी। कर्मों का क्षय करने के लिये सिंहकेशर मुनि वन में जाकर कठोर तप करने लगे। एक बार ध्यान करते समय परिणामों की विशुद्धता के कारण वे क्षपक श्रेणी में चढे और घातिककर्मों का नाश कर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिय देव भी आये थे। अपने ही कुलके मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ जान दमयन्ती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मुनि को वन्दन कर वह अपने स्थान लौट आई और वर्षाकाल बीतने पर धनदेव सार्थ के साथ चल दी। धनदेव सार्थ चलते चलते अचलपुर पहुँचा और नगर के बाहर ठहर गया।

अचलपुर में ऋतुपर्ण राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चन्द्रयशा था। उसे मालूम पड़ा कि नगर के बाहर एक सार्थ ठहरा हुआ है। उसमें एक कन्या है। वह देवकन्या के समान सुन्दर है। कार्य में बहुत होशियार है। उसने सोचा यदि उसे अपनी दानशाला में रख दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। रानी ने नौकरों को भेजकर उसे बुलाया और बातचीत करके उसे अपनी दानशाला में रखदिया।

चन्द्रयशा दमयन्ती की मौसी थी। चन्द्रयशा ने उसे नहीं पहिचाना। दमयन्ती अपनी मौसी और मौसा को भली प्रकार पहिचानती थी किन्तु उसने अपना परिचय देना उचित नहीं समझा। वह दानशाला में काम करने लग गई। वह आने जाने वाले अतिथियों को दान देती और साथ ही अपने पति का पता लगाने का भी प्रयत्न करती।

एक वार कुण्डिनपुर का एक ब्राह्मण अचलपुर आया। राजा रानी ने उचित सत्कार करके महाराज भीम और रानी पुष्पवती का कुशल समाचार पूछा। कुशल समाचार कहने के बाद ब्राह्मण ने कहा कि राजा भीम ने राजा नल और दमयन्ती की खोज के लिये चारो दिशाओं में अपने दूत भेज रखे हैं किन्तु अभी उनका कहीं भी पता नहीं लगा है। सुनते हैं कि राजा नल दमयन्ती को जगल में अकेली छोड़कर चला गया है। इस समाचार से राजा भीम की चिन्ता और भी बढ़ गई है। नल और दमयन्ती की बहुत खोज की किन्तु उनका कहीं भी पता नहीं लगा आखिर निराश होकर अब मैं वापिस कुण्डिनपुर लौट रहा हूँ।

भोजन करके ब्राह्मण विश्राम करने चला गया। शाम को घूमता हुआ ब्राह्मण राजा की दानशाला में पहुँचा। दान देती हुई कन्या को देखकर वह आगे बढ़ा। वह उसे परिचित सी मालूम पडी। नजदीक पहुँचने पर उसे पहिचानने में देर न लगी। दमयन्ती ने भी ब्राह्मण को पहिचान लिया।

ब्राह्मण ने आकर रानी चन्द्रयशा को खबर दी । वह तत्काल दानशाला में आई और दमयन्ती से प्रेम पूर्वक मिली । न पहिचा-नने के कारण उसने दमयन्ती से दासी का काम लिया था इसलिए वह पश्चाताप करने लगी और दमयन्ती से अपने अपराध के लिये क्षमा मांगने लगी । रानी चन्द्रयशा दमयन्ती को साथ में लेकर महल में आई । इस बात का पता जब राजा ऋतुपर्ण को लगा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ ।

दमयन्ती ने कुछ दिन वहाँ रहने के बाद कुण्डिनपुर जाने की अपनी इच्छा प्रकट की । राजा ऋतुपर्ण ने ब्राह्मण के साथ दमयन्ती को बड़ी धूमधाम से कुण्डिनपुर की ओर रवाना किया । यह खबर राजा भीम के पास पहुँची । उसे प्रसन्नता हुई । कुछ सामन्तों को उसके सामने भेजा । महलो में पहुँच कर दमयन्ती ने माता पिता को प्रणाम किया । इसके बाद उसने अपनी सारी दुःख कहानी कह सुनाई । किस तरह राजा नल उसे भयंकर वन में अकेली सोती हुई छोड़ गया और किस तरह से उसे भयंकर जङ्गली जानवरों का सामना करना पड़ा, आदि वृत्तान्त सुनकर राजा और रानी का हृदय कांप उठा । उन्होंने दमयन्ती को सांत्वना दी और कहा—पुत्रि ! तू अब यहाँ शान्ति से रह । नल राजा का शीघ्र पता लगाने के लिये प्रयत्न किया जायगा । दमयन्ती शान्तिपूर्वक वहाँ रहने लगी । राजा भीम ने नल की खोज के लिये चारों दिशाओं में अपने आदमियों को भेजा ।

महाराजा भीम भी बाहर से आने वाले व्यापारी से पहला प्रश्न नल के सम्बन्ध में पूछता । एक दिन सुंसुमारपुर का एक व्यापारी उधर आ निकला । राजा ने उससे भी वही प्रश्न पूछा । व्यापारी ने कहा—राजन् ! मैंने नल को तो कहीं देखा नहीं किन्तु हमारे महाराजा दधिपर्ण के यहाँ एक नल रसोइया है । वह वर्ण से काला और शरीर से कूबड़ा है किन्तु है बड़ा साहसी । वह सूर्यपाक रसोई बनाना भी

जानता है। एक दिन जब शहर में एक मदमत्त हाथी भयंकर उत्पात मचा रहा था तो उस कुब्ज ने गजदमनी विद्या का प्रयोग कर लोगों को भयंकर कष्ट से उबार लिया था। वह अपने आपको नल का हुण्डिक नाम का रसोइया बताता है और वह यह भी कहता है कि 'मैंने सूर्यपाक और गजदमनी विद्या नल से सीखी है।' पास में बैठी हुई दमयन्ती ने यह बात सुनी। उसे कुछ विश्वास हुआ कि वह राजा नल ही होना चाहिये। सूर्यपाक और गजदमनी विद्या के ज्ञाता नल ही हैं। हो सकता है कि उन्होंने अपने शरीर का रूप किसी विद्या की सहायता से बदल डाला हो। दमयन्ती ने महाराज भीम से कहा-- पिताजी! महाराजा दधिपर्ण के रसोइया नल ही हैं क्योंकि ये दो विद्याएँ उनके सिवाय अन्य कोई भी नहीं जानता। उन्होंने गुप्त रहने के लिये ही यह रूप परिवर्तन किया है। हमें शीघ्र ही पता लगाना चाहिये।

दमयन्ती के कहने पर राज भीम को भी विश्वास हो गया किन्तु वे एक परीक्षा और करना चाहते थे। उन्होंने कहा--राजा नल अश्वविद्या में विशेष निपुण है। यह परीक्षा और कर लेनी है। इससे पूरा निश्चय हो जायगा। फिर संदेह का कोई कारण नहीं रहेगा इसलिए मैने एक उपाय सोचा है--यहाँ से एक दूत सुंसुमारपुर भेजा जाय। उसके साथ दमयन्ती के स्वयंवर की आमंत्रणपत्रिका भेजी जाय। दूत को स्वयवर की निश्चित तिथि के एक दिन पहले वहाँ पहुँचना चाहिये। यदि वह कुबड़ा नल होगा तब तो अश्वविद्या द्वारा वह राजा दधिपर्ण को यहाँ एक दिन में पहुँचा देगा। राजा भीम की यह युक्ति सबको ठीक जँची। तुरन्त ही एक दूत को सारी बात समझाकर सुंसुमारनगर के लिये रवाना कर दिया। निश्चित तिथि के एक दिन पूर्व दूत वहाँ पहुँच गया। राजा दधिपर्ण के पास जब वह पत्रिका लेकर पहुँचा तो राजा उसे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पत्रिका

में लिखा था–'दमयन्ती ने लम्बे समय तक नल की प्रतीक्षा की किन्तु उनका कहीं पता नहीं लगा । आखिर निराश होकर दमयन्ती ने स्वयंवर में दूसरा पति चुन लेने का निश्चय किया है। उस अवसर पर आपकी उपस्थिति अनिवार्य है। अतः आप शीघ्र ही स्वयंवर में पधारने की कृपा करें ।" दमयन्ती जैसी रूपवती को पाने की कौन इच्छा नहीं करता किन्तु समय की अल्पता में वहाँ पहुँच पाना भी बहुत कठिन था । केवल एक दिन बीच में था और कुण्डिनपुर बहुत दूर था । दधिपर्ण उदास हो गया ।

इधर जब नल ने दमयन्ती का पुनः स्वयंवर सुना तो आश्चर्य चकित हो गया । वह मन में सोचने लगा—दमयन्ती जैसी आर्य कन्या का पुनः स्वयंवर कैसे संभव हो सकता है । इसमें अवश्य कोई न कोई कारण होना चाहिये । दमयन्ती आदर्श पतिव्रता है । वह यह कभी नहीं कर सकती । मुझे स्वयं जाकर उसका पता लगाना चाहिये । वह दधिपर्ण के पास आया। दधिपर्ण को चिन्तित देखकर कुब्ज राजा से बोला–स्वामी ! आज आप चिन्तित क्यों दिखाई दे रहे हैं ? दधिपर्ण ने हृदय खोलकर सब बात कह दी। कुब्ज ने कहा–स्वामी ! आप चिन्ता न करें । अश्वविद्या की सहायता से आपको समय के पूर्व ही कुण्डिनपुर पहुँचा दूँगा । आप चलने की तैयारी करें ।

कुब्ज की बात सुनकर राजा दधिपर्ण बड़ा खुश हुआ । वह तत्काल तैयार हो गया और सजधज कर एक सुन्दर रथ पर आ बैठा। कुब्ज सारथी बन गया। राजा के रथ पर बैठते ही अश्व हवा से बातें करने लगे । पवन वेग से रथ चलते देख दधिपर्ण मन ही मन खुश हुआ और कुब्ज की प्रशंसा करने लगा ।

राजा कुब्ज की अश्वविद्या की प्रशंसा करता हुआ बोला–"कुब्ज ! तुम जिस प्रकार अश्वविद्या में कुशल हो उसी प्रकार मैं भी संख्याविद्या में निपुण हूँ । बड़े से बड़े वृक्षों के फलों को निमिष मात्र में गिन देता हूँ । यदि समय होता तो मैं भी चमत्कार दिखलाता ।"

कुब्ज ने तत्काल रथ रोक दिया और बोला–"अभी समय बहुत है। अपनी विद्या का मुझे भी चमत्कार दिखाये।" पास ही एक बहेड़ा का वृक्ष था। उसने पूछा–स्वामी! बताइये इस वृक्ष पर कितने फल हैं? राजा ने कहा—अठारह हजार फल हैं। कुब्ज ने तत्काल उस वृक्ष को गिरा दिया और सभी ने मिलकर उसे गिना तो पूरे अठारह हजार फल निकले।

एक क्षण में वृक्ष के फलों को गिनना कोई साधारण काम नहीं था। कुब्ज इस विद्या से बड़ा चमत्कृत हुआ। उसने राजा से कहा–स्वामी! यह विद्या आप मुझे भी सिखा दीजियेगा। मै आपका बहुत एहसानमंद होऊँगा। राजा ने कहा—कुब्ज! अगर तू मुझे अश्व-विद्या सिखा दे तो मै भी तुझे संख्याविद्या सिखा सकता हूँ। कुब्ज ने यह बात मानली। दोनों ने प्रेमपूर्वक अपनी विद्याओं का आदान प्रदान किया और आगे चल पड़े। देखते ही देखते कुण्डिनपुर पहुँच गये। राजा भीम ने उनका उचित सन्मान करके उत्तम स्थान में ठहराया। राजा दधिपर्ण ने देखा कि शहर में स्वयंवर की कुछ भी तैयारी नहीं है फिर भी शान्तिपूर्वक अपने नियत स्थान पर ठहर गये।

महाराज भीम कुबड़े को भी दधिपर्ण के साथ देख बहुत अधिक प्रसन्न हो रहे थे अब उन्हें किसी भी प्रकार का सन्देह न रह गया था। भीम ने कुबड़े से सूर्यपाक बनवाया। सूर्यपाक खाकर भीम को पूरा विश्वास होगया कि यह रसोइया महाराजा नल ही है अन्य कोई नहीं।

राजा भीमने शाम को कुबड़े को अपने महल में बुलाया और कहा–हमने आपके गुणों की प्रशंसा सुनली है तथा हमने स्वयं भी परीक्षा करली है। राजा नल के जो तीन विशिष्ट गुण हैं—सूर्यपाक रसोई बनाना, हाथी को वश में करना, और अश्वविद्या को जानना–वे आप में भी उसी तरह पाये जाते हैं। अतः आप राजा नल ही

हैं। अब हम लोगों पर कृपाकर आप अपना असली रूप प्रकट कीजिए।

राजा भीम की बात सुनकर कुब्ज बोला–राजन्! आपको भ्रम हो गया है। कहाँ राजा नल अनुपम सौन्दर्यवान और कहा मै बदरूप कूबड़ा। विपत्ति के मारे राजा नल कहीं जंगलों में भटक रहे होंगे। आप वहीं खोज करवाइये।

भीम बोला–नरवर! आप स्वयं बुद्धिमान है। स्वजनों को विशेष कष्ट में डालना उचित नहीं है। यह कहते–कहते भीम का गला भर आया। दमयन्ती की आँखों से अश्रु बह रहे थे। कुब्ज नल अधिक समय तक अपने को छिपा नहीं सके। वह तत्काल अपनी रूप परावर्तिनी विद्या के बल से असली नल के रूप में प्रकट हो गये। नल को असली रूप में देखकर भीम पुलकित हो उठा दमयन्ती की खुशी का पारावार न था। दमयन्ती की बहुत वर्षों की साध पूरी हो गई। दमयन्ती के जीवन में पुनः वसन्त आ गया।

राजा दधिपर्ण को जब यह ज्ञात हुआ कि वह कुब्ज तो राजा नल ही था और उसे यथार्थ में पाने के लिये ही यह उपक्रम किया गया था तो वह भय मिश्रित लज्जा से झुक गया। दमयन्ती को पाने के अपने कुत्सित विचारों पर उसे घृणा हुई। वह तत्काल नल के पास आया और अपने अपराध के लिये बार-बार क्षमा माँगने लगा। नल ने उठाकर उसे अपने गले लगा लिया।

बारहवर्ष की अवधि समाप्त होगई। राजा भीम और दधिपर्ण की विशाल सेना को साथ में लिये राजानल अयोध्या की ओर चले। कुबेर को जब इस बात का पता लगा तो वह भी अपनी विशाल सेना के साथ नल के सामने आया। दोनों में युद्ध हुआ। कुबेर हार गया। नल ने उसे बन्दी बना लिया। नल पुनः अयोध्या का राजा बना। नल हृदय के बड़े विशाल थे। उसने कुबेर को मुक्त कर दिया और उसे अपने साथ में ही सम्मान पूर्वक रखने लगा।

महाराज नल व महारानी दमयन्ती न्याय पूर्वक राज्य करते हुए प्रजा का पालन करने लगे ।

कुछ समय के बाद दमयन्ती ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम पुष्कर रखा गया । जब राजकुमार पुष्कर युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसे राज्यभार सौंप कर राजा नल ने जिनसेन नाम के ज्ञानी स्थविर के पास दीक्षा ग्रहण करली । दमयन्ती ने भी साध्वी से दीक्षा ले ली ।

कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन कर नल और दमयन्ती देवलोक में गये । नल सौधर्म इन्द्र का लोकपाल धनद हुआ और दमयन्ती उसकी देवी बनी । वहाँ से दमयन्ती देवी, देव आयु को पूर्णकर पेढालपुर के राजा हरिश्चन्द्र की रानी लक्ष्मीवती के गर्भ में कन्या रूप से उत्पन्न हुई । जन्म होने के बाद कन्या का नाम कनकवती रखा । युवावस्था में कनकवती का विवाह दसवें दशार्ह वासुदेव के साथ हुआ ।

एक बार सागरचन्द्र के पौत्र बलभद्र के स्वर्गवास से कनकवती रानी को बड़ा दुःख हुआ । ससार की असारता का विचार करते-करते उसे केवलज्ञान होगया । फिर उसने नेमिनाथ के समीप मुनिवेष धारण किया और एक मास का अनशन कर निर्वाण पद प्राप्त किया ।

साध्वी सुकुमालिका

(पूर्व जन्म के लिये देखें नागश्री पृष्ठ ४०७)

नरक और तिर्यञ्च गति में बार बार जन्म लेती हुई और भीषण कष्ट सहती हुई नागश्री ने चंपानगरी में सागरदत्त श्रेष्ठी के घर कन्या के रूप में जन्म लिया । धन सम्पति के साथ उसे सुन्दर और सुकुमार शरीर भी मिला । उसका नाम सुकुमालिका रक्खा गया ।

सुकुमालिका पांच धायमाताओं की देख रेख में द्वितीया के चन्द्र की भाँति बढ़ने लगी। उसने क्रमशः शैशव अवस्था को पारकर यौवन में प्रवेश किया। अब माता पिता को उसके विवाह की चिन्ता होने लगी।

उसी नगरी में जिनदत्त नाम का एक धनिक सार्थवाह रहता था। उसकी भद्रा नाम की पत्नी और सागर नाम का लड़का था।

एक बार जिनदत्त सागरदत्त के घर के पास से जा रहा था। उस समय सुकुमालिका दासियों के साथ छत पर सुवर्ण की गेंद से क्रीड़ा कर रही थी।

जिनदत्त सार्थवाह ने सुकुमालिका को देखा। वह उसके रूप और यौवन पर आश्चर्यचकित हो गया। उसने अपने सेवकों से पूछा—यह लड़की कौन है? इस पर सेवकों ने उत्तर दिया-यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री है और इसका नाम सुकुमालिका है।

जिनदत्त घर आया। सुन्दर कपड़े व अलंकार पहन कर अपनी मित्र मंडली के साथ सागरदत्त श्रेष्ठी के घर गया। वहाँ उसने अपने पुत्र सागर के लिये सुकुमालिका की मंगनी की।

सागरदत्त ने जिनदत्त से कहा—सुकुमालिका पुत्री हमारी एकलौती सन्तति है वह हमें अत्यन्त प्रिय है। हम उसे एक क्षण के लिये भी आँखों से ओझल नहीं करना चाहते। हां! आप का पुत्र सागर यदि हमारा घर जमाई बनना स्वीकार करे तो हम अपनी पुत्री का विवाह सागर के साथ करने के लिये राजी हैं।

जिनदत्त ने पुत्र की सम्मति से यह बात स्वीकार करली। उसके बाद शुभ मुहूर्त में जिनदत्त ने अपने पुत्र सागर को सजाया और बरात के साथ बड़ी धूम धाम से सागरदत्त के घर पहुँचा। वहाँ सागरदत्त ने बरात के साथ सागरपुत्र का स्वागत किया।

तदनन्तर सागरपुत्र को सुकुमालिका पुत्री के साथ पाट पर बिठलाया और चान्दी तथा सोने के कलशों से दोनों को नहलाया गया।

उन्हें सुन्दर वस्त्र और अलंकार पहनाये गये । फिर होम किया गया और दोनों का पाणिग्रहण कराया गया ।

सागर के हाथ में ज्यों ही सुकुमालिका का हाथ रखा गया त्यों ही सागर के शरीर में सैकड़ों विच्छुओं ने डंक मार दिया हो ऐसी वेदना होने लगी किन्तु उस समय सागरदत्त विना इच्छा के विवश होकर उस हस्तस्पर्श की पीड़ा का अनुभव करता हुआ थोड़ी देर बैठा रहा ।

विवाह की विधि सम्पन्न हुई । सव अपने अपने घर चले गये ।

रात्रि के समय सागर सुकुमालिका की शय्या पर पहुँचा । वहाँ जब उसने सुकुमालिका के शरीर का स्पर्श किया तो उसे पुनः वही वेदना होने लगी । वह चुपचाप वहाँ से उठा और अपनी शय्या पर जाकर सो गया ।

जब सुकुमालिका जगी तो अपने पलंग पर पति को न देख कर वह वहाँ से उठी और अपनी पति की शय्या पर जाकर सोगई । ज्यों ही सुकुमालिका के शरीर का स्पर्श हुआ त्यों ही सागर वेदना के कारण घवरा उठा । वह थोड़ी देर तक अपनी शय्या पर पड़ा रहा । जब सुकुमालिका सो गई तब अर्द्धरात्रि में वहाँ से चुपचाप भाग कर अपने घर चला गया ।

सुकुमालिका जब उठी तो वह पति की सर्वत्र खोज करने लगी लेकिन उसे पति नहीं मिला । वह समझ गई कि पति उसे सदा के लिये छोड़ कर चला गया है । वह रोती रोती अपने पिता के पास पहुँची और उसने पति के चले जाने की वात कह सुनाई ।

अपनी पुत्री की यह वात सुनकर सागरदत्त वड़ा क्रुद्ध हुआ । वह जिनदास सार्थवाह के घर पहुँचा और सागरपुत्र को वापस घर चले आने के लिये आग्रह करने लगा ।

सागरपुत्र ने अपने पिता से तथा श्वशुर से कहा–मै जहर खाकर मर जाना पसन्द करूँगा लेकिन सुकुमालिका के पास अब नहीं जाऊँगा ।

सागरपुत्र को बहुत समझाने पर भी जब वह नहीं माना तो सागरदत्त घर चला आ ा और अपनी पुत्री से बोला—बेटी ! सागरपुत्र अब तेरे साथ नहीं रहना चाहता किन्तु तुम मत घबराओ, मै तुम्हारे लिए ऐसा वर चुनूँगा जो जिन्दगी भर तुम्हारा साथी बनकर रहेगा।

एक बार सागरदत्त अपने भवन की छत पर बैठा हुआ राजमार्ग को देख रहा था। उसकी दृष्टि एक हट्टे कट्टे युवक भिखारी पर पड़ी। वह सांधे हुए टुकड़ो का वस्त्र पहने हुए था। बाल बढ़े हुए थे। हाथ में मिट्टी का पात्र था। उसके चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। वह राजमार्ग पर भीख मांग रहा था। सागरदत्त ने सोचा अगर इस भिखमंगे के साथ सुकुमालिका का विवाह कर दिया जाय तो सुकुमालिका इसके साथ सुख पूर्वक रह सकेगी।

यह सोच उसने अपने नौकरों द्वारा उस भिखमंगे को बुलवाया। उसके पुराने कपड़े उतरवाकर उसे स्नान करवाया। बाल बनवाये और सुन्दर वस्त्रों एवं गहनों से अलंकृत किया। उत्तम भोजन करवा कर उसने सुकुमालिका का उस भिखमंगे के साथ पाणिग्रहण करवा दिया। जब भिखमंगे को सुकुमालिका के हाथ का स्पर्श हुआ तो वह वेदना के कारण घबरा उठा। रात्रि के समय वह भी कपड़े तथा अलंकारों को छोड़ कर अपनी पुरानी वेष भूषा को पहन कर भाग निकला।

कर्म का विधान अचल है। नागश्री के पूर्वजन्म के दुष्कृत्यों के कारण माता पिता के मनोरथ मिट्टी में मिल गये। सुकुमालिका का कौमार्य भी गया और पति भी भाग गया। पति विहीना सुकु-मालिका अपने भाग्य को कोसती हुई और हाय विलाप करती हुई दुःख की जिन्दगी बिताने लगी।

सुकुमालिका को अत्यन्त दुःखी देखकर सांत्वना के स्वर में सागर-दत्त ने कहा-पुत्री ! इस समय तेरे पाप कर्म का उदय है इसलिये तुम समभाव से कर्मफल को सहलो। पुराने कर्मों को नष्ट करने का

उपाय दान, शील, तप और विशुद्ध भावना है । इनका आचरण करने से पाप कर्म नष्ट होंगे और शुभ कर्म का बन्धन होगा । धर्म की आराधना करने से जीव सुखी हो जाता है । अतः आज से तुम मेरी भोजन शाला में तरह तरह का भोजन बनवाकर याचकों आदि को दान दो जिससे तुम्हारी आत्मा को शान्ति मिलेगी ।

सुकुमालिका को यह उपाय रुचिकर लगा । उसने उसी दिन से दान देना आरंभ कर दिया । उसकी भोजन शाला में इतना भोजन बनने लगा कि कोई भी याचक खाली हाथ उसके घर से नहीं लौटता था ।

एक बार गोपालिका नाम की बहुश्रुत साध्वी आहार के लिये सुकुमालिका के घर आई । सुकुमालिका ने आगन्तुक साध्वियों का खूब सन्मान किया और उन्हें बड़ी चाह से श्रद्धा पूर्वक आहार पानी बहराया और कहा—साध्वीजी ! आप अनेक घरों में, नगरों में घूमती हो । जड़ी बूटी यंत्र मत्र आदि भी जानती हो । मेरा पति मुझे छोड़कर चला गया है । क्या आप ऐसा मंत्र जानती हो जिससे मेरा पति मेरे वश में हो जाय और मैं उसके लिये इष्ट बन जाऊँ ।

साध्वीजी ने कहा—बहिन ! मंत्र प्रयोग तो दूर रहा किन्तु यह बात सुनना भी हमारे आचार के विपरीत है । अगर तुम्हें सच्चा सुखी बनना है तो हम तुम्हे वह मार्ग बता सकती हैं ।

सुकुमालिका ने कहा—साध्वीजी ! किस मार्ग से मैं सुखी बन सकती हूँ ?

साध्वी ने कहा—सुकुमालिके ! सुखी बनने का सबसे श्रेष्ठ मार्ग है संयम का पालन और धर्म का आचरण । संयम को विशुद्ध आराधना से जीव के पूर्व संचित पाप कर्म नष्ट होते हैं । कर्मों के क्षय होने से जीव जन्म मरण की व्याधि से मुक्त होता है ।

सुकुमालिका को साध्वी का यह उपदेश रुचिकर लगा । उसने अपने माता पिता को पूछकर गोपालिका साध्वी के पास दीक्षा ग्रहण

करली। दीक्षा लेने के बाद उसने अंगसूत्रों का अध्ययन किया और बाद में कठोर तप करने लगी। गोपालिका साध्वी ने चम्पा से विहार कर दिया।

कुछ दिनों के बाद गोपालिका साध्वी अपनी शिष्याओं के साथ पुनः चम्पा पधारी।

एक दिन सुकुमालिका साध्वी ने अपनी गुरुजी गोपालिका से कहा–आपकी आज्ञा हो तो मैं बेले बेले की तपस्या करके सुभूमिभाग उद्यान में सूर्य की आतापना लूँ।

गोपालिका आर्या ने कहा–आर्ये! साध्वी को खुले स्थान में आतापना लेने का निषेध है। उपाश्रय में ही वस्त्र से तन ढंक कर आतापना लेने का आदेश है अतएव तुम्हारा उद्यान में जाकर आतापना लेना योग्य नहीं है।

साध्वी सुकुमालिका को गोपालिका की यह बात रुचिकर नहीं लगी। वह बिना आज्ञा के ही उद्यान में पहुँची और सूर्य की आतापना लेने लगी।

चम्पा नगरी में ललिता नाम की गोष्ठी (मित्रमंडली) रहती थी। वह स्वच्छन्द थी। उनको मनमानी करने में उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। वह ललिता गोष्ठी चम्पा की सुन्दर गणिका देवदत्ता के साथ उद्यान में आई हुई थी और घूम घूम कर वनश्री का आनन्द ले रही थी।

ललिता गोष्ठी के पांच पुरुषों में से एक ने देवदत्ता को अपनी गोद में बिठलाया। एक ने छत्र धारण किया। एक पुष्पों से उसके केश-कलाप सजाने लगा। एक उसके पैरों में मेंहदी लगाने लगा और एक व्यक्ति उस पर चँवर डुलाने लागा।

पांच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करती हुई देवदत्ता को सुकुमालिका ने देख लिया। इस दृश्य से सुकुमालिका का मन अस्थिर होगया।

वह सोचने लगी—"धन्य है यह नारी जिसे पांच पांच पुरुष प्यार करते हैं । मै कितनी अभागिनी हूँ जिसे पति भी त्याग गया । मेरी इस तपस्या का कुछ फल होतो आगामी भव में मुझे भी पांच पति प्राप्त हों !"

सुकुमालिका साध्वी इस प्रकार निदान करके गुरुणी के पास आ गई किन्तु अब उसका मन तप में सुख का अनुभव नहीं करता था । वह संयम में शिथिल होगई । शरीर विभूषा में वह अपना समय अधिक बिताने लगी । वह हाथ पैर और शरीर के अवयवों को बार बार धोती थी । जल से भूमि को शुद्ध करके फिर उस पर बैठती थी और स्वाध्याय आदि करती थी ।

सुकुमालिका साध्वी का यह शिथिलाचार अन्य श्रमणियों को पसन्द नहीं आया । गोपालिका साध्वी ने भी उसे बहुत समझाया किन्तु उसने अपनी प्रवृत्ति नहीं छोड़ी तब उसे अपने सघाड़े से बाहर कर दिया ।

अब सुकुमालिका साध्वी अन्य उपाश्रय में रहने लगी । शिथिलाचारिणी सुकुमालिका ने लम्बे समय तक चारित्र का पालन किया । अन्तिम अवस्था में पंद्रह दिन का संथारा करके उसने अपना देह छोड़ा । मर कर वह ईशान देवलोक में देवगणिका बनी । वहाँ उसे नौ पल्योपम का आयुष्य मिला ।

महासती द्रौपदी

पांचाल देश में कांपिल्यपुर नाम का नगर था । वहाँ द्रुपद नाम के राजा राज्य करते थे । उसकी पटरानी का नाम चुलनी था । उनके पुत्र का नाम धृष्टद्युम्न था । वह युवराज था । ईशान कल्प का आयु पूरा होने पर सुकुमालिका देवी का जीव रानी चुलनी की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ । माता पिता ने उसका नाम द्रौपदी रक्खा । पांच धाइयों के संरक्षण में द्रौपदी का शैशव काल व्यतीत हुआ । यथा-समय स्त्री जीवन के योग्य विद्या और विविध कलाएँ उसे सिखलाई

गई। धीरे धीरे द्रौपदी ने नव यौवन की सीढ़ी पर पाँव रक्खा और वह विवाह के योग्य हुई।

राजा द्रुपद को द्रौपदी विशेष प्रिय थी। वह चाहते थे कि द्रौपदी अपने लिए स्वयं वर चुन ले ताकि वह अपना जीवन उसके साथ सुख पूर्वक व्यतीत कर सके तदनुसार उन्होंने द्रौपदी का विवाह स्वयंवर पद्धति से करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने एक विशाल मण्डप बनवाया और दूर दूर के राजाओं को स्वयंवर में आने का निमंत्रण भेजा।

निश्चित तिथि पर विविध देशों के अनेक राजा और राजकुमार स्वयंवर मण्डप में उपस्थित हुए। कृष्ण वासुदेव भी अनेक यादवकुमार और पाच पाण्डवों को साथ लेकर वहाँ आये। महाराजा द्रुपद ने सब अतिथि राजाओं का हार्दिक स्वागत किया।

निश्चित मुहूर्त पर द्रौपदी नहा धोकर सोलहों शृङ्गार सजकर अपनी परिचारिकाओं के साथ वर का चुनाव करने चली। दासी के हाथ में एक बडा सा दर्पण था जिसमें राजकुमारों की पूरी आकृति स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती थी। दासी वह दर्पण लेकर द्रोपदी के साथ इस प्रकार घूम रही थी कि द्रौपदी दर्पण में प्रत्येक राजकुमार की आकृति का निरीक्षण कर सके। वह सब राजकुमारों का परिचय भी देती जा रही थी।

अनेक राजकुमारों के सामने होकर घूमती घूमती द्रौपदी पाण्डवों के सामने आई। चरम शरीरी पाण्डव अत्यन्त रूपवान थे। उनके सद्‌गुणों की ख्याति से द्रौपदी पहले ही परिचित थी। दासी के मुख से पाण्डवों की वीरता नीति परायणता और धार्मिकता की प्रशंसा सुनकर और पूर्व जन्म के निदान से प्रेरित होकर द्रौपदी ने पांचों पाण्डवों के गले में वरमाला डाल दी। द्रौपदी ने पाचों पाण्डवों को पति के रूप में स्वीकार किया। "राजकुमारी द्रौपदी ने श्रेष्ठ वरण किया है" ऐसा कहकर सब राजाओं ने उसका अनुमोदन किया।

राजा द्रुपद ने भी भवितव्य को अटल मान कर अपनी पुत्री द्रौपदी का विवाह पांचों पाण्डवों के साथ विधिपूर्वक कर दिया। आठ करोड़ सोनैया का प्रीतिदान दिया। आगन्तुक मेहमानों का भोजन आदि से स्वागत किया और उन्हे विदा किया।

महाराज द्रुपद से विदा लेकर पाण्डव द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर लौट आये। पाण्डवों की प्रार्थना पर कृष्ण वासुदेव आदि हजारों राजागण भी साथ में हस्तिनापुर आये। हस्तिनापुर मे द्रौपदी का 'कल्याणकर' उत्सव मनाया गया जिसमें हजारों राजाओं ने सम्मलित होकर उसे सफल बनाया। महाराज पाण्डु ने आगन्तुक राजाओं का भोजनादि से सत्कार कर उन्हे विदा किया।

पाच पति होने पर भी द्रौपदी ने अपने जीवन को संयमित बनाया। उसने अपनी भोगाभिलाषा को मर्यादित बना लिया था। वह बारी बारी से पांचों की पत्नी थी। जिस समय जिसकी पत्नी होती, उस समय में शेष चार उसके देवर या जेठ के रूप में रहते थे। वह अपनी इस मर्यादा का बड़ी कड़ाई से पालन करती थी।

एक बार महाराज पाण्डु अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए थे साथ में कुन्ती देवी, द्रौपदी देवी, पाचों पाण्डव व अन्य अन्तःपुर का परिवार भी बैठा हुआ था। महाराज अपने परिवार के साथ वर्तालाप कर रहे थे।

उस समय कच्छुल्ल नाम के नारद हाथ में दण्ड और कमंडलु लिये आकाश मार्ग से वहाँ आ पहुँचे। नारद को देखते ही महाराज पाण्डु आसन से उठ खड़े हुए। अपने परिवार ने साथ सात आठ पैर सामने जाकर उनका सम्मान किया। उन्हे नमस्कार कर ऊँचे आसन पर बैठने के लिये आमंत्रित किया।

नारद ने महाराज सहित समस्त पविार को आशीर्वाद दिया। बाद में आसन पर जल छिड़ककर उस पर अपना दर्भ का आसन

बिछा दिया और उस पर बैठ गये। नारद जी ने महाराज का कुशल क्षेम पूछा।

परन्तु द्रौपदी देवी ने नारद जी को असंयमी अव्रती जानकर आदर नहीं किया वह अपने आसन से भी नहीं उठी। नारदजी को द्रौपदी का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। वे सोचने लगे-"द्रौपदी को अपने रूप, यौवन, राज्य एवं पांच पांडवों का अभिमान है इसीलिये यह मेरा आदर नहीं करती। इस रूपगर्विता द्रौपदी के अभिमान को उतारना ही होगा। मुझे अपने अनादर का बदला इससे लेना ही पड़ेगा"।

कुछ समय ठहर कर नारदजी ने पाण्डुराज से जाने की आज्ञा मांगी। पाण्डुराज ने नारद जी को सम्मान पूर्वक विदा किया। नारदजी ने आकाश मार्ग से प्रस्थान कर दिया।

घूमते घूमते नारदजी राजा पद्मोत्तर के पास पहुँचे। पद्मोत्तर अमरकंका नगरी का राजा था। उन दिनों अमरकंका धातकीखंड द्वीप की एक प्रसिद्ध नगरी थी। पद्मोत्तर राजा की सातसौ सुन्दर रानियाँ थीं। सुनाभ युवराज कुमार था। महाराज को अपने अन्तःपुर पर गर्व था। उसने एक से एक सुन्दर स्त्रियों को अपने अंतःपुर में रक्खा था।

पद्मोत्तर ने नारदजी का बड़ा आदर सत्कार किया और उन्हें ऊँचे आसन पर बैठाया और बोला-ऋषिप्रवर! संसार का कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जो आपने न देखा हो। आपने अनेक ग्राम,नगर और सेठ साहूकारों, राजा महाराजाओं के घर और अन्तःपुर देखे हैं परन्तु मेरे जैसा अनुपम सुन्दरियों से युक्त अन्तःपुर भी कहीं देखा है? क्या कृपा कर आप उस वस्तु की ओर संकेत करेंगे, जो मेरे यहाँ न हो और किसी दूसरे स्थान पर जो आपको दीख पड़ी हो।

नारद जी ने कहा-पद्मनाभ। तू कूप मण्डूक जैसा है।

राजा—कैसे?

नारदजी—मैंने द्रौपदी जैसी सुन्दर स्त्री कहीं नहीं देखी है। उसके सामने तुम्हारा अंतःपुर नगण्य है। उसके सौंदर्य पर तुम्हारी रानिओं का सौंदर्य निछावर किया जा सकता है। वह हस्तिनापुर के महाराजा पाण्डवों की महारानी है। उस जैसी सुन्दर स्त्री तुम्हारे अंतःपुर में एक भी नहीं है।

नारदजी इतना कह कर चलते बने। पद्मोत्तर ने द्रौपदी को अपने अंतःपुर में लाने का निश्चय किया किन्तु भरत क्षेत्र से द्रौपदी को उठा लाना उसके सामर्थ्य से बाहर था। दोनों द्वीपों के बीच पड़ा हुआ लवण समुद्र उसकी गति को रोक रहा था फिर प्रकट रूप में द्रौपदी का हरण करना भी उसके लिए सभव नहीं था और अतः उसने देवता की सहायता लेना ही उचित समझा। उसने अपने मित्र देव की आराधना की। देव उसकी आराधना से खुश हुआ। वह सोती हुई द्रौपदी को उठाकर पद्मोत्तर की अशोकवाटिका में ले आया। देव ने इसकी सूचना पद्मोत्तर को दी। पद्मोत्तर द्रौपदी को देख कर बड़ा खुश हुआ।

दूसरे दिन प्रात. ही द्रौपदी को वैभव के प्रभाव से प्रभावित करने के लिये सुन्दर वस्त्रालंकारों से सज्जित हो अपने विशाल रानियों के परिवार के साथ अशोकवाटिका में पहुँचा और वह द्रौपदी के जागने की राह देखने लगा।

द्रौपदी की जब आख खुली तो उसे सब नया ही नया दिख पड़ा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। निर्णय न कर सकी कि मै जाग रही हूं या सपना देख रही हूँ।

हड़बड़ाती हालत में द्रौपदी इधर उधर देख ही रही थी कि उसकी दृष्टि पद्मनाभ पर पड़ी। एकदम अपरिचित स्थान में एक अनजान पुरुष को सहसा अपने सामने देखकर वह स्तब्ध सी रह गई।

घबराई हुई द्रौपदी को देखकर पद्मनाभ बोला—प्रिये! घबराओ मत। मेरा नाम पद्मरथ है। मैं यहाँ का राजा हूं। तुम्हारे रूप की

प्रशंसा सुनकर मैंने ही देव की सहायता से तुम्हारा अपहरण करवाया है। देवी ! तुम चिन्ता मत करो। यह महल तुम्हारा ही है। मैं जीवन भर तुम्हारा दास बनकर रहूँगा। यह राजपाट सब तुम्हारे चरणों में न्यौछावर है। अब तो तुम्हारे हृदय में स्थान प्राप्त कर मैं स्वयं को धन्य मानूंगा। मुझे विश्वास है कि मेरी यह प्रार्थना तुम स्वीकार करोगी।

द्रौपदी सती थी। सती स्त्रियाँ कठिनाइयों में भी कभी घबराती नहीं हैं और न वे कभी लोभ में आकर अपना शील ही खण्डित होने देती हैं।

द्रौपदी ने कहा—राजन् ! तुम अपना धर्म भूल रहे हो। परस्त्री के सन्मुख इस प्रकार की बातें करना अधर्म है। उसे अपनी बनाने की चेष्टा करना पाप है। तुम इस पाप पंक में मत फंसो और धर्म को पहचानो। जो स्त्री अपने पति के स्थान पर किसी अन्य पुरुष का ध्यान स्वप्न में भी अपने मन में लाती है, उसका जीवन धिक्कार के योग्य बन जाता है। मेरा धर्म शील का पालन करना है और तुम्हारा धर्म मेरे शील की रक्षा करना है। मै अपना धर्म नहीं छोड़ सकती। मै चाहती हूँ कि तुम भी अपना धर्म न छोड़ो। मुझे अपने प्राणों से शील अधिक प्रिय है। मै अपनी शील रक्षा के लिये प्राणों का भी त्याग कर सकती हूँ।

पद्मोत्तर यह सुनकर निराश हो गया। मगर द्रौपदी को अपने वश में करने के लिए विविध उपाय अजमाने लगा। उसे लगा कि द्रौपदी के चित्त के अनुकूल उपचार करने से संभव है कि किसी दिन मेरा मनोरथ सफल हो जाय।

इस प्रकार विचार कर पद्मोत्तर ने द्रौपदी को एक पृथक् सुन्दर महल में रख दिया। दासियों की समुचित व्यवस्था करदी और उन्हें हिदायत करदी कि द्रौपदी को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

द्रौपदी को विश्वास था कि उसके पति अवश्य ही उसे लेने के लिये यहाँ आवेंगे । कृष्ण वासुदेव के शक्तिशाली पंजे से पद्मनाभ बच नहीं सकता ।

एक दिन द्रौपदी ने पद्मनाभ से कहा—राजन्! मुझे छ महीने का समय सोचने के लिए दो। छ महिने के भीतर अवश्य ही कृष्ण वासुदेव व मेरे पति मुझे लेने के लिये यहाँ आवेंगे। अगर वे नहीं आये तो मैं आप जो कहेंगे वही करूँगी ।

पद्मनाभ द्रौपदी की यह बात मान गया । उसने उसे सोचने के लिये छ महीने का समय दे दिया ।

द्रौपदी ने सोचा—मेरी रूपराशि ही मेरे सङ्कट का कारण है। इस रूप राशि को तपस्या की आग में झोंक देना ही उचित है। यह सोचकर उसने कठोर तप आरम्भ कर दिया। आयंबिल उपवास बेला तेला आदि तप करती हुई वह स्वाध्याय और ध्यान में अपना समय व्यतीत करने लगी ।

द्रौपदी के अचानक राजमहल से गायब हो जाने से सारे नगर में खलबली मच गई । पाण्डवों ने अपनी प्रियतमा द्रौपदी की खोज करने में कुछ भी कसर न रक्खी। चारों दिशाओं में गुप्तचर भेजे गये । कौना-कौना ढूंढ लिया गया लेकिन द्रौपदी का कहीं भी पता नहीं लगा । तब निराश होकर पाण्डुराज ने कुन्तीदेवी को द्रौपदी का पता लगाने के लिये कृष्ण वासुदेव के पास भेजा । कृष्ण वासुदेव ने भी द्रौपदी का पता लगाने के लिये बहुत प्रयत्न किया लेकिन उन्हें भी द्रोपदी का पता नहीं मिला ।

एक दिन कृष्ण वासुदेव द्रौपदी का पता लगाने के लिये उपाय सोचने लगे । इतने में नारद ऋषि वहाँ आ पहुँचे । श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा-नारदजी! आपने कहीं दौपदी को देखा है? नारद ने उत्तर दिया—धातकी खण्ड द्वीप में अमरकंका नगरी के राजा पद्मोत्तर

के अन्तःपुर में मैंने द्रौपदी जैसी स्त्री देखी है। यह सुनकर कृष्ण समझ गये कि यह करामात नारद ऋषि की ही है।

कृष्ण ने कच्छुल्ल नारद से कहा—ऋषिवर! यह आपकी ही करतूत जान पड़ती है। नारदजी हँसे और वहाँ से चल दिये।

कृष्ण ने अपना दूत हस्तिनापुर भेजा और उनके साथ संदेश कहलवाया कि धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में अमरकंका राजधानी में पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी का पता लगा है अतएव पाँचों पाण्डव सेना सहित पूर्व दिशा के वैतालिक-(जहाँ समुद्र की वेल चढकर गंगा नदी में मिलती हैं वह स्थान) लवण समुद्र के किनारे पर पहुँचे और वहाँ मेरे आने की प्रतीक्षा करें।

इधर कृष्ण वासुदेव ने भी अपनी विशाल सेना सजाई और सेना के साथ लवण समुद्र के किनारे पर पहुँचे और वहाँ पाण्डवों के साथ सारी स्थिति पर गम्भीरता से विचार किया और परामर्श करने के बाद पद्मोत्तर राजा पर चढ़ाई करने का निश्चय किया परन्तु अमरकंका पहुँचने के लिए मार्ग में लवण समुद्र था। उसे पार करना मानव सामर्थ्य से बाहर था। अतः कृष्ण वासुदेव ने तेला कर समुद्र के अधिष्ठाता सुस्थित देव की आराधना की। कृष्ण की भक्ति से देव प्रसन्न हुआ और सामने आकर बोला—आप जिसे याद कर रहे हैं वही मैं सुस्थित देव हूँ—कहिए क्या आज्ञा है, मैं आपकी क्या सेवा करूं?

श्री कृष्ण ने कहा—देव! हम धातकी खण्ड जाना चाहते हैं, 'इसलिए जाने का मार्ग दे दो।' सुस्थित देव ने कहा—आप वहाँ जाने का कष्ट क्यों उठाते हैं यदि आपका आदेश हो, तो मैं स्वयं ही द्रौपदी को लाकर आपकी सेवा में उपस्थित कर सकता हूँ और पद्मोत्तर को उसकी राजधानी के साथ समुद्र में फेंक सकता हूँ।

कृष्ण ने कहा—देव! मैं स्वयं द्रौपदी को पद्मनाभ के फन्दे से छुड़ाना चाहता हूँ। अतः तुम्हारी इतनी ही सहायता पर्याप्त है कि तुम हमें लवण समुद्र को पार करने के लिये रास्ता दो।

श्रीकृष्ण के मनोबल को देख कर देव बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने धातकीखण्ड जाने के लिये मार्ग दे दिया। श्रीकृष्ण और पाँचों पाण्डवों के रथ देवता की सहायता से लवण समुद्र पर चलने लगे। वे थोड़े ही समय में धातकीखंड द्वीप जा पहुँचे। उनका रथ अमरकंका के प्रधान उद्यान में पहुँचा और वहाँ उन्होंने अपना पड़ाव डाल दिया।

उसके बाद श्रीकृष्ण ने धातकी खण्ड के राजा पद्मोत्तर को कहलवाया कि यदि आपको अपना जीवन प्रिय हो तो द्रौपदी को सादर ससम्मान वापस करो। यदि आपको अपनी शक्ति पर अभिमान है तो अपनी सेना लेकर युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। श्रीकृष्ण ने पद्मोत्तर राजा के लिए यह सन्देश अपने दारुक नाम के सारथी के द्वारा पत्र देकर भेजा। सारथी ने श्रीकृष्ण के पत्र को भाले की नोंक पर पिरोकर राजा पद्मोत्तर को दिया। पद्मोत्तर राजा ने क्रोध में भर कर पत्र पढ़ने के बाद सारथी से पूछा कि—"कौन कौन आये हैं और साथ में सेना कितनी है ? सारथी ने कहा—श्री कृष्ण अकेले हैं और सेना के नाम पर पाँच पाण्डव ही उनके साथ हैं, जो द्रौपदी के पति हैं। इस बात को सुन कर पद्मोत्तर हसा और बोला—"वे मुझे क्या समझते हैं ? क्या उन्हे पद्मोत्तर की शक्ति का पता नहीं है ? क्या वे नहीं जानते कि पद्मोत्तर एक शक्तिशाली राजा है। उससे भिड़ना यानी आग से खेलना है। संसार की अनेकानेक विजयी सेनाओं को मै पराजित कर चुका हूँ, भला ये छह प्राणी तो किस खेत की मूली हैं ? तुम दूत हो, राजनीति में दूत अवध्य माना गया है इसलिये मै तुम्हें छोड़ देता हूँ। जाओ अपने स्वामी से कह दो कि पद्मोत्तर राजा युद्ध के लिये तैयार है।' श्रीकृष्ण का सारथी वापस लौटा, और उसने समस्त घटना कह सुनाई।

इधर बहुत शीघ्र ही पद्मोत्तर राजा बड़ी साज सज्जा के साथ अपनी विशाल सेना को लेकर युद्ध के लिये मैदान में आ डटा।

श्रीकृष्ण ने पद्मोत्तर को युद्ध के लिए सामने आता देखा तो उन्होंने पाण्डवों से कहा—पद्मोत्तर अपनी विशाल सेना के साथ लड़ने के लिये आ रहा है तो बताओ तुम युद्ध करोगे ? पाण्डवों ने कहा कि क्षत्रिय स्वयं युद्ध करता है। वह युद्ध का तमाशा नहीं देखता। श्रीकृष्ण ने कहा—अच्छा जाओ और युद्ध में विजयी बन कर आवो।

पाण्डवों का पद्मोत्तर के साथ युद्ध आरंभ हुआ। पद्मोत्तर राजा की विशाल सेना सागर के समान गरजती हुई निरन्तर आगे बढ़ने लगी, यहाँ तक कि पाँच पाण्डव युद्ध करते हुए पीछे हटने लगे। इनके शरीर शत्रु के बाणप्रहारों से क्षत-विक्षत हो गये। सब ओर रक्त की धाराएँ बहने लगीं। पाण्डवों के रथ की पताका भी नष्ट हो गई। आखिर पाण्डव हार कर कृष्ण के पास आये।

युद्ध में हारे हुए पाण्डवों को देख कर कृष्ण ने पूछा—पाण्डवो ! युद्ध के पूर्व आपने क्या संकल्प किया। पांडवों ने कहा—"आज के इस युद्ध में या तो पाण्डव ही नहीं या पद्मोत्तर ही नहीं" कृष्ण ने यह सुन कर पाण्डवों से कहा—तुम्हारी पराजय का यही रहस्य है। अगर युद्ध के पूर्व यह संकल्प करते—"मैं ही राजा हूँ पद्मोत्तर नहीं" तो तुम अवश्य विजयी हो कर लौटते। अस्तु, अब मै इसी संकल्प से लड़ता हूँ कि मैं ही राजा हूँ पद्मोत्तर नहीं। तुम मेरा युद्ध देखना। इस प्रकार कह कर कृष्ण युद्ध के मैदान में पहुँच गये।

श्रीकृष्ण ने सिंहनाद के साथ अपना पांचजन्य शंख फूंका। धनुष की टंकार की। श्रीकृष्ण के शंख और धनुष की भयंकर और भीषण ध्वनि को सुन कर पद्मोत्तर राजा की सारी सेना तितर वितर हो गई। सैनिक अपने रक्षण के लिये इधर उधर भागने लगे। अपनी सेना को इधर उधर भागती हुई देख पद्मोत्तर भी भयभीत हो गया और अपने प्राण को बचाने के लिये अपनी नगरी में घुस गया। उसने नगर के दरवाजे बन्द करवा दिये और नगर की रक्षा के लिये विशाल सेना तैनात कर दी।

कृष्ण ने पद्मोत्तर का पीछा किया। नगरी के पास पहुँचे तो देखा कि नगरी के द्वार बन्द हैं। उन्होंने नरसिंह का विकराल रूप बनाया और भयंकर गर्जना करते हुए पैरों को जमीन पर पटकने लगे। उनके पाद प्रहार से सारी नगरी हिल उठी। उसके कोट कंगूरे और द्वार पके पत्ते की तरह झरने लगे। बड़े-बड़े महल धराशायी हो गये। पद्मोत्तर यह दृश्य देख कर घबरा गया। उसका कलेजा धक-धक करने लगा। भय से विह्वल हो कर वह द्रौपदी के पास पहुँचा और पैरों में पड़ कर प्राणों की भीख मागने लगा।

द्रौपदी ने कहा-पद्मनाभ! तुम ने मेरा अपहरण करवा कर एक भयंकर अपराध किया है। तेरे जैसे कामी और लंपट को यही सजा मिलनी चाहिये परन्तु तू इस समय मेरी शरण में आया है इसलिये तेरी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। खैर, जो हुआ सो हुआ अब बचने का एक ही उपाय है। तुम स्नान करके गीले वस्त्र को पहनो और अपने अन्तःपुर के परिवार को साथ में लो। उपहार के लिए विविध रत्न लो और मुझे आगे करके कृष्ण की सेवा में पहुँचो। हाथ जोड़ कर अपने अपराध की क्षमा मागो। श्रीकृष्ण दयालु हैं वे शरणागत की अवश्य रक्षा करते हैं।

द्रौपदी के कथनानुसार पद्मोत्तर ने सब किया। वह श्रीकृष्ण के पास गीले वस्त्र पहिने रानियों के परिवार के साथ पहुँचा और उनके चरणों में गिर कर गिड़गिड़ाने लगा। श्रीकृष्ण ने पद्मोत्तर से कहा-पद्मनाभ! मेरी बहन को यहाँ लाकर तूने मौत को ही निमंत्रण दिया है लेकिन अब तू मेरी शरण में आया है इसलिए तुझे अभय देता हूँ। अब तू निर्भय हो कर राज्य कर सकता है।

श्रीकृष्ण द्रौपदी को लेकर पाण्डवों के पास आये और द्रौपदी उन्हें सौंप दी। उसके बाद वे रथ पर बैठ गये और सुस्थित देव की सहायता से समुद्र पार करने लगे।

उस समय धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नामक चैत्य था। उस चम्पा नगरी में कपिल नाम के वासुदेव राज्य करते थे।

उस समय मुनि सुव्रत नाम के अरिहन्त का चम्पा नगरी में आगमन हुआ था। कपिल वासुदेव अरिहन्त भगवान की देशना सुनने के लिए उनके पास गया और वन्दन कर धर्म श्रवण करने लगा। धर्मश्रवण करते करते अचानक पाँचजन्य शंख की आवाज कपिल वासुदेव ने सुनी। शंख की ध्वनि सुनकर कपिलवासुदेव सोचने लगे-"क्या मेरा जैसा अन्य भी कोई वासुदेव यहाँ पैदा हुआ है क्योंकि पांचजन्य वासुदेव के सिवाय अन्य कोई नहीं फूंक सकता।"

भगवान मुनिसुव्रत कपिल के मनोगत भावों को समझ गये और बोले-कपिल! एक ही क्षेत्र में दो वासुदेव, दो बलदेव, दो चक्रवर्ती, दो तीर्थङ्कर एक साथ उत्पन्न नहीं होते। यह शंख की जो आवाज आ रही है वह तुम्हारे ही समान वैभव सम्पन्न भरत क्षेत्र के वासुदेव श्रीकृष्ण की है। वे इस समय द्रौपदी का अपहरण करने वाले अमर-कंका के राजा पद्मनाभ से युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने ही यह शंख फूँका है।

यह सुनकर कपिल वासुदेव बड़े प्रसन्न हुए। वे वन्दन कर के भगवान से बोले—भगवन्! मैं जाऊँ और पुरुषोत्तम कृष्णवासुदेव को देखूँ-उनके दर्शन करूँ।

तब मुनिसुव्रत भगवान ने कपिल से कहा-कपिल! ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं और होगा नहीं कि एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को देखे, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती को देखे, एक बलदेव दूसरे बलदेव को देखे। फिर भी तुम लवण समुद्र के बीच से जाते हुए कृष्ण वासुदेव के श्वेत एवं पीत ध्वज के अग्रभाग को देख सकोगे।

यह सुनकर कपिल वासुदेव ने भगवान को वंदन किया और हाथी पर चढ़कर वे समुद्र के किनारे पर आये। वहाँ उन्होंने लवण समुद्र के मध्य भाग से गुजरते हुए श्रीकृष्ण वासुदेव की श्वेत और पीत ध्वजा का अग्रभाग देखा। उस समय कपिल वासुदेव ने पाचजन्य शंख फूंक कर कृष्ण का अभिवादन किया। उत्तर में कृष्ण ने भी पांचजन्य शंख फूंक कर उसका जवाब दिया। वहाँ से लौटकर कपिल-वासुदेव अमरकंका गये और वहाँ उन्होंने अमरकंका को ध्वस्त देखकर पद्मनाभ से पूछा—नगरी की यह दशा किसने की। पद्मनाभ ने कहा-स्वामिन्! कृष्ण वासुदेव ने यहाँ आकर नगरी को ध्वस्त किया है। कृष्ण ने आपको पराजित किया है। यह सुनकर कपिल पद्मनाभ पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ उसने कहा-अरे नीच! तूने श्रीकृष्ण जैसे शक्तिशाली व्यक्ति का विप्रिय किया है। तू इस राज्य के योग्य नहीं है। इतना कहकर कपिल वासुदेव ने पद्मनाभ को राज्य से निकाल दिया और उसके स्थान पर उसके पुत्र को राज्य गद्दी पर स्थापित किया और वे वापस चले आये।

इधर कृष्णवासुदेव लवण समुद्र के मध्य भाग से जाते हुए गंगा नदी के पास आये और पाण्डवों से बोले-पाण्डवो! आप लोग गंगा को पार करो तब तक मैं लवण समुद्र के अधिपति सुस्थितदेव से मिलकर आता हूँ।

पाण्डवों ने एक नौका के सहारे गंगा पार की। नदी के तीर पर आकर वे कहने लगे-श्रीकृष्ण अपनी भुजा से गंगा पार करने का सामर्थ्य रखते हैं या नहीं यह देखना चाहिये। पाण्डवों ने यह सोच नाव को एक तरफ छिपा दिया और वे कृष्ण के आने की राह देखने लगे।

सुस्थितदेव से मिलकर कृष्ण गंगा महानदी के किनारे आये तो वहाँ उन्हें नौका दिखाई नहीं दी। उन्होंने नौका की बहुत खोज की किन्तु उन्हें नौका नहीं मिली। तब उन्होंने अपनी एक भुजा से घोड़े सहित सारथी को और रथ को ग्रहण किया और दूसरी भुजा से बासठ योजन वाली विस्तृत गंगा महा नदी को वे पार करने लगे। तैरते तैरते कृष्ण थक गये। वे सोचने लगे-पाण्डव वास्तव में बलवान हैं उन्होंने अपनी भुजा से इतनी बड़ी गंगा को पार किया है। कृष्ण की थकावट देखकर गंगा महादेवी ने जल का स्थल कर दिया। कुछ समय विश्राम कर कृष्ण पाण्डवों से आ मिले।

कृष्ण ने कहा—पाण्डवो! तुमलोग महा बलवान हो, क्योंकि तुमने साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी को अपनी भुजा से तैरकर पार की है। तुमलोगों ने चाहकर पद्मनाभ को पराजित नहीं किया।

इस पर पाण्डव कहने लगे-स्वामिन्! यह बात नहीं किन्तु आपके बल की परीक्षा के लिये ही हमने नाव को छिपा दिया था।

कृष्ण यह सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बोले-ओह! जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवण समुद्र को पार करके पद्मनाभ को हराया और अमरकंका को ध्वस्त किया और अपने हाथों से द्रौपदी को लाकर तुम्हें सौंपा तब भी तुम्हें मेरे सामर्थ्य का पता नहीं लगा और अब तुम मेरा सामर्थ्य जानना चाहते हो। तुमलोग बड़े दुष्ट हो। यह कह कर उन्होंने लौहदण्ड से पाण्डवों के रथ को वहीं पर चूर चूर कर दिया और उन्हें देश निर्वासन की आज्ञा दे दी। जहाँ पाण्डवों का रथ चूर-चूर कर दिया था वहाँ एक विशाल कोट बनाया गया और उसमें रथमर्दन नामक तीर्थ की स्थापना की।

वहाँ से कृष्ण वासुदेव अपनी छावणी आये और सेना को साथ में ले द्वारवती लौट आये।

कृष्ण से निर्वासित पांचों पाण्डव द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर आये। वहाँ इन्होंने अपने माता पिता से कृष्ण के द्वारा निर्वासित करने की बात कही।

तब पाण्डुराज ने कुन्तीदेवी से कहा–तुम श्रीकृष्ण के पास जाओ और उन्हें यह कहो कि आपने पाच पाण्डवों को देश निर्वासन की आज्ञा तो दी है, किन्तु आपका समस्त दक्षिणार्ध भरत में राज्य है, अतएव पाण्डव कहाँ जाकर रहें।

पति का आदेश पाकर कुन्ती देवी द्वारिका पहुँची। कृष्ण ने अपनी बुआ का स्वागत किया और आने का कारण पूछा। कुन्तीदेवी ने कहा—पुत्र! तुमने पांचों पाँडवों को देश निकाले का आदेश दिया है और तुम दक्षिणार्ध भरत के स्वामी हो, तो बतलाओ वे किस दिशा या विदिशा में जाकर रहें।

कृष्ण ने कहा–पितृभगिनी! उत्तम पुरुष अपूति वचन होते हैं वे कहकर बदलते नहीं हैं इसलिये मेरी निर्वासन की आज्ञा वापस नहीं ली जा सकती है। अतः पाँच पाडव दक्षिण दिशा के समुद्र के किनारे पर जाकर वहाँ पाण्डुमथुरा नाम की नई नगरी बसावें और मेरे अदृष्ट सेवक होकर रहे।

कृष्ण का आदेश पाकर कुन्तीदेवी हस्तिनापुर लौट आई और उसने अपने पति पाण्डुराज को कृष्ण का आदेश सुना दिया।

कृष्ण के आदेश पर पांचों पाण्डव दक्षिण दिशा के समुद्रतट पर गये और वहाँ उन्होंने पाण्डुमथुरा नाम की विशाल नगरी बसाई। वे वहाँ सुख पूर्वक रहने लगे।

कालान्तर में द्रौपदी गर्भवती हुई। उसने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम पाण्डुसेन रखा गया।

एक बार धर्मघोष नाम के आचार्य अपने शिष्य परिवार के साथ पाण्डुमथुरा पधारे। उन्हें वन्दना करने के लिए परिषद् निकली।

पाण्डव भी निकले । स्थविर का उपदेश सुनकर पाण्डवों को वैराग्य उत्पन्न हो गया । उन्होंने अपने पुत्र पाण्डुसेन को राजगद्दी पर अभिषिक्त कर स्थविरमुनि के पास दीक्षा ले ली ।

द्रौपदी ने भी सुव्रता नामकी आर्या के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और सामायिकादि ग्यारह अङ्गसूत्रों का अध्ययन किया । अन्त में एक मास का संथारा करके उसकी मृत्यु हुई और वह ब्रह्मदेव लोक में दस सागरोपम की आयु वाली देवी बनी ।

द्रौपदी ब्रह्मदेवलोक की आयु पूरी कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगी । वहाँ स्थविरों से प्रव्रज्या ग्रहण कर सम्पूर्ण कर्म का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करेगी ।

इधर पाण्डवों ने दीक्षा लेकर भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन करने की भावना से सौराष्ट्र की ओर विहार कर दिया । वे उग्रविहार कर हस्तिकल्प नगर पधारे और सहस्राम्र उद्यान में ठहरे । उन दिनों पाचों मुनियों का मासखमण तप चल रहा था । युधिष्ठिर के सिवा चारों मुनि मासखमण पारणे के लिये दिवस के तृतीय प्रहर में नगर की ओर निकले । आहारार्थ घूमते हुए उन्होंने सुना कि "भगवान अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत के शिखर पर एक मास का निर्जल उपवास करके पांचसौ साधुओं के साथ निर्वाण को प्राप्त हो गये हैं ।" इस समाचार से चारों मुनियों को अत्यन्त दुःख हुआ । उनके मन की अभिलाषा मन में ही रह गई । वे चारों मुनि उद्यान में पधारे और उन्होंने भगवान के निर्वाण की खबर युधिष्ठिर मुनि से कही । भगवान के निर्वाण के समाचार सुनकर युधिष्ठिर ने कहा "मुनियों ! हमारे लिये यही श्रेयस्कर है कि भगवान के निर्वाण का समाचार सुनने से पहले ग्रहण किये हुए आहार पानी को परठ कर (त्यागकर) शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हो वहाँ संथारा करके मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए रहें ।" सब मुनियों ने इस विचार को पसन्द किया ।

वे आहार को परठ कर शत्रुंजय पर्वत पर चढ़े । वहाँ उन्होंने दो मास का संथारा लिया । अन्त में शुद्ध भावों से संयम की साधना करते हुए वे केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर मोक्ष में गये ।

उपनय

अत्यन्त क्लेश सहन करके कितना ही कठिन तप क्यों न किया हो, अगर उसे निदान के दोष से दूषित बना लिया जाय तो वह मोक्ष का कारण नहीं होता । जैसे सुकुमालिका के भव में द्रौपदी के जीवने किया ।

इसके अतिरिक्त भक्तिभाव से रहित होकर सुपात्र को भी यदि अमनोहर अयोग्य दान दिया जाय तो वह भी अनर्थ का हेतु होता है । इस विषय में नागश्री का दान ज्वलंत उदाहरण है ।

महासती चन्दनबाला

चंपापुरी नाम की एक विशाल नगरी थी । वह अंग देश की राजधानी थी और वह धन धान्य से समृद्ध थी ।

वहाँ दधिवाहन नामके न्यायप्रिय राजा राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम धारिणी था । राजा तथा रानी दोनों धर्मपरायण थे । दोनो में परस्पर प्रेम था ।

कुछ समय के बाद महारानी धारिणी ने एक रूपवती कन्या को जन्म दिया । उसका नाम वसुमती रक्खा । वसुमती वास्तव में वसुमती ही थी । उसका भोला भाला चेहरा बड़ा ही सुहावना लगता था । प्रत्येक देखने वाले को वह अपनी ओर आकर्षित कर लेताथा ।

राजा की लाड़ली कन्या के लिये किसी बात की कमी नहीं थी । उसके सुख की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध थीं । वह सुखपूर्वक बढ़ने लगी । उसने नव यौवन में प्रवेश किया ।

कोशाम्बी के राजा शतानीक ने चंपा के राजा दधिवाहन पर अचानक चढ़ाई करदी और एक रात में चंपा पहुँचकर नगरी को

चारों ओर से घेर लिया। दधिवाहन की रानी पद्मावती और शतानीक की रानी मृगावती दोनों सगी बहने थी इसलिये ये दोनों आपस में साढू थे। सम्बन्धी होने पर भी कोशाम्बी का राजा शतानीक दधिवाहन की समृद्धि पर जलता था। दधिवाहन की समृद्धि को मिट्टी में मिलाने के लिये ही उसने यह अचानक हमला बोल दिया।

दधिवाहन इस अप्रत्याशित आक्रमण से घबरा गया। उसने अपनी सेना को एकत्र कर शतानीक का जबरदस्त सामना किया किन्तु शतानीक की विशाल सेना के सामने वह टिक नहीं सका। दधिवाहन भाग गया। दधिवाहन की सेना परास्त होकर इधर-उधर भागने लगी।

दधिवाहन की सेना ने चंपा का द्वार तोड़ दिया। वह नगरी में घुस गई और नगरी को स्वच्छंदता पूर्वक लूटने लगी। सारे नगर में हाहाकर मच गया। सैनिकों का विरोध करना साक्षात् मृत्यु थी। पाशविकता का नग्न ताण्डव होने लगा। शतानीक ने भी अपने सैनिकों को तीन दिन तक लूट मचाने की छुट्टी दे दी। सैनिकों को स्वच्छंदता पूर्वक लूटते देख शतानीक खूब प्रसन्न हो रहा था। उस समय एक सारवान (ऊँट सवार) ने दधिवाहन के महल में प्रवेश किया और उसने रानी धारिणी को तथा उसकी कन्या वसुमती को पकड़ लिया। उन्हे जबरदस्ती से ऊँट पर डाल लिया और वह कोशाम्बी की ओर रवाना हो गया। रास्ते में उसने सोचा कि धारिणी को मैं अपनी स्त्री बना लूँगा और वसुमती को बेच दूँगा। धारिणी सारवान के मनोगत भावों को ताड़ गई और उसने अपनी जीभ पकड़ कर बाहर खींचली। उसके मुँह से खून की धारा बहने लगी। प्राण पखेरू उड़ गये। निर्जीव शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने बलिदान द्वारा धारिणी ने वसुमती तथा समस्त महिला जगत् के सामने तो महान् आदर्श रखा ही, साथ ही में सारथी के जीवन को भी सहसा पलट दिया।

धारिणी के प्राणत्याग को देखकर रथी भौंचक्का-सा रह गया। वह कर्तव्य मूढ़ होगया। उसे अपने दुष्कृत्य का पश्चाताप होने लगा। इधर वसुमती भी अपनी शील की रक्षा के लिये माता का अनुसरण करने के लिये उद्यत हुई। वसुमती को आत्महत्या के लिये उद्यत होता देख, सारवान घबरा गया। वह दौड़ा हुआ वसुमती के पास आया और कहने लगा–बेटी! इस पापी को क्षमा करो। मैंने जो पाप किया है वह ही इतना भयंकर है कि जन्म जन्मान्तरों में भी छुटकारा पाना मुश्किल है। अपने प्राण त्याग कर मेरे उस पाप को अधिक मत बढ़ाओ। तेरी माता महासती थी, उसके बलिदान ने मेरी आँखे खोल दी हैं। मुझ पर तुम विश्वास करो। मै आज से तुझे अपनी पुत्री मानूँगा। मुझे क्षमा करो। मै भविष्य में ऐसा दुष्कृत्य कभी नहीं करूँगा। यह कह कर वह वसुमती के पैरों में गिर पड़ा और अपने पापों का पश्चाताप करने लगा।

वसुमती को ऊँट सवार के इस व्यवहार से विश्वास हो गया कि अब सारवान का हृदय पलट गया है। वह सारवान के साथ होगई। सारवान वसुमती को लेकर घर आया। घर आकर उसने अपनी स्त्री को कहा–वसुमती हमारी बेटी है उसे पुत्रीवत् पालना।

वसुमती सारवान के घर रहने लगी और तनमन से उनकी सेवा करने लगी। कुछ काल के बाद सारवान की स्त्री वसुमती के रूप सौंदर्य और नम्र व्यवहार पर जलने लगी। उसने सोचा–कहीं यह मेरी सौत न बन जाय। अब वह वसुमती को घर से बाहर निकालने का अवसर खोजने लगी।

वसुमती को दिनरात घर का काम करते देख एक दिन सारवान ने उसे कहा–बेटी! तुम राजमहल में पली हो। तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं है कि घर के कामों में इस तरह पिसा करो। तुम्हें अपने स्वास्थ्य और खान–पान का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये।

सारवान की इस बात को उसकी स्त्री ने सुन लिया। उसे विश्वास हो गया कि मेरे पति इस पर आसक्त होगये हैं। वह क्रोध से लाल आँखे कर अपने पति के पास आई और बोली-"या तो वसुमती इस घर में रहेगी या मैं रहूँगी।" जब तक आप इसे बेचकर पैसा नहीं लायेंगे तब तक मै अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी।

सारवान ने अपनी पत्नी को वहुत समझाया किन्तु वह न मानी। अन्त में मजबूर होकर सारवान ने वसुमती को बाजार में एक वेश्या के हाथों बेच दिया। वेश्या सारवान को वसुमती की कीमत देकर उसे जबरदस्ती उठाकर ले चली। वसुमती को चिल्लाते देख बन्दरों ने वैश्या पर आक्रमण कर दिया। वेश्या घबरा कर वहाँ से भाग गई।

बन्दरों के चले जाने पर फिर वेश्या उसके पास आई। उसने सोचा-वसुमती महासती है। इसे अपने घर में नहीं रखा जा सकता। उसने अपनी कीमत वसूल करने के लिये उसे फिर बाजार में लाकर खड़ा कर दिया।

कोशांबी में धनावह नाम का धार्मिक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम मूला था। सेठ ने वेश्या को मुहमांगा दाम देकर वसुमती को खरीद लिया और उसे घर ले आया। अपनी पत्नी मूला को उसे सौंपते हुए कहा कि देखो, इसे अपनी पुत्री की तरह पालना। वसुमती सेठ के घर रहने लगी। उसने अपने शील-स्वभाव से शीघ्र ही घर के सब लोगों को वश में कर लिया इसलिये उसे सब शील-चन्दना अथवा चंदना के नाम से पुकारने लगे।

मूला चन्दना से ईर्ष्या करने लगी। उसे सन्देह था कि कहीं उसका पति उसे अपनी गृहस्वामिनी न बना ले। सेठ चन्दना के कार्यों की प्रशंसा करते थे किन्तु मूला उसका विपरीत ही अर्थ लगाती थी।

एक दिन सेठ मध्याह्न के समय घर आया। चन्दना ने देखा कि सेठजी के पैर धुलाने के लिये घर में कोई नहीं है, अतएव वह

स्वयं पानी लेकर उनके पैर धोने चली। संयोगवश उस समय चन्दना के केश खुले हुए थे। वे कीचड़ में गिरकर कहीं खराब न होजायँ, अतएव धनावह ने उन्हें अपने हाथ से उठाकर बांध दिया। सेठानी खिड़की में बैठी बैठी यह सब देख रही थी। हृदय मलीन होने के कारण प्रत्येक बात उसे उलटी ही मालूम पड़ती थी। सेठ को चन्दना के बालों को बांधते देख कर वह जल भुन कर रह गई। उसने सोचा–"यदि इसके साथ मेरे पति का प्रेम हो गया तो मुझे कोई नहीं पूछेगा अतएव व्याधि के बढ़ने से पहले ही उसका इलाज करना चाहिये। अब वह चन्दना को घर से बाहर निकाल देने के लिये उपाय सोचने लगी।

एक बार सेठ किसी कार्यवश दो तीन दिन के लिये बाहर चले गये। चन्दनबाला को निकाल देने के लिये मूला ने इस अवसर को ठीक समझा। उसने घर के नौकरों को किसी काम के बहाने बाहर भेज दिया। घर का दरवाजा बन्द करके वह चन्दना के पास आई और बोली–दुष्टे! तेरी सूरत तो भोली है किन्तु मन में पाप भरा है। तू ने मेरे पति को वश में कर लिया है। तू मेरी सौत बनने का स्वप्न देख रही है। मेरे जीते जी तेरा स्वप्न कभी सफल नहीं होने दूंगी। यह कह कर उसने चन्दना को खूब पीटा। नाई को बुलाकर उसके सुन्दर केशों को कटवा दिया। उस्तरे से उसका सिर मुंडवाकर उसे शृङ्खला से बान्ध दिया और कोठरी में डाल कर ताला लगा दिया। चाबी लेकर वह पीहर चली गई।

कोठरी में पड़े पड़े चन्दनबाला को तीन दिन होगया। उस समय उसके लिये केवल भगवान के नाम का ही सहारा था। वह भूखी प्यासी भगवान के नामस्मरण में लीन हो गई।

चौथे दिन दोपहर के समय धनावह सेठ बाहर से लौटे। देखा घर का ताला बन्द है। सेठानी या नौकर चाकर किसी का पता नहीं है। पड़ोसियों से पूछने पर पता चला कि सेठानी पीहर चली गई

है । उसने नौकर को बुलाकर मूला के पास से चाबी मंगवाई । सेठ नें घर खोला । देखा, चन्दना का कहीं पता नहीं है । नौकरों से चन्दना के बारे में पूछताछ की । नौकरों ने सेठानी के डर से कुछ भी नहीं बताया । सब नौकरों को चुप देख कर सेठजी का धैर्य टूट गया । उसने उस दिन जो नौकरों को फँटकार बतायी, तो हिम्मत करके एक दासी ने सारी बात सच सच बता दी, और कहा–चन्दना सामने की कोठरी में बंद है । सेठ ने द्वार खोला तो भूख प्यास से पीड़ित म्लान–मुख चन्दना को देखा । वह समझ गया यह सब मूला की ही करतून है । उसकी आँखों में आँसू आ गये । चन्दना को भोजन देने के लिये श्रेष्ठी स्वयं रसोई घर में गया, लेकिन उस समय एक सूप में उबाला हुआ कुल्माष (उड़द) ही अवशिष्ट पड़ा था । उसे चन्दना को देकर, वह चन्दना की बेड़ी काटने के लिये लुहार बुलाने चला गया ।

चन्दना उड़द के बाकुलों को लेकर खड़ी-खड़ी विचारों में लीन थी, और अपने अतीत के बारे में विचार कर रही थी । इसी समय उसके मन में विचार उठा कि मेरा तीन दिन का उपवास हो चुका है, यदि कोई अतिथि दिखलायी पड़े तो उसे दान देकर फिर पारणा करूँ । इस विचार से वह द्वार के पास आई और एक पैर द्वार के भीतर और एक पैर द्वार के बाहर रख कर द्वार पर बैठ गई ।

उन ।दनों श्रमण भगवान महावीर छद्मस्थ अवस्था में थे । कैवल्य प्राप्ति के लिये कठोर साधना कर रहे थे । लम्बी तथा उग्रतपस्याओं द्वारा अपने शरीर को सुखा डाला था । उस समय भगवान का निम्न तेरह बोल वाला अभिग्रह चल रहा था—

राजकन्या हो, अविवाहिता हो, सदाचारिणी हो निरपराध होने पर भी जिसके पावों में बेड़ियाँ तथा हाथों में हथकड़ियों पड़ी हुई हों, सिर मुण्डा हो, शरीर पर काछ लगी हुई हो, तीन दिन का उपवास

किए हो, पारणे के लिये उड़द के बाकुले सूप में लिये हो, न घर में हो, न बाहर हो, एक पैर देहली के भीतर तथा दूसरा बाहर हो, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्न मुख हो और आँखों में आँसू भी हों इन तेरह बातों के मिलने पर ही मै आहार ग्रहण करूँगा। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा ग्रहण कर भगवान विचरने लगे। इस तरह भगवान को अपने अभिग्रह की पूर्ति के निमित्त फिरते हुए पाँच मास पच्चीस दिन हो गये। उस दिन भी भगवान आहार की गवेषणा के लिये निकले। भगवान को आहार के लिये आता देख चंदना अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान जब समीप आये तो चन्दना ने उडद वहराने के लिये सूप आगे बढ़ाया किन्तु अभी भी अपने अभिग्रह में कमी देख कर भगवान लौट रहे थे कि निराशा से चन्दना के आँखों में आँसू आगये। वह अपने भाग्य को कोसने लगी- ऐसे महान् अतिथि आकर भी मेरे दुर्भाग्य से वापिस लौट रहे हैं। भगवान ने अचानक पीछे देखा तो चन्दना निराशा से रो रही थी। उसकी आँखों से अविराम आँसू टपक रहे थे। तेरहवीं बात पूरी होगई। भगवान वापस लौटे और आहार के लिये अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। चन्दना ने भगवान के हाथों में उड़द के बाकुले रख दिये। भगवान ने उड़द के बाकुलों से पारणा किया।

भगवान का पारणा होते ही आकाश देवदुन्दुभियों की मधुर ध्वनि से गूँज उठा। देवतागण जयनाद करने लगे। आकाश से फूल, वस्त्र और सोनैयों की वृष्टि होने लगी। चन्दना की हथकड़ियाँ आभूषणों में बदल गईं। सारा शरीर दिव्य वस्त्रों से सुशोभित हो गया और सिर पर कोमल, सुन्दर और लम्बे बाल चमकने लगे।

भगवान महावीर के पारणे की बात सारे नगर में बिजली की तरह फैल गई। प्रसन्नता से सारा नगर महासती चन्दना को देखने के लिये उमड़ पड़ा। मूला, सारवान, वेश्या ये सभी चन्दना के पास आये और अपने-अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे। विशालहृदया चन्दना ने सभी

को अपने गले लगाया और उन्हें क्षमा कर दिया। जब धनावह लुहारको लेकर वापस लौटा तो उसे भी चन्दना की महानता का पता लगा। चन्दना जैसी महासती को पाकर वह भी अपने जीवन को धन्य धन्य मानने लगा।

राजा शतानीक भी भगवान के पारणे की खबर सुनकर अपने अन्तःपुर के साथ वहाँ आया। दधिवाहन के कंचुकी ने वसुमती को पहचान लिया, और उसने राजा से कहा--महाराज ! यह दधिवाहन की पुत्री राजकुमारी वसुमती है। रानी मृगावती को जब यह मालूम हुआ कि वह उसकी बहन की पुत्री है तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, और उसने चन्दना को गले लगा लिया।

महाराज शतानीक बड़े आग्रह से चन्दना को अपने महल ले आया। चन्दनबाला अपनी मौसी के घर रहने लगी और दीक्षा की शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने लगी।

कुछ दिनों के बाद वह अवसर उपस्थित हो गया जिसके लिए चन्दनबाला प्रतीक्षा कर रही थी। श्रमण भगवान महावीर को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। चन्दनबाला को जब यह समाचार मिला तो उसे अत्यन्त प्रसन्ता हुई। महाराज शतानीक एवं मृगावती की आज्ञा प्राप्त कर वह प्रव्रज्या के लिये चली। भगवान के पास आकर उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

भगवान के समवशरण में स्त्रियों में सर्व प्रथम दीक्षा लेनेवाली चन्दनबाला थी। उसी से साध्वी तीर्थ का प्रारम्भ हुआ था। चन्दना साध्वी संघ की नेत्री बनी।

धीरे-धीरे चन्दनबाला के नेतृत्व में अनेक स्त्रियों ने दीक्षा ग्रहण की। अब महासती चन्दना अपने विशाल साध्वी समुदाय का नेतृत्व करती हुई विचरने लगी।

एक बार कोशाम्बी नगरी में भगवान महावीर पधारे। चन्दनबाला भी अपने साध्वी परिवार के साथ वहाँ आई। नगरी के बाहर

समवशरण की रचना हुई । एक दिन मृगावती सती अपनी गुरुभानी चन्दना सती की आज्ञा लेकर भगवान के दर्शनार्थ गई । संध्या का समय था । सूर्य चन्द्र भी उस समय अपने मूल विमान से दर्शनार्थ आये थे । अतः प्रकाश के कारण समय का पता नहीं लगा सूर्य चन्द्र की उपस्थिति के कारण रात्रि भी दिवस की तरह लगती थी। सूर्य चन्द्र के चले जाने पर सहसा रात्रि दिखाई देने लगी। सर्वत्र अन्धेरा छा गया । महासती मृगावती उसी समय वापस लौटी । वहाँ आकर उसने चन्दनबाला को वन्दना की । प्रवर्तिनी होने के कारण उसे उपालंभ देते हुए चन्दनबाला ने कहा—साध्वियों को सूर्यास्त के बाद उपाश्रय के बाहर न रहना चाहिये ।

मृगावती अपने अपराध का पश्चाताप करने लगी । यथासमय चन्दनबाला आदि सब साध्वियाँ अपने-अपने स्थान पर सो गईं लेकिन मृगावती बैठी-बैठी पश्चाताप करती रही । पश्चात्ताप के कारण उसके कर्ममल धुल गये । वह शुक्लध्यान की परमोच्च स्थिति में पहुँच गई । जिसके कारण घनघाती कर्म नष्ट हो गये । उसे केवल-ज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया । वह अपने ज्ञान द्वारा लोकालोक को हस्तामलक की तरह देखने लगी । उसी समय एक काला नाग महासती चन्दना के हाथ की तरफ बढ़ा आ रहा था । यह देखकर मृगावती ने चन्दनबाला के हाथ को उठा लिया । हाथ के छुए जाने से चन्दनबाला की नींद टूट गई । पूछने पर मृगावती ने सांप की बात कह दी और निद्रा भंग करने के लिए क्षमा मागी ।

चन्दनबाला ने पूछा—अन्धेरे में आपने साप कैसे देख लिया ? मृगावती ने कहा—आपकी कृपा से कैवल्य की प्राप्ति हो गई है। यह सुनते ही चन्दनबाला मृगावती के चरणों में पडी और केवली आशातना के लिए क्षमा मांगने लगी । उसे भी पश्चाताप होने लगा। पश्चाताप करते-करते चन्दना के घनघाती कर्म नष्ट हो गये और उसे भी केवल-ज्ञान उत्पन्न हो गया । अब केवलज्ञानी महासती चन्दना ३६०००

साध्वियों पर नेतृत्व करने लगी। आयुष्य पूराकर महासती चन्दना ने निर्वाण प्राप्त किया।

नन्दा आदि श्रेणिक की तेरह रानियाँ

राजगृह नाम का नगर था। उसके बाहर गुणशील नाम का उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम नन्दा था।

एक बार भगवान महावीर स्वामी राजगृह के बाहर गुणशील उद्यान में पधारे। परिषद् उनके दर्शन के लिये निकली। भगवान का आगमन सुन कर महारानी नन्दा अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने सेवकों को बुला कर तत्काल धार्मिक रथ तैयार करने का आदेश दिया। सेवक रानी की आज्ञानुसार धार्मिक रथ को सजा कर ले आये। महारानी नन्दा अपने विशाल दासदासियों के परिवार के साथ रथ पर आरूढ़ हुई और भगवान के दर्शन करने के लिये उद्यान में पहुँची। भगवान ने विशाल परिषद् के बीच महारानी नन्दा को धर्मोपदेश दिया। भगवान का प्रवचन सुन कर नन्दा रानी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। महाराजा श्रेणिक की आज्ञा प्राप्त कर बड़े उत्सव पूर्वक नंदा रानी ने दीक्षा अंगीकार की। ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन कर व बीस वर्ष तक चारित्र का पालन कर अन्तिम समय में केवलज्ञान प्राप्त किया और सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई।

नन्दा रानी की तरह श्रेणिक की बारह रानियों ने भी दीक्षा ली और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गईं। उनके नाम ये हैं—

नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दश्रेणिका, मरुता, सुमरुता, महामरुता, मरुद्देवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमनातिका, और भूतदत्ता। इन रानियों ने श्रेणिक राजा की उपस्थिति में दीक्षा ली थी।

श्रेणिक की काली दस रानियाँ

जब श्रेणिक की मृत्यु हो गई तब पिता वियोग से दुःखी कोणिक ने अंगदेश की नगरी चम्पा को अपनी राजधानी बनाया। कोणिक के

छोटे भाई हल और विहल्ल कुमार के हाथी को लेकर कोणिक और महाराजा चेटक के बीच जब भयंकर युद्ध हुआ था। उस समय भगवान महावीर चम्पा में विराजमान थे। युद्ध में अपने पुत्रों का मरण सुन कर इन महारानियों ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की थी। ये रानियाँ श्रेणिकराजा की मृत्यु के बाद चम्पा में दीक्षित बनी थी। इन रानियों का परिचय इस प्रकार है—

काली रानी

चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। वहाँ कोणिक नाम का राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा की रानी एवं कोणिक राजा की लघु माता 'काली' देवी थी। उस काली रानी ने नन्दा रानी के समान श्रमण भगवान महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण की और सामायिक आदि ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। वह उपवास बेला आदि बहुत सी तपस्या करने लगी।

एक दिन काली आर्या महासती चन्दनबाला के पास आई और हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक बोली–हे आर्ये! आपकी आज्ञा ले कर मैं रत्नावली तप करना चाहती हूँ। तब चन्दनबाला आर्या ने उत्तर दिया–हे देवानुप्रिये! जैसी तुम्हारी इच्छा। चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर काली आर्या ने रत्नावली तप प्रारंभ कर दिया।

पहले उसने उपवास किया और पारणा किया। पारणा में विगय का त्याग करना जरूरी नहीं है। पारणा करके बेला किया, फिर पारणा करके तेला किया। फिर आठ तेले किये फिर उपवास किया। फिर बेला किया और तेला किया। इस प्रकार अन्तर रहित चोला किया, पांच किये, छह किये, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, और सोलह किये। फिर चौंतीस बेले किये। फिर पारणा करके सोलह दिन की तपस्या की। पारणा करके फिर पन्द्रह दिन की तपस्या की। इस प्रकार पारणा करती हुई क्रमशः चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छ, पांच, चार,

तीन, दो, और एक, उपवास किया । पारणा करके फिर आठ बेले किये । पारणा करके तेला किया पारणा करके बेला किया फिर पारणा करके उपवास किया फिर पारणा किया । इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की एक परिपाटी की आराधना की । रत्नावली की यह एक परिपाटी एक वर्ष तीन महिना बाईस दिन में पूर्ण होती है । इस परिपाटी में तीन सौ चौरासी दिन तपस्या के एवं अठासी दिन पारणा के होते हैं । इस प्रकार कुल चारसौ बहत्तर दिन होते हैं ।

तदन्तर काली आर्या ने रत्नावली की दूसरी परिपाटी प्रारंभ कर दी–प्रथम उपवास किया, पारणें में सब विगय का त्याग किया । इस प्रकार उपवास का पारणा कर बेला किया फिर पारणा किया । फिर तेला कर पारणा किया और आठ बेले किये । पारणा करके उपवास किया फिर बेला तेला चोला पचोला और छठ करते हुए सोलह उपवास किये । फिर चौंतीस बेले किये । पारणा करके सोलह किये । फिर पन्द्रह, चौदह, तेरह, बारह इस प्रकार एक एक उपवास घटाते हुए क्रमशः एक उपवास किया । फिर आठ बेले किये । फिर तेला, बेला और उपवास किया । जिस तरह पहली परिपाटी की, इसी तरह दूसरी परिपाटी भी की परन्तु इसमें पांचों विकृतियों का त्यागपूर्वक पारणा किया । इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी की । तीसरी परिपाटी में पारणे के दिन विगय का लेप मात्र भी छोड़ दिया । इसी प्रकार चौथी परिपाटी भी की परन्तु इसके पारणे में आयम्बिल किया ।

इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की चारों परिपाटी को पांच वर्ष दो मास और अठ्ठाईस दिन में पूर्ण करके चन्दनबाला आर्या के पास उपस्थित हुई अपनी आत्मा को भावित करने लगी ।

इस प्रकार की कठोर तपस्या से काली आर्या की देह अत्यन्त क्षीण हो गई । उसके शरीर का रक्त और मांस सूख गया । मात्र हड्डियों का ढाँचा रह गया । उठते उठते चलते फिरते उनके शरीर की हड्डियों से कड़ कड़ की आवाज होने लगी । शरीर के सूख जाने पर

भी भस्म से आच्छादित अग्नि के समान उसका शरीर तेजस्वी लगता था ।

एक दिन काली आर्या के मन में पिछली रात्रि में इस प्रकार का विचार हुआ कि तपस्या के कारण मेरा देह अत्यन्त क्षीण हो गया है अतः जब तक मेरे शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम आदि की विद्यमानता है तब तक मुझे अनशन कर के संलेखना पूर्वक मृत्यु की कामना न करते हुए विचरण करना चाहिये। ऐसा विचार कर के वह दूसरे दिन आर्याचन्दना के पास आई और वन्दन कर बोली–हे आर्या ! मै आपकी आज्ञा से संलेखना झूषणा करना चाहती हूँ । आर्या चन्दनबाला ने कहा–देवानुप्रिये ! जैसी तुम्हारी इच्छा । आर्याचन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर आर्या काली ने अनशन कर लिया । एक मास तक संथारा पूरा करके अन्तिम श्वास में केवलज्ञान प्राप्त किया और अव्याबाध सुख को प्राप्त किया । इस महासाध्वी ने आठ वर्ष तक संयम की उत्कृष्ट भावना से आराधना की ।

सुकाली आर्या

चम्पा नगरी के राजा कोणिक की माता एवं राजगृह के महाराजा श्रेणिक की रानी ।

इसने भी भगवान महावीर का उपदेश श्रवण कर आर्या चन्दनबाला के समीप दीक्षा ग्रहण की और शास्त्रों का अध्ययन किया । उपवास बेला तेला आदि अनेक तपस्या करने के बाद आर्या चन्दना की आज्ञा लेकर सुकाली आर्या ने कनकावली तप प्रारंभ कर दिया । यह तप रत्नावली के समान ही है किन्तु इस तप की विशेषता यह है कि जहाँ रत्नावली तप में दोनों फूलों की जगह आठ आठ बेले और मध्य में ३४ बेले किये जाते हैं । कनकावली में आठ आठ बेलों की जगह आठ आठ तेले और मध्य में ३४ बेलों की जगह ३४ तेले किये जाते हैं ।

इस कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष पांच महिने और बारह दिन लगते हैं। इस में अट्टासी दिन पारने के और एक वर्ष दो महिने चौदह दिन तपस्या के होते हैं। चारों परिपाटी को पूरा करने में पांच वर्ष नौ महिने अठारह दिन लगते हैं।

सुकाली आर्या ने भी काली आर्या की तरह नौ वर्ष चारित्र पालन कर साठ भक्तों का अनशन कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मुक्तात्मा हुई।

आर्या महाकाली

महाकाली आर्या महाराजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इसने चम्पा में भगवान महावीर का उपदेश श्रवण कर सुकाली आर्या की तरह उत्सवपूर्वक आर्या चन्दनबाला के समीप दीक्षा ग्रहण की। सामायिकादि ११ अङ्गसूत्रों का अध्ययन कर अनेक प्रकार की छोटी बड़ी तपस्याएँ कीं।

एक समय आर्या चन्दनबाला की अनुज्ञा प्राप्त कर इस साध्वी ने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित नामक तप प्रारम्भ कर दिया। इस तप के प्रारम्भ में इसने सर्वप्रथम उपवास किया। पारणा किया। इसकी पहली परिपाटी के पारणों में विगय का त्याग करना अनिवार्य नहीं होता। फिर बेला कर के पारणा किया और फिर उपवास किया। पारणा करके तेला किया। इस प्रकार क्रमशः २, ४, ३, ५, ४, ६, ५, ७, ६, ८, ७, ९, ८, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ५, ३, ४, २, ३ १, २, १ उपवास किया। इस प्रकार लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की एक परिपाटी की। एक परिपाटी में छ महिने सात दिन लगे। जिसमें पारणे के तेतीस दिन और तपस्या के पांच मास तीन दिन हुए। इस प्रकार महाकाली आर्या ने चार परिपाटी कीं जिनमें दो वर्ष और अट्ठाईस दिन लगे।

इस प्रकार महाकाली आर्या ने सूत्रोक्त विधि से लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप की आराधना की तथा और भी अनेक प्रकार की फुटकर तपस्याएँ

की। अन्तिम समय में संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष पधार गई। इस आर्या ने दस वर्षतक चारित्र का पालन किया।

कृष्णारानी

यह राजा श्रेणिक की रानी और चम्पा के महाराजा कोणिक की छोटी माता थी। इसने चम्पा में भगवान का उपदेश श्रवण कर आर्या चन्दनबाला के समीप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर फिर आर्या चन्दन-बाला की आज्ञा प्राप्त करके महासिंहनिष्क्रीड़ित तपस्या की। लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप में एक उपवास से लेकर ऊपर नौ उपवास तक चढ़-कर उसी क्रम से वापिस उतरा जाता है किन्तु महासिंहनिष्क्रीड़ित तप में एक उपवास से लेकर ऊपर सोलह उपवास तक चढ़कर फिर उसी क्रम से वापिस उतरा जाता है। इस तप की विधि के अनुसार कृष्णारानी ने सर्वप्रथम उपवास किया फिर पारणा करके बेला किया फिर पारणा करके उपवास किया। इस प्रकार ३, २, ४, ३, ५, ४, ६, ५, ७, ६, ८, ७, ९, ८, १०, ९, ११, १०, १२, ११, १३, १२, १४, १३, १५, १४, १६, १५, १६, १४, १५, १३, १४, १२, १३, ११, १२, १०, ११, ९. १०, ८, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ५, ३, ४, २, ३, १ २, १ उपवास किया। इस प्रकार एक परिपाटी की। जिसमें एक वर्ष छह महिने अठारह दिन लगे। इसमें इकसठ पारणा हुए। एक वर्ष चार महिने सत्रह दिन की तपस्या हुई। चार परिपाटी में छह वर्ष दो महिने और बारह दिन लगे।

इस तरह कृष्णा आर्या ने महासिंहनिष्क्रीड़ित तप शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पूरा किया। इस कठोर तप साधना के कारण कृष्णा साध्वी का देह क्षीण हो गया। अन्त में काली आर्या की तरह अनशन कर मोक्ष प्राप्त किया। इसका दीक्षा पर्याय ११ वर्ष का था।

सुकृष्णा आर्या

रानी सुकृष्णा चम्पा के राजा कोणिक की लघुमाता एवं राजगृह के महाराजा श्रेणिक की रानी थी। इसने भगवान का उपदेश श्रवण कर

दीक्षा ग्रहण की। सामायिकादि अङ्गसूत्रों का अध्ययन कर इसने अनेक फुटकर तप किये।

एक बार यह चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर 'सप्तसप्तमिका' भिक्षु प्रतिमा तप करने लगी। इसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम सप्ताह में गृहस्थ के घर से प्रतिदिन एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह में प्रतिदिन दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती हैं। तीसरे सप्ताह में प्रतिदिन तीन-तीन दत्ति, चौथे सप्ताह में चार-चार दत्ति, पाचवें सप्ताह में पांच-पांच दत्ति, छठे सप्ताह में छह-छह दत्ति और सातवें सप्ताह में प्रतिदिन सात-सात दत्ति अन्न की और पानी की ग्रहण की जाती हैं। उनचास रात दिन में एकसौ छियानवें भिक्षा की दत्ति होती हैं।

सुकृष्णा आर्या ने इसी प्रकार सूत्रोक्त विधि के अनुसार सप्तसप्तमिका प्रतिमा की आराधना की। आहार पानी की सम्मिलितरूप से प्रथम-सप्ताह में सात दत्तियाँ हुई। दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे सप्ताह में इक्कीस, चौथे में अट्ठाईस, पाँचवे में पैंतीस, छठे में बयालीस, और सातवें में उनचास। इस प्रकार सब मिलाकर एकसौ छियानवे दत्तियाँ हुई। इसके बाद सुकृष्णा आर्या चन्दनबाला के पास आई और वन्दन-कर बोली-

'हे पूज्या! आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा तप करना चाहती हूँ। आर्या चन्दनबाला ने उसे आज्ञा प्रदान की। आर्या चन्दनबाला से आज्ञा प्राप्त कर सुकृष्णा आर्या ने अष्ट-अष्टमिका तप आरंभ कर दिया। प्रथम अष्टक में-एक दत्ति अन्न और एक दत्ति पानी की लीं और दूसरे अष्टक में दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ली। इसी प्रकार क्रम से आठवें अष्टक में आठ दत्ति अन्न की और आठ दत्ति पानी की ग्रहण की। इस प्रकार अष्ट-अष्टमिका भिक्षुप्रतिमा रूप तपस्या चौंसठ दिन रात में पूर्ण हुई। जिसमें

आहार पानी की दो सौ अठासी दत्ति हुईं। सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि से इस अष्ट अष्टमिका प्रतिमा की आराधना की। इसके बाद आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर उसने नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा अङ्गीकार की। प्रथम नवक में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इस क्रम से नवें नवक में नौ दत्ति अन्न की और नौ दत्ति पानी की ग्रहण कीं। यह नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा इक्यासी दिन रात में पूरी हुई। इसमें आहार पानी की चार सौ पांच दत्ति हुईं। इस नवनवमिका भिक्षु प्रतिमा की सूत्रोक्त विधि अनुसार आराधना करके सुकृष्णा आर्या ने आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा अङ्गीकार की इसके। प्रथम दशक में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इस प्रकार क्रमशः दसवें दशक में दस दत्ति अन्न की और दस दत्ति पानी की ग्रहण कीं। वह दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा एक सौ दिन रात में पूर्ण होती है। इसमें आहार पानी की सम्मिलित रूप से पांच सौ पचास दत्ति होती हैं। इस प्रकार इन भिक्षु प्रतिमाओं की सूत्रोक्त विधि से आराधना कर सुकृष्णा आर्या उपवासादि से लेकर अर्द्धमासखमण मासखमण आदि विविध प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। इस प्रकार घोर तपस्या के कारण सुकृष्णा आर्या अत्य-धिक दुर्बल हो गई। अन्त में संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्ध गति को प्राप्त हुई।

इसने १२ वर्ष तक चारित्र का पालन किया।

महाकृष्णा

कोणिक राजा की छोटी माता और श्रेणिक राजा की छठी रानी का नाम महाकृष्णा था। इसने भी काली रानी की तरह भगवान महा-वीर से प्रवज्या ग्रहण की। सामायिकादि ग्यारह अङ्गसूत्रों का अध्ययन किया। इसने लघुसर्वतोभद्र तप किया। इसमें प्रथम एक उपवास किया फिर पारणा किया फिर बेला, तेला, चोला और पंचोला किया। फिर इन पांच

अङ्कों के मध्य में आये हुए अङ्क से अर्थात् तेले से शुरू कर पांच अङ्क पूर्ण किये अर्थात् तेला, चोला, पंचोला, उपवास और बेला किया। फिर बीच में आये हुए पांच के अङ्क से शुरू किया अर्थात् पंचोला, उपवास, बेला, तेला और चोला किया। बाद में बेला, तेला, चोला, पचोला और उपवास किया। उसके बाद चोला, पंचोला, उपवास, बेला और तेला किया। इस तरह पहली परिपाटी पूर्ण की। इसमें तप के ७५ दिन और पारणे के २५ दिन कुल एक सौ दिन लगे। इसके बाद इस तप की दूसरी परिपाटी की। इसमें इसने पारणे में विगय का त्याग किया। तीसरी परिपाटी में पारणे के दिन विगय के लेपमात्र का भी त्याग कर दिया। इसके बाद चौथी परिपाटी की। इसमें इसने पारणे के दिन आयम्बिल किया। इस प्रकार उन्होंने लघुसर्वतोभद्र तप की चारों परिपाटी कीं। चारों परिपाटियों के पूर्ण करने में ४०० दिन अर्थात् एक वर्ष एक महीना और दस दिन लगते हैं। इस प्रकार सूत्रोक्त विधि से तप की आराधना कर अन्त में संथारा ग्रहण किया और सिद्धपद प्राप्त किया। इसने तेरह वर्ष तक चारित्र का पालन किया।

वीरकृष्णा

कोणिक राजा की छोटी माता और श्रेणिक राजा की सातवीं रानी का नाम वीरकृष्णा था। वह दीक्षा लेकर अनेक प्रकार की तपस्या करती हुई विचरने लगी।

एक समय चन्दनबाला आर्या की आज्ञा लेकर इसने महासर्वतोभद्र तप प्रारम्भ कर दिया। इसकी विधि इस प्रकार है—

सबसे पहले उपवास किया, फिर पारणा किया, फिर बेला से लगाकर सात उपवास किये। इसकी प्रथम परिपाटी में पारणे में विगय वर्जित नहीं था। दूसरी लता में चोला, पंचोला, छह, सात, उपवास बेला तेला किया। तीसरी लता में सात किये फिर उपवास, बेला, तेला, चोला, पंचोला और छह किये। चतुर्थ लता में तेला, चोला, पंचोला, छह,

सात, उपवास और बेला किया । पाचवीं लता में छह, सात, उपवास बेला, तेला, चोला, पंचोला किया । छठीं लता में बेला, तेला, चोला, पंचोला, छह, सात और उपवास किया । फिर पंचोला, छह, सात, उपवास बेला, तेला और चोला किया । यह सातवीं लता हुई । इस प्रकार सात लताओं की एक परिपाटी पूरी करने में आठ मास और पांच दिन लगे जिनमें उनचास दिन पारणे के और छह मास सोलह दिन तपस्या के हुए । इसकी दूसरी परिपाटी में पारणे में विगय का त्याग किया । तीसरी परिपाटी में लेपमात्र का भी त्याग कर दिया और चौथी परिपाटी में पारणे में आयम्बिल किया । चारों परिपाटी को पूर्ण करने में दो वर्ष आठ मास बीस दिन लगे । उसने इस तप की सूत्रोक्त विधि से आराधना की । अन्त में संथारा कर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त हुई । इसका दीक्षा पर्याय चौदह वर्ष का था ।

रामकृष्णा रानी

कौणिक राजा की छोटी माता और श्रेणिक राजा की आठवीं रानी का नाम रामकृष्णा था । दीक्षा धारण कर आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर वह भद्रोत्तर प्रतिमा तप अंगीकार कर विचरने लगी ।

इस तप में पांच से शुरूकर नौ उपवास तक किये जाते हैं । मध्य में आये हुए अंक को लेकर अनुक्रम से पंक्ति पूरी की जाती है । इसकी प्रथम परिपाटी में पारणे में विगय वर्जित नहीं था । इस तरह पांच पंक्तियों को पूरी करने से एक परिपाटी पूरी होती है । इसकी एक परिपाटी में १७५ दिन तपस्या के और २५ दिन पारणे के, सब मिलाकर २०० दिन अर्थात् छ महिने बीस दिन लगते हैं । चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में दो वर्ष दो महिने और बीस दिन लगते हैं ।

रामकृष्णा आर्या ने इस तप को सूत्रोक्त विधि से आराधन किया और अनेक प्रकार के तप करती हुई विचरने लगी। उसके बाद रामकृष्णा आर्या ने अपने शरीर को तप के द्वारा अति दुर्बल हुआ जान एक मास की संलेखना की। अन्तिम समय में केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्तकर मोक्ष पद को प्राप्त किया। इसने १५ वर्ष तक संयम का पालन किया।

पितृसेनकृष्णा रानी

कोणिक राजा की छोटी माता और श्रेणिक राजा की नवीं रानी का नाम पितृसेनकृष्णा था। दीक्षा के बाद वह अनेक प्रकार का तप करती हुई विचरने लगी। सती चन्दनबाला की आज्ञा लेकर उसने मुक्तावली तप किया। इसमें एक उपवास से शुरू करके पन्द्रह उपवास तक किये जाते हैं और बीच-बीच में एक-एक उपवास किया जाता है। मध्य में १६ उपवास करके फिर क्रमशः उतरते हुए एक उपवास तक किया जाता है। इसकी भी पहली परिपाटी के सब पारणों में विगयों के सेवन वर्जित नहीं हैं।

इस तप की एक परिपाटी में तपस्या के दिन २८६ और पारणे के दिन ५९ होते हैं अर्थात् ११ मास और १५ दिन होते हैं। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में तीन वर्ष १० महिने होते हैं। पारणे की विधि रत्नावली तप के समान है।

इस प्रकार तप करती हुई पितृसेनकृष्णा रानी ने देखा कि अब मेरा शरीर तपस्या से अति दुर्बल हो गया है तब उसने सती चन्दनबाला से आज्ञा लेकर एक मास की संलेखना की। केवलज्ञान, केवलदर्शन उपार्जन कर अन्त में मोक्ष पधारी। इसने १६ वर्ष तक चारित्र का पालन किया।

महासेनकृष्णा

कोणिक राजा की छोटी माता और श्रेणिक राजा की दसवीं रानी का नाम महासेनकृष्णा था। उसने आर्या चन्दनबाला के पास

दीक्षा लेकर आयंबिल वर्द्धमान तप किया। इसकी विधि इस प्रकार है–एक आयम्बिल के बाद उपवास किया जाता है, दो आयंबिल कर एक उपवास किया जाता है फिर तीन आयंबिल कर एक उपवास किया जाता है। इस तरह एक सौ आयंबिल तक बढ़ाते जाना चाहिये। बीच-बीच में एक-एक उपवास किया जाता है। इस तप में आयंबिल के पांच हजार पचास दिन होते हैं और उपवास के एक सौ दिन होते हैं। यह तप चौदह वर्ष तीन महिने बीस दिनमें पूर्ण होता है।

महासेनकृष्णा आर्या ने इस तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया तथा अन्य भी बहुत प्रकार का तप किया। कठिन तपस्याओं के कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गई तथापि आन्तरिक तप तेज के कारण वह अत्यन्त शोभित होने लगी।

इसके बाद एक दिन पिछली रात्रि में चिन्तन किया कि मेरा शरीर तपस्या से कृश हो गया है अतः जबतक मेरे शरीर में उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम है तब तक सलेखना कर लेनी चाहिये।

प्रातःकाल होने पर आर्या चन्दनबाला की आज्ञा लेकर संलेखना की। मरण की वाछा न करती हुई तथा आर्या चन्दनबाला के पास से पढ़े हुए ग्यारह अगों का स्मरण करती हुई धर्म ध्यान में तल्लीन रहने लगी। साठ भक्त अनशन का छेदनकर और एक महिने का संथारा कर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्तकर मुक्त हुई। इसने १७ वर्ष तक संयम का शुद्ध भाव से पालन किया।

चेलना

वैशाली के राजा चेटक की सात कन्याएँ थी। प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा तथा चेलना। इनमें प्रभावती का विवाह वीतिभय के राजा उदायण के साथ, मृगावती का कौशांबी के राजा शतानीक के साथ, शिवा का उज्जैणी के राजा प्रद्योतन के

साथ तथा ज्येष्ठा का कुण्डग्राम वासी महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन के साथ हुआ था। सुज्येष्ठा और चेलना अभी कुंवारी थीं।

मगध के राजा श्रेणिक ने जब सुज्येष्ठा के रूप गुण की प्रशंसा सुनी तो वह उस पर मोहित हो गया। उसने विवाह का सन्देश लेकर राजा चेटक के पास दूत भेजा, परन्तु चेटक ने यह कहकर उसे लौटा दिया कि श्रेणिक के कुल में अपनी कन्या नहीं देना चाहता। श्रेणिक को बहुत बुरा लगा। उसने अपने मन्त्री अभयकुमार को बुलाकर पूछा कि क्या करना चाहिये। मन्त्री ने कहा—महाराज आप चिन्ता न करें; सुज्येष्ठा को मैं यहीं ला दूंगा। अभयकुमार ने वणिक का वेश बनाया और वैशाली पहुँचा। वहाँ राजा के कन्या-अन्तःपुर के पास एक दुकान किराये पर लेकर रहने लगा। अभयकुमार ने चित्रपट पर श्रेणिक का एक सुन्दर चित्र बना कर दुकान में टाँग दिया। अभयकुमार की दुकान पर अन्तःपुर की जो दासियाँ तैलचूर्ण आदि खरीदने आतीं उन्हे वह खूब माल देता और उनका दान मान आदि से सत्कार करता। श्रेणिक के चित्र को देखकर एक दिन दासियों ने पूछा, 'यह किसका चित्र है?' अभय ने कहा—ये राजा श्रेणिक हैं। दासियों ने पूछा, क्या ये इतने सुन्दर हैं? अभयकुमार ने कहा—ये इससे भी अधिक सुन्दर हैं,। दासी चित्रपट लेकर सुज्येष्ठा के पास गई। सुज्येष्ठा श्रेणिक के चित्र को देखकर उस पर मुग्ध होगई और दासियों से बोली कि कोई ऐसा उपाय करो जिससे मुझे श्रेणिक मिल सके। दासियों ने आकर अभयकुमार से कहा। अभयकुमार ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो मैं श्रणिक को यहीं ला सकता हूँ। श्रेणिक वैशाली में आ गया। अभयकुमार ने अन्दर ही अन्दर कन्याअन्तःपुर तक एक सुरंग खुदवाई और नियत समय पर श्रेणिक अपना रथ लेकर सुजेष्ठा को लेने पहुँच गया।

सुज्येष्ठा अपनी छोटी बहन चेलना से बहुत प्रेम करती थी। उसने चेलना को बुलाकर कहा—बहन! मै श्रेणिक के साथ जा रही

हूँ परन्तु अपनी बहन का जाना चेलना को सहन न हुआ। बहिन का वियोग न सह सकने के कारण वह उसके साथ चलने को तैयार हो गई। सुज्येष्ठा ने चेलना को कहा–"बहन जरा ठहर, मै अपने गहने लेकर अभी आती हूँ।" परन्तु श्रेणिक को डर था कि कहीं किसी को पता न लग जाय, इसलिये वह जल्दी–जल्दी में चेलना को लेकर ही चलता बना। कुछ देर के बाद सुज्येष्ठा आई तो रथ न देखकर सिर पटक कर रोने लगी।

जब चेटक को पता चला तो उसके सिपाहियों ने श्रेणिक का पीछा किया। चेटक के सैनिकों ने श्रेणिक के सैनिकों को मार दिया परन्तु श्रेणिक सुरंग में से अपना रथ भगा कर लेगया। इस युद्ध में सुलसा के ३२ पुत्र भी मारे गये जो श्रेणिक के रथी थे। राजगृह पहुँच कर श्रेणिक ने सुज्येष्ठा को आवाज दी 'सुज्येष्ठा'। अन्दर से उत्तर मिला मै चेलना हूँ। सुज्येष्ठा वहीं रह गई।

चेलना का श्रेणिक के साथ विवाह होगया।

एक बार श्रेणिक और चेलना महावीर के दर्शनार्थ गये। वहाँ से लौटते हुए उन्हें संध्या हो गई। माघ का महिना था। चेलना ने मार्ग में ध्यान मुद्रा में अवस्थित कठोर तप करते हुए एक मुनि को देखा। ऐसी भयंकर शीत में उसे तप करते देख चेलना ने आश्चर्य चकित हो मुनि को बार बार वन्दन किया।

रानी महल में आकर सोगई। संयोगवश सोते–सोते रानी का हाथ पलंग के नीचे लटक गया और ठंड से अकड़ गया। जब रानी की नींद खुली तो उसके हाथ में असह्य वेदना थी। तुरंत एक अँगीठी मंगाई गई और रानी अपना हाथ सेंकने लगी। इस समय रानी को सहसा उस तपस्वी का स्मरण हो आया जो भयंकर शीत में जंगल में बैठा तपश्चर्या में लीन था। उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा, "उफ उस बचारे का क्या हाल होगा!" राजा श्रेणिक वहाँ मौजूद था। उसे सन्देह होगया कि अवश्य कोई बात है, रानी ने किसी पर पुरुष को

संकेत स्थान पर पहुँचने का वचन दिया है, जो संभवतः अब पूरा न हो सकेगा।

प्रातः काल राजा श्रेणिक बहुत उदास मालूम होते थे। उन्होंने अभयकुमार मंत्री को बुलाकर उसे शीघ्र ही चेलना का अन्तःपुर जला डालने की आज्ञा दी। इसके बाद श्रेणिक महावीर के समवशरण में गया और भगवान से पूछा–भगवन् चेलना पतिव्रता है या नहीं। भगवान ने उत्तर दिया–'हाँ, चेलना पतिव्रता है।" भगवान का उत्तर सुन कर श्रेणिक व्याकुल हो उठा। उसने सोचा कि अभयकुमार ने कहीं अन्तःपुर भस्म न कर डाला हो! वह शीघ्रता से आया और मंत्री अभयकुमार से पूछा अन्तःपुर तो अभी नहीं जलाया? मंत्री ने उत्तर दिया–महाराज चिन्ता न करें। अन्तःपुर सुरक्षित है। राजाज्ञा शिरोधार्य करने के लिये केवल एक हस्तिशाला ही जला दी गई थी।

चेलना के प्रति श्रेणिक के इस निंद्य बरताव को देखकर अभयकुमार को संसारसे वैराग्य होगया और उन्होंने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की।

सती प्रियदर्शना

सती प्रियदर्शना भगवान महावीर की पुत्री थी। इसके ज्येष्ठा और अनवद्या भी नाम थे। इसका विवाह कुण्डपुर के राजकुमार जमालि के साथ हुआ था। जमालि के दीक्षित होनेपर प्रियदर्शना ने भी हजार स्त्रियों के साथ भगवान महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण की।

जमाली निह्नव बनकर अपने पांचसौ साथी मुनियों के साथ भगवान महावीर से अलग होगया और अपने सिद्धान्त 'बहुरतवाद' का प्रचार करने लगा।

प्रियदर्शना भी हजार साध्वियों के साथ भगवान के संघ से निकल गई और जमाली के सिद्धान्त को मानने लगी।

एक बार वह विचरती हुई अपनी साध्वियों के साथ श्रावस्ती आई और ढंक नामक कुम्भकार के घर ठहरी। ढंक कुम्भकार भगवान

महावीर के सिद्धान्त को मानने वाला श्रमणोपासक था और जीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था। प्रियदर्शना को गलत मार्ग पर चलते देख कर ढंक ने उसे समझाने का निश्चय किया।

एक दिन प्रियदर्शना स्वाध्याय कर रही थी। ढंक पास ही पड़े हुए मिट्टी के बर्तनों को उलट पलट कर रहा था। उसी समय आग का एक अंगारा प्रियदर्शना की ओर फैंक दिया। उसकी चद्दर का एक कोना जल गया। उसने ढंक से कहा–श्रावक ! तुमने मेरी चद्दर जला दी। ढंक ने कहा–यह कैसे ? आपके सिद्धान्त से तो जलती हुई वस्तु जली नहीं कही जा सकती फिर मैने आपकी चद्दर कैसे जलाई ?

प्रियदर्शना को ढंक की बात समझ में आई और जमाली का सिद्धान्त गलत लगा। उसने जमाली के पास जाकर चर्चा की और उसे समझाने का प्रयत्न किया। जमाली ने उसकी कोई बात न मानी तब वह अपने साध्वी संघ के साथ भगवान के पास आई और क्षमा याचना कर भगवान के संघ में मिल गई। इसने कठोर तप किया और अन्त में घनघाती कर्म का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष में गई।

श्राविका जयन्ती

वत्सदेश की राजधानी कोशाम्बी में उदयन नाम का राजा राज्य करता था। इसके पिता का नाम शतानीक, प्रपिता का नाम सहस्रानीक और माता का नाम मृगावती था। वह अत्यन्त धर्मपरायण और भगवान महावीर का उपासक था। महाराज शतानीक की बहन और राजा उदयन की बुआ जयन्ती नाम की श्राविका कोशांबी में रहा करती थी। वह आर्हत् धर्म की अनन्य उपासिका और धर्म की जानकार थी। वैशाली की तरफ से कोशाबी आनेवाले आर्हत् श्रावक बहुधा इसी के यहाँ ठहरा करते थे। इस कारण वह वैशाली के आर्हत् श्रावकों की प्रथम स्थानदात्री के नाम से प्रसिद्ध थी।

एक बार भगवान महावीर वहाँ पधारे और चन्द्रावतरण नामक उद्यान में विराजित हुए।

भगवान के आने की सूचना जब राजा उदयन को मिली तो वह पूरी राजसी मर्यादा से अपने मन्त्रियों, अनुचरों और माता मृगावती एवं अपनी बुआ श्राविका जयन्ती को लेकर भगवान की वन्दना करने चला।

भगवान के चरणों में पहुँच कर उदयन, माता मृगावती एवं श्राविका जयन्ती ने प्रदक्षिणा पूर्वक वन्दना की और धर्म देशना सुनने की भावना से उनकी सेवा में बैठ गये।

भगवान् ने महती सभा के बीच उन सब को उपदेश दिया। भगवान की वाणी सुनकर परिषद् विसर्जित हुई और अपने अपने स्थान चली गई।

सभा विसर्जित हो जाने पर भी जयन्ती अपने परिवार के साथ वहीं ठहरी। अवसर पाकर धार्मिक चर्चा शुरू करते हुए जयन्ती श्राविका ने पूछा-

"भगवन्! जीव गुरुत्व (भारीपण) को कैसे प्राप्त होता है?"

भगवान-जयन्ती! जीव हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन परिग्रह आदि अठारह पाप स्थान के सेवन से जीव भारीपन को प्राप्त होता है।

जयन्ती-भगवन्! जीव लघुत्व (हलकापन) को कैसे प्राप्त होता है।

भगवान-जयन्ती! प्राणातिपात, असत्य, चोरी आदि अठारह पाप स्थान की निवृत्ति से जीव हलकेपन को प्राप्त करता है अर्थात् संसार को घटाता है।

जयन्ती-भगवन्! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से?

भगवान-जयन्ती! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता स्वभाव से है परिणाम से नहीं।

जयन्ती–भगवन् ! क्या सब भवसिद्धिक (मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता वाले जीव) मोक्षगामी हैं ?

भगवान–हाँ ! जो भवसिद्धिक हैं वे सब मोक्षगामी हैं ।

जयन्ती–भगवन् ! यदि सब भवसिद्धिक जीवों की मुक्ति हो जायगी तो क्या यह संसार भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायगा ?

भगवान–नहीं जयन्ती ! ऐसा नहीं हो सकता । जैसे सर्वाकाश प्रदेशों की श्रेणी में से कल्पना से प्रति समय एक एक प्रदेश कम करने पर भी आकाश प्रदेशों का कभी अन्त नहीं होता, इसी प्रकार भवसिद्धिक अनादि काल से सिद्ध हो रहे हैं और अनन्त काल तक होते रहेंगे फिर भी वे अनन्तानन्त होने से समाप्त नहीं होंगे और संसार कभी भी भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा ।

जयन्ती–भगवन् ! जीव सोता हुआ अच्छा है या जागता हुआ अच्छा है ?

भगवान–कुछ जीवों का सोना अच्छा है और कुछ जीवों का जागना अच्छा है ।

जयन्ती–भगवन् ! यह कैसे ? दोनों बातें अच्छी कैसे हो सकती हैं ?

भगवान–जयंती ! अधर्म के मार्ग पर चलने वाले अधर्म का आचरण करने वाले और अधर्म से अपनी जीविका चलाने वाले जीवों का ऊँघना ही अच्छा है क्योंकि ऐसे जीव जब ऊँघते हैं तब बहुत से जीवों की हिंसा करने से बचते हैं तथा बहुत से जीवों को त्रास पहुँचाने में असमर्थ होते हैं । वे सोते हुए अपने को तथा अन्य जीवों को दुःख नहीं पहुँचा सकते अतः ऐसे जीवों का सोना ही अच्छा है और जो जीव धार्मिक धर्मानुगामी, धर्मशील, धर्माचारी और धर्म पूर्वक जीविका चलाने वाले हैं उन जीवों का जागना अच्छा है क्योंकि, जागते हुए वे किसी को दुःख नहीं देते हुए अपने को तथा अन्य जीवों को धर्म में लगाकर सुखी और निर्भय बनाते हैं । अतः ऐसे जीवों का जागना ही अच्छा है ।

जयन्ती–भगवन् ! जीवों की सबलता अच्छी है या दुर्बलता ?

भगवान–कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता अच्छी है।

जयन्ती–यह कैसे ?

भगवान–जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक है और अधर्म से जीविकोपार्जन करते हैं, उन जीवों के लिये दुर्बलता अच्छी है क्योंकि ऐसे जीव दुर्बल होने से दूसरों को त्रास देने में और अपनी आत्मा को पापों से मलीन बनाने में विशेष समर्थ नहीं होते। जो जीव धर्मिष्ठ, धर्मानुगामी और धर्ममय जीवन बिताने वाले हैं उनकी सबलता अच्छी है क्योंकि ऐसे जीव सबल होने पर भी किसी को दुःख न देते हुए अपना तथा औरों का उद्धार करने में अपने बल का उपयोग करते हैं।

जयन्ती–भगवन् ! जीवों का दक्ष, उद्यमी होना अच्छा है या आलसी होना ?

भगवन्–कुछ जीवों का उद्यमी होना अच्छा है और कुछ जीवों का आलसी होना अच्छा है ?

जयन्ती–यह कैसे ? दोनों बातें अच्छी कैसे हो सकती हैं ?

भगवान्–जयन्ती ! जो जीव अधर्मी, अधर्मशील और अधर्म से जीने वाले हैं उनका आलसीपन ही अच्छा है, क्योंकि ऐसा होने से वे अधर्म का अधिक प्रचार न करेंगे। इसके विपरीत जो जीव धर्मी, धर्मानुगामी और धर्म से ही जीवन बितानेवाले हैं उनका उद्यमी होना अच्छा है क्योंकि ऐसे धर्मपरायण जीव सावधान होने से आचार्य, उपाध्याय, वृद्ध, तपस्वी, रोगी तथा बाल आदि की वैयावृत्य करते हैं, कुल गण, सघ तथा साधर्मिकों की सेवा में अपने को लगाते हैं और ऐसा करते हुए वे अपना और दूसरों का भला करते हैं।

जयन्ती–भगवन् ! पांचों इन्द्रियों के वश में पड़े हुए जीव किस प्रकार के कर्म बाँधते हैं ?

भगवान–जयन्ती ! पाचों इन्द्रियों के वशीभूत जीव आयुष्य को छोड़कर शेष सातों कर्म-प्रकृतियाँ बाँधते हैं। पूर्वबद्ध शिथिल बन्धन को गाढ बन्धन और लघु स्थिति को दीर्घ स्थिति का कर देते हैं, इस प्रकार कर्मों की स्थिति को बढ़ाकर चतुर्गतिरूप ससार में भटका करते हैं। इसी प्रकार क्रोध के वशीभूत जीवों के सम्बन्ध में भी प्रश्न उसने पूछे और भगवान ने उन सब के सम्बन्ध में भी यही उत्तर दिया।

प्रश्नोत्तरों से जयन्ती को अत्यन्त सन्तोष हुआ। उसने हाथ जोड़कर भगवान से निवेदन किया–भगवन्! कृपया मुझे प्रव्रज्या देकर अपने भिक्षुणी सघ में दाखिल कीजिए।

भगवान महावीर ने जयन्ती की विनती स्वीकार कर उसे प्रव्रज्या दे दी और भिक्षुणी संघ में सम्मिलित कर लिया।

जयन्ती ने दीक्षा लेने के बाद श्रुत का अध्ययन कर खूब तप किया और अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

महासती सुलसा

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुनन्दा था। रानी सुनन्दा से उत्पन्न राजकुमार-अभय महाराज का मंत्री था।

उसी नगर में महाराजा प्रसेनजित् का सम्बन्धी नाग नामका रथिक रहता था। वह महाराज श्रेणिक का विश्वासपात्र था। उसके श्रेष्ठ गुणोंवाली सुलसा नाम की पत्नी थी। वह धर्मनिष्ठा व सम्यक्त्व में अत्यन्त दृढ़ थी। उसे कभी क्रोध नहीं आता था। दोनों पति पत्नी के सुखी होने पर भी उन्हें सन्तान का अभाव सदा खटकता रहता था। इसे वे अपने अशुभकर्म का उदय मानकर दान, त्याग और तपस्या आदि धर्म कार्यों में विशेष अनुराग रखने लगे।

एक बार इन्द्र ने अपनी देव सभा में सुलसा की प्रशंसा करते हुए कहा—नाग रथिक की पत्नी सुलसा को कभी क्रोध नहीं आता। उसको धर्म से कोई भी देव या मनुष्य विचलित नहीं कर सकता। इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा को सुनकर हरिणैगमेषी देव सुलसा की परीक्षा करने के लिये मृत्युलोक में आया। दो साधुओं का रूप बनाकर वह सुलसा के घर गया। मुनियों को देखकर सुलसा अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने मुनियों को वन्दन किया और आहार लेने के लिये आग्रह किया। मुनियों ने कहा—हमें ग्लान साधुओं के उपचार के लिये लक्षपाक तैल की आवश्यकता है।

'लाती हूँ।' कह कर सुलसा प्रसन्नभाव से तैल लाने के लिये घर में गई। जैसे ही उसने तेल के भाजन को हाथ में लिया देव माया से वह हाथ से छूट कर फूट गया। इस प्रकार दूसरा और तीसरा भाजन भी नीचे गिर कर फूट गया। इतना नुकसान होने पर भी सुलसा के मन में जरा भी क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु उसे मुनि के पात्र में तैल न पहुँचने का अत्यन्त दुःख हो रहा था। देव उसकी मनोदशा को समझ गया। सुलसा की इस अपूर्वक्षमा-शीलता को देखकर हरिणैगमेषी देव बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपना असली रूप प्रकट कर कहा—देवी! सचमुच तुम धन्य हो। शक्रेन्द्र ने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी वास्तव में तुम वैसी ही क्षमाशील और धर्मपरायण हो। देव ने प्रसन्न होकर उसे ३२ गोलियाँ देते हुए कहा—एक एक गोली खाती जाना। तुम्हें इसके प्रभाव से ३२ वीर पुत्रों की प्राप्ति होगी। इतना कह कर देव अन्तर्धान हो गया।

सुलसा ने सोचा कि ३२ बार गोली खाने से ३२ बार पुत्र प्रसव का कष्ट उठाना पड़ेगा। अतः यदि सब गोली एक साथ ही खालूँगी तो मुझे ३२ लक्षण वाला गुणी पुत्र होगा। ऐसा विचार कर उसने ३२ गोलियाँ एक साथ खालीं। उनके प्रभाव से सुलसा के बत्तीस गर्भ रह गये और धीरे धीरे बढ़ने लगे। प्रसव के समय उसे असह्य वेदना होने लगी। उसने वेदना शान्ति के लिये हरिणैगमेषी देव

का स्मरण किया । हरिणैगमेषी ने प्रसन्न होकर सुलसा की पीड़ा शान्त करदी । उसने ३२ सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया । नाग रथिक की चिर अभिलाषा पूरी हुई । योग्य अवस्था होने पर सभी को धर्म कर्म और शस्त्रकला में निपुण बनाया । युवावस्था में उन सभी का सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह कर दिया गया ।

कालान्तर में ये महाराज श्रेणिक के विश्वासपात्र अंग रक्षक बने । श्रेणिक जब सुज्येष्ठा का अपरहरण करने गया था उस समय वैशाली के राजा चेटक के बाणों से ३२ ही पुत्रों की मृत्यु हो गई ।

सुलसा को अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर बड़ा दुःख हुआ । एक साथ बत्तीस पुत्रों का वियोग उसे असह्य हो गया । वह विलाप करने लगी । मंत्री अभयकुमार को जब इस बात का पता लगा तो वह स्वयं सुलसा के पास आया और उसे सांत्वना दी । सुलसा ने पुत्र वियोग के बाद अपने मन को अधिक धर्म में दृढ़ किया । वह निरन्तर भगवान के उपदेश का स्मरण करती हुई अपना समय धर्मकार्य में बिताने लगी ।

कुछ दिनों बाद भगवान् महावीर चम्पा नगरी में पधारे । नगरी के बाहर देवों ने समवशरण की रचना की । भगवान ने धर्मोपदेश दिया । देशना के अन्त में अम्बड़ नाम का विद्याधारी श्रावक खड़ा हुआ । विद्या के प्रभाव से वह कई प्रकार के रूप पलट सकता था । वह राजगृही का रहने वाला था । उसने कहा—प्रभो ! आपके उपदेश से मेरा जन्म सफल होगया । अब मै राजगृही जा रहा हूँ ।

भगवान् ने फरमाया–राजगृही में सुलसा नाम वाली श्राविका है वह धर्म में परम दृढ़ है ।

अम्बड़ ने मन में सोचा सुलसा श्राविका बड़ी पुण्यशाली है, जिसके लिए भगवान् स्वयं इस प्रकार कह रहे हैं । उसमें ऐसा कौन–सा गुण है जिससे भगवान ने उसे धर्म में दृढ़ बताया । मै उसके

सम्यक्त्व की परीक्षा करूँगा। यह सोचकर उसने परिव्राजक (संन्यासी) का रूप बनाया और सुलसा के घर आकर कहा–आयुष्मति ? मुझे भोजन दो इससे तुम्हे धर्म होगा। सुलसा ने उत्तर दिया–जिन्हें देने से धर्म होता है, उन्हे मैं जानती हूँ।

वहाँ से लौट कर अम्बड़ ने आकाश में पद्मासन रचा और उस पर बैठ कर लोगों को आश्चर्य में डालने लगा। लोग उसे भोजन के लिए निमन्त्रित करने लगे किन्तु उसने किसी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। लोगों ने पूछा–भगवन् ! ऐसा कौन भाग्यशाली है जिसके घर का भोजन ग्रहण करके आप पारणा करेंगे ?

अम्बड़ ने कहा–मै सुलसा के घर का आहार पानी ग्रहण करूँगा। लोग सुलसा को बधाई देने आए। उन्होंने कहा–सुलसे ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे घर भूखा संन्यासी भोजन करेगा।

सुलसा ने उत्तर दिया–मैं उसे ढोंगी मानती हूँ। लोगों ने यह बात अम्बड़ से कही। अम्बड़ ने समझ लिया सुलसा परम सम्यग्दृष्टि है जिसने महान अतिशय देखने पर भी वह श्रद्धा में डाँवाडोल नहीं हुई।

इसके बाद अम्बड़ श्रावक ने जैन मुनि का रूप बनाया। 'णिसीही णिसीही' के साथ नमुक्कार मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसने सुलसा के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने मुनि जान कर उसका उचित सत्कार किया। अम्बड़ श्रावक ने अपना असली रूप बताकर सुलसा की बहुत प्रशंसा की। उसे भगवान् महावीर द्वारा की हुई प्रशंसा की बात कही। इसके बाद वह अपने घर चला गया।

सम्यक्त्व में दृढ़ होने के कारण सुलसा ने तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा। आगामी चौवीसी में उसका जीव पन्द्रहवें तीर्थङ्कर के रूप में उत्पन्न होगा और उसी भव में मोक्ष जायगा।

तप के नाम और विधि

लघु सर्वतो भद्र तप

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

तप दिन ७५। पारणा २५। कुल समय ३ मास १० दिन। चारों परिपाटी में १ वर्ष १ मास १० दिन होते हैं।

भद्रोत्तर प्रतिमा तप

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

तप दिन १७५। पारणा २५। कुल समय ६ मास २० दिन। चारों परिपाटी में २ वर्ष २ मास और २० दिन होते हैं।

महा सर्वतो भद्र तप

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

तप दिन १९६। पारणा दिन ४९। कुल ८ मास ५ दिन। चारों परिपाटी में २ वर्ष ८ मास और २० दिन लगते हैं।

महासिंह क्रीड़ा तप

१	१
२	२
३	३
२	२
४	४
३	३
५	५
४	४
६	६
५	५
७	७
६	६
८	८
७	७
९	९
८	८
१०	१०
९	९
११	११
१०	१०
१२	१२
११	११
१३	१३
१२	१२
१४	१४
१३	१३
१५	१४
१४	१६
१६	

इस तप के दिन ४९७। पारणा दिन ६१। १ वर्ष ६ मास १८ दिन।

चार परिपाटी करने में ६ वर्ष २ महीना १२ दिन।

✱ १५ ✱

लघुसिंह क्रीड़ा तप

१	१
२	२
१	१
३	३
२	२
४	४
३	३
५	५
४	४
६	६
५	५
७	७
६	६
८	८
७	७
९	९

इस तप के दिन १५४ । पारणा दिन ३३ । ६ मास ७ दिन । चार लड़ी तप में २ वर्ष २८ दिन ।

* ८ *

एकावलीतप

एकावली तप के दिन ३३४। पारणा ८८। १ वर्ष २ महिना २ दिन। चार परिपाटी में ४ वर्ष ८ मास ८ दिन

१
२
३
१ १ १
१ * १
१ १ १
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१
१
१
१

१
१ १
१ १ १ १
१ १ १ १
१ १ १ १
१ १ १ १
१ १ १ १
१ १
१

१
२
३
१ १ १
१ * १
१ १ १
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१
१
१
१

मुक्तावलीतप

१	१
२	२
१	१
३	३
१	१
४	४
१	१
५	५
१	१
६	६
१	१
७	७
१	१
८	८
१	१
९	९
१	१
१०	१०
१	१
११	११
१	१
१२	१२
१	१
१३	१३
१	१
१४	१४
१	१
१५	१५
१	१

* १६ *

मुक्तावलीतप के दिन २८६ पारणा ५९ एक लड़ी में ११ मास १५ दिन, चारों परिपाटी करने में कुल ३ वर्ष और १० महीने होते हैं।

रत्नावलीतप

१ २ ३ २ * २ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ २ २ २ २

२ २ २ २ २ २

रत्नावली तप के दिन ३८४। पारणा ८८। इसके १ वर्ष ३ महीना २२ दिन होते हैं। चार परिपाटी के ५ वर्ष २ महीना २८ दिन।

२ २ २ २ २

२ २ २ २ २ २ २

२ २

२ २ २ २ २ २ २

२ २ २ २ २

१ २ ३ २ * २ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ २ २ २ २

२ २ २ २ २ २

कनकावलीतप

१
२
३
३ ३ ३
३ * ३
३ ३ ३
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
३
३
३
३

३ ३ ३ ३ ३ ३
३ ३ ३ ३ ३ ३
३ ३ ३ ३ ३ ३
३ ३ ३ ३ ३ ३
३ ३ ३
३

इस तप के दिन ४३४। पारणा-दिन ८८। इसके १ वर्ष ५ महीना १२ दिन होते हैं। चार परिपाटी में ५ वर्ष ९ महीना १८ दिन लगते हैं।

१
२
३
३ ३ ३
३ * ३
३ ३ ३
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
३
३
३
३

आयंबिल वर्धमान तप

आयं०	पा०	उ०	आयं०	पा०	उ०	आयं०	पा०	उ०	आयं०	पा०	उ०
१	,,	१	२६	,,	१	५१	,,	१	७६	,,	१
२	,,	१	२७	,,	१	५२	,,	१	७७	,,	१
३	,,	१	२८	,,	१	५३	,,	१	७८	,,	१
४	,,	१	२९	,,	१	५४	,,	१	७९	,,	१
५	,,	१	३०	,,	१	५५	,,	१	८०	,,	१
६	,,	१	३१	,,	१	५६	,,	१	८१	,,	१
७	,,	१	३२	,,	१	५७	,,	१	८२	,,	१
८	,,	१	३३	,,	१	५८	,,	१	८३	,,	१
९	,,	१	३४	,,	१	५९	,,	१	८४	,,	१
१०	,,	१	३५	,,	१	६०	,,	१	८५	,,	१
११	,,	१	३६	,,	१	६१	,,	१	८६	,,	१
१२	,,	१	३७	,,	१	६२	,,	१	८७	,,	१
१३	,,	१	३८	,,	१	६३	,,	१	८८	,,	१
१४	,,	१	३९	,,	१	६४	,,	१	८९	,,	१
१५	,,	१	४०	,,	१	६५	,,	१	९०	,,	१
१६	,,	१	४१	,,	१	६६	,,	१	९१	,,	१
१७	,,	१	४२	,,	१	६७	,,	१	९२	,,	१
१८	,,	१	४३	,,	१	६८	,,	१	९३	,,	१
१९	,,	१	४४	,,	१	६९	,,	१	९४	,,	१
२०	,,	१	४५	,,	१	७०	,,	१	९५	,,	१
२१	,,	१	४६	,,	१	७१	,,	१	९६	,,	१
२२	,,	१	४७	,,	१	७२	,,	१	९७	,,	१
२३	,,	१	४८	,,	१	७३	,,	१	९८	,,	१
२४	,,	१	४९	,,	१	७४	,,	१	९९	,,	१
२५	,,	१	५०	,,	१	७५	,,	१	१००	,,	१

कुल आयंबिल दिन ५०५०। उपवास दिन १००। कुल ५१५० दिन। १४ वर्ष ३ महीना और २० दिन में यह वर्धमान आयंबिल तप पूर्ण होता है।

सप्तसप्तमिका

१	७	७	७	७	७	७	७	१	सप्ताह १ दत्ति आहार पानी
२	७	७	७	७	७	७	७	२	,, २ ,, ,, ,,
३	७	७	७	७	७	७	७	३	,, ३ ,, ,, ,,
४	७	७	७	७	७	७	७	४	,, ४ ,, ,, ,,
५	७	७	७	७	७	७	७	५	,, ५ ,, ,, ,,
६	७	७	७	७	७	७	७	६	,, ६ ,, ,, ,,
७	७	७	७	७	७	७	७	७	,, ७ ,, ,, ,,

कुल १९६ दत्ति आहार और पानी जानना, इसमें ४९ दिन लगते हैं।

अष्टअष्टमिका तप

१	८	८	८	८	८	८	८	८
२	८	८	८	८	८	८	८	८
३	८	८	८	८	८	८	८	८
४	८	८	८	८	८	८	८	८
५	८	८	८	८	८	८	८	८
६	८	८	८	८	८	८	८	८
७	८	८	८	८	८	८	८	८
८	८	८	८	८	८	८	८	८

अष्टअष्टमिका तप में प्रथम आठ दिन तक एक दत्ति आहार पानी दूसरी वार में आठ दिन तक दो दत्ति आहार पानी इस प्रकार क्रमशः तीसरी, चौथी, पांचवीं यावत् आठवीं वार में आठ दत्ति आहार आठ दत्ति पानी लेवे। कुल २८८ दत्ति आहार और पानी जानना। इसमें ६४ दिन लगते हैं। २ मास ४ दिन।

नवम नवमिका तप

१	९	९	९	९	९	९	९	९	९
२	९	९	९	९	९	९	९	९	९
३	९	९	९	९	९	९	९	९	९
४	९	९	९	९	९	९	९	९	९
५	९	९	९	९	९	९	९	९	९
६	९	९	९	९	९	९	९	९	९
७	९	९	९	९	९	९	९	९	९
८	९	९	९	९	९	९	९	९	९
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९

पहले नो दिन तक एक दत्ति आहार पानी, दूसरी बार में दो दत्ति आहार इस प्रकार क्रमशः तीसरी बार में ३ दत्ति, ४ बार में ४ दत्ति पांचवीं बार में ५ दत्ति, ६–७–८ और नोमी बार में नो दत्ति आहार पानी लेना। कुल दत्ति आहार पानी की ४०५ होती हैं। इस तप में ८१ दिन लगते हैं। यह तप २ महीना २१ दिन में पूर्ण होता है।

दशम दशमिका तप

१	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
२	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
३	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
४	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
५	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
७	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
८	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०

दशमदशमिका तप में पहले १० दिन तक एक दत्ति अन्न पानी दूसरे १० दिन तक अन्न जल क्रमशः ३-४-५-६-७-८-९ और दशमो वार में दश दत्ति आहार पानी लेवे । इस तप में ५५० दत्ति आहार और पानी की हुई । कुल दिन १०० लगते हैं । ३ महीना दस दिन लगते हैं ।

गुणरत्न संवत्सर तप

तप दिन पारणा दिन	कुल दिन
३२ – १६ १६ – २	३४
३० – १५ १५ – २	३२
२८ – १४ १४ – २	३०
२६ – १३ १३ – २	२८
२४ – १२ १२ – २	२६
३३ – ११ ११ ११ – ३	३६
३० – १० १० १० – ३	३३
२७ – ९ ९ ९ – ३	३०
२४ – ८ ८ ८ – ३	२७
२१ – ७ ७ ७ – ३	२४
२४ – ६ ६ ६ ६ – ४	२८
२५ – ५ ५ ५ ५ ५ – ५	३०
२४ – ४ ४ ४ ४ ४ ४ – ६	३०
२४ – ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ – ८	३२
२० – २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ – १०	३०
१६ – १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १६–	३२

इस तप के दिन ४०७। पारणा ७३। कुल ४८० दिन होते हैं। १ वर्ष ४ महीना में यह तप पूर्ण होता है। (भगवती श० २ उ० १)

मेवाड़ संप्रदाय के प्रभावशाली आचार्य

लेखक—

पं० मुनि श्री हस्तीमलजी महाराज

'मेवाड़ी'

युगप्रधान

आचार्य श्रीधर्मदासजी महाराज

जैन परम्परा के समुज्ज्वल इतिहास में सोलहवीं से सत्रहवीं शती का विशेष महत्व है। इस युग को विचार क्रांति का स्वर्णयुग कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्रीमान् लोंकाशाह, भानजी—स्वामी, धर्मसिंहजी महाराज, लवजी ऋषिजी तथा धर्मदासजी महाराज आदि आदर्श प्रेरक व्यक्तियों ने इसी समय अपने परिष्कृत विचारों से जैन समाज के मानस को नव जागरण का दिव्य सन्देश दिया। धर्म के मौलिक तत्त्वों के नाम पर जो विकार, असंगतियाँ और सांप्रदायिक-कलहमूलक धारणाएँ पनप रही थीं उनके प्रति तीव्र असंतोष का ज्वार इन्हीं सन्तों की अनुभवमूलक वाणी में फूटा था। स्वाभाविक था कि आकस्मिक और अप्रत्याशित क्रान्तिपूर्ण विचारधारा के उदय से स्थितिपालक समाज में हलचल उत्पन्न हो गई परिणाम स्वरूप प्रतिक्रियावादी भावनाएँ जागृत हुईं। अपने युग में उत्पन्न धार्मिक विकृतियों के प्रति उन सन्तों का विद्रोह जैन सम्प्रदाय को दूरतक प्रभावित कर एक परिष्कृत नवमार्ग का निर्माता और पोषक सिद्ध हुआ।

इन क्रान्तिकारी महापुरुषों में पूज्य धर्मदासजी महाराज का स्थान प्रमुख रूप से रहा है। इनका जीवन एक अलौकिक जीवन था। यद्यपि इनके जीवन पर प्रकाश डालनेवाली साधन सामग्री तिमिराच्छन्न है तथापि उनकी परम्परा का इतिहास और प्राप्त चर्चापत्र इस बात के साक्षी हैं कि वे अपने युग के नवनिर्माता व विचार-क्रान्ति के सर्जक तथा शुद्ध संयम की आदर्श मूर्ति थे।

आपका जन्म सं. १७०३ की आश्विन सुदी एकादशी को अहमदाबाद के समीप सरखेज नामक गाव में हुआ था। आपके पिता का नाम जीवनलाल

और माता का नाम जीविबाई था । बालकपन से ही आपका हृदय धार्मिक संस्कारों से पूरित था इसलिए माता पिता ने आपका नाम धर्मदास रक्खा । आप ज्ञाति के भावसार थे । उस समय सरखेज में ७०० घर लोंकागच्छ को मानने वाले थे । उस समय सरखेज में लोंकागच्छ के यति केशवजी के विद्वान् शिष्य तेजसिंहजी विराजते थे । आपके पास ही धर्मदासजी ने धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया । कालान्तर में आप पोतियाबंध श्रावक कल्याणजी के सम्पर्क में आये । उनके आचार विचार से प्रभावित हो आपने उनका मत स्वीकार कर लिया । दो वर्ष तक आप पोतियाबंद श्रावकपन में रहे ।

एक बार भगवतीसूत्र का वाचन करते समय ऐसा पाठ मिला कि 'भगवान महावीर का शासन २१ हजार वर्ष तक चलेगा ।' आपको इस बात का विश्वास होगया कि आज भी भगवान की आज्ञानुसार शुद्ध संयम का पालन किया जासकता है । तब आप सच्चे संयमी की खोज में निकल पड़े । सर्वप्रथम आप लवजी ऋषि के सम्पर्क में आये किन्तु यहाँ भी सात बातों में मतभेद होने से आप उनके पास नहीं रहे । उसके बाद अहमदाबाद में धर्मसिंहजी महाराज के पास आकर उनसे धर्म चर्चा की किन्तु आपको उनसे भी सन्तोष नहीं हुआ । उसके बाद आप कानजी महाराज के पास आये और उनके पास रहकर सूत्रों का अध्ययन करने लगे । कानजी स्वामी के पास दीक्षा लेने का विचार किया किन्तु सत्रह बातों में उनसे मतभेद होगया ।

इन मतभेदों के कारण आप किसी के पास दीक्षा न लेने का विचार कर माता पिता के पास आये और उनकी आज्ञा प्राप्त कर संवत् १७१६ की आश्विन शुक्ला ११ के दिन अहमदाबाद में बादशाह की वाड़ी में १७ जनों के साथ स्वयं मुनिदीक्षा ग्रहण की । दीक्षा के दिन उन्होंने अट्ठम तप किया । चौथे दिन पारणा के लिए घूमते

हुए एक कुम्हार के यहाँ जा पहुँचे । कुम्हार के घर लड़ाई हुई थी इसलिये कुम्हारिण ने आये हुए मुनिजी को क्रोधवश राख बहरा दी। मुनिजी ने इस प्रथम भिक्षा को आशीर्वाद रूप मान कर उसी राख को तेले के पारणे में छास में मिला कर पी लिया। दूसरे दिन आपने आहार में राख मिलने की बात धर्मसिंहजी महाराज साहब से की तो उत्तर में महाराज श्री ने फरमाया—धर्मदास! राख की तरह तुम्हारा शिष्य समुदाय भी चारों दिशा में फैलेगा और चारों ओर तुम्हारे उपदेश का प्रचार होगा। जिस प्रकार राख के बगैर कोई घर नहीं होता उसी प्रकार ऐसा कोई ग्राम या नगर नहीं होगा जहाँ आपको मानने वाले भक्त नहीं होंगे। उक्त भविष्यवाणी के अनुसार आपके शिष्यों की खूब वृद्धि हुई। जिन में बाईस बड़े बड़े पण्डित व आचारवान शिष्य हुए जिनके नाम से यह सारा सम्प्रदाय बाईस संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आचार्य पद—

सं. १७२१ की माघ शुक्ला ५ के दिन उज्जैन में आपको आचार्य पद दिया गया। उसके बाद ३८ वर्ष तक आपने सद्धर्म का प्रचार किया। आपने अपने हाथ से ९९ व्यक्तियों को मुनि दीक्षा दी। भारत के अनेक प्रान्तों में विचरण कर आपने शुद्धमत का खूब प्रचार किया।

भव्य बलिदान—

पूज्य धर्मदासजी महाराज के स्वर्गवास की घटना उनके जीवन-काल से भी अधिक उज्ज्वल और रोमांचक है। जब आपने यह सुना कि धारा नगरी में आपके लुणकरणजी नामक एक व्याधिग्रस्त शिष्य ने अपना जीवन का अन्तिम समय जानकर संथारा कर लिया है। आहार के त्याग से उसकी व्याधि मिट गई। अपने आपको तुंदुरुस्त होता देख उसका मन संथारे से विचलित होगया। उसने संथारा तोड़ देने का निश्चय किया। जब पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज को इस बात का पता चला तो उन्होंने तुरंत एक श्रावक के साथ कहला भेजा कि मैं

तुरत विहार करके आरहा हूँ। तबतक तुम अपना संथारा चालू रखना। उस मुनि ने पूज्यश्री की आज्ञा मान ली।

पूज्यश्री ने शीघ्रता से विहार किया और संध्या होते होते धारा नगरी में पहुँच गये। भूख और प्यास से आकुल व्याकुल संथारा लिये हुए मुनि अन्न और जल के लिए बिलबिला रहे थे। पूज्यश्री ने इस मुनि को प्रतिज्ञा पालन के लिये खूब समझाया किन्तु मुनि के साहस और सहन-शीलता की शक्ति का बांध टूट चुका था। अतः उन पर उपदेश का कुछ भी असर नहीं पड़ा।

पूज्यश्री ने शीघ्रही अपने कंधे पर का बोझ उतारा। संप्रदाय की जिम्मेदारी मूलचंदजी महाराज को दी। समस्त संघ के सम्मुख अपना मंतव्य प्रकट किया और शीघ्र ही धर्म रूपी दीप-शिखा को जाज्वल्यमान बनाये रखने के लिये आपने उस शिष्य के स्थानपर खुद संथारा करके बैठ गये।

शरीर का धर्म तो विनाशशील ही है। आहार पानी के अभाव में क्रमशः शरीर कृश हो गया किन्तु आपके विचार बड़े उत्कृष्ट थे। आपको इस बात की प्रसन्नता थी कि यह देह शासन और धर्म के काम आरहा है। इससे बढ़कर इस नश्वर देह का और क्या उपयोग हो सकता है? आप अपने अनशन काल में एक एक क्षण को अमूल्य मानकर उसका धर्म चिन्तन में उपयोग करते रहे। अन्ततः आपका यह संथारा ८-९ दिन चला। एक दिन अर्थात् सं० १७५८ की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा के दिन संध्या को जब वर्षा की झिरमिर झिरमिर बूंदे पड़ रही थीं आपने नश्वर देह को त्याग कर अमरत्व प्राप्त किया। उस समय आपकी आयु ५९ वर्ष की थी। आपने धर्म की रक्षा के लिए जो अपूर्व बलिदान दिया वह आज भी समाज के लिए प्रकाशस्तंभ का काम दे रहा है। धन्य है यह विरल विभूति और धन्य है यह अमर बलिदान।

पूज्यश्री छोटे पृथ्वीराजजी महाराज

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के पाचवें पट्टधर शिष्य छोटे पृथ्वीराजजी महाराज मेवाड़ संप्रदाय के आद्य प्रवर्तक थे । ये बड़े प्रभावशाली आचार्य थे । संयम के प्रति आपकी अत्यन्त अभिरुचि थी। आपको सदा अपनी आत्मा के अभ्युत्थान का विचार रहता था । आपके उपदेश संसार की असारता, धनदौलत की नश्वरता, जीवनकी क्षणभंगुरता और संयम की सार रूपता से भरे हुए होते थे । आपने मेवाड़ प्रान्त के एक एक गांव में पधार कर दयाधर्म की नींव को दृढ़ किया । आपने अपने जीवन काल में अनेक शासन प्रभावक कार्य किये । आपने तत्कालीन साधु समाज में व्याप्त शिथिलता को दूर कर क्रियोद्धार किया और मेवाड़ संप्रदाय की नींव डाली ।

आपके स्वर्गवास के पश्चात् मेवाड़ संप्रदाय के द्वितीय पट्टधर आचार्य हरिरामजी हुए । आचार्य हरिरामजी महाराज शास्त्रज्ञ विचारक एवं कठोर तपस्वी थे । आपने शासन की अत्यधिक प्रभावना की। आप तप की साकार मूर्ति और संयम की विरल विभूति थे ।

आपके पट्ट पर गंगा की तरह पावन मूर्ति पूज्य श्री गंगारामजी महाराज विराजे । आप जैन शास्त्रों के पारगामी विद्वान थे । आपकी व्याख्यान शैली अपूर्व थी ।

आपके पश्चात् क्रमश. रामचन्द्रजी महाराज और तत्पट्ट पूज्य श्री नारायणदासजी महाराज इस संप्रदाय के पट्टधर आचार्य बने ।

पू० नारायणदासजी महाराज के शिष्य पूरणमलजी महाराज थे । ये बड़े विनयी थे और गुरुदेव की आज्ञा को सतत शिरोधार्य रखते थे। आप आगममर्मज्ञ थे । गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद आप इस संप्रदाय के आचार्य बने । आपके स्वर्गवास के बाद क्रियोद्धारक हीरजी स्वामी के शिष्य महान तपस्वी पूज्य श्री रोडीदासजी महाराज आचार्य बने । आपका संक्षिप्त में जीवन परिचय इस प्रकार है—

पूज्य श्रीरोडीदासजी महाराज

जैन संस्कृति व्यक्ति पूजा की अपेक्षा गुण की पूजा में विश्वास रखती है। परम श्रद्धेय महातपस्वी श्री रोडीदासजी महाराज भी निरन्तर तत्त्वचिंतन सतत मनन ज्ञानाराधन एवं आत्मगुण के रमण में निमग्न रहते हुए ध्येयसिद्धि करने में ही प्रयत्नशील रहते थे; भले ही आज वे अपने पार्थिव शरीर से हमारे बीच नहीं रहे हों परन्तु उनकी जीवन सुगन्ध आज भी हमें प्रेरणा दे रही है। पूज्य रोडीदासजी महाराज जैन शासन के पूर्वाचार्यों की रत्नमाला के एक अनमोल रत्न थे।

मेवाड़ की वीरभूमि में देपुर नाम का एक छोटा ग्राम है। अप्रसिद्ध ग्राम में जन्म लेकर आपने इसे प्रसिद्ध बना दिया। इसी ग्राम में ओसवाल कुलोत्पन्न डुंगरजी नाम के श्रेष्ठी रहते थे। इनका गोत्र 'लौढा' था। इनकी पत्नी का नाम राजीबाई था। वह अत्यन्त धर्मपरायण थी। उन्हीं की कुक्षि से महातपस्वी रोडीदासजी महाराज ने जन्म लेकर मां की गोद को धन्य किया था। इस अनमोल रत्न को पाकर दम्पती निहाल हो गये थे। बालक रोडीदास के जन्म से माता पिता को अधिक अनुकूल संयोगों की प्राप्ति होने लगी। माता पिता इस लाभ को बालक का ही पुण्य प्रभाव मानते थे फलस्वरूप माता पिता के लिये वह बालक अत्यन्त प्रियपात्र बन गया था।

माता पिता के प्रेम के साथ ही बालक को उत्तम धार्मिक संस्कार मिलने लगे। माता पिता की छत्रछाया में बालक का शान्तिपूर्वक समय बीतने लगा।

माता पिता के धार्मिक संस्कार और मुनिगणों के उपदेश से बालक रोडीदास का मन संसार के कार्यों से उपरत हो गया। उन्होंने अनेक व्रत प्रत्याख्यान कर लिये। साधुवेष तो नहीं था; किन्तु साधु का त्याग उनमें आ गया था। रात्रि भोजन, सचित्तवनस्पति जल, आदि का त्याग और ब्रह्मचर्य का पालन आदि नियम सदा के लिये ग्रहण कर लिये थे।

संवत् १८२४ में पूज्य हीरजी स्वामी अपनी शिष्य मण्डली के साथ 'दैपुर' पधारे। साधक रोडीदास ने पूज्य मुनिवरों के दर्शन किये। प्रतिदिन पूज्य महाराज श्री के व्याख्यान श्रवण से रोडीदास जी का मन संसार से विरक्त हो गया। आपने अभिभावकों की आज्ञा प्राप्त कर सं० १८२४ में बीस वर्ष की अवस्था में स्वामीजी के पास दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा ग्रहण कर लेने पर आपके जीवन का नया अध्याय प्रारंभ हुआ। मेवाड़ के क्षेत्रों में पूज्य गुरुदेव के साथ विचरते हुए आपने अध्ययन प्रारम्भ किया। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण आपने अल्प समय में ही शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया। ज्ञानाराधना के बाद आप अब कठोर तपस्या करने लगे। शीत परिषह पर विजय पाने के लिए आप भयंकर सर्दी में केवल एक पछेवड़ी ही ओढ़ते थे। उष्ण परिषह सहने के लिये आप जेष्ठमास में प्रखर सूर्य की किरणों से आग के समान जलती हुई रेती पर अथवा तप्तशिला पर आँखों पर कपड़ा बान्धकर मध्याह्न के समय लेटे लेटे आतापना लेते थे। घण्टों तक आप इस प्रकार उष्ण रेती पर या शिला पर लेटे रहते। बहुत देर तक लेटे रहने से जब शरीर का निम्नभाग ठण्डा मालूम होता तो आप शीघ्र करवट बदल लेते और तीव्र ताप का परिषह सहन करते रहते थे। आपने अपने जीवन काल में अनेक कठोर अभिग्रह किये। कई मास खमण किये। आप का जीवन तपस्यामय बन गया था। आपने कर्मचूर तप भी किया था जिसका विवरण इस प्रकार है:—

तपनाम	तपदिन	पारणा	कुलदिन	वर्ष	मास	दिन
अठाई ३०	२४०	३०	२७०	०	९	०
पंचोला १९५	९७५	१९५	११७०	३	३	०
चौला २२५	१०२०	२२५	१२७५	३	६	१५
तेला ३४५	१०३५	३४५	१३८०	३	१०	०
बेला ६३०	१२६०	६३०	१८९०	५	३	०
उपवास १५००	१५००	१५००	३०००	८	४	०

उपरोक्त तपाराधना में २५ वर्ष लगे।

कर्मचूर तप के अतिरिक्त अन्य तप इस प्रकार किये:—

तपनाम	तपदिन	पारणा	कुलदिन	वर्ष	मास	दिन
मास खमण ४३	१२९०	४३	१३३३	३	८	१३
अठाई २००	१६००	२००	१८००	५	०	०
बेला ३६०	७२०	३६०	१०८०	३	०	०

उपरोक्त तपस्या में कुल ३६ वर्ष ७ महिने २८ दिन लगे। आपकी कुल आयु ५७ वर्ष की थी। आप पारणे में प्रायः विगय का त्याग रखते थे। तपश्चर्या के समय शास्त्रोक्त पद्धति से आसन लगा कर ध्यान करते थे। आप प्रायः समूह में न रहकर अकेले वन तथा जनशून्य स्थानों में रहकर घंटों तक ध्यान करते थे।

आप केवल तपस्वी ही नहीं थे किन्तु आगमों के अच्छे ज्ञाता भी थे। आपकी व्याख्यान शैली बड़ी मधुर और असरकारक थी। आपका उपदेश श्रवण कर श्रोतागण वैराग्य रंग में भींग जाते थे। आपके प्रवचन प्रायः आगम सिद्धान्तों पर ही हुआ करते थे। आपने मेवाड़ के सातसौ गाँवों में घूमकर दया धर्म का खूब प्रचार और प्रसार किया।

मुनि जीवन के प्रेरक प्रसंग

नेत्र रोग की अमोघ औषधी:—

मुनि धर्म का पालन करते हुए तपस्वीजी शेषकाल में 'राजाजी का करेड़ा" नामक गांव में पधारे। उस समय सहसा पूर्व संचित असाता-वेदनीय कर्म के तीव्रोदय से आपको नेत्र रोग हो गया। आप ने इस रोग के आक्रमण पर शुरू में उसकी कुछ भी पर्वाह नहीं की। वे स्वेच्छापूर्वक धारण किये हुए अनशनादिक तपों के अवसर पर भी पूर्व अभ्यास के बल पर उसे भी सह रहे थे परन्तु वेदना प्रति-दिन अपना उग्ररूप धारण करने लगी, नेत्र की ज्योति क्षीण होने

लगी । तपस्वीजी की इस बढ़ती हुई नेत्र पीड़ा को देखकर स्थानीय श्रावक भी बड़े चिन्तित हो गये । अञ्जलिबद्ध हो श्रावकों ने तपस्वी-जी से नेत्र को चिकित्सा करवाने की प्रार्थना की ।

राजकरेड़ा के राजासाहव श्री भवानीसिंहजी साहव को भी जब पता लगा तो वे भो तपस्वी के दर्शन के लिये आये और नेत्र का इलाज करने का अत्याग्रह करने लगे । राजासाहव ने कहा--आप गढ (महल) में पधारें, वहाँ मोतियों का कज्जल है । इस कज्जल से आपको अवश्य लाभ होगा । स्थानीय राजा और श्रावकों की विनती को मान देकर किसी समय तपस्वीजी कज्जल के लिए राजा साहव के महल पधारे । द्वार पर पहुँचने के बाद तपस्वीजी के कानों में कुछ वार्तालाप सुनाई दिया। एक राज सेवक, दूसरे राज सेवक से कह रहा था कि आज हमलोग सारी रात जगकर तपस्वी के लिये कज्जल बनाते रहे । तपस्वीजी ने जब यह सुना तो वे वापस लौट पड़े । तपस्वीजी को वापस जाता देख राजसेवक घबरा उठा और वह दौड़कर राजा साहब के समीप पहुँचा और तपस्वीजी से वापिस चले जाने की बात कही । राजा साहव यह सुनते ही दौड़कर तपस्वीजी के पास पहुँचे और कज्जल ग्रहण करने का आग्रह करने लगे। तपस्वीजी ने कहा— राजन् ! तुमने रातभर राजसेवकों (नौकर) को जगाकर जो मेरे लिये मोतियों का कज्जल बनवाया है वह मुनि मर्यादा के प्रतिकूल है । मुझे इस प्रकार का कज्जल लेना नहीं कल्पता। यह कह कर तपस्वी-जी स्थानक में पधार गये ।

वेदना प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी । अशुभ कर्म का उदय मान-कर तपस्वीजी सोचने लगे "रोग का मूल कारण अशुभ कर्म ही है और अशुभ कर्म को नष्ट करने का अमोघ उपाय है एक मात्र तप ।" यह संकल्प कर तपस्वीजी ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया । गाव से उत्तर दिशा में एक भयानक जंगल से घिरी पहाडी है । यह वन वृक्षों और सघन झाड़ियों से भरी हुई है । दिन में भी हिंस्र पशुओं का भय बना

रहता है। इस भयावने जंगल में कालाजी नामक एक देव स्थान है। वे यहाँ आये और इस निर्जन डरावने देवस्थल के समीप विशाल वृक्ष के नीचे बैठ कर अट्ठमभत्त (तैला) तप के साथ ध्यानस्थ हो गये। उत्कृष्ट ध्यान के बल से वेदना धीरे-धीरे शान्त हो गई। सूर्य के अस्त के साथ साथ वह नेत्र पीड़ा भी सदा के लिये अस्त हो गई। तपस्वीजी के इस हठयोग से इस बीमारी ने तपस्वी से सदा के लिये अपना नाता तोड़ दिया। बीमारी को दूर करने की यह थी तपस्वीजी की रामबाण औषधी।

शान्ति के अग्र दूतः—

एक बार आप आमेट, (मेवाड़) पधारे। उस समय आपके तेले की तपश्चर्या थी। यह क्षेत्र तेरहपंथियों का था। वहाँ उस समय स्थानकवासियों का एक भी घर नहीं था। सायंकाल का समय था। सूर्यास्त में अभी कुछ समय शेष था। एक तेरहपन्थी गृहस्थ से मकान की याचना की। यह प्रारम्भ से ही तपस्वीजी के धर्मप्रचार से झुँझलाया हुआ तो था ही; उसने तपस्वीजी से बदला लेने का एक अच्छा अवसर देखा। तत्काल अपने एक खाली मकान में तपस्वीजी को उतार दिया। प्रतिक्रमण के बाद वह भाई वहाँ पहुँचा और तपस्वीजी से ऊटपटाङ्ग बातें करने लगा। तपस्वीजी उसके इरादे को भाँप गये। उसने कठोरभाषा में तपस्वीजी से प्रश्न पूछने शुरू कर दिये। तपस्वीजी शान्त भाव से और अत्यन्त मधुर भाषा में उसका शास्त्रीय पद्धति से जबाव देते रहे। अब तपस्वीजी ने भी अवसर देखकर उससे कुछ प्रश्न किये। जब उत्तर देने में अपने आपको असमर्थ पाया तो वह तपस्वीजी पर बड़ा क्रुद्ध हुआ। बड़ी कड़ी भाषा में तपस्वीजी की भर्त्सना करने लगा। यहाँ तक बोल उठा कि अब आपको मेरे मकान में रहने की मेरी आज्ञा नहीं है। आप इसी समय विहार कर यहाँ से चले जाइये। तपस्वीजी ने शान्त मुद्रा में कहा—भाई! तुम्हारी इजाजत से ही मैं इस मकान में ठहरा हूँ अगर तुम्हारी इच्छा

है तो मैं चला जाता हूँ। यद्यपि रात्रि में विहार करना जैन मुनि को नहीं कल्पता फिर भी तुम्हारी इच्छा के बिना मैं इस मकान में कैसे रह सकता हूँ? यह कह कर तपस्वीजी अन्यत्र जाने के लिये खड़े हो गये। तपस्वीजी को सचमुच ही अन्यत्र जाता देख उपस्थित भाई बदनामी के डर से घबरा गया। वह सोचने लगा-अगर अजैन भाइयों को पता लग जाय कि इसने तपस्वीजी मुनि को मकान से निकाल दिया है तो वे लोग मेरी बड़ी भर्त्सना (निन्दा) करेंगे तथा सगे सम्बन्धियों और साथियों को अगर इस बात का पता लग जाय तो, वे भी मेरा अपमान करेंगे। यह सोच कर वह कुछ शान्त पड़ा और बनावटी विनय बताकर बोला-महाराजजी! आपको केवल रातभर ठहरने की आज्ञा है। यह कह कर वह भाई चला गया। तपस्वीजी को उस समय तेले की तपश्चर्या थी। दूसरे दिन वे पारणा किये बिना ही वहाँ से विहार कर दिये। आठ मील विहार कर "लावा सरदार गढ़" में तेले का पारणा किया लेकिन तपस्वीजी ने जरा भी उस भाई पर क्रोध नहीं किया।

विष देने वाले के प्रति भी समता भाव—

तपस्वीजी की निर्मल महिमा सर्वत्र फैल रही थी। इनके तप, त्याग और परिषह सहन करने की असीम शक्ति को देखकर हजारों लोग उनके उपासक बनते जा रहे थे परन्तु कुछ धर्मद्वेषियों को यह सहन नहीं हुआ। एक व्यक्ति इनके त्याग और सतत धर्मप्रचार से बौखला उठा। उसने तपस्वीजी की जीवन लीला समाप्त करने का घृणित निश्चय किया। वह कपटी श्रावक बन तपस्वीजी की अनवरत सेवा करने लगा। सामायिक, प्रतिक्रमण त्याग प्रत्याख्यान आदि, धार्मिक कृत्यों से वह तपस्वीजी का कृपापात्र बन गया।

एक दिन अवसर पाकर उस कपटी श्रावक ने विष मिश्रित आहार तपस्वीजी को बहरा दिया। तपस्वीजी उसे सहर्ष खा गये। आहार

करने के बाद तपस्वीजी जान गये कि आज का आहार जो श्रावक ने मुझे बहराया था वह विष मिश्रित था। शत्रु का भी हित चाहने वाले तपस्वीजी ने यह बात किसी से भी नहीं की। आपके तपोबल से विष मिश्रित आहार अमृत बन गया। पंचमकाल में भी धर्मरुचि अनगार सा आदर्श आपने उपस्थित किया। हलाहल जहर को भी अमृत मानकर खा जाने वाले महान तपस्वीजी जिस समाज में हुए हैं, वह समाज कितना धन्य होगा!

तपस्वीजी की अपूर्व सहन शीलता—

एक बार आप सनवाड़ पधारे। गर्मी की ऋतु थी। सूर्य की प्रचण्ड किरणें आग उगल रही थीं। आप प्रतिदिन के नियमानुसार गांव के बाहर कुछ दूरी पर विषम कंकरीली भूमि में एक चट्टान पर आतापना ग्रहण करने लगे। एक दिन जब आप ध्यान मग्न थे; कुछ ग्वालों को मजाक सूझी। वे तपस्वीजी के पैर पकड़ कर उन्हें इधर उधर घसीटने लगे। तपस्वीजी ने उन ग्वालों को कुछ भी नहीं कहा। जब ध्यान पूरा हो गया, तो वे खड़े होकर गांव की तरफ चलने लगे। ग्वालों ने तपस्वीजी को गांव की ओर जाता देखा तो वे घबड़ा गये। वे सोचने लगे—यदि तपस्वीजी हमारे व्यवहार की गांववालों से शिकायत करेंगे, तो हमारी खैर नहीं। वे तपस्वीजी के पास आये और दीनभाव से खड़े हो गये। तपस्वीजी उनकी मनोदशा समझ गये। तपस्वीजी ने उन ग्वालों को कहा—भाई! घबराने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी कोई भी शिकायत गांव में नहीं होगी। तपस्वीजी की इस महानता से ग्वालों का हृदय बदल गया और वे अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगे। यह थी तपस्वीजी की अपूर्व सहनशीलता।

हाथी का कठोर अभिग्रह—

एक बार तपस्वीजी श्री रोडीदासजी महाराज उदयपुर पधारे। वहां आपने एक कठोर अभिग्रह ग्रहण किया कि उदयपुर के महाराणा के बैठने का हाथी अगर मुझे आहार बहरावे तो ही मै पारणा करूँगा।

इस प्रकार का गुप्त लेख लिखकर वह पत्र आपने अपने रजोहरण में बान्ध दिया। प्रतिदिन आप आहार के लिये जाते और पुनः लौटकर चले आते। आपके अभिग्रह की सर्वत्र महिमा फैल गई। लोग अभिग्रह नहीं फलता, तो बड़े चिन्तित हो जाते। सारे शहर में अभिग्रह की चर्चा थी। सभी अपने अपने इष्टदेव से तपस्वीजी के अभिग्रह को सफल होने की प्रार्थना करते। इस प्रकार अट्ठाइस दिन बीत गये।

उनतीसवाँ दिन था। तपस्वीजी प्रतिदिन के नियमानुसार स्वाध्याय-ध्यान कर आहार के लिये चले। मार्ग में एकाएक कोलाहल सुनाई दिया। लोग अपनी अपनी जान बचाकर इधर-उधर भाग ने लगे। दौड़ो, भागो, हटो, बस, चारों ओर से यही आवाज और शोर सुनाई दे रहा था। बात यह थी कि—महाराणा साहब का हाथी गजशाला से जंजीर तोड़कर बेकाबू हो गया था। उन्मत्त स्थिति में वह दौड़ा हुआ आ रहा था। तपस्वीजी उसी तरफ चलने लगे तो लोगों ने उन्हें रोका; आगे न जाने की लोग बार बार विनती करने लगे किन्तु तपस्वीजी ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया वे अविचल मुद्रा में यतना पूर्वक आगे बढ़ने लगे। उसी समय हाथी भागा हुआ एक कन्दोई (हलवाई) की दुकान पर आया और उसने हलवाई की दुकान से अपनी सूंड़ से मिठाई उठाई और और तपस्वीजी की ओर बढ़ाई; तपस्वीजी ने झोली से पात्र निकालकर आगे बढ़ा दिया। तपस्वीजी ने हलवाई से मिठाई ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। हाथी ने मिठाई तपस्वीजी के पात्र में डाल दी। सैकड़ों लोग इस दृश्य को देखकर चकित हो गये और तपस्वीजी की जय जयकार करने लगे। तपस्वीजी ने अपने अभिग्रह वाला वह गुप्त लेख श्रावकों को बतलाया। श्रावकों ने जब उस लेख को पढ़ा तो वे सब आश्चर्य चकित हो गये। धन्य है ऐसे तपस्वियों को जिनके तपोबल से पशु में भी देवत्व आ जाता है।

साँड़ का दूसरा अभिग्रह—

इसी प्रकार एक बार आपने साँड़ द्वारा आहार प्राप्त करने का दुष्कर अभिग्रह किया था और वह भी सफल हो गया। जिस की घटना इस प्रकार है—

आप उदयपुर में विराज रहे थे। आपने यह अभिग्रह धारण किया था कि अगर मुझे साँड़ (बैल) आहार दे तो मैं पारणा करूँगा। इस प्रकार का लेख लिखकर उसे गुप्त रूप से अपने औघे (रजोहरण) में बान्ध दिया।

आप प्रतिदिन समयपर गौचरी के लिए पधारते और थोड़ा समय घूमकर पुनः लौट आते। श्रावकों ने भी तपस्वीजी के अभिग्रह को सफल बनाने के लिए अनेकों प्रयत्न किये किन्तु उनके सब प्रयत्न असफल रहे। तपस्वीजी ने मनुष्य पर और वस्तुओं पर अभिग्रह तो अनेक बार किये थे और वे सफल भी हो गये थे किन्तु यह महापुरुष तो पशु पर भी मानवता का प्रयोग करना चाहता था। इस प्रकार तीस दिन पूर्ण हो गये।

इकतीसवें दिन तपस्वीजी प्रतिदिन के नियमानुसार आहार के लिए निकले। तपस्वीजी "धानमण्डी" के बीच आये। मार्ग में नौजवान दो—साँड़ (बैल) आपस में लड़ रहे थे। उनकी लड़ाई बड़ी खूँखार थी। लोगों ने भी उनको छुड़ाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु वे भयंकर फूत्कार करते हुए एक दूसरे को नीचे गिराने का साहस कर रहे थे। तपस्वीजी निर्भीक होकर, लड़ते हुए साँड़ के पास पहुच गये। तपस्वीजी को सामने खड़ा देख साँड़ों का जोश ठण्डा पड़ गया। एक साँड़ तो वहाँ से चल दिया और दूसरे साँड़ ने पास ही की दुकान के सामने पड़ी हुई "गुड़" की भेली पर अपना सींग घुसेड़ दिया। सींग में गुड़ का कुछ हिस्सा लग गया। उसने तपस्वीजी को गुड़ देने की इच्छा से सींग को नीचे झुकाया साँड़ को नीचे झुकता हुआ देख तपस्वीजी समझ गए कि यह पशु

भी दान देने की भावना कर रहा है। इस पशु में भी धार्मिक भावना का संचार हो गया है। तपस्वीजी ने सॉड़ की धार्मिक भावना का आदर करते हुए उस गुड़ के मालिक से गुड़ लेने की आज्ञा माँगी। दुकान के मालिक ने भी आज्ञा दे दी। तपस्वीजी ने पात्र सामने किया और सॉड़ ने सींग के द्वारा गुड़ को पात्र में डाल दिया। तपस्वीजी का अभिग्रह फल गया। साँड़–धन्य हो गया। मनुष्य तो दान देता ही है परन्तु पशु में भी दान देने की भावना जागृत हुई। ऐसे महापुरुष को दान देकर वह भी आज धन्य धन्य बन गया। तप की महिमा अपूर्व है। तपस्वियों के चरणों में देवी, देवता और मानव तो झुकते ही हैं परन्तु पशु भी नत मस्तक हो जाते हैं जिसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

शत्रु के भी महान हितैषी—

इस प्रकार तपस्वीजी अनेक ग्राम नगरों को अपनी अमृतमयी वाणी से पावन करते हुए मेवाड़ के महाराणाओं के इष्ट देव 'एक-लिङ्गजी'' पधारे। वहाँ बहुत कम लोगों की बस्ती है। मन्दिर के कुछ कार्यकर्ता नौकर वर्ग वहाँ रहते थे। यहाँ के घने जंगल और प्राकृतिक पहाड़ी दृश्य मन को मुग्ध कर देते हैं। एकान्त ध्यान करने वाले के लिए यह स्थान बड़ा उपयोगी है। यहा पर बाबा–योगी और सन्यासियों के बडे–बड़े अखाड़े हैं। ये अलमस्त साधु बाबा धूनी तपते, भंग, गाँजा, चरस और तमाखू पीते यहाँ बडी संख्या में पड़े रहते हैं।

तपस्वीजी ने अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त अनुकूल स्थान को अपने ध्यान के लिए चुन लिया। इसी मन्दिर के समीप उन्होंने एकान्त में वृक्ष के नीचे अपना आसन जमा दिया और वे वहीं ध्यान करने लगे।

एक गवाँर योगी को तपस्वीजी की उपस्थिति अखरी। वह तपस्वी-जी को वहाँ से भगा देने के इरादे से कुछ गँवार बालकों को वहाँ ले आया,

और गालियाँ बकने लगा। उस मूर्ख योगी के कहने से कुछ लड़कों ने तपस्वीजी पर पत्थर भी फेंके। पत्थरों की मार से तपस्वीजी घायल हो गये लेकिन तपस्वीजी परम शान्त थे। उन्होंने अपने मुँह से उफ तक नहीं की। चतुर्थ आरे के अर्जुन मुनि का तत्काल स्मरण हो जाता है। अचानक एक राहगीर की दृष्टि घायल तपस्वीजी पर पड़ी। उसने गाँव में तहसील के कर्मचारियों को जाकर खबर दे दी। यह खबर पाते ही कर्मचारी और गाँव के कुछ जैनेतर लोग तपस्वीजी के पास पहुँचे और सारी घटना पूछने लगे, तपस्वीजी ने मौन ले लिया। उस उद्दण्ड योगी के बारे मे तपस्वीजी ने एक शब्द भी नहीं कहा। वहाँ से तपस्वीजी विहार कर समीप के गाँव में पधार गये लेकिन स्थानीय लोगों से रहा नहीं गया। उसे पाठ सिखाने की दृष्टि से उन्होंने थाने में रिपोर्ट कर दी। पुलिस बाबा को गिरफ्तार करके ले गई और उसे हवालात में बन्द कर दिया। जुर्म साबित होने से उसे कुछ दिन के लिए कैद की सजा हो गई। जब तपस्वीजी को बाबा के हवालत में बन्द होने की सूचना मिली तो उन्हें बड़ा अफसोस हुआ। यहाँ तक कि उन्होंने अट्ठाई का पारणा लाना भी छोड़ दिया। उन्होंने लोगों से कहा कि जबतक उस योगी को कैद से मुक्त नहीं किया जायगा, तब तक मै आहार नहीं करूँगा। तपस्वीजी के इस सत्याग्रह से लोग घबरा गये। उन्होंने पुनः दौड़ धूपकर उस संन्यासी को जेल से मुक्त करवा दिया। यह थी तपस्वीजी की अपने शत्रु के प्रति भी मैत्री-भावना।

अपकारी के प्रति भी उपकार

इसी तरह एक वार आप रायपुर (मेवाड़) गाँव में पधारे। वहाँ गाँव के बाहर निर्जन स्थल में एक सूखे नाले (वारी) की तप्त रेती में आतापना लेने लगे। एक गवाँर व्यक्ति तपस्वीजी के शिर पर खदान से निकली हुई पतली शिला रख कर उस पर बैठ गया। वह तपस्वीजी के शरीर के अन्य भागों पर भी

वह तप्त शिला रख कर उस पर खड़ा होता, बैठता और फिर उतरता, और तीखे काँटों की छड़ियाँ तपस्वीजी के शरीर पर डालता। इस प्रकार वह तपस्वीजी को पीड़ित कर अपना मन बहलाव करने लगा। अचानक एक राहगीरने उस दुष्ट की यह पैशाची लीला देखी। उसने उसको रोका और यत्नपूर्वक शरीर पर से सब काँटे उठा लिये। तपस्वीजी ध्यानमग्न अवस्था में थे। राहगीर नमस्कार कर गाँव में पहुँचा और उसने उस गवाँर की शिकायत पुलिस थाने में कर दी। पुलिस ने उसे पकड़ा, और उसे हवालात में बन्द कर दिया। तपस्वीजी को जब इस घटना का पता लगा तो उनका दयालु हृदय अनुकम्पा से भर आया। वे सोचने लगे—"यह गरीब बेचारा कहीं सजा का पात्र बन जायगा तो इसका परिवार दुःखी हो जाएगा। इसके जेल में जाने से इसके बाल-बच्चे भूखे रह जायेंगे।" उन्होंने उसी समय श्रावकों को बुलाकर कहा—भाई! एक व्यक्ति जो कुछ करता है, और उसका विरोधी उसे पसन्द कर लेता है तो फिर झगड़ा बढ़ाने का कोई अर्थ नहीं। परिषह उठाना, और क्षमा धारण करना यह तो मुनियों का धर्म है। जब तक आप लोग उसे मुक्त नहीं कराओगे, तब तक मैं आहार नहीं करूँगा। तपस्वीजी की इस कठोर प्रतिज्ञा से घबराकर श्रावकों ने थाने में जाकर उसे मुक्त करा दिया। उपकारी का भला तो हर कोई करता है किन्तु अपकारी के प्रति उपकार के करने वाले तपस्वीजी जैसे कोटि कोटि पुरुषों में क्वचित ही मिलते हैं। तपस्वीजी की इस महानता से उसका हृदय बदल गया। वह सरल और विनम्र होकर तपस्वीजी के चरणों में आ गिरा, और बार बार क्षमा याचना करने लगा। वह तपस्वीजी का पूरा भक्त बन गया।

नये क्षेत्र में पदार्पण

नाथद्वारा (मेवाड़) वैष्णवों का सब से बड़ा तीर्थ स्थल है। इस तीर्थ पर पुष्टिमार्ग के संतों का ही अनुशासन है। इस क्षेत्र में वहाँ उस

समय वैष्णवेतर साधुओं को आने भी नहीं दिया जाता था। अगर जैन मुनि वहाँ पहुँच जाते तो वहाँ उन्हें इतना परेशान होना पड़ता था कि वे एक दिन भी वहाँ नहीं टिक सकते थे।

तपस्वीजी विहार करते हुए वहाँ पहुँच गये। शहर के बाहर एक वृक्ष की छाया में विराज गये। यहाँ के गुसाँईजी महाराज प्रायः सायंकाल रथ में बैठ कर घूमने के लिए निकला करते थे। अपने नित्य कार्यक्रम के अनुसार गुसाँईजी घूमने के लिए निकले। साथ में नगर के नायब हाकिम श्रीमान् संघवीजी साहब थे। वे अच्छे प्रतिष्ठित, सज्जन और धर्मात्मा थे। वे तपस्वीजी के परम भक्त थे। अचानक वृक्षके नीचे विराजे संत पर गुसाँईजी की दृष्टि पड़ी। महन्तजी ने नायब हाकिम को पूछा—वृक्ष के नीचे ये कौन बैठे हैं? उत्तर में संघवीजी साहब ने कहा—ये मेरे गुरु हैं। गुसाँईजी ने कहा—अच्छा, ये तुम्हारे गुरु हैं? जी हाँ, तो फिर यहाँ क्यों बैठे हैं? उष्ण ऋतु और लू की भयंकर मौसम है। इस पर हाकिम साहब ने कहा-"यहाँ नहीं विराजे तो फिर कहाँ पर विराजेंगे? गाँव में जैन मुनियों को आने भी नहीं दिया जाता। व्रजवासी लोग उन्हें गाली और पत्थरों से मारते हैं।" संघवी साहब के मुख से जैन मुनियों के त्याग और तप की महिमा सुनी तो गुसाँईजी जैन मुनियों के त्यागी जीवन से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने उसी समय शहर में घोषणा करवाई कि जैन मुनियों के साथ अच्छा सलूक किया जाय, गाली-गलौज आदि से उनका अपमान न किया जाय। गुसाँईजी ने मुनियों के लिए नाथद्वारा क्षेत्र खोल दिया। तपस्वीजी नाथद्वारा में पधार गये और अपने तप-त्याग एवं अमृतमयी वाणी से सैकड़ों व्यक्तियों को सम्यक्त्वी बनाया। तपस्वीजी ने मेवाड़ के अनेक नयेनये क्षेत्रों में घूमकर और वहाँ के लोगों को प्रतिबोध देकर हजारों की संख्या में उन्हें सम्यक्त्वी बनाया। यह था तपस्वीजी के धर्म प्रचार का प्रत्यक्ष और अनूठा उदाहरण।

सर्पराज का तपस्वी दर्शन

एक बार आप उदयपुर विराज रहे थे। खुले मकान के भीतरी भाग के मैदान में आप गर्मी के दिनों में तप्त शिला पर आतापना ग्रहण कर रहे थे। खड़े हो कर कायोत्सर्ग में लीन हो गये। उस समय एक बहुत बड़ा विषधर सर्प तपस्वीजी के चरणों को अपने शरीर से आबद्ध कर उनके चरण चूमने लगा। तपस्वीजी अपने ध्यान में तल्लीन थे। उनकी आँखे बन्द थीं। वे जब ध्यान करते थे तब उन्हें बाहरी दुनियाँ का कुछ भी पता नहीं रहता था। वे आत्मानन्द में शरीर की पीड़ा और भूख प्यास तक को भूल जाते थे। उस समय एक भाई तपस्वीजी के दर्शन के लिये आया, और झुक-झुक कर वन्दना करने लगा। ज्यों ही उसकी दृष्टि तपस्वीजी के चरणों की ओर पड़ी, त्यों ही वह एक भयंकर दृश्य को देख कर घबरा उठा। देखता है कि एक भयकर काला विषैला नागराज (सर्प) तपस्वीजी के चरणों को लपेट कर फण से तपस्वीजी के चरण चूम रहा है। वह भाई अपने आपको किसी तरह से सम्भाल कर वहाँ से भागा और चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को एकत्र करने लगा। सैंकड़ों लोग एकत्र हो कर तपस्वीजी के समीप आये और यह अपूर्व दृश्य देखने लगे। तपस्वीजी के पैरों से सर्पराज को हटाने की किसी में भी हिम्मत न हो सकी। जब तपस्वीजी ने ध्यान खोला तो सामने सैकड़ों लोगों को एकत्र पाया और अपने पैरों को लपेटे हुए सर्पराज को देखा। तपस्वीजी ने नागदेव को सम्बोधन कर कहा—"दयापालो"। सर्पराज भी तपस्वीजी का आशीर्वचन सुनकर शान्त भाव से वहाँ से चल दिया। यह थी तपस्वीजी की तप महिमा।

आपने इस प्रकार उत्कृष्टतम सयमी साधना में सैंतीस वर्ष व्यतीत किये। तप से आपका शरीर प्रतिदिन क्षीण होने लगा। अन्त में जब शरीर को संयमी जीवन की साधना के लिए अयोग्य पाया तो उदयपुर के पावन क्षेत्र में आपने यावज्जीवन के लिए संलेखना पूर्वक

संथारा अर्थात् अनशन ग्रहण कर लिया। इस महान् तपस्वी को अपने जीवन सूर्य के अस्त होने का दिन विदित था। संथारा ग्रहण-करने के तीसरे दिन विक्रम सम्वत् १८६१ की फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के दिन ये भारत के उज्जवल तपस्वी समाधिपूर्वक नश्वर देह का परित्याग कर देवलोक की भव्य, उपपात शय्या पर जा बिराजे।

उदयपुर के श्रावक संघ ने भव्य बैकुण्ठी बनाकर तपस्वीजी के पुद्गलमय देह को उसमें स्थापित किया। इस अन्तिम शवयात्रा में उदयपुर और आसपास के गांवों की मानव मेदिनी तपस्वीजी के अन्तिम दर्शन के लिए उमड़ पड़ी। हजारों की संख्या में लोगों ने अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अश्रुभीने नयनों से प्रगट कीं। शवयात्रा जय-जय नन्दा और जय-जयभद्दा की विजय घोष के साथ यथास्थान पर पहुँच कर समाप्त हुई। अन्त में, अर्थी सजाई गई। मनों खोपरा, चन्दन घृत आदि उसमें डाले गये और तपस्वीजी के पुद्गलमय देह को उस पर रख कर आग सुलगा दी गई। देखते ही देखते अग्नि की ज्योतिर्मय ज्वाला ने तपस्वीजी के पुद्गलमय देह को स्वाहा कर दिया। तपस्वीजी का पुद्गलमय देह आज हमारे बीच नहीं है, किन्तु उनका अमर कीर्तिरूप देह युग युग तक जीवित रहेगा। तपस्वीजी श्री रोडीदासजी महाराज साहब का विहार क्षेत्र प्रायः मेवाड़ प्रान्त ही रहा है।

अकेले उदयपुर में आप ने सोलह चातुर्मास किये। इस के बाद नाथद्वारे को आप के नौ चातुर्मास का लाभ मिला। लावा सरदारगढ़, रायपुर, भीलवाड़ा में दो-दो वर्षावास और सनवाड़, पौटला, गङ्गापुर, देवगढ़, कोटा, चित्तौड़ में एक-एक चातुर्मास किये। आपने कुल ३७ चतुर्मास किये। आप के अनेक शिष्य रत्न थे। आप जिसे भी दीक्षित करते थे, उसकी अच्छी तरह परीक्षा करते थे। आप के द्वारा दीक्षित सभी सन्त प्रभावशाली निकले।

तपस्वीजी के प्रधान शिष्य कविवर्य आचार्य श्री नृसिंहदासजी

महाराज ने गुरु भक्तिवश प्रेरित हो कर विक्रम सम्वत् १८४७ को आषाढ़ कृष्ण अमावस्या के दिन 'गुरुगुण कीर्तन' नामक हिन्दी कविता बनाई। यह चरित्र उसी के आधार पर लिखा गया है।

पूज्य श्री नृसिंहदासजी महाराज

पूज्य श्री रोडीदासजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् आचार्य श्री नृसिंहदासजी महाराज इस सप्रदाय के आचार्य बने। आप जाति के खत्री थे। मेवाड़ में रायपुर के निवासी थे। आपके पिता का नाम गुलाबचंदजी और माता का नाम गुमानाबाई था। आप विवाहित थे। आपका एक बार व्यापारार्थ लावा सरदारगढ़ आना हुआ। वहाँ पर आपने पूज्य रोडीदासजी महाराज का व्याख्यान श्रवण किया। इससे आपको वैराग्य हो गया और संयम ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। आप वहीं पूज्यश्री की सेवा में रह गये आपने अल्प समय में ही सामायिक प्रतिक्रमण सीख लिया। यह समाचार जब उनके कुटुम्बियों को मिला तो वे बहू को लेकर लावा सरदारगढ़ आये। इन लोगों ने आपको खूब समझाया किन्तु जिसकी आसक्ति नष्ट हो गई हो वह त्यागमार्ग में शिथिलता किस प्रकार बतला सकता है? अन्ततः पत्नी को छोड़ स० १८४२ की मार्गशीर्ष ९ के दिन लावा सरदारगढ़ में पूज्यश्री के पास दीक्षा ले ली। आपने तपस्वीजी की सेवा में रहकर शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। पूज्य श्री रोडीदास जी महाराज के स्वर्गवास के बाद आपकी नम्रता, गम्भीरता, गुरुसेवा सहिष्णुता और मिलनसार प्रकृति से प्रभावित होकर उदयपुर से श्री संघ ने मिलकर आपको आचार्य पद दिया। तत्कालीन सन्तमुनिराजों में आपकी खूब प्रतिष्ठा थी। आप अत्यधिक प्रभावशाली आचार्य थे। उदयपुर के महाराणा भीमसिंहजी आपका बड़ा सम्मान करते थे। उन्होंने आपका कई बार व्याख्यान श्रवण किया। आपके प्रतिभाशाली २७ शिष्य थे। वादविवाद में आप लोक विश्रुत थे। कोई भी प्रति-

पक्षी अपना वितंडावाद छोड़ नतमस्तक हुए बिना नहीं जाता था। आपके २७ प्रतिभाशाली शिष्यों में महान चमत्कारी योगात्मा श्री मानमलजी महाराज आपके पट्ट पर विराजे। पूज्य मानमलजी महाराज का जीवन परिचय इस प्रकार है--

महान तपस्वी पूज्यश्री मानमलजीस्वामी

वीरभूमि मेवाड़ के जनवंद्य महातपस्वी मुनि श्री मानमलजी महाराज साहब की माता धन्नाबाई की गोद धन्य धन्य हो गई थी जिस दिन पुत्र मानमल ने जन्म लिया था। पिता का अतृप्त पितृत्व भी पुलक उठा था जब नन्हें नन्हें सुकोमल हाथ पैर हिलाते सुन्दर मुखाकृति वाले शिशु मानमल को तिलोकचन्द्रजी गान्धी ने अपने हाथों में प्रथम बार देखा था। संवत् १८८३ की कार्तिक शुक्ला पंचमी की उस शुभ घड़ी में जिस दिन इस अवनी पर मानमल ने जन्म लिया था सारा गान्धी परिवार आनन्द से नाच उठा था। बालक के जन्म से घर में मंगलाचार होने लगे और देवगढ़ (मदारिया) में सम्बन्धी जनों के यहाँ बधाइयाँ दी गईं। बालक का नामकरण किया गया।

बालक बड़ा भाग्यशाली प्रतीत होता था। इसका प्रशस्त और उन्नत भाल सबको आकर्षित करता था। शरीर पुष्ट और गौरवर्ण था। शरीर पर तेज-काँति सी छायी प्रतीत होती थी। वृद्धजन कहते थे कि यह बालक आगे जाकर वंश को उज्ज्वल करेगा और धर्म की सेवा करनेवाला होगा।

बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगा साथ साथ श्री तिलोकचन्द्रजी गान्धी की प्रतिष्ठा व धन में वृद्धि होने लगी। जिस घर में धार्मिक और सुसंस्कारी माता पिता हों उस घर में पलनेवाले शिशुओं के संस्कार और संस्कृति में शंका कैसी? फिर जहाँ सर्व सुविधाएँ उपस्थित हों वहाँ शुभ योग में बाधाएँ कैसी? पिता तिलोकचन्द्रजी ने तत्कालीन सुविधा के अनुसार बालक को शुभ मुहूर्त में स्कूल में भेजा। बालक व्युत्पन्नमति

था। उसने अल्प समय में ही पढ़ना, लिखना, तथा हिसाब करना सीख लिया।

देवगढ (मदारिया) में इन दिनों में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज साहब की परम्परा के पट्टधर आचार्य नृसिंहदासजी महाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ चातुर्मासार्थ विराजमान थे। श्री नृसिंह दासजी महाराज मेवाड़ सप्रदाय के अग्रगण्य आचार्य थे। इन्होंने जैन समाज में फैले हुए पाखंड और मिथ्याडम्बर को अनेक स्थलों पर नष्ट किया। राजस्थान के अनेक गाँव नगरों में श्री संघों में पड़े हुए प्राचीन कुसम्पों का अन्त किया। शुद्ध साध्वाचार का प्रचार करके स्थानकवासी मत का प्रबल प्रचार किया। आप शुद्धाचारी और कठोर तपस्वी थे।

बालक मानमल अपने पिताजी के साथ प्रतिदिन आचार्यश्री जी के दर्शन के लिये जाता और व्याख्यान श्रवण करता था। मुनियों के सानिध्य में रहकर उसने सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, नवतत्त्व तथा अनेक स्तवन सज्झाय सीख लिये। मुनियों के बार बार सहवास से बालक के मन में वैराग्य के अंकुर फूटने लगे। धीरे धीरे बालक मानमल की आत्मा वैराग्य रग में पूर्णतः रंग गई। अवसर पाकर एक दिन गुरुदेव से मानमल ने कहा--गुरुदेव! मै ससार से ऊब चुका हूँ और ससार की असारता का भलीभाँति दर्शन और अनुभव कर चुका हूँ। मै अब साधु दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहता हूँ। ससार त्याग कर ही मै आत्म-कल्याण कर सकता हूँ। धर्मोपदेश श्रवण करने मात्र से ही सुख शान्ति कभी किसी को प्राप्त नहीं हो सकती और न आजतक किसी को हुई है। धर्म के सिद्धान्तों पर चलने से ही मनुष्य जन्म जरा और मृत्यु के बन्धन से छूटता है और सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है। गुरुदेव! मुझे आप अपना शिष्य बनाकर अनुग्रहीत करें। गुरुदेव ने कहा-- मानमल! तू होनहार बालक है। तेरी दीक्षा से अवश्य समाज का कल्याण होगा और शासन

की उन्नति होगी। दीक्षा लेने की भावना से मानमल अब दुगुने उत्साह से धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। माता पिता धार्मिक संस्कार के थे अतः बालक मानमल की तीव्र वैराग्य-मनोवृत्ति को देखकर उन्होंने उसे दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दी।

वि. सं. १८९२ में कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन बड़े समारोह के साथ वैरागी मानमल ने ९ वर्ष की कोमल वय में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के अवसर पर मेवाड़ के अनेक ग्राम नगरों के श्रीसंघ सकुटुम्ब सपरिवार जैन और जैनेतर उपस्थित थे। वैरागी मानमल अब मुनि मानमल बन गये।

साधुवेष धारण करना जितना सरल है उतना उसपर चलना सरल नहीं। गुरु महाराज श्री नृसिंहदासजी उग्र तपस्वी और कठिन साध्वाचार का पालन करने वाले थे। ऐसे सच्चे साधु की तत्त्वावधानता में रहना रहनेवाले में सच्चे साधु बनने की लगन हो तभी सम्भव था। गुरु महाराज तनिक भी शैथिल्य अपने साधु एवं शिष्यों में देखने को तैयार नहीं थे। वे बड़े परिश्रमी थे। रात्रि में कम निद्रा लेते थे। दिन में कभी भी शयन नहीं करते थे। व्यर्थ सम्भाषण करना उनके स्वभाव में था ही नहीं। ध्यान और स्वाध्याय में ही उनका सारा समय व्यतीत होता था। ऐसे कठोर तपस्वी का अनुशासन कितना कठोर हो सकता है यह सहज ही समझा जा सकता है।

चरित्रनायकजी सुसंस्कारी एवं सुसंस्कृत तो थे ही, फिर भाग्य से ऐसे प्रखर विद्वान एवं शुद्ध साध्वाचार के पालक महातपस्वी विचक्षण बुद्धिशाली गुरु की निश्रा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो क्या कमी रही ! बस आप शुद्ध साध्वाचार का पालन करने लगे और स्वाध्याय में रात और दिन तल्लीन रहकर अपनी उन्नति करने लगे। आपने अल्प समय में ही अनेक सूत्रों को कण्ठस्थ कर

लिया। गुरुदेव की सेवा और विद्याध्ययन बस उनका केवल यही एक लक्ष्य था और वे अपने लक्ष्य की ओर उत्साह के साथ बढ़ने लगे। आपने गुरुदेव के सहवास में रहकर शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। आपके विनय गुण के कारण गुरुजन आप पर सदैव प्रसन्न रहते थे। 'विद्या विनयेन शोभते' यह वाक्य आपने अच्छी तरह हृदय में धारण कर लिया था। विनय गुण, बुद्धि की तीव्रता और स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण आप अच्छे वक्ता बन गये। आपके व्याख्यान सदा वैराग्य रंग में रंगे हुए होते थे।

यति की देव साधनाः--

पूज्य गुरुदेव के साथ विहार करते हुए आप एक बार सिरोही मारवाड़ शहर पधारे और लोंकागच्छ के यतियों के उपाश्रय में ठहरे। उस समय एक यति भैरव की साधना कर रहा था उसकी साधना का यह अन्तिम दिन था।

मध्याह्न के समय यति पूज्यश्री के पास आया और धार्मिक चर्चा करने लगा। उस समय पूज्यश्री की सेवा में मुनि मानमलजी बैठे हुए थे। यति की दृष्टि मुनि मानमलजी पर पड़ी। विशाल भाल उन्नत ललाट और तेजस्वी मुख देख कर वह गुरुदेव से बोला---स्वामीजी! आपका यह शिष्य बड़ा भाग्यशाली और होनहार प्रतीत होता है यह अवश्य जैन धर्म की उन्नति करनेवाला होगा मुझे इसकी भव्यता बड़ी पसन्द आई। मेरी प्रार्थना है कि आज के जनजीवन में चमत्कार की बड़ी आवश्यकता है। चमत्कार को ही दुनियाँ नमस्कार करती है। जैन शासन की प्रभावना करने वाले मुनि विरले ही होते हैं। मै एक देव की साधना कर रहा हूँ। आज आखिरी दिन है इसलिये आप इस मानमलजी मुनि को मेरे पास बैठने की आज्ञा दीजिये। गुरुदेव बोले-- यतिजी! संयमी मुनि का यह काम नहीं है। मुनि मंत्र-तंत्रादि सावद्य प्रवृत्ति में नहीं पड़ते। जिसका अहिंसा, संयम और तप रूपी धर्म में मन लगा रहता है देवता स्वयं ही आकर उसकी सेवा करते हैं।

देव साधना की अपेक्षा आत्म साधना में हमारा पूरा विश्वास है। यतिजी! हम सब इसी उपाश्रय में ठहरे हुए हैं। अगर देव आपके पास आ सकता है तो वह हमारे पास भी आ सकता है। उसे रोकनेवाला कौन है? यति निराश होकर चला गया।

सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद गुरुदेव ने सभी मुनिवरों को बुला कर सावधान करते हुए कहा—मुनियो! यति भैरव को साध रहा है। अतः रात्रि में देव उपद्रव होने की संभावना है इसलिए आप लोग निद्रा छोड़कर सभी स्वाध्याय में लग जाये और पंचपरमेष्ठी मंत्र का स्मरण करे और निर्भय रहें। सभी मुनिवर गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर स्वाध्याय ध्यान में लीन हो गये।

इधर उपाश्रय के एक कोने में यति काले और गोरे भैरवजी को अपने आधीन करने की प्रबल भावना से विविध वस्तुओं की सामग्रियों से मंत्र का जाप करते हुए देवताओं का आह्वान करने लगा। मध्य-रात्रि में मंत्र के अन्तिम उच्चारण के समय एक देव भयंकर और विकराल अट्टहास करता हुआ प्रकट हुआ और बोला—"लाव-लाव!" देव का विकराल रूप देखकर और उसकी भयंकर चीत्कार सुनकर यति घबड़ा गया। वह डर के मारे अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा और उसकी वहीं पर मृत्यु हो गई। अब देव मुनियों की ओर मुड़ा। उस समय सभी मुनि गहरी नींद में सोए हुए थे किन्तु मानमलजी महाराज सावधान होकर स्वाध्याय कर रहे थे। वह उनके पास आकर बोला-'लाव-लाव'। निडर साहसी मानमलजी महाराज ने देवता की ओर देखा और निर्भयता पूर्वक तीन बार नवकार मंत्र सुनाकर बोले—देव! आप को और क्या चाहिये? हम तो निष्परिग्रही मुनि हैं। आत्म—साधना ही हमारा लक्ष्य है। मुनि की निडरता से देव बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपना असली रूप प्रकट किया और वन्दन कर बोला-मैं आप पर प्रसन्न हूँ। आप इच्छित वर मांगिए। मुनिश्री ने कहा--देव! हमने संसार के समस्त प्रलोभनों का परित्याग कर दिया है। वीतराग के

मार्ग के सिवाय हमें किसी भी वस्तु की तमन्ना नहीं है। देव मुनि के इस उत्कृष्ट त्याग भाव पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला-मुने! धन्य है आपको और आपके मुनिजीवन को। मै तो अब आपही की सेवा में रहकर अपने जीवन को पवित्र करूँगा। मुनिजी ने कहा-देव! जैसी तुम्हारी इच्छा। भैरवजी सदा के लिये मुनि भक्त बन गया।

कायर दिल का यति देव को अपने आधीन करने के बजाय सदा के लिये मृत्यु के आधीन बन गया। **"देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो"** इस महावाक्य को मुनिजी ने चरितार्थ करके बता दिया।

चोरों का हृदय परिवर्तन

मुनिमण्डल ने सिरोही से मारवाड़ की ओर विहार किया। विहार करते हुए मार्ग में सशस्त्र डाकुओं ने मुनियों को घेर लिया। मुनियों के पास लेने के लिये कुछ था नहीं उन्होंने उनके वस्त्र ही छीनने शुरू किये। बारी बारी से एक एक मुनि के वस्त्र उतरवा डाले। मान-मलजी महाराज की भी बारी आई और वे उनके पास आकर कहने लगे-अपने सब वस्त्र उतारकर हमें दे दो। मानमलजी मुनि ने डाकुओं से कहा-अच्छा! ये वस्त्र पड़े हैं ले लो किन्तु मेरी तरफ भी तो एक बार देख लो। डाकू मुनि की आँखों की ओर देखने लगे। मुनि की आँखों से तेज निकल रहा था। उनका भव्य ललाट और आँखों की तेजस्विता देखकर डाकू पानी पानी हो गये। मुनिजी के आँखों में योग का आकर्षण था। डाकुओं ने सोचा—"यह भव्य पुरुष सामान्य व्यक्ति नहीं है। यह तपस्वी कहीं अपने तप तेज से हमें श्राप न दे दे।" डाकू स्तम्भित रह गये। डाकुओं को स्तब्ध देखकर मुनि ने कहा--क्यों, क्या हुआ? आप वस्त्र की पोटली क्यों नहीं उठा रहे हो? डाकुओं ने कहा--महाराज! हमारी भूल हो गई। हम इन सब वस्त्रों को वापस कर रहे हैं। हमे ये वस्त्र नहीं चाहिए किन्तु आशी--

र्वाद चाहिए। मुनि ने उन्हें उपदेश दिया। मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने सदा के लिये चोरी करना छोड़ दिया। यह थी मानमलजी महाराज की तेजस्विता।

महामानव मानमलजी महाराज वचन सिद्ध महापुरुष थे। शुद्ध-चारित्र के पालन से आपके वचन में ऐसा प्रभाव आ गया था कि आपकी वाणी से कठिन से कठिन कार्य भी सरल बन जाते थे। किसी आपत्ति में पड़ जाने पर सैकड़ों जैन और जैनेतर आपकी राह में आँखे बिछा देते थे। जनता का यह विश्वास था कि मानमलजी महाराज के प्रभाव से सब संकट दूर हो जाते है। अनेक दुखी व्याधि ग्रस्त आपके पास आते और आपके चरणों की धूलि का पान कर व्याधि और पीड़ा से मुक्त हो जाते थे। मुनिजी को यह मालूम भी नहीं होता कि कौन क्या भावना लिये मेरे पास आता है। वे सहज भाव से रहते थे। उन्हें कोई आकर कहता—महाराज साहब मैं छ मास से दुःखी था। घर में बीमारी बनी ही रहती थी। व्यापार में नुकसान हो रहा था। न्यायालय में कई मुकदमें चल रहे थे किन्तु आपके पधारते ही एक एक करके सब संकट टल गये। सब आपके चरणों की महिमा है।

मुनिवर फरमाते—"भाई! यह सब धर्म का प्रभाव है। धर्म की आराधना में चित्त लगाओ। धर्म की आराधना करने से सभी संकट टल जाते हैं।" आपके वचन कभी निष्फल नहीं होते। आप जहाँ भी जाते लोग आदर के साथ खड़े हो जाते और आपकी आज्ञा पाने की प्रतीक्षा करते। आप को कल्पवृक्ष की तरह मनोवांछित पूरा करने वाला महापुरुष मानते थे। आपके जीवन सम्बन्धी अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाएँ आज भी मेवाड़ प्रांत में वृद्ध जनों के मुख से सुनने को मिलती हैं उनका यदि संकलन किया जाय तो एक विशालकाय ग्रन्थ बन जावेगा फिर भी पाठकों की जानकारी के लिये कुछ चमत्कार पूर्ण घटनाओं का उल्लेख करता हूँ—

भूत का भाग जाना—

मेवाड़ में 'बिजरौल' नामका एक छोटा गांव है। वहाँ प्रायः ब्राह्मणों की ही बस्ती है। कुटुम्ब क्लेश के कारण एक ब्राह्मण आत्म-हत्या करके मर गया। परिणाम यह निकला कि वह मर कर भूत योनि में उत्पन्न हुआ। भूत बनकर वह मुख्य (सदर) दरवाजे के बीच उपद्रव करने लगा। पोल में रहनेवाले लोग भूत के उपद्रव से घबरा गये। लोग पोल को छोड़ अन्यत्र रहने चले गये। कुछ लोगों ने भूत को भगाने के लिए अनेक मंत्रवादियों का सहारा लिया। कई प्रकार के प्रयत्न किये किन्तु वे सब के सब निष्फल होगये। भूत का यह उपद्रव अब पोल तक ही सीमित न रहा। अब वह गाँव में भी उपद्रव मचाने लगा। लोगों की यह धारणा होगई कि इस भूत के कारण ही इस गांव की प्रगति नहीं हो रही है। भूत के उपद्रव को दूर करने के विचार से गांव के वृद्ध जन एकत्रित हुए और आपस में विचार विमर्श करने लगे। उनमें से एक वृद्ध ने कहा-जैनों के गुरु मानजीस्वामी बड़े चमत्कारिक सन्त हैं। उनको यदि यहाँ ठहराया जाय तो अवश्य गांव का यह संकट टल सकता है। लोगों को यह राय अच्छी लगी। लोग जिस गांव में मानजीस्वामी विराजमान थे वहाँ गये और अपने गांव पधारने की विनती करने लगे। लोगों की भक्ति देखकर मानजीस्वामी ने उनकी विनती मान ली। महाराजश्री विहार कर "बिजरौल" पधारे। गांववालों ने तपस्वी को भूतवाली हवेली में उतार दिया। तपस्वी का कदम ज्योंही हवेली में पड़ा भूत घबरा कर चीत्कार करता हुआ भाग गया। भूत का चीत्कार सुनकर मानजीस्वामी ने उपस्थित लोगों से पूछा—भाई! इस सुनसान हवेली में भूत रहता है? लोगों ने सच्ची बात कह दी। उत्तर में स्वामीजी ने कहा-भाइयो! अब आप लोगों का संकट टल गया है। इस हवेली में तो क्या किन्तु गाव में भी यह भूत नहीं रहेगा। हवेली के मालिक से कहा-भाई! अब यह स्थल धर्म-ध्यान के लिये छोड़ देना। साधु सन्तों को यहीं

उतारना और आप लोग भी यहाँ आकर धर्म ध्यान करना। हवेली के मालिक ने तपस्वी के वचन को शिरोधार्य कर लिया। आज भी वह हवेली प्रायः साधु साध्वियों के ही उतरने व धर्मध्यान के लिये उपयोग में आती है। यह था तपस्वीजी के पावन चरणों का प्रभाव।

कन्या को अभयदान

राजपूतवंश के कई बड़े बड़े ठिकानों में यह प्रथा थी कि लड़की पैदा होते ही उसे विष देकर मार डालते थे। कारण यह था कि युवा लड़की के विवाह में बहुत बड़ा दहेज देना पड़ता था। विवाह के समय सुवर्ण के गहने चांदी के बर्तन, घोड़े, दास दासी आदि विपुल मात्रा में कन्यादान में देने पड़ते थे। इस खर्च से बचने के लिये प्राय राजघराने में लड़कियों को विष प्रयोग द्वारा मार डाला जाता था। मेवाड़ के एक प्रसिद्ध ठिकाने के गांव में स्वामीजी श्री मानमल जी महाराज पधारे। गांव के भावुक जनों के साथ गाँव के ठाकुर साहब भी दर्शनार्थ आये। महाराजश्री ने धर्मोपदेश देते हुए कहा— संसार के सभी प्राणी जीने की इच्छा रखते हैं इसलिए संसार के सभी प्राणियों को अपने प्राणों की तरह समझना चाहिये। पराये प्राणों को कष्ट देना, मारना, पीड़ा पहुँचाना और उनका मास खाना ये सब अनार्य कर्म हैं। घोर नरक का कारण है। जो दूसरों को दुखी करता है वह संसार में कभी सुखी नहीं हो सकता। सुख के बदले मे सुख लो और दुःख के बदले में दुख। स्वामीजी के ये वाक्य ठाकुर साहब पर असर कर गये। व्याख्यान समाप्ति के बाद ठाकुर साहब ने कहा— स्वामीजी! अगर ऐसा ही प्रसंग आ जाय तो क्या करना चाहिये? स्वामीजी ठाकुर साहब के कहने के भाव को समझ गये। उत्तर में उन्होंने कहा—ठाकुर साहब! आप के कितने पुत्र हैं? ठाकुर—एक भी नहीं। स्वामीजी-लड़कियाँ कितनी है? ठाकुर साहब यह सुन कर चुप हो गये। स्वामीजी ने कहा— ठाकुर साहब! लड़का या

लड़की जो भी जन्म लेता है वह अपना अपना पुण्य भी साथ में लेके आता है। राजमाता की गोद में आई हुई सन्तान को मृत्यु की गोद में सुला देना महापाप है। अब आप प्रतिज्ञा करिये कि जो भी बालक जन्म लेगा उस सन्तान को वह चाहे लड़की ही क्यों न हो–नहीं मारूंगा। ठाकुर साहब खड़े हो गये और उन्होंने प्रतिज्ञा ग्रहण करली। स्वामीजी ने वहाँ से विहार कर दिया। ठकुरानी गर्भवती थी। कुछ महिने के बाद राजमाता ने पुत्री को जन्म दिया। जन्म के बाद राजमहल की किसी एकान्त जगह जब जरारु (नाड़ा) गाडने के हेतु गड्ढा खोदा गया तो उसमें सोने की मुहरों से भरी चरु मिल गईं। यह बात ठाकुर के पास पहुँची। ठाकुर वहाँ आये और सुवर्ण से भरी चरू को देखकर बड़े आश्चर्य चकित हो गये। स्वामीजी की बात पर विश्वास होगया कि जो आत्मा जन्म लेता है साथ में अवश्य पुण्य पाप लाता है। आने वाली राजकुमारी अवश्य पुण्यशाली आत्मा है। ठाकुर का विश्वास स्वामीजी पर जम गया। वह स्वामीजी का सदा के लिये भक्त बन गया। ठाकुर साहब के वंशज आज भी जैन मुनियों के परम भक्त बने हुए हैं और उनकी हर प्रकार की सेवा करते रहते हैं। यह था स्वामीजी के उपदेश का चमत्कार!

"यह जवान मेवाड़ का भावी शासक बनेगा"

एक समय मानमलजी स्वामी कांकरोली में विराजमान थे। यह गांव राजसमंद के किनारे पर बसा हुआ है। यह प्रख्यात वैष्णव तीर्थ है। यहाँ यात्रियों का सदा आवागमन होता ही रहता है।

एक बार पूज्यश्री सूरज दरवाजा के बाहर शिष्यों सहित शौच जा रहे थे। सामने से गौर वर्ण लम्बा कद स्वदेशी सूत के बुने हुए मोटे कपड़े पहने हुए तथा हाथ में लट्ठ लिये हुए मस्त चाल से चलता हुआ एक युवक आरहा था। पूज्यश्री को देखकर युवक ने नमस्कार किया। पूज्यश्री ने आशीर्वाद देते हुए कहा–"भाग्यशाली! दया

पालो" युवक नमस्कार कर दो कदम आगे बढ़ा ही था कि आचार्य ने अपने शिष्यों से कहा-यह युवक थोड़े समय में ही मेवाड़ का नाथ बनेगा। यह वाक्य युवक ने सुन लिया। वह वापस लौट कर पूज्य-श्री के पास आया। पूज्यश्री के एक सन्त ने पूछा-आपका नाम ? युवक ने कहा-मुझे फतहसिंह कहते हैं। वह बोला-पूज्यश्री ने आपके लिये जो भविष्यवाणी की है वास्तव में वह सच निकलेगी और आप सारे मेवाड़ को फतह करेंगे। आप सचमुच भाग्यशाली हैं। युवक ने नम्रता से जवाब दिया। "जैन मुनि रा वचन साचा हुआ करे हैं" प्रणाम कर युवक आगे बढ़ गया।

कुछ अर्से के बाद महाराणा सज्जनसिंहजी की अपुत्र ही मृत्यु होगई। इनकी गादी अन्य को न मिलकर फत्तेसिंहजी को ही मिली। महाराणा फत्तेसिंहजी के बारे में पूज्यश्री की भविष्यवाणी शत-प्रतिशत सच निकली। महाराणा फत्तेसिंहजी मानजी स्वामी के परम भक्त बन गये। उन्होंने अपने जीवनकाल में पूज्यश्री की अच्छी सेवा की और अपना धर्ममय जीवन बनाया। यह था पूज्यश्री मानजी स्वामी के वचनों का अनूठा चमत्कार!

तेली समाज द्वारा पापमय व्यापार का परित्याग—

एक बार आप अपनी शिष्य मण्डली के साथ मेवाड़ के "पालना" नामक गाव में पधारे। पालना गाव में अधिकतर तेलियों की बस्ती है। जैनों के नाम मात्र के ही घर हैं। पूज्यश्री के आगमन का समाचार सुनकर सारा गांव पूज्यश्री के व्याख्यान श्रवण के लिये आया। पूज्यश्री ने अपने प्रवचन में दया दान का महत्व और पुण्य पाप का फल समझाया। पूज्यश्री के व्याख्यान की समाप्ति के बाद एक वृद्ध ने निवेदन करते हुए कहा-"महाराज साहब! हमारा गांव प्रतिदिन ह्रास की ओर जा रहा है। धनजन दोनों की हानि हो रही है इसका क्या कारण है?" पूज्यश्री ने कहा-"भाइयो! जैसा हम

बोते हैं वैसा पाते हैं। आपलोग पाप करते हैं। जीव हिंसा के ही काम करते हैं तो आप लोग सुखी कैसे हो सकते हैं? अगर आप लोग अपने गांव की समृद्धि चाहते हो तो जीवहिंसा और हिंसामय व्यापार का परित्याग कर दो।" पूज्यश्री के वचनों का असर गांव वालों पर पड़ा। उन्होंने उसी क्षण साँप बिच्छू आदि प्राणियों को मारना, बैलों की खसी करना, सन अम्बारी को पानी में सड़ाना आदि पापमय प्रवृत्तियों का त्याग कर दिया। पालना के तेली समाज ने उपरोक्त पापमय प्रवृत्तियाँ न करने का सामाजिक नियम बनाया। पूज्यश्री ने वहाँ से विहार कर दिया। तेली समाज की सावद्य प्रवृत्ति के त्याग से स्थिति सुधरने लगी। वे थोड़े दिनों के बाद ही सम्पत्तिशाली बन गये। इस बात को १०० वर्ष हो गये हैं वहाँ का तेली समाज आज भी उपरोक्त नियम को पालता है। यहाँ की प्रजा आज भी पूज्यमानजी स्वामी का अत्यन्त आदर पूर्वक स्मरण करती है। यह था पूज्यमानजी स्वामी के उपदेश का चमत्कार!

मेरी मृत्यु यहाँ नहीं होगी

आपकी उम्र ८० वर्ष की हो चुकी थी। आपका जीवन गंगा की धारा की तरह पवित्र और उज्ज्वल था। आपने मेवाड़, मारवाड़ गोरवाड़, सिरोही गुजरात काठियावाड आदि देशों में विचर कर भगवान महावीर का अहिंसा सन्देश सुनाया। आप के उपदेश सुनकर अनेक प्राणियों ने अपने जीवन को पवित्र बनाया। अनेक स्थानों पर देवी देवता के नाम पर होने वाली जीव हिंसा आपके उपदेश से सदा के लिये बन्द हो गई। आपके मांगलिक श्रवण से अनेक लोगों के भूत भाग जाते थे। अनेकों के रोग मिट जाते थे। अनेक व्यक्ति दरिद्रता के भार से मुक्त होते थे।

एक बार आप विहार करते हुए मेवाड़ के एक छोटे गाव में पधारे। वहाँ सहसा आपका स्वास्थ्य बिगड़ा। कमजोरी बढ़ती गई

और शरीर शिथिल हो गया। आपके बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को देखकर लोग यही सोचने लगे कि अब पूज्यश्री चंद दिनों के ही मेहमान हैं। साथी मुनिराज भी पूज्य गुरुदेव की अस्वस्थता से चिन्तित हो उठे। गाँव के लोग भी घबरा गये। सुतार को बुलाकर गांव वालों ने पालखी बनाने का आदेश दे दिया। लोगों की घबराहट और भाग दौड़ देखकर पूज्यश्री ने लोगों को अपने पास बुलाया और आश्वासन देते हुए कहा—भाइयो! आप लोग यह भाग दौड़ क्यों कर रहे हो? मेरा शरीर यहाँ नहीं छूटेगा। मेरा आगामी चातुर्मास नाथद्वारा में होगा और वहीं यह देह छूटेगा। आप लोग व्यर्थ ही परेशान हो रहे हैं। पूज्यश्री के इन वचनों से गांव वालों को आश्वासन मिला। पूज्यश्री अल्प समय में ही स्वस्थ हो गये। स्वास्थ्य लाभकर पूज्यश्री अपनी शिष्य मण्डली के साथ विहार कर गये। विहार करते हुए आगामी चातुर्मासार्थ नाथद्वारा पहुँचे। "मेरा नाथद्वारा में स्वर्गवास होगा" पूज्यश्री की इस भविष्यवाणी से लोग सावधान हो गये। नाथद्वारे के चातुर्मास के बीच हजारों स्त्रीपुरुष पूज्यश्री के दर्शनार्थ आने लगे। नाथद्वारे के इस चौमासे के बीच लोगों में धार्मिक उत्साह खूब बढ़ा चढ़ा रहा। धर्मध्यान आशातीत हुआ। पूज्यश्री का भी सारा समय व्याख्यान देने में व स्वाध्याय में बीतने लगा। सांवत्सरिक पर्व भी बड़े उत्साह के साथ समाप्त हुआ। दीपावली में वीर निर्वाण के दिन पूज्यश्री ने प्रतिवर्ष के नियमानुसार एक आसन से उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययन का वाचन किया। इतनी उम्र में भी पूज्यश्री की अप्रमत्त अवस्था को देखकर लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। चातुर्मास समाप्ति का दिन समीप आता जा रहा था। पूज्यश्री की मृत्यु का समय टल गया जान लोग कुछ निश्चित हो गये थे। कार्तिक शुक्ला पंचमी का प्रातःकाल था। पूज्यश्री ने आलोचना की। चतुर्विध संघ को बुलाया और उनसे खमतखामना की। अपने साथी मुनिवरों से कहा—"सन्तो! मेरा अब आप लोगों से जुदा होने का समय आगया है यदि मैंने

मन वचन काया से किसी के मन को आघात पहुँचाया हो तो उसके लिये मै आप सब से क्षमा याचना करता हूँ । आप लोगों से मेरा अन्तिम निवेदन है कि आप लोग अपने संयम का उत्कृष्ट भाव से पालन करें और आपस में मेल मिलाप रखें" इतना कहने के बाद पूज्यश्री ने चारों आहार और अठारह पाप स्थानों का परित्याग किया और ऊँचे स्वर से 'अरिहंत अरिहन्त' बोलते हुए सदा के लिए अन्तर्ध्यान होगये। वे चले गये और अपने शिष्यों को संयम का, समता का, धर्मदृढ़ता का और विश्ववात्सल्य का कभी नहीं छीना जाने वाला अमूर्त आत्मधन सौंप गये। पूज्यश्री के स्वर्गवास से सारा मेवाड़ मूक वेदना का अनुभव करने लगा। पूज्यश्री के स्वर्गवास का जो भी समाचार सुनता वह चकित और अवाक् सा रह जाता। अभी कल शाम को तो प्रसन्नवदन से सब के साथ बातें कर रहे थे। प्रातः कालीन प्रतिक्रमण भी किया था। साधु श्रावकों को पचक्खान भी करवाये थे इतने में क्या होगया ? नहीं यह बात झूठी होगी ! परन्तु आखीर में सब को इस सत्य के सामने झुकना पड़ा। शोक ! महाशोक !! जैन समाज का सिरताज समाज को अनाथ करके स्वर्ग को सनाथ बनाने के लिये चला गया।

सारे शहर में हाहाकार मच गया। जिसने भी सुना वही स्थानक की ओर भागा चला आया। हिन्दू से लेकर मुसलमान तक शायद ही ऐसा कोई अभागा व्यक्ति शहर में रह गया होगा जिसने इस महास्थविर के अन्तिम दर्शनों के लिये अपने आपको उपस्थित न किया हो। जो कोईभी देखता वह यही कहता--इन महात्मा ने तो समाधि धारण कर रक्खी है, देखो तो, चेहरे पर किसी प्रकार का फर्क नहीं पड़ा है ! वैसा ही तेज, वैसी ही आभा है। इनको स्वर्गवास कर गये कहना हमें तो भूल भरा प्रतीत होता है। साराश कि एक बार तो देखने वाले को भ्रम अवश्य हो जाता था।

पूज्यश्री के स्वर्गवास के शोक समाचार सारे मेवाड़ में तत्कालीन साधनों द्वारा पहुँचाये गये। आसपास के गांव वाले बड़ी संख्या में पहुँच गये। सब के चेहरे फीके पड़े हुए थे। सब की आँखें अपने प्रिय गुरुदेव के वियोग में अश्रुधारा बहा रही थीं। अन्त में एक बड़ी अच्छी तरह से सजाये हुए देव तुल्य विमान में पूज्यश्री के देह को प्रतिष्ठित करके पूज्यश्री को अग्नि संस्कार के लिये बड़ी धूमधाम से ले जाया गया और चन्दन खोपरा खारक घी की चिता में विराजमान करके आपके शरीर का दाह संस्कार किया गया। उस समय आश्चर्य यह हुआ कि पूज्य श्री का सारा देह अग्नि में भस्म हो गया किन्तु उनकी चद्दर यथावत् रह गई। प्रज्वलित आग के बीच भी चद्दर को अखंडित देखकर उपस्थित समाज चकित रह गया। उस चद्दर को स्थानीय संघ ने बहुत समय तक अपने यहाँ ही रखा। बाद में उसकी विशेष सुरक्षा हेतु उसे सलौदा के पुजारी को दे दिया। यह चद्दर आज भी अपनी जीर्ण शीर्ण अवस्था में तपस्वीजी की याद दिला रही है। तपस्वीजी श्रीमानजीस्वामी का जन्म दीक्षा और स्वर्गवास कार्तिक शुक्ला पंचमी को ही हुआ था। ऐसा योग बहुत कम मिलता है। यह भी कम आश्चर्य जनक नहीं है।

सब नागरिकों के मुख से पूज्य श्री मानमलजी महाराज की प्रशंसा के शब्द सुनाई देते थे। उनके चमत्कार व प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व की सर्वत्र चर्चा चलती थी। जनता को अनुभव हुआ कि आज एक सच्चे त्यागी, उच्चसंयमी, कठोरतपस्वी एवं महान् सन्त का सदा के लिये वियोग हो गया। इसके कारण न केवल जैन समाज की बल्कि समस्त धार्मिक जगत की ऐसी महती क्षति हो गई जिसकी पूर्ति होना कठिन है। एक अलौकिक पुरुष भूलोक से स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर गया। धार्मिक जगत का एक ज्योतिर्धर नक्षत्र अस्त हो गया।

क्रियापात्र श्रीवेणीचन्द्रजी महाराज

आप का जन्म मेवाड़ देशान्तर्गत चाँकूड़ा (आकोला) नामक एक छोटे से ग्राम में वीसा ओसवाल मादरेचा परिवार में हुआ था। बचपन में आपके हृदय में वैराग्य के अंकुर जम चुके थे। आप ने मेवाड़ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध प्रखर विद्वान् श्री रीषभदासजी महाराज के समीप भागवती दीक्षा ग्रहण की। आप प्रकृति के सरल गम्भीर और शान्त थे। आपने अनेक प्रान्तों में विचरण कर धर्मजागृति करते हुए अनेक मुमुक्षु जीवों का उद्धार किया। आप समाजोत्थान और संगठन के अत्यन्त प्रेमी थे।

साथी मुनियों के स्वर्गवास से आप को कुछ समय के लिएँ अकेला ही रहना पड़ा था। इस अवस्था में आप पर कई प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आये किन्तु आप ने उन सभी उपसर्गों को बड़ी धीरता के साथ सहन किया। उपसर्गों के झझावातों में भी आप पहाड़ की तरह अविचल रहे।

संयम सुलभ सद्गुण, सरल शान्त और उदात्त आपका हृदय, गुरु गम्भीर आपका व्यक्तित्व, परिषह सहन करने की अद्भुत क्षमता, समय सूचकता और दूरदर्शिता आदि मानवीय गुण आप में पूर्णरूप से समुद्भूत हुए थे।

आप में धैर्य और आत्मबल कितना जबरदस्त था यह आप के जीवन की एक छोटी सी घटना से ही पता चलता है-एक बार आप के पैरों में सूजन आई। सूजन के कारण आपके सारे शरीर में असह्य पीड़ा उत्पन्न हो गई। चलना फिरना बन्द हो गया। उस समय आप अकेले थे। सेवा में कोई सन्त नहीं था। इस अवस्था में भी आप ने अपूर्व धैर्य का परिचय दिया। आप ने इस संकट काल में किसी साध्वी या गृहस्थ से सेवा नहीं करवाई। दवा आदि का भी उपचार नहीं करवाया। आपके पास सभी रोगों को मिटाने की अमोघ औषधी थी तप। आपने उसी समय तेला पचक्ख लिया और ध्यान तथा

स्वाध्याय में बैठ गये। तप के प्रभाव से तीसरे दिन पैरों की सूजन सर्वथा मिट गई। शरीर पूर्ववत् स्वस्थ हो गया। आप अब अच्छी तरह चलने फिरने लगे। चौथे दिन पारणा के लिए आप गोचरी के लिए उपाश्रय के बाहर निकले। बुजुर्गों से सुना जाता है कि उस समय आप पर आकाश से केशर की वृष्टि हुई थी। इस चमत्कार को देखने के लिए सारा गांव एकत्र हुआ। गांव वाले लोग महाराज-श्री के आस पास केशर बिखरी हुई देख कर बड़े चकित हुए। तपस्वीजी की जय जय कार से सारा गांव गूंज उठा। लोगों के मस्तक पूज्यश्री के चरणों में झुक गये। महापुरुषों के पुण्य-प्रसाद की यही तो महिमा होती है। वे स्वयं तो महिमावान् होते हैं और औरों को भी महिमावान् बना डालते हैं।

इस चमत्कार पूर्ण घटना का व महिमा का आप पर किंचित् भी असर नहीं हुआ। आप उस अवस्था में भी पूर्ववत् शान्त तथा नम्र दृष्टिगोचर होते थे।

कालान्तर में आप के दो शिष्य हुए। एक पूज्य श्री एकलिंग-दास जी महाराज साहब जिनका परिचय इसी चरित्र माला में दिया गया है। दूसरे शिष्य तपस्वी श्री शिवलालजी महाराज हुए। शिवलालजी महाराज सचमुच शिव की ही मूर्ति थे। तपस्या ही आप के जीवन का लक्ष्य था। आपने अपने जीवन काल में निम्न बड़ी बड़ी तपस्या की थीं—

तपस्या—३५-४२-४५-५२-५७-६१ का थोक। इसके अति-रिक्त छोटी छोटी तपस्याएँ आपने बड़ी मात्रा में कीं। गुरुदेव श्री वेणीचन्दजी महाराज के सान्निध्य में रहकर आप ने जो गुरुभक्ति का परिचय दिया वह अपूर्व था। विक्रम संवत १९७९ में आप अन-शन पूर्वक रायपुर शहर में स्वर्गवासी हुए।

पूज्य श्री वेणीचंदजी महाराज सच्चे क्रियापात्र सन्त थे। कठोर तप और क्रिया का पालन करते हुए भी आपके दैनिक कार्यक्रम में

किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता था । व्याख्यान देना, खड़े रह-कर घंटों तक ध्यान और स्वाध्याय करना ये आपके नियमित कार्य थे।

संवत् १९६१ को फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के दिन आप चैनपुरा (मेवाड़) में अनशन पूर्वक समाधि में रहते हुए काल धर्म को प्राप्त हुए।

अपनी आदर्श सेवा-परायणता, गुरु भक्ति और तप-त्याग से आप कभी भी भूले नहीं जा सकते । फूल की सुगन्धि क्षणिक होती है किन्तु गुणों की सुगन्धि चिर स्थायी और चिर-नवीन होती है । इस नाशवान पार्थिव शरीर से और क्या लाभ उठाया जा सकता है। इसे हमें संयम का और मुक्ति के मार्ग का ही साधन बनालेना चाहिये। पूज्यश्री वेणीचदजी महाराज ने यही किया जो और लोग कम कर पाते हैं । कहने के लिए भले ही हम आपको स्वर्गवासी कह दें किन्तु वास्तविक वास तो आपका भक्तों के हृदय में है इसलिए कौन इन्हें स्वर्गवासी कह सकता है ?

पूज्य श्री एकलिंगदासजी महाराज

जैन संस्कृति में आचार्य का विशेष महत्व रहा है । तीर्थङ्करों के अभाव में आचार्य ही चतुर्विध संघ का नेतृत्व करते हैं । **'दीवसमा आयरिया'** इसीलिए आचार्य को दीप की उपमा दी गई है ।

श्रद्धेय पूज्य श्री एकलिंगदासजी महाराज ऐसे ही एक महान आचार्य थे जिन्होंने वीर भूमि मेवाड़ में जन्म लेकर इस भूमि की पुण्य ख्याति में वृद्धि की।

आपकी जन्मभूमि निम्बाहेड़ा जिले में संगेसरा नामक गाँव है। इस गाव में ओसवंशीय छोटे साजन सहलोत गोत्रीय श्रीमान् शाह शिव-लालजी रहते थे । आपकी धर्मपत्नी पतिभक्ता श्रीमती सुरताबाई थीं। दोनों दम्पति कुलमर्यादा के पोषक एवं धर्म में दृढ़ श्रद्धालु थे। धार्मिक-वृत्ति होने के कारण पतिपत्नी का जीवन पवित्र और सुखी था ।

संवत् १९१७ की जेष्ठ मास को अमावस्या रविवार की रात्रि

में इस दम्पति को कुल दीपक पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई। पुण्यशाली के जन्म से भला किसको प्रसन्नता नहीं होती। उसका जीवन सर्व प्रिय होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार बन्धुबान्धव और इष्ट मित्रों ने बालक के जन्म पर आनन्दोत्सव मनाया। श्री शिवलालजी ने अपने वैभव के अनुरूप बालक का जन्मोत्सव किया। कुलाचार के अनुसार बारहवें दिन नामकरण के लिए कुटुम्बीजन एकत्रित हुए। उस अवसर पर ज्योतिषी को भी बुलाया। जन्म समय देखकर ज्योतिषी ने बालक की जन्मकुण्डली बनाई। उसका फल बताते हुए ज्योतिषी ने कहा–श्रीमान्जी! यह होनहार बालक है। इसकी जन्म कुण्डली यही बतारही है कि यह भविष्य में ख्याति प्राप्त व्यक्ति बनेगा। ज्योतिषी के संकेतानुसार बालक का नाम 'एकलिंगदास' रखा गया।

वैसे तो बालक निसर्ग का सुन्दर उपहार होने से स्वभावतः ही सुन्दर और प्रिय लगता है। इस पर भी विशेष पुण्यसामग्री लेकर आए हुए बालकों की मनभावनी मोहकता का तो कहना ही क्या! बालक एकलिंगदास कुछ ऐसी ही विशिष्ट रूप सम्पदा का धनी था अतः वह सब को अत्यन्त प्रिय लगता था। इसकी मुखमुद्रा पर होनहारता के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देते थे। बुद्धि की कुशाग्रता तो इसकी जन्मजात विशेषता थी।

आपके जेष्ठ भ्राता का नाम मोडीलालजी था। दोनों बालक राम-लक्ष्मण की जोडी सी प्रतीत होते थे।

बालक एकलिंगदास के जन्म के बाद उनके माता पिता को अधिक से अधिक अनुकूल संयोगों की प्राप्ति होने लगी। इस लाभ को वह दम्पति बालक के पुण्य प्रभाव का फल मात्र समझते थे अतः माता पिता की ममता इस बालक पर विशेष रूप से थी।

बालक एकलिंगदास माता पिता की वात्सल्यमयी गोद में दूज के चाँद की तरह बढ़ने लगा। बाल सुलभ चेष्टाओं और अपनी सुन्दर

सुकुमार मुखाकृति से वह अपने माता पिता को आनन्दित करने लगा। उसकी एक एक मुस्कान से माता पिता का हृदय आनन्द से भर जाता था। माता पिता के प्रेम के साथ ही बालक को सुन्दर संस्कार भी मिलने लगे। बाल्यकाल के पवित्र संस्कार भावी जीवन के निर्माण में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। अत. बालक संस्कारी हो इस बात का माता पिता को अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

माता पिता ने योग्य वय में बालक को पाठशाला में भेज दिया। चरित नायक अब नियमित रूप से पाठशाला में जाने लगे। तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार बालक स्कूल में पढ़ने लगा। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। शिक्षक के दिये गये पाठ को ये अल्प समय में ही तैयार कर लेते थे। इनके विनम्र स्वभाव और प्रतिभा से शिक्षक स्वयं चकित थे।

महापुरुष बनने वाले व्यक्ति में कतिपय विशेषताएँ जन्म से ही हुआ करती हैं। तदनुसार हमारे चरितनायकजी में ऐसी कई विशेषताएँ थीं। यद्यपि ये माता पिता की प्रेरणा से पाठशाला में अवश्य पढ़ने जाते थे किन्तु उन्हें इस बाहरी शिक्षा में जरा भी रसानुभूति नहीं होती थी। इनके धार्मिक संस्कार जागृत होने लगे। इनका ध्यान आध्यात्मिक शिक्षा की ओर अधिक जाने लगा। ये प्रतिदिन अपनी बैठक पर सामायिक करते, माला फेरते और नया धार्मिक ज्ञान प्राप्त करते। इन्होंने धीरे-धीरे सामायिक प्रतिक्रमण स्तवन थोकड़े आदि याद कर लिये।

माता पिता का वियोग-

कर्मसिद्धान्त का यह नियम है कि प्रत्येक प्राणी को अपने संचित शुभा-शुभ कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। निर्दोष दिखने वाले बालक भी अपने पूर्वसंचित कर्म के शिकार होते हुए दिखाई पड़ते हैं। भले ही वर्तमान में उनके कोई पाप कर्म दृष्टि गोचर नहीं होते हों किन्तु संचित अवश्य होते हैं। जिस प्रकार के शुभाशुभ कार्य

का संचय जीव ने किया है उसका फल समय आने पर अवश्य मिलता है। अस्तु! दस ग्यारह वर्ष की कोमल अवस्था में ही हमारे चरित्रनायकजी पर माता पिता के वियोग का वज्रपात टूट पड़ा। माता-पिता के स्वर्गवास से दोनों भाई अनाथ हो गये। संचित कर्म को यही इष्ट था। शायद कर्मदशा आपको बचपन से ही स्वावलम्बन का पाठ सिखाना चाहती थी इसीलिये कुदरत ने माता पिता की स्नेहमयी ममता से आपको वंचित रखा। पावन पथ की ओर बढ़ने की आपके जीवन की यह सबसे बड़ी प्रेरक घटना थी।

माता पिता के वियोग के बाद घर का सारा भार आपके ज्येष्ठ भ्राता मोडीलालजी पर आ पड़ा। मोडीलालजी ने बड़ी कुशलता के साथ घर का भार संभाल लिया। इन्होंने अपने नन्हें भाई को माता-पिता का प्यार दिया। वे अपने प्राणों से भी बढ़कर नन्हें भाई को प्यार करते थे। उन्होंने कभी भी बालक एकलिंगदास को माता पिता का वियोग खटकने नहीं दिया। वास्तव में दोनों की राम लक्ष्मण की जोड़ी थी।

धीरे धीरे अवस्था के के बढ़ने के साथ ही साथ बुद्धि की कुशलता और पुरुषार्थ से दोनों भाई जीवन निर्वाह के लिये व्यवसाय करने लगे। व्यवसाय के साथ ही साथ आपका धर्म की ओर भी झुकाव होने लगा। पुद्‌गलों से महत्व हटाकर आत्मा के स्वरूप में आपका मन रमण करने लगा। आपने मुनिराजों के प्रवचनों से प्रभावित होकर रात्रि भोजन, तिथियों में हरी बनस्पति आदि का त्याग कर दिया।

संयोगवश मेवाड़ सम्प्रदाय के तत्कालीन प्रखर व्याख्याता आगमज्ञ प्रभावक संतशिरोमणि मुनि श्री रिखबचन्द्रजी महाराज के शिष्य घोर तपस्वी श्री वेणीचन्दजी महाराज का संगेसरा आगमन हुआ। मुनिश्री के शुभागमन से सारा गाव हर्षित होकर मुनिश्री की सेवा में जाने लगा। उनके सारगर्भित भाषण सुनकर अपने आपको धन्य मानने लगा। श्री एकलिंगदासजी भी प्रति दिन नियमित रूप से

मुनिश्री का प्रवचन सुनने लगे। उनके प्रवचन ने श्री एकलिंगदासजी के हृदय में रहे हुए वैराग्य के बीज को अंकुरित और पल्लवित कर दिया। आपका चित्त संसार से एकदम विरक्त हो गया। आपने एक दिन व्याख्यान के बीच खड़े होकर मुनि से विनम्र प्रार्थना की—

तरण तारण गुरुदेव! आपके उपदेश ने मुझे जागृत कर दिया है। मैं जन्म, जरा, व्याधि आदि के दु:खों से अत्यन्त संतप्त हूँ अतएव अब आप मुझे भी प्रभु के मार्ग में दीक्षित कर मेरा उद्धार कीजिये।

उस समय हमारे चरितनायक की उम्र तीस वर्ष की थी। उभरती हुई जवानी में त्याग मार्ग की बात सुनकर सभी उपस्थित जनसमूह स्तब्ध हो गया। भाई मोडीलालजी को जब इस बात का पता चला तो वे दौड़े हुए वहाँ आये और चरितनायकजी से बोले—भाई! यहाँ कौनसी कमी है जो तुम साधु बनने की सोच रहे हो? मैं तो तेरे लिये नववधू लाने के स्वप्न देख रहा हूँ।

एकलिंगदासजी ने धीमे स्वर में कहा—मेरे पूज्य भाई! आपकी शीतल छाया में दुःख की दोपहरी का अनुभव नहीं हो सकता फिर भी किसी से जन्म मरण की पीड़ा को भुलाया नहीं जा सकता। उसके लिये मुझे यह घर का मोह तो छोड़ना ही होगा।

त्याग और राग में विरोध होता ही है। आपके इन विचारों के कारण बन्धु बान्धवों ने दीक्षा के विरुद्ध प्रपंच फैलाना शुरू कर कर दिये। 'श्रेयासि बहु विघ्नानि' इस उक्ति के अनुसार आपकी दीक्षा रोकने के कई प्रपंच किये परन्तु जिस व्यक्ति की तीव्र भावना होती है उसे कौन कब तक रोक सकता है? आपने अत्यन्त शान्त और निश्चल भाव से सबको समझाया। अन्ततः आपके दीक्षा के उत्कृष्ट भाव के सामने सबको नत मस्तक होना पड़ा। परिणाम स्वरूप भाई मोडीलालजी ने अत्यन्त दु:खी हृदय से दीक्षा का आज्ञापत्र लिख दिया। आपकी दीक्षा का मुहूर्त फागुनसुदी १ का तय हुआ। दीक्षा का समय

और स्थान के निश्चित होने के बाद भी भाई ने दीक्षा को कुछ दिन आगे बढ़ा देने की प्रार्थना की । उस समय विदुषी महासतीजी श्री नगीनाजी भी वहीं विराजमान थीं । उन्होंने कहा—'शुभस्यशीघ्रम्' शुभ कार्यों में लाख विघ्न आते हैं अतः अब ऐसे शुभ कार्य में विलम्ब करना उचित नहीं । आज्ञापत्र प्राप्त होने के बाद व्यर्थ समय खोना अच्छा नहीं है । आखिर महासती जी की दीर्घदृष्टि के सामने सबको झुकना पड़ा ।

जिस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा हो रही थी वह आ पहुँची। सं. १९४७ की फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा मङ्गलवार के दिन हमारे चरितनायकजी की दीक्षा जैन जगत के महान सन्त वेणीचन्दजी महाराज के पास बड़े समारोह के साथ आकोला में सम्पन्न हुई । दीक्षा के अवसर पर आकोला का व आस पास का मानव समूह उमड़ पड़ा । दीक्षा समारोह अपने ढंग का शानदार था । दीक्षा विधि की समाप्ति के बाद पू. श्री वेणीचन्दजी महाराज ने विहार कर दिया । दीक्षा होने के सात दिन के बाद हमारे चरितनायक जी के बड़े भ्राता मोडीलाल जी का स्वर्गवास हो गया ।

दीक्षा धारण करने के पश्चात् मुनिश्री एकलिंगदासजी ने विद्याध्ययन आरम्भ किया । आपका संवत् १९४८ का प्रथम चातुर्मास अपने गुरुदेव वेणीचन्दजी महाराज के साथ का सनवाड नामक ग्राम में हुआ। विदुषी महासती श्री नगीनाजी ने लगातार तीन वर्ष तक आपको शास्त्रीय ज्ञान करवाया । इसके बाद आपने अपनी बुद्धि की प्रतिभा, परिश्रम और गुरुदेव की कृपा से खूब अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । आप जैन आगमों के प्रकाण्ड विद्वान् बन गये । आपने अपने हाथ से अनेक शास्त्र और ग्रन्थों का आलेखन किया ।

आपका द्वितीय चातुर्मास गुरुदेव के साथ सं. १९४९ का आमेट में हुआ। इसके बाद आपके क्रमशः चातुर्मास इस प्रकार हुए—

सं.	१९५०	का	चातुर्मास	रासमी
सं.	१९५१	का	,,	सनवाड
सं.	१९५२	का	,,	ऊंटाला
सं.	१९५३	का	,,	रायपुर
सं.	१९५४	का	,,	आकोला
सं	१९५५	का	,,	ऊंटाला
सं	१९५६	,,	,,	राजजी का करेड़ा
सं.	१९५७	,,	,,	सनवाड
स.	१९५८	,,	,,	उदयपुर
स.	१९५९	,,	,,	रायपुर
सं.	१९६०	,,	,,	सनवाड
सं.	१९६१	,,	,,	बदनोर

गुरुदेव का स्वर्गवास—

संवत् १९६१ तक के चातुर्मास अपने पूज्य गुरुदेव श्री वेणी-चंदजी महाराज के साथ व्यतीत किये। आपने उनको खूब सेवा की। चातुर्मास समाप्ति के बाद संवत् १९६१ की फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के दिन चैनपुरा गांव में घोर तपस्वी श्रीवेणीचन्दजी महाराज का संथारा पूर्वक स्वर्गवास हो गया। गुरुदेव के स्वर्गवास से आपको बड़ा आघात लगा किन्तु आपने शास्त्रज्ञ होने से इस वज्रमय गुरु वियोग रूप दुःख को अत्यन्त शान्ति पूर्वक सहन किया और उनके बताये मार्ग पर दुगुने उत्साह के साथ आगे बढ़ने लगे।

स.	१९६२	का	चातुर्मास	रायपुर
सं.	१९६३	,,	,,	गोगूँदा
सं.	१९६४	,,	,,	ऊंटाला
सं.	१९६५	,,	,,	रायपुर
सं.	१९६६	,,	,,	सरदारगढ़
स.	१९६७	,,	,,	देलवाड़ा

पूज्य पद समारोह—

पूजनीय श्री वेणीचन्दजी महाराज की मौजूदगी में आप उनके प्रधान सलाहकार थे। उनके प्रतिनिधि के रूप में आपने सम्प्रदाय का संरक्षण, संवर्धन और संचालन किया। जब गुरुदेव श्री वेणीचन्दजी महाराज का स्वर्गवास हो गया तो मेवाड़ सम्प्रदाय को एक सूत्र में आबद्ध करने का निश्चिय तत्कालीन मेवाड़ सम्प्रदाय के संघ ने किया। पण्डित प्रवर श्री एकलिंगदासजी महाराज का चातुर्मास देलवाड़ा में था और उनके शिष्य पं. मुनि श्री कालूरामजी महाराज का चातुर्मास रासमी में था। रासमी संघ को तथा मुनिश्री जी को अपने सम्प्रदाय की बिगड़ती हुई यह स्थिति अखरने लगी। रासमी संघ ने और मुनिश्री ने संप्रदाय को संगठित करने का निश्चय किया। मेवाड़ सम्प्रदाय को मानने वाले ७०० गांव हैं। उन गांवों के मुखियों को समाचार देकर संघ संगठन के लिये राय मंगाई। सभी ओर से यही राय आई कि यह कार्य अवश्य किया जाय और एक आचार्य के नेतृत्व में संघ को संगठित किया जाय। समस्त संघ की राय जानने के बाद पं. मुनि श्री कालूरामजी महाराज ने देलवाड़ा में विराजित चरितनायकजी से प्रार्थना की कि संघ संगठन के हेतु सब सन्त सतियाँ एक जगह एकत्र होना चाहती हैं। इस प्रार्थना को चरितनायकजी ने भी अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी।

चातुर्मास समाप्ति के बाद पौष मास में सब सन्तों का समागम सनवाड में हुआ। जगह-जगह के श्रीसंघों को भी आमंत्रण पत्र भेजे गये। मेवाड़ सम्प्रदाय के साधु साध्वियों को विशेष रूप से आमंत्रण भेजे। पौष सुदी १० को सम्मेलन हुआ। उस अवसर पर ४० गांवों के श्रावक श्राविकाएँ एवं दस ठाने साधु साध्वियों के एकत्र हुए। कई सन्त सतियाँ कारण वश उपस्थित नहीं हो सकीं। आचार्य पद के लिये प्रयत्न चला तो सब की नजरों में यही जचा कि इस सम्प्रदाय में उम्र में, दीक्षा में, गुणों में और दूरदर्शिता में एवं अतिशय धैर्यवान आदि

सद्गुणों में सम्पन्न है तो केवल बाल ब्रह्मचारी पं. मुनि श्री एकलिंगदास जी महाराज साहब ही हैं अतः इन्हीं को पूज्य पदवी प्रदान की जाय। सभी चतुर्विध संघ की यही राय हुई।

इस महान कार्य के लिये रासमी श्रीसंघ ने अपने यहाँ होने की प्रार्थना की। इसकी मंजूरी भी हो गई। तब रासमी में फाल्गुन सुदी ७ को आचार्य पद महोत्सव करने का निश्चय किया। संयोगवश उस समय रासमी में प्लेग का दौरा चल पड़ा। तब मुहूर्त में परिवर्तन करके सं. १९६८ की ज्येष्ठ शुक्ला ५ गुरुवार के दिन पद महोत्सव कायम किया। आमन्त्रण पत्र जगह जगह भेजे गये। नियत समय पर बाहर गाव के करीब २००० स्त्री पुरुष रासमी मे इकट्ठे हुए। सन्त सतियों में कुल ३५ ठाने उपस्थित थे।

महान समारोह के साथ मुनि मण्डल और महासतियाँजी ग्राम के बाहर पधारे। बाहर बगीचे में आम्र वृक्ष के नीचे विशाल पट्ट पर होने वाले आचार्य प्रवर को आसीन किया। उस अवसर पर करीब चार हजार स्त्री पुरुषों की उपस्थिति थी। भावी आचार्य मुनियों के साथ तारा मण्डल के बीच चंद्रमा की तरह सुशोभित हो रहे थे।

उस समय मुनि श्रीकालुरामजी महाराज ने पूज्य पछेवड़ी अपने हाथ में ली और खड़े होकर उद्बोधन किया कि "इस पछेवड़ी की लज्जा श्रीसघ के हाथ में है। सकल सघ से यह निवेदन है कि वह संप्रदाय को अधिक से अधिक उन्नत बनाने के लिये निम्न तीन नियमों का पालन करे—

(१) गादीधर की निश्रा में ही सब सन्त दीक्षित हों।

(२) सन्त और सतियाँ चातुर्मासिक आज्ञा पूज्यश्री से ही लें।

(३). संप्रदाय से बहिष्कृत सन्त सतियों को आदर न दें।

सकल सघ ने तीनों नियमों को मान लिया। तदनंतर सब मुनियों ने पछेवड़ी को उसके पल्ले पकड़कर चरितनायकजी के भव्य कन्धों पर ओढ़ाई। 'शासनदेव की जय' 'आचार्यदेव, पूज्यश्री एकलिंगदासजी महाराज की जय'

के नाद से आकाश गूँज उठा। उपस्थित सन्त सतियों ने व जन समूह ने पूज्यश्री को वन्दन किया। इस प्रकार पूज्य एकलिंगदासजी महाराज सर्वसम्मति से मेवाड़ सम्प्रदाय के आचार्य घोषित हुए।

इस सुवर्ण अवसर पर अहमदाबाद के निवासी तत्वदर्शी सिद्धान्त शिरोमणि कर्मवीर श्रीयुन् वाडीलाल मोतीलाल शाह भी उपस्थित थे। वे इस समारोह से व पूज्यश्री के व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी लेखनी से इस पदवीदान समारोह का बड़ी सुन्दर शैली में अपने पत्र में वर्णन किया था।

पूज्य पदवी के पश्चात् सं. १९६८ में आकोला, सं. १९६९ में भादसौडा, सं. १९७० में घासा, सं. १९७१ में मोही, सं. १९७२ में सनवाड एवं सं. १९७३ में मावली में चातुर्मास हुए।

सं. १९७४ का चातुर्मास आपने राजाजी के करेडे में किया। उस समय वहाँ के राजा अमरसिंहजी साहब ने आपके व्याख्यान का पूरा लाभ लिया। पूज्यश्री के उपदेश से महाराजा साहब ने वहाँ पर काला भैरूँजी के स्थान पर प्रचुर संख्या में होने वाली बकरे तथा भैसों की बलि को सदा के लिये बन्द कर दिया और अमरपट्टा लिखकर पूज्यश्री की नजर कर दिया जिसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

"श्रीगोपालजी ॥ ॥ श्रीरामजी ॥

पट्टा नं. ३० सावत

सीध श्री राजाबहादुर श्रीअमरसिंहजी वंचना हेतु कस्वा राजकरेडा समस्त महाजना का पंचा कसै अपरञ्च राज और पंच मिलकर भैरूँजी जाकर पाति मांगी के अठे बकरा व पाड़ा बलिदान होवे जीरे बजाये अमरियाँ कीधा जावेगा। बीइरी पाती बगसे–सो भैरुजी ने पांती दी दी के मंजूर है। ई वास्ते मारी तरफ़ से आ बात मजूर होकर बजाए जीव, बलिदान के अमारिया कीधा जावेगा। ओर दोयम राज और पंच मिलकर धरमशाला भैरोजी के बनावणी की दी, सो धरमशाला होने पर ई

बात री परस्सति कायम कर दी जावेगा । ताके अमुमन लोगों को भी खयाल रेवेगा के अठे जीव हिंसा नहीं होवे है। और जीव हिंसा न हो बाकि भोपा को भी हुकम दे दीदो है इ वास्ते थाने आ खातरी लीख देवाणी है । सं. १९७४, दुती भादवा सुदी १

दः केशरीमल कोठारी रावला हुकुम सुं खातरी लिख दी है।"

इस चातुर्मास काल में कई बड़े बड़े उपकार हुए। तदनन्तर सं. १९७५ का चातुर्मास जावरा (मालवा) में हुआ। सं. १९७६ का चातु-र्मास सनवाड में एवं स. १९७७ का चातुर्मास नाथद्वारा में हुआ। यहाँ चातुर्मास काल में २००० हजार बकरों को अमर किया गया। चातुर्मास के बाद आप विहार करके राजाजी के करेडे पधारे। वहाँ से आप रायपुर पधारे। यहाँ पावनमूर्ति श्रीमांगीलालजी महाराज एवं उनकी मातुश्रीमगनबाई की दीक्षा वैशाख सुदी २ को बड़े समारोह के साथ हुई। पं. मुनि श्रीमागीलालजी महाराज की जीवनी इसी चरि-तमाला के साथ सक्षेप में दी गई है।

इसके बाद आपने सं. १९७८ का चातुर्मास देलवाड़ा, सं. १९७९ का रायपुर, स. १९८० का देवगढ़, सं. १९८१ का चातुर्मास कुंवा-रिया, स. १९८२ का आकोला, स. १९८३ का उंटाला, सं. १९८४ का छोटी सादड़ी, सं. १९८५ का रायपुर एवं स. १९८६ का मावली में हुआ। स. १९८७ का चातुर्मास आपने उंटाला में किया।

अन्तिम यात्रा—

संवत् १९८७ का चातुर्मास करने के लिये पूज्यश्री उंटाला पधारे। इस चातुर्मास में आपके शरीर पर रोग का आक्रमण हुआ। औषधो-पचार पर भी शान्ति न हो सकी। इस वर्ष आप प्राय. अस्वस्थ्य ही रहा करते थे। चातुर्मास काल में व्याधि ने खूब जोर पकड़ा। उस समय आपकी सेवा में आठ सन्त थे। इन सन्तों मे पं. श्रीजीवराजजी महाराज की सेवा-भक्ति सर्वोपरि थी। रातदिन गुरुदेव की सेवा में उपस्थित रहकर उनकी सेवा में रत रहते थे। एक क्षण के लिए भी

वे गुरुदेव को नहीं छोड़ते थे। भयंकर व्याधि और असह्य पीड़ा होने पर भी पूज्यश्री आत्मा और देह के विनश्वर संयोग का विचार करते हुए शान्ति के साथ वेदना सहन करते थे। पूज्यश्री इस रुग्ण अवस्था में भी अपनी मानसिक दृढ़ता के कारण प्रातःकाल और रात्रि के प्रतिक्रमण बड़े ध्यान से सुनते थे। सावन वदि २ के दिन प्रातःकाल आपकी वेदना और भी बढ़ गई। सैकड़ों श्रावक पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हो गये। पूज्यश्री ने उत्तरोत्तर कमजोरी बढ़ती हुई देखकर संथारा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। पूज्यश्री की इच्छा के अनुसार संघ की सम्मति से उन्हें आलोचना पूर्वक संथारा कराया गया। पूज्यश्री ने समस्त संघ से क्षमा याचना की और पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन हो गये। अन्ततः नौ वजे पूज्यश्री का आत्मा रूपी हंस स्वर्ग रूपी मानसरोवर की ओर उड़ गया।

पूज्यश्री के स्वर्गवास के समाचार बिजली के वेग की तरह सर्वत्र फैल गये और शोक के बादल छा गये। पूज्यश्री का यह सदा का वियोग सब के हृदय में चुभ रहा था। सबका हृदय रो रहा था। सचमुच सारा संघ इस अनमोल रत्न के छिन जाने से अपने आपको दीन हीन और अनाथ सा अनुभव करने लगा।

प्राण विसर्जन के समय पूज्यश्री का मुखमण्डल अनुपम शान्ति से शोभायमान था। उस शान्त मुद्रा को देखने के लिए गांव के एवं आसपास के गांव वाले हजारों की संख्या में एकत्रित हुए। श्रद्धालु नरनारी पूज्यश्री की सौम्य मुद्रा का अन्तिम दर्शन कर अपनी श्रद्धांजलि समर्पित कर रहे थे।

पूज्यश्री का शव तीन खण्ड के सुन्दर विमान में रखा गया। शवयात्रा का विमान बड़े समारोह के साथ स्मशान की ओर ले जाया गया। स्मशान में पहुँचने के बाद घी, चन्दन, खोपरा एवं कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से पूज्य श्री के शव का अग्निसंस्कार किया गया। पूज्यश्री के नश्वर देह को अग्नि भस्मसात् कर गई किन्तु उनके यशः

शरीर को भस्मसात् करने में वह समर्थ न हो सकी।

पूज्यश्री का जीवन भी आदर्श था और उनकी मृत्यु भी आदर्श थी। ऐसे पुरुष मरकर भी सदा अमर हो जाते हैं।

आज मेवाड़ संप्रदाय का एक दीपक सदा के लिये बुझ गया। मेवाड़ का भाग्य ही कमजोर है जो तीन महिने की अवधि में दो मेवाड़ नाथ मेवाड़ की गोद से निकल गये। यानी आपके स्वर्गवास के तीन महिने पूर्व एक मेवाड़नाथ हिन्दवा-सूर्य महाराणा फतहसिंहजी बहादुर का स्वर्गवास हो गया था। एक ही वर्ष में दो मेवाड़नाथों के स्वर्गवास से धार्मिक जगत और मेवाड़ देश अनाथ हो गया।

पूज्यश्री बड़े दयालु शान्तस्वभावी तपस्वी थे। आपका कद लम्बा था। आप अखण्ड ब्रह्मचारी थे। आपके समय में सम्प्रदाय की नींव मजबूत हो गई थी। आपने पाच वर्ष तक लगातार एकान्तर तप किये। आपने अनेक प्रकार की तपस्या की थीं। मेवाड़ी जनता आपश्री की चिरऋणी है। जिससे उऋण होना दुष्कर है। आपका यश अमर रहे यही शुभ कामना है।

सन्त शिरोमणि श्री जोधराजजी महाराज

मेवाड़ रियासत के तगड़िया (देवगढ़) नामक छोटे से ग्राम मे जन्म लेकर भी जिसने अपने तेजोमय जीवन की स्वर्णिम रश्मियाँ मेवाड़ के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रसरित कीं, जिसने अपना बहुमूल्य जीवन स्व-पर के उद्धार में लगाया, जिसने अकिंचनता, अनगारता अंगीकार करके भी अपनी महनीय आध्यात्मिक सम्पत्ति से जनता को प्रभावित करके अपने पावन पादपद्मों में प्रणत किया वह तपोधन, ज्ञानघन मुनि श्री जोधराजजी महाराज, आज भी हमारी श्रद्धाभक्ति के पात्र हैं।

मुनि श्री जोधराजजी महाराज के पिता क्षात्रवंशीय श्रीमान् मोतीसिंहजी थे और माता श्रीमती चम्पाबाई थीं। आपका जन्म

सं० १९४० के आसपास हुआ था। माता पिता के परम वात्सल्य में आपका लालन-पालन हुआ किन्तु यह वात्सल्य अधिक समय तक न रह सका। प्रकृति को कुछ और ही इष्ट था। आपकी लघु अवस्था में ही आपके माता पिता का स्वर्गवास हो गया। मातृ पितृ वियोग के कारण आपके हृदय पर बड़ा आघात लगा। माता पिता के स्नेह से वंचित होने के साथ आप पर जीवन और व्यवसाय को चलाने की भी जिम्मेदारी आ पड़ी। आप एक बार व्यवसाय के निमित्त राज-करेड़ा आये वहाँ आप अनायास ही रामद्वारे पहुँचे। रामस्नेही सन्तों का आपने उपदेश सुना।

पहले मातृ-पितृ वियोग के कारण संसार से उदासीनता के भाव विद्यमान थे ही उस पर रामस्नेहियों का उपदेश लगने से आप एकदम विरक्त हो गये। संसार के प्रति एकदम घृणा हो गई और त्याग मार्ग अंगीकार करने की भावना पैदा हो गई। जब मानव पर दुःख आता है तब उसकी सोई हुई शक्ति जागृत हो जाती है तदनुसार आपने त्यागमार्ग स्वीकार करने की अपनी मनोगत भावना रामस्नेही सन्त के सामने प्रगट की। रामस्नेही ने सच्ची सलाह देते हुए कहा-जोधसिंह ! यदि तुम आत्मकल्याण करना चाहते हो तो जैनमुनि के पास जाओ और उन्हीं के पास दीक्षा ग्रहण कर अपना आत्मकल्याण करो। इसी प्रकार की योग्य सलाह देकर आपको मेवाड़ सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री एकलिंगदासजी महाराज की सेवा में भेज दिया। आप एकलिंगदासजी महाराजश्री की सेवा में पहुँचे और उनके पास रहकर अध्ययन करने लगे। पूज्य महाराज श्री की सेवा में रहकर आपने अल्प समय में ही सामायिक प्रतिक्रमण थोकड़ा स्तवन आदि सीख लिये।

निरन्तर पूज्य श्री के वैराग्यमय उपदेशों को सुनकर आपके मानस में वैराग्य भावना जागृत हो गई। जिसका अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल होता है उस पर वीतराग की वाणी का प्रभाव पड़े बिना

नहीं रहता । युवक जोधसिंह ने संकल्प कर लिया कि 'मैं संसार के स्वार्थमय माया जाल में न फँस कर वीतराग प्ररूपित त्याग मार्ग का ही आराधन करूँगा । ये त्यागी मुनि वास्तविक सुख की प्राप्ति के लिये जो मार्ग बताते हैं उसी पर चलकर मैं भी सुख का साक्षात्कार करूँगा" इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर आपने अभिभावकों से किसी प्रकार आज्ञा प्राप्त करली ।

संवत् १९५६ मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी के दिन आपने रायपुर (मेवाड़) में भागवती दीक्षा अंगीकार की और आपने अपने को अब मुनि श्री, कस्तूरचन्दजी महाराज का शिष्य घोषित किया। आपका दीक्षा महोत्सव का खर्च रायपुर संघ ने उठाया और दीक्षा की विधि श्रीमान् सीतारामजी चोरड़िया ने की। श्रीमान् सीतारामजी चोरड़िया बड़े उदार दिल के एवं अत्यन्त धर्मशील व्यक्ति थे ।

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् आपने पूज्य महाराजश्री के पास विद्याध्ययन आरभ किया। बुद्धि, प्रतिभा, विनय, परिश्रम और गुरुदेव की कृपा के कारण आपने शीघ्र ही अच्छी योग्यता प्राप्त करली। पूज्यश्री जैसे समर्थ विद्वान आचार्य गुरु हों और आप जैसे प्रतिभा सम्पन्न शिष्य हों तो उस अध्ययन की वात ही क्या ! आपने पूज्य श्री की निरन्तर सेवा करते हुए शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन कर लिया ।

ज्ञान की आराधना के साथ ही साथ आपने तप का आराधन भी आरम्भ कर दिया था । अतएव आपके जीवन में तपश्चर्या और त्याग की प्रधानता दृष्टि गोचर होती थी । आपने लगातार १४ वर्ष तक सायंकाल में कभी गरम भोजन नहीं किया। आपने एकान्तर बेला तेला पाच आठ आदि कई दुष्कर तपस्याएँ कीं । आपका कण्ठ बड़ा मधुर था । शास्त्र का अध्ययन भी गहरा था अतः आपके व्याख्यान देने की शैली बड़ी रोचक थी । आपके उपदेश में आडम्बर को लेशमात्र भी स्थान नहीं था क्योंकि आपके उपदेश में जनरंजन के स्थान में कुमति निकंदन का ही प्रधान लक्ष्य था । आपकी आत्माभिमुख

वैराग्यमयी वाणी श्रोताओं के हृदय में धर्म की जागृति, जैनागम पर अटूट श्रद्धा और आचरण में पवित्रता का संचार करती थी।

आप बड़े गुरुभक्त थे। गुरुमहाराज की अंगचेष्टा से ही उनके भाव को समझ लेते थे। आप अपने गुरुदेव को सच्चा मा बाप समझते थे। दीक्षा काल से पूज्यश्री के स्वर्गवास तक आपने केवल एक ही चातुर्मास उन्हीं की आज्ञानुसार अलग किया था। शेष आपने अपना सारा जीवन उन्हीं के सेवा में लगा दिया। ३१ वर्ष तक एक-निष्ठ होकर गुरुसेवा की। पूज्य श्री के अन्तिम समय में जो आपने शुश्रूषा की और उनके जो आदेश शिरोधार्य किये उन से आप की विनयशीलता का पूरा परिचय मिलता है।

आप मेवाड़ संप्रदाय के आधार स्तंभ सन्त थे। आपके ने संप्रदाय के हित में अनेक महत्वपूर्ण काम किये। आपकी महत्वपूर्ण संप्रदाय सेवा से सारा मेवाड़ संप्रदाय आपका चिर ऋणी है। इन पंक्तियों के लेखक पर जो आपने उपकार किया संयम-मार्ग में दृढ़ किया उसे व्यक्त करना असंभव है। आपके ज्येष्ठ शिष्य मुनि श्री कन्हैयालालजी थे।

आपने ४२ वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन किया। अन्त में वि. सं. १९९८ की आश्विन शुक्ला ५ शुक्रवार के दिन १२ प्रहर का चोविहार संथारा कर परलोक के लिये प्रयाण कर गये। आपके देहावसान से मेवाड़ संप्रदाय का जगमगता सितारा अस्त होगया। एक दिव्य विभुति समाज के सामने से सदा के लिए लुप्त होगई।

गुरुदेव श्री मांगीलालजी महाराज

आदरणीय महामुनि श्री मांगीलालजी महाराज का जन्मस्थान भीलवाड़ा जिलान्तर्गत 'राजाजी का करेड़ा' है। राज करेड़ा यद्यपि आज अपनी आर्थिक दशा से बहुत विशाल नगर तो नहीं रहा पर जैन संस्कृति की दृष्टि से तो उसका अपना महत्व आज भी यथावत् है। यहाँ ओसवालों की अच्छी संख्या है। इन ओसवालों में संचेती वंश

अपनी कीर्तिमयी गौरवगाथा के कारण उस जिले मे प्रसिद्ध रहा है। इसी वंश में श्रीमान् गम्भीरमलजी उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नी का नाम मगनबाई था। दोनों पतिपत्नी अत्यन्त धर्मपरायण थे। पुण्योदय से वि. सं. १९६७ पौष वदि अमावस्या गुरुवार के दिन मगनबाई ने एक बालक को जन्म दिया। बालक का नाम 'मागीलाल' रखा गया। माता पिता अपनी एक मात्र और चिर प्रतीक्षित सन्तान होने से इसे लाड-प्यार से रखने लगे।

जब मांगीलाल पांच वर्ष के हुए तब इनके पिता श्रीमान् गम्भीरमलजी की मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु से बालक मांगीलाल एवं उनकी माता श्री मगनबाई पर वज्र टूट पडा किन्तु उसने अत्यन्त धैर्य के साथ इस संकट का सामना किया।

प्यारचन्दजी साहब संचेती (हा मु. अहमदाबाद) के पिताजी श्रीमान् छोगालालजी जो कि बालक मागीलाल के काका होते थे उनकी देख रेख में अपनी माता के साथ मागीलाल वृद्धि पाने लगा।

मगनबाई के धर्म संस्कार प्रतिदिन जागृत हुए जा रहे थे। उनके जीवन का यही लक्ष्य रह गया था कि बालक को अधिक से अधिक शिक्षित और संस्कारी बनाना और अपना शेष जीवन धर्म ध्यान में बिताना। तदनुसार सामायिक प्रतिक्रमण और सन्त-सती समागम में मगनबाई का समय बीतने लगा। मेवाड संप्रदाय की सतियों का आवागमन राजकरेडा में होता रहता था उनके उपदेश श्रवण से मगनबाई के हृदय में धर्म भावना हिलोरे लेने लगी। चरित्रनायक की माता मगनबाई सती शिरोमणि प्रवर्तिनी श्री फूलकुँवरजी की सुशिष्या श्रृङ्गार कुँवरजी के परिचय में आई। इनके धार्मिक उपदेशों ने माता तथा मांगीलाल के हृदय में त्याग और वैराग्य की भावना उत्पन्न की। पुण्योदय से जैनधर्म के महान आचार्य श्री एकलिंगदासजी म० सा० का नगरमें पदार्पण हुआ। इनके वैराग्य पूर्ण उपदेश से इन दोनों का हृदय वैराग्य रङ्ग से भर गया। माता मगनबाई ने पूज्य गुरुदेव के समक्ष

दीक्षा ग्रहण करने की अपनी भावना प्रकट की। माँ का आदर्श मार्ग बालक मांगीलाल को भी पसन्द आया। फलस्वरूप रायपुर मेवाड़ में पूज्य श्री एकलिंगदासजी महाराज के समीप सं० १९७८ को वैशाख शुक्ला तीज गुरुवार के दिन बड़े ठाठ बाट से इनकी दीक्षा विधि समाप्त हुई। मांगीलालजी आचार्य के शिष्य बने और मगनबाई महासती श्री फूलकुँवरजी की शिष्या बनीं।

गुरु महाराज इनकी बाल्यकालिक प्रतिभा से पूर्णतया प्रभावित थे। अतः इन्हें सेवारत पं० मुनि श्री जोधराजजी महाराज सा० को सौंपा, और निर्देश दिया कि इनकी शिक्षा का दायित्व आप पर है। पं० मुनि श्री जोधराजजी महाराज इस समय मेवाड़ संप्रदाय के मुनियों में विद्वान शास्त्रज्ञ एवं संयमशील सन्त माने जाते थे। अपने उग्र तप और त्याग के कारण इन्हें लोग मेवाड़-केशरी भी कहते थे। आचार्य महाराज का विश्वास ये सम्पादित कर चुके थे। इनके सांनिध्य में रहकर मुनि श्री मांगीलालजी शास्त्राध्ययन करने लगे। साथ ही पूज्य गुरुदेव की सेवा भी बड़ी तत्परता से करने लगे। नौ वर्ष तक मुनि श्री मांगीलालजी ने पूज्य गुरुदेव की सेवा की। संवत १९८७ की श्रावण कृष्णा तीज को पूज्य गुरुदेव श्री एकलिंगजी म० सा० के स्वर्गवास से इनके दिल पर जो आघात लगा वह अवर्णनीय है। वे अनाथ से हो गये। पर क्या किया जाय? तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती जैसे महाशक्तिशाली भी इस काल कराल से नहीं बच सके। सभी को एक दिन इस पथ का अनुगामी बनना है यह समझ कर संयम की साधना में आप तन्मय हो गये।

ऐसे महान पंडित एवं तेजस्वी गुरुदेव का संग स्नेह और साहचर्य पाकर कौन कङ्कर शंकर नहीं बनेगा। चरित्रनायकजी तो जिज्ञासु, विनयी, बुद्धिमान, गुरु आज्ञा पालक थे ही। आप गुरु महाराज की निश्रा में बराबर उनके स्वर्गारोहण तक बने रहे और स्वाध्याय विद्याभ्यास में खूब उन्नति की। आपने संस्कृत, प्राकृत आदि

विषयों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया। आपके ज्ञान, विनय और संघ संचालन की शक्ति व प्रतिभा को देखकर श्री संघ ने आपको मेवाड़ संप्रदाय का अधिनायक बनाने का निश्चय किया तदनुसार चतुर्विध संघ ने मिलकर वि० सं०१९९३ में मुनि श्री मोतीलालजी म० सा० को आचार्य पद एवं आपको युवाचार्य पद से विभूषित किया। इस आचार्य और युवाचार्य पद महोत्सव का सारा श्रेय लावासरदारगढ़ संघ को प्राप्त हुआ।

युवाचार्य पद प्राप्ति के बाद आपने भारत के कई प्रान्तों में विहार कर दया-धर्म का प्रचार किया। आप ने अपने विहारकाल में अनेक शासन प्रभावक कार्य किये।

सत्ता का त्याग-

मानव सत्ता का दास है। अधिकार लिप्सा का गुलाम है। गृहस्थ जीवन में क्या, साधु-जीवन में भी सत्ता मोह के रङ्ग से छुटकारा नहीं हो पाता है। ऊँचे से ऊँचे साधक भी सत्ता के प्रश्न पर पहुँच कर लड़खड़ा जाते हैं। पूज्य गुरुदेव को युवाचार्य पद के पश्चात् जो कटु अनुभव हुए उससे उन्होंने निश्चय किया कि अगर मुझे आत्म साधना करनी है तो पद-अधिकार के प्रपंच से दूर रहना होगा। ख्याति केवल जनता की सास है और वह प्राय: अस्वास्थ्य जनक होती है। गुरु ने पद त्याग करने का निश्चय किया। दीक्षा का अवसर था। हजारों जनसमूह एकत्र था। पदवी त्याग का उपयुक्त अवसर देखकर आपने चतुर्विध संघ के समक्ष शान्त मुद्रा से यह घोषित किया कि "मै युवाचार्य पद का त्याग कर रहा हूँ। इतना ही नहीं भविष्य में भी मुनिपद के सिवाय अन्य किसी भी पद को ग्रहण नहीं करूँगा।" गुरुदेव की इस अचानक घोषणा से समस्त संघ अवाक् हो गया। गुरुदेव के इस महान त्याग की जनता मुक्त कण्ठ-प्रशंसा करने लगी। धन्य है ऐसे सन्त को जो चारित्र धन के रक्षण के लिए इतना बड़ा त्याग करते हैं।

युवाचार्य पद के परित्याग से आप को बड़ा आनन्द मिला। अब आप सांप्रदायिक झंझटों से मुक्त होकर धर्मप्रचार में जुट गये। आपने मेवाड़, मालवा, मारवाड़, हाडौती, गुजरात, झालावाड़, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बम्बई, दिल्ली, आगरा, ग्वालियर, भोपाल, इन्दौर, उज्जैन, आदि भारत के मुख्य शहरों को पावन कर जैनधर्म का प्रचार किया। आप ने अपने प्रभाव से अनेक स्थानों के पारस्परिक वैमनस्य-धड़ेबाजी को मिटा कर एकता स्थापित की। झगड़े मिटाये। हजारों को मांस मदिरा का त्यागी बनाया। पशु बलि बन्द करवाई। तत्त्वचर्चा करके अनेकों को स्थानकवासी धर्म में आस्थावान बनाया।

आपने अपने दीक्षाकाल में नौ व्यक्तियों को दीक्षित किया। ४२ वर्ष तक ज्ञान और चारित्र की आराधना करके ५२ वर्ष की अवस्था में राजस्थान के सहाड़ा गाँव में समाधि पूर्वक आप सदा के लिए अपने भौतिक देह को छोड़ कर चले गये। चन्दन की चिता ने आपके भौतिक देह को भस्म कर दिया किन्तु आपका यश शरीर मानव के स्मृति पट पर सदा अजर अमर रहेगा।*

*विशेष परिचय के लिये पढ़िए "गुरुदेव श्री मांगीलालजी महाराज का दिव्य जीवन"

दान दाताओं की शुभ नामावली

४५१) वोरा डोशाभाई लालचन्द स्थानक वासी जैन संघ वढवाण शहर के भाइयों की तरफ से
३५०) भावनगर–स्थानकवासी जैन भाइयों की तरफ से
३३१) श्रीमान् सेठ नानजी, भगवानजी मेहता, पोरबन्दर
३०२) श्रीस्थानकवासी जैन भाइयों की तरफ से, पोरबन्दर (सौराष्ट्र)
२५१) श्री स्थानकवासी जैन श्रीसघ, पोरबन्दर ,,
२५१) शाह भीखालाल नागरदास, साणंद (गुजरात)
२०१) शाह जमनादास देवीदास, पोरबन्दर (सौराष्ट्र)
२०१) शाह गोपालजी मीठाभाई, मालीया हाटीना ,,
२०१) शाह कपूरचन्द नरमेराम, बीलखा ,,
१५१) शाह डॉक्टर नानुशाह, वेरावलबन्दर ,,
१५१) गांधी मोतीचन्द रायचन्द, मालीया हाटीना ,,
१५१) शाह वल्लभदास कालाभाई घाटलिया, वीसावदर ,,
१५१) संघवी नारायणदास धरमशी, साणंद (गुजरात)
१५१) गाधी जीवणलाल माणेकचन्द, साणंद ,,
१५१) सघवी हरखचन्द कचराभाई, साणंद ,,
१५१) शाह हीराचन्द छगनलाल, साणंद ,,
१५१) शाह शकरचन्द कानजीभाई, साणंद ,,
१२५) शाह वच्छराज हीरजीभाई गोडा, सरसाई (सौराष्ट्र)
१२५) पारेख भीखालाल नेमचन्द, साणंद (गुजरात)
१०१) लखमसी लालजी सालिया, वेरावलबन्दर (सौराष्ट्र)
१०१) खीमचन्द सौभागमल जैन, वेरावलबन्दर ,,
१०१) धीरजलाल मदनजी चायवाला, वेरावलबन्दर ,,
१०१) शाह रामजीभाई डाह्याभाई, बिलखा ,,

१०१) श्री स्थानकवासी जैन श्रीसंघ, सरसाई (सौराष्ट्र)
१०१) श्री स्थानकवासी जैन श्रीसंघ, मोणपुरी मोटी ,,
१०१) कामदार पोपटलाल केशवजी भाई, मोणपुरी मोटी ,,
१०१) कोठारी भूरालाल त्रिभुवनदास, अहमदाबाद ,,
१०१) शाह मोरारजो कालीदासभाई, राणपुर ,,
१०१) पन्नालालजी भंवरलालजी वडोला, रायपुर (राज०)
१०१) दौलतरामजी चाँदमलजी मारू, शंभूगढ़ ,,
१०१) शाह धनराजजी मोहनलालजी कोठारी, मदूण ,,
१०१) दलाल ख्यालीलालजो विजयसिंह, उदयपुर ,,
१०१) प्यारचन्दजी मिसरीलालजी, संचेती राजकरेडा ,,
१०१) मूलचन्दजी छोत्तरमल चौरड़िया, राजकरेडा ,,
१०१) शाह व्रजलाल सुखलाल हस्ते नटवरलाल व्रजलाल, वढवाण शहर (सौराष्ट्र)
१०१) दोशी जीवराज लालचन्द, साणंद (गुजरात)
१०१) शाह कस्तूरचन्द्र हरजीवनदास, साणंद ,,
१०१) कोठारी मोहनलाल छगनलाल, साणंद ,,
१०१) पटेल परसोत्तम हरजीवनदास, साणंद ,,
१०१) शाह जेठालाल त्रिभुवनदास साणंद
१०१) शाह वाडीलाल छगनलाल, साणंद ,,
१०१) शाह खीमचन्द नरसीभाई, साणंद ,,
१०१) संघवो वृजलाल परसोत्तम द्वारा धर्मपत्नी सुशीला बहन के स्मरणार्थ, वढवाण शहर (सौराष्ट्र)
१०१) वकील कान्तीलाल कंचनबेन शाह
७५) संघवी रविचन्द जवेरचन्द, थानगढ़ ,,
५१) शाह बंशीलाल प्राणलाल, पोरबन्दर ,,
५१) अमीलाल हरीदास गोसलिया, पोरबन्दर ,,
५१) जगजीवन देवकरण दोषाणी, पोरबन्दर ,,

५१) शाह चन्द्रकांत बाबूलाल, पोरबन्दर ,,
५१) शाह हंसराज खुशालभाई, वेरावलबन्दर ,,
५१) गांधी मूलचन्द दामोदरजी, मालीया हाटीना ,,
५१) शाह जगजीवन बच्छराज, बिलखा ,,
५१) शाह शांतिलाल सोमजीभाई वकील, बिलखा ,,
५१) शाह दुर्लभजी पानाचन्दभाई, बिलखा ,,
५१) शाह वीरचन्द पोपटलाल, बिलखा ,,
५१) शाह पोपटलाल धारसीभाई, बिलखा ,,
५१) शाह केशवलाल डूंगरसीभाई, बिलखा ,,
५१) शाह केशवलाल शामजीभाई, राणपुर ,,
५१) शाह जादवजी जीवाभाई, राणपुर ,,
५१) हीराचन्द लाधाभाई हेमाणी, राणपुर ,,
५१) शाह अमृतलाल तलकशीभाई के स्मरणार्थ देवलिया हा० मु० लखतर ,,
५१) संघवी टीकमलाल कचराभाई, साणंद (गुजरात)
५१) संघवी रतिलाल कचराभाई, साणंद ,,
५१) संघवी अंबालाल टीकमलाल, साणंद ,,
५१) पटेल वाडीलाल मगनलाल, साणंद ,,
५१) पटेल ईश्वरभाई देवाभाई, साणंद ,,
५१) हरगोविन्ददास वीठलदास गौसलिया, भावनगर ,,
५१) शाह हरकिशनदास पानाचन्द, पोरबन्दर ,,
५१) अध्यापिका मृगावती बहन अमुलख, पोरबन्दर ,,
५१) सौराष्ट्र सॉल्ट मेन्यु० कम्पनी, पोरबन्दर ,,
५१) मनमोहनदास हरिदास उदाणी, पोरबन्दर ,,
५१) दोशी केशवलाल शांतिलाल, वढवाण शहर ,,
५१) शाह नागरदास सुखलाल, वढवाण शहर ,,
५१) कामदार मगनलाल गोकलदास, वढवाण शहर ,,

५१) वकील शांतिलाल दीपचन्द, वढवाण शहर ,,
५१) शाह मूलजीभाई कानजीभाई, वढवाण शहर ,,
५१) भावसार डाह्याभाई अमरसी, वढवाण शहर ,,
५१) दोशी धीरजलाल भूदरभाई, वढवाण शहर ,,
५१) कामदार कांतीलाल हरखचन्द, वढवाण शहर ,,
५१) कामदार चूनीलाल लालचन्द के स्मरणार्थ हस्ते उनके सुपुत्र श्रीरमणीकभाई, अनुभाई, बाबुभाई, किर्तीभाई, सुरेशभाई ,,
५१) श्री स्थानकवासी जैन संघ, देदादरा ,,
५१) गौसलिया झवेरचन्द व्रजलालभाई, देदादरा ,,
५१) शाह मणीलाल भाईचन्द, अहमदाबाद ,,
५१) कातिलाल दीपचन्द शाह, अहमदाबाद ,,
५१) स्वर्गीय टेकुभाई की पुण्यस्मृति में सुपुत्र केशरीमलजी जवाहरमलजी गन्ना, भीम (राजस्थान)
५१) भावसार औघडभाई जीगाभाई, विठलगढ़ (सौराष्ट्र)
५१) मेहता देवसीभाई देवकरण, वढवाण शहर ,,
५१) सेठ जेचन्द जसराज गौतम गढ (हा मु. बम्बई)
५१) लाभकुँवर लीलाधर मेहता दादर (बम्बई)
५०) खोडीदास गणेशभाई भावसार, धन्धूका ,,

उक्त धर्म प्राण महानुभाव, जिनके सहयोग द्वारा यह स्वधर्म प्रकाशक 'आगम के अनमोल रत्न' प्रकाशित हो रहा है—धन्यवाद के पात्र हैं। धर्म-ध्यान और कल्याण के श्रेयस्कर मार्ग पर वे दृढ़ बनकर प्रगति करते रहें यही श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है।